भगवान
महावीर
एक अनुशीलन
श्री देवेन्द्र मुनि शास्त्री

भगवान महावीर की २५ वीं निर्वाण-शताब्दी के उपलक्ष मे

भगवान महावीर : एक अनुशीलन

लेखक

राजस्थानकेसरी प्रसिद्धवक्ता परम श्रद्धेय
श्री पुष्कर मुनि जी म० के सुशिष्य

देवेन्द्र मुनि, शास्त्री

प्रकाशक

श्री तारक गुरु जैन ग्रन्थालय

* पुस्तक
  भगवान महावीर एक अनुशीलन

* आशीर्वचन—
  पुष्कर मुनि जी म०

* लेखक
  देवेन्द्र मुनि शास्त्री, 'साहित्यरत्न'

* मूल्याकन
  दलसुख भाई मालवणिया

* पृष्ठ ७६०

* प्रथम प्रवेश
  सितम्वर १९७४
  २५ वा महावीर निर्वाण शताब्दी वर्ष

* उदार दानदाताओ के सहयोग से
  अमूल्य

* प्रकाशक
  श्री तारक गुरु जैन ग्रन्थालय, शास्त्री सर्कल उदयपुर (राजस्थान)
  श्री तारक गुरु जैन ग्रन्थालय, पदराडा (उदयपुर)

* मुद्रण व्यवस्था
  श्रीचन्द सुराना के लिए
  रामनारायन मेडतवाल,
  श्री विष्णु प्रिंटिंग प्रेस, आगरा—२

समर्पण

साहित्य और सस्कृति के
ज्ञान और विज्ञान के
अध्यात्म और योग के,
धर्म और दर्शन के
जो पावन तीर्थ है,
उन्ही परम श्रद्धेय
सद्गुरुवर्य राजस्थानकेसरी
श्री पुष्कर मुनि जी महाराज
के पवित्र करकमलो मे

—देवेन्द्र मुनि

श्रमण भगवान महावीर की २५ वीं निर्वाण शताब्दी के पावन प्रसग पर भगवान महावीर का प्राचीन ग्रन्थो के प्रकाश मे प्रामाणिक जीवन चरित्र लिखा जाय, यह मेरी हार्दिक इच्छा थी। मेरी इच्छा के अनुरूप मेरे प्रिय शिष्य देवेन्द्र मुनि ने भगवान महावीर का जीवन ग्रथ तैयार किया है। यह शोध-प्रधान जीवन जैन और अजैन सभी के लिए उपयोगी होगा ऐसा मेरा दृढ विश्वास है।

मै चाहता हू कि देवेन्द्र मुनि साहित्य के क्षेत्र मे नया कीर्तिमान स्थापित करें। वह स्वस्थ रहकर निरन्तर प्रगति करते रहे यही मेरा हार्दिक आशीर्वाद है।

अहमदाबाद
सितम्बर १९७४

—पुष्कर मुनि

प्रस्तुत ग्रन्थ के अर्थ सहयोगी

श्रीमान मिश्रीलाल भूताजी जिनाणी, गढ सिवाना, जि० वाडमेर

श्रीमान	शाह देवीचन्द जी सिरेमल जी वाफणा	मोकलसर,	जि० वाडमेर
,, ,,	मिश्रीमल जी मूलचन्द जी पालरेचा	,,	,,
,, ,,	मुथा वादरमलजी मुलतानमलजी वाफणा	,,	,,
,, ,,	मेरामचन्दजी शकरलालजी हुण्डिया	,,	,,
,, ,,	मुथा हीराचन्द जी रतनचन्द जी वाफणा	,,	,,
,, ,,	हनुमानचन्द जी दलीचद जी पालरेचा	,,	,,
,, ,,	खीमराज जी देवीचद जी राका	,,	,,
,, ,,	मिश्रीमल मूला जी विनाकिया खाण्डप	,,	,,
,, ,,	पारसमल जी मिश्रीमल जी विनाकिया खाण्डप		,,
,, ,,	शातिलाल नरसिहमल जी सालेचा	भारण्डा	जि० वाडमेर
,, ,,	पुखराज जी भवरीलाल जी सालेचा	,,	,,
,, ,,	ऋषभचद वीरचद सालेचा	,,	,,
,, ,,	अखेराज आईदानमल सालेचा	,,	,,
,, ,,	सोहनराज घेवरचद सालेचा	,,	,,
,, ,,	दलीचद कालुसिह सिघवी	,,	,,
,, ,,	भीमराज जी लक्ष्मीचद जी सालेचा	मजल	,,
,, ,,	मिश्रीमल जी मोहनलाल जी सालेचा	,,	,,
,, ,,	प्रेमचद जी चुनीलाल जी सालेचा	,,	,,
,, ,,	मिश्रीमल जी चम्पालाल जी वेदमुथा	,,	,,
,, ,,	केशरीमल जी जसराज जी सालेचा	,,	,,
,, ,,	घेवरचद जी शातिलाल जी सालेचा	,,	,,
,, ,,	वागमल जी पुखराज जी श्री श्रीमाल	,,	,,
,, ,,	मगराजजी सोहनलालजी नागोतरा सोलकी	,,	,,
,, ,,	वस्तीमल जी पुखराज जी कोठारी	,,	,,
,, ,,	लालचद जी चम्पालाल जी सालेचा	,,	,,
,, ,,	तखतमल जी केशरीमल जी सालेचा	,,	,,

प्रकाशकीय

अपने प्रबुद्ध पाठको के करकमलो मे 'भगवान महावीर एक अनुशीलन' ग्रथ रत्न समर्पित करते हुए हमे सात्विक गौरवानुभूति हो रही है। भगवान महावीर विश्व की एक जगमगाती ज्योति थी, विमल विभूति थी, जिनका जीवन हिमाचल से भी अधिक उन्नत, सागर से भी अधिक गभीर, सूर्य से भी अधिक तेजस्वी और चांद से भी अधिक सौम्य था।

भगवान महावीर के, जीवन, दर्शन, धर्म और साधना पर निर्वाण शताब्दी के पावन अवसर पर अनेकानेक ग्रन्थ प्रकाशित करने की हमारी योजना थी। उसी योजना के अन्तर्गत अभी तक हमने अनेक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ प्रकाशित किये है। उसी लडो की कडी मे प्रस्तुत ग्रन्थ भी हैं। देवेन्द्र मुनि जी ने वर्षो के गभीर अध्ययन, चिन्तन, मनन के पश्चात् यह ग्रन्थ लिखा है, ग्रन्थ की भाषा बडी रोचक, आकर्षक व प्रवाहमयी है, शैली मधुर एव शोध-प्रधान है।

देवेन्द्र मुनि जी के सम्बन्ध मे हम विशेष क्या परिचय दे। वे राजस्थान-केसरी प्रसिद्ध वक्ता पूज्य गुरुदेव श्री पुष्कर मुनि जी महाराज के सुयोग्य शिष्य हैं। पूज्य गुरुदेव श्री के सतत सानिध्य मे रहकर निरन्तर चिन्तन-मनन-लेखन करना आपको प्रिय रहा है। आपने अनेक महत्त्वपूर्ण शोधप्रधान, चिन्तनप्रधान ग्रन्थो का प्रणयन किया है जो भारतीय भारती की अनमोल निधि है।

ग्रन्थ को मुद्रणकला की दृष्टि से सर्वाधिक सुन्दर बनाने का श्रेय हमारे अभिन्न साथी स्नेह सौजन्यमूर्ति श्रीचन्द जी सुराना सरस' को है। सुराना जी केवल नाम से ही 'सरस' नही, अपितु प्रकृति से भी अत्यधिक सरस है। वे हमारे है और हम उनके है अत आभार प्रदर्शित कर मैं उनके प्रति हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापित करता हू।

हमारे उदारमना दानी महानुभावो ने ग्रन्थ के प्रकाशन मे अपना उदार सहयोग प्रदान किया, उन दानी महानुभावो की यह भावना रही कि ग्रन्थ अमूल्य उपहार रूप मे ही वितरण किया जाय, जितना महानुभावो का हमे इस रूप मे सहयोग मिला उतनी प्रतियाँ हम अमूल्य दे रहे हैं। शेष प्रतियाँ उचित मूल्य मे वितरण की जाय ऐसा हमने निश्चय किया है।

हमारी स्वय की भावना कम से कम मूल्य मे ग्रन्थो को देने की रही है। हमने पूर्व अर्धमूल्य और लागत मूल्य पर पुस्तकें दी हैं। प्रस्तुत ग्रन्थ को भी हम कम से कम मूल्य मे देना चाहते थे, पर कागज के भयकर सकट ने और दिन-दूने रात-चौगुने बढते हुए भावो ने हमे विवश कर दिया। जितना प्रकाशन मे हमने व्यय का अनुमान लगाया था उससे तो कई गुना अधिक व्यय इसमे हुआ अत हमे इसका उचित मूल्य रखना पडा है।

हम श्री देवेन्द्र मुनि जी के अन्य मौलिक ग्रन्थ भी शीघ्र ही प्रकाशित करने जा रहे है उसके लिए उदारदानी महानुभावो का हार्दिक सहयोग अपेक्षित है। ग्रन्थालय को राजस्थानकेसरी जी म० का शुभाशीर्वाद प्राप्त है, अत हम निरन्तर प्रगति के पथ पर बढते रहेगे। इसी मगल आशा के साथ—

मत्री
श्री तारक गुरु जैन ग्रन्थालय

लेखक की कलम से

भगवान महावीर विश्व-इतिहास के एक अद्भुत महापुरुष हे। उनका लोकोत्तर व्यक्तित्व ओर कृतित्व 'अणोरणीयान्' ओर 'महतो महीयान्' हे। वे एक ऐसी विलक्षण हस्ती है, जिसका कोई जबाव नही है। वे अद्भुत, अनुपम और बेजोड हैं। आध्यात्म जगत मे महावीर जैसा विरल व्यक्तित्व ढूंढने पर भी दूसरा मिल नही सकता।

सूर्य आता है, सारा ससार प्रकाश से जगमगा उठता है और जब उसकी रश्मियाँ पुन लौट जाती है तो सारा ससार तिमिर से भर जाता हे। विश्व के रगमच पर यह अभिनय सदा होता रहता है। क्योकि, जो स्वय-प्रकाशी नही होते, वे पर-प्रकाश से चमकते है। इस दुनिया मे स्वय प्रकाशी बहुत कम व्यक्ति होते है, अधिकाश लोग पर-प्रकाशी होते हैं। भगवान् महावीर स्वय प्रकाशित थे। जन्म से लेकर परिनिर्वाण तक वे प्रकाश पुन्ज की भाति प्रकाश करते रहे और उसके पश्चात् उनके विमल-विचारो का आलोक भूले-भटके जीवन राहियो को सदा मार्ग दर्शन देता रहा है।

भगवान् महावीर के जीवन की कुछ घटनाएँ ऐसी है जो साधारण मानव के मष्तिष्क मे नही बैठती, सक्षेप मे उनका निराकरण इस प्रकार है—भगवान महावीर दीक्षा लेने के पश्चात एक स्थान से दूसरे स्थान पर परिभ्रमण करते है, जबकि अन्य बहुत से साधक, साधना काल मे परिव्रजन को छोडकर, एक स्थान पर रहते है। यह विपरीत क्रम महावीर की साधना मे लगता है, पर भगवान महावीर का स्पष्ट चितन था कि एक स्थान पर बैठने पर भी जिसका मन दिन-रात घूमता रहता है, वह घुमक्कड है, जिसका मन स्थिर है, वह तन से भले ही घूमे, पर मन से एक स्थान पर स्थिर है। अपरिग्रही एक स्थान पर स्थिर नही रह सकता। जो बन्धन से मुक्ति चाहता हो वह फिर किसी स्थान विशेष से कैसे अनुबद्ध रह सकता है? महावीर शरीरधारी थे। शरीरधारियो को कुछ न कुछ हलन-चलन करना ही होता है। वे विहार भी करते थे तो दिन-रात मे अधिक समय एक स्थान पर स्थिर होकर ध्यान भी करते थे, इस प्रकार उनकी साधना मे गति ओर स्थिति का मधुर समन्वय है।

भगवान महावीर ने अपने साधना काल के साढे बारह वर्ष के सुदीर्घकाल मे सिर्फ कुछ मिनिटो तक ही नीद ली है, यह सामान्य मानव के मस्तिष्क मे नही बैठता। पर, योगी के लिए यह असभव नही है। जो योगी अपनी चेतना को चिर जागृत कर लेता है, उसको फिर नीद की आवश्यकता नही होती, यदि होती है, तो अत्यधिक कम। शारीरिक परिवतन से भी कभी-कभी इस प्रकार का परिवर्तन हो जाता है। आधुनिक इतिहास की एक ज्वलत घटना है—आरमाडा जैविक्स लुहिखेर का जन्म सन् १७९१ मे फ्रास मे हुआ। जब उनकी दो वर्ष की नन्ही सी उम्र थी, तब उनके सिर पर कोई वस्तु गिर गई जिससे गहरी चोट आई। वे अस्पताल मे भर्ती किये गये और कई दिनो तक मूच्छित रहे, कुछ दिनो के पश्चात पुन चेतना लौटी, किन्तु नीद उनकी समाप्त हो गई। टेकुलाजर्स आदि नीद की दवाइया दी गई, पर नीद नही आई। साधारण रूप से नीद न आने पर सिर भारी हो जाता है, मन उद्विग्न हो जाता है और समूचे स्वास्थ्य पर उसका प्रभाव पडता है पर आरमाण्ड के स्वास्थ्य पर कोई प्रभाव नही पडा। उसने अध्ययन किया और प्रसिद्ध वकील बन गया। क्या यह सभव नही है कि भगवान महावीर के जीवन मे भी योग क्रिया से ऐसा कोई परिवर्तन हो गया हो, कि वर्षो तक नीद न लेने पर भी उन्हे कभी भी थकान का अनुभव नही हुआ।

लोग यह मानते है कि मानव पर्याप्त भोजन न करे, कुछ दिनो तक पानी न पीये और श्वास न ले, तो वह जीवित नही रह सकता। किन्तु भगवान महावीर ने अपने साधना काल मे चार-चार, और छह-छह मास तक भोजन और जल दोनो को त्याग कर यह प्रमाणित कर दिया कि आत्मा का सानिध्य प्राप्त होने पर स्थूल शरीर की आवश्यकताएँ अत्यधिक कम हो जाती है। यहाँ तक कि जीवन मे श्वास, भख-प्यास और नीद का स्थान गौण हो जाता हे। इसका तात्पर्य यह नही कि भगवान को भूख आदि नही लगती थी, और यह भी नही कि वे भूख प्यास का सदा दमन करते रहे, पर सत्य-तथ्य यह है कि वे आत्म-ध्यान मे इतने अधिक तल्लीन हो जाते थे कि उन्हे भूख और प्यास की अनुभूति ही नही होती थी।

आचार्य पतजलि ने लिखा है कि कठ-कूप मे सयम करने से भूख और प्यास निवृत्त हो जाती है। योग साधना की दृष्टि से कठ-कूप का अथ है जिह्वा के नीचे तन्तु है, तन्तु के नीचे कठ है और कठ के नीचे कूप है। और सयम का अर्थ है— धारणा, ध्यान और समाधि। धारणा, ध्यान और समाधि इन तीनो की सयुक्त सज्ञा है—'सयम'। जो कठ-कूप पर इनका सयम करता है, उसे भूख प्यास सताती नही है। शरीर को सताने के लिए उन्होने भूख-प्यास का दमन नही किया, पर ध्यान की सतत साधना से उसकी मात्रा स्वत कम हो गई थी।

मूल्यांकन

पूज्य श्री देवेन्द्र मुनिजी का 'भगवान महावीर एक अनुशीलन' ग्रन्थ देखा। भगवान महावीर का सुविस्तृत जीवन चरित्र लिखने का यह एक सुन्दर प्रयास है।

प्रथम खण्ड मे भगवान महावीर की पूर्वकालीन जैन परम्परा का जो चित्र दिया गया है वह लेखक की बहुश्रुतता व्यक्त करता है, किन्तु उसमे किये गये कई विधान ऐसे है जो सभी को मान्य होगे इसमे सन्देह है, किन्तु यह नि सकोच कहा जा सकता है कि वे विचार प्रेरक तो हैं ही।

भगवान महावीर कालीन समाज और सस्कृति का जो निरूपण हुआ है वह भी मूल आगम और चर्णि-भाष्य आदि टीकाओ के आधार पर हुआ है, अतएव ऐतिहासिक सदर्भ मे वह वस्तुत महावीरकालीन न होकर उसमे उनके बाद की सामग्री का भी सकलन हुआ है। सकलन की दृष्टि से इस सामग्री का अत्यधिक महत्त्व है ही, किन्तु इसे भी प्रबुद्ध पाठक वस्तुत महावीर कालीन समाज और सस्कृति का चित्रण मानने मे सकोच करेगा। यह प्रक्रिया कई लेखको ने अपनाई है किन्तु अब समय आ गया है जब इनका उपयोग विवेक से करना आवश्यक हो गया है। जैनेतर लेखको को इस सामग्री का ज्ञान हो, यह अत्यन्त जरूरी था, अतएव इस दृष्टि मे यहाँ सकलित सामग्री कई विद्वानो की कई प्रकार की जिज्ञासा को तृप्त करे ऐसी है—इसमे किञ्चित् मात्र भी सन्देह नही। अतएव इस सकलन के लिए विद्वान लोग मुनिजी के ऋणी रहेगे।

'भगवान महावीर के समकालीन धर्म और धर्मनायक' इस प्रकरण मे सक्षेप से तत्कालीन धम और धर्मनायको का खास कर जैन आगम और बौद्धपिटको के आधार पर निरूपण हुआ है, जो उचित ही है, किन्तु इसकी पुष्टि मे रामायण तथा महाभारत का उपयोग किया जाता तो सोने मे सुगन्ध का काम होता। 'भारतीय साहित्य मे भगवान महावीर'—इस प्रकरण मे प्राचीन काल से लेकर आज तक जितनी सामग्री भगवान महावीर चरित्र के लिए अनेक भाषाओ मे उपस्थित है—जितने ग्रन्थ लिखे गये हैं—उनका सक्षेप मे समीक्षात्मक अध्ययन मुनिजी ने प्रस्तुत किया है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि प्रस्तुत महावीर चरित्र लिखने के लिए उन्होने कोई भी सामग्री नही छोडी है।

द्वितीय खण्ड मे भगवान महावीर के पूर्वभव, गृहस्थ-जीवन, साधक जीवन, गणधरवाद और तीर्थंकर जीवन का विस्तार से विवेचन अनुशीलन किया गया है। इनमे विविध ग्रन्थो मे वर्णित एक-एक घटना का तुलनात्मक दृष्टि से अध्ययन किया गया है। वस्तुत ग्रन्थ का यही अश भगवान महावीर-चरित्र के अब तक लिखे गये आधुनिक ग्रन्थो मे इस ग्रन्थ को श्रेष्ठ ग्रन्थ की कोटि मे रख दे, ऐसा है। इसी सामग्री के आधार पर यह निश्चय किया जा सकता है कि भगवान महावीर चरित्र के लेखको ने समय-समय पर इस चरित्र को क्या रूप दिया, इस सामग्री का सकलन एक विद्वान को शोभा दे इस तरह हुआ ही है। इतना ही नही मुनिजी की लेखन-शैली भी काव्यात्मक है, रोचक है और भगवान महावीर के अन्तस्तल तक पहुचकर महावीर की महत्ता को स्फुट करने मे समर्थ भी हुई है।

पूज्य देवेन्द्र मुनिजी ने कई ग्रन्थ लिखे हैं, मेरा उनसे निवेदन है कि आगे भी ऐसे ही महत्वपूर्ण अनेक ग्रन्थ लिखते रहे। वे युवा हैं और विद्यारत हैं। समाज को उनसे बहुत कुछ मिलेगा ऐसा मुझे विश्वास है।

दि० २१-८-७४
अहमदाबाद

—दलसुख मालवणिया
निदेशक
ला० द० भारतीय सस्कृति विद्यामन्दिर, अहमदाबाद

भगवान महावीर के समय ध्यान की विविध परम्पराएँ थी। कितने ही साधको का यह आग्रह था कि अमुक आसन के बिना ध्यान नही हो सकता, परन्तु महावीर ध्यान के सम्बन्ध मे आसनो के आग्रह से मुक्त थे। बैठकर ध्यान करना सरल है, सुगम है, किन्तु खडे होकर ध्यान करना बहुत ही कठिन है। भगवान महावीर अधिकतर खडे होकर ध्यान करते थे। वे शरीर को सीधा और आगे की ओर कुछ झुका कर रखते थे। ध्यान के लिए शिथिलीकरण आवश्यक है। यही कारण है कि वे प्राय कायोत्सर्ग मुद्रा मे अधिक ध्यान किया करते थे। कायोत्सर्ग मे केवल सूक्ष्म श्वास के अतिरिक्त अन्य सभी शारीरिक, वाचिक और मानसिक क्रियाओ का विसर्जन स्वत हो जाता है।

कितने ही साधक ध्यान के लिए निश्चित समय के आग्रही होते थे, पर भगवान महावीर इस आग्रह से भी मुक्त थे। वे दिन हो या रात्रि, प्रात हो या सध्या, मध्याह्न हो या अपरान्ह प्राय सभी समय वे ध्यान मे तल्लीन रहा करते थे। सालम्बन और निरालम्बन दोनो प्रकार का ध्यान करते थे। वे कभी मन को एकाग्र करने की दृष्टि से घण्टो तक एक दीवाल पर अनिमेष दृष्टि से देखकर ध्यान करते थे। इस प्रकार की साधना से मन तो उनका एकाग्र हुआ ही, साथ ही उनकी आँखो मे वह अद्‌भुत ज्योति पैदा हो गई कि साधारण व्यक्ति उनके सामने आँख उठाकर भी देख नही सकता था। भगवान कभी कभी ऊर्ध्व अध और तियक् लोगो को लक्ष्य बनाकर भी ध्यान करते थे। ऊर्ध्वलोक के द्रव्यो का साक्षात्‌कार करने के लिए वे ऊर्ध्व-दिशापाती ध्यान करते थे। अधोलोक के द्रव्यो का साक्षात्कार करने के लिए अधोदिशापाती ध्यान करते थे। वे कभी द्रव्य का ध्यान करते थे और कभी पर्याय का ध्यान करते थे। कभी एक शब्द का ध्यान करते थे और कभी दूसरे शब्द का, इस प्रकार उनके परिवर्तन युक्त ध्यान के प्रयोग चलते थे।

भगवान ध्यान के लिए एकान्त शान्त स्थान अधिक पसन्द करते थे। वे ध्यान मे विविध आसनो का भी प्रयोग करते थे। वीरासन, गोदोहिकासन, उत्कटिकासन आदि मुख्य आसन थे। स्मरण रहे छद्‌मस्थ अवस्था मे उन्होने कभी भी पद्मासन और पर्यङ्कासन से ध्यान नही किया। इस प्रकार वे उग्र तपस्वी थे, तो दूसरी ओर उत्कृष्ट ध्यानी भी थे। तप और ध्यान को उन्होने पृथक्-पृथक नही माना था। वे एक दूसरे के पूरक थे। देखिए उनके साधना काल का वर्णन।

भगवान महावीर को साधनाकाल मे अनेक उपसर्ग आए, पर उनके शरीर मे एक विशिष्ट प्रकार की सरोहण शक्ति थी, जिसके कारण उनके शरीर के घाव शीघ्र भर जाते थे।

भगवान महावीर के जीवन को जो लोग केवल इतिहास की दृष्टि से ही

देखते हैं, उन्हें भगवान के जीवन की पूर्ण छवि के दर्शन नहीं हो सकते। मैंने इतिहास पुराण और अन्य सामग्री के आधार से प्रस्तुत ग्रन्थ तैयार किया है।

प्रस्तुत ग्रन्थ

श्रमण भगवान महावीर पर शोध प्रबन्ध लिखने का विचार मेरे अन्तर्मानस मे सन् १९६५ मे जगा था। मैंने उसी समय लिखना प्रारम्भ किया। तीनसौ पृष्ठ लिखने पर भी मुझे आत्म-सन्तोष नही हुआ। ऐसा अनुभव हुआ कि जैसा चाहिए वैसा मैं नही लिख पाया हू। यदि पाँच-दस ग्रन्थो के आधार से ग्रन्थ लिखकर पूर्ण भी कर दिया गया, तो उसकी अपूर्णता सदा मन मे खटकती रहेगी अत महावीर पर जो आगे लिखना था, उसको स्थगित कर प्राचीन और अर्वाचीन ग्रन्थो का अध्ययन करने लगा। यह सत्य है कि अध्ययन के साथ ही कल्पसूत्र पर विवेचन, 'ऋषभदेव एक परिशीलन', 'भगवान पार्श्व एक समीक्षात्मक अध्ययन' 'भगवान अरिष्टनेमि और कर्मयोगी श्रीकृष्ण,' 'धर्म और दर्शन', 'साहित्य और सस्कृति' आदि शोध प्रधान ग्रन्थ लिखे। आचार्य हस्तीमल जी महाराज की प्रबल प्रेरणा से 'जैन धर्म के मौलिक इतिहास' का सम्पादन व लेखन भी किया। चिन्तन प्रधान व कहानी तथा रूपक साहित्य भी लिखा।

सन् १९७२ मे श्रमण सघीय राजस्थान प्रान्तीय सन्त-सम्मेलन साण्डेराव (राजस्थान) मे हुआ। परम श्रद्धेय सद्गुरुवर्य को शिष्य समुदाय सहित कादावाडी बम्बई का शानदार वर्षावास पूर्ण कर उसमे उपस्थित होना पडा। सन्त सम्मेलन ने सर्वानुमति से प्रस्ताव पारित कर मुझे महावीर पर शोध प्रबन्ध लिखने के लिए कहा, मैंने प्रस्ताव को सहर्ष स्वीकार कर लिया। पूज्य गुरुवर्य का १९७२ का वर्षावास जोधपुर था। वर्षावास मे महावीर पर पुन नवीन रूप से लेखन प्रारभ किया। लिखने के पूर्व मन मे यह कल्पना थी कि वर्षावास मे ही ग्रन्थ पूर्ण हो जायेगा। मध्यान्ह मे बारह से चार तक मौन रखकर महावीर पर लिखता और पढता रहा, पर ग्रन्थ का एक विभाग भी पूर्ण नही हो सका, तीन विभाग अवशेष रह गये। वर्षावास के पश्चात् कुछ समय तक जोधपुर के उपनगरो मे रहकर महावीर ग्रन्थ को पूर्ण करने का मैंने प्रयास किया, परन्तु वह पूर्ण नहीं हो सका, विहार मे भी जब समय मिला महावीर पर लिखता रहा। सन् १९७३ का वर्षावास अजमेर हुआ। चार माह तक महावीर पर कार्य चलता रहा, और वर्षावास के पश्चात् भी अहमदाबाद तक। लगभग तीन वर्ष प्रस्तुत ग्रन्थ के लेखन मे लगे हैं और दस वर्ष महावीर सम्बन्धी साहित्य के अध्ययन मे। जितने ग्रन्थो का उपयोग प्रस्तुत ग्रन्थ मे हुआ है, उससे भी बहुत अधिक ग्रन्थ मुझे पढने पडे है। मैने अत्यन्त तन्मयता और श्रद्धा

के साथ लिखने का प्रयास किया है तथापि कितने ही ग्रन्थो की उपलब्धि न होने के कारण और लम्बे-लम्बे विहार, स्वास्थ्य व सामाजिक कार्यो मे व्यस्त रहने से कुछ कमियाँ प्रस्तुत ग्रन्थ मे रही है, जिनका मुझे स्वय भी ज्ञान हे, तथापि जो कुछ भी लिख गया हू वह कहा तक उचित है, यह निर्णय तो प्रबुद्ध पाठक ही करेंगे ।

शोध प्रबन्ध लिखने की दो शैलियाँ वर्तमान मे प्रचलित है । कितने ही लेखक अत्यन्त विस्तार से लिखना पसन्द करते है और कितने ही अत्यन्त सक्षिप्त मे । मैंने प्रस्तुत ग्रन्थ मे मध्यम शैली का उपयोग किया है । मेरा यह अनुभव है कि अत्यन्त विस्तार की शैली मे नीरसता आ जाती है और अत्यन्त सक्षिप्त शैली मे अर्थ-बोध नही हो पाता है । इसलिए मध्यम शैली ही अधिक उपयोगी है और इसी दृष्टि से मैंने इसका उपयोग किया है ।

वर्तमान युग समन्वय का युग है, खण्डन-मण्डन का नही । खण्डन-मण्डन की नीति मुझे तनिक भी पसन्द नही रही है । साम्प्रदायिक भावना को उभारना मैं कदापि उचित नही मानता । मुझे लिखते हुए अत्यन्त परिताप होता है कि आधुनिक लेखक जो दृष्टिसम्पन्न है, जिनसे समन्वय की आशा की जा सकती है, वे भी सम्प्रदायवाद के रोग से मुक्त नही है । जो लेखक दिगम्बर परम्परा के रहे है, उन्होने श्वेताम्बर परम्परा की दृष्टि से महावीर को चित्रित करने का प्रयास नही किया है और जो श्वेताम्बर परम्परा के हैं, उन्होने दिगम्बर परम्परा की दृष्टि से महावीर को देखने का कष्ट नही किया है यहा तक कि कितने ही लेखक एक दूसरे के खण्डन मे भी लिखते रहे है । मैंने सर्वत्र समन्वय की दृष्टि को प्रमुखता दी है । प्रामाणिकता के साथ उन ग्रथो का उपयोग किया है । मेरा यह स्पष्ट मन्तव्य है कि इससे दृष्टि मे विशालता आती है और समन्वय की भावना पैदा होती है । और महापुरुष का विराट् रूप भी सामने आता है ।

मुझ मे समन्वय दृष्टि से चिन्तन करने का श्रेय भगवान महावीर की अनेकान्त दृष्टि को तो है ही, साथ ही उस दृष्टि का परिबोध कराने वाले मेरे परमाराध्य सद्गुरुवर्य राजस्थानकेसरी, प्रसिद्धवक्ता पूज्य श्री पुष्कर मुनि जी महाराज को है । मैं अपना परम सौभाग्य मानता हू कि उनका सतत मार्गदर्शन मुझे सहज-सुलभ रहा है । उनकी अपार कृपा दृष्टि के कारण ही मैं प्रगति के पथ पर निरन्तर बढ रहा हू, उनकी असीम कृपा को ससीम शब्दो मे किस प्रकार व्यक्त किया जा सकता है, ग्रन्थ मे जो कुछ भी नवीनता व श्रेष्ठता है, वह उन्ही की कृपा का प्रतिफल हे ।

परमादरणीया प्रतिभामूर्ति मातेश्वरी महासती श्री प्रभावती जी महाराज व ज्येष्ठ भगिनी परम विदुषी साध्वीरत्न, साहित्यरत्न श्री पुष्पावती जी को भी विस्मृत

दखते हैं, उन्हें भगवान के जीवन की पूर्ण छवि के दशन नही हो सकते । मैंने इतिहास पुराण और अन्य सामग्री के आधार से प्रस्तुत ग्रन्थ तैयार किया है ।

प्रस्तुत ग्रन्थ

श्रमण भगवान महावीर पर शोध प्रवन्ध लिखने का विचार मेरे अन्तर्मानस मे सन् १६६५ मे जगा था । मैंने उसी समय लिखना प्रारम्भ किया । तीनसौ पृष्ठ लिखने पर भी मुझे आत्म-सन्तोष नही हुआ । ऐसा अनुभव हुआ कि जैसा चाहिए वैसा मैं नही लिख पाया हू । यदि पाँच-दस ग्रन्थो के आधार से ग्रन्थ लिखकर पूर्ण भी कर दिया गया, तो उसकी अपूर्णता सदा मन मे खटकती रहेगी अत महावीर पर जो आगे लिखना था, उसको स्थगित कर प्राचीन और अर्वाचीन ग्रन्थो का अध्ययन करने लगा । यह सत्य है कि अध्ययन के साथ ही कल्पसूत्र पर विवेचन, 'ऋषभदेव एक परिशीलन', 'भगवान पार्श्व एक समीक्षात्मक अध्ययन' 'भगवान अरिष्टनेमि और कर्मयोगी श्रीकृष्ण,' 'धर्म और दर्शन', 'साहित्य और संस्कृति' आदि शोध प्रधान ग्रन्थ लिखे । आचार्य हस्तीमल जी महाराज की प्रवल प्रेरणा से जैन धर्म के मौलिक इतिहास' का सम्पादन व लेखन भी किया । चिन्तन प्रधान व कहानी तथा रूपक साहित्य भी लिखा ।

सन् १६७२ मे श्रमण सघीय राजस्थान प्रान्तीय सन्त-सम्मेलन साण्डेराव (राजस्थान) मे हुआ । परम श्रद्धेय सद्गुरुवर्य को शिष्य समुदाय सहित कादावाडी वम्बई का शानदार वर्षावास पूर्ण कर उसमे उपस्थित होना पडा । सन्त सम्मेलन ने सर्वानुमति से प्रस्ताव पारित कर मुझे महावीर पर शोध प्रबन्ध लिखने के लिए कहा, मैंने प्रस्ताव को सहर्ष स्वीकार कर लिया । पूज्य गुरुवर्य का १६७२ का वर्षावास जोधपुर था । वर्षावास मे महावीर पर पुन नवीन रूप से लेखन प्रारभ किया । लिखने के पूव मन मे यह कल्पना थी कि वर्षावास मे ही ग्रन्थ पूण हो जायेगा । मध्यान्ह मे बारह से चार तक मौन रखकर महावीर पर लिखता और पढता रहा, पर ग्रन्थ का एक विभाग भी पूण नही हो सका, तीन विभाग अवशेष रह गये । वर्षावास के पश्चात् कुछ समय तक जोधपुर के उपनगरो मे रहकर महावीर ग्रन्थ को पूर्ण करने का मैने प्रयास किया, परन्तु वह पूण नही हो सका, विहार मे भी जब समय मिला महावीर पर लिखता रहा । सन् १६७३ का वर्षावास अजमेर हुआ । चार माह तक महावीर पर कार्य चलता रहा, और वर्षावास के पश्चात् भी अहमदाबाद तक । लगभग तीन वर्ष प्रस्तुत ग्रन्थ के लेखन मे लगे है और दस वर्ष महावीर, सम्बन्धी साहित्य के अध्ययन मे । जितने ग्रन्थो का उपयोग प्रस्तुत ग्रन्थ मे हुआ है, उससे भी बहुत अधिक ग्रन्थ मुझे पढने पडे है । मैने अत्यन्त तन्मयता और श्रद्धा

के साथ लिखने का प्रयास किया है तथापि कितने ही ग्रन्थो की उपलब्धि न होने के कारण और लम्बे-लम्बे विहार, स्वास्थ्य व सामाजिक कार्यो मे व्यस्त रहने से कुछ कमियाँ प्रस्तुत ग्रन्थ मे रही है, जिनका मुझे स्वय भी ज्ञान है, तथापि जो कुछ भी लिख गया हू वह कहा तक उचित है, यह निर्णय तो प्रबुद्ध पाठक ही करेंगे।

शोध प्रबन्ध लिखने की दो शैलियाँ वर्तमान मे प्रचलित है। कितने ही लेखक अत्यन्त विस्तार से लिखना पसन्द करते है और कितने ही अत्यन्त सक्षिप्त मे। मैंने प्रस्तुत ग्रन्थ मे मध्यम शैली का उपयोग किया है। मेरा यह अनुभव है कि अत्यन्त विस्तार की शैली मे नीरसता आ जाती है और अत्यन्त सक्षिप्त शैली मे अर्थ-बोध नही हो पाता है। इसलिए मध्यम शैली ही अधिक उपयोगी है और इसी दृष्टि से मैंने इसका उपयोग किया है।

वर्तमान युग समन्वय का युग है, खण्डन-मण्डन का नही। खण्डन-मण्डन की नीति मुझे तनिक भी पसन्द नही रही है। साम्प्रदायिक भावना को उभारना मैं कदापि उचित नही मानता। मुझे लिखते हुए अत्यन्त परिताप होता है कि आधुनिक लेखक जो दृष्टिसम्पन्न है, जिनसे समन्वय की आशा की जा सकती है, वे भी सम्प्रदायवाद के रोग से मुक्त नही है। जो लेखक दिगम्बर परम्परा के रहे है, उन्होने श्वेताम्बर परम्परा की दृष्टि से महावीर को चित्रित करने का प्रयास नही किया है और जो श्वेताम्बर परम्परा के हैं, उन्होने दिगम्बर परम्परा की दृष्टि से महावीर को देखने का कष्ट नही किया है यहा तक कि कितने ही लेखक एक दूसरे के खण्डन मे भी लिखते रहे है। मैंने सर्वत्र समन्वय की दृष्टि को प्रमुखता दी है। प्रामाणिकता के साथ उन ग्रथो का उपयोग किया है। मेरा यह स्पष्ट मन्तव्य है कि इससे दृष्टि मे विशालता आती है और समन्वय की भावना पैदा होती है। और महापुरुष का विराट् रूप भी सामने आता है।

मुझ मे समन्वय दृष्टि से चिन्तन करने का श्रेय भगवान महावीर की अनेकान्त दृष्टि को तो है ही, साथ ही उस दृष्टि का परिबोध कराने वाले मेरे परमाराध्य सद्गुरुवर्य राजस्थानकेसरी, प्रसिद्धवक्ता पूज्य श्री पुष्कर मुनि जी महाराज को है। मैं अपना परम सौभाग्य मानता हू कि उनका सतत मार्गदर्शन मुझे सहज-सुलभ रहा है। उनकी अपार कृपा दृष्टि के कारण ही मैं प्रगति के पथ पर निरन्तर बढ रहा हू, उनकी असीम कृपा को ससीम शब्दो मे किस प्रकार व्यक्त किया जा सकता है, ग्रन्थ मे जो कुछ भी नवीनता व श्रेष्ठता है, वह उन्ही की कृपा का प्रतिफल है।

परमादरणीया प्रतिभामूर्ति मातेश्वरी महासती श्री प्रभावती जी महाराज व ज्येष्ठ भगिनी परम विदुषी साध्वीरत्न, साहित्यरत्न श्री पुष्पावती जी को भी विस्मृत

नही कर सकता जिनका हार्दिक शुभाशीर्वाद व प्रबल प्रेरणा रही है जिस से कि मैं ग्रन्थ को शीघ्र पूर्ण कर सका हू ।

स्नेहमूर्ति सहृदयी श्री हीरा मुनि जी, स्नेह-सौजन्यमूर्ति श्री गणेश मुनि जी, जिनेन्द्र मुनि जी व प्रवीण मुनि जी की हार्दिक सद्भावना भी सतत मेरे साथ रही है । साथ ही रमेश मुनि, राजेन्द्र मुनि और दिनेश मुनि, जो निरन्तर मेरी सेवा करते रहे है, उनकी सद्भावना व सेवा का सहयोग न मिला होता, तो ग्रन्थ इतना शीघ्र पूर्ण नही हो सकता था । परम स्नेही विद्‌दवर्य मुनिप्रवर श्री अभयसागर जी महाराज को भी मैं विस्मृत नही कर सकता जिन्होने मुझे अप्राप्य ग्रन्थ प्रदान कर अपने विराट हृदय का परिचय दिया ।

भारतीय साहित्य के प्रकाण्ड-पण्डित दलसुखभाई मालवणिया ने मेरे स्नेह भरे आग्रह को सन्मान देकर महावीर पर अपनी लिखी हुई अपूर्ण पाण्डुलिपि मुझे भिजवाई । उससे मुझे लिखने मे नई दृष्टि मिली । मैने पण्डित जी की अनुमति से उसका यथा सम्भव उपयोग भी किया है । उनका स्नेह सौजन्यपूर्ण सद्व्यवहार सदा स्मृति पटल पर चमकता रहेगा ।

तीर्थंकर खण्ड लिखते समय पुरातत्ववेत्ता मुनि श्री कल्याण विजय जी, विजय इन्द्र सूरि जी एव डा० मुनि नगराज जी के ग्रन्थ भी उपयोगी रहे है ।

परम स्नेही कलम-कलाधर श्रीयुत श्रीचन्द जी सुराना 'सरस' का हार्दिक सहयोग भी भुलाया नही जा सकता, अत्यधिक समयाभाव व अन्यसाहित्यिक लेखन कार्य मे व्यस्त होने पर भी ग्रन्थ की पाण्डुलिपि का आदि से अन्त तक अवलोकन कर आवश्यक स्थलो पर भाव-भाषा की दृष्टि से परिष्कार भी किया, तथा ग्रन्थ का प्रूफ सशोधन कर मुद्रणकला की दृष्टि से अधिकाधिक सुन्दर बनाने का प्रयास भी किया है । उनका व्यापक सौहार्द और उदार सहयोग सदा अविस्मरणीय रहेगा ।

इतिहास के उद्‌भट विद्वान सुश्रावक श्री अगरचन्द जी नाहटा ने पाण्डुलिपि का अवलोकन कर अपने अनमोल सुझाव दिये है, साथ ही अनेक विज्ञो के विचारो का व उनके ग्रन्थो का उपयोग मैने किया है, उन सभी ग्रन्थ और ग्रन्थकारो का मैं ऋणी हू ।

ग्रन्थ पर मौलिक व चिन्तन-प्रधान प्रस्तावना लिखने वाले डा० प्रेम सुमन जैन का भी मै कृतज्ञ हू जिन्होने मेरे आग्रह से बहुत ही शीघ्र प्रस्तावना लिखकर अपनी आत्मीयता से अभिषिक्त किया है ।

आशा है मेरा यह प्रयत्न जन-जन को उपयोगी व लाभप्रद होगा ।

अहमदाबाद —देवेन्द्र मुनि

था। समाज मे केवल स्त्री-पुरुप के युगल ही होते थे। क्रमश इस स्थिति मे भी परिवर्तन हुआ। कुलकर नाभि और उनकी पत्नी मरुदेवी के जो युगल हुआ उसको प्रथम वार नाम प्रदान किये गये। पुत्र का नाम ऋपभदेव और सहजात कन्या का नाम सुमगला रखा गया। इस घटना विशेप के कारण पृथक-पृथक समूहो के अलग-अलग वश बनना प्रारम्भ हो गये।

भगवान ऋपभदेव के जीवन-क्रम ने मानव-सभ्यता को एक नया मोड दिया। उनके पुत्र भरत, बाहुबलि एव सुपुत्री ब्राह्मी और सुन्दरी ने नयी वैवाहिक परम्परा को अपने सम्बन्धो द्वारा पुष्ट किया। ऋपभदेव के राजा बनने पर राज्य व्यवस्था भी पनपी। नगर एव ग्रामो का निर्माण तथा उनकी सुरक्षा आदि की व्यवस्था की गयी। खाद्य समस्या सामने आने पर कृपि कार्य को प्रधानता दी गयी। तथा पाक-विद्या का श्रीगणेश होने से पात्र-निर्माण कार्य द्वारा शिल्प का भी प्रारम्भ हुआ। कला, लिपि एव विज्ञान (गणित) की शिक्षा ब्राह्मी एव सुन्दरी की शिक्षा से प्रारम्भ हुई। धीरे-धीरे इनका समाज मे भी विकास हुआ। ऋपभदेव-कालीन इन सामाजिक व्यवस्था की उन्नति के समय व्यक्तिवाद लगभग लुप्त हो गया और समष्टि उभर कर सामने आयी। इससे मनुष्य का जीवन सुखमय तो बना, किन्तु उसमे ममत्व, स्वार्थ, प्रतिस्पर्धा आदि विकार भी पनपे। इससे लोकैपणा और धनैपणा भी विकसित हुई।

प्राक्कथन

भगवान महावीर का जीवन-दर्शन जैन सस्कृति के विकास के साथ जुडा हुआ है। अत महावीर के व्यक्तित्व को समझने के लिए धर्म एव दर्शन की सूक्ष्म व्याख्या जितनी आवश्यक है, उतना ही इतिहास और साहित्य का सूक्ष्म तुलनात्मक परिशीलन करना। जैन इतिहास की परते उघाडने से अनेक तथ्य हाथ लगे है, जिन्होने जैन धर्म एव उसके प्रवर्तको के स्वरूप को पर्याप्त स्पष्ट किया है। आदरणीय श्री देवेन्द्र मुनि के गहन अध्ययन की परिचायक प्रस्तुत कृति—'भगवान महावीर एक अनुशीलन' इसी दिशा मे एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है।

तीर्थङ्कर परम्परा

जैन-मान्यता के अनुसार सृष्टि शाश्वत है। सुख से दुख की ओर, और दुख से सुख की ओर विश्व का क्रमश अवसर्पण तथा उत्सर्पण होता रहता है। अवसर्पण की आदि सभ्यता अत्यन्त सरल और सहज थी। किसी तरह की कौटुम्बिक व्यवस्था न होने से कोई उत्तरदायित्व नही था। अत· कोई व्यग्रता नही थी। जैन-परम्परा मे ऐसी मान्यता है कि उस समय जीवन की आवश्यकताओ की पूर्ति कल्पवृक्षो से हो जाती थी। प्रकृति और मानवीय तत्त्वो का यह ऐसे समिश्रण का युग था जहा धर्म-साधना, पाप-पुण्य, ऊँच-नीच आदि द्वन्दात्मक प्रवृत्तियो का अस्तित्व नही था। जैन पुराणकारो ने ऐसी परिस्थिति के युग को भोगभूमि-व्यवस्था का युग कहा है।

किन्तु जब अवसर्पिणी कालचक्र का दूसरा और लगभग तीसरा विभाग क्रमश व्यतीत हुआ तो कालप्रभाव से सभी बाते ह्रासोन्मुख होने लगी। कल्पवृक्षो को लेकर छीना-झपटी होने लगी। इसलिए इस असुरक्षा की स्थिति ने सुरक्षा एव सहयोग का आह्वान किया। इससे सामूहिक व्यवस्था प्रतिफलित हुई, जिसे जैन-साहित्य मे 'कुल' नाम दिया गया और जिसने इस व्यवस्था का श्रीगणेश किया उसे 'कुलकर' कहा गया। जैन-परम्परा मे इस तरह के १४ कुलकरो की मान्यता है। प्रत्येक कुलकर ने व्यवस्था को गति प्रदान की। अतिम कुलकर नाभि थे। इनके समय तक विभाजन की व्यवस्था के साथ-साथ सामान्य दण्ड-व्यवस्था का भी प्रारम्भ हो चुका

था। समाज मे केवल स्त्री-पुरुप के युगल ही होते थे। क्रमश इस स्थिति मे भी परिवर्तन हुआ। कुलकर नाभि और उनकी पत्नी मरुदेवी के जो युगल हुआ उसको प्रथम बार नाम प्रदान किये गये। पुत्र का नाम ऋपभदेव और सहजात कन्या का नाम सुमगला रखा गया। इस घटना विशेप के कारण पृथक-पृथक समूहो के अलग-अलग वश बनना प्रारम्भ हो गये।

भगवान ऋपभदेव के जीवन-क्रम ने मानव-सभ्यता को एक नया मोड दिया। उनके पुत्र भरत, बाहुबलि एव सुपुत्री ब्राह्मी और सुन्दरी ने नयी वैवाहिक परम्परा को अपने सम्बन्धो द्वारा पुष्ट किया। ऋपभदेव के राजा बनने पर राज्य-व्यवस्था भी पनपी। नगर एव ग्रामो का निर्माण तथा उनकी सुरक्षा आदि की व्यवस्था की गयी। खाद्य समस्या सामने आने पर कृपि कार्य को प्रधानता दी गयी। तथा पाक-विद्या का श्रीगणेश होने से पात्र-निर्माण कार्य द्वारा शिल्प का भी प्रारम्भ हुआ। कला, लिपि एव विज्ञान (गणित) की शिक्षा ब्राह्मी एव सुन्दरी की शिक्षा से प्रारम्भ हुई। धीरे-धीरे इनका समाज मे भी विकास हुआ। ऋपभदेव-कालीन इन सामाजिक व्यवस्था की उन्नति के समय व्यक्तिवाद लगभग लुप्त हो गया और समष्टि उभर कर सामने आयी। इससे मनुष्य का जीवन सुखमय तो बना, किन्तु उसमे ममत्व, स्वार्थ, प्रतिस्पर्धा आदि विकार भी पनपे। इससे लोकैपणा और धनैपणा भी विकसित हुई।

इस प्रकार मानव सस्कृति और सभ्यता का जैन-परम्परा मे जो चित्र उपस्थित किया गया है- वह निराधार नही है। जैन पुराणकारो ने जिस परिस्थिति के युग को भोगभूमि का नाम दिया है वह भारतीय सभ्यता के उस युग का द्योतक है, जब कोई कौटुम्बिक व्यवस्था नही थी। दैनिक आवश्यकताओ की पूर्ति जब वृक्षो से की जाती थी। जैन परम्परा ने उन्हे कल्पवृक्ष नाम देकर व्यक्ति के अपने पुरुषार्थ की सार्थकता की सूचना दी है। और जिसे जैन-साहित्य मे कर्मभूमि कहा गया है वह आधुनिक सभ्यता का प्रारम्भिक युग है। इसीयुग मे मनुष्य ने कृषि, असि, मपि, शिल्प आदि जीविका के कार्यो को करना प्रारम्भ किया, जिसका प्रवर्तक जैन परम्परा ऋपभदेव को मानती है।

भगवान ऋपभदेव के समय का मानव अत्यन्त सरल था। ऋपभदेव ने उसे कर्म करने की प्रेरणा दी। उसकी बुद्धि को स्फुरित किया। पुरुषार्थ को जगाया। तब वन-सभ्यता मे जीने वाला मानव नगर-सभ्यता के निर्माण मे जुट गया। धीरे-धीरे वह समृद्धि का स्वामी हो गया और सस्कृति का वाहक भी। इस विकास क्रम से प्रतीत होता है कि ऋपभदेव सिन्धु-सभ्यता (जो नगर सभ्यता थी) के पूर्व अपनी

साधना मे लीन थे। उनकी प्रेरणा और तत्कालीन मानव का पुरुषार्थ ही सिन्धु-सभ्यता के निर्माण की आधारशिला रहा होगा।

महावीर के जीवन-दर्शन की पूर्वपरम्परा मे ऋषभदेव के अतिरिक्त बीच के २२ तीर्थङ्करो के चिन्तन और साधना का भी महत्त्वपूण योग रहा है। ऋषभदेव के बाद के तीर्थंकर मानव-सभ्यता के विभिन्न कालो से जुडे हुए है। नौवे तीर्थङ्कर सुविधिनाथ (पुष्पदन्त) तक का काल सिन्धु-सभ्यता के विकास का काल माना जा सकता है। डा० ज्योतिप्रसाद जैन ने अपने ग्रन्थ—"भारतीय इतिहास एक दृष्टि' मे इस प्रकार की कुछ समानताओ का सकेत किया है।

सिन्धु घाटी सभ्यता मे प्राप्त अवशेषो के आधार पर ऐसा प्रतीत होता है कि उसके पुरस्कर्त्ता प्राचीन विद्याधर जाति के लोग थे तथा उनके धार्मिक मार्ग-दर्शक मध्यप्रदेश के वे मानववशी मूल आर्य थे, जो श्रमण-सस्कृति के उपासक थे। सभवनाथ का विशेष चिन्ह अश्व है और सिन्धुदेश चिरकाल तक अपने सैन्धव अश्वो के लिए प्रसिद्ध रहा है। मौर्यकाल तक सिन्ध मे एक सम्भूतक जनपद और साभव (सबुज) जाति के लोग विद्यमान थे, जो बहुत सम्भव है सम्भवनाथ तीर्थंकर की परम्परा से सम्बन्धित रहे हो। इसीप्रकार सिन्धु सभ्यता से नागफण के छत्र से युक्त कलाकृतियाँ भी प्राप्त हुई है, जो सातवे तीर्थंकर सुपार्श्व की हो सकती है। इनका चिह्न स्वस्तिक है और तत्कालीन सिन्धु घाटी मे स्वस्तिक एक अत्यन्त लोकप्रिय चिन्ह रहा है। इस प्रकार जैन इतिहास मे चौबीस तीर्थकरो की परम्परा केवल मिथ्या नही है। उसका अपना ऐतिहासिक और आध्यात्मिक महत्व है। यह बात अलग है कि इतिहास की परतो मे अभी वह छुपा पडा है।

मानव सभ्यता के साथ-साथ श्रमण-सस्कृति के इस तालमेल के कारण भारतीय महापुरुषो का सम्बन्ध एक दूसरे से बना रहा है, चाहे वे श्रमण-परम्परा के हो अथवा वैदिक-परम्परा के। बीसवे तीर्थङ्कर मुनिसुव्रत का समय रामायण का घटनाकाल माना जाता है। राम की कथा के प्रसग मे इनका विवरण मिलता है। २१वे तीर्थङ्कर नमि मिथिला के राजा थे। इन्हे हिन्दू पुराणो मे भी राजा जनक का पूर्वज माना गया है। नमि की अनासक्ति-वृत्ति मिथिला मे जनक तक पायी जाती है। इनके वश एव प्रदेश को 'विदेह' कहे जाने का सम्भवत यही कारण है। बाइसवे तीर्थंकर नेमिनाथ का इतिहास कृष्ण-बलदेव के कथा-प्रसगो से जुडा हुआ है। नेमिनाथ की ससार से विरक्ति मे जीवमात्र के प्रति करुणा प्रधान कारण रही है, जिसका जिनशासन मे प्रमुख स्थान है। २३वे तीर्थङ्कर पार्श्वनाथ की परम्परा तो भगवान् महावीर के समय मे भी विद्यमान थी। पार्श्वनाथ की जीवनसाधना ने बुद्ध आदि को

था। समाज मे केवल स्त्री-पुरुप के युगल ही होते थे। क्रमश इस स्थिति मे भी परिवर्तन हुआ। कुलकर नाभि और उनकी पत्नी मरुदेवी के जो युगल हुआ उसको प्रथम बार नाम प्रदान किये गये। पुत्र का नाम ऋपभदेव और सहजात कन्या का नाम सुमगला रखा गया। इस घटना विशेप के कारण पृथक-पृथक समूहो के अलग-अलग वश बनना प्रारम्भ हो गये।

भगवान ऋपभदेव के जीवन-क्रम ने मानव-सभ्यता को एक नया मोड दिया। उनके पुत्र भरत, बाहुबलि एव सुपुत्री ब्राह्मी और सुन्दरी ने नयी वैवाहिक परम्परा को अपने सम्बन्धो द्वारा पुष्ट किया। ऋपभदेव के राजा बनने पर राज्य-व्यवस्था भी पनपी। नगर एव ग्रामो का निर्माण तथा उनकी सुरक्षा आदि की व्यवस्था की गयी। खाद्य समस्या सामने आने पर कृपि कार्य को प्रधानता दी गयी। तथा पाक-विद्या का श्रीगणेश होने से पात्र-निर्माण कार्य द्वारा शिल्प का भी प्रारम्भ हुआ। कला, लिपि एव विज्ञान (गणित) की शिक्षा ब्राह्मी एव सुन्दरी की शिक्षा से प्रारम्भ हुई। धीरे-धीरे इनका समाज मे भी विकास हुआ। ऋपभदेव-कालीन इन सामाजिक व्यवस्था की उन्नति के समय व्यक्तिवाद लगभग लुप्त हो गया और समष्टि उभर कर सामने आयी। इससे मनुष्य का जीवन सुखमय तो बना, किन्तु उसमे ममत्व, स्वार्थ, प्रतिस्पर्धा आदि विकार भी पनपे। इससे लोकैपणा और धनैपणा भी विकसित हुई।

इस प्रकार मानव सस्कृति और सभ्यता का जैन-परम्परा मे जो चित्र उपस्थित किया गया है- वह निराधार नही है। जैन पुराणकारो ने जिस परिस्थिति के युग को भोगभूमि का नाम दिया है वह भारतीय सभ्यता के उस युग का द्योतक है, जब कोई कौटुम्बिक व्यवस्था नही थी। दैनिक आवश्यकताओ की पूर्ति जब वृक्षो से की जाती थी। जैन परम्परा ने उन्हे कल्पवृक्ष नाम देकर व्यक्ति के अपने पुरुपार्थ की साथकता की सूचना दी है। और जिसे जैन-साहित्य मे कर्मभूमि कहा गया है वह आधुनिक सभ्यता का प्रारम्भिक युग है। इसीयुग मे मनुष्य ने कृषि, असि, मषि, शिल्प आदि जीविका के कार्यों को करना प्रारम्भ किया, जिसका प्रवर्तक जैन परम्परा ऋपभदेव को मानती है।

भगवान ऋषभदेव के समय का मानव अत्यन्त सरल था। ऋषभदेव ने उसे कर्म करने की प्रेरणा दी। उसकी बुद्धि को स्फुरित किया। पुरुषार्थ को जगाया। तब वन-सभ्यता मे जीने वाला मानव नगर-सभ्यता के निर्माण मे जुट गया। धीरे-धीरे वह समृद्धि का स्वामी हो गया और सस्कृति का वाहक भी। इस विकास क्रम से प्रतीत होता है कि ऋषभदेव सिन्धु-सभ्यता (जो नगर सभ्यता थी) के पूर्व अपनी

साधना मे लीन थे। उनकी प्रेरणा और तत्कालीन मानव का पुरुषार्थ ही सिन्धु-सभ्यता के निर्माण की आधारशिला रहा होगा।

महावीर के जीवन-दर्शन की पूर्वपरम्परा मे ऋषभदेव के अतिरिक्त बीच के ९२ तीर्थङ्करो के चिन्तन और साधना का भी महत्त्वपूर्ण योग रहा है। ऋषभदेव के बाद के तीर्थंकर मानव-सभ्यता के विभिन्न कालो से जुडे हुए है। तीसरे तीर्थङ्कर सुविधिनाथ (पुष्पदन्त) तक का काल सिन्धु-सभ्यता के विकास का काल माना जा सकता है। डा० ज्योतिप्रसाद जैन ने अपने ग्रन्थ—"भारतीय इतिहास एक दृष्टि' मे इस प्रकार की कुछ समानताओ का सकेत किया है।

सिन्धु घाटी सभ्यता मे प्राप्त अवशेषो के आधार पर ऐसा प्रतीत होता है कि उसके पुरस्कर्त्ता प्राचीन विद्याधर जाति के लोग थे तथा उनके धार्मिक मार्ग-दर्शक मध्यप्रदेश के वे मानववशी मूल आर्य थे, जो श्रमण-सस्कृति के उपासक थे। सभवनाथ का विशेष चिन्ह अश्व है और सिन्धुदेश चिरकाल तक अपने सैन्धव अश्वो के लिए प्रसिद्ध रहा है। मौर्यकाल तक सिन्ध मे एक सम्भूतक जनपद और साभव (सवृज) जाति के लोग विद्यमान थे, जो बहुत सम्भव है सम्भवनाथ तीर्थंकर की परम्परा से सम्बन्धित रहे हो। इसीप्रकार सिन्धु सभ्यता से नागफण के छत्र से युक्त कलाकृतियाँ भी प्राप्त हुई है, जो सातवे तीर्थंकर सुपार्श्व की हो सकती है। इनका चिह्न स्वस्तिक है और तत्कालीन सिन्धु घाटी मे स्वस्तिक एक अत्यन्त लोकप्रिय चिन्ह रहा है। इस प्रकार जैन इतिहास मे चौबीस तीर्थंकरो की परम्परा केवल मिथ्या नही है। उसका अपना ऐतिहासिक और आध्यात्मिक महत्व है। यह बात अलग है कि इतिहास की परतो मे अभी वह छुपा पडा है।

मानव सभ्यता के साथ साथ श्रमण-सस्कृति के इस तालमेल के कारण भारतीय महापुरुषो का सम्बन्ध एक दूसरे से बना रहा है, चाहे वे श्रमण-परम्परा के हो अथवा वैदिक-परम्परा के। बीसवे तीर्थङ्कर मुनिसुव्रत का समय रामायण का घटनाकाल माना जाता है। राम की कथा के प्रसग मे इनका विवरण मिलता है। २१वे तीर्थङ्कर नमि मिथिला के राजा थे। इन्हे हिन्दू पुराणो मे भी राजा जनक का पूर्वज माना गया है। नमि की अनासक्ति-वृत्ति मिथिला मे जनक तक पायी जाती है। इनके वश एव प्रदेश को 'विदेह' कहे जाने का सम्भवत यही कारण है। बाइसवे तीर्थंकर नेमिनाथ का इतिहास कृष्ण-बलदेव के कथा-प्रसगो से जुडा हुआ है। नेमिनाथ की ससार से विरक्ति मे जीवमात्र के प्रति करुणा प्रधान कारण रही है, जिसका जिनशासन मे प्रमुख स्थान है। २३वे तीर्थङ्कर पार्श्वनाथ की परम्परा तो भगवान् महावीर के समय मे भी विद्यमान थी। पार्श्वनाथ की जीवनसाधना ने बुद्ध आदि को

बहुत प्रभावित किया है। ईसा पूव छठी शताब्दी की धार्मिक क्रान्ति की पृष्ठभूमि भगवान् पार्श्वनाथ के समय से ही स्पष्ट होने लगी थी, महावीर ने जिसका पूर्ण विकास किया है।

अप्रतिम महावीर

तीर्थङ्कर महावीर का युग एक विशेष प्रकार की परिस्थिति से गुजर रहा था। ऋषभदेव के समय के लोग सरल थे तथा बीच के तीर्थङ्करो ने सरल और समझदार (ऋजु-प्राज्ञ) लोगो का सामना किया। जबकि महावीर के युग के लोग समय के प्रभाव से तर्कप्रिय और चतुर हो गये थे। एकान्तवादी भी। अत उन्हे धर्म को अधिक व्यवस्थित ढग से प्रस्तुत करना पडा। यद्यपि महावीर द्वारा विवेचित धम मे ऋषभदेव की अकिंचन मुनिवृत्ति, नमिनाथ की अनासक्ति, नेमिनाथ की करुणा और पार्श्वनाथ की अहिंसामय साधना सम्मिलित थी, फिर भी बहुत कुछ नया था। व्यक्तिगत रूप से अनुभूत तत्वज्ञान का प्रस्तुतिकरण एव सघ व्यवस्था आदि। महावीर पहले व्यक्ति थे, जिन्होने व्यक्ति-स्वातन्त्र्य को सामाजिक और धार्मिक धरातल पर प्रतिष्ठापित किया। महावीर के व्यक्तित्व के विभिन्न गुण हे, जो अनुकरणीय है।

महावीर तत्वज्ञान के सफल व्याख्याता थे। उन्होने जगत के पदार्थों से साक्षात्कार कर उन्हे भलीभाति समझा था। ससार के पदार्थों (जीव-अजीव) का अध्ययन उन्होने किसी प्रयोगशाला मे नही किया था, अपितु अपनी आत्मा के स्पन्दन के विस्तार और ज्ञान के विशदीकरण के द्वारा वे समस्त पदार्थों के स्वरूप आदि को समझ सके। महावीर जब जगत् को अनादि और अनन्त कहते है तो उसका अर्थ है कि ससार न कोई पैदा कर सकता है और न ही इसका कही अन्त होगा। परिवर्तन चाहे जो होते रहे। उनकी अनन्तता (सख्या का विसजन) का यह गणित अद्भुत है।

एक कुशल मनोवैज्ञानिक की तरह महावीर ने प्राणियो के मानसिक-स्पन्दन और उसके बाह्य प्रभाव की विस्तृत मीमासा की है। जीव-अजीव के बन्ध और मुक्ति का विश्लेषण महावीर ने बडी सूक्ष्मता से किया है। इसी से कम-सिद्धान्त प्रतिफलित हुआ है। महावीर का कथन है कि जीव मे चैतन्य के साथ अचेतन अश हे, वही कर्मों को खीचता है। अत हमेशा पूण सजग सचेतन रहो तथा मूर्छा और अचेतनता को तोडो। महावीर द्वारा प्राणियो की यह मानसिक चिकित्सा ह। चेतनता मे जीना ही धर्म है। और धम के अनुष्ठान द्वारा ही आत्मा का शुद्धीकरण होता है।[1]

१ एगा धम्मपडिमा, ज से आया पज्जवजाए।

—स्थानाग १।१।४०

महावीर सजग पुरुषार्थी थे। अपनी आत्मा के प्रति इतने जाग्रत कि उन्हे अपनी मुक्ति के लिए किसी के प्रति समर्पण करने की आवश्यकता नही पडी। उन्होने इस द्वन्द्व को ही मिटा दिया कि कोई एक समर्पण करने वाली आत्मा है और दूसरी अनुकम्पा करने वाली। आत्मा के दो स्वभाव नही हो सकते। अत उन्होने सजग और पुरुषार्थी आत्मा को ही परमात्मा स्वीकार किया। ईश्वरत्व को पहिचानने वाला शायद ही महावीर के सदृश कोई दूसरा हुआ हो। स्वय जागना कोई महावीर से सीखे। उन्होने नियमो को स्वीकार कर नियन्ता को तिरोहित कर दिया।

विश्रुतप्रज्ञा के धनी थे भगवान् महावीर। वे ज्ञान की सभी अवस्थाओ से स्वय गुजरे है। वे नही चाहते थे कि कोई आत्मा किसी अज्ञान को पकडकर ही अपने को ज्ञानी मानती रहे अत उन्होने ज्ञान के प्रत्येक अश की सीमा एव उसके विस्तार का विवेचन किया। मतिज्ञान से लेकर केवलज्ञान तक को स्पष्ट किया। ज्ञान की इतनी गहराई मे उतरने के कारण ही महावीर श्रोताओ के अन्तस् तक पहुचकर उनके स्तर के अनुरूप ही देशना करते थे। वे पहिले व्यक्ति थे जिन्होने केवल अपने बोलने की चिन्ता नही की, अपितु सुनने वाले को भी अपने स्तर तक लाने का मार्ग बतलाया। ज्ञानी का पुरुषार्थ यही है कि स्वय सजग रहकर औरो को अप्रमादी बनाये। महावीर ने ज्ञानी को प्रमाद न करने के लिए बार-बार कहा है। यथा—अल कुसलस्स पमाएण, णाणी नो पमायए कयावि (आचा० १।२।४) आदि इसी बात को जैन आचार्यो ने आगे बढाया है। कुन्दकुन्द कहते है कि बुद्धि का दुष्प्रयोग मत करो (पचास्तिकाय, १४०)। कितनी ऊची और आधुनिक सन्दर्भ की बात है?

सत्य के तलस्पर्शी शोधक भगवान् महावीर ने पूर्ण ज्ञान के अधिष्ठाता होकर कहा कि लोग ज्ञान की कितनी छोटी-सी किरण को पकडे बैठे है, जबकि सत्य की जानकारी सूर्य सदृश प्रकाश वाले ज्ञान से हो पाती है। महावीर के युग मे चिन्तन की धारा अनेक टुकडो मे बट गयी थी। वैदिक-परम्परा के अनेक विचारक थे तथा श्रमण-परम्परा मे ६-७ विचारक अपने को २४वा तीर्थङ्कर सिद्ध करने मे लगे हुए थे। महावीर इन सब से अलग थे। उन्हे आश्चर्य था कि सत्य के इतने दावेदार कैसे पैदा हो गये, जबकि वे पदार्थ के अधिकाश अशो को नही जानते। पदार्थ के अनन्त गुण, अनन्त पर्याये है। फिर कैसे हम किसी एक पक्ष के आग्रही बनकर दभी बन जाये ज्ञानी होने के? अत उन्होने अनेकान्तवाद का प्रतिपादन स्याद्वाद के माध्यम से किया।

अनेकान्तवाद या स्याद्वाद की जितनी दर्शन व चिन्तन के क्षेत्र मे आवश्यकता है, उससे कही अधिक व्यावहारिक दैनिक जीवन मे। महावीर द्वारा प्रणीत

अनेकान्तवाद की यही निष्पत्ति है कि हम अपने-आपको इतना तैयार कर कि दूसरे सुन सके। कहने की क्षमता से बहुत बडी है—दूसरे को सुन पाने की क्षमता। इससे व्यक्ति सत्य के उन अशो को भी जान लेता है, जहा उसकी दृष्टि नही पहुची थी। महावीर का यह समन्वय का चिन्तन सभी कालो और परिस्थितियो मे अनुकरणीय है। वास्तव म महावीर बडे व्यवस्थित चिन्तक थे। आत्मजागरण (सम्यग्दशन) के बाद जगत्-दर्शन (सम्यग्ज्ञान) हो जाने पर उन्होने इससे प्रगट होने वाले आचरण (सम्यक्चारित्र) की बात कही है। किसी भी व्यक्ति का आचरण समाज से पृथक नही होता। अत महावीर ने जिस पद्धति का निर्माण किया है, उसमे प्रगट हुआ आचरण कभी किसी को हानिकारक हो नही सकता। इसीलिए उन्होने ज्ञानी साधक के आचरण को फूल की सुवास की भाति कहा है।

महावीर के जीवन-दशन की निष्पत्ति अहिंसा है। अहिंसा का उपदेश भारतीय सस्कृति मे नया नही है। महावीर के पूर्व के तीर्थंकरो ने भी करुणा, वात्सल्य आदि गुणो के विकास द्वारा जीवो के प्राणघात रोकने की बात कही थी। महात्मा बुद्ध ने भी अहिंसा की सूक्ष्म व्याख्या की थी। किन्तु महावीर ने अहिंसा को जितनी गहराई से देखा और अनुभव किया है, वसा उदाहरण दूसरा नही है।

प्राणीमात्र पर अपना अधिकार रखना, उसे शासित करना, उत्तेजित कर देना तथा उसकी भावना को ठेस पहुचाना आदि क्रियाएँ महावीर की दृष्टि से हिंसा थी, अत उन्होने इन सब वृत्तियो के त्याग को ही अहिंसा कहा है। यथा—

> सव्वेपाणा ण हतव्वा, ण अज्जावेयव्वा, ण परिघेतव्वा, ण परितावेयव्वा ण उद्दवेयव्वा।'
>
> —आचा० १।४।१

यह सब तभी होगा जब मानव 'आत्मवत्सर्वभूतेषु' के उद्घोष को पहचानेगा। महावीर ने अहिंसा की सबसे छोटी परिभाषा दी है—समभाव रखना। आत्मज्ञान अहिंसा है तथा आत्म-अज्ञान हिंसा। इस सूत्र का विस्तार ही जैनागमो मे हुआ है। अहिंसा के अतिरिक्त अन्य वृत्त व सिद्धान्त उसकी सुरक्षा के लिये है। व्यक्ति को निर्भय और सविभागी बनाने के लिए। अपरिग्रह का विवेचन व्यक्ति और समाज मे सामन्जस्य स्थापित करने के लिए है। महावीर ने अन्य तप आदि साधनाओ का निरूपण भी किया है, जो व्यक्ति के आध्यात्मिक उत्कर्ष के साथ साथ उससे प्रगट होने वाले आचरण को भी विशुद्ध करते है।

सास्कृतिक विरासत

भगवान् महावीर इतिहास का एक ऐसा व्यक्तित्व है, जिससे दार्शनिक, धार्मिक, सामाजिक एव राजनैतिक क्षेत्र निरन्तर प्रभावित होते रहे है। न केवल

भाषा एव साहित्य के क्षेत्र मे महावीर का व्यापक प्रभाव है, अपितु भारतीय शिल्प मे भी महावीर के जीवन-दर्शन की अनेक छविया अकित है। महावीर ने भगवान पार्श्वनाथ के चिन्तन को तो नया स्वर दिया ही, अपनी मौलिक उद्‌भावनाए भी स्थापित की है। उन्होने जीवन के समग्र विकास के लिए समाज को एक नयी आचार सहिता दी। वर्ण और जाति की आधारभूमि पर टिकी परम्परागत समाज-सरचना को तोडा। व्यक्ति के स्वत्व की प्रतिष्ठा की और इकाई के महत्त्व को समझाया। महावीर पहले व्यक्ति थे जिन्होने कहा कि आत्मा के विकास मे किसी के सहारे की आवश्यकता नही है—

एगे चरेज्ज धम्म। —प्रश्नव्याकरण २.३

आत्मनिर्भरता का यह चिन्तन महावीर द्वारा धार्मिक क्षेत्र से समाज तक व्याप्त हुआ। महावीर ने कहा—समाज मे परिवर्तन लाने के लिए व्यक्ति को बदलना होगा। सामाजिक जीवन मे विषमता तब तक रहेगी जब तक व्यक्ति पग-पग पर दूसरे के सहारे की अपेक्षा करेगा। अत महावीर ने कहा व्यक्ति स्वय मर्यादित हो। उसकी मर्यादा के लिए महावीर ने पाच व्रतो की व्याख्या दी। अहिंसा के पालन द्वारा वह वात्सल्य एव समभाव का प्रसार करे। सत्य द्वारा वह वाणी के प्रयोग मे स्वय मर्यादित हो तथा समस्या की सचाई तक पहुचकर समाधान खोजे। अचौर्य का पालन उसे भय से मुक्ति दिलाता है तथा लोभ-सवरण सिखाता है। ब्रह्मचर्य-व्रत के पालन द्वारा वह स्त्री के स्वातन्त्र्य की रक्षा करता है। स्वय वासनाओ से मुक्त होता है तथा अपरिग्रह व्रत के पालन द्वारा व्यक्ति सग्रह की वृत्ति से बचता है। स्वय को असुरक्षा से निकालकर निर्भयी बनाता है—

बहुपि लद्‌धु न निहे,
परिग्गहाओ अप्पाण अवसक्किज्जा। —आचा० १।२।५

सामाजिक क्षेत्र मे भगवान महावीर का महत्वपूर्ण योगदान है—व्यक्ति को ऊच-नीच के दायरे से बाहर निकालना। उन्होने कभी भी जन्म को महत्व नही दिया। व्यक्ति के गुणो को सराहा, चाहे वह किसी भी जाति, वर्ण का क्यो न हो। यही कारण है कि उन्होने अपने जीवन का प्रारम्भ प्रतिष्ठान को ठुकराकर झोपडियो से प्रारम्भ किया। लोगो को अनासक्त, समभावी और सविभागी बनाने के पूर्व वे स्वय सर्वहारा हो गये। अपनी बात उन्होने उस भाषा मे कहना प्रारम्भ की जो सामान्य-जन की भाषा थी। व्यक्ति से व्यक्ति को जोडने वाली। समाज के प्रति महावीर के इसी दृष्टिकोण ने तत्कालीन सामन्ती-वातावरण को लोकतन्त्र मे बदल दिया। राजनीति की परिभाषाए एव शासन-व्यवस्था अहिंसा प्रधान विचारधारा से अपने आप जुड गई। क्योकि सामान्य जन की उपेक्षा करना सरल नही है।

निर्धन व्यक्ति उतना ही स्वतन्त्र सत्ता वाला है जितना धनिक। साधु भी इसका अतिक्रमण नही कर सकता था।[1]

भगवान महावीर के चिन्तन ने भारतीय मनीषा को बहुत प्रभावित किया है। भारत की प्राचीन भाषाओ से लेकर आधुनिक भाषाओ तक मे महावीर की गौरवगाथा गुम्फित है। उनके चिन्तन का विकास प्राकृत, सस्कृत, अपभ्र श एव आधुनिक भाषाओ के साहित्य मे विभिन्न कथनको, दृष्टान्तो एव रूपको द्वारा प्रस्तुत किया गया है। सम्भवत महावीर द्वारा प्रणीत धर्म की व्याख्या मे सर्वाधिक अभिप्रायो (motifs) और प्रतीको का प्रयोग हुआ है। सस्कृत, प्राकृत मे प्रतीक ग्रन्थ ही स्वतन्त्र रूप से जैनाचार्यों द्वारा लिखे गये है। ज्ञान के प्रति जैन समाज मे इतनी उत्कठा महावीर के उपदेशो द्वारा ही हुई है, जिसमे उन्होने कहा है कि ज्ञान प्राप्त करके ही मेधावी विनम्र होता है और ज्ञान के अभाव मे सयम नही होता (उत्त० २८।३०)। ज्ञान ही सच्चा प्रकाश है —

णाणुज्जोवो जोवो। —भगवती आराधना गा० ७६८

ज्ञान की इस महिमा के कारण ही भगवान महावीर की परम्परा मे विज्ञान के क्षेत्र मे भी जैनाचार्य निष्णात होते रहे है। शिक्षा के प्रसग आने पर जैनागमो मे विभिन्न कलाओ के वर्णन उपलब्ध होते हैं। जो विविध शिल्प एव विद्याये दैनिक जीवन मे प्रयुक्त होती थी, उनके सन्दर्भ भी जैनागम मे प्राप्त है। आयुर्वे विज्ञान, युद्धविज्ञान, रसायन-शास्त्र, यन्त्रशिल्प आदि के तो कुछ ऐसे सन्दर्भ भी जैनाचार्यो ने प्राकृत मे दिये ह, जो अन्य भाषाओ के साहित्य मे उपलब्ध नही ह। उत्तराध्ययन टीका (४, पृ० ८३) एव दशवैकालिक चूर्णि (१, पृ० ४४) आदि के सन्दर्भो से ज्ञात होता है कि धातु के पानी से तावे आदि को सिक्त करके सुवर्ण बनाया जाता था। कुवलयमालाकहा मे इसे धातुवाद कहा गया है, जिसका विस्तत वर्णन इस ग्रथ मे है।

कला एव विज्ञान के अतिरिक्त जैनागमो मे तत्कालीन सभ्यता के विविध उपकरणो का भी विवेचन हुआ है। प्राचीन भारत के वस्त्र, आभूषण एव मनोरजन के विविध साधनो की पर्याप्त जानकारी जैन साहित्य के अध्ययन से होती है। इस प्रकार न केवल भगवान् महावीर की पूर्व-परम्परा, उनका जीवन-दर्शन सास्कृतिक-विरासत अपितु उनकी परम्परा मे विकसित होने वाला साहित्य और शिल्प भी भारतीय सस्कृति के गौरव की गाथा कहता है। तथा भारतीय चिन्तक और मनीषियो की आत्मानुभूतियो से हमारा साक्षात्कार कराता है।

आधुनिक सन्दर्भ मे—भगवान् महावीर के जीवन-दशन को समग्र रूप से

---

१ नीय कुलमइक्कम्म ऊसढ नाभिधारए। —दश० ५।२।२५

प्रस्तुत किये जाने की नितान्त आवश्यकता है। इस दिशा मे विगत ५० वर्षों से विद्वानो द्वारा प्रयत्न किया गया है। कुछ अच्छे ग्रन्थ भी महावीर के व्यक्तित्व को उजागर करने वाले सामने आये है। किन्तु श्रद्धेय देवेन्द्रमुनि जी का प्रस्तुत ग्रन्थ अपनी सम्पूर्णता और मौलिकता लिए हुए है। इसमे मुनिजी ने महावीर की पूर्व एव समकालीन परम्परा का सास्कृतिक एव ऐतिहासिक अनुशीलन किया है।

प्रस्तुत ग्रन्थ के अवलोकन से मैंने पाया कि मुनि जी की लेखनशैली मे न केवल परम्परा के तथ्यो को पकडने की पैनी दृष्टि है, अपितु उन तथ्यों को विभिन्न सन्दर्भों द्वारा जांच कर सुन्दर और सुबोध ढग से प्रस्तुत कर देने की क्षमता भी है। आपके इस ग्रथ को पढकर मुझे मुनि जी मे प्राचीन पडितो की कुशाग्र बुद्धि एव आधुनिक अनुसन्धानकर्मियो की वैज्ञानिक प्रणाली भी देखने मिली। महावीर के पूर्व की परम्परा के प्रस्तुतीकरण मे मुनि जी ने न केवल साहित्य अपितु पुरातात्त्विक साक्ष्यो का भी उपयोग किया है। तभी वे अवतारवाद के समक्ष उत्तारवाद का प्रतिपादन कर कह सके कि महावीर की परम्परा मे व्यक्ति की आन्तरिक शक्तियो का ऊर्ध्वगमन होता है। ऊँचाई पर प्रतिष्ठित आत्मशक्तियो का अवतरण नही।

'भगवान् महावीर एक अनुशीलन' मे प्रस्तुतिकरण के साथ-साथ विषय की गहराई भी है। २४ अवतारो की बात करते हुए लेखक ने भारतीय चिन्तको के अवतारो का विभिन्न दृष्टिकोणो से मथन कर डाला है। ऋषभदेव के जीवन दर्शन की व्याख्या करते हुए न केवल भारतीय अपितु यूरोप और दक्षिण-पूर्व एशिया के विभिन्न देशो मे भी ऋषभदेव के उपास्य होने की सूचना देने वाले विदेशी साक्ष्यो का भरपूर प्रयोग मुनि जी ने किया है। साधु जीवन की मर्यादाओ मे रहते हुए इतने सन्दर्भों को जुटा लेना श्री देवेन्द्रमुनि जी का अपना पुरुषार्थ है। इस सबके अतिरिक्त प्रस्तुत पुस्तक विशुद्ध बुद्धिजीवी-परम्परा मे लिखी गयी है। सम्प्रदाय के दायरे इससे दूर है। इस कारण मुनि जी का यह प्रयत्न सफल ही नही हुआ, अपितु भगवान् महावीर के व्यक्तित्व को अनेक आयामो मे उद्घाटित भी करता है। उनके पावन-प्रसगो को अनुकरणीय बनाता है। आशा है, बौद्धिक-जगत् मे इस पुस्तक का जितना समादर होगा, उतना ही लाभ जैनधर्म एव महावीर मे आस्था रखने वाले व्यक्तियो को इससे होगा। इत्यलम्—

णाण णरस्स सार

सहायक प्रोफेसर
प्राकृत-सस्कृत विभाग,
उदयपुर विश्वविद्यालय

—डा० प्रेमसुमन जैन
एम ए (पालि-प्राकृत, जैनिज्म, प्राचीन इतिहास)
सिद्धान्तशास्त्री, साहित्याचार्य, पी एच डी

अनुक्रमणिका

भग ान महावीर : एक अनुशीलन

प्रथम खण्ड

० सास्कृतिक एव ऐतिहासिक पर्यवेक्षण

१ भगवान महावीर की पूर्वकालीन जैन परम्परा

२ भगवान महावीरकालीन समाज और सस्कृति

३ भगवान महावीर के समकालीन धर्म और धर्मनायक

४ भारतीय साहित्य मे भगवान महावीर
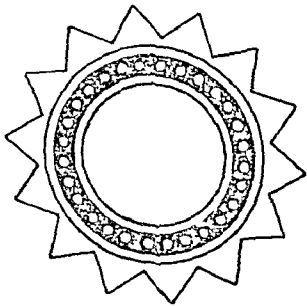
१ भगवान महावीर की पूर्वकालीन जैन परम्परा

* धर्म और दर्शन
* धर्म और दर्शन का क्षेत्र
* जैनधम
* जैनधम एक स्वतन्त्र व प्राचीन धम
* जैनधर्म के प्राचीन नाम
* तीर्थ और तीर्थंकर
* तीर्थंकर अवतार नही
* उत्तारवाद
* तीर्थंकर और अन्य मुक्त आत्माओ मे अन्तर
* चौवीस तीर्थंकर
* चौवीस अवतार
* चौवीस बुद्ध
* आदि तीर्थंकर ऋषभदेव
* अजित तथा अन्य तीर्थंकर
* अरिष्टनेमि
* भगवान पार्श्व
* वैदिक साहित्य मे जैनसस्कृति के स्वर
* तीर्थंकर और नाथ सम्प्रदाय

१ भगवान महावीर की पूर्वकालीन जैन परम्परा

धर्म और दर्शन

धर्म और दर्शन मनुष्य जीवन के दो अभिन्न अग है। जब मानव, चिन्तन के सागर मे गहराई से डुबकी लगाता है तब दर्शन का जन्म होता है जब वह उस चिन्तन का जीवन मे प्रयोग करता है तब धर्म की अवतारणा होती है। मानव मन की उलझन को सुलझाने के लिए ही धर्म और दर्शन अनिवार्य साधन है। धर्म और दर्शन दोनो परस्पर सापेक्ष है, एक दूसरे के पूरक है।

महान् दार्शनिक सुकरात के समक्ष किसी ने जिज्ञासा प्रस्तुत की कि शाति कहाँ है और क्या है?

दार्शनिक ने समाधान करते हुए कहा, "मेरे लिए शाति मेरा धर्म और दर्शन है। वह बाहर नही अपितु मेरे अन्दर है।"

सुकरात की दृष्टि से धर्म और दर्शन परस्पर भिन्न नही अपितु अभिन्न तत्त्व है। उसके पश्चात् ग्रीक व यूरोपीय दार्शनिको मे धर्म और दर्शन को लेकर मतभेद उपस्थित हुआ। सुकरात ने जो दर्शन और धर्म का निरूपण किया वह जैनधर्म से बहुत कुछ सगत प्रतीत होता है। जैनधर्म मे आचार के पाच भेद माने गये है।[१] उसमे ज्ञानाचार भी एक है। ज्ञान और आचार परस्पर सापेक्ष है। इस दृष्टि से विचार दर्शन और आचार धर्म है।

पाश्चात्य चिन्तको ने धर्म के लिए **'रिलीजन'** और दर्शन के लिए **'फिलॉसफी'** शब्द का प्रयोग किया है। किंतु धर्म और दर्शन शब्द

---

१ स्थानाङ्ग ५, उद्दे २, सूत्र ४३२

मे जो गम्भीरता और व्यापकता है वह रिलीजन और फिलॉसफी शब्द से व्यक्त नही हो सकती। भारतीय विचारको ने धर्म और दर्शन को पृथक् पृथक् स्वीकार नही किया है। जो धर्म है वही दर्शन भी है। दर्शन तर्क पर आधारित है, धर्म श्रद्धा पर, वे एक दूसरे के बाधक नही अपितु साधक है। वेदान्त मे जो पूर्व मीमासा है वह धर्म है और उत्तर मीमासा है वह दर्शन है योग आचार है तो साख्य विचार है। वौद्ध परम्परा मे हीनयान दर्शन है तो महायान धर्म है। जैनधर्म मे मुख्य रूप से दो तत्त्व है—एक अहिंसा, दूसरा अनेकात। अहिंसा धर्म है और अनेकात दर्शन है। इस प्रकार दर्शन धर्म है और धर्म दर्शन है। विचार मे आचार और आचार मे विचार यही भारतीय चि तन की विशेषता है।

ग्रीक और यूरोप मे धर्म और दर्शन दोनो साथ-साथ नही अपितु एक दूसरे के विरोध मे भी खडे है, जिसके फलस्वरूप जीवन मे जो आनन्द की अनुभूति होनी चाहिये वह नही हो पाती।

पाश्चात्य विचारको ने धर्म मे बुद्धि, भावना और क्रिया, ये तीन तत्त्व माने है। बुद्धिसे तात्पर्य है ज्ञान, भावना का अर्थ है श्रद्धा और क्रिया का अर्थ है आचार। जैन दृष्टि से भी सम्यक् श्रद्धा, सम्यक् ज्ञान और सम्यक् चारित्र ये तीनो धर्म है।

'ह्वेगेल' और 'मैक्समूलर' ने धर्म की जो परिभाषा की है उसमे ज्ञानात्मक पहलू पर ही बल दिया है और दो अशो की उपेक्षा की है। काण्ट ने धर्म की जो परिभाषा की, उसमे ज्ञानात्मक के साथ क्रियात्मक पहलू पर भी लक्ष्य दिया, पर भावात्मक पहलू की उसने भी उपेक्षा कर दी। किंतु मार्टिन्यू ने धर्म की जो परिभाषा प्रस्तुत की, उसमे विश्वास, विचार और आचार इन तीनो का मधुर समन्वय है। दूसरे शब्दो मे कहा जाये तो भक्ति, ज्ञान और कर्म इन तीनो को उसने अपनी परिभाषा मे समेट लिया है।

धर्म और दर्शन का क्षेत्र

पाश्चात्य विचारको की दृष्टि से धर्म और दर्शन का विषय सम्पूर्ण विश्व है। दशन मानव की अनुभूतियो की तर्कपुरस्सर व्याख्या करके सम्पूर्ण विश्व के आधारभूत सिद्धान्तो की अन्वेषणा करता है। धर्म भी आध्यात्मिक मूल्यो के द्वारा सम्पूण विश्व का विवेचन करने का प्रयास

करता है। धर्म और दर्शन मे दूसरी समता यह है कि दोनो मानवीय ज्ञान की योग्यता मे, यथार्थता मे तथा चरम तत्त्व मे विश्वास करते है। दर्शन मे मेधा की प्रधानता है तो धर्म मे श्रद्धा की। दर्शन बौद्धिक आभास है, धर्म आध्यात्मिक विकास है। दर्शन सिद्धान्त को प्रधानता देता है तो धर्म व्यवहार को।

आज के युग मे यह प्रश्न पूछा जाता है कि धर्म और दर्शन का जन्म कब हुआ? इस प्रश्न के उत्तर मे सक्षेप मे इतना ही लिखना पर्याप्त होगा कि वर्तमान इतिहास की दृष्टि से इसकी आदि का पता लगाना कठिन है। इसके लिए हमे प्रागैतिहासिक काल मे जाना होगा, जिस पर हम अगले पृष्ठो पर चिन्तन करेगे। किन्तु यह सदा स्मरण रखना चाहिए कि दर्शन के अभाव मे धर्म अपूर्ण है और धर्म के अभाव मे दर्शन भी अपूर्ण है। मानव-जीवन को सुन्दर, सरस व मधुर बनाने के लिए दोनो ही तत्त्वो की जीवन मे अत्यन्त आवश्यकता है।

आधुनिक मनीषा को एक और प्रश्न भी झकझोर रहा है कि धर्म और विज्ञान मे परस्पर क्या सम्बन्ध है? यहाँ विस्तार से विवेचन करने का प्रसग नही है। सक्षेप मे इतना ही बताना आवश्यक है कि धर्म का सबध आन्तरिक जीवन से अधिक है और विज्ञान का सम्बन्ध बाह्य जगत् (प्रकृति) से है। धर्म का प्रधान उद्देश्य मुक्ति की साधना है और विज्ञान का प्रधान उद्देश्य है प्रकृति का अनुसधान। विज्ञान मे सत्य की तो प्रधानता है पर शिव और सुन्दरता का उसमे अभाव है जबकि धर्म मे 'सत्य' 'शिव' और 'सुन्दर' तीनो ही अनुबधित है।

जैनधर्म

जैन धर्म विश्व का एक महान् धर्म भी है, दर्शन भी है। आज तक प्रचलित और प्रतिपादित सभी धर्म तथा दर्शनो मे यह अद्भुत, अनन्य एव जीवनव्यापी है। विश्व का कोई भी धर्म और दर्शन इसकी प्रतिस्पर्धा नही कर सकता। इसमे ऐसी अनेक विशेषताएँ है, जिनके कारण यह आज भी विश्व के विचारको के लिए आकर्षण का केन्द्र बना हुआ है। यहाँ पर स्पष्ट कर देना अनिवार्य है कि प्रस्तुत विचारणा के पीछे विशुद्ध सत्य-तथ्य की अन्वेषणा ही प्रमुख है, न कि किसी भी धर्म के प्रति उपेक्षा, आक्षेप और ईर्ष्या की भावना।

सहज ही प्रश्न हो सकता है कि जैन धर्म और दर्शन यदि इतना महान् व श्रेष्ठ है तो उसका अनुसरण करने वालो की सख्या इतनी

अल्प क्यो है ? उत्तर मे निवेदन है कि मानव सदा से सुविधावादी रहा है, वह सरल मार्ग को पसद करता है, कठिन मार्ग को नही। आज भौतिकवादी मनोवृत्ति के युग मे यह प्रवृत्ति द्रौपदी के चीर की तरह बढती ही जा रही है। मानव अधिकाधिक भौतिक सुख-सुविधाए प्राप्त करना चाहता है और उसके लिए वह अहर्निश प्रयत्न कर रहा है तथा उसमे अपने जीवन की सार्थकता अनुभव कर रहा है, जबकि जैनधर्म भौतिककता पर नही, आध्यात्मिकता पर बल देता है, वह स्वार्थ को नही, परमार्थ को अपनाने का सकेत करता है, वह प्रवृत्ति की नही, निवृत्ति की प्रेरणा देता है, वह भोग नही, त्याग को बढावा देता है, वासना को नही, उपासना को अपनाने का सकेत करता है, जिसके फलस्वरूप ही जैनधर्म के अनुयायियो की सख्या अल्प व अल्पतर होती जा रही है पर, यह असमर्थता, अयोग्यता व दुर्भाग्य आज के भौतिकवादी मानव का है न कि जैनधर्म और दर्शन का है। अनुयायियो की अधिकता और न्यूनता के आधार से किसी भी धर्म को श्रेष्ठ और कनिष्ठ मानना विचारशीलता नही है। जैनधर्म की उपयोगिता और महानता जितनी अतीत काल मे थी, उससे भी अधिक आधुनिक युग मे है। आज विश्व के भाग्यविधाता चिन्तित है। भौतिक सुख सुविधाओ की असीम उपलब्धि पर भी जीवन मे आनन्द की अनुभूति नही हो रही है। वे अनुभव करने लगे है कि बिना आध्यात्मिकता के भौतिक उन्नति जीवन के लिए वरदान नही, अपितु अभिशाप है।

जैनधर्म एक स्वतत्र व प्राचीन धर्म

यह साधिकार कहा जा सकता है कि जैनधर्म विश्व का सबसे प्राचीन धर्म है। यह न वैदिक धर्म की शाखा है, न बौद्धधर्म की। किंतु यह सर्वतत्र स्वतत्र धर्म है, दर्शन है। यह सत्य है कि '**जैनधर्म**' इस शब्द का प्रयोग वेदो मे, त्रिपिटको मे और आगमो मे देखने को नही मिलता जिसके कारण तथा साम्प्रदायिक अभिनिवेश के कारण कितने ही इतिहासकारो ने जैनधर्म को अर्वाचीन मानने की भयकर भूल की है। हमे उनके ऐतिहासिक ज्ञान पर तरस आती है।

'वैदिक सस्कृति का विकास' पुस्तक मे श्री लक्ष्मण शास्त्री जोशी ने लिखा है—"जैन तथा बौद्ध धर्म भी वैदिक सस्कृति की ही शाखाए है। यद्यपि सामान्य मनुष्य इन्हे वैदिक नही मानता। सामान्य मनुष्य की इस भ्रान्त धारणा का कारण है मूलत इन शाखाओ के वेद-विरोध

की कल्पना । सच तो यह है कि जैनो और बौद्धो की तीन अन्तिम कल्पनाए —कर्म-विपाक, ससार का बधन और मोक्ष या मुक्ति, अन्ततोगत्वा वैदिक ही है ।"२

शास्त्री महोदय ने जिन अन्तिम कल्पनाओ-कर्म-विपाक, ससार का बधन और मोक्ष या मुक्ति को अन्ततोगत्वा वैदिक कहा है, वास्तव मे वे मूलत अवैदिक हे ।

वैदिक साहित्य मे आत्मा और मोक्ष की कल्पना ही नही हे । और इनको बिना माने कर्म-विपाक और बधन की कल्पना का मूल्य ही क्या है ? ए० ए० मैकडोनेल का मन्तव्य है—"पुनर्जन्म के सिद्धान्त का वेदो मे कोई सकेत नही मिलता हे किन्तु एक ब्राह्मण मे यह उक्ति मिलती है कि जो लोग विधिवत् सस्कारादि नही करते वह मृत्यु के बाद पुन जन्म लेते है और बार-बार मृत्यु का ग्रास बनते रहते है ।[3]

वैदिकसस्कृति के मूल तत्त्व हे—'यज्ञ, ऋण और वर्ण-व्यवस्था ।' इन तीनो का विरोध श्रमणसस्कृति की जैन और बौद्ध दोनो धाराओ ने किया है । अत शास्त्री जी का मन्तव्य आधार रहित है । यह स्पष्ट है कि जैनधर्म वैदिकधर्म की शाखा नही है । यद्यपि अनेक विद्वान इस भ्रान्ति के शिकार हुए है । जैसे कि—

प्रो० लासेन ने लिखा है—"बुद्ध और महावीर एक ही व्यक्ति है, क्योकि जैन और बुद्ध परम्परा की मान्यताओ मे अनेकविध समानता है ।"४

प्रो० बेबर ने लिखा हे—जैनधर्म, बौद्धधर्म की एक शाखा है, वह उससे स्वतत्र नही है ।"५

किन्तु उन विद्वानो की भ्राति का निरसन प्रो० याकोबी ने अनेक अकाट्य तर्कों के आधार से किया और अन्त मे यह स्पष्ट बताया कि जैन और बौद्ध दोनो सम्प्रदाय स्वतत्र है, इतना ही नही बल्कि जैन

२ वैदिक सस्कृति का विकास, पृ० १५-१६,

३ वैदिक माइथोलॉजी, पृ० ३१६

४ S B E Vol 22, Introduction, P 19

५ वही, पृ० १८,

सम्प्रदाय बौद्ध सम्प्रदाय से पुराना भी है और ज्ञातपुत्र महावीर तो उस सम्प्रदाय के अन्तिम पुरस्कर्ता मात्र है।"[६]

जब हम ऐतिहासिक दृष्टि से जैनधर्म का अध्ययन करते है तब सूर्य के प्रकाश की तरह स्पष्ट ज्ञात होता है कि जैनधर्म विभिन्न युगो मे विभिन्न नामो द्वारा अभिहित होता रहा है। वैदिक काल से आरण्यक काल तक वह वातरशन मुनि या वातरशन श्रमणो के नाम से पहचाना गया है। ऋग्वेद मे वातरशन मुनि का वर्णन है।[७] तैत्तिरीय-आरण्यक मे केतु, अरुण और वातरशन ऋषियो की स्तुति की गई है।[८] आचार्य सायण के मतानुसार केतु, अरुण और वातरशन ये तीनो ऋषियो के सघ थे।[९] वे अप्रमादी थे।[१०] श्रीमद्भागवत के अनुसार भी वातरशन श्रमणो के धर्म का प्रवर्तन भगवान ऋषभदेव ने किया।[११]

तैत्तिरीयारण्यक के भगवान ऋषभदेव के शिष्यो को वातरशन ऋषि और ऊर्ध्वमथी कहा है।[१२]

'व्रात्य' शब्द भी वातरशन शब्द का सहचारी है। वातरशन मुनि वैदिक परम्परा के नही थे, क्योकि प्रारभ मे वैदिक परम्परा मे सन्यास और मुनि पद का स्थान नही था।[१३]

---

६ वही

७ मुनयो वातरशना पिशङ्गा वसते मला।

—ऋग्वेद सहिता १०।११।१

८ केतवो अरुणासश्च ऋषयो वातरशना प्रतिष्ठा शतधा हि समाहिता सो सहस्रधायसम्।

—तैत्तिरीय आरण्यक १।२१।३।१।२४

९ तैत्तिरीय आरण्यक १।३१।६

१० केत्वरुण वातरशन शब्दा ऋषि सघानाचक्षते।
ते सर्वेऽपि ऋषिसघा समाहित।
सोऽप्रमता सन्त उपदधतु।

—तैत्तिरीयारण्यक भाष्य १।२१।३

११ श्रीमद्भागवत ११।११।१२

१२ वातरशनाह वा ऋषय श्रमणा उर्ध्वमथिनो बभूवु।

—तैत्तिरीयारण्यक २।७।१

१३ साहित्य और सस्कृति, पृ० २०८, देवेन्द्र मुनि, भारतीय विद्या प्रकाशन, कचौडी गली, वाराणसी।

की कल्पना। सच तो यह है कि जैनो और वोद्धो की तीन अन्तिम कल्पनाए —कर्म-विपाक, ससार का वन्धन और मोक्ष या मुक्ति, अन्ततोगत्वा वैदिक ही है।"[२]

शास्त्री महोदय ने जिन अन्तिम कल्पनाओ कर्म-विपाक, ससार का बधन और मोक्ष या मुक्ति को अन्ततोगत्वा वैदिक कहा हे, वास्तव मे वे मूलत अवैदिक ह।

वैदिक साहित्य मे आत्मा और मोक्ष की कल्पना ही नही हे। और इनको विना माने कर्म-विपाक और बधन की कल्पना का मूल्य ही क्या है? ए० ए० मैकडोनेल का मन्तव्य हे—"पुनर्जन्म के सिद्धान्त का वेदो मे कोई सकेत नही मिलता है किन्तु एक ब्राह्मण मे यह उक्ति मिलती है कि जो लोग विधिवत् सस्कारादि नही करते वह मृत्यु के बाद पुन जन्म लेते है और बार-बार मृत्यु का ग्रास बनते रहते हे।[3]

वैदिकसस्कृति के मूल तत्त्व हे—'यज्ञ, ऋण और वर्ण व्यवस्था।' इन तीनो का विरोध श्रमणसस्कृति की जैन और बौद्ध दोनो धाराओ ने किया है। अत शास्त्री जी का मन्तव्य आधार रहित है। यह स्पष्ट है कि जैनधर्म वेदिकधर्म की शाखा नही है। यद्यपि अनेक विद्वान इस भ्रान्ति के शिकार हुए है। जैसे कि—

प्रो० लासेन ने लिखा है—"बुद्ध और महावीर एक ही व्यक्ति हे, क्योकि जैन और बुद्ध परम्परा की मान्यताओ मे अनेकविध समानता है।"[४]

प्रो० बेबर ने लिखा है—जैनधर्म, बौद्धधर्म की एक शाखा है, वह उससे स्वतत्र नही है।"[५]

किन्तु उन विद्वानो की भ्राति का निरसन प्रो० याकोबी ने अनेक अकाट्य तर्कों के आधार से किया और अन्त मे यह स्पष्ट बताया कि जैन और बौद्ध दोनो सम्प्रदाय स्वतत्र हे, इतना ही नही बल्कि जैन

२ वैदिक सस्कृति का विकास, पृ० १५-१६,

३ वैदिक माइथोलॉजी, पृ० ३१६

४ S B E Vol 22, Intioduction, P 19

५ वही, पृ० १८,

सम्प्रदाय बौद्ध सम्प्रदाय से पुराना भी है और ज्ञातपुत्र महावीर तो उस सम्प्रदाय के अन्तिम पुरस्कर्ता मात्र है।"[६]

जब हम ऐतिहासिक दृष्टि से जैनधर्म का अध्ययन करते है तब सूर्य के प्रकाश की तरह स्पष्ट ज्ञात होता है कि जैनधर्म विभिन्न युगो मे विभिन्न नामो द्वारा अभिहित होता रहा है। वैदिक काल से आरण्यक काल तक वह वातरशन मुनि या वातरशन श्रमणो के नाम से पहचाना गया है। ऋग्वेद मे वातरशन मुनि का वर्णन है।[७] तैत्तिरीय-आरण्यक मे केतु, अरुण और वातरशन ऋषियो की स्तुति की गई है।[८] आचार्य सायण के मतानुसार केतु अरुण और वातरशन ये तीनो ऋषियो के सघ थे।[९] वे अप्रमादी थे।[१०] श्रीमद्‌भागवत के अनुसार भी वातरशन श्रमणो के धर्म का प्रवर्तन भगवान ऋषभदेव ने किया।[११]

तैत्तिरीयारण्यक के भगवान ऋषभदेव के शिष्यो को वातरशन ऋषि और ऊर्ध्वमथी कहा है।[१२]

'व्रात्य' शब्द भी वातरशन शब्द का सहचारी है। वातरशन मुनि वैदिक परम्परा के नही थे, क्योकि प्रारभ मे वैदिक परम्परा मे सन्याम और मुनि पद का स्थान नही था।[१३]

---

६ वही

७ **मुनयो वातरशना पिशङ्गा वसते मला।**

—ऋग्वेद सहिता १०।११।१

८ **केतवो अरुणासश्च ऋषयो वातरशना प्रतिष्ठा शतधा हि समाहिता सो सहस्रधायसम्।**

—तैत्तिरीय आरण्यक १।२१।३।१।२४

९ तैत्तिरीय आरण्यक १।३१।६

१० **केत्वरुण वातरशन शब्दा ऋषि सधानाचक्षते।**
ते सर्वेऽपि ऋषिसघा समाहित।
सोऽप्रमता सन्त उपदधतु।

—तैत्तिरीयारण्यक भाष्य १।२१।३

११ श्रीमद्‌भागवत १।११।१२

१२ **वातरशनाह वा ऋषय श्रमणा उर्ध्वमथिनो बभूवु।**

—तैत्तिरीयारण्यक २।७।१

१३ साहित्य और सस्कृति, पृ० २०८, देवेन्द्र मुनि, भारतीय विद्या प्रकाशन, कचौडी गली, वाराणसी।

जैनधर्म के प्राचीन नाम

जैनधर्म का दूसरा नाम **'आर्हत धर्म'** भी अत्यधिक विश्रुत रहा है। जो अर्हत्' के उपासक थे वे 'आर्हत, कहलाते थे। वे वेद और ब्राह्मणो को नही मानते थे। ऋग्वेद मे वेद और ब्रह्म के उपासको को 'आर्हत' कहा गया है। वेदवाणी को बृहती कहते है। बृहती की उपासना करने वाले बार्हत कहलाते है। वेदो की उपासना करने वाले ब्रह्मचारी होते थे। वे इन्द्रियो का सयमन कर वीर्य की रक्षा करते थे और इस प्रकार वेदो की उपासना करने वाले ब्रह्मचारी साधक 'बार्हत' कहलाते थे [१४] बार्हत ब्रह्म या ब्राह्मण सस्कृति के पुरस्कर्ता थे। वे वैदिक यज्ञ याग को ही सर्वश्रेष्ठ मानते थे।

आर्हत लोग यज्ञो मे विश्वास न कर कर्मबध और कर्मनिर्जरा को मानते थे। प्रस्तुत आर्हत धर्म को 'पद्मपुराण' मेसर्वश्रेष्ठ धर्म कहा है।[१५] इस धर्म के प्रवर्तक ऋषभदेव है।

ऋग्वेद मे अर्हन् को विश्व की रक्षा करने वाला सर्वश्रेष्ठ कहा है।[१६]

शतपथ ब्राह्मण मे भी अर्हन् का आह्वान किया गया है और अन्य कई स्थलो पर उन्हे 'श्रेष्ठ' कहा गया है [१७] सायण के अनुसार भी अर्हन् का अर्थ योग्य है।

श्रुतकेवली भद्रबाहु ने कल्पसूत्र मे भगवान् अरिष्टनेमि व अन्य तीर्थकरो के लिए 'अर्हत्' विशेषण का प्रयोग किया है।[१८] इसिभाषिय के अनुसार भगवान् अरिष्टनेमि के तीर्थकाल मे प्रत्येकबुद्ध भी 'अर्हत्' कहलाते थे।[१]

---

१४ ऋग्वेद १०।८५।४।

१५ **आर्हत सर्वमैतश्च, मुक्तिद्वारमसवृतम्।**
धर्माद् विमुक्तेरर्होऽय न तस्मादपर पर ॥

—पद्मपुराण १३।३५०

१६ ऋग्वेद २।३३।१०, २।३।१।३, ७।१८।२२, १०।२।२।, ९९।७। तथा १०।८५।४, ऐ ब्रा० ५।२।२, शा० १५।४, १८।२, २३।१, ऐ० ४।१०

१७ ३।४।१।३-६, तै० २।८।६।९, तै० आ० ४।५।७, ५।४।१० आदि-आदि

१८ कल्पसूत्र, देवेन्द्र मुनि सम्पादित, सूत्र १६१-१६२ आदि

१९ इसिभापिय १।२०

पद्मपुराण[२०] और विष्णुपुराण[२१] मे जैनधर्म के लिए आर्हत् धर्म का प्रयोग मिलता है।

आर्हत शब्द की मुख्यता भगवान् पार्श्वनाथ के तीर्थकाल तक चलती रही।[२२]

महावीर-युगीन साहित्य का पर्यवेक्षण करने पर सहज ही ज्ञात होता है कि उस समय 'निर्ग्रन्थ' शब्द मुख्य रूप से व्यवहृत हुआ है।[२३] बौद्ध साहित्य मे अनेक स्थलो पर भगवान् महावीर को निग्गथ नायपुत्त कहा है।[२४]

अशोक के शिलालेखो मे भी निग्गठ शब्द का उल्लेख प्राप्त होता है।[२५] भगवान महावीर के पश्चात आठ गणधरो या आचार्यों तक 'निर्ग्रन्थ' शब्द मुख्य रूप से रहा है।[२६] वैदिक ग्रन्थो मे भी निर्ग्रन्थ शब्द मिलता है।[२७] सातवी शताब्दी मे बगाल मे निर्ग्रन्थ सम्प्रदाय प्रभावशाली था।[२८]

---

२० पद्मपुराण १३।३५०

२१ विष्णुपुराण ३।१८।१२

२२ (क) बाबू छोटेलाल स्मृति ग्रन्थ पृ०, २०१
(ख) अतीत का अनावरण पृ०, ६०

२३ (क) आचारांग, १।३।१।१०८
(ख) निग्गथ पावयण—
—भगवती, ६।६।३८६

२४ (क) दीघनिकाय सामञ्ञफल सुत्त, १८।२१
(ख) विनयपिटक महावग्ग, पृ० २४२

२५ इमे वियापरा हो हति त्ति निग्गठेसु पि मे करे।
—प्राचीन भारतीय अभिलेखो का अध्ययन द्वि० खण्ड, पृ १६

२६ पट्टावली समुच्चय, तपागच्छ, पट्टावली, पृ० ४५

२७ (क) कन्थाकौपीनोत्तरा सङ्गादीना त्यागिनो यथाजातरूपधरा 'निर्ग्रन्था' निष्परिग्रहा इति सवर्तश्रुति।
—तैतिरीय-आरण्यक १०।६३, सायण भाष्य भाग-२ पृ० ७७८
(ख) जाबालोपनिषद्

२८ द एज आव इम्पीरियल कन्नोज, पृष्ठ २८८

दशवैकालिक[२९], उत्तराध्ययन[३०] और सूत्रकृताङ्ग[३१] आदि आगमो मे जिनशासन, जिनमार्ग, जिनवचन शब्दो का प्रयोग हुआ है। किंतु 'जैनधर्म' इस शब्द का प्रयोग आगम ग्रन्थो मे नही मिलता। सर्व-प्रथम 'जैन' शब्द का प्रयोग जिनभद्रगणी क्षमाश्रमण कृत विशेपावश्यक भाष्य मे देखने को प्राप्त होता है।[३२]

उसके पश्चात् के साहित्य मे जैनधर्म शब्द का प्रयोग विशेपरूप से व्यवहृत हुआ है। मत्स्यपुराण[३३] मे 'जिनधर्म' और देवी भागवत[३४] मे 'जैनधर्म' का उल्लेख प्राप्त होता है।

तात्पय यह है कि देशकाल के अनुसार शब्द बदलते रहे हे, किंतु शब्दो के बदलते रहने से 'जैनधर्म' का स्वरूप अर्वाचीन नही हो सकता। परम्परा की दृष्टि से उसका सम्बध भगवान् ऋपभदेव से है।

जिस प्रकार शिव के नाम पर शैवधर्म, विष्णु के नाम पर वैष्णव-धर्म और बुद्ध के नाम पर बौद्धधर्म प्रचलित है, वैसे ही जैनधम किसी व्यक्ति-विशेष के नाम पर प्रचलित नही हे और न यह धर्म किसी व्यक्ति विशेप का पूजक ही है। इसे ऋपभदेव, पार्श्वनाथ और महावीर का धर्म नही कहा गया है। यह आर्हतो का धर्म है, जिनधम है। जैन

---

२९ (क) सोच्चाण जिण-सासण—दशवैकालिक ८।२५
(ख) जिणमय वही ९।३।१५

३० जिणवयणे अणुरत्ता जिणवयण जे करेंति भावेण।
—उत्तराध्ययन, ३६।२६४

३१ सूत्रकृताग

३२ (क) जेण तित्थ — विशेपावश्यकभाष्य, गा० १०४३
(ख) तित्थ-जइण—वही, गा० १०४५-१०४६

३३ मत्स्यपुराण ४।१३।५४

३४ गत्वाथ मोहयामास रजिपुत्रान् वृहस्पति।
जिनधर्म समास्थाय वेद बाह्य स वेदवित्॥
छद्मरूप धर सौम्य वोधयन्त छलेन तान्।
जैनधम कृत स्वेन, यज्ञ निन्दापर तथा॥
—देवी भागवत ४।१३।५४

धर्म के मूलमत्र नमो अरिहताण, नमो सिद्धाण नमो आयरियाण, नमो उवज्झायाण, नमो लोए सव्वसाहूण'[35] मे किसी व्यक्तिविशेप को नमस्कार नही किया गया है। जैनधर्म का स्पष्ट अभिमत है कि कोई भी व्यक्ति आध्यात्मिक उत्कर्प कर मानव से महामानव बन सकता है, तीर्थंकर बन सकता है।

तीर्थ और तीर्थ कर

तीर्थंकर शब्द जैनधर्म का मुख्य पारिभापिक शब्द है। यह शब्द कब और किस समय प्रचलित हुआ, यह कहना अत्यधिक कठिन है। वर्तमान इतिहास से इसका आदि सूत्र नही ढूढा जा सकता। निस्सदेह यह शब्द उपलब्ध इतिहास से बहुत पहले प्राग्-ऐतिहासिक काल मे भी प्रचलित था। जैन-परम्परा मे इस शब्द का प्राधान्य रहने के कारण बौद्धसाहित्य मे भी इसका प्रयोग किया गया है, बौद्ध साहित्य मे अनेक स्थलो पर 'तीर्थंकर' शब्द व्यवहृत हुआ है।[36] सामञ्जफलसुत्त मे छह 'तीर्थकरो का उल्लेख किया गया है'[37] किन्तु यह स्पष्ट है कि जैनसाहित्य की तरह मुख्य रूप से यह शब्द वहाँ प्रचलित नहीं रहा है। कुछ ही स्थलो पर उसका उल्लेख हुआ किन्तु जैनसाहित्य मे इस शब्द का प्रयोग अत्यधिक मात्रा मे हुआ है। तीर्थंकर जैनधर्मसघ का पिता है सर्वेसर्वा है। जैनसाहित्य मे खूब ही विस्तार से 'तीर्थंकर' का महत्त्व अङ्कित किया गया है। आगम साहित्य से लेकर स्तोत्र-साहित्य तक मे तीर्थंकर का महत्त्व प्रतिपादित है। चतुर्विंशतिस्तव और शक्रस्तव मे तीर्थंकर के गुणो का जो उत्कीर्तन किया गया है, उसे पढकर तीर्थंकर की गरिमा-महिमा का एक भव्य चित्र सामने प्रस्तुत हो जाता है तथा साधक का हृदय श्रद्धा से विनत हो जाता है।

जो तीर्थ का कर्ता या निर्माता होता है वह तीर्थंकर कहलाता है। जैन परिभाषा के अनुसार तीर्थ शब्द का अर्थ धर्म-शासन है।

---

३५ भगवती सूत्र, मगलाचरण

३६ देखिए बाद्ध साहित्य का लकावतार सूत्र

३७ [illegible] य, सामञ्ञफल सुत्त,पृ० १६—२२ हिन्दी अनुवाद

जो ससार समुद्र से पार करनेवाले धर्म-तीर्थ की सस्थापना करते है वे तीर्थंकर कहलाते है। अहिसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह, ये धम है। इस धर्म को धारण करने वाले श्रमण, श्रमणी, श्रावक और श्राविका हे। इस चतुर्विध सघ को भी तीर्थ कहा गया है।[३८] इस तीर्थ की जो स्थापना करते हे, उन विशिष्ट व्यक्तियो को तीर्थकर कहते है।

सस्कृत साहित्य मे तीर्थ शब्द 'घाट' के लिए भी व्यवहृत हुआ है। जो घाट के निर्माता है, वे तीर्थकर कहलाते हे। सरिता को पार करने के लिए घाट की कितनी उपयोगिता है, यह प्रत्येक अनुभवी व्यक्ति जानता है। ससार रूपी एक महान् नदी है, उसमे कही पर क्रोध के मगर मच्छ मु ह फाडे हुए है, कही पर माया के जहरीले साँप फूत्कार कर रहे है तो कही पर लोभ के भवर हे। इन सभी को पार करना कठिन है। साधारण साधक विकारो के भवर मे फस जाते हे। कषाय के मगर उन्हे निगल जाते है। अनन्त दया के अवतार तीर्थंकर प्रभु ने साधको की सुविधा के लिए धर्म का घाट बनाया, अणुव्रत और महाव्रतो की निश्चित योजना प्रस्तुत की, जिससे प्रत्येक साधक इस ससार रूपी भयकर नदी को सहज ही पार कर सकता है।

तीर्थ का अर्थ पुल अर्थात् सेतु भी है। चाहे कितनी ही बडी-से बडी नदी क्यो न हो, यदि उस पर पुल है तो निर्बल-से-निर्बल व्यक्ति भी उसे सुगमता से पार कर सकता है। तीर्थकरो ने ससार रूपी नदी को पार करने के लिए धर्म-शासन अथवा साधु, साध्वी, श्रावक और श्राविका रूपी सघ स्वरूप पुल का निर्माण किया है। आप अपनी शक्ति व भक्ति के अनुसार इस पुल पर चढकर ससार को पार कर सकते है। धार्मिक साधना के द्वारा अपने जीवन को पावन बना सकते हे। तीर्थंकरो के शासन काल मे हजारो, लाखो व्यक्ति आध्यात्मिक साधना कर जीवन को परम पवित्र व विशुद्ध बनाकर मुक्त होते हे।

प्रश्न हो सकता है कि वर्तमान अवसर्पिणीकाल मे भगवान् ऋषभदेव ने सर्वप्रथम तीर्थ की सस्थापना की अत उन्हे तीर्थकर कहना

---

३८ (क) तित्थ पुण चाउवन्नाइन्ने सघो-समणा, समणीओ, सावया, सावियाओ।

—भगवती सूत्र, शतक २, उ० ८, सूत्र ६८२

(ख) स्थानाग ४।३

चाहिए परन्तु उनके पश्चाद्वर्ती तेवीस महापुरुषो को तीर्थंकर क्यो कहा जाये ?

कुछ विद्वान् यह भी कहते है कि धर्म की व्यवस्था जैसी एक तीर्थंकर करते है वैसी ही व्यवस्था दूसरे तीर्थंकर भी करते हे, अत एक ऋषभदेव को ही तीर्थंकर मानना चाहिये अन्य को नही।

उल्लिखित प्रश्नो के उत्तर मे निवेदन है कि अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह और अनेकान्त आदि जो धर्म के आधारभूत मूल सिद्धान्त है, वे शाश्वत सत्य और सदा-सर्वदा अपरिवर्तनीय हे। अतीत के अनन्तकाल मे जो अनन्त तीर्थंकर हुए हे, वर्तमान मे जो श्री सीमधर स्वामी आदि तीर्थंकर है और अनागत अनन्तकाल मे जो जो अनन्त तीर्थंकर होने वाले है उन सबके द्वारा धर्म के मूल स्तम्भ-स्वरूप इन शाश्वत सत्यो के सबध मे समान रूप से प्ररूपणा की जाती रही है, की जा रही है और की जाती रहेगी। धर्म के मूल तत्त्वो के निरूपण मे एक तीर्थंकर से दूसरे तीर्थंकर का किंचितमात्र भी मतभेद न कभी रहा है और न कभी रहेगा, परन्तु प्रत्येक तीर्थंकर अपने अपने समय मे देश,काल व जनमानस की ऋजुता, तत्कालीन मानव की शक्ति, बुद्धि, सहिष्णुता आदि को ध्यान मे रखते हुए उस काल और उस काल के मानव के अनुरूप साधु, साध्वी श्रावक एव श्राविका के लिये अपनी-अपनी एक नवीन आचारसहिता का निर्माण करते है।

एक तीर्थंकर द्वारा सस्थापित श्रमण, श्रमणी, श्रावक और श्राविका रूप तीर्थ मे काल-प्रभाव से जब एक अथवा अनेक प्रकार की विकृतिया उत्पन्न हो जाती है, तीर्थ मे लम्बे व्यवधान तथा अन्य कारणो से भ्रान्तियाँ पनपने लगती है, कभी कभी तीर्थ विलुप्त अथवा विलुप्तप्राय विश्रृखल अथवा शिथिल हो जाता है, उस समय दूसरे तीर्थंकर का समुद्भव होता है और वे विशुद्धरूपेण नवीन तीर्थ की स्थापना करते है, अत वे तीर्थंकर कहलाते है। उनके द्वारा धर्म के प्राणभूत ध्रुव सिद्धान्त उसी रूप मे उपदिष्ट किये जाते है, केवल बाह्य क्रियाओ एव आचार व्यवहार आदि का प्रत्येक तीर्थंकर के समय मे न्यूनाधिक वैभिन्न्य होता है।

जब पुराने घाट ढह जाते है, विकृत अथवा अनुपयुक्त हो जाते है, तब नवीन घाट निर्माण किये जाते हे। जब धार्मिक विधि-विधानो मे

विकृति आ जाती है तब तीर्थंकर उन विकृतियो को नष्ट कर अपनी दृष्टि से पुन धार्मिक विधानो का निर्माण करते है। तीर्थंकरो का शासन भेद इस बात का ज्वलत प्रमाण है। मैं ने इस सम्बन्ध मे 'भगवान पार्श्व एक समीक्षात्मक अध्ययन' ग्रन्थ मे विस्तार से विवेचन किया है। जिज्ञासु पाठको को वहा देखना चाहिये।[39]

तीर्थंकर अवतार नही

एक बात स्मरण रखनी चाहिए कि जैन धर्म ने तीर्थंकर को ईश्वर का अवतार या अश नही माना है और न दैवि सृष्टि का अजीव प्राणी ही स्वीकार किया है। उसका यह स्पष्ट मन्तव्य है कि तीर्थंकर का जीव अतीत मे एक दिन हमारी ही तरह सासारिक प्रवृत्तियो के दल-दल मे फसा हुआ था, पापरूपी पक से लिप्त था, कपाय की कालिमा से कलुपित था, मोह की मदिरा से मत्त था। आधि-व्याधि और उपाधियो से सत्रस्त था। हेय, ज्ञेय और उपादेय का उसे भी विवेक नही था। भौतिक व इन्द्रियजन्य सुखो को सच्चा सुख समझकर पागल की तरह उसके पीछे दौड रहा था किन्तु एक दिन महान् पुरुपो के सग से उसके नेत्र खुल गये। भेद-विज्ञान की उपलब्धि होने से तत्त्व की अभिरुचि जागृत हुई। सही व सत्य स्थिति का उसे परिज्ञान हुआ।

किन्तु कितनी ही बार ऐसा भी होता है कि मिथ्यात्व के पुन आक्रमण से उस आत्मा के ज्ञान नेत्र धु धले हो जाते है और वह पुन मार्ग को विस्मृत कर कु मार्ग पर आरुढ हो जाता है और लम्बे समय के पश्चात् पुन सन्मार्ग पर आता है तब वासना से मुँह मोड कर साधना को अपनाता है, उत्कृष्ट तप व सयम की आराधना करता हुआ एक दिन भावो की परम निर्मलता से तीर्थंकर नामकर्म का बध करता है और फिर वह तृतीय भव से तीर्थंकर बनता है[40] किन्तु यह भी नही भूलना चाहिए कि जब तक तीर्थंकर का जीव ससार के भोग-विलास मे उलझा हुआ है, तब तक वह वस्तुत तीर्थंकर नही है। तीर्थंकर बनने के लिये उस अन्तिम भव मे भी राज्य-वैभव को छोडना होता है। श्रमण बन कर स्वय को पहले महाव्रतो का पालन करना होता है, एकान्त-शान्त-निर्जन स्थानो मे रहकर आत्म-मनन करना होता है, भयकर-से

---

३९ भ० पार्श्व एक समीक्षात्मक अध्ययन पृ० ३-२५ प्रकाशक—प० मुनि श्रीमल प्रकाशन, २५९ नाना पेठ, पूना न० २, सन् १९६१

४० समवायाङ्ग सूत्र १५७

भयकर उपसर्गों को शान्तभाव से सहन करना होता है। जब साधना से ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय, और अन्तराय कर्म का घाति चातुष्ट्य नष्ट होता है तब केवलज्ञान, केवलदर्शन की प्राप्ति होती है। उस समय वे साधु, साध्वी, श्रावक, श्राविका रूप तीर्थ की सस्थापना करते है, तब वस्तुत तीर्थंकर कहलाते है।

उत्तारवाद

वैदिक परम्परा का विश्वास अवतारवाद मे है। गीता के अभिमतानुसार ईश्वर अज, अनन्त और परात्पर होने पर भी अपनी अनन्तता को अपनी मायाशक्ति से सकुचित कर शरीर को धारण करता है। अवतारवाद का सीधा-सा अर्थ है ईश्वर का मानव से रूप मे अवतरित होना, मानव शरीर से जन्म लेना। गीता की दृष्टि से ईश्वर तो मानव बन सकता है, किन्तु मानव कभी ईश्वर नही बन सकता। ईश्वर के अवतार लेने का एकमात्र उद्देश्य है सृष्टि के चारो ओर जो अधर्म का अधकार छाया हुआ होता है, उसे नष्ट कर धर्म का प्रकाश, साधुओ का परित्राण, दुष्टो का नाश और धर्म की स्थापना करना।[४१]

जैनधर्म का विश्वास अवतारवाद मे नही है, वह उत्तारवाद का पक्षधर है। अवतारवाद मे ईश्वर को स्वय मानव बन कर पुण्य-पाप करने पडते है। भक्तो की रक्षा के लिए उसे सहार भी करना पडता है। स्वय राग-द्वेष से मुक्त होने पर भी भक्तो के लिए उसे राग भी करना पडता है और द्वेष भी। वैदिक परम्परा मे विचारको ने इस विकृति को लीला कह कर उस पर आवरण डालने का प्रयास किया है। जैन दृष्टि ने मानव के उत्तार का समर्थन किया है। वह प्रथम विकृति से सस्कृति की ओर बढता है, फिर प्रकृति मे पहुँच जाता है। राग-द्वेष युक्त जो मिथ्यात्व की अवस्था है, वह विकृति है। राग-द्वेष मुक्त जो सदेह वीतराग अवस्था है, वह सस्कृति है। पूर्ण रूप से कर्मों से मुक्त जो शुद्ध सिद्ध अवस्था है, वह प्रकृति है। सिद्ध बनने का तात्पर्य

---

४१ यदा यदा हि धर्मस्य, ग्लानिर्भवति भारत !
अभ्युत्थानमधर्मस्य, तदात्मान सृजाम्यह ॥
परित्राणाय साधूना विनाशाय च दुष्कृताम् ।
धर्म सस्थापनार्थाय सभवामि युगे युगे ॥

—श्रीमद्भगवद्गीता ४।७-८

है कि अनन्तकाल के लिए अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन, अनन्तसुख और अनन्तशक्ति मे लीन हो जाना, वहाँ कर्मबध और कर्मबध के कारणो का सर्वथा अभाव होने से जीव पुन समार मे नही आता। उत्तारवाद का अर्थ है मानव का विकारी जीवन के ऊपर उठकर भगवान के अविकारी स्वरूप तक पहुँच जाना, पुन उस विकार दशा मे कभी लिप्त न होना। तात्पर्य है कि जैनधर्म का तीर्थंकर ईश्वरीय अवतार नही है। जो लोग तीर्थंकरो को अवतार मानते ह वे भ्रम मे है। उनकी शब्दावली दार्शनिक नही, लौकिक धारणाओ के अज्ञान से बधी है। जैनधर्म का यह स्पष्ट आघोष है कि प्रत्येक व्यक्ति साधना के द्वारा आन्तरिक शक्तियो का विकास कर तीर्थंकर बन सकता है। तीर्थंकर बनने के लिए जीवन मे आन्तरिक शक्तियो का विकास परमावश्यक है।

तीर्थंकर और अन्य मुक्त आत्माओ मे अन्तर

जैनधर्म का यह स्पष्ट मन्तव्य है कि तीर्थंकर और अन्य मुक्त होने वाली आत्माओ मे आन्तरिक दृष्टि से कोई अन्तर नही है। केवल ज्ञान और केवलदर्शन प्रभृति आत्मिक शक्तियाँ दोनो मे समान होने के बावजूद भी तीर्थंकरो मे कुछ बाह्य विशेषताएँ होती ह जिनका वर्णन प्रस्तुत ग्रन्थ मे 'तीर्थंकरो की विशेषता' शीर्षक मे किया गया है। ये लोकोपकारी सिद्धियाँ तीर्थंकरो के अतिरिक्त अन्य मुक्त आत्माओ मे नही होती। वे प्राय तीर्थंकरो के समान धर्म-प्रचारक भी नही होते। वे स्वय अपना विकास कर मुक्त हो जाते है किन्तु जन-जन के अन्तर्मानस पर चिरस्थायी व अक्षुण्ण आध्यात्मिक प्रभाव तीर्थंकर जैसा नही जमा पाते। जैनधर्म ढाई द्वीप मे पन्द्रह कर्म-भौमिक क्षेत्र मानता है। उनमे एक सौ सत्तर क्षेत्र ऐसे माने गए है जहाँ पर तीर्थंकर विचरते है। एक समय मे एक क्षेत्र मे सर्वज्ञ अनेक हो सकते है किन्तु तीर्थंकर एक समय मे एक ही होते है। एक सौ सत्तर क्षेत्र तीर्थंकरो के विचरण-क्षेत्र है अत एक साथ एक सौ सत्तर तीर्थंकर हो सकते है, इससे अधिक तीर्थंकर एक साथ नही होते। तीर्थंकर और अन्य मुक्त आत्माओ मे जो यह अन्तर है वह देहधारी अवस्था मे ही रहता है, देह मुक्त अवस्था मे नही। सिद्ध रूप मे सब आत्माएँ एक समान है।

चौबीस तीर्थंकर

प्रस्तुत अवसर्पिणी काल मे चौबीस तीर्थंकर हुए हे। चौबीस तीर्थं-

करो के सम्बन्ध मे सबसे प्राचीन उल्लेख दृष्टिवाद के मूल प्रथमानुयोग मे था पर आज वह अनुपलब्ध है।[४२] आज सबसे प्राचीन उल्लेख समवायाङ्ग[४३] कल्पसूत्र[४४] आवश्यक निर्युक्ति[४५] आवश्यक मलयगिरि-वृत्ति,[४६] आवश्यक हारिभद्रीयावृत्ति[४७] और आवश्यकचूर्णि[४८] मे मिलता है। इसके पश्चात् चउप्पन्न महापुरिसचरिय[४९] त्रिषष्टिशलाका पुरुषचरित्र,[५०] महापुराण[५१] उत्तरपुराण[५२] आदि ग्रन्थो मे विस्तार से प्रकाश डाला गया है। स्वतन्त्र रूप से एक-एक तीर्थंकर पर विभिन्न आचार्यो ने सस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश गुजराती, राजस्थानी, हिन्दी व अन्य प्रान्तीय भाषाओ मे अनेकानेक ग्रन्थ लिखे है व लिखे जा रहे है।

चौबीस अवतार

जैनधर्म मे चौबीस तीर्थंकरो की इतनी अधिक महिमा रही है कि वैदिक और बौद्ध परम्परा ने भी उसका अनुसरण किया। वैदिक परम्परा अवतारवादी है इसलिए उसने तीर्थंकर के स्थान पर चौबीस अवतार की कल्पना की है। जब हम पुराण साहित्य का गहराई से अनुशीलन-परिशीलन करते है तो स्पष्ट ज्ञात होता है कि अवतारो की सख्या एक सी नही है। भागवत पुराण मे अवतारो के तीन विवरण मिलते है जो अन्य पुराणो मे प्राप्त होने वाली दशावतार परम्परा से

---

४२ (क) समवायाङ्ग सूत्र १४७
   (ख) नन्दी सूत्र, सूत्र ५६ पृ० १५१-१५२, पूज्य श्री हस्तीमल जी म० द्वारा सम्पादित

४३ समवायाङ्ग २४

४४ कल्पसूत्र तीर्थंकर वर्णन

४५ आवश्यक निर्युक्ति ३६९

४६ भाग ३, आगमोदय समिति

४७ भाग ३, देवचन्द्र लालभाई जैन पुस्तकोद्धार फड, सूरत।

४८ भाग-१-२-रतलाम

४९ (क) आचार्य शीलाङ्क रचित,
   (ख) चौप्पन्न महापुरुषोना चरितो-अनुवाद आ० हेमसागर जी

५० आचार्य हेमचन्द्र—प्र० जैन धर्म सभा, भावनगर

५१ आचार्य जिनसेन—भारतीय ज्ञानपीठ, वाराणसी

५२ आचार्य गुणभद्र—भारतीय ज्ञानपीठ, वाराणसी

किञ्चित् पृथक है। भागवत मे एक स्थान पर भगवान के असख्य अवतार बताए हे।[५३]

दूसरे स्थान पर सोलह, बावीस और चौबीस को प्रमुख माना है।[५४] दशम स्कध की एक सूची मे बारह अवतारो के नाम गिनाए गए हे।[५५] इससे अवतारो की परम्परा का परिज्ञान होता है। उक्त सूची मे आगे चलकर पाँचरात्र वासुदेव के ही पर्याय विभवो की सख्या २४ से बढकर ३९ तक हो गई है।[५६]

५३ भागवत पुराण १।३।२६,
५४ भागवत पुराण १०।२।४०
५५ भागवत पुराण १०।२।४०
५६ भाण्डारकर ने हमाद्रि द्वारा उद्धृत और बृहद्‌हारित स्मृति १०।५।१४५ मे प्राप्त उन २४ विभवो का उल्लेख किया है। उन विभवो के नाम इस प्रकार हैं —(१) केशव (२) नारायण (३) माधव (४) गोविन्द (५) विष्णु (६) मधुसूदन (७) त्रिविक्रम (८) वामन (९) श्रीधर (१०) हरिकेश (११) पद्मनाभ (१२) दामोदर (१३) सकर्षण (१४) वासुदेव (१५) प्रद्युम्न (१६) अनिरुद्ध (१७) पुरुपोत्तम (१८) अधोक्षज (१९) नरसिंह (२०) अच्युत (२१) जर्नादन (२२) उपेन्द्र (२३) हरि (२४) श्रीकृष्ण।
ये विष्णु के चौबीस अवतारो की अपेक्षा चौबीस नाम ही अधिक उचित प्रतीत होते ह, क्योकि अवतार और विभवो मे यह अन्तर हे कि अवतारो को उत्पन्न होनेवाला माना हे वहाँ पर विभव' अजहत्' स्वभाव वाले हें। जिसप्रकार दीप से दीप प्रज्वलित होता है वैसे ही वे उत्पन्न होते हैं।
'तत्वत्रय' पृष्ठ १९२ के अभिमतानुसार पाँचरात्रो मे पृष्ठ २६ एव पृष्ठ ११२-११३ मे उद्धृत 'विष्वक्सेन सहिता' ओर 'अहिबुध्न्य सहिता' (५, ५०-५७) मे ३९ विभवो के नाम दिये ह।
श्रेडर ने 'इन्ट्राडक्शनटू अहिबुध्न्यसहिता' पृष्ठ ४१-४९ पर भागवत के अवतारो के साथ तुलना करते हुए उनमे चौबीस अवतारो का समावेश किया हे। ३९ विभवो के नाम इस प्रकार हे —(१) पद्मनाभ (२) ध्रुव (३) अनन्त (४) शक्त्यात्मन (५) मघुसूदन (५) विद्याधिदेव (७) कपिल (८) विश्वरूप (९) विहडगम (१०) क्रोधात्मन (११) वाडवायक्त्र (१२) धर्म (१३) वागीश्वर (१४) एकार्णवशायी (१५) कमठेश्वर

भागवत के आधार पर लघु भागवतामृत मे यह सख्या २५ तथा 'सात्वत तन्त्र' मे लगभग ४१ से भी अधिक हो गई है ।[५७] इस तरह मध्य कालीन वैष्णव सम्प्रदायो मे भी कोई सर्वमान्य सूची गृहीत नही हुई है ।

हिन्दी साहित्य मे चौबीस अवतारो का वर्णन है उसमे भागवत की तीनो सूचियो का समावेश किया गया है । सूरदास[५८] बारहह[५९] रामानन्द[६०] रज्जब[६१] बैजू[६२] लखनदास[६३] नाभादास[६४] आदि ने भी चौबीस अवतारो का वर्णन किया है ।

इन चौबीस अवतारो मे मत्स्य, वराह, कूर्म, आदि अवतार पशु है, हस पक्षी है, कुछ अवतार पशु और मानव दोनो के मिश्रित है जैसे नृसिह, हयग्रीव आदि ।

वैदिक परम्परा मे अवतारो की सख्या मे क्रमश परिवर्तन होता रहा है । जैन तीर्थंकरो की तरह उनका व्यवस्थित रूप नही मिलता । इतिहासकारो ने 'भागवत' की प्रचलित चौबीस अवतारो की परम्परा को जैनो से प्रभावित माना है । श्री गौरीचन्द हीराचन्द ओझा का

---

(१६) वराह (१७) नृसिंह (१८) पीयूपहरन (१९) श्रीपति (२०) कान्तात्मन (२१) राहुजीत (२२) कालनेमिहन (२३) पारिजातहर (२२) लोकनाथ (२४) शान्तात्मा (२६) दत्तात्रेय (२७) न्यग्रोधशायी (२८) एक शृङ्गतनु (२९) वामनदेव (३०) त्रिविक्रम (३१) नर (३२) नारायण (३३) हरि (३४) कृष्ण (३५) परशुराम (३६) राम (३७) देविविध (३८) कल्कि (३९) पातालशयन ।

—कलेक्टेड वर्क्स आफ० आर० जी० भण्डारकर, पृ० ६६-६७

५७ लघुभागवतामृत, पृ० ७० श्लोक ३२, सात्वततन्त्र, द्वितीय पटल

५८ सूरसागर पृ० १२६, पद ३७८

५९ अवतार चरित, स० १७३३, नागरी प्रचारिणी सभा (हस्तलिखित प्रति)

६० न तहाँ चौबीसू बप बरन ।

—रामानन्द की हिन्दी रचनाएँ, नागरी प्रचारिणी, सभा पृ० ८६

६१ एक कहे अवतार दस, एक कहे चौबीस—रज्जब जी की बानी, पृ० ११८

६२ आप अवतार भये, चौबीस वपुधर—रागकल्पद्रुम, जिल्द १, पृ० ४५

६३ चतुर्विश लीलावतारी—राग कल्पद्रुम, जि० १ पृ० ५१९

६४ चौबीस रूप लीना रुचिर

मन्तव्य है कि चौबीस अवतारो की यह कल्पना भी बौद्धो के चौबीस बुद्ध और जैनो के चौबीस तीर्थकरो की कल्पना के आधार पर हुई है ।[६५]

चौबीस बुद्ध

भागवत मे जिसप्रकार विष्णु, वासुदेव या नारायण के अनेक अवतारो की चर्चा की गई है उसी प्रकार लकावतार सूत्र मे कहा गया है कि बुद्ध अनन्त रूपो मे अवतरित होगे और सर्वत्र अज्ञानियो मे धर्म-देशना करेगे ।[६६] लकावतार मे भागवत के समान चौबीस बुद्धो का उल्लेख है ।

सूत्रालकार[६७] मे बुद्धत्व-प्राप्ति के लिए प्रयत्न का उल्लेख करते हुए कहा गया है कि कोई भी मनुष्य प्रारम्भ से ही बुद्ध नही होता। बुद्धत्व की उपलब्धि के लिए पुण्य और ज्ञान-सभार की आवश्यकता होती है। तथापि बुद्धो की सख्या मे अभिवृद्धि होती गई। प्रारम्भ मे यह मान्यता रही कि एक साथ दो बुद्ध नही हो सकते किन्तु महायान मत ने एक समय मे अनेक बुद्धो का अस्तित्व स्वीकार किया है। उनका मन्तव्य है कि एक लोक मे अनेक बुद्ध एक साथ हो सकते है ।[६८]

इससे बुद्धो की सख्या मे अत्यधिक वृद्धि हुई है। सद्धर्म पुडरीक मे अनन्त बोधिसत्व बताए गए है और उनकी तुलना गगा के रेती के कणो से की गई है। इन सभी बोधिसत्वो को लोकेन्द्र माना है ।[६९] उसके पश्चात् यह उपमा बुद्धो के लिए रूढ सी हो गई है ।[७०]

लकावतार सूत्र मे यह भी कहा गया है कि बुद्ध किसी भी रूप को धारण कर सकते है, कितने ही सूत्रो मे यह भी बताया गया है कि गगा की रेती के समान असख्य बुद्ध भूत, वर्तमान और भविष्य मे तथा-गत रूप होते है ।[७१] जैसे विष्णुपुराण और भागवत मे विष्णु के असख्य

६५ मध्यकालीन भारतीय सस्कृति (१९५१ स०) पृ० १३,

६६ लकावतार सूत्र ४० पृ० २२९

६७ सूत्रालकार—९।७७

६८ बौद्ध धर्म दर्शन पृ० १०४, १०५,

६९ सद्धर्म पुण्डरीक १४।९ पृ० ३०२

७० मध्यकालीन साहित्य मे अवतारवाद पृ० २२

७१ लकावतार सूत्र पृ० १९८

अवतार माने गये है वैसे ही बुद्ध भी असख्य अवतरित होते हे। जहाँ भी लोग अज्ञान अँधकार मे छटपटाते है वहाँ पर बुद्ध का धर्मोपदेश सुनने को मिलता है।[७२]

बौद्ध साहित्य मे प्रारम्भ मे पुनर्जन्म को सिद्ध करने के लिए बुद्ध के असख्य अवतारो की कल्पना की गई किन्तु वाद मे चलकर बुद्ध के अवतारो की सख्या ५, ७ २४, और ३६ तक सीमित हो गई।

जातककथाओ का दूरेनिदान, अविदूरेनिदान और सन्तिकेनिदान के नाम से जो विभाजन किया गया है उनमे से दूरेनिदान[७३] मे एक कथा इस प्रकार प्राप्त होती है।

"प्राचीनकाल मे सुमेध नामक परिव्राजक थे। उन्ही के समय दीपकर बुद्ध उत्पन्न हुए। लोग दीपकर बुद्ध के स्वागत हेतु मार्ग सजा रहे थे। सुमेध परिव्राजक उस कीचड मे मृगचर्म बिछा कर लेट गया। उस मार्ग से जाते समय सुमेध की श्रद्धा व भक्ति को देख कर बुद्ध ने भविष्यवाणी की—"यह कालान्तर मे बुद्ध होगा।" उसके पश्चात् सुमेध ने अनेक जन्मो मे सभी पारमिताओ की साधना पूर्ण की। उन्होने विभिन्न कल्पो मे चौबीस बुद्धो की सेवा की और अन्त मे लुम्बिनी मे सिद्धार्थ नाम से उत्पन्न हुए।[७४]

प्रस्तुत कथा मे पुनर्जन्म की ससिद्धि के साथ ही विभिन्न कल्पो मे चौबीस बुद्ध हुए यह बताया गया है।

भदन्त शान्तिभिक्षु का मन्तव्य है कि ईसा पूर्व प्रथम या द्वितीय शताब्दी मे चौबीस बुद्धो का उल्लेख हो चुका था।[७५]

ऐतिहासिक दृष्टि से जब हम चिन्तन करते है तब स्पष्ट ज्ञात होता है कि चौबीस तीर्थकर और चौबीस बुद्ध की अपेक्षा, वैदिक चौबीस अवतार की कल्पना उत्तरवर्ती है, क्योकि महाभारत के परिवर्द्धित रूप मे भी दशावतारो का ही उल्लेख है। महाभारत से लेकर श्रीमद्-भागवत तक के अन्य पुराणो मे १०, ११, १२, १४ और २२ तक की सख्या मिलती है किन्तु चौबीस अवतार का स्पष्ट उल्लेख भागवत

---

७२ लकावतार सूत्र ४० पृ० २२९

७३ जातक अट्ठकथा दूरेनिदान, पृ० २ से ३६

७४ महायान—भदन्त शान्तिभिक्षु की प्रस्तावना, पृ० १५

७५ मध्यकालीन साहित्य मे अवतारवाद पृ० २४

(२।७) मे ही मिलता है। श्रीमद्भागवत का काल विद्वान अधिक से अधिक छट्ठी शताब्दी मानते है।[७६]

वैदिक परम्परा की तरह बुद्धो की सख्या भी निश्चित नही है। बुद्धो की सख्या अनत भी मानी गई है। ईसा के वाद सात मानुषी बुद्ध माने गए है।[७७] और फिर चौबीस बुद्ध माने गये है।[७८] महाभारत की एक सूची मे ३२ बुद्धो के नाम मिलते है।[७९] किन्तु जैन साहित्य मे इस प्रकार की विभिन्नता नही है। वहा तीर्थंकरो की सख्या मे एकरूपता है। चाहे श्वेताम्बर ग्रन्थ हो चाहे दिगम्बर सम्प्रदाय के ग्रन्थ हो, उनमे सभी जगह चौबीस तीर्थंकरो का ही उल्लेख है।

यह भी स्मरण रखना चाहिये कि चौबीस तीर्थंकरो का उल्लेख समवायाग, भगवती जैसे प्राचीन अग ग्रन्थो मे हुआ है। अग ग्रन्थो के अर्थ के प्ररूपक स्वय भगवान महावीर है और वर्तमान मे जो अग सूत्र प्राप्त है उनके सूत्र रचयिता गणधर सुधर्मा है। भगवान महावीर को ई० पूर्व ५५७ मे केवलज्ञान हुआ और ५२७ मे उनका परिनिर्वाण हुआ।[८०] इस दृष्टि से समवायाग का रचना काल ५५७ से ५२७ के मध्य मे है।[८१] स्पष्ट है कि चौबीस तीर्थंकरो का उल्लेख चौबीस बुद्ध और चौबीस अवतारो की अपेक्षा बहुत ही प्राचीन है। जब जैनो मे चौबीस तीर्थंकरो की महिमा और गरिमा अत्यधिक बढ गई तब सभव है बौद्धो ने और वैदिक परम्परा के विद्वानो ने अपनी-अपनी दृष्टि से बुद्ध और अवतारो की कल्पना की, पर जैनियो के तीर्थंकरो की तरह उनमे व्यवस्थित रूप न आ सका। चौबीस तीर्थंकरो की जितनी सुव्यवस्थित सामग्री जैन ग्रन्थो मे उपलब्ध होती है उतनी बौद्ध साहित्य मे तथा वैदिक वाङ्मय मे अवतारो की नही मिलती। जैन तीर्थंकर कोई

---

७६ भागवत सम्प्रदाय, पृ० १५३ प० वलदेव उपाध्याय

७७ बौद्ध धर्म दर्शन पृ० १२१, आचार्य नरेन्द्रदेव

७८ वही, पृ० १०५

७९ दी बौद्धिष्ट इकानोग्राफी पृ० १० विजयघोप भट्टाचार्य

८० आगम और त्रिपिटक एक अनुशीलन पृ० ११७

८१ कितने ही विद्वान् ९६० वीर-निर्वाण की रचना मानते है, पर वह लेखन का समय है, रचना का नही।

भी पशु पक्षी आदि नही हुए है, जब कि बौद्ध और वैदिक अवतारो मे यह बात नही है।

अन्तिम तीर्थंकर भगवान महावीर ने अनेक स्थलो पर यह कहा है कि "जो पूर्व तीर्थकर पार्श्व ने कहा है वही मैं कह रहा हूं।[८२] पर त्रिपिटक मे बुद्ध ने कही भी यह नही कहा कि पूर्व बुद्धो ने [८३] यह कहा है जो मै कह रहा हूँ", पर वे सर्वत्र यही कहते है। "मैं ऐसा मानता हूँ।" इससे भी यह सिद्ध होता है कि बुद्ध के पूर्व बौद्ध धर्म की कोई भी परम्परा नही थी, जबकि महावीर के पूर्व पार्श्वनाथ की परम्परा चल रही थी।

आदि तीर्थंकर ऋषभदेव

चौवीस तीर्थंकरो मे प्रथम तीर्थंकर भगवान् ऋषभदेव हैं। उनके जीवनवृत्त का परिचय पाने के लिए आगम व आगमेतर साहित्य ही प्रबल प्रमाण है। जैनदृष्टि से भगवान ऋषभदेव वर्तमान अवसर्पिणीकाल के तृतीय आरे के उपसहारकाल मे हुए है।[८४] चौवीसवें तीर्थकर भगवान महावीर और ऋषभदेव के बीच का समय असख्यात वर्ष का है।[८५] वैदिकदृष्टि से ऋषभदेव प्रथम सतयुग के अन्त मे हुए है और राम व कृष्ण के अवतारो से पूर्व हुए है।[८६] जैन दृष्टि से आत्मविद्या के प्रथम पुरस्कर्ता भगवान ऋषभदेव है।[८७] वे प्रथम राजा, प्रथम जिन, प्रथम केवली, प्रथम तीर्थंकर और प्रथम धर्मचक्रवर्ती थे।[८८] ब्रह्माण्डपुराण मे ऋषभदेव को दस प्रकार के

---

८२ व्याख्याप्रज्ञप्ति श० ५, उद्दे० ९ सू० २२७
वही, श० ९। उद्दे० ३२,

८३ मज्झिमनिकाय ५६, अगुत्तर निकाय

८४ (क) जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति (ख) कल्पसूत्र

८५ कल्पसूत्र

८६ जिनेन्द्रमत दर्पण, भाग १, पृ० १०

८७ **धम्माण कासवो मुह,**—उत्तराध्ययन १६, अ० २५

८८ उसहे णाम अरहा कोसलिए पढमराया, पढमजिणे, पढमकेवली पढमतित्थयरे पढमधम्मवरचक्कवट्टी समुप्पज्जित्थे।
—जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति २।३०

(२।७) मे ही मिलता है। श्रीमद्‌भागवत का काल विद्वान अधिक से अधिक छट्‌ठी शताब्दी मानते है।[७६]

वैदिक परम्परा की तरह बुद्धो की सख्या भी निश्चित नही है। बुद्धो की सख्या अनत भी मानी गई है। ईसा के बाद सात मानुषी बुद्ध माने गए है।[७७] और फिर चौबीस बुद्ध माने गये है।[७८] महाभारत की एक सूची मे ३२ बुद्धो के नाम मिलते है।[७९] किन्तु जैन साहित्य म इस प्रकार की विभिन्नता नही है। वहा तीर्थकरो की सख्या मे एकरूपता है। चाहे श्वेताम्बर ग्रन्थ हो चाहे दिगम्बर सम्प्रदाय के ग्रन्थ हो, उनमे सभी जगह चौबीस तीर्थकरो का ही उल्लेख है।

यह भी स्मरण रखना चाहिये कि चौबीस तीर्थंकरो का उल्लेख समवायाग, भगवती जैसे प्राचीन अग ग्रन्थो मे हुआ है। अग ग्रन्थो के अर्थ के प्ररूपक स्वय भगवान महावीर है और वर्तमान मे जो अग सूत्र प्राप्त है उनके सूत्र रचयिता गणधर सुधर्मा है। भगवान महावीर को ई० पूर्व ५५७ मे केवलज्ञान हुआ और ५२७ मे उनका परिनिर्वाण हुआ।[८०] इस दृष्टि से समवायाग का रचना काल ५५७ से ५२७ के मध्य मे है।[८१] स्पष्ट है कि चौबीस तीर्थकरो का उल्लेख चौबीस बुद्ध और चोबीस अवतारो की अपेक्षा बहुत ही प्राचीन है। जब जैनो मे चौबीस तीर्थकरो की महिमा और गरिमा अत्यधिक बढ गई तब सभव है बौद्धो ने और वैदिक परम्परा के विद्वानो ने अपनी-अपनी दृष्टि से बुद्ध और अवतारो की कल्पना की, पर जैनियो के तीर्थकरो की तरह उनमे व्यवस्थित रूप न आ सका। चौबीस तीर्थकरो की जितनी सुव्यवस्थित सामग्री जैन ग्रन्थो मे उपलब्ध होती है उतनी बौद्ध साहित्य मे तथा वैदिक वाड्मय मे अवतारो की नही मिलती। जैन तीर्थकर कोई

---

७६ भागवत सम्प्रदाय, पृ० १५३ प० बलदेव उपाध्याय

७७ बौद्ध धर्म दर्शन पृ० १२१, आचार्य नरेन्द्रदेव

७८ वही, पृ० १०५

७९ दी बौद्धिष्ट इकानोग्राफी पृ० १० विजयघोप भट्टाचार्य

८० आगम और त्रिपिटक एक अनुशीलन पृ० ११७

८१ कितने ही विद्वान् ९६० वीर-निर्वाण की रचना मानते है, पर वह लेखन का समय है, रचना का नही।

भी पशु पक्षी आदि नही हुए है, जब कि बौद्ध और वैदिक अवतारो मे यह बात नही है।

अन्तिम तीर्थंकर भगवान महावीर ने अनेक स्थलो पर यह कहा है कि "जो पूर्व तीर्थंकर पार्श्व ने कहा है वही मैं कह रहा हू।[८२] पर त्रिपिटक मे बुद्ध ने कही भी यह नही कहा कि पूर्व बुद्धो ने [८३] यह कहा है जो मै कह रहा हू", पर वे सर्वत्र यही कहते हे। "मै ऐसा मानता हूँ।" इससे भी यह सिद्ध होता है कि बुद्ध के पूर्व बौद्ध धर्म की कोई भी परम्परा नही थी, जबकि महावीर के पूर्व पार्श्वनाथ की परम्परा चल रही थी।

आदि तीर्थंकर ऋषभदेव

चौवीस तीर्थंकरो मे प्रथम तीर्थंकर भगवान् ऋषभदेव है। उनके जीवनवृत्त का परिचय पाने के लिए आगम व आगमेतर साहित्य ही प्रबल प्रमाण है। जैनदृष्टि से भगवान ऋषभदेव वर्तमान अवसर्पिणीकाल के तृतीय आरे के उपसहारकाल मे हुए हे।[८४] चोबीसवें तीर्थंकर भगवान महावीर और ऋषभदेव के बीच का समय असख्यात वर्ष का है।[८५] वैदिकदृष्टि से ऋषभदेव प्रथम सतयुग के अन्त मे हुए है और राम व कृष्ण के अवतारो से पूर्व हुए है।[८६] जैन दृष्टि से आत्मविद्या के प्रथम पुरस्कर्ता भगवान ऋषभदेव है।[८७] वे प्रथम राजा प्रथम जिन, प्रथम केवली, प्रथम तीर्थंकर और प्रथम धर्मचक्रवर्ती थे।[८८] ब्रह्माण्डपुराण मे ऋषभदेव को दस प्रकार के

---

८२ व्याख्याप्रज्ञप्ति श० ५, उद्दे० ९ सू० २२७
वही, श० ९। उद्दे० ३२,

८३ मज्झिमनिकाय ५६, अगुत्तर निकाय

८४ (क) जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति (ख) कल्पसूत्र

८५ कल्पसूत्र

८६ जिनेन्द्रमत दर्पण, भाग १, पृ० १०

८७ धम्माण कासवो मुह,—उत्तराध्ययन १६, अ० २५

८८ उसहे णाम अरहा कोसलिए पढमराया, पढमजिणे, पढमकेवली पढमतित्थयरे पढमधम्मवरचक्कवट्टी समुप्पज्जित्थे।
—जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति २।३०

धर्म का प्रवर्तक माना है।[८९] श्रीमद्भागवत से भी इसी बात की पुष्टि होती है। वहाँ यह बताया गया है कि वासुदेव ने आठवा अवतार नाभि और मरुदेवी के वहाँ धारण किया। वे ऋषभ रूप मे अवतरित हुए और उन्होने सब आश्रमो द्वारा नमस्कृत मार्ग दिखलाया[९०] एतदर्थ ही ऋषभदेव को मोक्षधर्म की विवक्षा से 'वासुदेवाश' कहा है[९१]

ऋषभदेव के सौ पुत्र थे। वे सभी ब्रह्मविद्या के पारगामी थे।[९२] उनके नौ पुत्रो को आत्मविद्या विशारद भी कहा है।[९३] उनके ज्येष्ठ पुत्र भरत तो महायोगी थे।[९४] स्वय ऋषभदेव को योगेश्वर कहा गया है।[९५] उन्होने विविध योगचर्याओ का आचरण किया था।[९६] जैनआचार्य उन्हे योगविद्या के प्रणेता मानते है।[९७] हठयोग प्रदीपिका मे भगवान् ऋषभदेव को हठयोग विद्या के उपदेशक के रूप मे नमस्कार किया है।[९८]

ऋषभदेव अपने विशिष्ट व्यक्तित्व के कारण वैदिक परम्परा मे काफी मान्य रहे है।

महाकवि सूरदास ने उनके व्यक्तित्व का चित्रण करते हुए लिखा है नाभि ने पुत्र के लिए यज्ञ किया उस समय यज्ञपुरुष[९९] ने स्वय

---

८९ इह इक्ष्वाकुकुलवशोद्भवेन नाभिसुतेन मरुदेव्या नन्दनेन।
महादेवेन ऋषभेण दसप्रकारो धर्म स्वयमेव चीर्ण।
—ब्रह्माण्डपुराण

९० अष्टमे मरुदेव्या तु नाभेर्जात उरुक्रम।
दर्शयन् वर्त्म धीराणा, सर्वाश्रमनमस्कृतम्। —श्रीमद्भागवत १।३।१३

९१ तमाहुर्वासुदेवाश मोक्ष धर्म विवक्षया। श्रीमद्भागवत ११।२।१६

९२ अवतीर्ण सुतशत, तस्यासीद् ब्रह्मपारगम्। —वही ११।२।१६

९३ श्रमणा वातरशना आत्मविद्या विशारदा। — वही ११।२।२०

९४ येषा खलु महायोगी भरतो ज्येष्ठ श्रेष्ठगुण आसीत।

९५ भगवान ऋषभदेवो योगेश्वर। —वही ५।५।६

९६ नानायोगचर्याचरणो भगवान् कैवल्यपतिर्ऋषभ। —वही ५।५।२५

९७ योगिकल्पतरु नौमि देव देव वृषध्वजम् —ज्ञानार्णव १।२।

९८ श्री आदिनाथ नमोस्तु तस्मै येनोपदिष्टा हठयोगविद्या।

९९ नाभि नृपति सुत हित जग कियौ।
जज्ञ पुरुष तब दरसन दियौ। —सूर सागर, पृ० १५० पद ४०९

दर्शन देकर जन्म लेने का वचन दिया जिसके फलस्वरूप ऋषभ की उत्पत्ति हुई।[१००]

सूरसारावली मे कहा गया है कि प्रियव्रत के वश मे उत्पन्न हरी के ही शरीर का नाम ऋषभदेव था। उन्होने इस रूप मे भक्तो के सभी कार्य पूर्ण किये।[१] अनावृष्टि होने पर स्वय वर्षा होकर बरसे और ब्रह्मावर्त मे अपने पुत्रो को ज्ञानोपदेश कर स्वय ने सन्यास ग्रहण किया। हाथ जोडे हुए प्रस्तुत अष्टसिद्धियो को उन्होने स्वीकार नही किया। ये ऋषभदेव मुनि परब्रह्म के अवतार बताए गए है।[२]

नरहरिदास ने भी इनकी अवतार कथा का वर्णन करते हुए इन्हे परब्रह्म परम पावन व अविनाशी कहा है।[३]

ऋग्वेद मे भगवान् श्री ऋषभदेव को पूर्वज्ञान का प्रतिपादक और दु खो का नाश करने वाला बतलाते हुए कहा है—'जैसे जल भरा मेघ वर्षा का मुख्य स्रोत है, जो पृथ्वी की प्यास को बुझा देता है, उसी प्रकार पूर्व ज्ञान के प्रतिपादक ऋषभ महान् है उनका शासन वर दे।" उनके शासन मे ऋषि परम्परा से प्राप्त प्राप्त पूर्व ज्ञान आत्मा के शत्रुओ क्रोधादिक का विध्वसक हो। दोनो ससारी और मुक्त-आत्माएँ अपने ही आत्म गुणो से चमकती है। अत वे राजा है। वे पूर्ण ज्ञान के आगार है और आत्म पतन नही होने देते।[४]

---

१०० मै हरता करता ससार मे लैहौ नृप गृह अवतार।
रिषभदेव तब जनमे आई, राजा कै गृह बजी बधाई।
—सूरसागर पृ० १५०

१ प्रियव्रत धरेउ हरि निज वपु ऋषभदेव यह नाम।
किन्हे व्याज सकल भक्तन को अग-अग अभिराम॥
—सूरसारावली पृ० ४

२ आठो सिद्धि भई सन्मुख जब करी न अगीकार।
जय जय जय श्री ऋषभदेव मुनि परब्रह्म अवतार।
—सूरसारावली पृ० ४

३ अवतार लीला। —हस्तलिखित

४ असूतपुर्वा वृषभो ज्यायनिया अरय शुरुध सन्ति पूर्वी दिवो न पाता विदथस्य धीभि क्षत्र राजाना पुदिवोदधाथे। —ऋग्वेद ५२।३८

तीर्थंकर ऋषभदेव ने सर्वप्रथम इस सिद्धान्त की उद्घोषणा की थी कि मनुष्य अपनी शक्ति का विकास कर आत्मा से परमात्मा बन सकता है। प्रत्येक आत्मा मे परमात्मा विद्यमान है जो आत्मसाधना से अपने देवत्व को प्रकट कर लेता है वही परमात्मा बन जाता है।" उनकी इस मान्यता की पुष्टि ऋग्वेद की ऋचा से होती है, जिसके चार शृ ग–अनत दर्शन, अनन्त ज्ञान, अनन्त सुख ओर अनन्त वीर्य है। तीन पाद है—सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र। दो शीर्ष—केवलज्ञान ओर मुक्ति है। तथा जो मन, वचन और काय इन तीनो योगो से बद्ध है (सयत है) उस ऋषभ ने घोषणा की कि महादेव (परमात्मा) मानव के भीतर ही आवास करता है।"[५]

अथर्ववेद[६] और यजुर्वेद से भी इस मान्यता के प्रमाण मिलते है। कही कही वे प्रतीक शैली से वर्णित है और कही-कही पर सकेत रूप से उल्लेख है।

अमेरिका और यूरोप के वनस्पति-शास्त्रियो ने अपनी अन्वेषणा से यह सिद्ध किया है कि खाद्य गेहू का उत्पादन सबसे पहले हिन्दु कुश और हिमालय के मध्यवर्ती प्रदेश मे हुआ।[७] सिन्धु घाटी की सभ्यता से भी यही पता लगता है कि कृषि का प्रारम्भ सर्वप्रथम इस देश मे हुआ था। जैन दृष्टि से भी कृषि विद्या के जनक ऋषभदेव है। उन्होने असि, मसि, और कृषि का प्रारम्भ किया था। भारतवर्ष मे ही नही अपितु विदेशो मे भी कही पर वे कृषि के देवता माने जाकर उपास्य रहे है, कही पर वर्षा के देवता माने गये है और कही पर 'सूर्यदेव' मानकर पूजे गये है। सूर्यदेव—उनके केवलज्ञान का प्रतीक रहा है।

---

५ चत्वारि शृ गा त्रयो अस्य पादा द्वे शीर्षे सप्तहस्तासो अस्य।
त्रिधा बद्धो वृषभो रोरवीति महादेवो मर्त्या आविवेश।
—ऋग्वेद

६ अथर्ववेद १९।४२।४

७ बौद्धदर्शन तथा अन्य भारतीयदर्शन पृ० ५२, लेखक—भरतसिंह उपाध्याय।

चीन और जापान भी उनके नाम और काम से परिचित रहे है। चीनी त्रिपटको मे उनका उल्लेख मिलता है। जापानी उनको 'रोकशव' (Rokshab) कहकर पुकारते है।

मध्य एशिया, मिश्र और यूनान तथा फोनेशिया एव फणिक लोगो की भापा मे वे 'रेशेफ' कहलाये, जिसका अर्थ सीगोवाला देवता है जो ऋपभ का अपभ्र श रूप है।[८]

शिवपुराण के अध्ययन से यह तथ्य और भी अधिक स्पष्ट हो जाता है।[९] डाक्टर राजकुमार जैन ने 'ऋपभदेव तथा शिव सम्बन्धी प्राप्य मान्यताए' शीर्षक लेख मे विस्तार से ऊहापोह किया है कि भगवान ऋपभदेव और शिव दोनो एक थे। अत जिज्ञासु पाठको को वह लेख पढने की प्रेरणा देता हूँ।[१०]

अक्कड और सुमेरो की सयुक्त प्रवृत्तियो से उत्पन्न बेवीलोनिया की सस्कृति और सभ्यता बहुत प्राचीन मानी जाती है। उनके विजयी राजा हम्मुरावी (२१२३—२०८१ ई० पू०) के शिलालेखो से ज्ञात होता है कि स्वर्ग और पृथ्वी का देवता वृपभ था।[११]

सुमेर के लोग कृषि के देवता के रूप मे अर्चना करते थे। जिसे आबू या तामुज कहते थे।[१२] वे बैल को विशेष पवित्र समझते थे।[१३]

---

८ (क) भगवान् ऋपभदेव और उनकी लोकव्यापी मान्यता-लेखक-कामता प्रसाद जैन, आचार्य भिक्षु स्मृति ग्रन्थ द्वि० ख पृ० ४

(ख) बाबू छोटेलाल जैन स्मृति ग्रन्थ पृ० २०४

९ **इत्थ प्रभाव ऋषभोऽवतार शकरस्य मे।**
सता गतिर्दीन बन्धुर्नवम कथितस्तव ॥
ऋषभस्य चरित्र हि परमपावन महत्।
स्वर्ग्ययशस्यमायुष्य श्रोतव्य वै प्रयत्नत ॥

—शिवपुराण ४।४७-४८

१० मुनि हजारीमल स्मृति ग्रन्थ पृ० ६०९-६२९

११ वाबू छोटेलाल जैन स्मृति ग्रन्थ पृ० १०५

१२ विल ड्यूरेण्ट द स्टोरी ऑव सिविलिजेशन (ओवर अरियण्टल हेरिटेज) न्यूयार्क १९५४ पृ० २१९

१३ वही पृ० १२७

सुमेर तथा बाबुल के एक धर्म शास्त्र मे 'अर्हशम्म' का उल्लेख मिलता है।[१४] 'अह' शब्द अर्हत का ही सक्षिप्त रूप जान पडता है।

हित्ती जाति पर भी भगवान् ऋषभदेव का प्रभाव जान पडता है। उनका मुख्य देवता 'ऋतुदेव' था। उसका वाहन वैल था जिसे 'तेशुव' कहा जाता था, जो 'तित्थयर उसभ' का अपभ्र श ज्ञात होता है।[१५]

ऋग्वेद मे भगवान ऋषभ का उल्लेख अनेक स्थलो पर हुआ है।[१६] किन्तु टीकाकारा ने साम्प्रदायिक भावना के कारण अथ मे परिवर्तन कर दिया हे जिसके कारण कई स्थल विवादास्पद हो गये है। जब हम साम्प्रदायिक पूर्वाग्रह का चश्मा उतारकर उन ऋचाओ का अध्ययन करते हे तव स्पष्ट ज्ञात होता है कि यह भगवान ऋषभदेव के सम्बन्ध मे ही कहा गया है।

वैदिक ऋषि भक्ति भावना से विभोर होकर ऋषभदेव की स्तुति करता हुआ कहता है—

हे आत्मद्रष्टा प्रभो! परम सुख पाने के लिए मैं तेरी शरण मे आना चाहता हूँ, क्योकि तेरा उपदेश और तेरी वाणी शक्तिशाली है—उनको मैं अवधारण करता हूँ। हे प्रभो! सभी मनुष्यो और देवो मे तुम्ही पहले पूर्वयाया (पूर्वगत ज्ञान के प्रतिपादक) हो।"[१७]

ऋषभदेव का महत्व केवल श्रमण परम्परा मे ही नही अपितु ब्राह्मण परम्परा मे भी रहा है। वहाँ उन्हे आराध्यदेव मानकर मुक्त कठ से

---

१४ वही प० १९९

१५ विदेशी सस्कृतियो मे अहिंसा—डा० कामताप्रसाद जैन गुरुदेव रत्न-मुनि स्मृति ग्रन्थ, पृ० ४०३

१६ ऋग्वेद सहिता

मण्डल १	अध्याय २४	सूत्र १९०	मन्त्र १
,, २	,, ४	,, ३३	,, १५
,, ५	,, २	,, २८	,, ४
,, ६	,, १	॥ १	,, ८
,, ६	,, २	,, १९	,, ११
,, १०	,, १२	,, २६	,, १

आदि २

१७ —ऋग्वेद ३।३४।२

गुणानुवाद किया गया है। सुप्रसिद्ध वैदिक साहित्य के विद्वान् प्रो० विरुपाक्ष एम० ए० वेदतीर्थ और आचार्यविनोवा भावे जैसे वहुश्रुत विचारक ऋग्वेद आदि मे ऋषभदेव की स्तुति के स्वर सुनते हे।[१८]

ऋग्वेद मे भगवान ऋषभदेव के लिए 'केशी' शब्द का प्रयोग हुआ है। वातरशन मुनि के प्रकरण मे केशी की स्तुति की गई हे जो स्पष्ट रूप से भगवान ऋषभदेव से सम्बन्धित है।[१९]

ऋग्वेद के दूसरे स्थल पर केशी और ऋषभ का एक साथ वर्णन हुआ है।[२०] जिस सूत्र मे यह ऋचा आयी है उसकी प्रस्तावना मे निरुक्त के जो **'मुद्गलस्य हृता गाव'** प्रभृति श्लोक अङ्कित किए गये हे, उनके अनुसार मुद्गल ऋषि की गाये तस्कर चुरा कर ले गये थे। उन्हे लौटाने के लिए ऋषि ने केशी वृषभ को अपना सारथी बनाया, जिसके वचन मात्र से गाये आगे न भागकर पीछे की ओर लोट पडी। प्रस्तुत ऋचा पर भाष्य करते हुए आचार्य सायण ने पहले तो वृषभ और केशी का वाच्यार्थ पृथक् बताया किन्तु प्रकारान्तर से उन्होने उसे स्वीकार किया है।[२१]

मुद्गल ऋषि के सारथी (विद्वान नेता) केशी वृषभ जो शत्रुओ का विनाश करने के लिये नियुक्त थे, उनकी वाणी निकली, जिसके फलस्वरूप जो मुद्गल ऋषि की गाये (इन्द्रिया) जुते हुए दुर्धर रथ (शरीर) के साथ दौड रही थी वे निश्चल होकर मौद्गलानी (मुद्गल की स्वात्म वृत्ति) की ओर लोट पडी।

---

१८ पूज्य गुरुदेव रत्नमुनि स्मृति ग्रन्थ इतिवृत्त

१९ ऋग्वेद १०।१३६,१

२० कर्कदवे वृषभो युक्त आसीद्
अवावचीत् सारथिरस्य केशी।
दुधर्युक्तस्य द्रवत सहानस
ऋच्छन्ति मा निष्पदो मुद्गलानीम्॥

—ऋग्वेद १०।१०२।६

२१ अथवा अस्य सारथि सहायभूत केशी प्रकृष्टकेशो वृषभ अवावचीत् भृशमशब्दयत् इत्यादि।

—सायण भाष्य

साराश यह है कि मुद्गल ऋपि की जो इन्द्रिया पराङ्मुखी थी, वे उनके योग युक्त ज्ञानी नेता केशी वृपभ के धर्मोपदेश को सुनकर अन्तर्मुखी हो गई ।

जैन साहित्य के अनुसार जब भगवान् ऋपभदेव साधु बने उस समय उन्होने चार मुष्टि केशो का लोच किया था ।[२२] सामान्य रूप से पाच-मुष्टि केश लोच करने की परम्परा रही है । भगवान् केशो का लोचकर रहे थे । दोनो भागो के केशो का लोच करना अवशेप था । उस समय शक्रेन्द्र की प्रार्थना से भगवान ने उसी प्रकार रहने दिया ।[२३] यही कारण है कि केश रखने से वे केशी या केशरियाजी के नाम से विश्रुत हुए । जैसे सिह अपने केशो के कारण से केशरी कहलाता है वैसे ही ऋपभदेव भी केशी, केशरी और केशरियाजी के नाम से पुकारे जाते है ।

भगवान ऋपभदेव, आदिनाथ[२४] हिरण्यगर्भ[२५] और ब्रह्मा आदि नामो से भी अभिहित हुए है ।[२६]

जैन और वैदिक साहित्य मे जिस प्रकार विस्तार से भगवान् ऋपभदेव का चरित्र चित्रित किया गया है वैसा बौद्ध साहित्य मे नही हुआ है । केवल कही-कही पर नाम निर्देश अवश्य हुआ है । जैसे 'धम्मपद' मे

२२ (क) जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति—वक्षस्कार २, सूत्र ३०

(ख) सयमेव चउमुट्ठिय लोय करेइ ।

—कल्पसूत्र सूत्र १९५

(ग) उच्चखान चतुसृभिर्मुष्टिभि शिरस कचान्
चतुसृभ्यो दिग्भ्य शेषामिव दातुमना प्रभु ।

—त्रिपष्टि० १।३।६७

२३ जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति, वक्षस्कार २, सूत्र ३० की वृत्ति

२४ ऋपभदेव · एक परिशीलन, पृ० ६६ — देवेन्द्र मुनि

२५ (क) हिरण्यगर्भो योगस्य, वेत्ता नान्य पुरातन ।

—महाभारत, शान्तिपर्व

(ख) विशेप विवेचन के लिए देखिए, कल्पसूत्र की प्रस्तावना ।

—देवेन्द्र मुनि

२६ ऋपभदेव एक परिशीलन—देवेन्द्र मुनि पृ० ९१-९२

"उसभ पवर वीर।[२७] गाथा मे अस्पष्ट रीति से ऋषभदेव और महावीर का उल्लेख हुआ है।[२८]

बौद्धाचार्य धर्मकीर्ति ने सर्वज्ञ आप्त के उदाहरण मे ऋषभ और महावीर का निर्देश किया है और बौद्धाचार्य आर्यदेव भी ऋषभदेव को ही जैन धर्म का आद्य प्रचारक मानते है। आर्यमजुश्री मूलकल्प' मे भारत के आदि सम्राटो मे नाभिपुत्र ऋषभ और ऋषभपुत्र भरत की गणना की गई है।[२९]

आधुनिक प्रतिभा-सम्पन्न मूर्धन्य चिन्तक भी इस सत्य तथ्य को बिना सकोच स्वीकार करने लगे है कि भगवान् ऋषभदेव से ही जैन-धर्म का प्रादुर्भाव हुआ है।

डॉक्टर हर्मन जेकोबी लिखते है कि 'इसमे कोई प्रमाण नही कि पार्श्वनाथ जैन धर्म के सस्थापक थे। जैन परम्परा प्रथम तीर्थकर ऋषभ देव को ही जैनधर्म का सस्थापक मानने मे एकमत है। इस मान्यता मे ऐतिहासिक सत्य की अत्यधिक सभावना है।[30]

डाक्टर राधाकृष्णन्[31] डाक्टर स्टीवेन्सन[32] और जयचन्द विद्यालकार[33] प्रभृति अन्य अनेक विज्ञो का भी यही अभिमत रहा है।[34]

अजित तथा अन्य तीर्थंकर

बौद्ध थेरगाथा मे एक गाथा अजित थेर के नाम की आयीहै[३५]।

---

२७ धम्मपद ४।२२

२८ इण्डियन हिस्टरिक क्वार्टरली, भाग ३, पृ० ४७३, ७५

२९ **प्रजापते सुतोनाभि तस्यापि आगमुच्यति।**
नाभिनो ऋषभपुत्रो वै सिद्धकर्म दृढव्रत ॥

—आर्यमजुश्रीमूलकल्प ३९०

३० इण्डि० एण्डि० जिल्द ९ पृ० १६३

३१ भारतीय दर्शन का इतिहास, जिल्द १ पृ० २८७

३२ कल्पसूत्र की भूमिका—डॉ० स्टीवेन्सन

३३ भारतीय इतिहास की रूपरेखा, पृ० ३८४

३४ (क) जैन साहित्य का इतिहास—पूर्व पीठिका, पृ० १०८
(ख) हिन्दी विश्वकोष, भाग ४, पृ० ४४४

३५ **मरणे मे भय नत्थि, निकन्ति नत्थि जीविते।**
सन्देह निक्खिपिस्सामि सम्पजानो पटिस्सतो। —थेरगाथा १।२०

उस गाथा की अट्ठकथा मे बताया गया है कि ये अजित ६१ कल्प से पूर्व प्रत्येक बुद्ध हो गए है। जैन साहित्य मे अजित नाम के द्वितीय तीर्थ कर है और सभवत बौद्ध साहित्य मे उन्हे ही प्रत्येकबुद्ध अजित कहा हो क्योकि दोनो की योग्यता, पौराणिकता, एव नाम मे साम्य है। महाभारत मे अजित और शिव को एक चित्रित किया गया है। हमारी दृष्टि से जैन तीर्थकर अजित ही वैदिक-बौद्ध परम्परा मे भी पूजनीय रहे है और उनके नाम का स्मरण अपनी दृष्टि से उन्होने किया है।

सोरेन्सन ने महाभारत के विशेप नामो का कोष बनाया है। उस कोप मे सुपार्श्व, चन्द्र, और सुमति ये तीन नाम जैन तीर्थकरो के आए है। महाभारतकार ने इन तीनो को असुर बताया है[36]। वैदिक मान्यता के अनुसार जैन-धर्म असुरो का धर्म रहा है। असुर लोग आर्हतधर्म के उपासक थे, इस प्रकार का वर्णन जैन साहित्य मे नही मिलता है किन्तु विष्णपुराण[37] पद्मपुराण[38] मत्स्य-पुराण[39] देवी भागवत[40] और महाभारत आदि मे असुरो को आर्हत या जैन धर्म का अनुयायी बताया है।

अवतारो के निरूपण मे जिस प्रकार भगवान ऋपभ को विष्णु का अवतार कहा है वैसे ही सुपार्श्व को कुपथ नामक असुर का अशावतार कहा है तथा सुमति नामक असुर के लिए वर्णन मिलता है कि वरुण प्रासाद मे उनका स्थान दैत्यो और दानवो मे था[41]।

महाभारत मे विष्णु और शिव के जो सहस्र नाम है उन नामो की सूची मे 'श्रेयस' अनन्त' धर्म, शान्ति और सभव ये नाम विष्णु के आये है, जो जैनधर्म के तीर्थकर भी थे। हमारी दृष्टि से इन तीर्थकरो के प्रभावशाली व्यक्तित्व और कृतित्व के कारण ही इनको वैदिक परम्परा ने भी विष्णु के रूप मे अपनाया है। नाम साम्य के अतिरिक्त इन महा पुरुपो का सम्बन्ध असुरो से जोडा गया है, क्योकि वे वेद-विरोधी थे।

३६ जैनसाहित्य का वृहद् इतिहास, भाग १, प्रस्तावना पृ० २६
३७ विष्णु-पुराण ३।१७।१८
३८ पद्मपुराण सृष्टि खण्ड, अध्याय १३, श्लो-१७०-४१३
३९ मत्स्यपुराण २४। ४३-४९
४० देवीभागवत ४।१३।५४-५७
४१ जैन साहित्य का वृहद् इतिहास, पृ० २६

वेद-विरोधी होने के कारण उनका सम्बन्ध श्रमण परम्परा से होना चाहिए यह बात पूर्ण रूप से सिद्ध है।

भगवान शान्तिनाथ सोलहवे तीर्थंकर हे। वे पूर्वभव मे जब मेघ रथ थे तब कबूतर की रक्षा की, यह घटना वसुदेवहिण्डी[४२] त्रिषष्टि-शलाका पुरुष चरित्र[४३] आदि मे मिलती है तथा शिवि राजा के उपाख्यान के रूप मे वैदिक ग्रन्थ महाभारत मे प्राप्त होती है और बौद्ध वाङ्मय मे 'जीमूतवाहन' के रूप मे चित्रित की गई है। प्रस्तुत घटना हमे बताती है कि जैन परम्परा केवल निवृत्ति रूप अहिंसा मे ही नही, पर, मरते हुए की रक्षा के रूप मे प्रवृतिरूप अहिंसा मे भी धर्म मानती है।

अठाहरवे तीर्थंकर 'अर' का वर्णन 'अगुत्तरनिकाय' मे भी आता है। वहा पर तथागत बुद्ध ने अपने से पूर्व जो सात तीर्थंकर हो गये थे उनका वर्णन करते हुए कहा कि उनमे से सातवे तीर्थंकर 'अरक' थे।[४४] अरक तीर्थंकर के समय का निरूपण करते हुए कहा कि अरक तीर्थंकर के समय मनुष्य की आयु ६० हजार वर्ष होती थी। ५०० वर्ष की लडकी विवाह के योग्य समभी जाती थी। उस युग मे मानवो को केवल छह प्रकार का कष्ट था—(१) शीत, (२) उष्ण, (३) भूख, (४) तृषा, (५) पेशाब, (६) मलोत्सर्ग। इसके अतिरिक्त किसी भी प्रकार की पीडा और व्याधि नही थी। तथापि अरक ने मानव को नश्वरता का उपदेश देकर धर्म करने का सन्देश दिया[४५]। उनके उस उपदेश की तुलना उत्तराध्ययन के दसवे अध्ययन से की जा सकती है।

---

४२ वसुदेवहिण्डी २१ लम्भक

४३ त्रिषष्टिशलाका पुरुषचरित्र ५।४

४४ भूतपुव्व भिक्खवे सुनेत्तोनाम सत्था अहोसि तित्थकरो कामेहु वीतरागो मुगपक्ख अरनेमि कुद्दालक हत्थि-पाल, जोतिपाल अरको नाम सत्था अहोसि तित्थकरो कामेसु वीतरागो। अरकस्स खो पन, भिक्खवे, सत्थुनो अनेकानि साव ानि अहेसु।

—अगुत्तरनिकाय, भाग ३, पृ० २५६-२५७

स० भिक्षु जगदीश कस्सपो, पालि प्रकाशन मडल विहार राज्य

४५ अगुत्तर निकाय, अरकसुत्त भाग ३, पृ० २५७ सम्पादक प्रकाशक वही।

जैनागम के अनुसार भगवान 'अर' की आयु ८४००० वर्ष है और उसके पश्चात् होनेवाले तीर्थंकर मल्ली की आयु ५५००० वर्ष की है।[४६] इस दृष्टि से 'अरक' का समय 'भगवान् अर' और भगवती मल्ली के मध्य मे ठहरता है। यहा पर यह भी स्मरण रखना चाहिए कि 'अरक' तीर्थकर से पूर्व बुद्ध के मत मे 'अरनेमि न ामक एक तीर्थंकर और हुए है। बुद्ध के बताये हुए अरनेमि और जैन तीर्थकर 'अर' सभवत दोनो एक हो।

उन्नीसवे तीर्थंकर मल्ली भगवती, बीसवे मुनि सुव्रत और इक्कीसवे तीर्थकर नमि का वर्णन वैदिक और बौद्धवाङ्मय मे नही मिलता।

ये सभी तीर्थकर प्रागैतिहासिक काल मे हुए हे।

अरिष्टनेमि

भगवान अरिष्टनेमि बाईसवे तीर्थकर ह। आधुनिक इतिहासविद् जो साम्प्रदायिक पूर्वाग्रह से मुक्त है और शुद्ध ऐतिहासिक दृष्टि से सम्पन्न हे, वे भगवान अरिष्टनेमि को भी एक ऐतिहासिक महापुरुष मानते हे।

तीर्थकर अरिष्टनेमि और वासुदेव श्री कृष्ण दोनो समकालीन ही नही, एक वशोद्भव भाई-भाई हे। दोनो अपने समय के महान् व्यक्ति है, किन्तु दोनो की जीवन दिशाए भिन्न भिन्न रही है। एक धर्मवीर है तो दूसरे कर्मवीर है। एक निवृत्तिपरायण है तो दूसरे प्रवृत्तिपरायण। एक प्रवृत्ति के द्वारा लौकिक प्रगति के पथ पर अग्रसर होते हे तो दूसरे निवृत्ति को प्रधान मानकर आध्यात्मिक विकास के सोपानो पर आरूढ होते हे।

भगवान अरिष्टनेमि के युग का गभीरतापूर्वक पर्यालोचन करने पर स्पष्ट हो जाता है कि उस युग के क्षत्रियो मे मासभक्षण की प्रवृति पर्याप्त मात्रा मे बढ गई थी। उनके विवाह के अवसर पर पशुओ का एकत्र किया जाना इस तथ्य को स्पष्ट करता है। हिसा की इस पैशाचिक प्रवृति की ओर जन सामान्य का ध्यान आकर्षित करने के लिए और क्षत्रियो को मास-भक्षण से विरत करने के लिए श्री अरिष्ट-नेमि ने जो पद्धति अपनाई, वह अद्भुत और असाधारण थी, उनका

४६ आवश्यक निर्युक्ति गा० ३२५—३२७, ५६

विवाह किये बिना लौट जाना मानो समग्र क्षत्रिय-जाति के पापो का प्रायश्चित था। उसका बिजली का सा प्रभाव दूर-दूर तक और बहुत गहरा हुआ।

एक सुप्रतिष्ठित महान् राजकुमार का दुल्हा बनकर जाना और ऐसे मौके पर विवाह किये बिना लौट जाना क्या साधारण घटना थी ? भगवान अरिष्टनेमि का वह बडे से बडा त्याग था और उस त्याग ने एक बार पूरे समाज को झकझोर दिया था। समाज के हित के लिए आत्म बलिदान का ऐसा दूसरा कोई उदाहरण मिलना कठिन है। इस आत्मोत्सर्ग ने अभक्ष्य भक्षण करने वालो और अपने क्षणिक सुख के लिए दूसरो के जीवन के साथ खिलवाड करने वाले क्षत्रियो की आखे खोल दी, आत्मालोचन के लिए विवश कर दिया और उन्हे अपने कर्तव्य एव दायित्व का स्मरण करा दिया। इस प्रकार परम्परागत अहिसा के शिथिल एव विस्मृत बने सस्कारो को उन्होने पुन: पुष्ट, जागृत व सजीव कर दिया और अहिसा की सकीर्ण बनी परिधि को विशालता प्रदान की। पशुओ और पक्षियो को भी अहिसा की परिधि मे समेट लिया। जगत के लिए भगवान का यह उद्बोधन एक अपूर्व वरदान था और वह आज तक भी भुलाया नही गया ह।

वेद, पुराण और इतिहासकारो की दृष्टि से भगवान अरिष्टनेमि का क्या महत्व है, इस प्रश्न पर "भगवान अरिष्टनेमि और कर्मयोगी श्री कृष्ण एक अनुशीलन" ग्रन्थ मे भगवान अरिष्टनेमि की ऐतिहासिकता[४७] शीर्षक के अन्तर्गत प्रमाण-पुरस्सर विवेचन किया गया है।

जैन ग्रन्थो की तरह वैदिक हरिवशपुराण मे श्रीकृष्ण और भगवान अरिष्टनेमि का वश वर्णन प्राप्त है।[४८] उसमे श्रीकृष्ण को अरिष्टनेमि का चचेरा भाई होना लिखा है। जैन और वैदिक परम्परा मे अन्तर यही है कि जैन परम्परा मे भगवान अरिष्टनेमि के पिता समुद्रविजय को वसुदेव का बडा भाई माना है। वे दोनो सहोदर थे, जबकि वैदिक हरिवशपुराण मे चित्रक और वसुदेव को चचेरा भाई माना है। श्री मद्भागवत मे चित्रक का नाम चित्ररथ दिया है। सभव है वैदिक ग्रन्थो मे समुद्रविजय का ही अपर नाम चित्रक या चित्ररथ आया हो।

---

४७ जैनधर्म का मौलिक इतिहास, पृ० २३९ से २४१ तक

४८ देखिए प्रस्तुत ग्रन्थ, पृ० २४१ से २४८

जैनागम के अनुसार भगवान 'अर' की आयु ८४००० वर्प है और उसके पश्चात् होनेवाले तीर्थंकर मल्ली की आयु ५५००० वर्प की है।[४६] इस दृष्टि से 'अरक' का समय 'भगवान् अर' और भगवती मल्ली के मध्य मे ठहरता है। यहा पर यह भी स्मरण रखना चाहिए कि 'अरक' तीर्थंकर से पूर्व बुद्ध के मत मे 'अरनेमि न ामक एक तीर्थंकर और हुए है। बुद्ध के वताये हुए अरनेमि और जैन तीर्थंकर 'अर' सभवत दोनो एक हो।

उन्नीसवे तीर्थंकर मल्ली भगवती, बीसवे मुनि सुव्रत और इक्कीसवे तीर्थंकर नमि का वर्णन वैदिक और वोद्धवाड्मय मे नही मिलता।

ये सभी तीर्थंकर प्रागैतिहासिक काल मे हुए हे।

अरिष्टनेमि

भगवान अरिष्टनेमि वाईसवे तीर्थंकर हे। आधुनिक इतिहासविद् जो साम्प्रदायिक पूर्वाग्रह से मुक्त है और शुद्ध ऐतिहासिक दृष्टि से सम्पन्न हे, वे भगवान अरिष्टनेमि को भी एक ऐतिहासिक महापुरुष मानते हे।

तीर्थंकर अरिष्टनेमि और वासुदेव श्री कृष्ण दोनो समकालीन ही नही, एक वशोद्भव भाई-भाई है। दोनो अपने समय के महान् व्यक्ति हे, किन्तु दोनो की जीवन दिशाए भिन्न-भिन्न रही है। एक धर्मवीर है तो दूसरे कर्मवीर है। एक निवृत्तिपरायण है तो दूसरे प्रवृत्तिपरायण। एक प्रवृत्ति के द्वारा लौकिक प्रगति के पथ पर अग्रसर होते हे तो दूसरे निवृत्ति को प्रधान मानकर आध्यात्मिक विकास के सोपानो पर आरूढ होते है।

भगवान अरिष्टनेमि के युग का गभीरतापूर्वक पर्यालोचन करने पर स्पष्ट हो जाता है कि उस युग के क्षत्रियो मे मासभक्षण की प्रवृत्ति पर्याप्त मात्रा मे बढ गई थी। उनके विवाह के अवसर पर पशुओ का एकत्र किया जाना इस तथ्य को स्पष्ट करता है। हिसा की इस पैशाचिक प्रवृति की ओर जन सामान्य का ध्यान आकर्षित करने के लिए और क्षत्रियो को मास-भक्षण से विरत करने के लिए श्री अरिष्ट-नेमि ने जो पद्धति अपनाई, वह अद्भुत और असाधारण थी, उनका

४६ आवश्यक निर्युक्ति गा० ३२५—२२७, ५६

विवाह किये बिना लौट जाना मानो समग्र क्षत्रिय-जाति के पापो का प्रायश्चित था। उसका बिजली का सा प्रभाव दूर-दूर तक और बहुत गहरा हुआ।

एक सुप्रतिष्ठित महान् राजकुमार का दुल्हा बनकर जाना और ऐसे मौके पर विवाह किये बिना लौट जाना क्या साधारण घटना थी? भगवान अरिष्टनेमि का वह बडे से बडा त्याग था और उस त्याग ने एक बार पूरे समाज को झकझोर दिया था। समाज के हित के लिए आत्म बलिदान का ऐसा दूसरा कोई उदाहरण मिलना कठिन है। इस आत्मोत्सर्ग ने अभक्ष्य भक्षण करने वालो और अपने क्षणिक सुख के लिए दूसरो के जीवन के साथ खिलवाड करने वाले क्षत्रियो की आखे खोल दी, आत्मालोचन के लिए विवश कर दिया और उन्हे अपने कर्तव्य एव दायित्व का स्मरण करा दिया। इस प्रकार परम्परागत अहिसा के शिथिल एव विस्मृत बने सस्कारो को उन्होने पुन: पुष्ट, जागृत व सजीव कर दिया और अहिसा की सकीर्ण बनी परिधि को विशालता प्रदान की। पशुओ और पक्षियो को भी अहिसा की परिधि मे समेट लिया। जगत के लिए भगवान का यह उद्बोधन एक अपूर्व वरदान था और वह आज तक भी भुलाया नही गया है।

वेद, पुराण और इतिहासकारो की दृष्टि से भगवान अरिष्टनेमि का क्या महत्व है, इस प्रश्न पर "भगवान अरिष्टनेमि और कर्मयोगी श्री कृष्ण एक अनुशीलन" ग्रन्थ मे भगवान अरिष्टनेमि की ऐतिहासिकता[४७] शीर्षक के अन्तर्गत प्रमाण-पुरस्सर विवेचन किया गया है।

जैन ग्रन्थो की तरह वैदिक हरिवशपुराण मे श्रीकृष्ण और भगवान अरिष्टनेमि का वश वर्णन प्राप्त है।[४८] उसमे श्रीकृष्ण को अरिष्टनेमि का चचेरा भाई होना लिखा है। जैन और वैदिक परम्परा मे अन्तर यही है कि जैन परम्परा मे भगवान अरिष्टनेमि के पिता समुद्रविजय को वसुदेव का बडा भाई माना है। वे दोनो सहोदर थे, जबकि वैदिक हरिवशपुराण मे चित्रक और वसुदेव को चचेरा भाई माना है। श्री मद्भागवत मे चित्रक का नाम चित्ररथ दिया है। सभव है वैदिक ग्रन्थो मे समुद्रविजय का ही अपर नाम चित्रक या चित्ररथ आया हो।

---

४७ जैनधर्म का मौलिक इतिहास, पृ० २३९ से २४१ तक

४८ देखिए प्रस्तुत ग्रन्थ, पृ० २४१ से २४८

मैंने अपने 'भगवान अरिष्टनेमि और कर्मयोगी श्रीकृष्ण एक अनुशीलन[४९] ग्रन्थ मे इस विषय पर विस्तार से प्रकाश डाला है।

भगवान् पार्श्व

भगवान पार्श्व को पौर्वात्य और पाश्चात्य सभी इतिहासविज्ञो ने ऐतिहासिक महापुरुष माना है, जिसके सबन्ध मे सप्रमाण वर्णन एक स्वतन्त्र ग्रन्थ मे किया गया है।[५०]

भगवान पार्श्व भारतीय सस्कृति के एक जाज्वल्यमान नक्षत्र थे। वे श्रमण-सस्कृति के उन्नायक थे। जैन और बौद्ध दोनो परम्पराए उनसे प्रभावित रही है।

तथागत बुद्ध ने अपने प्रमुख शिष्य सारिपुत्र से कहा—"सारिपुत्र! बोधि प्राप्ति से पूर्व मैं दाढी-मुछो का लु चन करता था। मै खडा रह कर तपस्या करता था। उकडू बैठकर तपस्या करता था, मै नगा रहता था। लौकिक आचारो का पालन नही करता था। हथेली पर भिक्षा लेकर खाता था। बैठे हुए, स्थान पर आकर दिये हुए अन्न को, अपने लिए तैयार किये हुए अन्न को और निमन्त्रण को भी स्वीकार नही करता था।[५१]

यह सारा आचार जैन श्रमणो का है। कुछ स्थविरकल्पिक है और कुछ जिनकल्पिक है। दोनो प्रकार के आचारो का उनके जीवन मे समिश्रण है। प० सुखलालजी[५२] और प० धर्मानन्द कौशाम्बी[५३] ने भी यही अभिप्राय व्यक्त किया है कि बुद्ध ने कुछ समय के लिए भगवान पार्श्व की परम्परा भी स्वीकार की थी।

सुप्रसिद्ध इतिहासकार डा० राधाकुमुद मुकर्जी[५४] और श्रीमती

---

४९ प्रकाशक—श्री तारक गुरु जैन ग्रन्थालय, पदराडा, जिला उदयपुर (राजस्थान), परिशिष्ट ३, वश परिचय ३८७ से ३९४

५० जैनधर्म का मौलिक इतिहास—'भ० पाश्वनाथ की ऐतिहासिकता', पृ० ३०३-३०५

५१ (क) मज्झिमनिकाय—महासिहनाद सुत्त १।१।२
(ख) भगवान बुद्ध—धर्मानन्द कोशाम्बी पृ० ६८ ६९

५२ चार तीर्थंकर, जैन प्र०सस्कृति-सशोधक मण्डल, वाराणसी, पृ०१४०-१४१

५३ पार्श्वनाथ का चातुर्याम धर्म पृ २८-३१

५४ हिन्दू सभ्यता, ले० राधाकुमुद मुकर्जी, अनु० डा० वासुदेवशरण अग्रवाल, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली १९५५ पृ० २३९

राइसडेविडस[५५] का भी यही मत है। स्पष्ट है कि बुद्ध की साधना पद्धति भगवान पार्श्वनाथ के सिद्धान्तो से प्रभावित थी।

श्रमण सस्कृतिही नही, अपितु वैदिक सस्कृति भी भगवान पार्श्वनाथ से प्रभावित हुई। वैदिक सस्कृति मे पहले भौतिकता का स्वर प्रखर था। भगवान पार्श्व ने उस भौतिकवादी स्वर को आध्यात्मिकता का नया आलाप दिया।

वैदिकसस्कृति मे श्रमणसस्कृति के स्वर

वैदिकसस्कृति का मूल वेद है। वेदो मे आध्यात्मिक चर्चाएँ नही है। उसमे अनेक देवो की भव्यस्तुतियाँ और प्रार्थनाएँ की गई है। द्युतिमान होना देवत्व का मुख्य लक्षण है। प्रकृति के जो रमणीय दृश्य और विस्मयजनक व चमत्कारपूर्ण जो घटनाएँ थी उनको सामान्यरूप से देवकृत कहा गया है। आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक-देव के ये तीन प्रकार माने गये है। इन तीनो दृष्टियो से देवत्व का प्रतिपादन वैदिक ग्रन्थो मे प्राप्त होता है। स्थान विशेष से तीन देवता प्रमुख है। पृथ्वीस्थानदेव—इसमे अग्नि को मुख्य माना गया है। अन्तरिक्षस्थान देव—इसमे इन्द्र और वायु को मुख्य स्थान दिया गया है। द्युस्थानदेव—जिनमे सूर्य और सविता मुख्य है। इन तीनो देवो की स्तुति ही विभिन्न रूपो मे विभिन्न स्थानो पर की गई है। इन देवो के अतिरिक्त अन्य देवो की भी स्तुतिया की गई है। ऋग्वेद की तरह सामवेद यजुर्वेद और अथर्ववेद मे भी यही है।

उसके पश्चात् ब्राह्मण ग्रन्थ आते है। उनमे भी यज्ञ के विधि-विधान का ही विस्तार से वर्णन है—यज्ञो के सम्बन्ध मे कुछ विरोध भी प्रतीत होता है। उसका परिहार भी ब्राह्मण ग्रन्थो मे किया गया है। उसके पश्चात् सहिता साहित्य आता है। सहिता और ब्राह्मण ग्रन्थो मे मुख्य भेद यही है कि सहिता स्तुतिप्रधान है और ब्राह्मण विधि प्रधान है।

उसके पश्चात् उपनिषद् साहित्य आता है। उसमे यज्ञो का विरोध है। अध्यात्म-विद्या की चर्चा है—हम कौन हे, कहा से आये हे, कहाँ जायेगे—आदि प्रश्नो पर भी विचार किया गया है। अध्यात्मविद्या श्रमण सस्कृति की देन है।

---

५५ Mrs Rhys Davids Gautama the man, pp 22-25

आचार्य शकर ने दस उपनिपदो पर भाष्य लिखा है। उनके नाम इस प्रकार है—ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक, माण्डूक्य, तैत्तिरीय, ऐतरेय, छान्दोग्य और वृहदारण्यक।

डॉक्टर बेलकर और रानाडे के अनुसार प्राचीन उपनिपदो मे मुख्य ये है—छान्दोग्य, वृहदारण्यक, कठ, तैत्तिरीय, मुण्डक, कौपीतकी, केन और प्रश्न।[५७]

आर्थर ए० मैकडॉलन के अभिमतानुसार प्राचीनतम वर्ग वृहदारण्यक छान्दोग्य, तैत्तिरीय, ऐतरेय और कौपीतकी उपनिषद् का रचनाकाल ईसा पूर्व ६०० है।[५८]

एच० सी० राय चौधरी का मत है कि विदेह के महाराज जनक याज्ञवल्क्य के समकालीन थे। याज्ञवल्क्य वृहदारण्यक और छान्दोग्य उपनिषद् के मुख्य पात्र पॉच है। उनका काल-मान ईसा पूर्व सातवी शताब्दी है। प्रस्तुत ग्रन्थ पृष्ठ ६७ मे लिखा है—"जैन तीर्थंकर पार्श्व का जन्म ईसा पूर्व ८७७ और निर्वाणकाल ईसा पूर्व ७७७ है।" इससे भी यही सिद्ध है कि प्राचीनतम उपनिपद् पार्श्व के पश्चात् के है।[५९]

डाक्टर राधाकृष्णन् की धारणा के अनुसार प्राचीनतम उपनिपदो का काल-मान ईसा पूर्व आठवी शताब्दी से ईसा की तीसरी शताब्दी तक है।[६०]

स्पष्ट है कि उपनिपद् साहित्य भगवान् पार्श्व के पश्चात् निर्मित हुआ है। भगवान पार्श्व ने यज्ञ आदि का अत्यधिक विरोध किया था। आध्यात्मिक साधना पर वल दिया था, जिसका प्रभाव वैदिक ऋपियो पर भी पडा और उन्होने उपनिपदो मे यज्ञ का विरोध किया।[६१] उन्होने स्पष्ट कहा—"यज्ञ विनाशी और दुर्बल साधन है। जो मूढ है, वे इनको श्रेय मानते हैं, वे बार-बार जरा और मृत्यु को प्राप्त होते रहते है।"

५७ हिस्ट्री आफ इण्डियन फिलासफी भाग, २ पृ० ८७-९०।

५८ History of the Sanskrit Literature p 226

५९ पोलिटिकल हिस्ट्री ऑफ एन्शियण्ट इण्डिया पृ० ५२।

६० दी प्रिंसिपल उपनिपदाज् पृ० २२।

६१ प्लवा ह्येते अदृढा यज्ञरूपा अष्टादशोक्तमवर येषु कर्म।
एतच्छ्रेयो येऽभिनन्दन्ति मूढा जरामृत्यु ते पुनरेवापि यन्ति ॥
—मुण्डकोपनिषद् १।२।७३

मुण्डकोपनिषद् मे विद्या के दो प्रकार बताए हे - परा और अपरा। परा विद्या वह हे जिससे ब्रह्म की प्राप्ति होती हे और इससे भिन्न अपराविद्या है। ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द और ज्योतिप यह अपरा है।[६२]

महाभारत मे महर्षि बृहस्पति ने प्रजापति मनु से कहा है—"मैंने ऋक्, साम, यजुर्वेद, अथर्ववेद, नक्षत्रगति, निरुक्त, व्याकरण, कल्प और शिक्षा का भी अध्ययन किया है तो भी में आकाश आदि पॉच महाभूतो के उपादान कारण को न जान सका।[६३]

प्रजापति मनु ने कहा—"मुझे इष्ट की प्राप्ति हो और अनिष्ट का निवारण हो इसलिए कर्मों का अनुष्ठान प्रारम्भ किया गया है। इष्ट और अनिष्ट दोनो ही मुझे प्राप्त न हो एतदर्थ ज्ञानयोग का उपदेश दिया गया है। वेद मे जो कर्मो के प्रयोग बताए गए हे वे प्राय सकाम भाव से युक्त है। जो इन कामनाओ से मुक्त होता है वही परमात्मा को पा सकता है। नाना प्रकार के कर्ममार्ग मे सुख की इच्छा रख कर प्रवृत्त होनेवाला मानव परमात्मा को प्राप्त नही होता।"[६४]

उपनिषदो के अतिरिक्त महाभारत और अन्य पुराणो मे भी ऐसे अनेक स्थल है जहाँ आत्मविद्या या मोक्ष के लिए वेदों की असारता प्रकट की गई है। आचार्य शकर ने श्वेताश्वतर भाष्य मे एक प्रसग उद्धृत किया है। भृगु ने अपने पिता से कहा—'त्रयी धर्म अधर्म का हेतु है। यह किपाकफल के समान है। हे तात! सैकडो दु खो से पूर्ण इस कर्मकाण्ड मे कुछ भी सुख नही है। अत मोक्ष के लिए प्रयत्न करने वाला मैं त्रयी धर्म का किस प्रकार सेवन कर सकता हूँ।[६५]

गीता मे भी यही कहा है कि त्रयी-धर्म (वैदिक धर्म) मे लगे रहने वाले सकाम पुरुष ससार मे आवागमन करते रहते है[६६]। आत्मविद्या

---

६२ माण्डूक्य० १।१।४।५

६३ महाभारत शान्ति पर्व २०१।८

६४ महाभारत शान्तिपर्व २०१।१०।११

६५ त्रयी धममधर्मार्थं किंपाकफलसन्निभ ।
नास्ति तात! सुख किंचिदत्र दु खशताकुले॥
तस्मान् मोक्षाय यतता कथ सेव्या मया त्रयी।

—श्वेताश्वतर० पृ० २३

६६ भगवद्गीता ९।२१

आचार्य शकर ने दस उपनिषदो पर भाष्य लिखा है। उनके नाम इस प्रकार है—ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक, माण्डूक्य, तैत्तिरीय, ऐतरेय, छान्दोग्य और वृहदारण्यक।

डॉक्टर वेलकर और रानाडे के अनुसार प्राचीन उपनिपदो मे मुख्य ये हे—छान्दोग्य, वृहदारण्यक, कठ, तैत्तिरीय, मुण्डक, कौपीतकी, केन और प्रश्न।[५७]

आर्थर ए० मैकडॉलन के अभिमतानुसार प्राचीनतम वर्ग वृहदारण्यक छान्दोग्य, तैत्तिरीय, ऐतरेय और कौपीतकी उपनिपद् का रचनाकाल ईसा पूर्व ६०० है।[५८]

एच० सी० राय चौधरी का मत है कि विदेह के महाराज जनक याज्ञवल्क्य के समकालीन थे। याज्ञवल्क्य वृहदारण्यक और छान्दोग्य उपनिषद् के मुख्य पात्र पॉच हे। उनका काल-मान ईसा पूर्व सातवी शताब्दी है। प्रस्तुत ग्रन्थ पृष्ठ ६७ मे लिखा हे—"जैन तीर्थकर पार्श्व का जन्म ईसा पूर्व ८७७ और निर्वाणकाल ईसा पूर्व ७७७ है।" इससे भी यही सिद्ध है कि प्राचीनतम उपनिपद् पार्श्व के पश्चात् के है।[५९]

डाक्टर राधाकृष्णन् की धारणा के अनुसार प्राचीनतम उपनिषदो का काल-मान ईसा पूर्व आठवी शताब्दी से ईसा की तीसरी शताब्दी तक है।[६०]

स्पष्ट है कि उपनिपद् साहित्य भगवान् पार्श्व के पश्चात् निर्मित हुआ है। भगवान पार्श्व ने यज्ञ आदि का अत्यधिक विरोध किया था। आध्यात्मिक साधना पर बल दिया था, जिसका प्रभाव वैदिक ऋषियो पर भी पडा और उन्होने उपनिपदो मे यज्ञ का विरोध किया।[६१] उन्होने स्पष्ट कहा—"यज्ञ विनाशी और दुर्बल साधन है। जो मूढ हैं, वे इनको श्रेय मानते है, वे बार-बार जरा और मृत्यु को प्राप्त होते रहते है।"

५७ हिस्ट्री आफ इण्डियन फिलासफी भाग, २ पृ० ८७-६०।

५८ History of the Sanskrit Literature p 226

५९ पोलिटिकल हिस्ट्री ऑफ एन्शियण्ट इण्डिया पृ० ५२।

६० दी प्रिंसिपल उपनिपदाज् पृ० २२।

६१ प्लवा ह्येते अदृढा यज्ञरूपा अष्टादशोक्तमवर येषु कर्म।
एतच्छ्रेयो येऽभिनन्दन्ति मूढा जरामृत्यु ते पुनरेवापि यन्ति॥

—मुण्डकोपनिषद् १।२।७३

मुण्डकोपनिपद् मे विद्या के दो प्रकार बताए ह परा और अपरा। परा विद्या वह है जिससे ब्रह्म की प्राप्ति होती हे और इससे भिन्न अपराविद्या है। ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द और ज्योतिप यह अपरा है।[६२]

महाभारत मे महर्पि बृहस्पति ने प्रजापति मनु से कहा है—"मैंने ऋक्, साम, यजुर्वेद, अथर्ववेद, नक्षत्रगति निरुक्त, व्याकरण, कल्प और शिक्षा का भी अध्ययन किया है तो भी मैं आकाश आदि पॉच महाभूतो के उपादान कारण को न जान सका।[६३]

प्रजापति मनु ने कहा—"मुझे इष्ट की प्राप्ति हो और अनिष्ट का निवारण हो इसलिए कर्मो का अनुष्ठान प्रारम्भ किया गया है। इष्ट और अनिष्ट दोनो ही मुझे प्राप्त न हो एतदर्थ ज्ञानयोग का उपदेश दिया गया है। वेद मे जो कर्मो के प्रयोग बताए गए हे वे प्राय सकाम भाव से युक्त है। जो इन कामनाओ से मुक्त होता है वही परमात्मा को पा सकता है। नाना प्रकार के कर्ममार्ग मे सुख की इच्छा रख कर प्रवृत्त होनेवाला मानव परमात्मा को प्राप्त नही होता।"[६४]

उपनिषदो के अतिरिक्त महाभारत और अन्य पुराणो मे भी ऐसे अनेक स्थल है जहॉ आत्मविद्या या मोक्ष के लिए वेदो की असारता प्रकट की गई है। आचार्य शकर ने श्वेताश्वतर भाष्य मे एक प्रसग उद्धृत किया है। भृगु ने अपने पिता से कहा—'त्रयी धर्म अधर्म का हेतु है। यह किपाकफल के समान है। हे तात ! सैकडो दु खो से पूर्ण इस कर्मकाण्ड मे कुछ भी सुख नही है। अत मोक्ष के लिए प्रयत्न करने वाला मैं त्रयी धर्म का किस प्रकार सेवन कर सकता हूँ।[६५]

गीता मे भी यही कहा है कि त्रयी-धर्म (वैदिक धर्म) मे लगे रहने वाले सकाम पुरुप ससार मे आवागमन करते रहते हे[६६]। आत्मविद्या

---

६२ माण्डूक्य० १।१।४।५

६३ महाभारत शान्ति पर्व २०१।८

६४ महाभारत शान्तिपर्व २०१।१०।११

६५ त्रयी धममधर्मार्थं किंपाकफलसन्निभ ।
नास्ति तात ! सुख किंचिदत्र दु खशताकुले ॥
तस्मान् मोक्षाय यतता कथ सेव्या मया त्रयी ।
—श्वेताश्वतर० पृ० २३

६६ भगवद्गीता ९।२१

के लिए वेदो की असारता और यज्ञो के विरोध मे आत्मयज्ञ की स्थापना यह वैदिकेतर परम्परा की ही देन है।[६७]

उपनिषदो मे श्रमण सस्कृति के पारिभाषिक शब्द भी व्यवहृत हुए है। जैन आगम साहित्य मे 'कषाय' शब्द का प्रयोग सहस्राधिक बार हुआ किन्तु वैदिक साहित्य मे रागद्वेष के अर्थ मे इस शब्द का प्रयोग नही हुआ है। छान्दोग्योपनिषद् मे 'कषाय' शब्द का राग-द्वेष के अर्थ मे प्रयोग हुआ है।[६८] इसी प्रकार 'तायी' शब्द भी जैन साहित्य मे अनेकस्थलो पर आया है पर वैदिक साहित्य मे नही। जैन साहित्य की तरह ही माण्डुक्य उपनिषद् मे भी 'तायी' शब्द का प्रयोग हुआ है।[६९]

मुण्डक, छान्दोग्य प्रभृति उपनिषदो मे ऐसे अनेक स्थल है जहाँ पर श्रमण सस्कृति की विचारधाराएँ स्पष्ट रूप से झलक रही है। जर्मन विद्वान हर्टले ने यह सिद्ध किया है कि मुण्डकोपनिषद् मे प्राय जैन-सिद्धान्त जैसा वर्णन है और जैन पारिभाषिक शब्द भी वहाँ व्यवहृत हुए है।[७०]

बृहदारण्यक के याज्ञवल्क्य कुषीतक के पुत्र कहोल से कहते है—"यह वही आत्मा है, जिसे जान लेने पर ब्रह्म ज्ञानी पुत्रैषणा, वित्तैषणा और लोकैषणा से मुँह फेर कर ऊपर उठ जाते है। भिक्षा से निर्वाह कर सन्तुष्ट रहते है।

जो पुत्रैषणा है वही लोकैषणा है।[७१]

इसिभासिय मे भी इसिभासिय को याज्ञवल्क्य एषणात्याग के पश्चात् भिक्षा से सन्तुष्ट रहने की बात कहते है।[७२] तुलनात्मक दृष्टि से जब हम चिन्तन करते है तब ज्ञात है कि दोनो के कथन मे कितनी

६७ (क) छान्दोग्य उपनिषद् ८।५।१
(ख) बृहदारण्यक० २।२।६।१०

६८ **मृदित कषायाय**—छान्दोग्य उपनिषद ७-२६
शकराचार्य ने इस पर भाष्य लिखा है—**मृदित कषायाय वार्क्षादिरिव कषायो। रागद्वेषादि दोष सत्वस्य रजना रूपत्वात्।**

६९ माण्डूक्य उपनिषद् ६६

७० इण्डो इरेनियन मूलग्रन्थ और सशोधन, भाग ३

७१ बृहदारण्यक० ३।५ १

७२ इसिभासियाइ १२।१-२

समानता है। वैदिक विचारधारा के अनुसार सन्तानोत्पत्ति को आवश्यक माना है। वहाँ पर पुत्रैषणा के त्याग को कोई स्थान नहीं है। वृहदारण्यक मे एपणा त्याग का विचार आया है वह श्रमण सस्कृति की देन है।

एम० विण्टरनिट्ज ने अर्वाचीन उपनिपदो को अवैदिक माना है।[७३] किन्तु यह भी सत्य है कि प्राचीनतम उपनिपद् भी पूर्ण रूप से वैदिक विचारधारा के निकट नही है, उन पर भगवान अरिष्टनेमि और भगवान् पार्श्वनाथ की विचारधारा का स्पष्ट प्रभाव है।

यह माना जाता है कि यूनान के महान् दार्शनिक 'पाइथागोरस' भारत आये थे और वे भगवान पार्श्वनाथ की परम्परा के श्रमणो के सम्पर्क मे रहे।[७४] उन्होने उन श्रमणो से आत्मा, पुनर्जन्म, कर्म आदि जैन सिद्धान्तो का अध्ययन किया और फिर वे विचार उन्होने यूनान की जनता मे प्रसारित किये। उन्होने मासाहार का विरोध किया। कितनी ही वनस्पतियो का भक्षण भी धार्मिक दृष्टि से त्याज्य बतलाया। उन्होने पुनर्जन्म को सिद्ध किया। आवश्यकता है तटस्थ दृष्टि से इस विषय पर अन्वेषण करने की।

भगवान पार्श्व का विहार क्षेत्र आर्य और अनार्य दोनो देश रहे है। दोनो ही देश के निवासी उनके परम भक्त रहे है।[७५]

इस प्रकार वैदिक साहित्य एव उस पर विद्वानो की समीक्षाओ को पढने से यह स्पष्ट होता है कि उसके प्राचीनतम ग्रन्थो एव महावीर कालीन ग्रन्थो तक मे जैनसस्कृति, जैनदर्शन एव धर्म की अनेक चर्चाएँ बिखरी हुई है, जो प्राक्तन काल मे उसके प्रभाव और व्यापकता को सिद्ध करते है।

तीर्थकर और नाथ सम्प्रदाय

प्राचीन जैन, बौद्ध और वैदिक वाङ्मय का अनुशीलन, परिशीलन करने से सहज ही ज्ञात होता है कि तीर्थकरो के नाम ऋषभ, अजित, सभव आदि के रूप मे मिलते है[७६A] किन्तु उनके नामो के साथ नाथ-पद

---

७३ प्राचीन भारतीय साहित्य पृ० १९०-१९१

७४ सस्कृति के अचल मे—देवेन्द्र मुनि पृ० ३३-३४

७५ देखिए—भगवान् पार्श्व एक समीक्षात्मक अध्ययन पृ० १११-११४।

७६ (क) समवायाग टीका, (ख) आवश्यक सूत्र (ग) नन्दी सूत्र।A

नही मिलता। यहाँ सहज ही एक प्रश्न खडा हो सकता है कि तीर्थंकरो के नाम के साथ 'नाथ' शब्द कब और किस अर्थ मे प्रयुक्त होने लगा ?

शब्दार्थ की दृष्टि से चिन्तन करते है तो 'नाथ' शब्द का अर्थ स्वामी या प्रभु होता है। अप्राप्य वस्तु की प्राप्ति को योग और प्राप्य वस्तु के सरक्षण को 'क्षेम' कहा जाता है। जो योग और क्षेम को करने वाला होता है वह नाथ कहलाता है।[७६] अनाथी मुनि ने श्रेणिक से कहा—गृहस्थ जीवन मे मेरा कोई नाथ नही था। मैं मुनि बना और नाथ हो गया। अपना, दूसरो का ओर सब जीवो का।[७७]

दीघनिकाय मे दस नाथकरण धर्मों का निरूपण है, उसमे भी क्षमा, दया, सरलता आदि सद्गुणो का उल्लेख है।[७८] जो इन सद्गुणो को धारण करता है वह नाथ है।

तीर्थंकरो का जीवन सद्गुणो का अक्षय कोष है। अत उनके नाम के साथ नाथ उपपद लगाना उचित ही है।

भगवती सूत्र मे भगवान महावीर के लिए 'लोगनाहेण' यह शब्द प्रयुक्त हुआ है और आवश्यकसूत्र मे अरिहतो के गुणो का उत्कीर्तन करते हुए 'लोगनाहाण' विशेषण आया है।

सुप्रसिद्ध दिगम्बर आचार्य यतिवृषभ ने अपने तिलोयपण्णत्ती ग्रन्थ मे तीर्थंकरो के नाम के साथ नाथ शब्द का प्रयोग किया है। जैसे—

"भरणी रिक्खम्मि सतिणाहो य[७९]"

'विमलस्स तीसलक्खा,
अणतणाहस्स पचदसलक्खा"[८०]

आचार्य यतिवृषभ[८], आचार्य जिनसेन[२] आदि ने तीर्थंकरो के नाम के साथ ईश्वर और स्वामी पदो का भी प्रयोग किया है। ऐतिहासिक

---

७६ नाथ योगक्षेम विधाता।
—उत्तराध्ययन बृहद्वृत्ति पत्र ४७३

७७ ततो ह नाहो जाओ अप्पणो य परस्स य।
सव्वेसिं चेव भूयाण तसाण य थावराण य॥
—उत्तरा० २०।३५

७८ दीघ-निकाय ३।११, पृ० ३१२-३१३।

७९ तिलोयपण्णत्ती ४।५४१

८० वही ४।५६६

८१ रिसहेसरस्स भरहो, सगरो अजिएसरस्स पच्चक्ख। —तिलोय० ४।१२८३

८२ महापुराण १४।१६१, पृ० ३१६

दृष्टि से यतिवृषभ का समय चतुर्थ शताब्दी के आस-पास माना जाता है और जिनसेन का ९वी शताब्दी। तो चतुर्थ शताब्दी मे तीर्थंकरो के नाम के साथ 'नाथ' शब्द व्यवहृत होने लगा था।

तीर्थंकरो के नाम के साथ लगे हुए नाथ शब्द की लोकप्रियता शनै-शनै इतनी अत्यधिक बढी कि शैवमती योगी अपने नाम के साथ 'मत्स्येन्द्रनाथ' "गोरखनाथ" प्रभृति रूप से नाथ शब्द का प्रयोग करने लगे। फलस्वरूप प्रस्तुत सम्प्रदाय का नाम ही 'नाथ सम्प्रदाय' के रूप मे हो गया।

जैनेतर परम्परा के वे लोग, जिन्हे इतिहास व परम्परा का परिज्ञान नही, वे व्यक्ति आदिनाथ, अजितनाथ, पारसनाथ, के नाम पढकर भ्रम मे पड जाते है चूँकि गोरखनाथ की परम्परा मे भी नीमनाथी पारसनाथी हुए है। वे यह निर्णय नही कर पाते कि गोरखनाथ से नेमनाथ या पारसनाथ हुए, या नेमनाथ पारसनाथ से गोरखपथी हुए? यह एक ऐतिहासिक सत्य तथ्य है कि नाथ सम्प्रदाय के मूल-प्रवर्तक मत्स्येन्द्रनाथ है, उनका समय ईसा की आठवी शताब्दी माना माना गया है।[८३] जब कि तीर्थंकर आदिनाथ, नेमनाथ, पारसनाथ आदि को हुए, जैन दृष्टि से हजारो लाखो वर्ष हुए है। भगवान पार्श्व से नेमनाथ ८३ हजार वर्ष पूर्व हुए थे। अत काल-गणना की दृष्टि से दोनो मे बडा मतभेद है। यह स्पष्ट है कि गोरखनाथ से नेमनाथ या पारसनाथ होने की तो सभावना ही नही की जा सकती। हाँ, सत्य यह है कि नेमनाथ और पारसनाथ पहले हुए है अत उनसे गोरखनाथ की सभावना कर सकते है, किन्तु गहराई से चिन्तन-मनन करने से वह भी सही ज्ञात नही होता, चूँकि भगवान पार्श्व विक्रम सम्वत् ७२५ से भी पूर्व हो चुके थे, जब कि मूर्धन्य मनीषियो ने गोरखनाथ को बप्पारावल के समकालीन माना है। यह बहुत कुछ सभव है कि भगवान नेमिनाथ की अहिंसक क्रान्ति ने यादववश मे अभिनव जागृति का सचार कर दिया था। भगवान पार्श्व के कमठ-प्रतिबोध की घटना ने तापसो मे भी विवेक का सचार किया था। उन्ही के प्रबल प्रभाव से नाथ परम्परा के योगी प्रभावित हुए हो, और नीमनाथी, पारसनाथी परम्परा प्रचलित हुई

---

८३ हमारी अपनी धारणा यह है कि इसका उदय लगभग ८ वी शताब्दी के आस-पास हुआ था। मत्स्येन्द्रनाथ इसके मूल प्रवर्तक थे।
देखिए—'हिन्दी की निर्गुण काव्यधारा और उसकी दार्शनिक पृष्ठभूमि—पृ० ३२७

हो । डाक्टर हजारीप्रसाद द्विवेदी ने इसी सत्य-तथ्य को इस रूप मे प्रस्तुत किया है—

'चादनाथ सभवत वह प्रथम सिद्ध थे जिन्होने गोरखमार्ग को स्वीकार किया था। इसी शाखा के नीमनाथी और पारसनाथी नेमिनाथ और पार्श्वनाथ नामक जैन तीर्थंकरो के अनुयायी जान पडते है। जैनसाधना मे योग का महत्वपूर्ण स्थान है । नेमिनाथ और पार्श्वनाथ निश्चय ही गोरखनाथ के पूर्ववर्ती थे।'[८४]

भगवान महावीर के पूर्ववर्ती तीर्थंकरो के नाम के साथ आज नाथ शब्द प्रचलित है, उससे यह तो ध्वनित होता ही है यह शब्द जैन परम्परा मे काफी सम्मान सूचक रहा है। भगवान महावीर के नाम के साथ नाथ शब्द का प्रचार नही है। अत इसे पूर्वकालीन परम्परा का बोधक मानकर ही यहाँ पर कुछ विचार किया गया है।

८४ नाथ सम्प्रदाय—हजारीप्रसाद द्विवेदी, पृष्ठ १९०
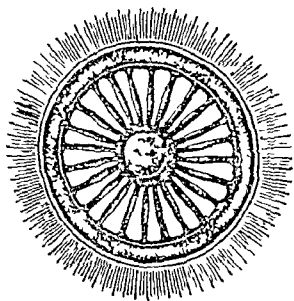
२ भगवान महावीरकालीन समाज और संस्कृति

* वर्णाश्रम व्यवस्था
* विभिन्न जातिया एव गोत्रादि
* माता-पिता व पुत्र
* विवाह प्रथा
* बहुपत्नी प्रथा
* तलाक प्रथा और वैवाहिक शुल्क
* दहेज प्रथा
* सौतिया डाह
* यवनिका प्रयोग
* वेश्या
* प्रसाधन
* भोजन
* आमोद प्रमोद व मनोरजन
* मल्लविद्या
* रोग और चिकित्सा
* धनुर्विद्या
* सगीत और नृत्य
* चित्र एव स्थापत्यकला
* उपकरण
* आभूषण
* वस्त्र
* शिक्षा और शिक्षाभ्यास
* विद्याकेन्द्र
* लेखनकला
* भाषाए
* व्यापार और समुद्रयात्रा
* व्यापारकेन्द्र
* सिक्का
* माप-तोल
* शासन व्यवस्था
* राज्याभिषेक
* राजा के प्रधान पुरुष
* न्यायव्यवस्था
* करव्यवस्था
* चौरकर्म
* दण्डविधान
* एकछत्र साम्राज्य
* कारागृह
* गुप्तचर
* युद्ध
* चतुरगिणी सेना
* युद्धनीति
* अस्त्र-शस्त्र
* मानव प्रवृत्तिया
* धार्मिक एव दार्शनिक सम्प्रदायें
* निष्कर्ष

२ भगवान महावीरकालीन समाज और संस्कृति

भगवान महावीर का जीवन और उपदेश समझने के लिए यह आवश्यक है कि उस युग की समाज और सस्कृति का अवलोकन किया जाय, जिसके आलोक मे हम सरलता पूर्वक महावीर के जीवन दर्शन को समझ सके।

आजकाल प्रबुद्ध जिज्ञासु यह जानने को उत्सुक है कि भगवान् महावीर के युग मे सामाजिक, धार्मिक, सास्कृतिक, और राजनैतिक स्थिति कैसी थी? उस समय की समाज और सस्कृति का क्या स्वरूप था?

भगवान् महावीर ने अपने प्रवचनो मे तप, त्याग, और वैराग्य पर अधिक बल दिया है। जीवन की भौतिक सुख-सुविधाओ के प्रति उनकी अभिरुचि नही थी। इस कारण समाज और सामाजिक रीति-रिवाजो का भी कोई विशेष उल्लेख और राजनैतिक चर्चाओ का विवरण उनके उपदेशो मे कम ही होता था। ऐसी स्थिति मे आगम व उसके व्याख्या साहित्य मे प्रसगोपात्त कुछ इधर-उधर बिखरी हुई सक्षिप्त सूचनाओ के आधार पर ही हम भगवान महावीर के युग की समाज और सस्कृति पर विचार कर सकेगे।

वर्णाश्रम व्यवस्था

वर्ण व्यवस्था प्राचीन भारतीय समाज का मेरु दण्ड था।

उस समय मुख्य रूप से दो प्रकार की जातियाँ थी। एक आर्य, दूसरी आनार्य। आर्यों के पाँच भेद थे—क्षेत्रआर्य, जातिआर्य, कुलआर्य, कर्म-आर्य, भाषा आर्य,[1]।

---

१ प्रज्ञापना १।६७-७१

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र ये चार वर्ण थे।[२] जिसमे ब्राह्मणो की प्रमुखता थी। अधिकाश ब्राह्मण जैनधर्म के विरोधी थे,[३] अत जैनधर्म मे ब्राह्मणो की अपेक्षा क्षत्रियो को श्रेष्ठता प्रदान की गई। तीर्थंकर क्षत्रिय कुल मे ही उत्पन्न होते है। इसीकारण महावीर को देवानन्दा ब्राह्मणी के गर्भ से त्रिशला क्षत्रियाणी के गर्भ मे परिवर्तित किया गया।[४]

आगमसाहित्य मे अनेक स्थानो पर श्रमण और ब्राह्मण शब्द का प्रयोग एक साथ किया है जिससे यह भी ध्वनित होता है कि दोनो का आदरणीय स्थान था।[५] महावीर को भी माहण या महामाहण कहा है।[६] ब्राह्मण चौदह विद्याओ मे निष्णात होते थे।[७] वे अपने विद्यार्थियो के साथ इधर-उधर परिभ्रमण भी करते थे।[८] उस युग मे ब्राह्मणो मे यज्ञमार्ग का प्रचलन था। भगवान् महावीर ने दीक्षा लेने के पश्चात् चम्पा के एक ब्राह्मण की अग्निहोत्रवसही मे चातुर्मास व्यतीत किया था।[९] उत्तराध्ययन मे भी

---

२ (क) उत्तराध्ययन २५।३१
(ख) विपाक सूत्र ५, पृ० ३३
(ग) आचाराग नियुक्ति १६।२७

३ (क) निशीथ चूर्णि पीठिका ४८७ की चूर्णि
(ख) आवश्यक चूर्णि पृ० ४६६

४ (क) कल्पसूत्र २।२२
(ख) आवश्यक चूर्णि पृ० २३६
तुलना करे—वाजसनेय सहिता ३८।१६
डा० जी० एस० धुर्ये लिखित० काष्ट एण्ड रेस इन इण्डिया पृ० ६३

५ आवश्यक चूर्णि पृ० ७३
तुलना करे—सयुक्त निकाय—समण ब्राह्मण सूत्र २, पृ० १२६

६ (क) सूत्रकृताग ६।१
(ख) उपासक दशाग ७ पृ-५५

७ (क) उत्तराध्ययन टीका ३, पृ० ५६
(ख) बृहत्कल्पभाष्य। ४५२३ व आचाराग चूर्णि पृ० १८२ मे सस्कृत भाषा के विद्वान कहा है।

८ उत्तराध्ययन १२।१८-१९

९ आवश्यक चूर्णि पृ० ३२०

विजयघोष ब्राह्मण के यज्ञ का उल्लेख है।[१०] ब्राह्मण स्वप्नपाठक भी होते थे। महावीर के पिता ने उनको बुलाया था।[११]

क्षत्रिय—७२ कलाओ का अध्ययन करते थे, युद्ध कला मे निष्णात होते थे। वह अपने भुजबल से देश पर शासन करता था। राजा सर्वशक्ति-सम्पन्न व्यक्तित्व होता था। छत्र, चामर सिंहासन, आदि राज-चिह्न थे।[१२] राजा का उत्तराधिकारी उसका ज्येष्ठ पुत्र होता था। यदि वह विरक्त हो जाता तो लघु पुत्र को भी राज्य सिंहासन दे दिया जाता था। राजकुमार यदि दुर्व्यसनो मे फस जाता तो उसे देश निकाला भी दे देते थे।[१३]

गृहपतियो को इभ्य, श्रेष्ठी और कौटुम्बिक नाम से भी पुकारा गया है। कितने ही गृहपति भगवान महावीर के परम भक्त थे।[१४] उनके पास अपार धन और हजारो गायें रहती थी। वे खेती और व्यापार करते थे। व्यापार करने के कारण इन्हे वणिक् भी कहा जाता था।[१५]

शूद्रो की स्थिति बडी शोचनीय थी। इनके साथ दासो का व्यवहार किया जाता था। इनका सर्वत्र निरादर होता था।[१६]

विभिन्न जातिया एव गोत्रादि—

वर्ण-जातियो के अतिरिक्त अनेक उपजातिया थी। जैसे—सारथि[१७] लोहकार[१८] बढई[१९] गोपाल[२०] भण्डपाल[२१] भारवाहक[२२] चिकित्साचार्य[२३] नाविक[२४] सवार[२५] कर्षक[२६] और विविध प्रकार के शिल्पी आदि।[२७] कुछ

१० उत्तराध्ययन अ० २५

११ कल्पसूत्र

१२ उत्तराध्ययन बृहद्वृत्ति पत्र ४८६

१३ उत्तराध्ययन सुखबोधा वृत्ति पत्र ८४

१४ (क) उपासक दशा। (ख) उत्तराध्ययन २१।१

१५ चपाए पालिए नाम सावए आसि वाणिए। —उत्तराध्ययन २१।१

१६ (क) उत्तराध्ययन १३।१६ (ख) उत्तराध्ययन १३।१८

१७ उत्तराध्ययन २७।१५,२२,१५,१७।

१८ वही १६।६८

१९ वही १६।६७

२० वही २२।४६

२१ वही

२२ वही १०।३३ और २६, १२

२३ वही २०।२२

२४ वही २२।७३

२५ वही १।३७

२६ वही १२।१२

२७ वही १५।६

वर्णसकर जातिया भी थी। वर्णसंकर जातियो मे बुक्कुस और श्वपाक जातियो का उल्लेख है।[२८]

इन जातियो के अतिरिक्त गोत्रो मे काश्यप, गोतम, गर्ग और वशिष्ठ गोत्र था।[२९] कुलो मे अगन्धन, भोग, गन्धन और प्रान्त कुलो[३०] का और वशो मे इक्ष्वाकुवश व यादववश[३१] आदि का उल्लेख आता है।

उस समय सामाजिक सगठन वर्ण, जाति, गोत्र, कुल, वश के आधार से कई भागो मे विभक्त था।

आश्रम व्यवस्था भी थी। गृहस्थाश्रम को उत्तराध्ययन मे घोराश्रम कहा है।[३२] प्रत्येक वर्ण और आश्रम वालो के कार्य भिन्न थे।[३३]

माता-पिता व पुत्र—

परिवार मे उस समय माता-पिता का स्थान सर्वोपरि था। दीक्षा लेते समय माता-पिता की आज्ञा आवश्यक होती थी।[३४] पुत्र पर माता-पिता का अत्यन्त स्नेह होता था। भाइयो मे परस्पर स्नेहपूर्ण व्यवहार भी होता था, और स्वार्थो को लेकर परस्पर सघर्ष भी होता था।[३५]

विवाह प्रथा—

साधारणतया वर एव कन्या दोनो पक्षो के माता-पिता या उनके अनुज सम्बन्धी जन पहले विवाह सम्बन्ध तय किया करते थे।[३६] विवाह के समय तिथि और मुहूर्त भी देखे जाते थे।[३७] जया, विजया, ऋद्धि, वृद्धि आदि औषधियो से सस्कारित पानी से वर को स्नान कराया जाता था और उनके ललाट मे मूशल का स्पर्श करना मागलिक माना जाता था।[३८]

विवाह के कई प्रकार प्रचलित थे। उनमे स्वयवर और गधर्व-पद्धति भी अनुमोदित थी। स्वयवर मे कन्या अपने वर का चुनाव स्वय करती थी।

---

२८ वही १२।१
२९ वही २६ का प्रारम्भिक गद्य।
३० वही २२।४२, ४४।१५, ६।१३
३१ वही १८।३६, २२-२७
३२ घोरासम चइत्ताण—उत्तराध्ययन ६।४२
३३ उत्तराध्ययन सूत्र एक परिशीलन पृ० ४०
३४ ज्ञाताधर्म कथा १।१
३५ भगवती, निरयावलिया।
३६ उत्तराध्ययन २१।७
३७ उत्तराध्ययन सुखबोधा वृत्ति पत्र १४२
३८ उत्तराध्ययन बृहद्वृत्ति पत्र ४६०

विवाह की दूसरी पद्धति गधर्वविवाह था । इसका अर्थ था—"बिना पारिवारिक अनुमति के वर कन्या का ऐच्छिक विवाह ।' चेल्लना के साथ श्रेणिक ने भी इसी प्रकार विवाह किया था ।[३९]

बहु-पत्नी प्रथा—

उस समय बहु-पत्नी प्रथा भी समृद्धि का अग समझी जाती थी । राजा व राजकुमार अपने अन्त पुर मे रानियो की अधिक सख्या रखने मे गौरव का अनुभव करते थे ।[४०] और वह विभिन्न प्रान्तो का मिश्रित अन्त पुर अनेक राजाओ के साथ मित्रतापूर्ण सम्बन्ध हो जाने से उनकी राजनीतिक सत्ता को शक्तिशाली बनाने मे सहायक होता था । पैसेवाले बहुपत्नी प्रथा को धन सम्पत्ति, यश और सामाजिक गौरव का कारण मानते थे । राजा श्रेणिक[४१] गृहपति महाशतक[४२] आदि के नाम उल्लेखनीय है ।

तलाकप्रथा और वैवाहिकशुल्क—

छोटी-मोटी बातो के कारण पत्नियो को छोड देने की प्रथा भी थी । एक वणिक ने अपनी पत्नी को इसीलिए छोड दिया था कि वह सारा दिन शरीर की साज-सज्जा किया करती थी और घर को बिल्कुल नही सभालती थी ।[४३] धन देकर भी विवाह किया जाता था ।[४४]

दहेज—

राजकन्याओ व श्रेष्ठी कन्याओ के विवाह मे घोडे, हाथी, धन आदि दहेज मे दिये जाते थे ।[४५] राजगृह के गृहपति महाशतक के रेवती आदि १३ पत्निया थी । उनमे रेवती अपने पिता के घर से आठ कोटि हिरण्य और आठ व्रज गायो का लेकर आयी । शेष स्त्रिया एक-एक कोटि हिरण्य और एक-एक व्रज लेकर आयी थी ।[४६]

३९ आवश्यकचूर्णि २, पृ० १६५, १६६
४० उत्तराध्ययन सुखबोधा वृत्ति पत्र १४२
४१ अन्तकृद‍्दशा ७। पृ० ४३
४२ उपासक दशा ८। पृ० ६१
४३ उत्तराध्ययन सुखबोधा वृत्ति पत्र ९७
४४ उत्तराध्ययन वृहदवृत्ति २०७
४५ उत्तराध्ययन वृहद्वृत्ति पत्र ८८
४६ उपासक दशा ८। पृ० ६१

सौतिया डाह—

राजाओ व श्रेष्ठियो के अनेक पत्निया होती थी। उनमे परस्पर एक दूसरे मे ईर्ष्या होना स्वाभाविक था। वे एक-दूसरे के प्रति शिकायत करती थी और समय-समय पर षड्यन्त्र भी रचती थी। यहाँ तक कि कभी-कभी अपनी सौतो को जान से भी मार देती थी। रेवती ने अपनी १२ सौतो को मार दिया था।[४७]

यवनिका का प्रयोग—

उस युग मे बडे घरो की बहु-बेटियाँ पुरुषो के समक्ष खुले रूप मे नही आती थी। जब कभी उन्हे सभाओ मे आना जाना होता, तो वहाँ एक पर्दा लगाया जाता था। एक ओर पुरुष और दूसरी ओर स्त्रियाँ बैठती थी।

भगवान महावीर की माता त्रिशला जब स्वप्न फल सुनने के लिए आई तो उन्हे एक यवनिका के पीछे बिठाया गया था।[४८]

वेश्या—

वेश्याएँ नगर की शोभा, राजाओ की आदरणीय और राजधानी की रत्न मानी जाती थी।[४९] कितनी ही वेश्याएँ चौसठ कलाओ मे निष्णात होती थी।[५०]

प्रसाधन—

प्रसाधन मे अनेक पदार्थों का उपयोग होता था। होठ तथा नखो को रगना, पैरो पर अलक्तक रस लगाना, दाँतो को रगना आदि किया जाता था।

स्नान दो प्रकार से होता था—देश-स्नान, और सर्वस्नान। देशस्नान मे मस्तक को छोडकर शेष अग धोये जाते थे और सर्वस्नान मे मस्तक से एडी तक सर्वांग स्नान किया जाता था। उष्ण और ठडा दोनो प्रकार के जल स्नान के काम मे आते थे। स्नान के पूर्व गध चूर्ण लगाया जाता था। और तैल-मर्दन किया जाता था और उसकी चिकनाई को मिटाने के लिए पिसी हुई दाल या आवले का सुगन्धित उबटन लगाया जाता था। इसे कल्क, चूर्ण-कषाय, या गधाटक कहा जाता था। लोध्र एक प्रकार का गन्ध द्रव्य था जिसका

---

४७ उपासकदशा ८।

४८ कल्पसूत्र

४९ (क) उत्तराध्ययन सुखबोधा पत्र ६४

(ख) कौटिल्य का अर्थशास्त्र

५० बृहत्कल्पभाष्य पीठिका २५२

प्रयोग ईषत् पाण्डुर (गुलाबी) छवि बनाने के लिये किया जाता था। पद्मकेसर का उपयोग भी करते थे।[५१] सुरमेदानी[५२] लोध्र पुष्प, गुटिका[५३], नगर, खस के साथ कूट कर बनाया हुआ अगरु, मु ह पर लगाने का तैल और होठ रचाने का चूर्ण मुख्य है। कँघा[५४] शीशा, सुपारी और ताम्बूल आदि का भी उपयोग करते थे।[५५]

भोजन—

उस युग मे देश मे खेती-वारी की बहुतायत थी, इसलिए भोजन की कमी नही थी। पर यह सत्य है कि सामान्य मनुष्य को उत्तम भोजन नही मिलता था। अशन, पान, खाद्य और स्वाद्य इन चार प्रकार के भोजन का उल्लेख है। भोज्य पदार्थो मे दूध, दही, मक्खन, घी, तेल, मधु, गुड, पक्वान्न[५७] शष्कुली, राब, भुने हुए गेहूँओ से बना पदार्थ और श्रीखण्ड के नाम प्राप्त होते है। चावलो से निष्पन्न ओदन और उसके साथ अनेक प्रकार के व्यजन प्रतिदिन भोजन के काम मे आते थे।[५८]

पूडे और खाजे उस समय के विशेप मिष्टान्न थे, विशेप अवसरो पर जो बनाये जाते थे।[५९] मोदक लोगो का प्रिय खाद्य पदार्थ था।[६०] नये चावलो को दूध मे डालकर खीर पकाई जाती थी।[६१] खीर मे घी और मधु डालकर उसे स्वादिष्ट बनाया जाता था।[६२] लोग सत्तू मे घी डालकर खाते थे।[६३] अनेक प्रकार के व्यजनो का उल्लेख भी प्राप्त होता है।[६४] गुड और घी से पूर्ण रोटग

५१ दशवैकालिक जिनदास चूर्णि पृ० २३२
५२ रामायण २।९३।७६
५३ अर्थशास्त्र २।९९।६१, पृ० १६५
५४ उत्तराध्ययन सुखबोधा, पत्र ९६
५५ जैन आगम साहित्य मे भारतीय समाज पृ०
५६ ज्ञातृधर्मकथा ७। पृ० ८४
५७ आवश्यक चूर्णि २। पृ० ३१९
५८ उत्तराध्ययन १२।३४
५९ उत्तराध्ययन वृहद्वृत्ति ३६९
६० आवश्यक चूर्णि २८३
६१ आवश्यक चूर्णि ३५६
६२ वही २८८
६३ निशीथ भाष्य
६४ आवश्यक चूर्णि

(मोटी रोटी)[६५] घेवर, आम या निम्बू से बनाया हुआ मीठा शर्बत,[६६] पापड, बडे,[६७] आदि के भी उल्लेख मिलते है।

राजाओ और धनिको के यहाँ पर रसोइये विविध प्रकार के भोजन और व्यजन बनाते थे।[६८]

जैन साधु, साध्वी, श्रावक और श्राविका मास और मदिरा का उपयोग कत्तई नही करते थे। अन्य लोगो मे उसका प्रचलन था।

लोग ऋतु के अनुसार भोजन मे परिवर्तन कर लेते थे। शरद ऋतु मे वात्त-पित्त को नाश करने वाले, हेमन्त मे उष्ण, बसन्त मे श्लेष्म को हरने वाले, ग्रीष्म मे शीतल और वर्षा मे उष्ण, पदार्थों का प्रयोग करते थे।[६९]

गृहस्थ के घरो मे अनेक प्रकार के पानको से घडे भरे रहते थे। काजी, तुषोदक, यवोदक, सौवीर आदि पानक सर्व सुलभ थे।[७०] आचार्य हरिभद्र ने पानक का अर्थ आरनाल (काजी) किया है।[७१] आचाराग मे भी अनेक प्रकार के पानको का उल्लेख है।[७२] उस समय पेय पदार्थो के लिए तीन शब्द व्यवहृत होते थे, (१) पान (२) पानीय और (३) पानक। 'पान' से सभी प्रकार के मद्यो का, पानीय से जल का और पानक से द्राक्षा, खजूर आदि से बना हुआ पेय का ग्रहण होता था।[७३]

आमोद-प्रमोद व मनोरजन—

उस समय मानव अनेक प्रकार से आमोद-प्रमोद और मन बहलाव किया करते थे। यत्र-तत्र ऐन्द्रजालिक घूमा करते थे जो लोगो को अपनी ओर आकृष्ट कर अपनी आजीविका चलाते थे।[७४] नटविद्या का भी प्रचुर

---

६५ उत्तराध्ययनटीका

६६ उपासकदशा १। पृ० ७ (पालगमाहुरय)

६७ पिण्डनिर्युक्ति ५५६, ६३७

६८ विपाकसूत्र ८, पृ० ४६

६९ दशवैकालिक—जिनदास चूर्णि पृ० ३१५

७० दशवैकालिक ५।१ ४७-४८

७१ पानक च आरनालादि। —दशवै० हारिभद्रीयवृत्ति पत्र १७३

७२ आचाराग २।१।७ ८

७३ प्रवचन सारोद्धार, द्वार २५९ गा० १४१० से १४१७

७४ दशवैकालिक—जिनदासचूर्णि पृ० ३२१

प्रचार था, नाट्य मडलिया स्थान-स्थान पर घूमा करती थी।[७५] ये मनोरजन के प्रमुख साधन थे। शतरज भी खेला जाता था।[७६]

नगर के पास रमणीय उद्यान होते थे। जहाँ हरे-भरे वृक्ष लहलहाते रहते थे। सुन्दर वस्त्रो से सुसज्जित होकर व विविध प्रकार के आभूषणो से अलकृत होकर स्त्री और पुरुष वहाँ पर क्रीडा करने के लिए जाते थे।[७७] सहभोज भी वहाँ करते थे।[७८] बालक भी वहाँ पर खेला करते थे।[७९] गो-महिष, कुक्कुट और लावक को परस्पर मे लडाया जाता था, जिसे देखने के लिए हजारो व्यक्ति एकत्रित होते थे।[८०]

कार्तिकपूर्णिमा को कौमुदी महोत्सव मनाया जाता था। सूर्यास्त के पश्चात् स्त्री-पुरुष किसी उद्यान मे जाकर रात बिताते थे।[८१] अन्य अनेक प्रकार के महोत्सव व पर्व भी मानते थे।

मल्ल विद्या

मल्लविद्या का व्यवस्थित शिक्षण दिया जाता था। जो व्यक्ति यह विद्या सीखना चाहता, उसे पहले वमन और विवेचन कराया जाता। अनेक दिनो तक उसे खाने के लिये पौष्टिक पदार्थ दिये जाते और शनै शनै मल्ल-विद्या का अभ्यास कराया जाता।

मल्ल प्राय राज्याश्रित रहते थे। स्थान-स्थान पर दगल होते, और जो 'मल्ल' उसमे विजयी होता उसे 'पताका' प्रदान की जाती थी। मल्ल-

---

७५ दशवैकालिक—जिनदास चूर्णि पृ० ३२२

७६ दशवैकालिक ३।४

७७ (क) बृहत्कल्पभाष्य १।३१७०-७१

(ख) पिण्डनिर्युक्ति २१४-२१५

७८ दशवैकालिक—जिनदासचूर्णि पृ० २२

७९ दशवैकालिक—जिनदासचूर्णि पृ० १७१-१७२

८० (क) दशवै० जिनदासचूर्णि पृ० २६२

(ख) आचाराग २।११।३९२ पृ० ३७९

(ग) निशीथ सूत्र १२।२३

तुलना कीजिए—दीर्घनिकाय १, ब्रह्मजाल सुत्त पृ० ८

याज्ञवल्क्यस्मृति, १७, पृ० २५५

८१ (क) सूत्रकृताग टीका २।७५ पृ० ४१३

(ख) चक्लदार एच० सी० सोशल लाइफ इन ऐंशियेंट इण्डिया—स्टडीज इन वात्स्यायन कामसूत्र, कलकत्ता।

युद्ध वहाँ तक चलता जहाँ तक हारजीत का निर्णय नही हो जाता। मल्ल-युद्ध कई दिनो तक भी चलता था। कितने ही मल्ल ऐसे भी होते थे जो एक हजार आदमियो के साथ युद्ध कर सकते थे।[८२] इन्हे सहस्रमल्ल कहा जाता था। परीक्षा करने के पश्चात् ही राजा उनको अपने यहाँ पर नियुक्त करते थे। दगल मे अनेक प्रकार के दाव-पेच भी होते थे।[८३] एक दिन का दगल पूर्ण होने पर दूसरे दिन के लिए मल्लो को तैयार करने के लिए समथक लोग रहते थे, जो तेल से मालिश कर उन मल्लो को तैयार करते थे। कितने ही मल्ल हार जाने पर कितने ही महीनो तक रसायन आदि ग्रहण कर बलिष्ठ हो दगल के लिए तैयार होते थे।[८४]

रोग और चिकित्सा

उस समय के मुख्य रोग ये थे—श्वास, खासी, ज्वर, दाह, उदरशूल, भगदर, अर्श, अजीर्ण, दृष्टिशूल, मुखशूल, अरुचि, अक्षिवेदना, खाज, कर्ण-शूल, जलोदर और कोढ।[८५]

सोलह महारोगो का भी उल्लेख मिलता है। गडी (गडमाल, जिसमे ग्रीवा फूल जाती है) कुष्ठ[८६] (जिसके १८ प्रकार थे) राजयक्ष्मा, अपस्मार, काणिय, (काण्य, अक्षिरोग) झिमिय (जडता) कुणिय हीनागत्व) खुज्जिम (कुबडापन) उदररोग, मूकपना, सूणीय (शरीर का सूज जाना) गिलसणि (भस्मक रोग) वेबई (कम्पन) पीढसप्पि (पगुत्व) सिलीवय (श्लीपद-फीलपाव का रोग) और मधुमेह।[८७]

अन्य रोग भी थे—कुलरोग, ग्राम रोग, नगर रोग, मडलरोग, शीर्ष-

---

८२ (क) व्यवहार भाष्य १।३। पृ० ९२-९३
   (ख) उत्तराध्ययन टीका ४, पृ० ७४

८३ उत्तराध्ययन बृहद्वृत्ति १९३

८४ उत्तराध्ययन बृहद्वृत्ति १९३

८५ (क) विपाक सूत्र १। पृ० ७
   (ख) ज्ञाताधर्म कथा १३, पृ० १४४
   (ग) निशीथभाष्य ११।३६४७
   (घ) उत्तराध्ययन सुखबोधा पत्र १६३

८६ देखिए सुश्रुत सहिता, निदानस्थान ५।४-५ पृ० ३४२
   (ख) चरकसहिता २।७ पृ० १०४९

८७ आचाराग

वेदना, ओष्ठवेदना, दतवेदना, शोप (क्षय) कच्छू खसर, पाडुरोग, एक दो तीन या चार दिन के अन्तराल मे आनेवाला ज्वर, इन्द्रग्रह, धनुर्ग्रह,[८८] स्कन्दग्रह, कुमारग्रह, यक्षग्रह, भूतग्रह, उद्वेग, हृदयशूल, उदरशूल, योनिशूल, और महामारी[८९], वल्गुली[९०] (जी मचलाना) विपकु भ (फुडिया)[९०] का उल्लेख है ।

उस समय चिकित्सा की अनेक पद्धतिया प्रचलित थी । उनमे आयुर्वैदिक चिकित्सा पद्धति सर्वमान्य थी । पचकर्म—वमन, विवेचन आदि का भी विपुल प्रचलन था ।[९२]

चिकित्सा के मुख्य चार पाद माने गए है—१ वैद्य, २ रोगी, ३ औपधि और ४ प्रतिचर्या करने वाले ।[९३]

विद्या और मत्रो, व शल्यचिकित्सा और जडी बूटियो से भी चिकित्सा की जाती थी, इसमे निष्णात आचार्य प्राय सभी स्थानो पर मिलते थे ।

अस्पतालो का भी उल्लेख प्राप्त होता है । वहा वेतनभोगी अनेक वैद्य, वैद्यपुत्र, ज्ञापक, ज्ञापकपुत्र, कुशल और कुशलपुत्र आदि व्याधिग्रस्तो, ग्लानो, रोगियो और दुर्बलो को औषधिया दिया करते थे ।[९४]

पशु-चिकित्सा के विशेपज्ञ भी होते थे ।[९५] वैद्य को प्राणाचार्य भी कहा जाता था ।[९६] रसायनो का सेवन कराकर चिकित्सा की जाती थी ।[९७]

---

८८ वृहत्कल्पभाष्य वृत्ति ३।३८१६

८९ (क) जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति २४ पृ० १२०
  (ख) जीवाभिगम ३, पृ० १५३
  (ग) भगवती ३।६ पृ० ३५३

९० वृहत्कल्पभाष्य ५।५८७०

९१ वृहत्कल्पभाष्य ३।३९०७

९२ उत्तराध्ययन १५।८

९३ उत्तराध्ययन २०।२३, सुखबोधा, पत्र २६९

९४ ज्ञातृधर्मकथा १३, पृ० १४३

९५ उत्तराध्ययन वृहद्वृत्ति पत्र ४७५

९६ वही, पत्र ४७५

९७ उत्तराध्ययन वृहद्वृत्ति पत्र ११

धनुर्विद्या—

धनुर्वेद को छठा वेद माना है। यह विद्या पूर्णरूप से उन्नत थी और शूरवीरता की प्रतीक थी।[९८] यह ७२ कलाओ मे एक कला थी।

राजकुमारो के लिए धनुर्वेद की शिक्षा प्राप्त करना आवश्यक था। अनेक राजा और राजपुत्र इस विद्या मे निष्णात थे। राजा चेटक जो भगवान महावीर का मामा था, उसे एक दिन मे एक ही बाण छोडने का प्रण था। उसका बाण अमोघ होता था। कितने ही गृहस्थ भी धनुविद्या मे निष्णात होते थे। शब्दवेधी बाण का भी उल्लेख प्राप्त होता है।[९९]

सगीत और नृत्य –

उस युग मे सगीत विद्या का भी प्रचार अत्यधिक था। राजा महाराजा और अभिजात वर्ग के लोग ही नही, किन्तु साधारण लोग भी गाने-बजाने और नृत्य करने के शौकीन थे[१००]। उत्सवो व त्योहारो के अवसर पर प्राय स्त्री और पुरुष नाच गाकर अपना मनोविनोद करते थे। कौमुदी महोत्सव, इन्द्र महोत्सव बडे ठाट-बाट से मनाते थे।[१] लोग नृत्य और गायन मे इतने तल्लीन हो जाते थे कि अपने को ही भूल जाते थे।[२]

भगवान महावीर के समय मे राजा उदयन बहुत बडा सगीतज्ञ था। उसे उज्जैनी के राजा प्रद्योत ने अपनी राजकुमारी को सगीत की शिक्षा देने के लिए नियुक्त किया था।[३] सिन्धु-सौवीर के राजा उद्रायण भी एक अच्छे सगीतज्ञ थे। वे वीणा बजाते थे और उनकी रानी नृत्य करती थी।[४] सरसो की राशि पर नृत्य करने का वर्णन मिलता है।[५]

वाद्य, नाट्य, गेय, और अभिनय के भेद से सगीत भी चार तरह का है। उसमे वीणा, तल, ताल, लय और वादित्र को मुख्य स्थान दिया गया है।[६]

---

९८ धनुमह का उल्लेख भास ने किया, देखिए डाक्टर ए० डी० पुलालकर, भास-—ए स्टडी पृ० ४४० आदि

९९ ज्ञातृधर्मकथा १८, पृ० २०८,
तुलना करे—सरभग जातक (५२२) ५, पृ० २११

१०० द डान्स आव शिव, पृ० ७२ ८१ कुमारस्वामी

१ उत्तराध्ययन टीका १३, पृ० १८५

२ उत्तराध्ययन टीका ६।१३६

३ आवश्यक चूर्णि २, पृ० १६१

४ उत्तराध्ययन टीका १८, पृ० २५३

५ आवश्यक चूर्णि पृ० ५५५

स्थानाग[७] मे सात प्रकार के स्वरो का और स्वर प्राभृतपूर्व[८] मे विशद विश्लेषण किया गया है। राजप्रश्नीय मे ५६ प्रकार के वाद्यो का उल्लेख है।[९] अन्य आगम साहित्य मे भी कुछ वाद्यो के नाम आए हे[१०] और राजप्रश्नीय मे ३२ प्रकार की नाट्य विधि का भी उल्लेख है।[११] विस्तार भय से उन सभी के हम यहा पर नाम नही दे रहे हे।

चित्र एव स्थापत्यकला—

चित्रकला का प्रचार भी उस युग मे पर्याप्त मात्रा मे था। कलाकार चित्रो को बनाने मे अपनी कू ची (तूलिका) और नाना प्रकार के रगो का उपयोग करते थे। पहले भूमि को तैयार करते, फिर उसे सजाते थे। कितने ही कलाकार ऐसे भी थे किसी के एक अग को देखकर सम्पूर्ण रूप को चित्रित कर देते थे।[१२] चित्र सभाएँ भी थी, जिसमे महान कलाकारो के बनाये चित्र होते थे।[१३] कुछ लोग चित्रफलक भी बनाते थे। किसी परिव्राजिका ने

६ स्थानाग ४।३७४ पृ० २७१
७ (क) स्थानाग ७, पृ० ३७२,
(ख) अनुयोगद्वार पृ० ११७
८ बारहवा दृष्टिवाद का एक विभाग
९ राजप्रश्नीय टीका पृ० १२८
१० (क) व्याख्याप्रज्ञप्ति टीका पृ० २१६
(ख) जीवाभिगम ३, पृ० १४५
(ग) जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति २, पृ० १००
(घ) अनुयोगद्वार १२७
(ङ) निशीथसूत्र १७।१३५-१३८
(च) बृहत्कल्प भाष्य पीठिका २४ वृत्ति
(छ) जैन आगम साहित्य मे भारतीय समाज पृ० ३२२
११ राजप्रश्नीय टीका पृ० १३६
१२ (क) ज्ञाताधर्म कथा ८, पृ० १०६
(ख) उत्तराध्ययन ३५।४
१३ (क) उत्तराध्ययन टीका ९, पृ० १४१
(ख) देखें—सी० सिवराममूर्ति का आर्ट नोट्स फ्रॉम धनपाल्स तिलकमजरी, इण्डियन कल्चर, जिल्द २ पृ० १९९, २१०
(ग) कल्चरल हेरिटेज ऑव इण्डिया, जिल्द ३ पृ० ५५५

चेटक राजा की पुत्री राजकुमारी सुज्येष्टा का चित्रफलक तैयार कर राजा श्रेणिक को दिखाया था, जिससे वह उस पर मुग्ध हो गया था।[१४]

स्थापत्यकला की दृष्टि से भी वह युग पीछे नही था। वास्तु पाठको का भी उल्लेख मिलता है जो नगर निर्माण के हेतु इधर उधर स्थान की अन्वेषणा करते थे।[१५] गृह निर्माण करने से पूर्व भूमि की परीक्षा की जाती थी। भूमि को समान कर फिर उसे खोदते थे। ईटो को मूगरी से कूटकर उसके ऊपर ईटे चुनकर नीव रखी जाती थी, पीठिका तैयार होने पर उस पर मकान खडा किया जाता था।[१६] गृहमुख मे कोष्ठ चबूतरा, मण्डपस्थान (आगन-गृहद्वार) और शौचगृह बनाये जाते थे।[१७]

धनी और सम्पन्न व्यक्तियो के लिए ऊचे प्रासाद बनाये जाते थे। सत मजिल वाले[१८] प्रासादो का उल्लेख मिलता है। प्रासादो के शिखर मणि, कनक और रत्नो से निर्मित होने के कारण अत्यन्त सुहावने लगते थे।[१९] उन पर पताकाए फहराती थी। राजगृह बढिया पत्थरो व ईटो के भवनो के लिए विख्यात था।[२०]

मकान अनेक प्रकार के होते थे।[२१] (१) खात-भोहरा, (२) उच्छ्रित-प्रासाद (३) खात-उच्छ्रित-ऐसा प्रासाद जहा पर भूमि गृह भी हो। एक खभे वाले मकान को प्रासाद कहते थे।[२२]

मकानो मे झरोखे होते थे।[२३] उनकी दीवारो पर अनेक प्रकार के चित्र

---

१४ आवश्यकचूर्णि २, पृ० १६५

१५ आवश्यकचूर्णि २, पृ० १६१

१६ बृहत्कल्पभाष्य पीठिका ३३१-३३
तुलना करे-मिलिन्द प्रश्न पृ० ३३१-३४५

१७ निशीथचूर्णि २।१५३४-३५

१८ उत्तराध्ययन टीका १३, पृ० १८९

१९ ज्ञातृधर्म कथा १।पृ० ३-४
उत्तराध्ययन वृहद्वृत्ति पत्र ११०

२० बृहत्कल्पभाष्य ३।४७६८

२१ दशवैकालिक जिनदासचूर्णि पृ० ८८

२२ दशवैकालिक हारिभद्रीय टीका २१८

२३ (क) उत्तराध्ययन वृहद्वृत्ति पत्र ४५१
(ख) दशवै० हारिभद्रीया २३१

होते थे।[२४] मकानो के द्वार शाखामय होते थे। दरवाजो पर ताला लगाया जाता था।[२५] नगर के द्वार बडे-बडे होते थे। उनमे परिघ लगा रहता था और गोपुर के किवाड के आगल लगी हुई होती थी।[२६]

निर्धनो के घर कोटो की डालियो से ढके रहते थे, और गोबर से लीपे हुए होते थे।[२७] भाडे पर भी घर मिलते थे।[२८]

उपकरण

बिना अवष्टभ वाली कुरसी, आसालक, अवष्टभयुक्त, पर्यक, पीठ, आदि आसन लकडी से बनाये जाते थे और वेत या डोरे से गूथे जाते थे।[२९] पीढा बैत या पलाल का होता था।[३०]

लोग काष्ठ या चमडे के जूते पहनते थे। धूप और वर्षा मे बचने के लिए छत्र का उपयोग करते थे।[३१] थाली, कटोरे आदि बर्तन विशेष रूप से कासी के होते थे। धनवानो के यहा पर सोने-चादी के बर्तन होते थे। प्याले, क्रीडा, पान के बर्तन थाल या खोदक को 'कस' कहते थे। कच्छ आदि देशो मे कुण्डे के आकार वाला भाजन[३२] या हाथी के आकार वाला पात्र कुण्डमोद कहलाता था[३३] रथ सवारी के काम मे आता था जो प्राय तिनिस वृक्ष के बनाए जाते थे।[३४] भार ढोने वाला वाहन शकट कहलाता था।

आभूषण

आभूषणो का प्रचार अधिक था। मुख्य रूप से सोने-चादी के आभू-

---

२४ दशवैकालिक ८।५४

२५ द्वारयत्र वाऽपि।
—दशवैकालिक हारिभद्रीय वृत्ति १८४

२६ दशवैकालिक हारिभद्रीय वृत्ति पत्र १८४

२७ दशवैकालिक ५।१।२१

२८ भाटकगृह वा।
—दशवैकालिक हारिभद्रीय वृत्ति पत्र २६४

२९ (क) दशवैकालिक ६।५४-५५
(ख) दशवै० जिनदासचूर्णि पृ० २८८-२८९

३० दशवैकालिक हारिभद्रीया पत्र २०४

३१ दशवै० ३।४

३२ दशवै० अगस्त्यसिहचूर्णि

३३ दशवै० जिनदासचूर्णि० २२७

पण बनाए जाते थे। सोने के आभूषणो मे हीरा, इन्द्र, नील, मरकत, और मणि जडे जाते थे।[35] मस्तक पर चूडामणि बाधा जाता था।[36] कितने ही मनुष्य कृत्रिम स्वर्ण भी तैयार करते थे, वह विशुद्ध स्वर्ण जैसा होता था, परन्तु कप, छेद आदि सहन नही कर सकता था।[37]

वस्त्र—

अनेक प्रकार के वस्त्रो का उपयोग उस समय होता था। उसकी विस्तृत सूची भी मिलती है।[38] जगिय जघिक-ऊन के बने कम्बल आदि, भगिय[39] (यह वृक्ष के ततुओ से बनाया जाता था) साणिय (सन के बने हुए) पोत्तग[40] (ताड आदि से बने हुए) खोमिय[41] कपास से बने हुए और तूलकड[42] आदि वस्त्रो का उल्लेख है। जैन श्रमण आवश्यकता पडने पर इन वस्त्रो की याचना कर सकता था।

कितने को बहुमूल्य वस्त्र भी थे जो श्रमणो के लिए अग्राह्य थे। आईणग[43] (आजन-पशुओ की खाल से निर्मित वस्त्र) सहिण—बारीक बने हुए

---

३४ दशवैकालिक हारिभद्रीय वृत्ति पत्र २३९

३५ दशवै० जिनदासचूर्णि पृ० ३३०

३६ दशवै० जिनदासचूर्णि पृ० ३५०

३७ (क) दशवै० नियुक्ति गाथा ३५४
(ख) दशवै० हारिभद्रीय वृत्ति पत्र २६३

३८ (क) आचाराग ९।२।५।१।३६४-३६८
(ख) मिलिन्द प्रश्न पृ० २६७

३९ (क) भागेय का वर्णन मूलसर्वास्तिवाद के विनयवस्तु पृ० ९२
(ख) आज इसे भागेला कहते है—भारतीविद्या १। भाग १ पृ० ४१,
डा०—मोतीचन्द

४० वृहत्कल्प भाष्यवृत्ति २।३६६०

४१ (क) महावग्ग ८। ९। १४, पृ० २९८
(ख) इण्डियन कल्चर १। १-४ पृ० १९६

४२ (क) वृहत्कल्प भाष्य २।२४
(ख) स्थानाग ५।४४६ मे तूलकड के स्थान पर तिरीड पट्ट है। जो तिरीड वृक्ष की छाल से बनता था।
(ग) मोनियर से विलियम्स ने अपने कोश मे तिरीड का अर्थ शिरोवस्त्र किया है।

४३ महावग्ग ५।१०।२१, पृ० २११

होते थे।[२४] मकानो के द्वार शाखामय होते थे। दरवाजो पर ताला लगाया जाता था।[२५] नगर के द्वार बडे-बडे होते थे। उनमे परिघ लगा रहता था और गोपुर के किवाड के आगल लगी हुई होती थी।[२६]

निर्धनो के घर कोटो की डालियो से ढके रहते थे, और गोबर से लीपे हुए होते थे।[२७] भाडे पर भी घर मिलते थे।[२८]

उपकरण

बिना अवष्टभ वाली कुरसी, आसालक, अवष्टभयुक्त, पर्यक, पीठ, आदि आसन लकडी से बनाये जाते थे और बेत या डोरे से गूथे जाते थे।[२९] पीढा बेत या पलाल का होता था।[३०]

लोग काष्ठ या चमडे के जूते पहनते थे। धूप और वर्षा मे बचने के लिए छत्र का उपयोग करते थे।[३१] थाली, कटोरे आदि बर्तन विशेप रूप से कासी के होते थे। धनवानो के यहा पर सोने-चादी के बर्तन होते थे। प्याले, क्रीडा, पान के बर्तन थाल या खोदक को 'कस' कहते थे। कच्छ आदि देशो मे कुण्डे के आकार वाला भाजन[32] या हाथी के आकार वाला पात्र कुण्डमोद कहलाता था[33] रथ सवारी के काम मे आता था जो प्राय तिनिस वृक्ष के बनाए जाते थे।[३४] भार ढोने वाला वाहन शकट कहलाता था।

आभूषण

आभूपणो का प्रचार अधिक था। मुख्य रूप से सोने-चादी के आभू-

---

२४ दशवैकालिक ८।५४

२५ द्वारयत्र वाऽपि।

—दशवैकालिक हारिभद्रीय वृत्ति १८४

२६ दशवैकालिक हारिभद्रीय वृत्ति पत्र १८४

२७ दशवैकालिक ५।१।२१

२८ भाटकगृह वा।

—दशवैकालिक हारिभद्रीय वृत्ति पत्र २६४

२९ (क) दशवैकालिक ६।५४-५५

(ख) दशवै० जिनदासचूर्णि पृ० २८८-२८९

३० दशवैकालिक हारिभद्रीया पत्र २०४

३१ दशवै० ३।४

३२ दशवै० अगस्त्यसिहचूर्णि

३३ दशवै० जिनदासचूर्णि० २२७

पण बनाए जाते थे। सोने के आभूषणों मे हीरा, इन्द्र, नील, मरकत, और मणि जडे जाते थे।[34] मस्तक पर चूडामणि बाधा जाता था।[36] कितने ही मनुष्य कृत्रिम स्वर्ण भी तैयार करते थे, वह विशुद्ध स्वर्ण जैसा होता था, परन्तु कप, छेद आदि सहन नही कर सकता था।[37]

वस्त्र—

अनेक प्रकार के वस्त्रो का उपयोग उस समय होता था। उसकी विस्तृत सूची भी मिलती है।[38] जगिय जघिक-ऊन के बने कम्बल आदि, भगिय[39] (यह वृक्ष के ततुओ से बनाया जाता था) साणिय (सन के बने हुए) पोत्तग[40] (ताड आदि से बने हुए) खोमिय[41] कपास से बने हुए और तूलकड[43] आदि वस्त्रो का उल्लेख है। जैन श्रमण आवश्यकता पडने पर इन वस्त्रो को याचना कर सकता था।

कितने को बहुमूल्य वस्त्र भी थे जो श्रमणो के लिए अग्राह्य थे। आईणग[43] (आजन-पशुओ की खाल से निर्मित वस्त्र) सहिण—बारीक बने हुए

---

३४ दशवैकालिक हारिभद्रीय वृत्ति पत्र २३६

३५ दशवै० जिनदासचूर्णि पृ० ३३०

३६ दशवै० जिनदासचूर्णि पृ० ३५०

३७ (क) दशवै० नियुक्ति गाथा ३५४
   (ख) दशवै० हारिभद्रीय वृत्ति पत्र २६३

३८ (क) आचाराग ९।२।५।१।३६४-३६८
   (ख) मिलिन्द प्रश्न पृ० २६७

३९ (क) भागेय का वर्णन मूलसर्वास्तिवाद के विनयवस्तु पृ० ९२
   (ख) आज इसे भागेला कहते है—भारतीविद्या १। भाग १ पृ० ४१,
   डा०—मोतीचन्द

४० वृहत्कल्प भाष्यवृत्ति २।३६६०

४१ (क) महावग्ग ८। ९। १४, पृ० २६८
   (ख) इण्डियन कल्चर १। १-४ पृ० १९६

४२ (क) वृहत्कल्प भाष्य २।२४
   (ख) स्थानाग ५।४४६ मे तूलकड के स्थान पर तिरीड पट्ट है। जो तिरीड वृक्ष की छाल से बनता था।
   (ग) मोनियर से विलियम्स ने अपने कोश मे तिरीड का अथ शिरोवस्त्र किया है।

४३ महावग्ग ५।१०।२१, पृ० २११

वस्त्र) सहिण कल्लाण-(वारीक और सुन्दर निर्मित वस्त्र) आय[४४] (बकरे के बालो से बने हुए वस्त्र) काय[४५] (नीली कपास से निर्मित वस्त्र) खोमिय (क्षोमिक-कपास के बने वस्त्र) दुगुल्ल[४६] (दुकूल-दुकूल नाम के पौधे के ततुओ से बना हुआ) पट्ट[४७] (पट्ट के तन्तुओ से बने हुए, मलय पत्तन्न[४८] (पत्रोर्ण वृक्ष की छाल के तन्तु से निष्पन्न) असुय-(अशुक) चीणासुय-(चीनाशुक) देसराग-(रगीन वस्त्र) अमिल[४९] (साफ चिट्टे वस्त्र) गज्जफल[५०] (पहनने पर कड-कड करने वाला वस्त्र) फालिया (स्फटिक के समान स्वच्छ वस्त्र) कोयव्व[५१] (कोतव, रूए दार कम्वल) कम्बलग (कम्बल) और पावार (प्रावरण, लवादा) आदि।

इनके अतिरिक्त भी अनेक प्रकार के वस्त्रो का उल्लेख हुआ है।[५२]

दूष्य नाम का एक बहुमूल्य वस्त्र होता था। देव दूष्य वस्त्र का उल्लेख है। भगवान महावीर ने दीक्षा ली, तव इन्द्र ने उनको प्रदान किया था जिसकी कीमत एक लाख दीनार आकी गई थी।[५३] विजय दूष्य एक अन्य प्रकार का वस्त्र था जो शख, कु द, जलधारा और समुद्रफेन के समान श्वेत वर्ण का

४४ निशीथ सूत्र ७।१२ की चूर्णि।
४५ निशीथचूर्णि ७। पृ० ३९९
४६ आचाराग टीका के अनुसार गौड देश मे पैदा होने वाली घास से निर्मित्त वस्त्र
४७ अनुयोग द्वार—३७ वृहत्कल्प भाष्य २।३६६२
४८ महाभारत २।७८, ५४, अर्थशास्त्र २।११।२९,११२ कौटिल्य।
४९ आचाराग शीलाक टीका मे अमिल का अर्थ ऊट किया है।
५० निशीथ चूर्णि—परिभुज्जमाणा कडकडेति।
५१ (क) वृहत्कल्प भाष्य वृत्ति २।३६६२
(ख) अनुयोग द्वार सूत्र ३७ की टीका, टीकाकारो का मन्तव्य है कि यह वस्त्र बकरे या चूहे के वालो से बनाया जाता था। देखिए महावग्ग ८।८।१२
५२ जैन आगम साहित्य मे भारतीय समाज पृ० २०८
५३ कल्पसूत्र
५४ (क) आवश्यकचूर्णि पृ० २६८
(ख) महावग्ग ८।८।१२ पृ० २९८ मे सेय्यक वस्त्र का उल्लेख है। यह वस्त्र शिवि देश से आता था और उसकी कीमत १ लाख मुद्रा थी।
(ग) मज्झिम निकाय २।२। पृ० १९ मे दुस्सुयुग का नाम आया है।

होता था ।[५५] बृहत्कल्पभाष्य मे पाच प्रकार के दूष्य वस्त्रो का वर्णन है ।[५६]

कल्पसूत्र मे भगवान महावीर की माता की शैय्या का वर्णन है । उसमे गद्दे थे और दोनो ओर तकिये थे । वह दोनो ओर से ऊपर उठी हुई और मध्य भाग मे पोली थी । अत्यन्त कोमल थी, क्षौम व दुकूल वस्त्र से आच्छादित थी । बेल-बूटे निकाले हुए रजस्त्राण उस पर बिछी थी और लोमचर्म कपास, तन्तु और नवनीत के समान कोमल रक्तांशुक से ढकी हुई थी ।[५७]

शिक्षा और विद्याभ्यास—

उस युग मे अध्यापको का बहुत ही सम्मान था । विद्यार्थी अपने गुरुजनो के प्रति अत्यन्त श्रद्धा का भाव रखते थे । जो भी वे पढाते उसे वे बहुत ही ध्यान से सुनते, प्रश्न करते, फिर उस पर चिन्तन करते, उसको स्मरण रखकर उसका आचरण करते ।[५८] जातिवत अश्व के समान उनके सकेतानुसार चलते । यदि आचार्य शिष्य पर कुपित हो जाता तो शिष्य प्रिय वचनो से उनको प्रसन्न करता और विनयपूर्वक अपने अपराधो की क्षमा माँगता और भविष्य मे भूल न करने का आश्वासन देता । आसन पर बैठकर आचार्य से प्रश्न नही करता, पर प्रश्न पूछना होता तो अपने आसन से उठकर, हाथ जोडकर विनयपूर्वक प्रश्न पूछता ।[५९]

जो अविनीत शिष्य होता, उसको अध्यापक दण्ड भी देते थे । उसका आदर नही करते थे ।[६०]

विद्यार्थी का जीवन सादा था । कितने ही विद्यार्थी अध्यापक के घर पर रहकर पढते थे और कितने ही धनवानो के वहा पर अपने खाने पीने का प्रबन्ध कर लेते थे । कौशाम्बी नगरी के ब्राह्मण काश्यप का पुत्र कपिल श्रावस्ती मे पढने के लिए गया, और कलाचार्य के सहयोग से अपने भोजन का प्रबन्ध वहा के धनी शालिभद्र के यहा पर किया ।[६१]

---

५५ राजप्रश्नीय ४३, पृ० १००

५६ (क) बृहत्कल्प भाष्य ३, ३८२४ (ख) निशीथ भाष्य १२। ४००-१४००२

५७ कल्पसूत्र

५८ आवश्यक निर्युक्ति २२

५९ उत्तराध्ययन १,२,६,१२,१३,१८,२२,२७,४१

६० उत्तराध्ययन १।३८

६१ उत्तराध्ययन, सुखबोधा पत्र १२४

विद्यार्थी का समाज मे बहुत सम्मान था। जब कोई विद्याध्ययन समाप्त कर घर आता तब उसका सार्वजनिक सम्मान किया जाता था। नगर को सजाया जाता था। राजा भी उसके स्वागत के लिए सामने जाता था। उसे बडे आदर के साथ लाकर इतना उपहार समर्पित करते कि जीवन भर उसे आर्थिक दृष्टि से परेशानी नही उठानी पडती।[६२]

ब्राह्मण प्राय चौदह विद्याओ मे पारगत होते थे। वे चौदह विद्याए ये है —(१) शिक्षा, (२) कल्प, (३) व्याकरण, (४) निरुक्त, (५) छन्द, (६) ज्योतिप, (७) ऋग्वेद (८) यजुर्वेद, (९) सामवेद, (१०) अथर्ववेद, (११) मीमासा, (१२) न्याय, (१३) पुराण, (१४) धर्मशास्त्र।[६३] बहत्तर कलाओ के शिक्षण का प्रचलन भी था।[६४]

भगवान महावीर आठ वर्ष के हुए तो राजा सिद्धार्थ ने उनको लेख-शाला भेजने का महोत्सव मनाया। नैमित्तको को बुलाकर मुहूर्त निकलवाया। और स्वजनो को भोजन कराकर उनका सम्मान किया। अध्यापक को बहु-मूल्य वस्त्राभूपण व श्रीफल आदि भेंट दिये। लेखशाला के विद्यार्थियो को मषिपात्र, लेखनी और पट्टी आदि दी, द्राक्षा, खण्ड शर्करा, चिरौंजी और खजूर आदि वितरण किये, फिर गाजे-बाजे के साथ महावीर ने शाला मे प्रवेश किया।[६५]

विद्या-केन्द्र —

उस समय राजा महाराजा तथा सामन्त लोग, साधारण रूप से विद्याकेन्द्रो के आश्रयदाता होते थे। समृद्ध राज्यो की राजधानियो मे विद्वान लोग दूर-दूर से आकर रहते थे, जिससे राजधानिया विद्या के केन्द्र हो जाती थी। वाराणसी शिक्षा का मुख्य स्थल था। श्रावस्ती भी शिक्षा का केन्द्र था। पाटलिपुत्र भी अध्ययन के लिए विद्यार्थी जाते थे। दक्षिण मे प्रतिष्ठान विद्या का बडा केन्द्र था।[६६] बौद्धसाहित्य मे तक्षशिला का भी उल्लेख मिलता है।

---

६२ (क) उत्तराध्ययन सुखबोधा पत्र २३ (ख) ज्ञातृधर्म कथा १। पृ० २२

६३ उत्तराध्ययन वृहद्वृत्ति पत्र ५२३

६४ उत्तराध्ययन सुखबोधा पत्र ३१८

६५ कल्पसूत्र टीका ५ पृ० १२०

६६ (क) कल्पसूत्र टीका ४ पृ० ९०

(ख) बुद्धिस्ट स्टडीज पृ० २३६ डा० राधाकुमुद मुकर्जी

साधु-साध्वियो के उपाश्रय भी चलते-फिरते शिक्षा केन्द्र थे। जहा पर विविध विषयो का अध्ययन होता था। जिसमे प्रतिभा की तेजस्विता कम होती वे एकादश अगो का अध्ययन करते और जिनमे अधिक होती वे पूर्व साहित्य का भी अध्ययन करते। पूर्वों मे सम्पूर्ण ज्ञान विज्ञान आ चुका था। वह ज्ञान-विज्ञान का अक्षयकोप था। विद्या के विभिन्न क्षेत्रो मे सत्य-दृष्टि से सम्यग्ज्ञान को आगे बढाना, श्रमणो की शैक्षणिक व साम्कृतिक प्रवृत्तियो की आश्चर्यजनक विशेषता थी। वे दार्शनिक विपयो पर सूक्ष्मातिसूक्ष्म चर्चा किया करते थे, और परतीर्थिको पर विजय वैजयन्ती फहराया करते थे।[६७]

लेखनकला—

उस युग मे लोग लिखने की कला से परिचित थे।[६८] लेखन सामग्री इस रूप मे मिलती थी[६९]—पत्र, पुस्तक का पुट्ठा, डोरी गाठ, मपीपात्र, ढक्कन जजीर, स्याही, लेखनी, अक्षर और पुस्तक[७०]। लेखशाला मे लेखाचार्य विद्याओ का अध्ययन कराते थे।[७१]

समवायाङ्ग की टीका मे पत्र, वल्कल, काष्ठ दन्त, लोहा, ताबा[७२] और रजत आदि पर अक्षरो के लेखन, उत्कीर्णन, सीने और बुनने का उल्लेख है। ये अक्षर पत्र आदि को छिन्न-भिन्न करके दग्ध करके और सक्रमण करके बनाये जाते थे।[७३] भोजपत्र पर लिखने का चलन था।[७४] शत्रु के पास दूत

---

६७ (क) बृहत्कल्पभाष्य ४, ५१७६, ५४२६-५४३१
(ख) व्यवहारभाष्य १ पृ० ५७

६८ डा० गौरीशकर ओझा ने लिखा है—ई० पूर्व पाचवी शताब्दी मे लेखन का रिवाज था, देखे—भारतीय लिपि माला पृ० २

६९ (क) राजप्रश्नीय सूत्र १३१, (ख) आवश्यक टीका हरिभद्र पृ० ३८४
(ग) निशीथ भाष्य १२, ४००

७० (क) बृहत्कल्पभाष्य ३।३८२२
(ख) जैन कल्पद्रुम मुनि पुण्यविजय जी
(ग) आउट लाइन्स आव पैलिओग्राफी, जनरल आव यूनिवर्सिटी आव बाम्बे जिल्द ६, भाग ६, पृ० ८७

७१ आवश्यकचूर्णि पृ० २४८

७२ ताम्र पत्र पर पुस्तक लिखने का उल्लेख—वसुदेवाहिण्डी पृ० १८१

७३ समवायाङ्ग पृ० ७८

७४ आवश्यक चूर्णि, पृ० ५३०

द्वारा पत्र भेजने का रिवाज था। राजमुद्रा से मुद्रित पत्र,[७५] और कूटलेख[७६] का भी वर्ण मिलता है। गुप्तलिपि मे प्रेम पत्र भी लिखे जाते हे।[७७]

अठारह लिपियो का वर्ण मिलता है—(१) बभी (ब्राह्मी) (२) जवणालिया (३) दोसाउरिया (४) खरौट्ठिया (५) पुक्खरसारिया (६) पहराइया (७) उच्चतरिया (८) अक्खरपुटिठया (९) गणितलिपि (१०) भोगवयता (११) वेणतिया (१२) निण्हइया (१३) अकलिपि (१४) गधव्वलिपि (भूतलिपि) (१५) आदसलिपि (१६) महेसईलिपि (१७) दामिलीलिपि (द्राविडी) और (१८) पोलिंदीलिपि।

ब्राह्मी और खरोष्ट्री लिपियो का वर्णन जैन और बौद्ध दोनो साहित्य मे है।[७८] ब्राह्मी लिपि बाये से दाहिनी और तथा खरोष्ट्री लिपि दाहिनी ओर से बाई ओर लिखी जाती थी। खरोष्ट्री लिपि भारत के उत्तर पश्चिम मे प्रचलित थी और गधार की स्थानीय लिपि समझी जाती थी। बाद मे उसका लोप हो गया, और उसका स्थान ब्राह्मी ने ले लिया। बुहलर के अभिमता-

---

(ख) भारत मे पत्र और वल्कलो पर लिखा जाता था। ये लेख स्याही का उपयोग किये विना उत्कीर्ण करके लिखे जाते थे—देखे—राइस डेविड्स बुद्धिस्ट इण्डिया पृ० ११७

७५ (क) वृहत्कल्पभाष्य पीठिका १९५
(ख) निशीथ चूर्णि ५, पृ० ३६१

७६ उपासकदशा १। पृ० १०

७७ (क) समवायाग पृ० ३३
(ख) विशेपावश्यक भाष्य की टीका (४६४) मे लिपियो के नाम इस प्रकार प्राप्त होते हे। (१) हस (२) भूत (३) यक्षी (४) राक्षसी (५) उडी (६) यवनी (७) तुरूष्की (८) कीरी (९) द्राविडी (१०) सिघवीय (११) मालविनी (१२) नागरी (१३) लाटी (१४) पारसी (१५) अनिमिती (१६) चाणक्यी (१७) और मूलदेवी।
(ग) लावण्यसमयगणी-विमल प्रबन्ध, पृ० १२३
(घ) कल्पसूत्र-लक्ष्मीवल्लभ की टीका
(ड) ए हिस्ट्री आव कैनानिकल लिटरेचर आव द जैन्स पृ० ९४ एच० आर० कापडिया

७८ (क) उत्तराध्ययन टीका १३, पृ० १९१
(ख) निशीथ सूत्र ९। १३, ३।२२६२

नुसार सम्राट् अशोक के अधिकाश शिलालेख ब्राह्मी लिपि मे लिखे गये थे।[80]

समवायाग के अनुसार ब्राह्मी लिपि मे ४६ मूल अक्षर थे। जिनमे ऋ, ॠ, लृ, लॄ और ळ[81] अक्षर सम्मिलित नही किये जाते थे।[82] कितने ही विज्ञो का अभिमत है कि ब्राह्मी किसी लिपि विशेष का नाम नही था, पर अठारह लिपियो के लिए सामान्य रूप से व्यवहृत होता था।[83]

भाषाएँ—

उस समय जन-साधारण की भाषा अर्धमागधी थी। भगवान् महावीर ने अर्ध मागधी मे उपदेश दिया था।[84] यह भाषा सभी को समझ मे आजाती थी।[85] वाग्भट्ट ने अलकारतिलक मे लिखा है कि हम उस वाणी को नमस्कार करते है जो सब की अर्धमागधी है, सभी भाषाओ मे अपना परिणाम दिखाती है और जिसके द्वारा सभी कुछ जाना और समझा जा सकता है।[86] स्पष्ट है कि बौद्ध विज्ञो ने भी मागधी भाषा को सब भाषाओ का मूल माना है। जिस प्रकार जैनियो ने अर्धमागधी को, और वैयाकरणो ने आर्य भाषा को मूल स्वीकार किया है। अर्धमागधी और पाली भाषा दोनो एक दूसरे के बहुत ही सन्निकट रही है। जर्मन के महान विद्वान रिचार्ड पिशल ने अर्धमागधी के अनेक प्राचीन रूपो के सम्बन्ध मे प्रकाश डाला है।[87]

---

७९ ललित विस्तार पृ० १२६ मे ६४ लिपियो मे सर्वप्रथम ब्राह्मी और खरोष्ट्री का उल्लेख है।

८० (क) भारतीय लिपिमाला, पृ० १७-३६, १ ४। ओझा०
(ख) बुद्धिस्ट इन्डिया पृ० १२४ राइस डेविडस
(ग) प्राकृत साहित्य का इतिहास—डा० जगदीशचन्द्र पृ० १५-१६

८१ ओझाजी ल् (ळ) के स्थान पर क्ष मानते है देखिए भारतीय लिपिमाला पृ० ४६

८२ समवायाग सूत्र ४६ पृ० ६५

८३ भारतीय जैन श्रमण सस्कृति अने लेखन कला पृ० ५ पुण्य विजयजी

८४ आचाराग चूर्णि पृ० २५५

८५ (क) समवायाग पृ० ५७ (ख) औपपातिक स ३४ पृ० १४६
(ग) विभगअट्ठकथा पृ० ३८७ मे कहा है कि बालको को बचपन मे कोई भाषा न सिखाई जाये तो वे स्वय मागधी भाषा बोलने लगते है। यह भाषा नरक, तिर्यंच, प्रेत, मनुष्य और देवलोक मे समझी जाती है।

८६ अलकार तिलक १।१

८७ प्राकृत भाषाओ का व्याकरण, पृ० ३३

जिनदासगणी ने मगध के आधे भाग मे बोली जानेवाली अथवा अठारह देशी भाषाओ से नियत भाषा मे कहा है।[८८] आचार्य अभयदेव के अभिमतानुसार इस भाषा मे कुछ लक्षण मागधी के और कुछ लक्षण प्राकृत के मिलने के कारण इसे अर्धमागधी कहा है।[८९]

व्यापार और समुद्र यात्रा—

वैश्यो का मुख्य पेशा व्यापार था और वे व्यापार के लिए विदेश भी जाया करते थे।[९०] व्यापार करने के कारण उन्हे वणिक् भी कहा जाता था।[९१] वणिक् का अपभ्रंश रूप 'बनिया' व्यापारियो के लिए आज भी प्रयुक्त होता है। प्राय समुद्र पार वणिक ही जाया करते थे। जल और स्थल दोनो ही मार्गों से व्यापार हुआ करता था। समुद्र पार जाते समय बडी नावो या जलपोतो का उपयोग किया जाता था।[९२] व्यापारी अपना माल भर कर नौकाओ व जहाजो से दूर-दूर देशो मे जाते थे। कभी-कभी तूफान आदि के कारण नौका टूट जाती थी और सारा माल पानी मे बह जाता था। जहाज के वलयमुख मे प्रविष्ट होने का बहुत भय रहता था।[९३] समुद्रयात्रा से वापिस आ जाना बडी कुशलता समझी जाती थी। विदेश मे वणिक् लोग कभी-कभी शादी भी कर लेते थे और फिर उसे लेकर घर आ जाते थे। समुद्रयात्रा मे बहुत समय लगने के कारण कभी-कभी समुद्रयात्रा करते समय जल-पोत मे गर्भवती महिलाये प्रसव भी कर देती थी।[९४]

भारत मे रत्नो का खूब व्यापार होता था। विदेशी लोग यहाँ पर रत्न खरीदने भी आया करते थे।[९५]

---

८८ निशीथ चूर्णि ११।३६१८

८९ (क) भगवतीवृत्ति ५।४, पृ० २२१
(ख) औपपातिक सूत्र टीका ३४, पृ० १४८

९० (क) उत्तराध्ययन २१।२-३
(ख) उत्तराध्ययन ७।१४--१५

९१ उत्तराध्ययन ३५-१४

९२ उत्तराध्ययन २३।७०-७३

९३ उत्तराध्ययन सुखबोधा पत्र २५२

९४ उत्तराध्ययन २१।४

९५ रयणाणि विदेसी वणियाण हत्थे विक्कीयाणि—उत्तरा० बृहद्वृत्ति पत्र १४७

जब व्यापारी दूर देश मे व्यापार करने जाते तब उन्हे वहाँ के राजा की अनुमति प्राप्त करनी पडती थी।

जो माल दूर देशो से आता था उसकी जाच करने के लिए व्यक्तियो का एक विशेष समूह होता था।[९६]

विदेशो से माल लाने वाले व्यापारी राजकाज से बचने के लिए छल-कपट करने से भी नही चूकते थे। अकरत्न, शख, और हाथी दातके व्यापारी टैक्स से बचने के लिए सीधे मार्गो से यात्रा न कर दुर्गम मार्ग से घूम-घूमकर इष्ट स्थान पर पहुँचते थे।[९७]

उस समय बहुत सी वस्तुओ का विनिमय होता था। जब चम्पा के व्यापारी-विदेश यात्रा के लिए प्रस्थान करने की तैयारी करने लगे उस समय उन्होने छकडो मे सुपारी, शक्कर, घी, चावल, कपडा और रत्न आदि आवश्यक वस्तुए बेचने के लिए भरी और अपने खाने पीने का सामान दवाए आदि, तृण, लकडी, वस्त्र और शस्त्र-अस्त्र आदि लेकर मिथिला की ओर प्रस्थान किया। स्वर्ण और हाथी दात उत्तरापथ से दक्षिणापथ मे बिकने के लिए आते थे। मथुरा और[९८] विदिशा (भेलसा) वस्त्र उत्पादन के बडे केन्द्र थे। गोड देश रेशमी वस्त्रो के लिए प्रसिद्ध था[९९]। पूर्व से जो वस्त्र लाट देश मे आते थे उनकी कीमत अधिक होती थी।[१००] ताम्रलिप्ति[१] मलय[२] काक[३] तौसलि[४] सिन्धु[५] दक्षिणापथ[६] और चीन[७] से विविध प्रकार के वस्त्र आते थे। नेपाल

---

९६ उत्तराध्ययन सुखबोधा पत्र ६५

९७ राजप्रश्नीय सूत्र १६४

९८ आवश्यक हारिभद्रीय वृत्ति पृ ३०७

९९ (क) आचाराग वृत्ति २।५। पृ० ३६१

(ख) जातको मे भी काशी से आनेवाले कासिवत्थ का वर्णन है।

१०० वृहतकल्पभाष्य वृत्ति ३।३८८४

१ व्यवहारभाष्य ७।३२

२ अनुयोगद्वार सूत्र ३७, पृ० ३०

३ निशीथसूत्र ७।१२ की चूर्णि

४ निशीथचूर्णि ७।१२

५ (क) आचाराग चूर्णि पृ० ३६४

(ख) आचाराग टीका १।२ पृ० ३६१

६ आचाराग चूर्णि पृ० ३६३

७ वृहत्कल्प भाष्य २।३६६२

मे रूएदार बहुमूल्य कम्बल होते थे। महाराष्ट्र मे ऊनी कम्बल अधिक कीमत मे बिकते थे।[८]

घोडो का व्यापार भी चलता था। कम्बोज के घोडे श्रेष्ठ होते थे। वे बहुत तेज चलते थे और किसी भी तरह की आवाज से नही डरते[९]। उत्तरापथ अपने जातिवत घोडो के लिए प्रसिद्ध था।[१०] पुण्ड (महास्थान जिला बोगरा बगाल) अपनी काली गायो के लिए विख्यात था। वहा पर गायो को खाने के लिए गन्ने दिये जाते थे।[११] भेरण्ड मे गन्ना बहुत होता था।[१२] महाहिमवन्त गोशीर्ष चन्दन के लिए प्रसिद्ध था।[13] पारसउल (ईरान) से शख, सुपारी, चन्दन, अगुरु मजीठ, चादी, सोना, मणि, मुक्ता, प्रवाल आदि बहुमूल्य वस्तुए आती थी।

जलमार्ग और स्थलमार्ग की सुविधा से ही व्यापार सहज रूप मे हो सकता। उस समय शृ गाटक, त्रिक, चतुष्क (चौक) चत्वर, महापथ और राज-मार्ग का उल्लेख है[१५] जिससे यह ज्ञात होता कि उस समय मार्ग की व्यवस्था थी। तथापि आज कल की तरह उस युग मे सडको का अभाव था। जगलो मे घोर वर्षा, चोर-लुटेरे, दुष्ट हाथी, सिंह आदि जगली पशुओ का, अग्नि, गड्डे, व जहरीले वृक्ष आदि का भय बना रहता था।[१६] कभी जगल का रास्ता पार करते हुए वर्षा होने लगती तो कीचड आदि के कारण सार्थ को

---

८ वृहत्कल्पभाष्य ।३३६१४

९ उत्तराध्ययन सूत्र ११।१६

१० उत्तराध्ययन टीका पृ० १४१

११ तन्दुल वैयालिय टीका पृ० २६

१२ जीवाभिगम ३। पृ० ३५५

१३ उत्तराध्ययन टीका १८ पृ० २५२

१४ उत्तराध्ययन टीका ३ पृ० ६४

१५ (क) राजप्रश्नीय १०
(ख) वृहत्कल्पभाष्य १।२३००

१६ (क) ज्ञाता धर्म कथा १५, पृ० १६०
(ख) वृहत्कल्पभाष्य १।३०७३
(ग) आवश्यक हरिभद्रीया वृत्ति पृ० ३८४
(घ) फलजातक १ पृ० ३५२
(ङ) अपण्णक जातक १ पृ० १२८
(च) अवदान शतक २।१३। पृ० ७१

जगल मे ही वर्षा काल बिताना पडता[17] कितने ही मार्ग अत्यन्त बीहड होते थे जिसकी सूचना यात्री लोग शिला पर या वृक्षो पर लिख दिया करते थे।[18] सिणवल्लि (सिनावन जिला मुजफ्फर गढ पाकिस्तान) के चारो ओर भयकर रेगिस्तान था। वहा पर न पानी मिलता था और न छाया का कही नाम ही था।[19] कितने ही सन्त कपिल्लपुर (कपिल जिला फरु खाबाद) से पुरिमताल (पुरुलिया बिहार) जा रहे थे। पानी के अभाव मे उन्हे मार्ग मे ही जीवन लीला समाप्त करनी पडी।[20]

स्थल मार्ग मे सामान को इधर से उधर ले जाने के लिए, गाडियो, ऊट खच्चर, और बैलो आदि का उपयोग होता था। और लोगो के बैठने के लिए हाथी घोडे, रथ और शिविका का उपयोग होता था।

समुद्र और नदियो मे नावो का उपयोग होता था। चार प्रकार की नावो का उल्लेख प्राप्त होता है (१) अनुलोमगामिनी, (२) प्रतिलोमगामिनी (३) तिरिच्छ सतारणी (एक तट से दूसरे तट पर सरल रूप से जाने वाली) (४) समुद्रगामिनी।[21] जहाज के लिए पोत, पोतवहन, वहन, और प्रवहण आदि शब्दो का प्रयोग प्राप्त होता है।

व्यापार केन्द्र

चम्पा नगरी व्यापार का प्रमुख केन्द्र था। वहा के बाजार शिल्पियो से सादा आकीर्ण रहा करते थे।[22] वहा पर अनेक प्रकार की दुकाने थी। कर्मान्तशाला मे उस्तरे आदि पर धार लगाई जाती थी।[23] चक्रिकाशाला मे तेल, गोलियशाला मे गुड, गोणियशाला मे गाय, दौसियशाला मे दूष्य (वस्त्र)

---

१७ आवश्यक चूर्णि पृ० १३१

१८ आवश्यक चूर्णि पृ० ५११

१९ आवश्यक चूर्णि पृ० ५५३,२

२० औपपातिक ३९ पृ० १७८

२१ (क) निशीथ भाष्य पीठिका १८३

(ख) निशीथ सूत्र १८।१२—१३ मे चारनावो का उल्लेख है

(१) ऊर्ध्वगामिनी (२) अधोगामिनी (३) योजन वेलागामिनी और (४) अर्ध-योजन वेलागामिनी

२२ औपपातिक सूत्र १

२३ निशीथ सूत्र ८।५-६ और चूर्णि

सोत्तियशाला मे सूक और गंधियशाला मे सुगन्धित पदार्थ बेचे जाते थे।[२४] हलवाईयो की दुकाने पोहज कहलाती थी, जहा पर विविध प्रकार के खाद्य पदार्थ प्राप्त होते थे।[२५] महानसशाला मे विविध प्रकार के भोजन तैयार किये जाते थे।[२६] गंधर्वशाला, गजशाला रजकशाला, पार्टहिकशाला, चट्टशाला, मन्त्रशाला, गुह्यशाला,[२७] रहस्यशाला[२८], और कुंभारो की भी अनेक शालाए थी।[२९] लुहारो की भी अनेक शालाएँ नगरो मे स्थान-स्थान पर होती थी।[३०] लुहार वर्ग का कार्य भी उन्नति पर था। वे लोग खेती-बारी के लिए काम मे आनेवाले हल, कुदाली आदि और लकडी काटने के लिए वसूला, फरसा आदि बनाकर बेचा करते थे।[३१] क्षौरकर्म के लिए नाई की दुकाने भी यत्र-तत्र मिलती थी।[३२]

सिक्का—

वस्तु विनिमय के साथ-साथ उस समय सिक्को का लेन-देन भी चलता था[33] उसमे प्रमुख सिक्के ये थे —

(१) कार्षापण[३४] —रुपया

---

२४ निशीथ चूर्णि ८।५-६

२५ निशीथ चूर्णि पृ० ३०४७

२६ आवश्यक चूर्णि पृ० २५० भगवान महावीर के भाई नन्दिवर्द्धन ने अनेक स्थलो पर महानसशालाएँ स्थापित की थी

२७ (क) निशीथ चूर्णि ६।७
(ख) व्यवहार भाष्य ६। पृ० ५

२८ निशीथसूत्र ८।५-६, १६, ६-७

२९ निशीथसूत्र ८।५-६ की चूर्णि

३० उत्तराध्ययन चूर्णि पृ० ३७

३१ उत्तराध्ययन ३६।७५

३२ उत्तराध्ययन वृहद्वृत्ति पत्र ५७

३३ उत्तराध्ययन वृहद्वृत्ति पत्र २०६

३४ उत्तराध्ययन वृहद्वृत्ति २७६
(ख) उत्तराध्ययन २०।४२
(ग) कार्षापण को ही मनुस्मृति (८।१३५-१३६) मे धरण और रजतपुराण कहा है। चाँदी के कार्षापण या पुराण का वजन ३२ रत्ती था। सोने और ताम्बे के कर्ष का वजन ८० रत्ती था। ताम्बे के कार्षापण को 'पण' कहते

(२) विशोपक[३५] —रुपए का बीसवा भाग।
(३) काकिणी[३६] —तावे का सबसे छोटा सिक्का।
—विशोपक का चौथा भाग या रुपए का ८० वा भाग।
(४) कौडी[३७] —बीस कोडियो की एक काकिणी।
(५) सुवर्णभापक[३८] —छोटा सिक्का।

वृहत्कल्पभाष्य[३९] और उसकी वृत्ति मे अनेक मुद्राओ का उल्लेख हे उसमे सर्वप्रथम कौडी (कवड—ग) का नाम आया है। काकिणी ताम्वे का सबसे छोटा सिक्का था, जो दक्षिणापथ मे प्रचलित था। द्रम्य-चादी का सिक्का था, जो भिल्लमाल (भिन्नमाल) मे चलता था। दीनार और केवडिक ये सोने के सिक्के थे जिनका प्रचलन पूर्व देश मे था।[४०]

'दीनार' शब्द का जैन साहित्य मे अनेक स्थलो पर व्यवहार हुआ है।[४१]

थे। (मनुस्मृति ८।१३६) पाणिनीयसूत्र पर वार्तिक लिखते हुए कात्यायन ने 'कार्पापण को 'प्रति' कहा हे। 'प्रति' से खरीदी जाने वाली वस्तु प्रतिक हे। पाणिने इन सिक्को को आहत कहा है (पाणिनि-अष्टाध्यायी ५।२।१२०) जातको मे कहापण शब्द आता है। अष्टाध्यायी मे कार्पापण ओर पण ये दो शब्द पाये जाते है (पाणिनी अष्टाध्यायी ५।१।२९-५-१।३४) यह हो सकता है, कि चादी के सिक्को को कार्पापण और ताम्वे के कर्प का नाम "पण' रहा हो। (पाणिनि कालोन भारतवर्प पृ० २५७ वासुदेवशरण अग्रवाल)

३५ उत्तराध्ययन चूर्णि पृ० १६१
३६ (क) उत्तराध्ययन ७।११
(ख) अर्थशास्त्र २।१४।३२।८, पृ० १९४
३७ उत्तराध्ययन वृहद्वृत्ति पत्र २७२
३८ उत्तराध्ययन सुखबोधिका वृत्ति पत्र १२४
३९ वृहत्कल्पभाष्य व वृत्ति द्वितीय भाग पृ० ५७४
४० पूर्व देशे दीनार
—वृहत्कल्प भाष्य द्वि० भाग—५७४
४१ (क) आवश्यक हारिभद्रीया वृत्ति पत्र १८५ व ४३२
(ख) आवश्यक नियुक्ति दीपिका प्र० भा० पत्र १८३
(ग) जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति टीका पत्र १०५

माप-तोल

आगम साहित्य मे पाच प्रकार के मापो का उल्लेख है—(१) मान (२) उन्मान (३) अवमान (४) गणिम (५) और प्रतिमान। मानप्रमाण – घनमान और रसमान से दो प्रकार का है। घनमान प्रमाण के भी अवान्तर अनेक भेद है। रसमान प्रमाण से तरल पदार्थों का माप किया जाता था।

उन्मान मे अगुरु, तगर, चोय आदि वस्तुए आती थी, जिसके लिए कर्ष, पल, तुला और भार का उपयोग किया जाता था।

अवमान मे हस्त, दड, धनुष्क, युग नालिका, अक्ष और मुशल की गणना होती थी जिनसे घर, लकडी, चटाई, कपडा और खाई आदि नापी जाती थी।

गणिम का अर्थ है गिनना। इसके द्वारा एक से लेकर करोड तक गिनती की जाती थी।

प्रतिमान मे गु जा, काकिणी, निष्पाव कर्ममापक, मडलक और सुवर्ण की गिनती की जाती थी। जिनसे सोना, चाँदी, रत्न, मोती, शख, प्रवाल आदि तोले जाते थे।[४२]

दूरी नापने के लिए अगुल, वितस्ति, रत्नि, कुक्षि, धनुप और गव्यूत थी। लम्बाई नापने के लिए परमाणु, त्रसरेणु, रथरेणु, बालाग्र, लिक्षा, यूका और यव का उपयोग किया जाता था।[४३] समय मापने के लिए आवलिका, श्वास, उच्छ्वास, स्तोक, लव, मुहूर्त, अहोरात्र, पक्ष, मास, ऋतु अयन, सवत्सर युग वर्षशत से लेकर शीर्षप्रहेलिका का उपयोग होता था।[४४]

(घ) जीवाभिगम सूत्र सटीक पत्र १४७

(ङ) कल्पसूत्र सूत्र ३६, सुबोधिका टीका पत्र ११६

(च) वसुदेव हिण्डी पृ० २८६

(छ) नारदस्मृति १८, स्मृति सदर्भ, खण्ड १ पृ० ३३०

(ज) वासवदत्ता-सुबन्धु रचित

(झ) दशकुमार चरित्र, निर्णय सागर प्रेस पृ० ६७

(ञ) अभिधान चिन्तामणि कोष, भूमिका काण्ड श्लोक १।१२

४२ अनुयोगद्वार सूत्र १३२

४३ अनुयोगद्वार १३३, तुलना करे—अर्थशास्त्र २। २०।३८ पृ० २३७

४४ अनुयोगद्वार २।२०।३८, पृ० २४१

समय मापने के लिए नालिका या शकुच्छाया का उपयोग होता था।[४५]

तराजु का उपयोग होता था और कम ज्यादा तोलने का भी प्रचलन था।[४६]

शासन व्यवस्था—

उस युग मे प्रजा का पालन करने के लिए राजा का होना अत्यन्त आवश्यक माना गया। राजा को सर्वगुण सम्पन्न होना चाहिए, किसी भी प्रकार का व्यसन और विकार उसमे नही होने चाहिए।[४७] राजनीति मे कुशल और धर्म मे श्रद्धावान होना चाहिए।[४८] उसका मातृ और पितृ पक्ष निर्मल होना चाहिए। राजा का पद साधारण रूप से वश परम्परागत माना गया है। यदि राजा का इकलौता ही बेटा होता तो वही राजा की मृत्यु के पश्चात् राज्य का अधिकारी होता। यदि राजा के एक से अधिक पुत्र होते तो उनकी परीक्षा की जाती और जो परीक्षण प्रस्तर पर खरा उतरता उसे युवराज बनाया जाता।[४९] कभी राजा की मृत्यु होने के पश्चात् जिस राजपुत्र को राजसिंहासन पर बैठने का अधिकार मिलता यदि वह प्रव्रज्या ले लेता तो उस परिस्थिति मे कनिष्ठ भ्राता राजा बन जाता। राजा और युवराज यदि दोनो ही राज्य को छोडकर दीक्षा ग्रहण कर लेते तो उनकी बहन के पुत्र को राजा बनाया जाता।[५०] सोलह जनपदो, तीन सौ तिरेसठ नगरो और दस मुकुटबद्ध राजाओ के स्वामी राजा उद्रायण ने अपने पुत्र के होते हुए भी केशी नाम के अपने भानजे को राजपद सौपकर महावीर के पास जैन दीक्षा ली थी।[५१] यदि राजा का उत्तराधिकारी कोई भी नही होता तो हाथी

---

४५ दशवैकालिक चूर्णि १, पृ० ४४, वृहत्कल्पभाष्य पीठिका २६१

४६ (क) अर्थशास्त्र पृ० २४१ नालिका का उल्लेख है। उपासकदशा १ पृ० १०
(ख) निशीथ चूर्णि, पीठिका ३२६

४७ निशीथभाष्य १५। ४७६६

४८ व्यवहारभाष्य १। पृ० १२८

४९ व्यवहारभाष्य ४। २०६, और ४। २६७ तुलना करे—पातजलि जातक (२४७) के साथ

५० उत्तराध्ययन टीका १० पृ० १५३

५१ भगवती १३। ६

घोडा आदि को छोडा जाता वह जिसका अभिषेक कर देता उसे राजा बनाया जाता।[५२]

राजकुमारो मे राज प्राप्त करने की तीव्र उत्कठा रहती थी इसलिए राजा उनसे शकित और भयभीत रहता।[५३] और उन पर कठोर नियत्रण रखता था। तथापि कितने ही महत्वाकाक्षी राजकुमार मौका मिलने पर अपने कुचक्रो मे सफल हो जाते थे। वे राजा का वध कर स्वय राजा बन जाते। राजा श्रेणिक को कूणिक ने अपने सौतेले भाई की सहायता से पकड कर जेल मे डाल दिया और स्वय राजसिहासन पर बैठ गया। उसके बाद अपनी माता के कहने से परशु लेकर बेडिया काटने चला, किन्तु राजा ने समझा कि कूणिक उसे मारने के लिए आ रहा है एतदर्थ कूणिक के आने से पूर्व ही तालपुट विष खाकर उसने अपना प्राणान्त कर लिया था।[५४]

कौटिल्य ने अपने अर्थशास्त्र मे लिखा है कि राजा को केकडे के समान अपने पुत्रो से सतत सावधान रहना चाहिए। और उच्छृखल पुत्रो को किसी निश्चित स्थान या दुर्ग मे बन्द कर रखना चाहिए।

राज्याभिषेक—

राजा का अभिषेक समारोह अत्यन्त उल्लास के क्षणो मे मनाया जाता था। जब मेघकुमार ने दीक्षा का निश्चय किया, तब माता-पिता के अत्यधिक आग्रह पर वे एकदिन के लिए राजसम्पदा का उपभोग करने के लिए प्रस्तुत हुए। अनेक गणनायक, दण्डनायक, प्रभृति से परिवृत्त हो उन्हे सोने, चादी, मणि, मुक्ता आदि से आठ-आठ सौ कलशो से स्नान कराया। मृत्तिका, पुष्प, गध माल्य, औषधि और सरसो आदि उनके मस्तक पर फैकी गयी, तथा दुदुभि बाजो और जय-जयकार का घोष सुनाई देने लगा।[५६]

---

५२ (क) उत्तराध्ययन टीका ३, पृ० ६३
(ख) कथाकोश पृ० ४ टोनी का अग्रेजी अनुवाद

५३ अर्थशास्त्र (१।१७।१३,१) मे कौटिल्य ने राजा को अपनी रानिया व पुत्रो से सावधान रहने का कहा है।

५४ (क) आवश्यक चूर्णि २। पृ० १७१
(ख) बौद्ध परम्परा मे अजातशत्रु ने बिम्बिसार को कैद करके तपन गृह मे रक्खा था ऐसा उल्लेलेख है। देखिए—दीघनिकाय टीका १ पृ० १३५

५५ अर्थशास्त्र १ । १७ । १३

५६ (क) ज्ञाताधर्म कथा १ । पृ० २८

राज्याभिषेक हो जाने के पश्चात् सभी प्रजा राजा को बधाई देती है।[५७] चम्पा, मथुरा, वाराणसी, श्रावस्ती, साकेत, कापिल्य, कौशाम्बी, मिथिला, हस्तिनापुर और राजगृह उस समय इन दस नगरियो को अभिषेक राजधानी कहा है।[५८]

राजा के प्रधान पुरुष—

राजा, युवराजा अमात्य, श्रेष्ठि, और पुरोहित पाच विशिष्ट पुरुष थे। राजा की मृत्यु के पश्चात् युवराजा राजा बनता था। वह अणिमा, महिमा, आदि आठ प्रकार के ऐश्वर्य से युक्त होता था। बहत्तर कलाओ, अठारह देशी भाषाओ गीत, नृत्य, तथा हस्तियुद्ध, अश्वयुद्ध, मुष्टियुद्ध, बाहु-युद्ध, लतायुद्ध रथयुद्ध, धनुर्वेद आदि मे वह निपुण होता था।[५९] आवश्यक कार्यों से निवृत्त होकर वह सभा मण्डल मे पहुँचकर राजकाज का अवलोकन करता।[६०] उसे प्रारभ से ही युद्ध कला की शिक्षा दी जाती, यदि कभी कोई, पडौसी राजा कभी उपद्रव करता तो उसे शान्त करने का कार्य राजकुमार का था।[६१]

युवराजा के पश्चात् महत्वपूर्ण पद अमात्य का था। वह जनपद, नगर राजा, आदि के सम्बन्ध मे हमेशा चिन्तन करता रहता था। वह व्यवहार और नीति मे निष्णात होता था।[६२]

राजा श्रेणिक के मुख्य मत्री के लिए बताया है—शाम, दाम, दण्ड

(ख) तुलना करे—महाभारत शान्ति पर्व ३९

(ग) रामायण २। ३१, ६, १४, १५, ४, २६, २०

(घ) अयोघर जातक ५१० पृ० ८१-८२

५७ उत्तराध्ययन टीका १८ पृ० २४८

५८ निशीथसूत्र ९। १९

५९ औपपातिक सूत्र ४०, पृ० २४८

(ख) हिन्दू एडमिनिस्ट्रेटिव इन्स्टिट्यूशन्स, पृ० १०६
—वी० आर० रामचन्द्र दीक्षितार

(ग) कुरुधम्म जातक २७६, पृ० ९९ से तुलना करे।

६० व्यवहारभाष्य १ पृ० १२९

६१ व्यवहार भाष्य १ पृ० १३१

६२ व्यवहार भाष्य १ पृ० १३१

(ख) अर्थशास्त्र १।८-९, ४-५, कौटिल्य

और भेद मे कुशल व नीतिशास्त्र मे निपुण, अर्थशास्त्र मे पारगत, औत्पात्तिकी वैनयिकी, कार्मिकी, और पारिणामिकी इन चार प्रकार की बुद्धियो मे प्रवीण था। स्वय सम्राट श्रेणिक अनेक गुप्त रहस्यो के सम्बन्ध मे उनसे विचार चर्चा किया करता था।[६३]

मत्री बडा ही विलक्षण प्रतिभा का धनी होता था। वह सारे गुप्त रहस्यो का ज्ञाता, शत्रु को पराजित कर राज्य की रक्षा करता था।

व्यवहार और नीति के कार्यो मे विचार विमर्श करने के लिए मत्री की आवश्यकता होती थी। वैसे ही धार्मिक कार्यो के लिए पुरोहित की।[६४]

श्रेष्ठी नगर सेठ, अठारह प्रकार की प्रजा का रक्षक कहलाता था। वह राजा द्वारा मान्य होता था उसका मस्तक देवमुद्रा से व सुवर्णपट्ट से सुशोभित रहता।[६५]

इनके अलावा भी ग्राम महत्तर राष्ट्र महत्तर[६६] गणनायक, दण्डनायक, तलवर[६७] कोट्टपाल, कौटुम्बिक, गणक, वैद्य इभ्य, ईश्वर, सेनापति, सार्थवाह सधि पाल, पीठ मर्द, महामात्र, (महावत) यानशालिक, विदूषक, दूत, चेट, वार्तानिवेदक, किकर, कर्मकर, असिग्राही, धनुग्राही, कोतग्राही, छत्रग्राही, चामरग्राही, वीणाग्राही, भाण्ड, अभ्यग लगाने वाले, उबटन मलने वाले, स्नान कराने वाले, वेषभूषा से शोभित करने वाले, पैर को दबाने वाले, आदि अनेक कर्मचारी राजा की सेवा मे रहते थे।[६८]

न्याय व्यवस्था—

न्याय व्यवस्था के लिए न्यायमूर्ति की आवश्यकता होती थी। जो रिश्वत न लेकर, निष्पक्ष निर्णय देता था। साधारण सा अपराध का भी कठोर दण्ड दिया जाता था।

६३ ज्ञाताधर्म कथा १। पृ० ३

६४ स्थानाग सूत्र (७।५५८), चक्रवर्ती के पचेन्द्रिय रत्नो मे पुरोहित भी है।

६५ बृहत्कल्प भाष्य ३।३७५७ वृत्ति
(ख) राजप्रश्नीय टीका पृ० ४०

६६ निशीथ भाष्य ४।१७३५

६७ निशीथ भाष्य ६।२५०२

६८ मिलिन्द प्रश्न (पृ० ११४) मे राजपुरुषो मे सेनापति पुरोहित अक्खदस्स, भण्डागारिक, छत्तगाहक, ओर खग्गगाहको का वर्णन है।

चोरी, परदार-गमन, हत्या व राजाज्ञा का उल्लघन करने वाले को राजकुल मे उपस्थित किया जाता था।[६९]

मुकदमो मे झूठी गवाही और झूठे दस्तावेजो को भी काम मे लाते थे, इसलिए श्रावको को उसका नियम दिलाया जाता था।[७०]

कर-व्यवस्था—

उस समय अठारह प्रकार के कर प्रचलित थे।[७१] कर वसूल करनेवाले को सु कपाल (शुल्कपाल) कहा जाता था।[७२] राज का खर्च 'कर' और लगान से चलता था। साधारण रूप से पैदावार के दसवे हिस्से को कानूनी टैक्स माना गया है। यो पैदावार की राशि, फसल की कीमत, बाजार भाव और खेती की जमीन आदि के कारण टैक्स के दर मे अन्तर होता था।[७३] व्यापारियो के माल-असबाब पर भी कर लगाया जाता था। व्यापारी लोग शुल्क से बचने के लिए अपना माल छिपाते थे[७४] तो राजा बढिया माल छिपाने वाले का सम्पूर्ण माल ही जब्त कर लेता था।[७५] शुल्कपाल कर वसूल करने मे बहुत ही कठोरता से काम लेते थे। जिससे जन-साधारण उनसे सत्रस्त रहते थे। राजा के पुत्र-जन्म और राज्याभिषेक के अवसर पर जनता को कर-मुक्त किया जाता था।

---

६९ मनुस्मृति (८।४-७) मे अन्य अनेक कारण बताये है।

७० (क) उपासक दशा १। पृ० १०

(ख) आवश्यक हारिभद्रीय वृत्ति पृ० २०२८

७१ (क) आवश्यक निर्युक्ति १०७८, हारिभद्रीय वृत्ति

(ख) आवश्यक मलयगिरिवृत्ति, १०८३-४ पृ० ५९६

(ग) अर्थशास्त्र २।६।२४।२ मे, कौटिल्य ने बाईस प्रकार के राजकर बताये हे।

७२ उत्तराध्ययन सुखबोधा पत्र ७१

७३ (क) व्यवहार भाष्य १। पृ० १२८

(ख) गौतम धर्मसूत्र १०, २४ मे खेती से वसूल करने वाले तीन प्रकार के करो का उल्लेख है, दसवा, आठवा और छठा

(ग) मनुस्मृति ७।१३०

७४ उत्तराध्ययन सुखवोधा, ३ । पृ० ६४

७५ अर्थशास्त्र २।२१।३८, ३८ मे लिखा है कि श्रेष्ठ माल को छिपाने वाले का सम्पूर्ण माल जब्त कर लेना चाहिए।

और भेद मे कुशल व नीतिशास्त्र मे निपुण, अर्थशास्त्र मे पारगत, औत्पात्तिकी वैनयिकी, कार्मिकी, और पारिणामिकी इन चार प्रकार की बुद्धियो मे प्रवीण था। स्वय सम्राट श्रेणिक अनेक गुप्त रहस्यो के सम्बन्ध मे उनसे विचार चर्चा किया करता था।[६३]

मत्री बडा ही विलक्षण प्रतिभा का धनी होता था। वह सारे गुप्त रहस्यो का ज्ञाता, शत्रु को पराजित कर राज्य की रक्षा करता था।

व्यवहार और नीति के कार्यो मे विचार विमर्श करने के लिए मत्री की आवश्यकता होती थी। वैसे ही धार्मिक कार्यों के लिए पुरोहित की।[६४]

श्रेष्ठी नगर सेठ, अठारह प्रकार की प्रजा का रक्षक कहलाता था। वह राजा द्वारा मान्य होता था उसका मस्तक देवमुद्रा से व सुवर्णपट्ट से सुशोभित रहता।[६५]

इनके अलावा भी ग्राम महत्तर राष्ट्र महत्तर[६६] गणनायक, दण्डनायक, तलवर[६७] कोट्टपाल, कौटुम्बिक, गणक, वैद्य इभ्य, ईश्वर, सेनापति, सार्थवाह सधि पाल, पीठ मर्द, महामात्र, (महावत) यानशालिक, विदूषक, दूत, चेट, वार्तानिवेदक, किकर, कर्मकर, असिग्राही, धनुग्राही, कोतग्राही, छत्रग्राही, चामरग्राही, वीणाग्राही, भाण्ड, अभ्यग लगाने वाले, उबटन मलने वाले, स्नान कराने वाले, वेषभूषा से शोभित करने वाले, पैर को दबाने वाले, आदि अनेक कर्मचारी राजा की सेवा मे रहते थे।[६८]

न्याय व्यवस्था—

न्याय व्यवस्था के लिए न्यायमूर्ति की आवश्यकता होती थी। जो रिश्वत न लेकर, निष्पक्ष निर्णय देता था। साधारण सा अपराध का भी कठोर दण्ड दिया जाता था।

---

६३ ज्ञाताधर्म कथा १। पृ० ३

६४ स्थानाग सूत्र (७।५५८), चक्रवर्ती के पचेन्द्रिय रत्नो मे पुरोहित भी हे।

६५ वृहत्कल्प भाष्य ३।३७५७ वृत्ति
(ख) राजप्रश्नीय टीका पृ० ४०

६६ निशीथ भाष्य ४।१७३५

६७ निशीथ भाष्य ६।२५०२

६८ मिलिन्द प्रश्न (पृ० ११४) मे राजपुरुषो मे सेनापति पुरोहित अक्खदस्स, भण्डागारिक, छत्तगाहक, और खग्गगाहको का वर्णन है।

चोरी, परदार-गमन, हत्या व राजाज्ञा का उल्लघन करने वाले को राजकुल मे उपस्थित किया जाता था।[६९]

मुकदमो मे झूठी गवाही और झूठे दस्तावेजो को भी काम मे लाते थे, इसलिए श्रावको को उसका नियम दिलाया जाता था।[७०]

कर-व्यवस्था—

उस समय अठारह प्रकार के कर प्रचलित थे।[७१] कर वसूल करनेवाले को सु कपाल (शुल्कपाल) कहा जाता था।[७२] राज का खर्च 'कर' और लगान से चलता था। साधारण रूप से पैदावार के दसवें हिस्से को कानूनी टैक्स माना गया है। यो पैदावार की राशि, फसल की कीमत, बाजार भाव और खेती की जमीन आदि के कारण टैक्स के दर मे अन्तर होता था।[७३] व्यापारियो के माल-असवाव पर भी कर लगाया जाता था। व्यापारी लोग शुल्क से वचने के लिए अपना माल छिपाते थे[७४] तो राजा बढिया माल छिपाने वाले का सम्पूर्ण माल ही जब्त कर लेता था।[७५] शुल्कपाल कर वसूल करने मे वहुत ही कठोरता से काम लेते थे। जिससे जन-साधारण उनसे सत्रस्त रहते थे। राजा के पुत्र-जन्म और राज्याभिषेक के अवसर पर जनता को कर-मुक्त किया जाता था।

---

६९ मनुस्मृति (८।४-७) मे अन्य अनेक कारण वताये है।

७० (क) उपासक दशा १। पृ० १०

(ख) आवश्यक हारिभद्रीय वृत्ति पृ० २०२८

७१ (क) आवश्यक निर्युक्ति १०७८, हारिभद्रीय वृत्ति

(ख) आवश्यक मलयगिरिवृत्ति, १०८३-४ पृ० ५९६

(ग) अर्थशास्त्र २।६।२४।२ मे, कौटिल्य ने बाईस प्रकार के राजकर वताये हे।

७२ उत्तराध्ययन सुखवोधा पत्र ७१

७३ (क) व्यवहार भाष्य १। पृ० १२८

(ख) गौतम धर्मसूत्र १०, २४ मे खेती से वसूल करने वाले तीन प्रकार के करो का उल्लेख हे, दसवा, आठवा और छठा

(ग) मनुस्मृति ७।१३०

७४ उत्तराध्ययन सुखवोधा, ३। पृ० ६४

७५ अर्थशास्त्र २।२१।३८, ३८ मे लिखा है कि श्रेष्ठ माल को छिपाने वाले का सम्पूर्ण माल जब्त कर लेना चाहिए।

और भेद मे कुशल व नीतिशास्त्र मे निपुण, अर्थशास्त्र मे पारगत, औत्पात्तिकी वैनयिकी, कार्मिकी, और पारिणामिकी इन चार प्रकार की बुद्धियो मे प्रवीण था। स्वय सम्राट श्रेणिक अनेक गुप्त रहस्यो के सम्बन्ध मे उनसे विचार चर्चा किया करता था।[६३]

मत्री बडा ही विलक्षण प्रतिभा का धनी होता था। वह सारे गुप्त रहस्यो का ज्ञाता, शत्रु को पराजित कर राज्य की रक्षा करता था।

व्यवहार और नीति के कार्यो मे विचार विमर्श करने के लिए मत्री की आवश्यकता होती थी। वैसे ही धार्मिक कार्यों के लिए पुरोहित की।[६४]

श्रेष्ठी नगर सेठ, अठारह प्रकार की प्रजा का रक्षक कहलाता था। वह राजा द्वारा मान्य होता था उसका मस्तक देवमुद्रा से व सुवर्णपट्ट से सुशोभित रहता।[६५]

इनके अलावा भी ग्राम महत्तर राष्ट्र महत्तर[६६] गणनायक, दण्डनायक, तलवर[६७] कोट्टपाल, कौटुम्बिक, गणक, वैद्य इभ्य, ईश्वर, सेनापति, सार्थवाह सधि पाल, पीठ मर्द, महामात्र, (महावत) यानशालिक, विदूषक, दूत, चेट, वार्तानिवेदक, किकर, कर्मकर, असिग्राही, धनुग्राही, कोतग्राही, छत्रग्राही, चामरग्राही, वीणाग्राही, भाण्ड, अभ्यग लगाने वाले, उबटन मलने वाले, स्नान कराने वाले, वेषभूषा से शोभित करने वाले, पैर को दबाने वाले, आदि अनेक कर्मचारी राजा की सेवा मे रहते थे।[६८]

न्याय व्यवस्था—

न्याय व्यवस्था के लिए न्यायमूर्ति की आवश्यकता होती थी। जो रिश्वत न लेकर, निष्पक्ष निर्णय देता था। साधारण सा अपराध का भी कठोर दण्ड दिया जाता था।

---

६३ ज्ञाताधर्म कथा १। पृ० ३

६४ स्थानाग सूत्र (७।५५८), चक्रवर्ती के पचेन्द्रिय रत्नो मे पुरोहित भी है।

६५ वृहत्कल्प भाष्य ३।३७५७ वृत्ति
(ख) राजप्रश्नीय टीका पृ० ४०

६६ निशीथ भाष्य ४।१७३५

६७ निशीथ भाष्य ६।२५०२

६८ मिलिन्द प्रश्न (पृ० ११४) मे राजपुरुषो मे सेनापति पुरोहित अक्खदस्स, भण्डागारिक, छत्तगाहक, और खग्गगाहको का वर्णन है।

चोरी, परदार-गमन, हत्या व राजाज्ञा का उल्लघन करने वाले को राजकुल मे उपस्थित किया जाता था।[६९]

मुकदमो मे झूठी गवाही और झूठे दस्तावेजो को भी काम मे लाते थे, इसलिए श्रावको को उसका नियम दिलाया जाता था।[७०]

कर-व्यवस्था—

उस समय अठारह प्रकार के कर प्रचलित थे।[७१] कर वसूल करनेवाले को सुकपाल (शुल्कपाल) कहा जाता था।[७२] राज का खर्च 'कर' और लगान से चलता था। साधारण रूप से पैदावार के दसवें हिस्से को कानूनी टैक्स माना गया है। यो पैदावार की राशि, फसल की कीमत, बाजार भाव और खेती की जमीन आदि के कारण टैक्स के दर मे अन्तर होता था।[७३] व्यापारियो के माल-असबाब पर भी कर लगाया जाता था। व्यापारी लोग शुल्क से बचने के लिए अपना माल छिपाते थे[७४] तो राजा बढिया माल छिपाने वाले का सम्पूर्ण माल ही जब्त कर लेता था।[७५] शुल्कपाल कर वसूल करने मे बहुत ही कठोरता से काम लेते थे। जिससे जन-साधारण उनसे सत्रस्त रहते थे। राजा के पुत्र-जन्म और राज्याभिषेक के अवसर पर जनता को कर-मुक्त किया जाता था।

---

६९ मनुस्मृति (८।४-७) मे अन्य अनेक कारण बताये है।

७० (क) उपासक दशा १। पृ० १०

(ख) आवश्यक हारिभद्रीय वृत्ति पृ० २०२८

७१ (क) आवश्यक निर्युक्ति १०७८, हारिभद्रीय वृत्ति

(ख) आवश्यक मलयगिरिवृत्ति, १०८३-४ पृ० ५६६

(ग) अर्थशास्त्र २।६।२४।२ मे, कौटिल्य ने बाईस प्रकार के राजकर बताये हे।

७२ उत्तराध्ययन सुखबोधा पत्र ७१

७३ (क) व्यवहार भाष्य १। पृ० १२८

(ख) गौतम धर्मसूत्र १०, २४ मे खेती से वसूल करने वाले तीन प्रकार के करो का उल्लेख है, दसवा, आठवा और छठा

(ग) मनुस्मृति ७।१३०

७४ उत्तराध्ययन सुखबोधा, ३। पृ० ६४

७५ अर्थशास्त्र २।२१।३८, ३८ मे लिखा है कि श्रेष्ठ माल को छिपाने वाले का सम्पूर्ण माल जब्त कर लेना चाहिए।

चोर-कर्म—

उस समय अपराधो मे चौर्य-कर्म प्रमुख था। चोरो के अनेक वर्ग इधर-उधर कार्यरत रहते थे। लोगो को चोरो का आतक हमेशा बना रहता था। चोरो के अनेक प्रकार थे।[७६]

(१) आमोष धन-माल को लूटने वाले।
(२) लोमहार—धन के साथ ही प्राणो को लूटने वाले।
(३) ग्रन्थि-भेदक—ग्रन्थि-भेद करने वाले।
(४) तस्कर—प्रतिदिन चोरी करने वाले।
(५) कण्णुहर—कन्याओ का अपहरण करने वाले।

लोमहार अत्यन्त क्रूर होते थे। वे अपने आपको बचाने के लिए मानवो की हत्या कर देते थे। ग्रन्थि-भेदक के पास विशेष प्रकार की कैंचिया होती थी जो गाठो को काटकर धन का अपहरण करते थे।

निशीथभाष्य मे आक्रान्त, प्राकृतिक, ग्रामस्तेन, देशस्तेन, अन्तर-स्तेन, अध्वानस्तेन और खेतो को खनकर चोरी करने वाले चारो का उल्लेख है।[७७]

कितने ही चोर धन की तरह स्त्री, पुरुषो को भी चुरा ले जाते थे।[७८] कितने ही चोर इतने निष्ठुर होते थे कि वे चुराया हुआ अपना माल छिपाने को अपने कुटुम्बी जनो को भी मार देते थे। एक चोर अपना सम्पूर्ण धन एक कुए मे रखता था। एक दिन उसकी पत्नी ने उसे देख लिया, भेद खुलने के भय से उसने अपनी पत्नी को ही मार दिया। उसका पुत्र चिल्लाया और लोगो ने उसे पकड लिया।[७९]

उस समय चोर अनेक तरह से सेध लगाया करते—(१) कपिशीर्पाकार,

---

७६ (क) उत्तराध्ययन ९।२८, सुखबोधा पत्र, १४९
(ख) अगुत्तर निकाय २।४ पृ० १२७ मे अग्नि, उदक, राज और चौरभय का उल्लेख किया है।
७७ निशीथ भाष्य २१।३६५०
७८ उत्तराध्ययन चूर्णि पृ० १७४
७९ उत्तराध्ययन सुखबोधा पत्र ८१
८० (क) अगुत्तर निकाय की अट्ठकथा १, पृ० २६५ मे नन्दावर्त का अर्थ एक बडा मत्स्य किया है।
(ख) डिक्शनरी आव पाली प्रोपर नेम्स २, पृ० २९, मलालसेकर

(२) कलशाकृति, (३) नन्दावर्त सस्थान[८०] (४) पद्माकृति, (५) पुरुपाकृति[८१] (६) श्रीवत्स सस्थान।[८२]

चोर पानी की मशक और तालोद्घाटिनी विद्या आदि उपकरणो से सज्जित होकर प्राय रात्रि के समय अपने साथियो के साथ निकला करते थे।[८३]

चोर अपने साथियो के साथ चोरपल्लियो मे रहा करते थे। चोर-पल्लिया विषम पर्वत और गहन अटवी मे हुआ करती थी। जहा पर किसी का पहुँचना सभव नही था।

दण्ड-विधान—

चोरी करने पर भयकर दण्ड दिया जाता था। उस समय दण्ड-व्यवस्था बडी कठोर थी। राजा चोरो को जीते जी लोहे के कुभ मे बन्द कर देते थे, उनके हाथ कटवा देते थे। शूली पर चढा देते थे। कभी अपराधी की कोडो से पूजा करते। चोरो को वस्त्र युगल पहनाकर, गले मे कनेर के फूलो की माला डालते और उनके शरीर को तेल से सिक्त कर भस्म लगाते और चौराहो पर घुमाते व लातो, घूसो डडो और कोडो से पीटते। ओठ, नाक और कान को काट देते, रक्त से मुह को लिप्त कर के फ़टा ढोल बजाते हुए अप-राधो की उद्घोपणा करते।[८४]

तस्करो की तरह परदारगमन करने वालो को भी सिर मुडना, तर्जन, ताडन, लिंगच्छेदन, निर्वासन और मृत्युदण्ड दिये जाते थे। पुरुषो की भाँति स्त्रियाँ भी दण्ड की भागी होती थी, किन्तु गर्भवती स्त्रियो को क्षमा कर दिया जाता था। हत्या करने वाले को अर्थदण्ड और मृत्युदण्ड दोनो दिये जाते थे।[८५]

एकछत्र साम्राज्य—

राजा का एकछत्र साम्राज्य होता था। वे अनेक प्रकार से प्रजा को कष्ट

---

८१ उत्तराध्ययन वृहद्वृत्ति, पत्र २०७

८२ उत्तराध्ययन वृहद्वृत्ति, पत्र २१५

८३ (क) ज्ञातृधम कथा० १८। पृ० २१०
 (ख) दशकुमार चरित २, पृ० ७७०

८४ (क) विपाक सूत्र २।१३, २, २१
 (ख) प्रश्नव्याकरण १२, पृ० ५० से ५४, अगुत्तर निकाय २।४। पृ० १२८

८५ जैन आगम-साहित्य मे भारतीय समाज पृ० ८२-८४

चोर-कर्म—

उस समय अपराधो मे चौर्य-कर्म प्रमुख था। चोरो के अनेक वर्ग इधर-उधर कार्यरत रहते थे। लोगो को चोरो का आतक हमेशा बना रहता था। चोरो के अनेक प्रकार थे।[७६]

(१) आमोष धन-माल को लूटने वाले।
(२) लोमहार—धन के साथ ही प्राणो को लूटने वाले।
(३) ग्रन्थि-भेदक—ग्रन्थि-भेद करने वाले।
(४) तस्कर—प्रतिदिन चोरी करने वाले।
(५) कण्णुहर—कन्याओ का अपहरण करने वाले।

लोमहार अत्यन्त क्रूर होते थे। वे अपने आपको बचाने के लिए मानवो की हत्या कर देते थे। ग्रन्थि भेदक के पास विशेष प्रकार की कैंचिया होती थी जो गाठो को काटकर धन का अपहरण करते थे।

निशीथभाष्य मे आक्रान्त, प्राकृतिक, ग्रामस्तेन, देशस्तेन, अन्तर-स्तेन, अध्वानस्तेन और खेतो को खनकर चोरी करने वाले चारो का उल्लेख है।[७७]

कितने ही चोर धन की तरह स्त्री, पुरुषो को भी चुरा ले जाते थे।[७८] कितने ही चोर इतने निष्ठुर होते थे कि वे चुराया हुआ अपना माल छिपाने को अपने कुटुम्बी जनो को भी मार देते थे। एक चोर अपना सम्पूर्ण धन एक कुए मे रखता था। एक दिन उसकी पत्नी ने उसे देख लिया, भेद खुलने के भय से उसने अपनी पत्नी को ही मार दिया। उसका पुत्र चिल्लाया और लोगो ने उसे पकड लिया।[७९]

उस समय चोर अनेक तरह से सेंध लगाया करते—(१) कपिशीर्षाकार,

७६ (क) उत्तराध्ययन ६।२८ सुखबोधा पत्र, १४६
 (ख) अगुत्तर निकाय २।४ पृ० १२७ मे अग्नि, उदक, राज और चौरभय का उल्लेख किया है।
७७ निशीथ भाष्य २१।३६५०
७८ उत्तराध्ययन चूर्णि पृ० १७४
७९ उत्तराध्ययन सुखबोधा पत्र ८१
८० (क) अगुत्तर निकाय की अट्ठकथा १, पृ० २६५ मे नन्दावर्त का अर्थ एक बडा मत्स्य किया है।
 (ख) डिक्शनरी आव पाली प्रोपर नेम्स २, पृ० २६, मलालसेकर

(२) कलशाकृति, (३) नन्दावर्त सस्थान[८०] (४) पद्माकृति, (५) पुरुषाकृति[८१] (६) श्रीवत्स सस्थान ।[८२]

चोर पानी की मशक और तालोद्घाटिनी विद्या आदि उपकरणो से सज्जित होकर प्राय रात्रि के समय अपने साथियो के साथ निकला करते थे ।[८३]

चोर अपने साथियो के साथ चोरपल्लियो मे रहा करते थे । चोर-पल्लिया विषम पर्वत और गहन अटवी मे हुआ करती थी । जहा पर किसी का पहुँचना सभव नही था ।

दण्ड-विधान—

चोरी करने पर भयकर दण्ड दिया जाता था । उस समय दण्ड-व्यवस्था बडी कठोर थी । राजा चोरो को जीते जी लोहे के कुभ मे बन्द कर देते थे, उनके हाथ कटवा देते थे । शूली पर चढा देते थे । कभी अपराधी की कोडो से पूजा करते । चोरो को वस्त्र युगल पहनाकर, गले मे कनेर के फूलो की माला डालते और उनके शरीर को तेल से सिक्त कर भस्म लगाते और चौराहो पर घुमाते व लातो, घूसो डडो और कोडो से पीटते। ओठ, नाक और कान को काट देते, रक्त से मु ह को लिप्त कर के फूटा ढोल बजाते हुए अपराधी की उद्घोषणा करते ।[८४]

तस्करो की तरह परदारगमन करने वालो को भी सिर मु डना, तर्जन, ताडन, लिगच्छेदन, निर्वासन और मृत्युदण्ड दिये जाते थे। पुरुषो की भाँति स्त्रियाँ भी दण्ड की भागी होती थी, किन्तु गर्भवती स्त्रियो को क्षमा कर दिया जाता था । हत्या करने वाले को अर्थदण्ड और मृत्युदण्ड दोनो दिये जाते थे ।[८५]

एकछत्र साम्राज्य—

राजा का एकछत्र साम्राज्य होता था। वे अनेक प्रकार से प्रजा को कष्ट

---

८१ उत्तराध्ययन वृहद्वृत्ति, पत्र २०७
८२ उत्तराध्ययन वृहद्वृत्ति, पत्र २१५
८३ (क) ज्ञातृधर्म कथा० १८। पृ० २१०
(ख) दशकुमार चरित २, पृ० ७७०
८४ (क) विपाक सूत्र २।१३, २, २१
(ख) प्रश्नव्याकरण १२, पृ० ५० से ५४, अगुत्तर निकाय २।४। पृ० १२८
८५ जैन आगम-साहित्य मे भारतीय समाज पृ० ८२-८४

भी देते थे और उनकी रक्षा भी करते थे। राजाज्ञा का उल्लघन करने वाला महान अपराधी माना जाता था। यदि कोई ऋषि परिषद् का अपमान करता तो उसे वचनो से तिरस्कार कर देते, यदि ब्राह्मण परिषद् का तिरस्कार करता तो मस्तक पर कुण्डी या श्वान का चिह्न चिह्नित कर देते,[८६] यदि गृहपति परिषद् का अपमान करता तो घास-फूस मे लपेट कर जला देते, यदि कोई क्षत्रिय परिषद् का अपमान करता तो उसके हाथ, पैर काटकर उसे शूली पर चढाकर एक झटके मे मार देते।[८७] राजाज्ञा ठुकराने वाले को तेज खार में डाल दिया जाता और जितना समय गाय के दुहने मे लगता, उतने समय मे तो उसका ककाल मात्र ही शेष रह जाता।[८८]

राजा लोग बडे ही सन्देहशील हुआ करते थे, किसी पर जरा-सा सन्देह होने पर उसके प्राण तक ले लेते थे।

कारागृह—

कारागृह की दशा बडी दयनीय थी। अपराधियो को दारुण कष्ट दिये जाते। उन्हे वहा पर क्षुधा, तृषा और शीत-उष्ण आदि अनेक तरह के कष्ट सहन करने पडते थे। उनका मुख म्लान हो जाता था। अपने ही मल-मूत्र मे पडे रहने के कारण उनके शरीर मे नाना प्रकार के रोग उत्पन्न हो जाते, उनका प्राणान्त हो जाने के पश्चात् उनके पैर मे रस्सी बाधकर खाई मे फेक देते। भेडिए, कुत्ते, शृगाल, मार्जार आदि अन्य पशु उनका भक्षण कर जाते।[८९]

कैदियो को विविध प्रकार के बधनो से बाधते। बास, बेत व चमडे के चाबुक से उन्हे मारते थे। लोहे की तीक्ष्ण शलाकाओ से, सूचिकाओ से उनके शरीर को बीध देते थे।

गुप्तचर—

उस समय छोटे-छोटे राज्य होते थे। हरएक राज्य मे गुप्तचर सक्रिय

---

८६ अर्थशास्त्र, ४।८।८३, ३३, ३४
याज्ञवल्क्य स्मृति २।२३, २७० मे भी उल्लेख है।

८७ (क) राजप्रश्नीय १८४ पृ० ३२२
(ख) अगुत्तर निकाय २।४ पृ० १३९, १४० मे भी चार परिषदो का वर्णन है।

८८ खारातके पक्खिता गोदोहमित्तेण कालेण अट्ठिसकलिया सेसा।
—आचाराग चूर्णि ७, पृ० ३८

८९ प्रश्नव्याकरण १२। पृ० ५५

रहते थे। एक राज्य से दूसरे राज्य मे जाते समय गुप्तचर की सभावना से साधु भी पकड लिए जाते थे।[९०]

युद्ध—

उस युग मे प्राय साम्राज्य को विस्तृत करने की भावना से युद्ध हुआ करते थे। क्षत्रिय राजा अपने शौर्य का प्रदर्शन करना चाहते थे। अधिकाश युद्ध तीन कारणो से होते थे—धन, जमीन और स्त्रिया। यदि किसी के पास कोई बहुमूल्य वस्तु होती तो दूसरा व्यक्ति उसे प्राप्त करने के लिए सम्पूर्ण शक्ति लगा देता। उज्जयिनी के राजा प्रद्योत और कापिल्यपुर के राजा दुर्मुख के मध्य एक बहुमूल्य दीप्तिवान महामुकुट को लेकर युद्ध प्रारभ हो गया। उस मुकुट मे ऐसी विशेषता थी कि उसे पहनने पर दुर्मुख के दो मुह दिखाई देते थे। प्रद्योत ने उस मुकुट की माग की, परन्तु दुर्मुख ने कहा— यदि प्रद्योत अपना नलगिरी हाथी, अग्निभीरू रथ, शिवा महारानी और लोहजघ पत्र-वाहक मुझे दे सकता है तो मैं उसे मुकुट सहर्ष प्रदान कर सकता हू। दोनो मे इस सम्बन्ध को लेकर भयकर युद्ध हुआ। प्रद्योत विजयी हुआ, दुर्मुख को बन्दी बना दिया।[९१]

चम्पा के राजा कूणिक का और वैशाली के गणराजा चेटक का सेचनक गधहस्ति और अठारह लडी के बहुमूल्य हार को लेकर भीषण युद्ध हुआ था।[९२]

सीमा प्रान्त को लेकर भी युद्ध होता था। कभी कोई अन्य राजा दूसरे राज्य पर आक्रमण कर देता था।

सुवर्णगुलिका दासी को लेकर सिधु-सौवीर के राजा उद्रायण और उज्जैन के राजा प्रद्योत मे युद्ध हुआ था।

चतुरगिणी सेना—

युद्ध मे विजय-वैजयन्ती फहराने के लिए रथ, अश्व, हाथी और पदाति ये अत्यन्त उपयोगी होते थे। कन्याओ को भी दहेज मे ये वस्तुए दी जाती थी।[९३] रथ छत्र, ध्वजा, पताका, घण्टे, तोरण, नन्दिघोष और क्षुद्र घटि-

---

९० उत्तराध्ययन बृहद्वृत्ति, पत्र १२२

९१ उत्तराध्ययन टीका ६, पृ० १३५

९२ भगवती सूत्र

९३ उत्तराध्ययन टीका ४, पृ० ८८

भी देते थे और उनकी रक्षा भी करते थे। राजाज्ञा का उल्लघन करने वाला महान अपराधी माना जाता था। यदि कोई ऋषि परिषद् का अपमान करता तो उसे वचनो से तिरस्कार कर देते, यदि ब्राह्मण परिषद् का तिरस्कार करता तो मस्तक पर कुण्डी या श्वान का चिह्न चिह्नित कर देते,[८६] यदि गृहपति परिषद् का अपमान करता तो घास-फूस मे लपेट कर जला देते, यदि कोई क्षत्रिय परिषद् का अपमान करता तो उसके हाथ, पैर काटकर उसे शूली पर चढाकर एक झटके मे मार देते।[८७] राजाज्ञा ठुकराने वाले को तेज खार मे डाल दिया जाता और जितना समय गाय के दुहने मे लगता, उतने समय मे तो उसका ककाल मात्र ही शेष रह जाता।[८८]

राजा लोग बडे ही सन्देहशील हुआ करते थे, किसी पर जरा-सा सन्देह होने पर उसके प्राण तक ले लेते थे।

कारागृह—

कारागृह की दशा बडी दयनीय थी। अपराधियो को दारुण कष्ट दिये जाते। उन्हे वहा पर क्षुधा, तृषा और शीत-उष्ण आदि अनेक तरह के कष्ट सहन करने पडते थे। उनका मुख म्लान हो जाता था। अपने ही मल-मूत्र मे पडे रहने के कारण उनके शरीर मे नाना प्रकार के रोग उत्पन्न हो जाते, उनका प्राणान्त हो जाने के पश्चात् उनके पैर मे रस्सी बाधकर खाई मे फेंक देते। भेडिए, कुत्ते, शृगाल, मार्जार आदि अन्य पशु उनका भक्षण कर जाते।[८९]

कैदियो को विविध प्रकार के बधनो से बाधते। बास, बेत व चमडे के चाबुक से उन्हे मारते थे। लोहे की तीक्ष्ण शलाकाओ से, सूचिकाओ से उनके शरीर को बीध देते थे।

गुप्तचर—

उस समय छोटे-छोटे राज्य होते थे। हरएक राज्य मे गुप्तचर सक्रिय

---

८६ अर्थशास्त्र, ४।८।८३, ३३, ३४
याज्ञवल्क्य स्मृति २।२३, २७० मे भी उल्लेख है।

८७ (क) राजप्रश्नीय १८४ पृ० ३२२
(ख) अगुत्तर निकाय २।४ पृ० १३९, १४० मे भी चार परिषदो का वर्णन है।

८८ खारातके पक्खिता गोदोहमित्तेण कालेण अट्ठिसकलिया सेसा।
—आचाराग चूर्णि ७, पृ० ३८

८९ प्रश्नव्याकरण १२। पृ० ५५

रहते थे। एक राज्य से दूसरे राज्य मे जाते समय गुप्तचर की सभावना से साधु भी पकड लिए जाते थे।[९०]

युद्ध—

उस युग मे प्राय साम्राज्य को विस्तृत करने की भावना से युद्ध हुआ करते थे। क्षत्रिय राजा अपने शौर्य का प्रदर्शन करना चाहते थे। अधिकाश युद्ध तीन कारणो से होते थे—धन, जमीन और स्त्रिया। यदि किमी के पास कोई बहुमूल्य वस्तु होती तो दूसरा व्यक्ति उसे प्राप्त करने के लिए सम्पूर्ण शक्ति लगा देता। उज्जयिनी के राजा प्रद्योत और कापिल्यपुर के राजा दुर्मुख के मध्य एक बहुमूल्य दीप्तिवान महामुकुट को लेकर युद्ध प्रारभ हो गया। उस मुकुट मे ऐसी विशेपता थी कि उसे पहनने पर दुर्मुख के दो मुह दिखाई देते थे। प्रद्योत ने उस मुकुट की माग की, परन्तु दुर्मुख ने कहा— यदि प्रद्योत अपना नलगिरी हाथी, अग्निभीरू रथ, शिवा महारानी और लोहजघ पत्र-वाहक मुझे दे सकता है तो मैं उसे मुकुट सहर्ष प्रदान कर सकता हूँ। दोनो मे इस सम्बन्ध को लेकर भयकर युद्ध हुआ। प्रद्योत विजयी हुआ, दुर्मुख को बन्दी बना दिया।[९१]

चम्पा के राजा कूणिक का और वैशाली के गणराजा चेटक का सेचनक गधहस्ति और अठारह लडी के बहुमूल्य हार को लेकर भीषण युद्ध हुआ था।[९२]

मीमा प्रान्त को लेकर भी युद्ध होता था। कभी कोई अन्य राजा दूसरे राज्य पर आक्रमण कर देता था।

सुवर्णगुलिका दासी को लेकर सिंधु-सौवीर के राजा उद्रायण और उज्जैन के राजा प्रद्योत मे युद्ध हुआ था।

चतुरगिणी सेना—

युद्ध मे विजय-वैजयन्ती फहराने के लिए रथ, अश्व, हाथी और पदाति ये अत्यन्त उपयोगी होते थे। कन्याओ को भी दहेज मे ये वस्तुए दी जाती थी।[९३] रथ छत्र, ध्वजा, पताका, घण्टे, तोरण, नन्दिघोप और क्षुद्र घटि-

---

९० उत्तराध्ययन बृहद्वृत्ति, पत्र १२२

९१ उत्तराध्ययन टीका ६, पृ० १३५

९२ भगवती सूत्र

९३ उत्तराध्ययन टीका ४, पृ० ८८

काओ से सजाया जाता था । हिमालय पहाड मे पैदा होने वाले तिनिसकाष्ठ से वह बनाया जाता था । स्वर्ण की सुन्दर चित्रकारी उस पर की जाती थी । चक्के और धुरे अत्यन्त मजबूत होते थे और चक्को का घेरा मजबूत लोहे से बनाते थे । उसमे बढिया घोडे जोते जाते, सारथी रथ को हाकता था । रथ धनुष, बाण, तूणीर, खड्ग, शिरस्त्राण आदि अस्त्र शस्त्रों से सज्जित रहता था ।[९४] सग्रामरथ कटिप्रमाण फलकमय वेदिका से सुसज्जित होता, जबकि यान रथ पर वेदिका नही होती थी ।[९५] कर्णिरथ विशिष्ट प्रकार का रथ होता था जिस पर बडे श्रेष्ठी या वेश्याए बैठा करती थी । राजा के रथ बेशकीमती हुआ करते थे । उनकी परिगणना रत्नो मे की जाती थी । प्रद्योत का अग्निभीरु रथ ऐसा रथ था जिस पर अग्नि का कोई असर ही नही होता था ।

अश्व—

युद्ध मे घोडो का भी अत्यन्त महत्त्व था । वे तेज-तर्रार होते थे । शत्रु-सेना मे घुसकर उसे छिन्न-भिन्न कर देते थे । घोडे अनेक किस्म के होते थे । कम्बोज देश के आकीर्ण और कथक घोडे प्रसिद्ध थे । आकीर्ण की नस्ल ऊ ची होती थी ।[९६] और कथक पत्थर आदि के शब्द से भी भयभीत नही होते थे ।[९७] वाह्लीक देश मे ऊ ची नस्ल के जो घोडे प्राप्त होते थे वे अश्व कहलाते थे, जिसका शरीर मल-मूत्र से लिप्त नही होता था ।[९८] विजाति से उत्पन्न

---

९४ (क) औपपातिक सूत्र ३१, पृ० १३२
(ख) आवश्यक चूर्णि पृ० १८८
(ग) बृहत्कल्पभाष्य पीठिका २१६
(घ) रामायण ३।२२, १३ मे भी वर्णन है ।
(ङ) महाभारत ५।६४।१८

९५ अनुयोगद्वार टीका पृ० १४६, आचार्य मलधारी हेमचन्द्र

९६ ज्ञातृधम कथा की टीका मे आकीर्ण घोडो को समुद्र मध्यवर्ती कहा है ।

९७ (क) उत्तराध्ययन की टीका ११।१६
(ख) स्थानाङ्ग ४।३२७ मे कन्थक घोडो के चार प्रकार बताए हैं ।
(ग) धम्मपद अट्ठकथा १। पृ० ८५ कथक का उल्लेख है ।
(घ) बृहत्कल्प भाष्य टीका ३।३६५६—६० मे भी कथक का वर्णन है ।

९८ (क) जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति टीका २, पृ० ११०
(ख) उत्तराध्ययन टीका ३, पृ० ५७
(ग) रामायण १।६।२२

होने वाले घोडे खच्चर या अश्वतर कहलाते थे। जो निष्कृट घोडे होते उन्हे घोटक कहते थे।[९९]

घोडो को शिक्षा दी जाती थी।[१००] शिक्षा देने के स्थान को वाहियालि कहते थे। अश्व-दमग, अश्वमेठ और अश्वारोह आदि शिक्षा देने का कार्य किया करते थे।[१] और 'सोलग" घोडो की देखभाल करते थे।[२] कालिय द्वीप के घोडे बडे विश्रुत थे। व्यापारी वीणा आदि वाद्य यत्र बजाकर, चित्ताकर्षक वस्तुए दिखाकर, सुगन्धित पदार्थों को सु घाकर-मधुर वस्तुए खिलाकर उन्हे अपनी ओर आकर्षित करते।

युद्ध मे जाने के पूर्व घोडो को कवच, उत्तर कचुक व मु ह पर आभरण आदि लटकाया जाता था। घोडो पर जो जीन होती वह थिल्ली[३] कहलाती थी। घोडो पर आयुधो से सुसज्जित घुडसवार बैठता था।

हाथी—

युद्ध मे हाथी की अनिवार्य आवश्यकता रहती थी। हाथी भी अनेक जातियो के होते थे। गधहस्ती सर्वोत्तम हाथी था।[४] इन्द्र के हाथी का नाम ऐरावण था। भद्र, मन्द, मृग और सकीर्ण ये हाथी के चार भेद है। इन चार मे भद्र हाथी सर्वोत्तम है।[५] धवल हाथी का भी उल्लेख आता है जो शशि, शख और कुन्दपुष्प के समान उज्ज्वल होता था। उसके गडस्थल से

---

९९ दशवैकालिक चूर्णि ५।६, पृ० २१३

१०० (क) राजप्रश्नीय १६१

(ख) आवश्यकचूर्णि पृ० ३४३—३४४

(ग) आवश्यक हारिभद्रीय वृत्ति २६१

१ (क) निशीथचूर्णि ९।२३-२४

(ख) अर्थशास्त्र २।३०।४७।५० मे भी चर्चा है।

२ बृहत्कल्पभाष्य १।२०६६

३ जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति टीका २, पृ० १२३ मे दो घोडो की गाडी को थिल्ली कहा है।

४ (क) आवश्यकचर्णि २, पृ० १७०

(ख) ज्ञातृधर्म कथा पृ० १०० मे श्रेणिक के सेचनक हस्ती एव श्रीकृष्ण के विजय हस्ती को गधहस्ती कहा है। जो अपनी गध से अन्य हस्तियो को आकृष्ट करता था।

५ अर्थशास्त्र २।३१।४८।९ मे सात हाथ ऊँचे, नौ हाथ लम्बे और दस हाथ मोटे व चालीस वर्ष की उम्र वाले हाथी को सर्वोत्तम कहा है।

काओ से सजाया जाता था। हिमालय पहाड मे पैदा होने वाले तिनिसकाष्ठ से वह बनाया जाता था। स्वर्ण की सुन्दर चित्रकारी उस पर की जाती थी। चक्के और धुरे अत्यन्त मजबूत होते थे और चक्को का घेरा मजबूत लोहे से बनाते थे। उसमे बढिया घोडे जोते जाते, सारथी रथ को हाकता था। रथ धनुष, बाण, तूणीर, खड्ग, शिरस्त्राण आदि अस्त्र-शस्त्रो से सज्जित रहता था।[९४] सग्रामरथ कटिप्रमाण पलकमय वेदिका से सुसज्जित होता, जबकि यान-रथ पर वेदिका नही होती थी।[९५] कर्णिरथ विशिष्ट प्रकार का रथ होता था जिस पर बडे श्रेष्ठी या वेश्याए बैठा करती थी। राजा के रथ बेशकीमती हुआ करते थे। उनकी परिगणना रत्नो मे की जाती थी। प्रद्योत का अग्निभीरु रथ ऐसा रथ था जिस पर अग्नि का कोई असर ही नही होता था।

अश्व—

युद्ध मे घोडो का भी अत्यन्त महत्त्व था। वे तेज-तर्रार होते थे। शत्रु-सेना मे घुसकर उसे छिन्न-भिन्न कर देते थे। घोडे अनेक किस्म के होते थे। कम्बोज देश के आकीर्ण और कथक घोडे प्रसिद्ध थे। आकीर्ण की नस्ल ऊची होती थी।[९६] और कथक पत्थर आदि के शब्द से भी भयभीत नही होते थे।[९७] वाह्लीक देश मे ऊची नस्ल के जो घोडे प्राप्त होते थे वे अश्व कहलाते थे, जिसका शरीर मल-मूत्र से लिप्त नही होता था।[९८] विजाति से उत्पन्न

---

९४ (क) औपपातिक सूत्र ३१, पृ० १३२
(ख) आवश्यक चूर्णि पृ० १८८
(ग) बृहत्कल्पभाष्य पीठिका २१६
(घ) रामायण ३।२२, १३ मे भी वर्णन है।
(ड) महाभारत ५।९४।१८

९५ अनुयोगद्वार टीका पृ० १४६, आचार्य मलधारी हेमचन्द्र

९६ ज्ञातृधम कथा की टीका मे आकीर्ण घोडो को समुद्र मध्यवर्ती कहा है।

९७ (क) उत्तराध्ययन की टीका ११।१६
(ख) स्थानाङ्ग ४।३२७ मे कन्थक घोडो के चार प्रकार बताए है।
(ग) धम्मपद अट्ठकथा १। पृ० ८५ कथक का उल्लेख है।
(घ) बृहत्कल्प भाष्य टीका ३।३९५९—६० मे भी कथक का वर्णन है।

९८ (क) जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति टीका २, पृ० ११०
(ख) उत्तराध्ययन टीका ३, पृ० ५७
(ग) रामायण १।६।२२

होने वाले घोडे खच्चर या अश्वतर कहलाते थे। जो निष्कृट घोडे होते उन्हे घोटक कहते थे।[९९]

घोडो को शिक्षा दी जाती थी।[१००] शिक्षा देने के स्थान को वाहियालि कहते थे। अश्व-दमग, अश्वमेठ और अश्वारोह आदि शिक्षा देने का कार्य किया करते थे।[१] और 'सोलग" घोडो की देखभाल करते थे।[२] कालिय द्वीप के घोडे बडे विश्रुत थे। व्यापारी वीणा आदि वाद्य यन्त्र बजाकर, चित्ताकर्षक वस्तुए दिखाकर, सुगन्धित पदार्थों को सुघाकर-मधुर वस्तुए खिलाकर उन्हे अपनी ओर आकर्पित करते।

युद्ध मे जाने के पूर्व घोडो को कवच, उत्तर कचुक व मुह पर आभरण आदि लटकाया जाता था। घोडो पर जो जीन होती वह थिल्ली[३] कहलाती थी। घोडो पर आयुधो से सुसज्जित घुडसवार बैठता था।

हाथी—

युद्ध मे हाथी की अनिवार्य आवश्यकता रहती थी। हाथी भी अनेक जातियो के होते थे। गधहस्ती सर्वोत्तम हाथी था।[४] इन्द्र के हाथी का नाम ऐरावण था। भद्र, मन्द, मृग और सकीर्ण ये हाथी के चार भेद है। इन चार मे भद्र हाथी सर्वोत्तम है।[५] धवल हाथी का भी उल्लेख आता है जो शशि, शख और कुन्दपुष्प के समान उज्ज्वल होता था। उसके गडस्थल से

---

९९ दशवैकालिक चूर्णि ५।६, पृ० २१३

१०० (क) राजप्रश्नीय १६१

(ख) आवश्यकचूर्णि पृ० ३४३—३४४

(ग) आवश्यक हारिभद्रीय वृत्ति २६१

१ (क) निशीथचूर्णि ९।२३-२४

(ख) अर्थशास्त्र २।३०।४७।५० मे भी चर्चा है।

२ वृहत्कल्पभाष्य १।२०६६

३ जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति टीका २, पृ० १२३ मे दो घोडो की गाडी को थिल्ली कहा है।

४ (क) आवश्यकचर्णि २, पृ० १७०

(ख) ज्ञातृधर्म कथा पृ० १०० मे श्रेणिक के सेचनक हस्ती एव श्रीकृष्ण के विजय हस्ती को गधहस्ती कहा है। जो अपनी गध से अन्य हस्तियो को आकृष्ट करता था।

५ अथशास्त्र २।३१।४८।९ मे सात हाथ ऊँचे, नौ हाथ लम्बे और दस हाथ मोटे व चालीस वर्ष की उम्र वाले हाथी को सर्वोत्तम कहा है।

काओ से सजाया जाता था। हिमालय पहाड मे पैदा होने वाले तिनिसकाष्ठ से वह बनाया जाता था। स्वर्ण की सुन्दर चित्रकारी उस पर की जाती थी। चक्के और धुरे अत्यन्त मजबूत होते थे और चक्को का घेरा मजबूत लोहे से बनाते थे। उसमे बढिया घोडे जोते जाते, सारथी रथ को हाकता था। रथ धनुप, बाण, तूणीर, खड्ग, शिरस्त्राण आदि अस्त्र शस्त्रो से सज्जित रहता था।[९४] सग्रामरथ कटिप्रमाण पलकमय वेदिका से सुसज्जित होता, जबकि यान-रथ पर वेदिका नही होती थी।[९५] कर्णिरथ विशिष्ट प्रकार का रथ होता था जिस पर बडे श्रेष्ठी या वेश्याए बैठा करती थी। राजा के रथ बेशकी-मती हुआ करते थे। उनकी परिगणना रत्नो मे की जाती थी। प्रद्योत का अग्निभीरु रथ ऐसा रथ था जिस पर अग्नि का कोई असर ही नही होता था।

अश्व—

युद्ध मे घोडो का भी अत्यन्त महत्त्व था। वे तेज-तर्रार होते थे। शत्रु-सेना मे घुसकर उसे छिन्न-भिन्न कर देते थे। घोडे अनेक किस्म के होते थे। कम्बोज देश के आकीर्ण और कथक घोडे प्रसिद्ध थे। आकीर्ण की नस्ल ऊ ची होती थी।[९६] और कथक पत्थर आदि के शब्द से भी भयभीत नही होते थे।[९७] वाह्लीक देश मे ऊ ची नस्ल के जो घोडे प्राप्त होते थे वे अश्व कहलाते थे, जिसका शरीर मल-मूत्र से लिप्त नही होता था।[९८] विजाति से उत्पन्न

---

९४ (क) औपपातिक सूत्र ३१, पृ० १३२
(ख) आवश्यक चूर्णि पृ० १८८
(ग) बृहत्कल्पभाष्य पीठिका २१६
(घ) रामायण ३।२२, १३ मे भी वर्णन है।
(ङ) महाभारत ५।९४।१८

९५ अनुयोगद्वार टीका पृ० १४६, आचार्य मलधारी हेमचन्द्र

९६ ज्ञातृधर्म कथा की टीका मे आकीर्ण घोडो को समुद्र मध्यवर्ती कहा है।

९७ (क) उत्तराध्ययन की टीका ११।१६
(ख) स्थानाङ्ग ४।३२७ मे कन्थक घोडो के चार प्रकार बताए है।
(ग) धम्मपद अट्ठकथा १। पृ० ८५ कथक का उल्लेख है।
(घ) बृहत्कल्प भाष्य टीका ३।३९५९—६० मे भी कथक का वर्णन है।

९८ (क) जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति टीका २, पृ० ११०
(ख) उत्तराध्ययन टीका ३, पृ० ५७
(ग) रामायण १।६।२२

होने वाले घोडे खच्चर या अश्वतर कहलाते थे। जो निष्कृट घोडे होते उन्हे घोटक कहते थे।[९९]

घोडो को शिक्षा दी जाती थी।[१००] शिक्षा देने के स्थान को वाहियालि कहते थे। अश्व-दमग, अश्वमेठ और अश्वारोह आदि शिक्षा देने का कार्य किया करते थे।[१] और 'सोलग" घोडो की देखभाल करते थे।[२] कालिय द्वीप के घोडे बडे विश्रुत थे। व्यापारी वीणा आदि वाद्य यन्त्र बजाकर, चित्ताकर्षक वस्तुए दिखाकर, सुगन्धित पदार्थो को सु घाकर-मधुर वस्तुए खिलाकर उन्हे अपनी ओर आकर्षित करते।

युद्ध मे जाने के पूर्व घोडो को कवच, उत्तर कचुक व मु ह पर आभरण आदि लटकाया जाता था। घोडो पर जो जीन होती वह थिल्ली[३] कहलाती थी। घोडो पर आयुधो से सुसज्जित घुडसवार बैठता था।

हाथी—

युद्ध मे हाथी की अनिवार्य आवश्यकता रहती थी। हाथी भी अनेक जातियो के होते थे। गधहस्ती सर्वोत्तम हाथी था।[४] इन्द्र के हाथी का नाम ऐरावण था। भद्र, मन्द, मृग और सकीर्ण ये हाथी के चार भेद है। इन चार मे भद्र हाथी सर्वोत्तम है।[५] धवल हाथी का भी उल्लेख आता है जो शशि, शख और कुन्दपुष्प के समान उज्ज्वल होता था। उसके गडस्थल से

---

९९ दशवैकालिक चूर्णि ५।६, पृ० २१३

१०० (क) राजप्रश्नीय १६१

(ख) आवश्यकचूर्णि पृ० ३४३—३४४

(ग) आवश्यक हारिभद्रीय वृत्ति २६१

१ (क) निशीथचूर्णि ६।२३-२४

(ख) अर्थशास्त्र २।३०।४७।५० मे भी चर्चा है।

२ बृहत्कल्पभाष्य १।२०६६

३ जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति टीका २, पृ० १२३ मे दो घोडो की गाडी को थिल्ली कहा है।

४ (क) आवश्यकचूर्णि २, पृ० १७०

(ख) ज्ञातृधर्मकथा पृ० १०० मे श्रेणिक के सेचनक हस्ती एव श्रीकृष्ण के विजय हस्ती को गधहस्ती कहा है। जो अपनी गध से अन्य हस्तियो को आकृष्ट करता था।

५ अर्थशास्त्र २।३१।४८।६ मे सात हाथ ऊँचे, नौ हाथ लम्बे और दस हाथ मोटे व चालीस वर्ष की उम्र वाले हाथी को सर्वोत्तम कहा है।

सदा मद प्रवाहित रहता, वह विराट्काय वृक्षो को भी उखाडकर फेक देता था।[६] हस्तियूथ का भी वर्णन मिलता है। ये हाथी जगलो मे अगाध जल से परिपूर्ण तालाबो मे जलक्रीडा कर घूमते रहते थे।[७]

जगली हाथियो को पकडकर शिक्षा दी जाती थी। अशिक्षित हाथी युद्ध मे उपयोगी नही होता था। वह तो अपने स्वामी का न धव महावत आदि को भी नष्ट कर देता था। रुष्ट होने पर स्वामी की सेना को भी रौद डालता था। इसलिए शिक्षा देने पर ही हाथी उपयोगी होता था। महावत हस्तीशाला[८] की देखभाल करता था। वह अकुश से[९] हाथी को वश मे रखता।[१०] झूल, वैजयन्ती (ध्वजा), भाला और नाना प्रकार के अलकारो से अलकृत किया जाता था। अस्त्र-शस्त्र तथा ढालो से शोभित किया जाता।[११] उस पर योद्धा कवच आदि पहनकर युद्ध करता था। युद्ध मे हाथी कठिन मार्ग को सरलता से पार कर जाता, शत्रुकृत प्रहारो से अपनी तथा महावतो की रक्षा करता। शत्रु नगर का कोट व प्रवेशद्वार भग कर उसमे प्रविष्ट होता और उसे नष्ट-भ्रष्ट कर देता। शत्रु के सैन्यसमूह को कुचल कर नष्ट कर देता। नदी के जल मे एक साथ कतारबद्ध खडे होकर पुल बाध लेता।[१२] इसीलिये आचार्य कौटिल्य ने हाथियो की सेना को राजा के विजय का कारण बताया।[१३]

पदाति—

चतुरगिणी सेना का पदाति मुख्य अग था। पदाति हाथ मे तलवार, भाला, धनुष, बाण आदि शस्त्र लेकर चलता। शरीर पर वर्म और कवच धारण करता, भुजाओ पर चर्मपट्ट बाधता तथा गर्दन मे आभूषण पहनता

---

६ उत्तराध्ययन टीका ४। पृ० ९०, अध्ययन ९, पृ० १०४

७ निशीथचूर्णि १०।२७८४

८ व्यवहारभाष्य १०।४८४

९ दशवैकालिक २।१०, उत्तराध्ययन टीका ४, पृ० ८५

१० औपपातिक ३०, पृ० ११७

११ (क) विपाकसूत्र २, पृ० १३
   (ख) औपपातिक ३०, पृ० ११७, ३१ पृ० १३२
   (ग) रामायण १।५३।१८

१२ नीतिवाक्यामृत २२।६, सोमदेव सूरि

१३ अर्थशास्त्र २।२। कौटिल्य

और मस्तक पर वीरतासूचक पट्ट बाधता था।[१४] जब वह धनुप बाण चलाता उस समय आलीढ, प्रत्यालीढ, वैशाख, मडल और समपाद नामक आसन करता।[१५]

यह चारो प्रकार की सेना सेनापति के अधीन रहती थी। वह सेना की व्यवस्था करता। सेना, सेनापति के अनुशासन मे रहती थी।[१६] युद्ध के समय राजा की आज्ञा को प्राप्त कर सेनापति चतुरगिणी सेना को सजाकर युद्ध के लिए प्रस्थित होता।

युद्धनीति—

वर्तमान की तरह उस युग मे भी लोग युद्ध से भयभीत रहते थे। युद्ध न हो इसलिये सर्वप्रथम शाम, दाम, दण्ड और भेद की नीति काम मे लेते। जब वे नीतिया सफल न होती तब युद्ध लडा जाता। युद्ध के पूर्व समझौता करने के लिये दूत भेजते थे, विपक्षी उसकी उपेक्षा करता तो राजदूत राजा के पादपीठ का अपने बॉये पैर से अतिक्रमण करता और भाले की नोक पर पत्र रखकर उसे देता।

उस समय के लोग युद्धकला मे निपुण थे। चतुरगिणी सेना के साथ कौशल, नीति व्यवस्था और शारीरिक सामर्थ्य को भी जानते थे। स्कन्धावार-निवेश युद्ध का आवश्यक हिस्सा था।[१७] स्कन्धावार को दूर से आता देखकर साधु लोग दूसरे स्थान पर चले जाते थे।[१८] पहले नगरी-दुर्ग को सुदृढ बनाते और अनाजो से कोठारो को भरते, फिर युद्ध करते थे।[१९]

युद्ध के नौ अग माने जाते है—[२०] (१) यान, (२) आवरण, (३) प्रहरण,

---

१४ (क) औपपातिक ३१, पृ० १३२
(ख) विपाकसूत्र २, पृ० १३

१५ निशीथभाष्य २०।६३००

१६ औपपातिक २९

१७ (क) ज्ञातृधर्म कथा ८ पृ० ११, १६ पृ० १९०
(ख) अर्थशास्त्र १०।१।१४७
(ग) महाभारत ५।१५२

१८ बृहत्कल्पभाष्य पीठिका ५५९

१९ आवश्यकचूर्णि पृ० ८९

२० जाणावरणपहरणे जुद्धे कुसलत्तण च नीई अ।
दक्खत्त ववसाओ सरीरमारोग्गया चेव॥
—उत्तराध्ययन निर्युक्ति, गाथा १५४

(४) कौशल, (५) नीति, (६) दक्षता, (७) व्यवसाय, (८) परिपूर्णा ग शरीर, (९) आरोग्य ।

उत्तराध्ययन के चूर्णिकार ने लिखा है यदि युद्ध मे यान-वाहन न हो तो पैदल सैनिक क्या करेगे ? यान वाहन हो और आवरण (कवच) का अभाव हो तो सेना किस प्रकार सुरक्षित रह सकती है ? आवरण और प्रहरण न हो तो शत्रु को पराजित नही किया जा सकता। प्रहरण हो और उसके सचालन मे निपुणता न हो तो युद्ध लडा नही जा सकता । कौशल होने पर भी युद्ध की नीति (कभी आगे वढना और कभी पीछे हटना) का अभाव हो तो शत्रु को नही जीता जा सकता । नीति के होने पर भी दक्षता के अभाव मे सफलता नही मिलती । दक्षता होने पर व्यवसाय (कठोर परिश्रम) न हो तो युद्ध नही लडा जा सकता । इन सभी का आधार शरीर का परिपूर्णाङ्ग और स्वस्थ होना है ।[२१]

व्यूह-रचना भारतीय युद्धनीति का प्रमुख अग रहा । भगवान महावीर के समय भी यह पद्धति प्रचलित थी ।

जव उज्जैनी के राजा चण्डप्रद्योत और काम्पिल्य के राजा दुर्मुख के बीच मे युद्ध हुआ, तब उसमे चण्डप्रद्योत ने गरुड-व्यूह और दुर्मुख ने सागर-व्यूह की रचना की थी ।[२२]

राजा कूणिक और चेटक के बीच जो युद्ध हुआ, उसमे कूणिक की ओर से गरुड-व्यूह ओर चेटक की ओर से शकट-व्यूह बनाया गया था ।[२३] व्यूह-रचना मे चक्रव्यूह, दण्डव्यूह और सूचीव्यूह का प्रयोग किया जाता था ।[२४]

---

२१ उत्तराध्ययन चूर्णि, पृ० ९३

२२ उत्तराध्ययन सुखवोधा, पत्र १३६

२३ (क) निरयावलिया १, पृ० २८

(ख) अर्थशास्त्र १०।६।१५८ १५९, १२, २४ मे भी कौटिल्य ने शकट व्यूह और गरुड व्यूह का उल्लेख किया है ।

(ग) मनुस्मृति ७।१८७

(घ) महाभारत ६।५६, ७५,

(ङ) द आर्ट आव वार इन एशियेंट इण्डिया, पृ० ७२, दाते जी० टी०

२४ (क) औपपातिक ४० पृ० १८६

(ख) प्रश्नव्याकरण ३, पृ० ४४

युद्ध मे कूटनीति का भी अपना अलग स्थान था। युद्धनीति मे दक्ष अमात्य अपनी बुद्धिमत्ता व कला-कौशल से ऐसा प्रयत्न करता जिससे शत्रु-पक्ष को आत्म-समर्पण करना पडता। राजा प्रद्योत ने राजगृह पर आक्रमण करना चाहा तब राजा श्रेणिक के कुशल मन्त्री अभय ने प्रद्योत की सेना के पडाव के स्थान पर पूर्व ही लोहे के कलश मे दीनारे भरवाकर गडवा दी और सन्देश प्रेपित कर दिया कि तुम्हारे सैनिको को रिश्वत देकर राजा श्रेणिक ने अपने पक्ष मे कर लिया है।[२५]

चारकर्म कूटनीति का प्रमुख अग था। शत्रु सेना के गुप्त रहस्यो का पता लगाने के लिए गुप्तचर होते थे।[२६] गुप्तचर शत्रु सेना मे भर्ती होकर उसकी सभी रहस्यमय बातो का पता लगाता रहता था। कूलवालय के सहयोग से राजा कूणिक ने वैशाली के स्तूप को नष्ट कर राजा चेटक को पराजित किया था।

अस्त्र-शस्त्र—

उस समय युद्ध मे अनेक प्रकार के शस्त्र-अस्त्रो का प्रयोग होता था। मुद्गर[२७], भुसडि[२८] (दूसरे प्रकार की मुद्गर), करकय, शक्ति (त्रिशूल), हल, गदा, मूसल, चक्र, कुन्त (भाला), तोमर (बाण विशेष), शूल, लकुट भिडिपाल (मुद्गर या बडा फल वाला कुन्त), शब्बल (लोहे का भाला), पट्टिश (जिसके दोनो किनारो पर त्रिशूल हो), चर्मेष्ट[२९] (चर्म से आवेष्टित पाषाण), चाप

---

२५ आवश्यक चूर्णि २। पृ० १७४

२६ (क) उत्तराध्ययन टीका २, पृ० ४७, जैन साधुओ को भी गुप्तचर समझ कर पकड लेते थे।

(ख) अर्थशास्त्र २।३५। ५४-५५, १५-१६

(ग) अर्थशास्त्र १।११।८ कौटिल्य

२७ उत्तराध्ययन टीका २ पृ० ३४, मुद्गर लोहे की बनी हुई होती थी।

२८ महाभारत २।७०।३४ मे भी उल्लेख है।

२९ उपासकदशा टीका ७, पृ० ८५

३० (क) उत्तराध्ययन ९।१८ की बृहद्वृत्ति पत्र ३११ मे शतघ्नी यह एक वार मे सौ व्यक्तियो का सहार करने वाला यत्र है।

(ख) कौटिल्य अर्थशास्त्र २।१८, ३६।७ मे इसे चल-यत्र माना है। दुर्ग की दीवार पर रखा हुआ एक विशाल स्तम्भ, जिस पर मोटी और लम्बी कीले लगी हो।

(४) कौशल, (५) नीति, (६) दक्षता, (७) व्यवसाय, (८) परिपूर्णा ग शरीर, (९) आरोग्य।

उत्तराध्ययन के चूर्णिकार ने लिखा है यदि युद्ध मे यान-वाहन न हो तो पैदल सैनिक क्या करेंगे ? यान वाहन हो और आवरण (कवच) का अभाव हो तो सेना किस प्रकार सुरक्षित रह सकती है ? आवरण और प्रहरण न हो तो शत्रु को पराजित नही किया जा सकता। प्रहरण हो और उसके सचालन मे निपुणता न हो तो युद्ध लडा नही जा सकता। कौशल होने पर भी युद्ध की नीति (कभी आगे बढना और कभी पीछे हटना) का अभाव हो तो शत्रु को नही जीता जा सकता। नीति के होने पर भी दक्षता के अभाव मे सफलता नही मिलती। दक्षता होने पर व्यवसाय (कठोर परिश्रम) न हो तो युद्ध नही लडा जा सकता। इन सभी का आधार शरीर का परिपूर्णाङ्ग और स्वस्थ होना है।[२१]

व्यूह-रचना भारतीय युद्धनीति का प्रमुख अग रहा। भगवान महावीर के समय भी यह पद्धति प्रचलित थी।

जब उज्जैनी के राजा चण्डप्रद्योत और काम्पिल्य के राजा दुर्मुख के बीच मे युद्ध हुआ, तब उसमे चण्डप्रद्योत ने गरुड-व्यूह और दुर्मुख ने सागर-व्यूह की रचना की थी।[२२]

राजा कूणिक और चेटक के बीच जो युद्ध हुआ, उसमे कूणिक की ओर से गरुड-व्यूह ओर चेटक की ओर से शकट-व्यूह बनाया गया था।[२३] व्यूह-रचना मे चक्रव्यूह, दण्डव्यूह और सूचीव्यूह का प्रयोग किया जाता था।[२४]

२१ उत्तराध्ययन चूर्णि, पृ० ९३

२२ उत्तराध्ययन सुखबोधा, पत्र १३६

२३ (क) निरयावलिया १, पृ० २८

(ख) अर्थशास्त्र १०।६।१५८, १५९, १२, २४ मे भी कौटिल्य ने शकट व्यूह और गरुड व्यूह का उल्लेख किया है।

(ग) मनुस्मृति ७।१८७

(घ) महाभारत ६।५६, ७५,

(ङ) द आर्ट आव वार इन एशियेंट इण्डिया, पृ० ७२, दाते जी० टी०

२४ (क) औपपातिक ४० पृ० १८६

(ख) प्रश्नव्याकरण ३, पृ० ४४

युद्ध मे कूटनीति का भी अपना अलग स्थान था। युद्धनीति मे दक्ष अमात्य अपनी बुद्धिमत्ता व कला-कौशल से ऐसा प्रयत्न करता जिससे शत्रु-पक्ष को आत्म-समर्पण करना पडता। राजा प्रद्योत ने राजगृह पर आक्रमण करना चाहा तब राजा श्रेणिक के कुशल मन्त्री अभय ने प्रद्योत की सेना के पडाव के स्थान पर पूर्व ही लोहे के कलश मे दीनारे भरवाकर गडवा दी और सन्देश प्रेषित कर दिया कि तुम्हारे सैनिको को रिश्वत देकर राजा श्रेणिक ने अपने पक्ष मे कर लिया है।[२५]

चारकर्म कूटनीति का प्रमुख अग था। शत्रु सेना के गुप्त रहस्यो का पता लगाने के लिए गुप्तचर होते थे।[२६] गुप्तचर शत्रु सेना मे भर्ती होकर उसकी सभी रहस्यमय बातो का पता लगाता रहता था। कूलवालय के सहयोग से राजा कूणिक ने वैशाली के स्तूप को नष्ट कर राजा चेटक को पराजित किया था।

अस्त्र-शस्त्र—

उस समय युद्ध मे अनेक प्रकार के शस्त्र-अस्त्रो का प्रयोग होता था। मुद्गर[२७], मुसडि[२८] (दूसरे प्रकार की मुद्गर), करकय, शक्ति (त्रिशूल), हल, गदा, मूसल, चक्र, कुन्त (भाला), तोमर (बाण विशेष), शूल, लकुट भिडिपाल (मुद्गर या बडा फल वाला कुन्त), शब्बल (लोहे का भाला), पट्टिश (जिसके दोनो किनारो पर त्रिशूल हो), चर्मेष्ट[२९] (चर्म से आवेष्टित पाषाण), चाप

---

२५ आवश्यक चूर्णि २। पृ० १७४

२६ (क) उत्तराध्ययन टीका २, पृ० ४७, जैन साधुओ को भी गुप्तचर समझ कर पकड लेते थे।

(ख) अर्थशास्त्र २।३५। ५४-५५, १५-१६

(ग) अर्थशास्त्र १।११।८ कौटिल्य

२७ उत्तराध्ययन टीका २ पृ० ३४, मुद्गर लोहे की बनी हुई होती थी।

२८ महाभारत २।७०।३४ मे भी उल्लेख है।

२९ उपासकदशा टीका ७, पृ० ८५

३० (क) उत्तराध्ययन ६।१८ की बृहद्वृत्ति पत्र ३११ मे शतघ्नी यह एक बार मे सौ व्यक्तियो का सहार करने वाला यन्त्र है।

(ख) कौटिल्य अर्थशास्त्र २।१८, ३६।७ मे इसे चल-यन्त्र माना है। दुर्ग की दीवार पर रखा हुआ एक विशाल स्तम्भ, जिस पर मोटी और लम्बी कीलें लगी हो।

(धनुष), नाराच (लोह बाण), कणक (बाण), कर्तरिका, वासी (लकडी छीलने का औजार बसोला), परशु (फरसा) और शतघ्नी[३०] आदि प्रमुख थे।[३१]

तलवार तीन प्रकार की होती थी—

(१) असि—लम्बी तलवार

(२) खड्ग—छोटी तलवार

(३) ऋष्टि—दुधारी तलवार

भाला और वर्छी भल्ली के नाम से प्रसिद्ध थी। पट्टिस[३२] के खुरोपम, लोहदण्ड और तीक्ष्णधार ये इसके तीन पर्यायनाम है। इनके आधार पर उनका आकार बनता है, जो खुरपे के आकार वाला लोहदण्ड तथा तीक्ष्ण धार वाला होता है उसे पट्टिस कहा जाता है। भुसडी[३३] यह लकडी से बनाई जाती थी, उसमे लोहे के काटे जडे हुए होते थे।

नाग-बाण, तामस-बाण, पद्म-बाण, वह्नि-बाण, महापुरुष बाण और

(ग) शेषनाममाला १५० पृ० ३६६ मे इसके दो पर्यायवाची है—चतुस्ताला और लोहकण्टकसचिता। इसके अनुसार यह बारह बालिस्त की और लोहे के काटो से सचित होती थी। एक बार मे सैकडो पत्थर फेकने का यत्र या आधुनिक तोप कह सकते ह।

(घ) महाभारत ३।२६१।२४ मे भी उल्लेख हे।

(ड) हापकिन्स, जर्नल आव अमेरिकन औरिटियल सोसायटो जिल्द १३, पृ० ३००

३१ (क) उत्तराध्ययन १९-५१, ५५,५८, ६१

(ख) प्रश्नव्याकरण पृ० १७

(ग) अभिधान-चिन्तामणि ३।४४६-४५१ आचार्य हेमचन्द्र

(घ) अर्थशास्त्र २।१८।३६

(ड) रामायण ३।२२।२०

(च) भास ए स्टडी, अ १६, पृ० ४१४, पुसालकर ए० डी०

(छ) पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन इन ऐशियेंट इण्डिया, पृ० २०४, बनर्जी पी० एन०

(ज) प्री बुद्धिस्ट इण्डिया, पृ० १७१, रतिलाल मेहता

(झ) द आर्ट आव वार इन ऐशियेंट इण्डिया, दाते जी० सी०

३२ शेषनाममाला, श्लोक १४८-१४९

३३ शेषनाममाला, श्लोक १५१

महारुधिर-बाण आदि मुख्य बाण थे।[34] ये बाण अद्भुत, व महान शक्तिधारी थे। जब धनुष पर चढ़ाकर नाग-बाण को छोड़ा जाता तब वह जलती हुई उल्का के दण्ड रूप मे प्रवेश कर नाग बनकर उसको सभी तरफ से लपेट लेता था। तामस-बाण छोड़ने पर रणभूमि मे अधकार-ही-अधकार फैल जाता था।[35] महायुद्ध मे महोरग, गरुड, आग्नेय, वायव्य और शैल आदि शस्त्रो का प्रयोग होता था।[36]

युद्धभूमि मे ध्वजा और पताका भी आवश्यक मानी जाती थी। पटह और भेरियो का शब्द योद्धाओ मे वीरता का सचार करता। अपने तीक्ष्ण बाणो से सैनिक शत्रु की ध्वजा को छिन्न-भिन्न कर देते थे। शत्रु के हाथ मे ध्वजा जाने पर युद्ध समाप्त हो जाता था।[37]

मानव-प्रवृत्तियाँ—

आदिकाल के मानव ऋजु-जड थे। अर्थात् भगवान् ऋषभ के समय के मानव सरल प्रकृति के तो थे किन्तु उन्हे अर्थबोध बहुत कठिनाई से होता था। विनीत होने पर भी विवेक की कमी थी। मध्यकाल के मानव ऋजु-प्राज्ञ थे। सरल होने के साथ बुद्धिमान भी थे। उनके जीवन मे विनय और विवेक दोनो का सामजस्य था। किन्तु महावीर युग के मानव वक्रजड थे। अर्थात् कुतर्क करने वाले और विवेक से हीन थे। जन-जन के मन मे धर्म के प्रति

---

३४ (क) जीवाभिगम ३, पृ० १५३, २८३
(ख) जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति २, पृ० १२४
(ग) तुलना करे—रामायण १।२७,१६

३५ चित्र श्रेणिक ! ते बाणा भवन्ति धनुराश्रिता ।
उल्कारूपाश्च गच्छन्त शरीरे नागमूर्तय ॥
क्षण बाणा क्षण दण्डा क्षण पाशत्वमागता ।
आकरा ह्यस्त्रभेदास्ते यथाचिंतितमूर्तय ॥

—जीवाभिगम टीका ३, पृ० २८३

३६ उत्तराध्ययन टीका १८, पृ० २३८

३७ (क) भगवती सूत्र ७।७ तुलना करे
(ख) कल्पसूत्र ३।४० ध्वजा का वर्णन है।
(ग) रामायण ३।२७।१५ तुलना करे
(घ) महाभारत ५।८३।४६ तुलना करे।

निष्ठा प्रतिदिन कम होती जा रही थी। हिंसा, झूठ, लूटपाट, चोरी, मायाचारी, शठता, कामासक्ति, धनादि-सग्रह मे आसक्ति, मद्य-मासभक्षण, पर-दमन, अहकार, लोलुपता आदि दुर्गुण शैतान की आत की तरह बढ रहे थे। इतना होने पर भी ऐसे बहुत से व्यक्ति थे जो सदाचारी व धर्मपरायण थे। उनके जीवन के कण-कण मे, मन के अणु अणु मे धार्मिक भावनाये थी। भगवान् महावीर ने द्रव्य-यज्ञ की अपेक्षा भाव यज्ञ, बाह्य-शुद्धि की अपेक्षा अन्तरग-शुद्धि, द्रव्य-सयम की अपेक्षा भाव-सयम पर अधिक बल दिया।

धार्मिक एव दार्शनिक सम्प्रदाये—

भगवान् महावीर के समय धार्मिक व दार्शनिक सम्प्रदायें क्या प्रचलित थी, इसका विशुद्ध वर्णन हम 'भगवान् महावीर कालीन धर्म और धर्मनायक' शीर्षक मे कर चुके है।

निष्कर्ष—

इस प्रकार हम देखते है कि उस समय जाति और वर्ण के आधार पर सामाजिक सगठन था। जात-पात की बीमारी बहुत बढी-चढी हुई थी। शूद्रो की स्थिति अत्यन्त दयनीय थी। सर्वत्र उनका निरादर होता था। ब्राह्मणो का प्रभुत्व था। वे धर्म के नाम पर हिंसा को प्रोत्साहन दे रहे थे। वे वेदो के वास्तविक रहस्य को नही जानते थे। क्षत्रिय और वैश्यो के पास बहुत धन था। क्षत्रिय प्रजा का पालन करते और भोग-विलासो मे भी निमग्न रहते थे, तथापि कुछ क्षत्रिय राजा जैन दीक्षा भी लते थे। वैश्य भारत मे ही नही, अपितु विदेशो मे भी व्यापार हेतु जाते थे।

परिवार मे माता-पिता का स्थान सर्वोपरि था। परिवार के पालन-पोषण का दायित्व पिता पर था। पुत्र के प्रति सभी का स्वाभाविक स्नेह था। उसके बिना घर सूना-सूना था। पिता की मृत्यु के पश्चात् वही परिवार का ध्यान रखता था। उसके दीक्षा लेने पर माता पिता को कष्ट होना स्वाभाविक था। नारियो की स्थिति भी गभीर थी। वह भोग-विलास की साधन मानी जाती थी। पुरुष जैसा चाहता वैसा कठपुतली की तरह उसको नचा सकता था, परन्तु कितनी ही नारिया नर से भी आगे थी, वे पुरुषो को भी प्रतिबोध देती थी। विवाह की प्रथा भी उस समय प्रचलित थी। पुत्र और पुत्रियो के अधिकाश सम्बन्ध पिता ही निश्चित किया करता था। स्वयवर और गधर्व विवाह की प्रथा भी उस समय प्रचलित थी।

बहु-विवाह भी होते थे। कभी व्यापार के लिए विदेश मे जाने वाले वही पर विवाह कर लेते थे। कुछ दिन घर-जमाई भी रह जाते थे। विवाह का कोई निश्चित नियम नही था किन्तु सुविधा के अनुसार विवाह कर लेते थे।

किसी के मर जाने पर उसका दाह-सस्कार करने का प्रचलन था। दाह-सस्कार प्राय· पिता या पुत्र किया करता था।

आजीविका के लिए या युद्ध आदि के लिए पशु और पक्षियो का पालन किया जाता था। हाथी, घोडा, गाय, बैल आदि प्रमुख थे। भोजन मे घी, दूध, दही, मिष्ठान्न, फल, अन्न मुख्य था। कुछ लोग मास और मदिरा का भी उपयोग करते थे।

क्षत्रिय लोग युद्ध मे निपुण होते थे। वे चतुरगिणी सेना के साथ युद्ध करते थे। विविध प्रकार के अस्त्र और शस्त्र का भी उपयोग होता था। वैश्यो के साथ कभी-कभी उनकी पत्नियाँ भी समुद्रयात्रा करती थी।

रोगादि के निवारण के लिए औषधिया ली जाती थी और शल्य-चिकित्सा का भी प्रचार था। समाज मे सुख और शान्ति का सचार करने के लिए शासन-व्यवस्था थी। शासन का अधिकार क्षत्रियो के हाथो मे था। शासन करने वाला व्यक्ति राजा के नाम से अभिहित किया जाता। वह देश की उन्नति का ध्यान रखता था। कभी-कभी अधिकार के नशे मे पागल बनकर अपने कर्तव्य को भी वह विस्मृत हो जाता था। शत्रुओ का सदा भय बना रहता था, जिससे वह सैन्यबल बढाने और कोष-वृद्धि करने मे जागरूक रहता था।

चोर और डाकुओ का भी उपद्रव था, उन्हे पकडकर दण्ड देने के लिए न्याय-व्यवस्था थी। अपराध के अनुसार दण्ड दिया जाता था। कभी-कभी अपराधी को मृत्युदण्ड भी देते। वधस्थान पर ले जाते समय अपराधी को एक निश्चित वेशभूषा धारण करवा कर नगर मे घुमाया जाता, जिससे अन्य लोग इस प्रकार का अपराध न करे।

नाट्यकला, स्थापत्यकला, सगीतकला, चित्रकला आदि कलाओ का अच्छा विकास था।

मानव की प्रवृत्ति त्याग-वैराग्य से हटकर भोग-विलास की ओर अधिक थी। सन्तगण उन्हे सदा उद्‌बोधित करते रहते। अनेक धार्मिक, दार्शनिक सम्प्रदाये थी। इन सबमे श्रमण और ब्राह्मणो का आधिपत्य था। श्रमणो के त्याग-वैराग्य और उग्र तप का सर्वत्र स्वागत होता था। राजा भी उनके कोप से डरते थे। चारो वर्ण वाले जैन श्रमण होते थे किन्तु क्षत्रिय और ब्राह्मण अधिक थे।

इस प्रकार भगवान् महावीर के युग की समाज और सस्कृति का वर्णन मिलता है, जिस पर हमने अत्यत सक्षेप मे चिन्तन किया है।
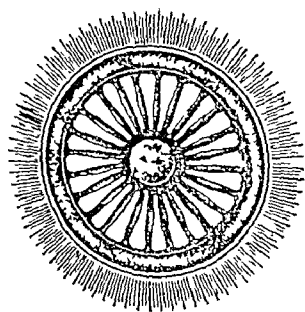
३ भगवान महावीर के समकालीन धर्म और धर्मनायक

* धार्मिक परिस्थिति
* चार प्रकार के वाद
* अन्य मत और मतनायक
* छह् प्रमुख श्रमण आचाय

१ पूण काश्यप और उसकी मा यता
२ मक्खलि गोशालक और उसकी मान्यता
३ अजित केशकम्वल और उसकी मान्यता
४ प्रकुध कात्यायन और उसके सिद्धान्त
५ सजय वेलट्ठि पुत्त और उसको मान्यताएँ
६ निग्र न्थ ज्ञातपुत्त

भगवान महावीर के समकालीन धर्म और धर्मनायक

धार्मिक परिस्थितिया

आज से लगभग पच्चीस सौ वर्ष पूर्व का युग धार्मिक उथल-पुथल का युग था। इस युग मे न केवल प्राचीन धर्म-परम्पराओ मे अनेक क्रातिकारी पुरुषो का जन्म हुआ किन्तु अनेक नये मत-सप्रदायो का आविर्भाव भी हुआ। भारत मे ही नही, किन्तु प्राय सपूर्ण एशिया खण्ड मे ही एक प्रकार की धार्मिक उथल-पुथल इस युग मे दृष्टिगोचर होती है। चीन मे लाओत्से ओर कन्फ्यूसियस ने धार्मिक चेतना की नई लहर पैदा की थी तो ग्रीस मे पाइथागोरस, सुकरात और प्लेटो की नई विचारधारा ने पुरानी धार्मिक मान्यताओ को झकझोरा था, ईरान और परसिया मे जरथुस्त भी अपनी विचारधारा को इसी युग मे प्रसारित कर रहे थे।

ईसा पूर्व की छठी शताब्दी का भारत तो इस प्रकार की धार्मिक हलचलो का केन्द्र था। अनेक धार्मिक महापुरुष और दार्शनिक विचारक पुरानी मान्यताओ के परिवेश मे अपनी नई स्थापनाओ को प्रस्तुत कर रहे थे, अगर सत्य की एक किरण दिखाई दी तो बस वही अपने को सत्य का सपूर्ण द्रष्टा और प्रवक्ता मानने का ढिढोरा पीटने लग गया। इस प्रकार धार्मिक मतवादो के कोलाहल से साधारण जन एक प्रकार की दिग्मूढता अनुभव करने लग गया था। भगवान महावीर जैसे सत्य के परम द्रष्टा और अनाग्रही (अनेकातवादी) महापुरुष युग को अनेकात का बोध दे रहे थे, मत-पक्ष को लेकर खीचातान करने वालो को सत्य मे अनाग्रह (अनेकात) का बोध दे रहे थे, फिर भी युग तो गडरिया प्रवाह मे चल रहा था। एकान्तवाद का बोलवाला था और हर मतवादी—**सय सय पससत्ता गरहता पर वय**[1] अपने पथ और

---

१ सूत्रकृताग, १।१।२।२३

अपनी बद्ध-मान्यताओ की प्रशसा करता हुआ दूसरे मत और पथ की निन्दा करने पर उतारू हो रहा था। अपने को सच्चा और दूसरो को झूठा बताया जाता था।

मै यहाँ पर उन मतवादो की समीक्षा नही करूँगा, मेरा आशय सिर्फ भगवान महावीर के युग की धार्मिक मान्यताओ का सक्षिप्त परिचय देना है। भगवान महावीर के युग मे जो विभिन्न धर्म और धर्मनायक अलग-अलग पथो का नेतृत्व कर रहे थे, यहाँ बौद्ध एव जैन साहित्य के अनुशीलन के आधार पर उनका सक्षिप्त विवरण प्रस्तुत किया जा रहा है।[2]

बौद्ध-साहित्य के अनुसार उस समय तिरेसठ श्रमण सम्प्रदाय विद्यमान थे।[3] जैनसाहित्य मे तीन सौ तिरेसठ धर्म-मतवादो का उल्लेख मिलता है।[4] यह भेदोपभेद की विस्तृत चर्चा है। सक्षेप मे इन समस्त सम्प्रदायो को चार वर्गो मे विभक्त किया गया है। भगवान महावीर ने उनके समूह को चार समवसरण कहा है।[5]

चार प्रकार के वाद

उन समवसरण को हम चार प्रकार के वाद भी कह सकते है। चार प्रकार के वाद ये है—

(१) क्रियावाद, (२) अक्रियावाद, (३) विनयवाद, (४) अज्ञानवाद।[6]

क्रियावाद

क्रियावादी आत्मा के साथ क्रिया का समवाय-सम्बन्ध मानते है। उनका सिद्धान्त है कि कर्ता के बिना पुण्य-पाप आदि क्रियाए नही होती। वे

---

२ पूरे भारत मे यो तो हजारो ही मतवाद और आचार्य उस युग मे थे, किंतु वैदिक परम्परा के धर्मनायको का विस्तृत और प्रामाणिक वर्णन कम उपलब्ध होता है, अधिकतर श्रमण-परम्परा—(जैन और बौद्ध) के दार्शनिको की चर्चा उपलब्ध साहित्य मे मिलती है तदनुसार यहाँ मुख्य रूप से श्रमण-परम्परा के दार्शनिको की ही चर्चा प्रस्तुत है।

३ यानि च तीणि यानि च सट्ठि। —सुत्तनिपात, सभियसुत्त

४ सूत्रकृताग वृत्ति १।१२

५ (क) स्थानाग ४।४।३४५
(ख) भगवती ३०।१।८२४

६ किरिय अकिरिय विणियति तइय अन्नाणमाहसु चउत्थमेव।
—सूत्रकृताग १।१२।१

जीव आदि नव पदार्थों को एकान्त अस्ति रूप मे मानते है। क्रियावाद के १८० भेदान्तर है।

अक्रियावाद—

दशाश्रुतस्कध (छठी दशा) मे अक्रियावाद का वर्णन इस प्रकार मिलता है—

नास्तिकवादी, नास्तिकप्रज्ञ, नास्तिकदृष्टि, नोसम्यग्वादी, नो-नित्यवादी-उच्छेदवादी, नोपरलोकवादी—ये सभी अक्रियावादी है।

इनके मतानुसार इहलोक नही है, परलोक नही है, माता नही है, पिता नही है, अरिहत नही है, चक्रवर्ती नही है, बलदेव नही है, वासुदेव नही है, नरक नही है, नैरयिक नही है, सुकृत और दुष्कृत के फल मे अन्तर नही है, सुचीर्ण कर्म का अच्छा फल नही होता, दुश्चीर्ण कर्म का बुरा फल नही होता, कल्याण और पाप अफल है, पुनर्जन्म नही है, मोक्ष नही है अर्थात् समस्त क्रियाए फलशून्य है।

सूत्रकृताग मे अक्रियावाद के कई मतवादो का भी वर्णन है। वहाँ अनात्मवाद, आत्मा के अकर्तृत्वाद, मायावाद, वन्ध्यवाद और नियतवाद—इन सबको अक्रियावाद कहा है।[७]

इनका मन्तव्य है कि पुण्य-पाप आदि क्रियाए स्थिर पदार्थ को लगती है, किन्तु उत्पन्न होते ही विनाश होने से कोई भी पदार्थ स्थिर नही है। तब इसे क्रिया कैसे लगे ? वस्तु मे नित्य-अनित्य भेद ही नही है। इनके ८४ भेद है।[८]

अज्ञानवाद—

अज्ञानवाद का मन्तव्य है कि ज्ञान मे झगडा होता है, चूकि पूर्णज्ञान किसी को होता नही है और अधूरे ज्ञान से भिन्न-भिन्न मतो की उत्पत्ति होती है। इसलिए ज्ञानोपार्जन व्यर्थ है। अज्ञान से ही जगत का कल्याण है।

सूत्रकृताग के अनुसार—अज्ञानवादी तर्क करने मे कुशल होने पर भी असबद्ध-भाषी है। क्योकि वे स्वय सन्देह से परे नही हो सके है।[९] इसके ६७ भेद है।[१०]

---

७ सूत्रकृताग १।१२।४-८

८ प्रवचनसारोद्धार, उत्तरार्द्ध ६४-६५ पत्र ३४४-२

९ सूत्रकृताग १।१२।२

१० प्रवचनसारोद्धार, उत्तरार्द्ध सटीक पृ० ३४४

विनयवाद

विनयपूर्वक व्यवहार करने वाला विनयवादी कहलाता है। वह सर्वत्र बिना किसी विकल्प के सबका विनय करता रहता है। चाहे साधु मिले, गृहस्थ मिले, गाय मिले या कुत्ता—सबका विनय करते रहना ही उसका सिद्धान्त है। इनके लिंग और शास्त्र पृथक् नही होते। ये केवल मोक्ष को मानते है। सुर, राजा, यति, ज्ञाति, स्थविर, अधम, माता और पिता, इन सबके प्रति मन, वचन, काया से देश और काल के अनुसार उचित दान देकर विनय करे। इनके ३२ भेद है।[११]

इसप्रकार क्रियावादियो के १८० भेद, अक्रियावादियो के ८४ भेद, वैनयिको के ३२ भेद और अज्ञानवादियो के ६७ भेद मिलते है। सब मिलाकर ३६३ भेद होते है।[१२]

तत्त्वार्थराजवार्तिक मे अकलकदेव ने इन वादो (सप्रदायो) के आचार्यों का नामोल्लेख भी किया है—

कौक्कल, काठेविद्धि, कौशिक, हरि, श्मश्रुमान्, कपिल, रोमश, हारित, अश्व, मुण्ड, आश्वालायन, आदि १८० क्रियावाद के आचार्य व उनके अभिमत है।

मरीचि, कुमार, उलुक, कपिल, गार्ग्य, व्याघ्रभूति, वाद्वलि, माठर, मौद्गल्यायन आदि ८४ अक्रियावाद के आचार्य व उनके अभिमत है।

साकल्य, वाष्कल, कुथुमि, सात्यमुग्रि चारायण, काठ, माध्यन्दिनी, मौद, पैप्पलाद, वादरायण, स्विष्ठिकृत, ऐतिकायन, वसु, जैमिनी आदि ६७ अज्ञानवाद के आचार्य व उनके अभिमत है।

वशिष्ट, पाराशर, जतुकर्ण, बाल्मीकि रोमहर्षिणि, सत्यदत्त, व्यास, एलापुत्र, औपमन्यव, इन्द्रदत्त, अयस्थूल आदि ये ३२ विनयवाद के आचार्य व उनके अभिमत है।[१३]

---

११ प्रवचनसारोद्धार, सटीक उत्तरार्द्ध पत्र ३४४

१२ तत्र तावच्छतमशीत क्रियावादिना अक्रियावादिनञ्च चतुरशीतिसङ्ख्या अज्ञानिका सप्तषष्टिविधा वैनयिकवादिनो द्वात्रिशत्, एव त्रिषष्ट्यधिक-शतत्रयम्।

—उत्तराध्ययन बृहद्वृत्ति, पत्र ४४४

१३ तत्त्वार्थराजवार्तिक ८।१ पृ० ५६२

इस ससार मे भिन्न-भिन्न रुचि वाले मनुष्य है—मुण्डे-मुण्डे मतिभिन्ना। कितने ही क्रियावाद मे विश्वास करते है, कितने ही अक्रियावाद मे।[१४] वास्तव मे क्रियावाद ही सच्चा पुरुपार्थवाद है, क्रिया का जीवन मे महत्त्व है, इसलिये आगम म कहा है—वही धीर पुरुष है जो क्रियावाद मे रुचि रखता है और अक्रियावाद का वर्जन करता हे।[१५]

जैन-दशन क्रियावादी है किन्तु एकान्त-दृष्टि से नही है, इसलिये वह सम्यक् क्रियावाद है। जिसे आत्मा आदि तत्त्वो मे विश्वास होता है, वही क्रियावाद (अस्तित्ववाद) का निरूपण कर सकता है।[१६]

अन्य मत और मतनायक—

आचाराग मे भी चार वादो का उल्लेख भिन्न प्रकार से मिलता है—**आयावादी, लोयावादी, कम्मावादो, किरियावादो**।[१७]

सभाष्य निशीथचूर्णि मे[१८] उस समय के दर्शन ओर दार्शनिको का उल्लेख इस प्रकार किया गया है—

१ आजीवक २ ईसरमत ३ उलूग, ४ कपिलमत, ५ कविल, ६ कावाल ७ कावालिय, ८ चरग, ९ तच्चन्निय, १० परिव्वायग, ११ पडरग, १२ बोडित, १३ भिच्छुग, १४ भिक्खू, १५ रत्तपड, १६ वेद, १७ सक्क १८ सरक्ख १९ सुतिवादी, २० सेयवड, २१ सेय भिक्खू, २२ शाक्यमत, २३ हदुसरक्ख।

बौद्धसाहित्य भी सक्षिप्त हष्टि से छह श्रमण सम्प्रदायो का उल्लेख करता है। उनके मतवाद ये हे—

१ अक्रियावाद, २ नियतिवाद, ३ उच्छेदवाद ४ अन्योन्यवाद, ५ चातुर्याम सवरवाद, ६ विक्षेपवाद।

छह प्रमुख श्रमण आचार्य—

ओर उनके आचार्य क्रमश ये है—१ पूरणकाश्यप, २ मक्खलि-गोशालक, ३ अजितकेशकवलि, ४ पकुधकात्यायन, ५ निर्ग्रन्थ ज्ञातपुत्र, ६ सजय वेलट्ठिपुत्र।[१९]

---

१४ सूत्रकृताग १।१०।१७
१५ उत्तराध्ययन १८।३३
१६ सूत्रकृताग १।१०।१७
१७ आचाराग सटीक श्रु० १, अ० १, उद्दे० १, पत्र २०
१८ निशीथसूत्र सभाष्य, चूर्णि भाग १, पृ० १५
१९ दीघनिकाय २

दीघनिकाय के सामञ्जफलसुत मे उन छहो धर्मनायको की मान्यताओ का विवरण है ।

पूण काश्यप और उनकी मान्यता

अनुभवो मे परिपूर्ण मानकर लोग इन्हे पूर्ण कहते थे, जाति से ब्राह्मण होने से काश्यप भी कहलाते थे । वे नग्न रहा करते थे, उनके अस्सी हजार अनुयायी थे । बौद्धसाहित्य मे एक किंवदन्ती है, उसके अनुसार पूरण काश्यप एक गृहस्थ के पुत्र थे । एक दिन उनके स्वामी ने उन्हे द्वारपाल का कार्य सौपा, उन्होने उसे अपना गहरा अपमान समझा । वे विरक्त होकर जगल की ओर चल पडे । मार्ग मे तस्करो ने उनके वस्त्र छीन लिये । तब से वे नग्न ही रहने लगे । एक बार वे किसी ग्राम मे गये । लोगो ने उनको नग्न देखकर वस्त्र पहनने के लिये दिये । परन्तु उन्होने कहा—'वस्त्र का प्रयोजन लज्जा-निवारण है और लज्जा का मूल पापमय प्रवृत्ति है । मैं तो पापमय प्रवृत्ति से दूर हूँ, इसलिए मुझे वस्त्रो की क्या आवश्यकता ?' यह कहकर उन्होने वह वस्त्र पुन लौटा दिया । इसप्रकार उनकी निस्पृहता और असगता देखकर जनता उनकी अनुयायी बनने लगी ।[२०]

धम्मपद अट्ठकथा मे उनके निधन के सम्बन्ध मे एक अस्वाभाविक और बड़ा ही विचित्र-सा प्रसग आया है । उस कथा मे बताया कि पूर्ण काश्यप किसी श्रीमन्त के यहा दास था । जन्म से उसका क्रम सौवा था, अत उसका नाम पूरण पडा । यह उल्लेख सगत नही लगता है, चूँकि जो जाति मे काश्यप था वह जन्म से दास कैसे होता ।[२१] दूसरी बात उस कथा मे अन्य निर्ग्रन्थो का उपहास किया है, वह भी साम्प्रदायिक भाव से भरा हुआ लगता है ।

पूर्ण काश्यप अक्रियावाद के समर्थक थे । उनका मन्तव्य था—'अगर कोई कुछ करे या कराये, काटे या कटाये, कष्ट दे या दिलाये, शोक करे या कराये, किसी को कुछ दु ख हो या कोई दे, डर लगे या डराये, प्राणियो को मार डाले, चोरी करे, घर मे सेंध लगाये, डाका डाले, एक ही मकान पर धावा बोल दे, बटमारी करे, परदारागमन करे या असत्य बोले तो भी उसे

---

२० (क) बौद्ध पर्व (मराठी) प्र० १० पृ० १२७
(ख) भगवती सूत्र प० बेचरदास दोशी द्वारा सम्पा० द्वि० ख० पृ० ५६

२१ GF G P Malalasekera Dictionary of pali proper names Luzac and Co London, 1960 Vol II, P 242 n

पाप नही लगता। तीक्ष्ण धार वाले चक्र से यदि कोई इस ससार के पशुओ के मास का बडा ढेर लगा दे तो भी उसमे बिल्कुल पाप नही है। उसमे कोई दोष नही है। गगा नदी के दक्षिणी किनारे पर जाकर यदि कोई मार-पीट करे, काटे या कटवाये, कष्ट दे या दिलाये तो भी उसमे बिल्कुल पाप नही है। गगा नदी के उत्तरी किनारे पर जाकर यदि कोई अनेक दान करे या करवाये, यज्ञ करे या करवाये, तो भी उसमे कोई पुण्य नही मिलता। दान, धर्म, सयम और सत्यभाषण से पुण्य की प्राप्ति नही होती।'[२२]

भगवती (३।२) मे पूरण तापस का विस्तृत वर्णन है। वह महावीर के समकालीन था, पर पूरण काश्यप और वह पृथक् है।

मक्खलि गोशालक और उनकी मान्यता—

गोशालक के सम्बन्ध मे दूसरे खण्ड मे भगवान महावीर के साधना-काल मे उसके आगमन प्रसग पर विस्तार के साथ उसका परिचय दिया गया है। उसका मन्तव्य था कि प्राणी के अपवित्र होने मे न कुछ हेतु है, न कारण है, बिना हेतु के और बिना कारण के ही प्राणी अपवित्र होते है। प्राणी की शुद्धि के लिए भी कोई हेतु नही है, कुछ भी कारण नही है। बिना हेतु के और बिना कारण के ही प्राणी शुद्ध होते है। खुद अपनी शक्ति या दूसरे की शक्ति से कुछ नही होता। बल, वीर्य, पुरुषार्थ या पराक्रम, यह सब कुछ नही है। सब प्राणी बलहीन और निर्वीर्य है—वे नियति (भाग्य), सगति और स्वभाव के द्वारा परिणत होते है—अक्लमन्द और मूर्ख सबो के दु खो का नाश ८० लाख के महाकल्पो के फेर मे होकर जाने के बाद ही होता है। यह मत ससारशुद्धि वाद या नियतिवाद के नाम से था।[२३]

अजित केशकम्बल और उनकी मान्यता—

ये केशो का बनाया कम्बल पहना करते थे, इसलिये ये 'केशकम्बली' के नाम से विख्यात थे। श्री एफ० एल० वुडवार्ड का मन्तव्य है 'यह कम्बल मनुष्य के केशो का बना होता था।[२४] इनकी विचारधारा लोकायतिक दर्शन के समान ही थी। कितने ही विद्वानो का यह भी मत है कि नास्तिक

---

२२ (क) भारतीय सस्कृति और अहिंसा, पृ० ४५-४६
(ख) भगवान बुद्ध, पृ० १८१

२३ (क) भारतीय सस्कृति और अहिसा, पृ० ४५-४६
(ख) भगवान बुद्ध १८१-१८३

२४ The book of the Gradual Savings, Vol. 1 Tr by F L woodward, P 260 n.

दर्शन के आदिप्रवर्तक भारत मे ये ही थे । ऐसा लगता है कि बृहस्पति ने इनके विचारो को ही पल्लवित एव विकसित किया है।[२५]

अजित केशकम्बल उच्छेदवादी थे। उनका मन्तव्य था—'दान, यज्ञ, होम मे कुछ भी तथ्य नही है। श्रेष्ठ और कनिष्ठ कर्मो का फल और परिणाम नही होता। इहलोक, परलोक, माता-पिता अथवा औपपातिक (देवता नरकवासी) प्राणी नही है। इहलोक और परलोक का अच्छा ज्ञान प्राप्त कर दूसरो को देने वाले दार्शनिक और योग्य मार्ग पर चलने वाले श्रमण ब्राह्मण इस ससार मे नही है। मनुष्य चार भूतो का बना हुआ है। जब वह मरता है तब उसके अन्दर की पृथ्वी-धातु पृथ्वी मे, आपो-धातु जल मे, तेजो-धातु तेज मे और वायु-धातु वायु मे जा मिलती है तथा इन्द्रियाँ आकाश मे चली जाती है। मृत व्यक्ति को अर्थी पर रखकर चार पुरुष श्मशान मे ले जाते है। उसके गुण-अवगुणो की चर्चा होती है। उसकी अस्थियाँ श्वेत हो जाती है। उसे दी जाने वाली आहुतिया भस्म रूप बन जाती है। दान का झगडा मूर्ख लोगो ने खडा कर रखा है। जो कोई आस्तिकवाद बताते है, उनकी वह बात बिलकुल झूठी और वृथा बकवास है। शरीर के भेद के पश्चात् विद्वानो और मूर्खो का उच्छेद होता है, वे नष्ट होते है। मृत्यु के अनन्तर उनका कुछ भी शेष नही रहता।[२६]

प्रकुध कात्यायन और उनके सिद्धान्त—

ये शीतल जल का उपयोग नही करते थे। उष्ण जल को ही ग्राह्य मानते थे। ककुद्ध वृक्ष के नीचे इनका जन्म हुआ था, इसलिये ये पकुद्ध कहलाये थे।[२७] बौद्ध टीकाकारो ने इन्हे पकुध गोत्री होने से पकुध माना है।[२८] आचार्य बुद्धघोष ने लिखा है—प्रकुध उनका व्यक्तिगत नाम था और कात्यायन उनका गोत्र था।[२९] डा० फीयर उन्हे ककुध कहने की भी सलाह देते है[30] प्रश्नोपनिषद् (१-१) मे इन्हे ऋषि पिप्पलाद का समकालीन ब्राह्मण

---

२५ (क) भगवान, बुद्ध १८२

(ख) भारतीय मस्कृति ओर अहिंसा

२६ धम्मपद अट्ठकथा १।१४४

२७ हिन्दु सभ्यता, पृ० २१६

२८ The book of the Hındred savıgns part, I, p 94

२९ (क) धम्मपद अट्ठकथा १-१४४

(ख) सयुक्त निकाय अट्ठकथा १-१०२

३० The boak of the Hındred savıngs part 1, page 94

कहा है। वहाँ पर उनका नाम कबन्धी कात्यायन आया है किन्तु स्मरण रखना चाहिए कि कबन्धी पकुध ये दोनो शारीरिक-विकृति कूब के वाचक है।[३१]

ये अन्योन्यवादी थे। उनका मन्तव्य था 'सात पदार्थ किसी के किये, करवाये, बनाए या बनवाये हुए नही है, वे तो वन्ध्य कूटस्थ और नगरद्वार के स्तम्भ का तरह अचल हे। वे न हिलते हे, न बदलते हे। एक दूसरे को वे नही सताते, एक दूसरे को सुख-दु ख उत्पन्न करने मे वे असमर्थ है। वे है—पृथ्वी, अप्, तेज, वायु, सुख, दु ख एव जीव। इन्हे मारने वाला, मरवाने वाला, सुनने वाला, सुनाने वाला, जानने वाला, अथवा इनका वर्णन करने वाला कोई भी नहीं है। जो कोई तीक्ष्ण शस्त्र से किसी का सिर काट डालता हैं, वह उसका प्राण नही लेता। इतना ही समझना चाहिए कि सात पदार्थों के बीच के अवकाश मे शस्त्र घुस गया है।[३२]

सजय वेलाट्ठि पुत्र और उनकी मान्यताये—

इनके जीवन के सम्बन्ध मे प्रामाणिक सामग्री का अभाव है। उनका सजय वेलट्ठिपुत्र नाम उसी प्रकार लगता है जैसे गोशाल का मक्खलीपुत्र। उस युग मे माता-पिता के नाम से सम्बन्धित पुत्र के नाम भी हुआ करते थे। जैसे मृगापुत्र[३३] थावच्चापुत्र[३४]। आचार्य बुद्धघोष ने उसे वेलट्ठ का पुत्र माना है। कितने ही विद्वानो की यह धारणा है कि सारिपुत्र और मोद्गल्यायन के पूर्व जो आचार्य परिव्राजक थे वही सजय वेलट्ठिपुत्र है।[३५] किन्तु यह धारणा सत्य प्रतीत नही होती, क्योकि यदि इस प्रकार होता तो बौद्ध साहित्य मे इस सम्बन्ध मे स्पष्ट उल्लेख होता। सजय परिव्राजक मे परिव्राजक शब्द आया है, जो वैदिक सस्कृति से सम्बन्धित है। इसलिए सजय परिव्राजक से सजय वेलट्ठिपुत्र पृथक् व्यक्ति होना चाहिए। डा० कामताप्रसाद जैन ने सजय वेलट्ठि को सारिपुत्र का गुरु और जैन श्रमण माना है[३६] किन्तु अन्य विद्वान इससे सहमत नही हैं।[३७]

---

३१ Barua, pre-Buddhistic Indian philasophy, P 281

३२ (क) भगवान बुद्ध १८१-१८२ (ख) भारतीय सस्कृति और अहिसा—

३३ उत्तराध्ययन अ० १९

३४ ज्ञाताधम कथा ५ अ० ५

३५ महावीर स्वामी नो सयम धर्म, गोपालदास पटेल पृ० ३५

३६ भगवान महावीर और महात्मा बुद्ध, पृ० २२-२४

३७ आगम और त्रिपिटक एक अनुशीलन, ख० १, पृ० १८

सजय के विक्षेपवाद मे लोग स्याद्वाद का प्रागूरूप देखते है। धर्मानन्द कोशाम्बी के विचारानुसार[3८] विक्षेपवाद का ही विकसित रूप स्याद्वाद है,[३९] पर यह मान्यता स्याद्वाद की भ्रात धारणा के कारण है। वास्तव मे स्याद्वाद व विक्षेपवाद मे बहुत अन्तर है।

सजय वेलट्ठिपुत्र विक्षेपवादी थे। उनका मन्तव्य था, यदि कोई मुझे पूछे कि क्या परलोक है और मुझे ऐसा लगे कि परलोक है तो मैं कहूगा—हा। परन्तु मुझे वैसा नही लगता। मुझे ऐसा भी नहीं लगता कि परलोक नही है। औपपातिक प्राणी है या नही, अच्छे बुरे कर्म का फल होता है या नही, तथागत मृत्यु के बाद रहता है या नही, इनमे से किसी भी बात के विषय मे मेरी कोई निश्चित धारणा नही है।[३९]

निर्ग्रन्थ ज्ञातपुत्र

बौद्ध साहित्य मे निर्ग्रन्थ ज्ञातपुत्र का निम्नोक्त वर्णन किया गया है, यद्यपि वह सर्वथा सत्य नही है, पर लगता है कुछ सुनी-सुनाई धारणा ही वहाँ अकित हुई है, वह वर्णन इस प्रकार है—

निर्ग्रन्थ ज्ञातपुत्र (महावीर) चातुर्याम सवरवादी थे। उनके चार सवर थे—

(१) निर्ग्रन्थ जल के व्यवहार का वारण करता है जिससे जल के जीव न मरे।

(२) निर्ग्रन्थ सभी पापो का वारण करता है।

(३) निर्ग्रन्थ सभी पापो के वारण करने से धुतपाप हो जाता है।

(४) निग्रन्थ सभी पापो के वारण करने मे लगा रहता है।

इस तरह निर्ग्रन्थ चार सवरो से सवृत्त रहता है, एतदर्थ वह निर्ग्रन्थ गतात्मा (अनिच्छुक), यतात्मा (सयमी) और स्थितात्मा कहलाता है।[४०]

इस प्रकार तथागत बुद्ध के समय के छ धर्मनायको की उपर्युक्त मान्यताए बोद्धसाहित्य मे अकित की गई है। यह सत्य ह कि ये मान्यताए सर्वांशत प्रामाणिक रूप से नही आई है। बौद्ध साहित्यकारो ने मान्यताओ को देने मे तटस्थता से काम नही लिया है। उदाहरण के रूप मे निर्ग्रन्थ ज्ञातपुत्र के सम्बन्ध मे जो लिखा है, वह सही जानकारी के अभाव मे लिखा

---

३८ भगवान बुद्ध, धर्मानन्द कोसाम्बी, पृ० १८७

३९ भगवान बुद्ध, पृ० १८३

४० दीघनिकाय (हिन्दी अनुवाद), पृ० २१ का सार

गया है अथवा उसमे ज्ञातपुत्र को न्यून दिखाकर बुद्ध को श्रेष्ठ दिखाने का भाव छिपा है। इसी तरह अन्य धर्मनायको के सम्बन्ध मे भी सभव है। तथापि जिन धर्म और धर्मनायको की परम्पराए लुप्त हो चुकी है, उनके विचारो की अस्पष्ट झाकी इस वर्णन से दिख जाती है, इसलिये ये प्रकरण वहुत उपयोगी हे।

भगवान महावीर निग्रंन्थ ज्ञातपुत्र के सम्बन्ध मे प्रामाणिक जानकारी के लिए पुस्तक का दूसरा खण्ड व लेखक की 'महावीर तत्त्वदर्शन' पुस्तक पढे।
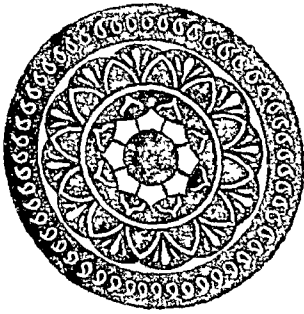
४ भारतीय साहित्य मे भगवान महावीर

* आगम साहित्य
* नियुक्ति साहित्य
* भाष्य साहित्य
* चूर्णि साहित्य
* प्राकृत साहित्य
* सस्कृत साहित्य
* अपभ्रंश साहित्य
* राजस्थानी साहित्य
* आधुनिक साहित्य
* बौद्ध साहित्य

भारतीय साहित्य में भगवान महावीर

प्राचीन इतिहास का परिज्ञान करने के तीन मुख्य साधन है—साहित्य, शिल्प-स्थापत्य और अभिलेख (शिलालेख)। शिल्प-स्थापत्य ओर अभिलेखो से प्राचीन इतिहास जाना जा सकता है, किंतु सिर्फ प्रतीक रूप मे ही। इतिहास का सर्वाङ्ग एव विस्तृत परिज्ञान उन साधनो से नही हो पाता। अत साहित्य ही एक ऐसा साधन है जो प्राचीन इतिहास को स्पष्ट रूप से हमारे समक्ष उजागर कर देता है। यद्यपि प्राचीन साहित्य मे जितना, जैसा वर्णन अपेक्षित है, वैसा प्राप्त नही हो पाता, कही कुछ छूटा हुआ, कही कुछ अति-रजित सा, कही उपमा एव अलकारो मे यथार्थ दबा हुआ और कही यथार्थ अति रूप मे निखरा हुआ मिलता है, अत साहित्य भी वस्तुस्थिति का सही परिज्ञान कराने मे कहाँ तक समर्थ होता है यह एक चितनीय प्रश्न है।

भगवान महावीर का जीवनवृत्त प्राचीन साहित्य मे उपलब्ध होता है, किंतु यह कह पाना कठिन है कि पूरा जीवनवृत्त साहित्य मे आज सुरक्षित है? उनके जीवन की बहुत सी घटनाएँ व अनेक विरल प्रसग शायद साहित्य मे अकित नही किये गये हो, यदि किये गये हो भी तो सुदीर्घ कालप्रवाह मे वे विलुप्तप्राय हो गये। बौद्ध-परम्परा के साहित्य मे तो वह कुछ विकृत भी किया गया है। अत फिर भी महावीर के जीवनवृत्त का काफी साहित्य आज उपलब्ध है। उस जैन साहित्य को परम्परा की दृष्टि से हम दो भागो मे बाट सकते हे—श्वेताम्बर-परम्परा का साहित्य और दिगम्बर-परम्परा का साहित्य।

प्रस्तुत मे हम प्राचीन साहित्य से लेकर आधुनिक साहित्य तक का एक विहगावलोकन कर भगवान महावीर की जीवनगाथा का साहित्यगत मूल्याकन प्रस्तुत कर रहे है। इससे पाठक को दो लाभ होगे, एक तो भगवान महावीर की जीवनकथा का सूत्र किस प्रकार क्रमश विकसित और विस्तृत

होता गया है, अनेक रोचक घटनाए किस प्रकार उसमे जुडती गई या उद्-भावित होती रही हे, यह भी स्पष्ट होगा, दूसरे भगवान महावीर के जीवन पर अब तक कितना विपुल साहित्य लिखा गया है उसका परिचय व एक समीक्षात्मक टिप्पणी भी पाठक को अवलोकन की प्रेरणा देगी।

यहा हम सर्वप्रथम श्वेताम्बर-परम्परा के साहित्य के सम्बन्ध मे चिन्तन करेगे क्योकि वह दिगम्बर साहित्य से अधिक प्राचीन ह और उसमे भगवान महावीर का जीवनवृत्त अधिक रूप मे सुरक्षित हे।

आचारागसूत्र

आचारागसूत्र समग्र जैन आचार की आधार-शिला है। उपलब्ध समग्र जैन साहित्य मे आचाराग का प्रथम श्रुतस्कध प्राचीनतम माना गया है। यह उसकी प्राकृत-भाषा, तन्निष्ठ शैली और तद्गत भावा से सिद्ध भी ह।[1] यह मुख्य रूप से दो श्रुतस्कधो मे विभक्त है। प्रथम गणधर रचित है और द्वितीय स्थविर रचित है।[2] चूर्णिकार ने स्थविर का अर्थ गणधर किया है[3] और वृत्तिकार ने चतुर्दश पूर्ववित् किया है।[4] चूर्णि और वृत्ति मे कही भी नामनिर्देश नही हुआ हे किन्तु अन्यत्र उपलब्ध साक्ष्यो के आधार से यह कहा जा सकता है कि यहा पर स्थविर शब्द चतुर्दशपूर्वी भद्रबाहु के लिए प्रयुक्त हुआ हे।

प्रथम श्रुतस्कध के नौ अध्ययन है। उनमे से नौवे अध्ययन मे भगवान महावीर के श्रमण-जीवन का आदर्श व हृदय-स्पर्शी चित्र खीचा गया है। उनकी कठोरसाधना और तितिक्षा का रोमाचकारी वर्णन इस अध्ययन मे पढने को मिलता है। इस अध्ययन का नाम उपधान श्रुत है। निर्युक्तिकार ने उपधान शब्द की व्याख्या करते हुए बताया है कि तकिया द्रव्य उपधान हे, जिससे शयन करने मे सुविधा प्राप्त होती है और तप भाव उपधान है, जिससे चारित्र पालन मे सहायता प्राप्त होती है। जिस प्रकार जल से मलिन वस्त्र शुद्ध होता है, वैसे ही तप से आत्मा निर्मल बनती है। भगवान महावीर

---

१ प्राकृत और उसका साहित्य, पृ० ४, डा० मोहनलाल मेहता

२ आचाराग निर्युक्ति, गा० २८७

३ थेरा गणधरा।

—आचाराग चूर्णि, पृ० ३२६

४ स्थविरै श्रुतवृद्धैश्चतुर्दशपूर्वविद्भि।

—आचाराग वृत्ति, पत्र २९०

एक आदर्श व महान श्रमण थे। उन्होने अपने श्रमणजीवन मे उग्र तप किया, वैसा ही उग्र तप प्रत्येक श्रमण को करना चाहिए। उसके सामने प्रतिपल, प्रतिक्षण महावीर का तप कर्म आदर्श के रूप मे रहना चाहिए। विशुद्ध तपोमय जीवन ही श्रमण-जीवन का ज्वलत आदर्श है।

प्रस्तुत अध्ययन चार उद्देशक मे विभक्त है। प्रथम उद्देशक मे महावीर की चर्या (विहार) का वर्णन है। द्वितीय मे शैय्या-वसति का उल्लेख है। तृतीय मे परीषह-कष्टो का वर्णन है और चतुर्थ मे आतक-चिकित्सा का उल्लेख है। सामान्य रूप से इन चारो उद्देशको मे तप का समावेश है। यह वर्णन इतना सहज, समीचीन व सरल है कि प्रबुद्ध पाठक पढते-पढते श्रद्धा-विभोर हो जाता है। जब से महावीर अनगार बनते है तभी से उनका विहार प्रारभ हो जाता है।

महावीर ने जब दीक्षा ग्रहण की, तब उनके पास एक देवदूष्य वस्त्र था।[५] वह वस्त्र उन्होने शीतकाल मे शीतनिवारण के लिए नही रखा था अपितु सभी तीर्थंकर एक देवदूष्य के साथ दीक्षा लेते हैं, उस दृष्टि से उन्होने उसे स्वीकार किया था। वह वस्त्र लगभग तेरह मास तक उनके कधे पर पडा रहा पर कभी भी उन्होने उसे ओढने आदि मे उपयोग नही लिया।

दीक्षा के पूर्व महावीर के शरीर पर चन्दनादि का विलेपन किया गया, उसकी सुमधुर सौरभ से आकर्षित होकर चार मास से भी अधिक समय तक विविध प्रकार के जीव-जन्तु उन पर आक्रमण करते रहे, उन्हे कष्ट देते रहे।[६] चलते समय वे पुरुष-प्रमाण मार्ग का अवलोकन करते और अत्यन्त सावधानी पूर्वक चलते। उन्हे देखकर भयभीत बने हुए बालक चीख मार-मार कर आक्रन्दन करते। मार्ग मे उनका कोई अभिवादन करता या मारता, वे किसी को कुछ भी नही कहते, वदन एव बधन सभी को समभाव से सहन करते।[७] उन्हे आख्यान, नृत्य, गीत, दण्डयुद्ध, मुष्टियुद्ध आदि मे किसी भी प्रकार का रस नही था। वे भयकर कष्टो को भी शान्तिपूवक सहन करते।[८] उन्होने दीक्षा लेने से दो वर्ष पूर्व ही सचित्त जल का त्याग कर रखा था।[९] उन्होने यह जान लिया था कि पृथ्वी, पानी, अग्नि, वायु, वनस्पति और त्रसकाय सचित्त है, चेतन युक्त है, अत इन्हे किसी भी प्रकार का कष्ट न हो, इस तरह

---

५ आचाराग १।६।४
६ आचाराग १।१।६।३
७ वही १।१।६।५
८ वही १।१।६।६
९ वही १।१।६।११-१२

वे विचरण करते थे। उन्होने स्वय हिंसा न करने का और दूसरो से हिंसा न करवाने का व्रत ग्रहण कर रखा था। अब्रह्मचर्य सारे पाप का मूल है, यह समझकर उस सयमी पुरुष ने स्त्रियो का सर्वथा परित्याग कर रखा था।[१०] वे अपने निमित्त बने हुए आधाकर्मी आहार आदि का भी सेवन नही करते थे। जिसमे किञ्चिन्मात्र भी पाप की सभावना होती, वैसा कोई भी कार्य वे नही करते और न परपात्र ही काम मे लाते थे।[११] सम्मान और अपमान को छोडकर, अदीन मनस्क होकर भिक्षा के लिए जाते। अशन, पान की मात्रा का पूर्ण ध्यान रखते। रसो मे आसक्त न होकर जो कुछ भी प्राप्त होता वे उसे खा लेते थे।[१२] वे न आखो का प्रमार्जन करते और न शरीर को खुजलाते।[१३] मार्ग मे चलते समय इधर-उधर बहुत कम देखते थे। प्राय मौन रहते, प्रश्न करने पर अल्प उत्तर देते थे।

भगवान महावीर विहार करते हुए गृह, पण्यशाला (दुकान), पालित-स्थान (कारखाना), पलालपुञ्ज (घास की गजी), आगन्तार (अतिथिगृह), आरामागार, श्मशान, शून्यागार, वृक्षमूल, आदि स्थानो पर ठहरते[१४] और अप्रमत्त होकर रात-दिन ध्यान करते। नीद की किंचित् कामना नही करते, नीद आने लगती तो खडे होकर आत्मा को जागरूक करते, नीद आने पर मुहूर्त-पर्यन्त चक्रमण कर लेते।[१५] उन्हे वसति-स्थानो मे सर्प आदि प्राणियो, पक्षियो, दुराचारियो, ग्रामरक्षको, शस्त्रधारियो के द्वारा अनेक प्रकार के कष्ट प्राप्त होते। इहलोक व परलोक सबन्धी विविध प्रकार के भय तथा अनुकूल व प्रतिकूल ऐन्द्रियक विषय उपस्थिति होने पर वे रति-अरति न कर मध्यस्थ होकर सभी कुछ सह लेते।[१६] महावीर जिस समय ध्यानस्थ होते, उस समय कोई आकर उनसे प्रश्न करता, पर वे ध्यानमग्न होने से मौन रहते, जिससे वह क्रुद्ध हो जाता। कभी-कभी वे 'मै भिक्षुक हूँ' ऐसा उत्तर देते।[१७] शिशिर ऋतु मे जब अन्य लोग सन-सनाते पवन से कापते, यहा तक कि अन्य श्रमण अनगार भी पवन-रहित स्थान की अन्वेपणा करते, सघाटी से अपने शरीर को ढकते, कितने ही अग्नि प्रज्वलित कर उससे तापते, उस समय भी खुले स्थान मे रहकर भगवान शीत-सहन करते।[१८]

---

१० आचाराग १।१।६।१७
११ वही १।१।६।१९
१२ वही १।१।६।२०
१३ वही १।१।६।२१
१४ वही १।२।६।२-३
१५ वही १।२।६।५-६
१६ वही १ १

एक आदर्श व महान श्रमण थे। उन्होने अपने श्रमणजीवन मे उग्र तप किया, वैसा ही उग्र तप प्रत्येक श्रमण को करना चाहिए। उसके सामने प्रतिपल, प्रतिक्षण महावीर का तप कर्म आदर्श के रूप मे रहना चाहिए। विशुद्ध तपोमय जीवन ही श्रमण-जीवन का ज्वलत आदर्श है।

प्रस्तुत अध्ययन चार उद्देशक मे विभक्त है। प्रथम उद्देशक मे महावीर की चर्या (विहार) का वर्णन है। द्वितीय मे शैय्या-वसति का उल्लेख है। तृतीय मे परीपह-कष्टो का वर्णन है और चतुर्थ मे आतक-चिकित्सा का उल्लेख है। सामान्य रूप से इन चारो उद्देशको मे तप का समावेश है। यह वर्णन इतना सहज, समीचीन व सरल है कि प्रबुद्ध पाठक पढते-पढते श्रद्धा-विभोर हो जाता है। जब से महावीर अनगार बनते है तभी से उनका विहार प्रारभ हो जाता है।

महावीर ने जब दीक्षा ग्रहण की, तब उनके पास एक देवदूष्य वस्त्र था।[५] वह वस्त्र उन्होने शीतकाल मे शीतनिवारण के लिए नही रखा था अपितु सभी तीर्थंकर एक देवदूष्य के साथ दीक्षा लेते है, उस दृष्टि से उन्होने उसे स्वीकार किया था। वह वस्त्र लगभग तेरह मास तक उनके कधे पर पडा रहा पर कभी भी उन्होने उसे ओढने आदि मे उपयोग नही लिया।

दीक्षा के पूर्व महावीर के शरीर पर चन्दनादि का विलेपन किया गया, उसकी सुमधुर सौरभ से आकर्षित होकर चार मास से भी अधिक समय तक विविध प्रकार के जीव-जन्तु उन पर आक्रमण करते रहे, उन्हे कष्ट देते रहे।[६] चलते समय वे पुरुप-प्रमाण मार्ग का अवलोकन करते और अत्यन्त सावधानी पूर्वक चलते। उन्हे देखकर भयभीत बने हुए बालक चीख मार-मार कर आक्रन्दन करते। मार्ग मे उनका कोई अभिवादन करता या मारता, वे किसी को कुछ भी नही कहते, वदन एव बधन सभी को समभाव से सहन करते।[७] उन्हे आख्यान, नृत्य, गीत, दण्डयुद्ध, मुष्टियुद्ध आदि मे किसी भी प्रकार का रस नही था। वे भयकर कष्टो को भी शान्तिपूवक सहन करते।[८] उन्होने दीक्षा लेने से दो वर्ष पूर्व ही सचित्त जल का त्याग कर रखा था।[९] उन्होने यह जान लिया था कि पृथ्वी, पानी, अग्नि, वायु, वनस्पति और त्रसकाय सचित्त है, चेतन युक्त है, अत इन्हे किसी भी प्रकार का कष्ट न हो, इस तरह

---

५ आचाराग १।६।४
६ आचाराग १।१।६।३
७ वही १।१।६।५
८ वही १।१।६।६
९ वही १।१।६।११-१२

वे विचरण करते थे। उन्होने स्वय हिंसा न करने का और दूसरो से हिंसा न करवाने का व्रत ग्रहण कर रखा था। अब्रह्मचर्य सारे पाप का मूल है, यह समझकर उस सयमी पुरुष ने स्त्रियो का सर्वथा परित्याग कर रखा था।[१०] वे अपने निमित्त बने हुए आधाकर्मी आहार आदि का भी सेवन नही करते थे। जिसमे किञ्चिन्मात्र भी पाप की सभावना होती, वैसा कोई भी कार्य वे नही करते और न परपात्र ही काम मे लाते थे।[११] सम्मान और अपमान को छोडकर, अदीन मनस्क होकर भिक्षा के लिए जाते। अशन, पान की मात्रा का पूर्ण ध्यान रखते। रसो मे आसक्त न होकर जो कुछ भी प्राप्त होता वे उसे खा लेते थे।[१२] वे न आखो का प्रमार्जन करते और न शरीर को खुजलाते।[१३] मार्ग मे चलते समय इधर-उधर बहुत कम देखते थे। प्राय मौन रहते, प्रश्न करने पर अल्प उत्तर देते थे।

भगवान महावीर विहार करते हुए गृह, पण्यशाला (दुकान), पालित-स्थान (कारखाना), पलालपुञ्ज (घास की गजी), आगन्तार (अतिथिगृह), आरामागार, श्मशान, शून्यागार, वृक्षमूल, आदि स्थानो पर ठहरते[१४] और अप्रमत्त होकर रात-दिन ध्यान करते। नीद की किंचित् कामना नही करते, नीद आने लगती तो खडे होकर आत्मा को जागरूक करते, नीद आने पर मुहूर्त-पर्यन्त चक्रमण कर लेते।[१५] उन्हे वसति-स्थानो मे सर्प आदि प्राणियो, पक्षियो, दुराचारियो, ग्रामरक्षको, शस्त्रधारियो के द्वारा अनेक प्रकार के कष्ट प्राप्त होते। इहलोक व परलोक सबन्धी विविध प्रकार के भय तथा अनुकूल व प्रतिकूल ऐन्द्रियक विषय उपस्थिति होने पर वे रति-अरति न कर मध्यस्थ होकर सभी कुछ सह लेते।[१६] महावीर जिस समय ध्यानस्थ होते, उस समय कोई आकर उनसे प्रश्न करता, पर वे ध्यानमग्न होने से मौन रहते, जिससे वह क्रुद्ध हो जाता। कभी-कभी वे 'मैं भिक्षुक हूँ' ऐसा उत्तर देते।[१७] शिशिर ऋतु मे जब अन्य लोग सन-सनाते पवन से कापते, यहा तक कि अन्य श्रमण अनगार भी पवन-रहित स्थान की अन्वेषणा करते, सघाटी से अपने शरीर को ढकते, कितने ही अग्नि प्रज्वलित कर उससे तापते, उस समय भी खुले स्थान मे रहकर भगवान शीत-सहन करते।[१८]

---

१० आचाराग १।१।८।१७
११ वही १।१।८।१८
१२ वही १।१।८।२०
१३ वही १।१।८।२१
१४ वही १।२।८।२-३
१५ वही १।२।८।५-६
१६ वही १।२।८।७-१०
१७ वही १।२।८।११-१२
१८ वही १।२।८।१३-१४-१५

छद्मस्थ काल मे महावीर को यो तो सभी स्थानो पर परीषह सहन करने पडे थे, किन्तु लाढ देश के वज्रभूमि और शुभ्रभूमि नामक दोनो दुश्चर प्रदेशो मे विचरण किया, उस समय उन पर असह्य आपत्तिया आई । वहा के निवासियो ने महावीर को खूब मारा । कितनी हा बार ऐसा भी होता कि गांव के लोग उन्हे मारो-मारो का तुमुलघोप कर के लाठियो, भालो, पत्थरो, मुक्को से मारते, उनके शरीर पर घाव कर देते, धूलि फेकते, उन्हे कुत्तो से कटवाते ।[१९] महावीर अपने शरीर का मोह छोडकर इन उपद्रवो को वीरता-पूर्वक सहन करते । वे उपसर्गो का स्वागत ही नही करते पर कर्मो की निर्जरा करने के लिए नित्य नूतन उपसर्गो को आमत्रित भी करते रहते ।

महावीर ने कभी भी चिकित्सा की कामना नही की । वे अल्पाहार करते थे ।[२०] स्नान सशुद्धि, अभ्यगन, प्रक्षालन, आदि से सदा दूर रहते थे ।[२१] इन्द्रियो के विषय मे उनकी किंचिन्मात्र भी आसक्ति नही थी । वे शीत ऋतु मे छाया मे और ग्रीष्म ऋतु मे धूप मे रहकर ध्यान करते,[२२] ओदन, कुल्माष, आदि रूक्ष पदार्थो का आहार करते ।[२३] कितनी ही बार पन्द्रह दिन, कितनी ही बार महीना और कितनी ही बार बिना पानी और अन्न ग्रहण किये विचरण करते थे । रूखा, सूखा, नीरस जो भी आहार मिलता उसे सहर्ष ग्रहण कर लेते थे ।[२४] वे अपने आहार के लिए न स्वय पाप करते, न दूसरो से करवाते और न करने वाले का अनुमोदन करते । दूसरो के निमित्त बने हुए आहार का अनासक्त भाव से सेवन करते । आहार-गवेषणा के लिए जाते या आते मार्ग मे किन्ही पशु-पक्षियो को कष्ट न हो, इसका पूर्ण ध्यान रखते ।[२५] अपने आहार के लिए किसी ब्राह्मण, श्रमण, भिक्षुक, अतिथि आदि की वृत्ति का उच्छेद न हो, किसी की अप्रीति न हो, किसी को अन्तराय न पहुंचे—इसकी सतत सावधानी रखते थे ।[२६] वे निष्कषाय, अनासक्त और मूर्च्छारहित थे । अप्रमादी थे । वे उकडू, गोदोहासन, वीरासनादि आसनो को साधकर उन पर स्थिर होकर, समाधिस्थ रहकर, ध्यान मे तल्लीन रहते, उस अवस्था मे ऊर्ध्व-अधो-तिर्यक् तीनो लोको का स्वरूप विचारने लगते ।[२७]

---

१९ आचाराग १।३।६।२-३-४
२० वही १।४।६।१
२१ वही १।४।६।२
२२ वही १।४।६।३ ४
२३ वही १।४।६।४
२४ वही १।४।६।५-७
२५ वही १।४।६।८-१०
२६ वही १।४।६।११
२७ वही १।४।६।११

इस प्रकार हम देखते है कि प्रथम श्रुतस्कध मे भगवान महावीर की उत्कृष्ट साधना का आखो देखा नही, पर स्वय भगवान महावीर के श्रीमुख से सुना हुआ वर्णन मिलता है। इसमे उनके जन्म, जन्मस्थली, परिवार आदि पूर्व जीवन के सम्बन्ध मे किंचिन्मात्र भी सूचना नही है।

द्वितीय श्रुतस्कध[२८]

आचाराग के द्वितीय श्रुतस्कध के भावनाध्ययन मे भगवान महावीर का जीवनवृत्त सक्षेप मे उपलब्ध होता है। वे दसवे देवलोक से आए, जन्म हुआ, विवाह हुआ, माता-पिता के स्वर्गस्थ होने पर दीक्षा ग्रहण की। साधना-काल मे विघ्न आए, तीर्थंकर बने, इस प्रकार सामान्य परिचय प्रदान किया गया है। इसमे महावीर के पूर्वभव तथा साधना-काल मे कहा-कहा पर विचरण किया और कहा पर किस प्रकार उपसर्ग उपस्थित हुए, उसका उल्लेख नही है।

सूत्रकृताङ्ग सूत्र

सूत्रकृताङ्ग के छठे अध्ययन मे भगवान महावीर की दिव्य स्तुति प्राप्त होती है। इसलिए इस अध्ययन का नाम वीरस्तव रखा गया है। इसमे २६ गाथाए है। महावीर की यह सबसे प्राचीन स्तुति है। इसमे भगवान महावीर के गुणो का हृदय-ग्राही वर्णन है। इसमे महावीर को हस्तियो मे एरावण, मृगो मे सिह, नदियो मे गगा और पक्षियो मे गरुड की उपमा देते हुए लोक मे सर्वोत्तम बताया गया है।[२६]

स्थानाङ्ग सूत्र

स्थानाग सूत्र की रचना कोश शैली पर हुई है। बौद्धो का अगुत्तर-निकाय भी इसी प्रकार की शैली मे ग्रथित है। इस आगम मे एक से दस स्थान तक का वणन है। यद्यपि इसमे भगवान महावीर का क्रमबद्ध वर्णन नही है, पर पृथक्-पृथक् स्थलो पर महावीर की जीवन-सम्बन्धी सामग्री मिलती है। जैसे बाईस तीर्थंकरो मे से वासुपूज्य, मल्ली, अरिष्टनेमि, पार्श्व और महावीर को कुमारवास मे प्रव्रजित कहा है। महावीर वज्रऋषभ-नाराच सहनन और समचतुरस्र सस्थान से युक्त थे,[३०] तथा सात हाथ ऊचे थे। उनके तीर्थ मे जमाली, तिष्यगुप्त, आषाढ, अश्वमित्र, गग, षड्लक,

---

२८ आचाराग २।३।१५

२६ सूत्रकृताग १।६।२१

३० स्थानाग ७।५६८

रोहगुप्त और गोष्ठामहिल नामक सात निह्नवो की उत्पत्ति हुई ।[31] आठवे अध्ययन मे महावीर ने जिन आठ राजाओ को दीक्षा दी थी उनके नाम—वीरागद, क्षीरयश, सजय, एणेयक, श्वेत, शिव, उदायन, शएव—आय है ।[32] दसवे अध्ययन मे दस आश्चर्यों मे भगवान महावीर के गर्भहरण की घटना है ।[33]

समवायाग सूत्र

इसकी भी सकलना स्थानाग की भाति ही हुई है । इसमे महावीर के ग्यारह गणधरो का[34], माता-पिता के नाम, आयु आदि अनेक बातो का निरूपण है ।[5]

भगवती (व्याख्याप्रज्ञप्ति) सूत्र

भगवती-यह आगम साहित्य मे सबसे अधिक विशाल काय ग्रन्थरत्न है । इसमे अनेक विपयो पर तलस्पर्शी चर्चाए की गई है । इसमे महावीर की जीवन-सम्बन्धी अनेक बातें आई हे । महावीर को वेसालिय और महावीर के श्रावको को 'वेसालिय सावए' कहा है । भगवान पार्श्व के शिष्य गागेय अनगार, कालाश्यवैशिक पुत्र आदि अनेक पार्श्वापत्य अनागार चातुर्याम धर्म को त्याग कर महावीर के पचमहाव्रतो को स्वीकार करते है जिससे महावीर के पूर्व भी निर्ग्रन्थ-धर्म (पार्श्वनाथ-परपरा) का अस्तित्व था, यह सहज ही सिद्ध होता है । गोशालक के कथानक मे महावीर और गोशालक के निकटतम सम्बन्धो पर प्रकाश पडता है ।[3] इसके अतिरिक्त आर्य स्कदक, कात्यायन, माकन्दीपुत्र, विदेह पुत्र (कूणिक), नौ मल्लवी, नौ लिच्छवी, उदयन, मृगावती, जयन्ती आदि महावीर के अनुयायियो के सम्बन्ध मे भी खासी अच्छी जानकारी मिलती है । देवानन्दा के प्रसग मे भगवान महावीर ने एक महत्त्वपूर्ण रहस्य का उद्घाटन किया है कि यह मेरी माता है ।[37] असुरेन्द्र भागकर

---

३१ स्थानाग ७।५८७

३२ वही ८।६२१

३३ वही १०।७७७

३४ समवायाग ४।४

३५ समवायाग १५७।५, ६, ७, ८, ९, १०, ११, १२, १३, १४, १५, १६, १७, १८, १९, २०, २१,

३६ भगवती, शतक १५

३७ भगवती, शतक ९ । उद्देश्य ३३

महावीर की शरण मे गया और शकेन्द्र ने अपने वज्र का उपसहार किया। महाशिला कटक और रथमूसल सग्राम का भी उल्लेख है। इसके अतिरिक्त अन्य अनेक ऐतिहासिक, धार्मिक व दार्शनिक चर्चाए है जिससे महावीर के दिव्य ज्ञान व विराट प्रभावशीलता का सहज ही अनुमान हो जाता है।

ज्ञातृधर्मकथा सूत्र

ज्ञातृधमकथा के प्रथम अध्ययन मे मेघकुमार का वर्णन है, जो राजा श्रेणिक का पुत्र था। उसकी दीक्षा का प्रसग उस युग के महोत्सव की एक सुन्दर व भव्य झाकी प्रस्तुत करता है। सयम-धर्म से विचलित होने पर महावीर उसे पूर्वजन्म का वृत्तान्त बताकर पुन स्थिर करते है।[३८]

उपासकदशा सूत्र

उपासकदशा के दस अध्ययनो मे महावीर के दस उपासको के आचार का विस्तृत वर्णन है। साथ ही उस समय की भोगोपभोग की वस्तुए, जीवन-व्यवहार, आजीविका, गृहस्थजीवन की साधना आदि का भी सुन्दर चित्र चित्रित किया गया है। उपासक आनन्द ने जो व्रत ग्रहण किये है उसमे उस समय की समाज व्यवस्था, जीवन की आवश्यकताए आदि का सुन्दर परिचय दिया गया है। महावीर अपने प्रधान शिष्य गौतम को आनन्द के पास क्षमा-याचना के लिए भेजते है, यह उनकी सत्य-निष्ठा का ज्वलत उदाहरण है।[३९] कामदेव श्रावक की दृढता का रोमाचकारी वर्णन है। महावीर अपने श्रमणो को कहते है कि उपसर्ग आने पर तुम्हे भी कामदेव की तरह स्थिर रहना चाहिए।[४०] कुम्भकार सद्दालपुत्र के प्रसग मे मखलिगोशालक महावीर को महाब्राह्मण, महागोप, महासार्थवाह, महाधर्मकथक और महानियामक शब्दो द्वारा सम्बोधित करता है।[४१] महावीर और गोशालक के मुख्य सिद्धान्तो मे जो अन्तर था, उसका भी इसमे स्पष्ट निदर्शन है।

अन्तकृद्दशा सूत्र

अन्तकृद्दशा के छठे वर्ग मे अर्जुनमाली का वर्णन है। अर्जुनमाली

---

३८ ज्ञातृधर्मकथा १।१।

३९ उपासकदशा १

४० उपासकदशा २।२३ सुत्तागमे

४१ उपासकदशा ७।५६ सुत्तागमे

जैसे क्रूर हत्यारे को भगवान ने दीक्षा प्रदान कर उसके जीवन की तस्वीर बदल दी।[४२]

अतिमुक्तकुमार जैसे बाल राजकुमार को महावीर दीक्षा प्रदान करते है[४३], जिसकी उम्र भगवती सूत्र की टीका के अनुसार सिर्फ छ. वर्ष की थी, जिसने साधना कर निर्वाण प्राप्त किया था।

अनुत्तरोपपातिक सूत्र

अनुत्तरोपपातिक के वर्णन के अनुसार राजा श्रेणिक की रानी धारणी के सात पुत्र, चेलणा के दो पुत्र और नन्दा के अभयकुमार आदि प्रतिभा सम्पन्न राजकुमारो ने महावीर के पास दीक्षा ग्रहण की और उत्कृष्ट साधना कर अनुत्तर विमान मे गये।[४४] इस मे महावीर के शिष्य धन्ना अनगार के उग्र तप का रोमाचकारी वर्णन भी है। उग्र तप से उनका शरीर अत्यन्त कृश हो गया था। महावीर ने उनके महान तप की प्रशसा राजा श्रेणिक के सामने की थी।[४५]

विपाक सूत्र

इसमे पाप और पुण्य के विपाक का मुख्य रूप से वर्णन है। गणधर गौतम बहुत से दु खी व सुखी लोगो को देखकर महावीर से प्रश्न करते है और महावीर दु ख और सुख के कारणो पर विशेष रूप से प्रकाश डालते है। मृगापुत्र का जीवनवृत्त बडा ही हृदयद्रावक है। महावीर की आज्ञा लेकर गणधर गौतम उसे देखने जाते है।[४६] राजकुमार सुबाहु महावीर के उपदेश से द्वादश व्रत ग्रहण करता है।[४७] इत्यादि कई प्रसग महावीर से सम्बन्धित है।

औपपातिक सूत्र

अग साहित्य के पश्चात् उपाङ्ग साहित्य आता है। औपपातिक सूत्र प्रथम उपाङ्ग है। इसमे चम्पानगरी, पूर्णभद्र चैत्य, श्रेणिक के पुत्र कोणिक,

---

४२ अन्तकृद्दशा वर्ग ६ अ० ३

४३ वही, वर्ग ६ अ० १५

४४ अनुत्तरोपपातिक, वर्ग १, २

४५ अनुत्तरोपपातिक, वर्ग ३, अ १

४६ विपाकसूत्र १।१

४७ विपाकसूत्र २।१

उनकी रानियो तथा भगवान महावीर के समवसरण मे राजा कौणिक का सपरिवार वन्दन के लिए आगमन आदि वर्णन है। भगवान महावीर की दिव्य और भव्य शरीराकृति का जो शब्दचित्र प्रस्तुत किया गया है, वह अन्यत्र दुर्लभ है।[४८] साथ ही महावीर के युग के तापसो के नियमो व तपो की सुन्दर जानकारी भी प्राप्त होती है।

राजप्रश्नीय सूत्र

इसके प्रथम भाग मे सूर्याभदेव के विमान का विस्तृत वर्णन है। सूर्याभदेव अपने परिवार सहित महावीर के दर्शनार्थ आता है। उस समय महावीर आमलकप्पा नगरी मे विराजमान थे। धर्मश्रवण के पश्चात् महावीर के सामने वह बत्तीस प्रकार के नाटक प्रस्तुत करता है। जिसमे अन्तिम नाटक मे भगवान महावीर के च्यवन से निर्वाण तक के जीवन-प्रसग का अभिनय दिखाता है, जो महत्त्वपूर्ण है।[४९]

निरयावलिया सूत्र

निरियावलिया मे राजा श्रेणिक की रानी काली, सुकाली आदि, उनके पुत्र और पुत्र-वधुओ तथा महाराजा कूणिक तथा चेटक के महायुद्ध का ऐतिहासिक वर्णन है।[५०] महावीर के युग का यह सबसे बडा युद्ध था।

कल्पावतसिका

निरयावलिया का ही यह दूसरा वर्ग है, इसमे महाराजा श्रेणिक के दस पुत्रो, दस प्रपौत्रो का प्रभु के पास दीक्षा ग्रहण व सौधर्म कल्प मे उत्पन्न होने का वर्णन है।[५१]

पुष्पिका

इसमे चन्द्र नामक इन्द्र महावीर को वन्दन के लिए आया, नाट्य विधि की।

उत्तराध्ययन सूत्र

उत्तराध्ययन सूत्र महावीर की अन्तिम वाणी के रूप मे प्रसिद्ध है। इसमे केशी-गौतम का ऐतिहासिक सम्वाद है, जो पार्श्वनाथ की परम्परा को

---

४८ औपपातिक सूत्र १

४९ राजप्रश्नीय

५० निरयावलिया सटीक पत्र-६-१

५१ कल्पावतसिका

छोडकर महावीर के सघ मे मिलते है।[५२] इसके अतिरिक्त भी अनेक बाते महावीर के जीवन प्रसगो से सम्बन्धित है। भगवान महावीर के उपदेश-वचनो का तो यह महासागर ही है।

नन्दी सूत्र

नन्दी सूत्र के प्रारभ मे महावीर की बहुत ही ललित भापा मे स्तुति की गई है।[५३] साथ ही स्थविरावली दी गई हे जो ऐतिहासिक दृष्टि से बहुत ही महत्त्व की है।

दशाश्रुतस्कध (कल्पसूत्र)

दशाश्रुतस्कध के आठवें अध्ययन मे श्रमण भगवान महावीर का च्यवन, जन्म, सहरण, दीक्षा, केवलज्ञान और मोक्ष का विस्तृत वर्णन है। इसी का दूसरा नाम **पज्जोसणाकप्प या कल्पसूत्र** है।[५४] आचाराग के द्वितीय श्रुतस्कध मे जिस प्रकार महावीर का जीवनवृत्त आया है, उससे भी अधिक विस्तार के साथ इसमे है। दूसरी विशेपता यह है कि आचाराग मे केवल महावीर के जीवन का ही वर्णन है तो इसमे अन्य तेईस तीर्थकरो का भी वर्णन हे। चौबीस तीर्थकरो के वर्णन के साथ महावीर का वर्णन सर्वप्रथम इसमे आया है। परन्तु यह स्मरण रखना चाहिए कि गर्भपरिवर्तन, जन्म, तीस वर्ष गृहस्थाश्रम, साधनाकाल मे अनेक उपसर्ग सहन किये, यह तो उल्लेख है, पर वे उपसर्ग कौन-से थे, यह उल्लेख नही है। तप का वर्णन है, पर कब, कितना तप किया यह वर्णन नही है। इस प्रकार आचाराग के द्वितीय श्रुतस्कध मे जो रेखाये प्रस्तुत की गई थी, उसमे रग भरने का कार्य इसमे पूर्ण नही हुआ।

इस पर जिनप्रभ, धर्मसागर, विनयविजय, समयसुन्दर, रत्नसागर, सघविजय, लक्ष्मीवल्लभ आदि अनेक आचार्यो ने टीकाये लिखी है, जिनमे महावीर के जीवन को अत्यधिक पल्लवित व पुष्पित किया है।[५५] पर्युपण के पुण्य पलो मे कल्पसूत्र को प्रवचन मे सुनाने की भी परम्परा है।

५२ उत्तराध्ययन अ २३

५३ नन्दी मगलाचरण

५४ देखिये लेखक द्वारा सम्पादित 'कल्पसूत्र'

५५ लेखक की 'साहित्य और सस्कृति' पुस्तक मे 'कल्पसूत्र और उसकी टीकाये' लेख देखे।

निर्युक्ति साहित्य

मूल ग्रन्थो पर व्याख्यात्मक साहित्य लिखने की परम्परा बहुत प्राचीन है। जैसे वैदिक परम्परा मे पारिभाषिक शब्दो की व्याख्या करने के लिए यास्क महर्षि ने निघण्टुभाष्य रूप निरुक्त लिखा वैसे ही जैन आगमो के पारिभाषिक शब्दो की व्याख्या करने के लिए आचार्य भद्रबाहु ने प्राकृत-पद्य मे निर्युक्तियो की रचना की। निर्युक्ति की व्याख्या-पद्धति प्राचीन है। शैली सूत्रात्मक एव पद्यमय है।

आवश्यक निर्युक्ति[1]

आचार्य भद्रबाहु ने दस निर्युक्तियो की रचना की है, उसमे आवश्यक निर्युक्ति का प्रथम स्थान है। इसमे अनेक महत्त्वपूर्ण विषयो पर विस्तृत और व्यवस्थित चर्चायें की गई है। प्राचीन जैन इतिहास को व्यवस्थित रूप से प्रस्तुत करने का यह सबसे पहला और प्रामाणिक प्रयत्न हुआ है। इसमे सर्वप्रथम भगवान महावीर का मिथ्यात्वादि से निर्गम — निकलना कैसे हुआ, इस जिज्ञासा के समाधान मे भगवान महावीर के पूर्वभवो की चर्चा प्रारभ होती है। इतना ही नही, भगवान ऋषभदेव के युग से भी पहले होने वाले कुलकरो की चर्चा प्रारभ हो जाती है, अन्तिम कुलकर नाभि के पुत्र ऋषभदेव हुए। ऋषभदेव के जीवन पर विस्तार से प्रकाश डाला गया और साथ ही अन्य सभी तीर्थंकरो के चरित्र की ओर सकेत किया गया।

भगवान महावीर के पूर्व भवो का वर्णन सर्वप्रथम इसी ग्रन्थ मे हुआ है। समवायाग मे पूर्व भवो का कुछ उल्लेख आया है किन्तु निर्युक्ति की तरह सत्ताईस भवो का नही। महावीर के जीवन से सम्बन्ध रखने वाली निम्न-लिखित तेरह घटनाओ का निर्देश इसमे मिलता है —

(१) स्वप्न
(२) गर्भापहार
(३) अभिग्रह
(४) जन्म
(५) अभिषेक
(६) वृद्धि
(७) जातिस्मरण ज्ञान
(८) भयोत्पादन
(९) विवाह
(१०) अपत्य
(११) दान
(१२) सम्बोधि
(१३) महाभिनिष्क्रमण[2]

---

१ मलयगिरिवृत्ति सहित आगमोदय समिति बम्बई से प्रकाशित।

२ गाथा ४५६

छोडकर महावीर के सघ मे मिलते है।[५२] इसके अतिरिक्त भी अनेक बाते महावीर के जीवन प्रसगो से सम्बन्धित हे। भगवान महावीर के उपदेश-वचनो का तो यह महासागर ही है।

नन्दी सूत्र

नन्दी सूत्र के प्रारभ मे महावीर की बहुत ही ललित भाषा मे स्तुति की गई है।[५३] साथ ही स्थविरावली दी गई है जो ऐतिहासिक दृष्टि से बहुत ही महत्त्व की है।

दशाश्रुतस्कध (कल्पसूत्र)

दशाश्रुतस्कध के आठवे अध्ययन मे श्रमण भगवान महावीर का च्यवन, जन्म, सहरण, दीक्षा, केवलज्ञान और मोक्ष का विस्तृत वर्णन है। इसी का दूसरा नाम **पज्जोसणाकप्प** या **कल्पसूत्र** है।[५४] आचाराग के द्वितीय श्रुतस्कध मे जिस प्रकार महावीर का जीवनवृत्त आया है, उससे भी अधिक विस्तार के साथ इसमे है। दूसरी विशेपता यह है कि आचाराग मे केवल महावीर के जीवन का ही वर्णन है तो इसमे अन्य तेईस तीर्थकरो का भी वर्णन हे। चौबीस तीर्थकरो के वर्णन के साथ महावीर का वर्णन सर्वप्रथम इसमे आया है। परन्तु यह स्मरण रखना चाहिए कि गर्भपरिवर्तन, जन्म, तीस वर्ष गृहस्थाश्रम, साधनाकाल मे अनेक उपसर्ग सहन किये, यह तो उल्लेख है, पर वे उपसर्ग कौन-से थे, यह उल्लेख नही है। तप का वर्णन है, पर कब, कितना तप किया यह वर्णन नही है। इस प्रकार आचाराग के द्वितीय श्रुतस्कध मे जो रेखाये प्रस्तुत की गई थी, उसमे रग भरने का कार्य इसमे पूर्ण नही हुआ।

इस पर जिनप्रभ, धर्मसागर, विनयविजय, समयसुन्दर, रत्नसागर, सघविजय, लक्ष्मीवल्लभ आदि अनेक आचार्यो ने टीकाये लिखी है, जिनमे महावीर के जीवन को अत्यधिक पल्लवित व पुष्पित किया है।[५५] पर्युपण के पुण्य पलो मे कल्पसूत्र को प्रवचन मे सुनाने की भी परम्परा है।

---

५२ उत्तराध्ययन अ २३

५३ नन्दी मगलाचरण

५४ देखिये लेखक द्वारा सम्पादित 'कल्पसूत्र'

५५ लेखक की 'साहित्य और सस्कृति' पुस्तक मे 'कल्पसूत्र और उसकी टीकाये' लेख देखे।

निर्युक्ति साहित्य

मूल ग्रन्थो पर व्याख्यात्मक साहित्य लिखने की परम्परा बहुत प्राचीन है। जैसे वैदिक परम्परा मे पारिभाषिक शब्दो की व्याख्या करने के लिए यास्क महर्षि ने निघण्टुभाष्य रूप निरुक्त लिखा वैसे ही जैन आगमो के पारिभाषिक शब्दो की व्याख्या करने के लिए आचार्य भद्रबाहु ने प्राकृत-पद्य मे निर्युक्तियो की रचना की। निर्युक्ति की व्याख्या-पद्धति प्राचीन है। शैली सूत्रात्मक एव पद्यमय है।

आवश्यक निर्युक्ति[1]

आचार्य भद्रबाहु ने दस निर्युक्तियो की रचना की है, उनमे आवश्यक निर्युक्ति का प्रथम स्थान है। इसमे अनेक महत्त्वपूर्ण विषयो पर विस्तृत और व्यवस्थित चर्चाये की गई है। प्राचीन जैन इतिहास को व्यवस्थित रूप से प्रस्तुत करने का यह सबसे पहला और प्रामाणिक प्रयत्न हुआ है। इसमे सर्वप्रथम भगवान महावीर का मिथ्यात्वादि से निर्गम — निकलना कैसे हुआ, इस जिज्ञासा के समाधान मे भगवान महावीर के पूर्वभवो की चर्चा प्रारभ होती है। इतना ही नही, भगवान ऋषभदेव के युग से भी पहले होने वाले कुलकरो की चर्चा प्रारभ हो जाती है, अन्तिम कुलकर नाभि के पुत्र ऋषभदेव हुए। ऋषभदेव के जीवन पर विस्तार से प्रकाश डाला गया और साथ ही अन्य सभी तीर्थंकरो के चरित की ओर सकेत किया गया।

भगवान महावीर के पूर्व भवो का वर्णन सर्वप्रथम इसी ग्रन्थ मे हुआ है। समवायाग मे पूर्व भवो का कुछ उल्लेख आया है किन्तु निर्युक्ति की तरह सत्ताईस भवो का नही। महावीर के जीवन से सम्बन्ध रखने वाली निम्न-लिखित तेरह घटनाओ का निर्देश इसमे मिलता है —

(१) स्वप्न
(२) गर्भापहार
(३) अभिग्रह
(४) जन्म
(५) अभिषेक
(६) वृद्धि
(७) जातिस्मरण ज्ञान
(८) भयोत्पादन
(९) विवाह
(१०) अपत्य
(११) दान
(१२) सम्बोधि
(१३) महाभिनिष्क्रमण[2]

---

१ मलयगिरिवृत्ति सहित आगमोदय समिति बम्बई से प्रकाशित।

२ गाथा ४५९

देवानन्दा द्वारा चौदह स्वप्नदर्शन, हरिनैगमेषी द्वारा गर्भ परिवर्तन, सातवे मास मे प्रतिज्ञा लेना 'मैं माता-पिता के जीवित रहते श्रमण नही बनूँगा,' जन्म होने पर देवो द्वारा जन्माभिषेक किया जाना।[३] माता-पिता के स्वर्ग-गमन के पश्चात् महावीर का श्रमण-धर्म अगीकार करना।[४] इस अवस्था मे अनेक विकट परीषह सहन करना। पाच प्रतिज्ञाएँ करना।[५] उन पाँचो प्रतिज्ञाओ का पूर्ण रूप से पालन करते हुए अनेक स्थानो मे भ्रमण करते रहना। अन्त मे केवलज्ञान की प्राप्ति करना—यह सब वर्णन उक्त ग्रथ मे है।[६]

केवलज्ञान की प्राप्ति के बाद भगवान मध्यमा पापा के महसेन उद्यान मे पहुँचे। वहा पर द्वितीय समवसरण लगा। इसी स्थान पर सोमिलार्य नामक ब्राह्मण ने विशाल यज्ञ का आयोजन कर रखा था।

इस यज्ञवाटिका मे भावी गणधर—

(१) इन्द्रभूति, (७) मौर्यपुत्र
(२) अग्निभूति (८) अकपित
(३) वायुभूति (९) अचलभ्राता
(४) व्यक्त (१०) मेतार्य
(५) सुधर्मा (११) प्रभास
(६) मडिक

आये हुए थे।[७] उनके मन मे क्रमश निम्नलिखित शकाए थी[८]—

(१) जीव का अस्तित्व (७) देवो का अस्तित्व
(२) कर्म का अस्तित्व (८) नरक का अस्तित्व
(३) जीव और शरीर का अभेद (९) पुण्य-पाप
(४) भूतो का अस्तित्व (१०) परलोक की सत्ता
(५) इहभव परभव सादृश्य (११) निर्वाण सिद्धि।
(६) बध-मोक्ष

जब यज्ञवाटिका के विज्ञो को यह ज्ञात हुआ कि देवतासमूह हमारे यज्ञ से

---

३ ये गाथाए मूल निर्युक्ति मे नही है।
४ गाथा ४६०-४६१
५ गाथा ४६३-४६४
६ गाथा-५२७
७ गाथा ५९४-५९५
८ गाथा ५९७

आकर्षित होकर नही आ रहा है, अपितु भगवान महावीर की महिमा से खिचकर आ रहा है तब अभिमानी इन्द्रभूति अमर्ष के साथ महावीर के पास पहुँचे। भगवान ने नाम लेकर सम्बोधित किया। इन्द्रभूति का सशय दूर हुआ। अपने पाँचसौ शिष्यो के साथ दीक्षित हो गये। इसी प्रकार अन्य गणधरो ने भी क्रमश भगवान से दीक्षा ली।[९] इन गणधरो के जन्म, गोत्र, माता पिता आदि का वर्णन भी ग्रन्थकार ने किया है।[१०]

इस प्रकार हम देखते है कि महावीर के सत्ताइस पूर्वभवो का वर्णन, उपसर्गों की विविध घटनाए, गणधरो की शकाए और उनके समाधान का जो वर्णन आचाराग व कल्पसूत्र मे नही हुआ वह वर्णन सर्वप्रथम आवश्यक-नियुक्ति मे हुआ है। आगम साहित्य की अपेक्षा महावीर की कथा का इसमे कुछ अधिक विकास किया गया है।

आगमप्रभावक पुण्यविजय जी आदि विद्वानो का मन्तव्य है कि वर्तमान मे जिस रूप मे नियुक्तिया उपलब्ध है, उनका रचना-काल विक्रम सवत् ५००-६०० के बीच मे है।[११]

आवश्यकनियुक्ति पर अनेक टीकाए लिखी गई है। उनमे से निम्न-लिखित टीकाए प्रकाशित हो चुकी है—

(१) मलयगिरिवृत्ति-आगमोदय समिति बम्बई तथा देवचन्द्र लाल-भाई जैन पुस्तकोद्धार सूरत।

(२) हरिभद्रकृत वृत्ति-आगमोदय समिति बम्बई।

(३) मलधारी हेमचन्द्र कृत प्रदेश व्याख्या तथा चन्द्रसूरिकृत प्रदेश व्याख्या टिप्पण - देवचन्द्र लालभाई जैन पुस्तकोद्धार समिति बम्बई।

(४) जिनभद्रकृत विशेषावश्यक भाष्य तथा उसकी मलधारी हेमचन्द्र कृत टीका यशोविजय जैन ग्रन्थमाला, बनारस।

(५) माणिक्यशेखर कृत आवश्यक नियुक्ति-दीपिका—विजयदान सूरीश्वर, सूरत।

(६) कोट्याचार्यकृत विशेषावश्यक भाष्य विवरण—ऋषभदेवजी केशरीमलजी श्वेताम्बर सस्थान, रतलाम।

---

९ गाथा ५९९-६४२

१० गाथा ६४३-६६०

११ जैन साहित्य का बृहद् इतिहास, भाग-३, पृ० ७०

देवानन्दा द्वारा चौदह स्वप्नदर्शन, हरिनैगमेषी द्वारा गर्भ परिवर्तन, सातवे मास मे प्रतिज्ञा लेना 'मैं माता-पिता के जीवित रहते श्रमण नही बनूँगा,' जन्म होने पर देवो द्वारा जन्माभिषेक किया जाना।[३] माता-पिता के स्वर्ग-गमन के पश्चात् महावीर का श्रमण-धर्म अगीकार करना।[४] इस अवस्था मे अनेक विकट परीषह सहन करना। पाच प्रतिज्ञाएँ करना।[५] उन पाँचो प्रतिज्ञाओ का पूर्ण रूप से पालन करते हुए अनेक स्थानो मे भ्रमण करते रहना। अन्त मे केवलज्ञान की प्राप्ति करना—यह सब वर्णन उक्त ग्रथ मे है।[६]

केवलज्ञान की प्राप्ति के बाद भगवान मध्यमा पापा के महसेन उद्यान मे पहुँचे। वहा पर द्वितीय समवसरण लगा। इसी स्थान पर सोमिलार्य नामक ब्राह्मण ने विशाल यज्ञ का आयोजन कर रखा था।

इस यज्ञवाटिका मे भावी गणधर—

(१) इन्द्रभूति,
(२) अग्निभूति
(३) वायुभूति
(४) व्यक्त
(५) सुधर्मा
(६) मडिक
(७) मौर्यपुत्र
(८) अकपित
(९) अचलभ्राता
(१०) मेतार्य
(११) प्रभास

आये हुए थे।[७] उनके मन मे क्रमश निम्नलिखित शकाए थी[८]—

(१) जीव का अस्तित्व
(२) कर्म का अस्तित्व
(३) जीव और शरीर का अभेद
(४) भूतो का अस्तित्व
(५) इहभव परभव सादृश्य
(६) बध-मोक्ष
(७) देवो का अस्तित्व
(८) नरक का अस्तित्व
(९) पुण्य-पाप
(१०) परलोक की सत्ता
(११) निर्वाण सिद्धि।

जब यज्ञवाटिका के विज्ञो को यह ज्ञात हुआ कि देवतासमूह हमारे यज्ञ से

---

३ ये गाथाए मूल निर्युक्ति मे नही है।
४ गाथा ४६०-४६१
५ गाथा ४६३-४६४
६ गाथा-५२७
७ गाथा ५९४-५९५
८ गाथा ५९७

विशेषावश्यक भाष्य को तीनो भाष्यो का प्रतिनिधि माना जा सकता है। यह भाष्य सम्पूर्ण आवश्यक सूत्र पर न होकर प्रथम सामायिक अध्ययन पर ही है। विशेषावश्यक भाष्य के रचयिता जिनभद्रगणी क्षमाश्रमण है।

विशेषावश्यक भाष्य एक ऐसा ग्रन्थरत्न है जिसमे जैन आगमो मे वर्णित सभी महत्त्वपूर्ण विषयो की चर्चा की गई है। इस ग्रन्थ की सबसे महत्त्वपूर्ण विशेषता यह है कि इसमे जैन तत्त्वज्ञान का निरूपण केवल जैनदृष्टि से न होकर अन्य दार्शनिक मान्यताओ की तुलना के साथ हुआ है। आगमो की मान्यताओ का जैसा तर्कपुरस्सर निरूपण इस ग्रन्थ मे हुआ है वैसा अन्यत्र देखने को नही मिलता। प्रस्तुत ग्रन्थ मे भगवान महावीर तथा ग्यारह प्रमुख ब्राह्मण पण्डितो के बीच विभिन्न दार्शनिक विषयो पर चर्चाए हुई तथा भगवान के मन्तव्यो से प्रभावित होकर उन महान् पण्डितो ने महावीर के सघ मे सम्मिलित होना स्वीकार किया, इसकी इसमे विस्तृत व तर्कयुक्त चर्चा है। जिसमे दार्शनिक युग के प्राय समस्त विषयो का समावेश है। यह चर्चा सर्वप्रथम इस ग्रन्थ मे हुई है। निर्युक्ति मे जिस चर्चा के बीज थे उसीने इसमे विराट वृक्ष का रूप धारण किया। उत्तरवर्ती साहित्य मे जो गणधरवाद की चर्चा है, उसका मूल उद्गमस्थल भी यही है।

चूर्णिसाहित्य

आगमो की प्राचीनतम पद्यात्मक व्याख्याए निर्युक्तियो और भाष्यो के रूप मे प्रसिद्ध है। उनकी भाषा प्राकृत है। पद्यात्मक व्याख्याओ के बाद गद्यात्मक व्याख्याए लिखी गई। ये व्याख्याए प्राकृत अथवा सस्कृत-मिश्रित प्राकृत मे लिखी गई।

आवश्यक चूर्णि[1]

आवश्यक चूर्णि मे भगवान महावीर के पूर्वभव तथा उनके जीवन से सम्बन्धित निम्न घटनाओ का विस्तृत वर्णन किया गया है। धैर्यपरीक्षा, विवाह, अपत्य, दान, सम्बोध, लोकान्तिकागमन, इन्द्रागमन, दीक्षामहोत्सव, उपसर्ग, इन्द्र-प्रार्थना, अभिग्रह-पचक, अच्छदक वृत्त, चण्डकौशिक वृत्त, गोशालक वृत्त, सगमककृत-उपसर्ग, देवीकृत-उपसर्ग, वैशाली आदि मे विहार,

१ श्री ऋषभदेवजी केशरीमल जी श्वेताम्बर सस्था रतलाम

(७) जिनदासगणिमहत्तर कृत चूर्णि—ऋषभदेवजी केशरीमलजी श्वेताम्बर सस्थान, रतलाम।

(८) विशेपावश्यक भाष्य की जिनभद्र कृत स्वोपज्ञवृत्ति—लालभाई, दलपतभाई विद्यामन्दिर अहमदाबाद।

इन सभी वृत्तियो मे आवश्यक निर्युक्ति मे जो महावीर-कथा आई है, उसका कुछ और अधिक विस्तार किया गया है।

भाष्यसाहित्य

आगमो की प्राचीनतम पद्यात्मक टीकाए निर्युक्तियो के रूप मे विश्रुत है। निर्युक्तियो की व्याख्यान-शैली अत्यन्त गूढ और सक्षिप्त है, उसमे विस्तार कम है पर पारिभापिक शब्दो की व्याख्या मुख्य है। निर्युक्तियो के गूढार्थ को स्पष्ट करने के लिए उत्तरवर्ती आचार्यो ने नियुक्तियो के आधार पर या स्वतत्ररूप से जो पद्यात्मक व्याख्याए लिखी, वे भाष्य के रूप मे प्रसिद्ध है। नियुक्तियो की तरह भाष्य भी प्राकृत मे ही है।

विशेषावश्यक भाष्य

आवश्यक सूत्र पर तीन भाष्य लिखे गए है।

(१) मूलभाष्य,

(२) भाष्य,

(३) विशेपावश्यक भाष्य।[1]

प्रथम दो भाष्य बहुत ही सक्षिप्त रूप से लिखे गये है और उनकी अनेक गाथाए विशेषावश्यक भाष्य मे सम्मिलित भी कर ली गई। इस तरह

---

१ (क) शिष्यहिताख्य बहद्‌वृत्ति (मलधारी हेमचन्द्र कृत) यशोविजय जैन ग्रन्थ-माला, बनारस।

(ख) गुजराती अनुवाद-आगमोदय समिति बम्बई।

(ग) विशेपावश्यक गाथा नामक्रमादि क्रम, तथा विशेपावश्यक विपयाणा-मनुक्रम आगमोदय समिति, बम्बई।

(घ) स्वोपेज्ञवृत्तिसहित (तीन भाग) लालभाई दलपतभाई भारतीय सस्कृति विद्यामदिर, अहमदाबाद।

विशेपावश्यक भाष्य को तीनो भाष्यो का प्रतिनिधि माना जा सकता है। यह भाष्य सम्पूर्ण आवश्यक सूत्र पर न होकर प्रथम सामायिक अध्ययन पर ही है। विशेपावश्यक भाष्य के रचयिता जिनभद्रगणी क्षमाश्रमण है।

विशेषावश्यक भाष्य एक ऐसा ग्रन्थरत्न है जिसमे जैन आगमो मे वर्णित सभी महत्त्वपूर्ण विपयो की चर्चा की गई है। इस ग्रन्थ की सबसे महत्त्वपूर्ण विशेषता यह है कि इसमे जैन तत्त्वज्ञान का निरूपण केवल जैनदृष्टि से न होकर अन्य दार्शनिक मान्यताओ की तुलना के साथ हुआ है। आगमो की मान्यताओ का जैसा तर्कपुरस्सर निरूपण इस ग्रन्थ मे हुआ है वैसा अन्यत्र देखने को नही मिलता। प्रस्तुत ग्रन्थ मे भगवान महावीर तथा ग्यारह प्रमुख ब्राह्मण पण्डितो के बीच विभिन्न दार्शनिक विपयो पर चर्चाए हुई तथा भगवान के मन्तव्यो से प्रभावित होकर उन महान् पण्डितो ने महावीर के सघ मे सम्मिलित होना स्वीकार किया, इसकी इसमे विस्तृत व तर्कयुक्त चर्चा है। जिसमे दार्शनिक युग के प्राय समस्त विपयो का समावेश है। यह चर्चा सर्वप्रथम इस ग्रन्थ मे हुई है। निर्युक्ति मे जिस चर्चा के बीज थे उसीने इसमे विराट् वृक्ष का रूप धारण किया। उत्तरवर्ती साहित्य मे जो गणधरवाद की चर्चा है, उसका मूल उद्‌गमस्थल भी यही है।

चूर्णिसाहित्य

आगमो की प्राचीनतम पद्यात्मक व्याख्याए निर्युक्तियो और भाष्यो के रूप मे प्रसिद्ध है। उनकी भापा प्राकृत है। पद्यात्मक व्याख्याओ के बाद गद्यात्मक व्याख्याए लिखी गई। ये व्याख्याए प्राकृत अथवा सस्कृत-मिश्रित प्राकृत मे लिखी गई।

आवश्यक चूर्णि[1]

आवश्यक चूर्णि मे भगवान महावीर के पूर्वभव तथा उनके जीवन से सम्बन्धित निम्न घटनाओ का विस्तृत वर्णन किया गया है। धैर्यपरीक्षा, विवाह, अपत्य, दान, सम्बोध, लोकान्तिकागमन, इन्द्रागमन, दीक्षामहोत्सव, उपसर्ग, इन्द्र-प्रार्थना, अभिग्रह-पचक, अच्छदक वृत्त, चण्डकौशिक वृत्त, गोशालक वृत्त, सगमकक्कृत-उपसर्ग, देवीकृत-उपसर्ग, वैशाली आदि मे विहार,

---

१ श्री ऋषभदेवजी केशरीमल जी श्वेताम्बर सस्था रतलाम

चन्दनबालावृत्त, गोपकृत शलाकोपसर्ग, केवलोत्पत्ति, समवशरण, गणधर-दीक्षा आदि। देवीकृत उपसर्ग का वर्णन करते हुए आचार्य न देवियो के रूप-लावण्य का सफल चित्रण किया है। भगवान महावीर के देह वर्णन मे भी आचार्य ने अपना साहित्य-कौशल दिखाया है। इस प्रकार पूर्वग्रन्थो की अपेक्षा इसमे कुछ अधिक विस्तार हुआ है। शैली का परिष्कार व साहित्यिक छटा भी निखरी है।

प्राकृत काव्य-साहित्य

चउप्पन्न-महापुरिस चरिय[1]

जैन साहित्य मे महापुरुषो को शलाका पुरुष अर्थात् युग के विशिष्ट गणनीय पुरुष कहा गया है। इस सम्बन्ध मे दो विचारधाराए है, एक प्रति-वासुदेवो के साथ गणना कर ६३ शलाका पुरुप मानती है और दूसरी प्रति-वासुदेवो की गणना स्वतत्र रूप से मानकर ५४ शलाका पुरुप। प्रस्तुत ग्रन्थ विशालकाय है। इसमे ५४ शलाका पुरुपो के जीवनवृत्त ग्रथित है। इसके रचयिता श्री शीलकाचार्य है। ये निर्वृत्तिकुलीन मानदेवसूरि के शिष्य थे। इनके दूसरे नाम शीलाचार्य और विमलमति भी उपलब्ध होते है। आचार्य पद प्राप्त करने के पूर्व एव उसके पश्चात् ग्रन्थकार का नाम क्रमश विमलमति और शीलाचार्य रहा होगा, ऐसा ज्ञात होता है कि शीलाङ्क ग्रन्थकार का उपनाम है। ग्रन्थ के अन्त मे जो प्रशस्ति है उससे भी इनके समय पर कोई प्रकाश नही पडता। विद्वानो ने अनेक प्रमाणो के आधार से इनका रचनाकाल ई० सन् ८६८ निर्धारित किया है।

इस ग्रन्थ मे दूसरे महावीर चरित्र के ग्रन्थो से अनेक बाते मेल नही खाती है। जैसे—(१) अन्य ग्रन्थो मे महावीर की एक पत्नी का उल्लेख है और उसका नाम यशोदा दिया है। पर प्रस्तुत ग्रन्थ मे किसी भी पत्नी का नाम निर्देश न कर[2]। अनेक कन्याओ के साथ पाणिग्रहण बताया है।

---

१ (क) सम्पादक अमृतलाल भोजक, प्राकृत ग्रन्थ परिषद वाराणसी ५
(ख) गुजराती अनुवादक आ० हेमसागरसूरि प्र० मोतीलाल मगनलाल चोकसी ट्रस्टी०।

२ एव च परियप्पेऊण विसयविरत्तचित्तेणावि पडिच्छियाओ, कण्णयाओ। वत्त जहाविहिं वारेज्ज।
—चउप्पन्न० पृ० २७२

(२) दूसरे ग्रन्थो मे चमरेन्द्र के आवास के ऊपर सौधर्मेन्द्र का विमान सदा अवस्थित रहता है, ऐसा लिखा है तो इस ग्रन्थ मे अपने आवास पर से सौधर्मेन्द्र के विमान को जाते हुए देखकर चमरेन्द्र का क्रुद्ध होना बताया है।[3]

(३) अन्य ग्रन्थो मे चमरेन्द्र वर्धमान स्वामी की शरण मे गया है, यह जानकर वज्रदेव चमर के साथ भगवान को भी मारेगा इस दृष्टि से सौधर्मेन्द्र सिर्फ चार अगुल जितना अन्तर रहता है तब वज्रदेव को पकड लेता है, पर इसमे चमरेन्द्र वर्धमान की शरण मे गया है, ऐसा जानकर स्वय सरम्भ से विरत होता है।[4]

(४) अन्य ग्रन्थो मे गोशालक की तेजोलेश्या से सर्वानुभूति मुनि तथा सुनक्ष मुनि मर जाते है, उसके पश्चात् वह वर्धमान स्वामी पर तेजोलेश्या छोडता है तब वह भगवान के दिव्य प्रभाव से पुन लौट जाती है और वह गोशालक को ही पीडित करती है, जिससे गोशालक की मृत्यु होती है। प्रस्तुत ग्रन्थ मे गोशालक सर्वानुभूति मुनि के ऊपर तेजोलेश्या छोडता है तब सर्वानुभूति मुनि भी गोशालक के सामने अपनी तेजोलेश्या छोडते है। दोनो तेजोलेश्या के बीच सघर्ष होता है। उस समय वर्धमान स्वामी शीतलेश्या छोडते है, जिससे गोशालक की तेजोलेश्या स्वय उसी को दु ख देने लगती है, फलत वर्धमान स्वामी की शरण मे आता है और उसका दु ख दूर होता है।[5]

(५) शूलपाणि यक्ष के उपद्रव मे उसका पूर्वभव बताया गया है। उसमे लिखा है कि बैल मरकर शूलपाणि यक्ष होता है। उसके द्वारा फैलाई गई महामारी के कारण मृत मनुष्यो की हड्डियो से बने हुए देवालय आदि का प्रसग है। परन्तु इस ग्रन्थ मे आस्थिक सर्प के द्वारा मारे गये मनुष्यो की हड्डी से बने हुए मन्दिर का तथा उसके द्वारा महावीर स्वामी पर किये गये उपसर्ग का वर्णन है।[6]

इन वैषम्य-सूचक घटनाओ के सम्बन्ध मे प० श्री अमृतलाल भोजक का मतव्य है कि सभवत कही लेखक का अनवधान कार्य कर गया हो या यह आर्य कालिक कृत प्रथमानुयोग पर आधारित हो।

---

३ चउप्पन्न० प्र० १२, पृ० २९२

४ चउप्पन्न० प्रस्ताव १२, पृ० २९६

५ चउप्पन्न पृ० ३०६, ३०७

६ चउप्पन्न महा० पृ० २७५

प्रस्तुत ग्रन्थ मे भगवान महावीर के जीवन चरित्र मे पूर्वभव नही दिये है। जन्म, महावीर नाम, दीक्षा, ब्राह्मण को वस्त्रदान, ग्वाले का उपसर्ग, अस्थिक नागराज का उपसर्ग, उत्पल महर्षि पाखड अच्छदक, चण्डकौशिक सर्प को प्रतिबोध सुदष्ट्र देव का उपसग, पुण्य सामुद्रिक और इन्द्र का सम्वाद, गोशालक का वर्णन, व्यतरी का शीत उपसर्ग, सगम का उपसर्ग, वसुमती—चन्दना का प्रबध, चमरेन्द्र का उत्पात, गोपालक द्वारा कान मे शलाकाए, केवलज्ञान, गणधरो के सशय का निराकरण, मृगावती की दीक्षा, उदयनकुमार का राज्याभिषेक, गोशालक को प्रतिबोध, प्रसन्नचन्द्र रजार्षि को केवलज्ञान, मेघकुमार की दीक्षा, नन्दिषेण मुनि, ददु राकदेव का पूर्वभव, अभयकुमार ने श्रमण की अवज्ञा दूर की, पन्द्रह सौ तापसो को प्रतिबोध, पु डरीक और कुण्डरीक, राजा दशार्णभद्र की वन्दना, कुणाला नगरी का नाश, महावीर का निर्वाण और गौतम गणधर को केवलज्ञान आदि प्रसग दिये है।

चरित ग्रन्थ की रचना करते समय लेखक ने यो तो अपने से पूर्ववर्ती साहित्य से स्रोत ग्रहण किये है तथापि उसने अपनी ओर से अनेक तथ्य भी जोडे है। प्रसगोपात्त वर्णनो मे सास्कृतिक सामग्री भी प्रचुर परिमाण मे उपलब्ध होती है।

प्राकृत भाषा मे लिखी गई प्रस्तुत कृति अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है।[७]

महावीर चरिय[८] (पद्यबद्ध)

प्राकृत भाषा मे महावीर चरिय के नाम से दो चरित काव्य उपलब्ध होते है। इस चरित-काव्य के निर्माता चन्द्रकुल के बृहद्गच्छीय उद्योतनसूरि के प्रशिष्य और आम्रदेवसूरि के शिष्य नेमिचन्द्रसूरि है। आचार्य पद प्राप्त करने के पूर्व इनका नाम देवेन्द्रगणि था। इस चरित ग्रन्थ की रचना विक्रम स० ११४१ मे हुई है।

इसमे भगवान महावीर के पूर्वभव दिये है, साथ ही आवश्यक चूर्णि मे आए हुए जीवन के भी सभी प्रसग दिये है।

लेखक न चरित ग्रन्थ को रोचक बनाने का पूर्ण प्रयास किया है। कथावस्तु की सजीवता के लिए वातावरण का मार्मिक चित्रण दिया गया है।

---

७ इस ग्रन्थ का गुजराती अनुवाद आचार्य श्री हेमसागरसूरि ने किया है। इसका प्रकाशन मोतीचन्द मगनलाल चोकसी, सेठ दे ला पु फड के मैनेजिग ट्रस्टी की ओर से हुआ है।

८ आत्मानन्द सभा भावनगर द्वारा प्रकाशित।

क्या भौतिक और क्या मानसिक दोनो ही प्रकार के वातावरण की चारुता प्रस्तुत ग्रन्थ की प्राण है। अनूकूल और प्रतिकूल दोनो प्रकार की परि-स्थितियो मे राग-द्वेष की अनुभूतिया किस प्रकार घटित होती है इसका विवरण बहुत ही सटीक उपस्थित किया गया है। मिथ्यात्व और सम्यक्त्व की अभिव्यजना भी पात्रो के क्रिया कलापो द्वारा अत्यन्त सुन्दर हुई है।

प्रस्तुत चरित काव्य मे मनोरजन के जितने तत्त्व है, उनसे कही अधिक मानसिक तृप्ति के साधन भी विद्यमान है। मरीची अहकार से जीवन के आधारभूत विवेक और सम्यक्त्व की उपेक्षा करता है फलत उसे अनेक वार जन्म ग्रहण करना पडता है, वह अपने ससार की सीमा बढाता है। चरित ग्रन्थ होते हुए भी लेखक ने मर्मस्थलो की सम्यक् योजना की है, जिससे पाठक के मन मे जिज्ञासा की धारा अन्त तक प्रवाहित होती रहती है।

समग्र ग्रन्थ पद्य-बद्ध है, भाषा सरल व प्रवाह पूर्ण है।[९]

महावीर चरिय (गद्य पद्य-मय)[१०]

यह महावीर चरिय गुणचन्द्रसूरि द्वारा रचित है। ये प्रसन्नचन्द्रसूरि के शिष्य थे। विक्रम सम्वत् ११३९ मे इस की रचना की।

आचार्य ने सिद्धान्त-निरूपण, तत्त्व-निर्णय और दर्शन की गूढ समस्याओ को सुलझाने व अनेक गुरु-गभीर विषयो को स्पष्ट करने के लिए इस काव्य का प्रणयन किया है। भगवान महावीर के सम्पूर्ण जीवन को सरस चरित-काव्योचित शैली मे प्रस्तुत किया है। पूर्वजन्म की घटनाए रोचक है। कार्य व्यापारो मे विशेष प्रकार का उतार चढाव है। महावीर के चरित्र का उद्-घाटन अनेक परिस्थितियो और वातावरणो के मध्य दिखाया गया है। सवादो की योजना अत्यन्त चुस्त है। कथोपकथन सजीव, स्वाभाविक और सरस है व चरित्रो के स्पष्टीकरण के साथ कथावस्तु को अग्रसर करने मे पूर्ण सहायक है।

इस चरितकाव्य मे आठ प्रस्ताव-सर्ग है। प्रारभ के चार सर्गो मे भगवान महावीर के पूर्वभवो का वर्णन है और बाद के चार सर्गो मे उनके वर्तमान भव का।

---

९ प्राकृतभाषा और साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास—नेमिचन्द्रशास्त्री, तारा पब्लिकेशन्स, वाराणसी

१० देवचन्द्र लालभाई ग्रन्थमाला

प्रथम प्रस्ताव मे सम्यक्त्व प्राप्ति का निरूपण है। दूसरे प्रस्ताव मे ऋषभ, भरत, बाहुबलि एव मरीचि के भवो का प्रतिपादन किया है। तीसरे प्रस्ताव मे विश्वभूति की वसन्त-क्रीडा, रणयात्रा तथा सभूति आचार्य के उपदेश से विश्वभूति की दीक्षा का निरूपण किया गया है। इस प्रस्ताव मे त्रिपृष्ठ का अश्वग्रीव के साथ युद्ध एव प्रियमित्र चक्रवर्ती के दिग्विजय और उसकी प्रव्रज्या का वर्णन है। चौथे प्रस्ताव मे प्रियमित्र का जीव, नन्दन होता है। नन्दन पोट्टिल नाम के आचार्य से नरविक्रम का परिचय जानना चाहता है तो आचार्य उस त्ररित का कथन करते है। चतुर्थ प्रस्ताव मे नर विक्रम का चरित्र वर्णित है। नन्दन का जीव ही क्षत्रियकुण्ड के राजा सिद्धार्थ के वहा पर जन्म ग्रहण करता है, बालक का नाम वर्धमान रखा गया। वर्धमान का वर्धापन समारोह सम्पन्न किया गया। महावीर नाम २८ वे वर्ष मे, माता पिता के स्वर्गस्थ होने पर नन्दिवधन का राज्याभिपेक, फिर भाई की अनुमति लेकर दीक्षा। पाचवे प्रस्ताव मे गोप का उपसर्ग व शूलपाणि और चण्डकौशिक को प्रबोध देना। छठे प्रस्ताव मे गोशालक की उद्दण्डता का वर्णन। सातवे प्रस्ताव मे महावीर के परीपह सहन और केवलज्ञान की प्राप्ति। आठवे प्रस्ताव मे सक्षिप्त मे गणधरवाद, गणधरो व चन्दना की दीक्षा, गोशालक का प्रसग, द्वादश व्रत आदि का निरूपण है, व निर्वाण और केवलज्ञान आदि वर्णित है।

काव्य की दृष्टि से यह ग्रन्थ एक सफल रचना है। बाणभट्ट, माघ और भारवि के सस्कृत काव्यो का पूर्ण प्रभाव परिलक्षित होता है। महाराष्ट्री प्राकृत के अतिरिक्त बीच बीच मे अपभ्र श और सस्कृत के पद्य भी पाये जाते है। देशी शब्दो के स्थान पर तद्भव और तत्सम शब्दो के प्रयोग अधिक मात्रा मे उपलब्ध है। छन्दो मे विविधता है।

इस ग्रन्थ का गुजराती अनुवाद श्री जैन आत्मानन्द सभा-भावनगर से प्रकाशित हुआ है।

इस प्रकार इस ग्रन्थ मे महावीर का पूर्ण जीवन मिलता है। छद्मस्थ अवस्था तक का वर्णन क्रमबद्ध मिलता है, उसके बाद का वर्णन पूर्ण रूप से क्रमबद्ध नही है।

तिलोयपण्णत्ति

दिगम्बर मान्यता के अनुसार महावीर के जीवन सूत्र तिलोयपण्णत्ति मे है। वहा इतना ही लिखा गया है—तीर्थंकर वर्धमान कुण्डलपुर मे पिता सिद्धार्थ और माता प्रियकारिणी से चैत्र शुक्ला त्रयोदशी के दिन उत्तराफाल्गुनी

नक्षत्र मे उत्पन्न हुए। मार्गशीर्षकृष्णा दशमी के दिन अपराह्न मे उत्तरानक्षत्र के रहते नाथवन मे तृतीय भक्त के साथ महाव्रतो को ग्रहण किया।

भगवान महावीर के सम्बन्ध मे विशेष रूप से प्रकाश नही डाला गया है। यह ग्र थ प्राकृत भाषा मे है।

संस्कृत-साहित्य

भारतीय साहित्य की प्राचीननिधि से सस्कृत एव प्राकृत भाषा के कोषागार मे सरक्षित है। सस्कृत और प्राकृत दोनो ही ऋषियो की भाषा कहलाती रही है।[1] प्राचीन समय मे दोनो का समान महत्व था। वैदिक काल मे सस्कृत का प्राधान्य था वेद, उपनिषद् आदि की रचनाए सस्कृत मे हुई। प्राचीन जैन अनुश्रुति के आधार पर यह भी माना जाता है कि जैन धर्म का पूर्व साहित्य भी सस्कृत मे ही था।[2] किंतु बाद मे जन साधारण को सुगमता से तत्त्व समझाया जा सके इसलिए एकादश अगो की रचना प्राकृत मे हुई।

प्राचीन समय मे सस्कृत तत्त्व एव दर्शन की भाषा तो रही, किंतु काव्यो तथा चरित काव्यो की भाषा बहुत बाद मे बनी। सस्कृत मे सबसे प्राचीन चरितात्मक ग्र थ वाल्मीकि रामायण एव महाभारत (जय—भारत) माना जाता है।

जैन परम्परा मे सस्कृत मे जो ग्र थ रचनाए हुई वे प्रारभ मे तो दार्शनिक ही थी। दर्शन एव उपदेश ग्रथो के लिए सस्कृत का प्रारभिक प्रयोग हुआ। जैन परम्परा के सबसे पहले सस्कृत लेखक आचार्य उमास्वाति माने जाते है। आचार्य उमास्वाति के पश्चात् सस्कृत लेखन का एक प्रवाह चला। अनेक आचार्यो मे दर्शन, तर्क, न्याय, ज्योतिष आदि के साथ चरित काव्यो के लिए भी सस्कृत को अपनाया और पुराण एव चरित्र ग्र थ सस्कृत मे लिखे जाने लगे।

भगवान महावीर का जीवन चरित्र सर्वप्रथम प्राकृत भाषा मे लिखा गया। उसके बाद सस्कृत का प्रभाव जब बढा तो आचार्यो ने सस्कृत मे भी अपने आराध्य पुरुषो का जीवन चरित लिखा। तीर्थंकरो के सस्कृत जीवन

---

१ सक्कय पागय चेव पसत्थ इसिभासिय—अनुयोगद्वार

२ हीरप्रश्न, उल्लास ३

चरित्रो मे भगवान महावीर के जीवन से सम्बन्धित सस्कृत साहित्य का यहा पर सक्षिप्त परिचय दिया जाता है ।

त्रिषष्टिशलाका पुरुषचरित्र[3]

त्रिषष्टिशलाका पुरुषचरित्र ग्रन्थ के रचयिता कलिकाल सर्वज्ञ आचार्य हेमचन्द्र ह । इस काव्य के दस पर्व ह । इसमे त्रेसठ श्लाघनीय महा-पुरुषो के जीवन चरित्र ह । मुनि श्री पुण्यविजय जी के अनुसार इसमे ३२००० हजार श्लोक हे । इसका रचनाकाल जर्मन विद्वान डा० बुल्हर के अभिमत से वि० स० १२२६-१२२९ के बीच का है ।

प्रस्तुत काव्य एक अनोखा और ज्ञान का विशाल भण्डार है । महाभारत के लिए एक कहावत है 'यदिहास्ति तदन्यत्र यन्नेहास्ति न तत्क्वचित्" जो इसमे है वही दूसरी जगह है जो इसमे नही है वह कही भी नही है । प्रस्तुत ग्रन्थ के सम्बन्ध मे यही बात कही जाए तो अत्युक्ति नही होगी । भगवान् ऋषभदेव से लेकर अपने युग तक के सम्पूर्ण इतिहास को एक क्रमबद्ध रूप दिया है । इस चरित के माध्यम से न केवल जैनपरम्परा का विशद इतिहास उपस्थित किया गया है । अपितु महाभारत की तरह इसमे भी अध्यात्म, सस्कृति, नीति, धर्म और आचार की अनेक महत्त्वपूर्ण शिक्षाए भरी हुई हे ।

प्रस्तुत ग्रन्थ के दसवे पर्व मे भगवान महावीर का विस्तार से जीवन दिया गया है । महावीर जीवन के सभी मुख्य प्रसग इसमे आगये है ।

इसकी भाषा सस्कृत है, शैली चित्त को लुभानेवाली है । इस ग्र थ को जैन परम्परा का महाभारत कहा जा सकता है ।

इस ग्रन्थ का अग्रेजी भाषा मे अनुवाद एलेन जानसन कृत, बडोदा ओरियटल सीरीज से चार भागो मे प्रकाशित हुआ है । और गुजराती मे अनुवाद जैनधर्म प्रचारक सभा भावनगर ने ४ भागो मे प्रकाशित किया है । प्रथम पर्व का हिन्दी अनुवाद भी प्रकाशित हुआ है, किन्तु शेष पर्वो के नही ।

लघु त्रिषष्टिशलाका पुरुषचरित्र[४]

लघु त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरित्र नाम को दो कृतिया उपलब्ध होती है—एक सोमप्रभाचार्य रचित और दूसरी महामहोपाध्याय मेघविजय गणी रचित । सोमप्रभाचार्य का ग्रन्थ अभी तक प्रकाशित नही हुआ है किन्तु मेघ विजय जी का ग्रन्थ प्रकाशित हो चुका है । उसके भी दस पर्व हे । आचार्य

---

३ जैन धर्मप्रचारक सभा, भावनगर

४ गुजराती अनुवाद छोटालाल मोहनलाल शाह, उनावा (उ० गुजरात) से प्रकाशित ।

हेमचन्द्र के त्रिषष्टिशलाका चरित्र का अनुकरण होने पर भी लेखक ने अन्य तीर्थंकरो के चरित्र भी अपने सामने रखे है, इसलिए अनेक प्रसग इसमे नये भी आये है।

त्रिषष्टि स्मृतिशास्त्र

इसके लेखक प० आशाधरजी है। रचना सक्षिप्त मे है। कवि ने आचार्य जिनसेन व गुणभद्र रचित महापुराण व उत्तरपुराण का अनुसरण किया है।

महापुराण चरित

इसके लेखक मेरुतु ग है। इसमे ऋषभ, शान्ति, नेमि, पार्श्व और वर्द्धमान इन पाच तीर्थंकरो का चरित वर्णित है। यह श्वेताम्बर परम्परा मे मान्य है।

पुराणसार सग्रह

इसमे अति सक्षेप मे शलाका पुरुषो का चरित्र दिया है।

रायमल्लाभ्युदय

रायमल्लाभ्युदय के लेखक श्वेताम्बर विद्वान पद्मसुन्दर जी है। जिन्होने वि० स० १६१५ मे प्रस्तुत ग्रन्थ की रचना की। अत उनके नाम से प्रस्तुत ग्रन्थ का नामकरण किया गया। इसमे चौबीस तीर्थंकरो का वणन है।

चतुर्विशति जिन चरित

चतुर्विंशति जिन चरित के लेखक श्वेताम्बर वायडगच्छीय जिनदत्त सूरि के शिष्य अमर चन्द्र है। यह ग्रन्थ चौबीस अध्यायो मे विभक्त है। इसके २४ वे अध्याय मे भगवान महावीर का चरित्र वर्णित है।

वीरोदय काव्य

वीरोदय काव्य- इसके रचयिता मुनि ज्ञानसागर जी है। भाषा सस्कृत है। बाईस सर्गों मे यह काव्य पूर्ण हुआ है। इसके सम्पादक प० हीरालाल शास्त्री है। जिन्होने ग्रन्थ के प्रारभ मे शोध-प्रधान भूमिका भी लिखी है।[५]

---

५ प्रकाशक —मुनि ज्ञान सागर जैन ग्रन्थमाला ब्यावर—

उत्तरपुराण[6]

दिगम्बर आचार्य जिनसेन ने आदिपुराण की रचना की है, उसमे भगवान आदिनाथ के जीवन का विस्तृत वर्णन है। उनके उत्तरवर्ती आचार्य गुणभद्र ने उत्तर पुराण बनाकर उनके अवशिष्ट कार्य को पूरा किया। उत्तर पुराण दिगम्बर परम्परा की एक महत्त्वपूर्ण कृति है। इसमे भगवान अजित से लेकर महावीर तक का वर्णन है। अन्तिम चार पर्व मे भगवान महावीर का जीवन है। महावीर के पूर्वभव और इस भव का निरूपण है। किन्तु श्वेताम्बर ग्रन्थो की तरह महावीर के परीषहो आदि का वर्णन नही है। भापा शुद्ध सस्कृत है। यही दिगम्बर परम्परा मे महावीर सम्बन्धी सबसे प्राचीन ग्रन्थ ह, बाद के दिगम्बराचार्यों ने इसी ग्रन्थ का अनुसरण किया है।

वर्धमान चरितम्[7]

वर्धमान चरितम के रचयिता महाकवि असग है। ग्रन्थ की प्रशस्ति के अनुसार इस काव्य का रचनाकाल शक सवत् ९१० (ई० सन् ९८८) है। कवि ने अपने गुरु का नाम नागनन्दि दिया है। इस काव्य मे अठारह सर्ग है। कथावस्तु उत्तर पुराण से ली है। उत्तर पुराण मे पुरुरवा नामक भिल्लराज से वर्धमान के पूर्वभवो का प्रारभ किया गया है। कवि ने उत्तरपुराण की कथावस्तु को काव्योचित बनाने के लिए कॉट-छॉट भी की है। असग ने पुरुरवा और मरीचि के आख्यान को छोड दिया है और श्वेतातपत्रा नगरी के राजा नन्दिवर्धन के ऑगन मे पुत्र जन्मोत्सव से कथानक का प्रारभ किया है। इसमे सन्देह नही कि यह आरभ स्थल बहुत ही रमणीय है। उत्तरपुराण की कथावस्तु के आरम्भिक अश को घटित रूप मे दिखाकर मुनिराज के मु ह से पूर्व भवावलि के रूप मे कहलाया है।

वर्धमान का जीवन-विकास अनेक भवो जन्मो का लेखा जोखा है। प्रस्तुत महाकाव्य की शैली प्राय भारवि के 'किरातर्जुनीयम्' से मिलती जुलती है। महाकाव्य की दृष्टि से यह सफल काव्य कहा जा सकता है।

---

६ डा० ए० एन० उपाध्ये और डा० हीरालाल जैन द्वारा सम्पादित जीवराज जैन ग्रन्थमाला शोलापुर से दो भागो मे प्रकाशित।

७ सम्पादन और मराठी अनुवाद जिनदास पार्श्वनाथ फडकुले, प्रकाशक—रावजी सखाराम दोशी सोलापुर।

वीर वर्धमान चरितम्

वीरवर्धमान चरित के रचयिता भट्टारक श्री सकलकीर्ति हे। इनका समय विक्रम की पन्द्रहवी शताब्दी माना जाता है। इस चरित्र के उन्नीस अध्याय हे। नौवें अध्याय मे भगवान के अभिषेक का वर्णन है, वहाँ कवि ने गध, चन्दन एव अन्य सुगन्धित द्रव्यो से युक्त जल भरे कलशो से भगवान का अभिषेक कराया किन्तु उन्होने दही-घी आदि से अभिषेक नही कराया। दूसरी नई बात इसमे यह है कि आठ वर्ष के होने पर महावीर ने स्वय ही श्रावक के व्रत ग्रहण किये। श्वेताम्बर ग्रन्थो मे तीर्थंकर गृहस्थाश्रम मे श्रावक व्रत ग्रहण करते है ऐसा कही भी उल्लेख देखने मे नही आया है।

बारहवे अध्याय मे दीक्षा लेने के पूर्व अपने हृदय के भाव माता-पिता और कुटुम्बीजनो को अवगत कराये। दीक्षा लेने पर माता प्रियकारिणी पुत्र-वियोग से पीडित होकर रोती और करुण विलाप करती हे। पर श्वेताम्बर परम्परा के सभी ग्रन्थो मे माता-पिता के स्वर्गस्थ होने के दो वर्ष के पश्चात् दीक्षा का उल्लेख आया है।

चौदहवे अध्याय मे भगवान के ज्ञान कल्याणक का वर्णन है। जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति और त्रिशष्टिशलाका पुरुष चरित्र मे भगवान ऋषभदेव के ज्ञान कल्याणक को मनाने के लिए इन्द्र के आदेश से बलाहकदेव ने जम्बूद्वीप प्रमाण एक लाख योजन वाला विमान बनाने का उल्लेख है वैसा ही वर्णन सकलकीर्ति ने भी किया है। दिगम्बर विद्वान श्री हीरालाल शास्त्री का मन्तव्य है कि अन्य दिगम्बर साहित्य मे यह वर्णन कही भी नही है। श्वेताम्बर ग्रन्थो मे सौधर्मेन्द्र अपने सम्पूर्ण परिवार के साथ विमान मे बैठकर आता हे किन्तु सकलकीर्ति ने इसका कुछ उल्लेख नही किया है।

सकलकीर्ति ने इस अध्याय मे कौन सा इन्द्र किस वाहन का उपयोग कर आता है, यह बताते हुए लिखा है—(१) सौधर्मेन्द्र-ऐरावत गजेन्द्र पर (२) ईशानेन्द्र-अश्ववाहन पर, (३) सनत्कुमारेन्द्र-मगेन्द्रवाहन पर (४) माहेन्द्र-वृषभवाहन पर (५) ब्रह्मेन्द्र सारस वाहन पर, (६) लान्तकेन्द्र हस वाहन पर, (७) शक्रेन्द्र-गरुड वाहन पर (८) शतारेन्द्र मयूर वाहन पर (९) आनतेन्द्र, (१०) प्राणतेन्द्र (११) आरणेन्द्र, (१२) अच्युतेन्द्र, ये चारो इन्द्र पृथक् पृथक् पुष्पक विमान पर बैठकर आते है।

उत्तरपुराण[६]

दिगम्बर आचार्य जिनसेन ने आदिपुराण की रचना की है, उसमे भगवान आदिनाथ के जीवन का विस्तृत वर्णन है। उनके उत्तरवर्ती आचार्य गुणभद्र ने उत्तर पुराण बनाकर उनके अवशिष्ट कार्य को पूरा किया। उत्तर पुराण दिगम्बर परम्परा की एक महत्त्वपूर्ण कृति है। इसमे भगवान अजित से लेकर महावीर तक का वर्णन है। अन्तिम चार पर्व मे भगवान महावीर का जीवन है। महावीर के पूर्वभव और इस भव का निरूपण है। किन्तु श्वेताम्बर ग्रन्थो की तरह महावीर के परीषहो आदि का वर्णन नही है। भापा शुद्ध सस्कृत है। यही दिगम्बर परम्परा मे महावीर सम्बन्धी सबसे प्राचीन ग्रन्थ ह, बाद के दिगम्बराचार्यो ने इसी ग्रन्थ का अनुसरण किया है।

वर्धमान चरितम्[७]

वर्धमान चरितम के रचयिता महाकवि असग है। ग्रन्थ की प्रशस्ति के अनुसार इस काव्य का रचनाकाल शक सवत् ६१० (ई० सन् ६८८) है। कवि ने अपने गुरु का नाम नागनन्दि दिया है। इस काव्य मे अठारह सर्ग हे। कथावस्तु उत्तर पुराण से ली है। उत्तर पुराण मे पुरुरवा नामक भिल्ल-राज से वर्धमान के पूर्वभवो का प्रारभ किया गया है। कवि ने उत्तरपुराण की कथावस्तु को काव्योचित बनाने के लिए कॉट-छॉट भी की है। असग ने पुरुरवा और मरीचि के आख्यान को छोड दिया है और श्वेतातपत्रा नगरी के राजा नन्दिवर्धन के ऑगन मे पुत्र जन्मोत्सव से कथानक का प्रारभ किया है। इसमे सन्देह नही कि यह आरभ स्थल बहुत ही रमणीय है। उत्तरपुराण की कथावस्तु के आरम्भिक अश को घटित रूप मे दिखाकर मुनिराज के मुह से पूर्व भवावलि के रूप मे कहलाया है।

वर्धमान का जीवन-विकास अनेक भवो जन्मो का लेखा जोखा है। प्रस्तुत महाकाव्य की शैली प्राय भारवि के 'किरातर्जुनीयम्' से मिलती जुलती है। महाकाव्य की दृष्टि से यह सफल काव्य कहा जा सकता है।

---

६ डा० ए० एन० उपाध्ये और डा० हीरालाल जैन द्वारा सम्पादित जीवराज जैन ग्रन्थमाला शोलापुर से दो भागो मे प्रकाशित।

७ सम्पादन और मराठी अनुवाद जिनदास पार्श्वनाथ फडकुले, प्रकाशक—रावजी सखाराम दोशी सोलापुर।

वीर वर्धमान चरितम्

वीरवर्धमान चरित के रचयिता भट्टारक श्री सकलकीर्ति है। इनका समय विक्रम की पन्द्रहवी शताब्दी माना जाता है। इस चरित्र के उन्नीस अध्याय है। नौवें अध्याय मे भगवान के अभिषेक का वर्णन है, वहाँ कवि ने गध, चन्दन एव अन्य सुगन्धित द्रव्यो से युक्त जल भरे कलशो से भगवान का अभिषेक कराया किन्तु उन्होने दही-घी आदि से अभिषेक नही कराया। दूसरी नई बात इसमे यह है कि आठ वर्ष के होने पर महावीर ने स्वय ही श्रावक के व्रत ग्रहण किये। श्वेताम्बर ग्रन्थो मे तीर्थंकर गृहस्थाश्रम मे श्रावक व्रत ग्रहण करते है ऐसा कही भी उल्लेख देखने मे नही आया है।

बारहवे अध्याय मे दीक्षा लेने के पूर्व अपने हृदय के भाव माता-पिता और कुटुम्बीजनो को अवगत कराये। दीक्षा लेने पर माता प्रियकारिणी पुत्र-वियोग से पीडित होकर रोती और करुण विलाप करती है। पर श्वेताम्बर परम्परा के सभी ग्रन्थो मे माता-पिता के स्वर्गस्थ होने के दो वर्ष के पश्चात् दीक्षा का उल्लेख आया है।

चौदहवे अध्याय मे भगवान के ज्ञान कल्याणक का वर्णन है। जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति और त्रिशष्टिशलाका पुरुष चरित्र मे भगवान ऋषभदेव के ज्ञान कल्याणक को मनाने के लिए इन्द्र के आदेश से बलाहकदेव ने जम्बूद्वीप प्रमाण एक लाख योजन वाला विमान बनाने का उल्लेख है वैसा ही वर्णन सकलकीर्ति ने भी किया है। दिगम्बर विद्वान श्री हीरालाल शास्त्री का मन्तव्य है कि अन्य दिगम्बर साहित्य मे यह वर्णन कही भी नही है। श्वेताम्बर ग्रन्थो मे सौधर्मेन्द्र अपने सम्पूर्ण परिवार के साथ विमान मे बैठकर आता है किन्तु सकलकीर्ति ने इसका कुछ उल्लेख नही किया है।

सकलकीर्ति ने इस अध्याय मे कौन सा इन्द्र किस वाहन का उपयोग कर आता है, यह बताते हुए लिखा है—(१) सौधर्मेन्द्र-ऐरावत गजेन्द्र पर (२) ईशानेन्द्र-अश्ववाहन पर, (३) सनत्कुमारेन्द्र-मगेन्द्रवाहन पर (४) माहेन्द्र-वृषभवाहन पर (५) ब्रह्मेन्द्र सारस वाहन पर, (६) लान्तकेन्द्र हस वाहन पर, (७) शक्रेन्द्र-गरुड वाहन पर (८, शतारेन्द्र मयूर वाहन पर (९) आनतेन्द्र, (१०) प्राणतेन्द्र (११, आरणेन्द्र, (१२) अच्युतेन्द्र, ये चारो इन्द्र पृथक् पृथक् पुष्पक विमान पर बैठकर आते है।

उत्तरपुराण[6]

दिगम्बर आचार्य जिनसेन ने आदिपुराण की रचना की है, उसमे भगवान आदिनाथ के जीवन का विस्तृत वर्णन है। उनके उत्तरवर्ती आचार्य गुणभद्र ने उत्तर पुराण बनाकर उनके अवशिष्ट कार्य को पूरा किया। उत्तर पुराण दिगम्बर परम्परा की एक महत्त्वपूर्ण कृति है। इसमे भगवान अजित से लेकर महावीर तक का वर्णन है। अन्तिम चार पर्व मे भगवान महावीर का जीवन है। महावीर के पूर्वभव और इस भव का निरूपण है। किन्तु श्वेताम्बर ग्रन्थो की तरह महावीर के परीषहो आदि का वर्णन नही है। भापा शुद्ध सस्कृत है। यही दिगम्बर परम्परा मे महावीर सम्बन्धी सबसे प्राचीन ग्रन्थ ह, बाद के दिगम्बराचार्यों ने इसी ग्रन्थ का अनुसरण किया है।

वर्धमान चरितम्[7]

वर्धमान चरितम के रचयिता महाकवि असग है। ग्रन्थ की प्रशस्ति के अनुसार इस काव्य का रचनाकाल शक सवत् ९१० (ई० सन् ९८८) है। कवि ने अपने गुरु का नाम नागनन्दि दिया है। इस काव्य मे अठारह सर्ग है। कथावस्तु उत्तर पुराण से ली है। उत्तर पुराण मे पुरुरवा नामक भिल्ल-राज से वर्धमान के पूर्वभवो का प्रारभ किया गया है। कवि ने उत्तरपुराण की कथावस्तु को काव्योचित बनाने के लिए काँट-छाँट भी की है। असग ने पुरुरवा और मरीचि के आख्यान को छोड दिया है और श्वेतातपत्रा नगरी के राजा नन्दिवर्धन के आँगन मे पुत्र जन्मोत्सव से कथानक का प्रारभ किया है। इसमे सन्देह नही कि यह आरभ स्थल बहुत ही रमणीय है। उत्तरपुराण की कथावस्तु के आरम्भिक अश को घटित रूप मे दिखाकर मुनिराज के मु ह से पूर्व भवावलि के रूप मे कहलाया है।

वर्धमान का जीवन-विकास अनेक भवो जन्मो का लेखा जोखा है। प्रस्तुत महाकाव्य की शैली प्राय भारवि के 'किरातर्जुनीयम्' से मिलती जुलती है। महाकाव्य की दृष्टि से यह सफल काव्य कहा जा सकता है।

---

६ डा० ए० एन० उपाध्ये और डा० हीरालाल जैन द्वारा सम्पादित जीवराज जैन ग्रन्थमाला शोलापुर से दो भागो मे प्रकाशित।

७ सम्पादन और मराठी अनुवाद जिनदास पार्श्वनाथ फडकुले, प्रकाशक—रावजी सखाराम दोशी सोलापुर।

वीर वर्धमान चरितम्

वीरवर्धमान चरित्त के रचयिता भट्टारक श्री सकलकीर्ति है। इनका समय विक्रम की पन्द्रहवी शताब्दी माना जाता है। इस चरित्र के उन्नीस अध्याय है। नौवें अध्याय मे भगवान के अभिषेक का वर्णन है, वहाँ कवि ने गध, चन्दन एव अन्य सुगन्धित द्रव्यो से युक्त जल भरे कलशो से भगवान का अभिषेक कराया किन्तु उन्होने दही-घी आदि से अभिषेक नही कराया। दूसरी नई बात इसमे यह है कि आठ वर्ष के होने पर महावीर ने स्वय ही श्रावक के व्रत ग्रहण किये। श्वेताम्बर ग्रन्थो मे तीर्थंकर गृहस्थाश्रम मे श्रावक व्रत ग्रहण करते है ऐसा कही भी उल्लेख देखने मे नही आया है।

बारहवे अध्याय मे दीक्षा लेने के पूर्व अपने हृदय के भाव माता-पिता और कुटुम्बीजनो को अवगत कराये। दीक्षा लेने पर माता प्रियकारिणी पुत्र-वियोग से पीडित होकर रोती और करुण विलाप करती है। पर श्वेताम्बर परम्परा के सभी ग्रन्थो मे माता-पिता के स्वर्गस्थ होने के दो वर्ष के पश्चात् दीक्षा का उल्लेख आया है।

चौदहवें अध्याय मे भगवान के ज्ञान कल्याणक का वर्णन है। जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति और त्रिशष्टिशलाका पुरुष चरित्र मे भगवान ऋषभदेव के ज्ञान कल्याणक को मनाने के लिए इन्द्र के आदेश से बलाहकदेव ने जम्बूद्वीप प्रमाण एक लाख योजन वाला विमान बनाने का उल्लेख है वैसा ही वर्णन सकलकीर्ति ने भी किया है। दिगम्बर विद्वान श्री हीरालाल शास्त्री का मन्तव्य है कि अन्य दिगम्बर साहित्य मे यह वर्णन कही भी नही है। श्वेताम्बर ग्रन्थो मे सौधर्मेन्द्र अपने सम्पूर्ण परिवार के साथ विमान मे बैठकर आता है किन्तु सकलकीर्ति ने इसका कुछ उल्लेख नही किया है।

सकलकीर्ति ने इस अध्याय मे कौन सा इन्द्र किस वाहन का उपयोग कर आता है, यह बताते हुए लिखा है—(१) सौधर्मेन्द्र-ऐरावत गजेन्द्र पर (२) ईशानेन्द्र-अश्ववाहन पर, (३) सनत्कुमारेन्द्र-मगेन्द्रवाहन पर (४) माहेन्द्र-वृषभवाहन पर (५) ब्रह्मेन्द्र सारस वाहन पर, (६) लान्तकेन्द्र हस वाहन पर, (७) शक्रेन्द्र-गरुड वाहन पर (८, शतारेन्द्र मयूर वाहन पर (९) आनतेन्द्र, (१०) प्राणतेन्द्र (११, आरणेन्द्र, (१२) अच्युतेन्द्र, ये चारो इन्द्र पृथक् पृथक् पुष्पक विमान पर बैठकर आते है।

अपभ्रंश-साहित्य

भाषा विकास की दृष्टि से अपभ्र श भापा प्राकृत-एव आधुनिक आर्य भाषाओ की यात्रा मे सेतु रूप है। वह मध्यकडी है, और कहना चाहिए अनेक भारतीय भापाओ की और खास कर हिन्दी की वह जननी है, अनेक भापाओ की बडी भगिनी है। वह सस्कृत और प्राकृत दोनो की तुलना मे अधिक प्रवाहपूर्ण, मनोहर, ललित एव श्रुति-मधुर है। उसमे एक सहज-सरलता और सरसता है। साप्रदायिक व्यामोह वश भले ही कुछ विद्वानो ने, कवियो ने उसे प्राकृत की तरह साधारण जन की भाषा, भोले ग्रामीण और अपढ नारियो की भापा चित्रित की हो, पर इससे उस का भापागत माधुर्य और स्वाभाविकता ही सिद्ध होती है।

अपभ्र श भापा— एक प्रकार से जैन साहित्य की भापा रही है। कुछ सिद्ध (बौद्ध आचार्यो) साहित्य को छोडकर बाकी जैनतर साहित्य उसमे नगण्य-सा ही है। इस भापा का विपुल भडार जैन आचार्यो ने भरा है। अपभ्रंश मे जैन आचार्यो ने अनेक काव्य, कथा ग्रन्थ, उपदेश व दर्शन प्रधान ग्रथ एव विपुल चरित काव्यो की रचना की है। अपभ्र श भाषा का सर्वोत्कृष्ट और सर्वाधिक प्राचीन काव्य स्वयभूकृत पउमचरिय माना जाता है।

भगवान महावीर की पावन-जीवन कथा भी अपभ्र श भाषा मे निबद्ध हुई है। अपभ्र श के अनेक विद्वान मनीपियो ने भगवान महावीर के जीवन से सम्बन्धित काव्यो की सर्जना की है। जिनमे से कुछ काव्यो का सक्षिप्त सा परिचय यहा दिया जाता है।

प्राकृत-भापा की तरह अपभ्र श भापा मे जैन साहित्यकारो ने महत्त्वपूर्ण ग्रन्थो की रचनाए की है। दिगम्बर विद्वान महाकवि पुष्पदत का 'तिसट्ठि-महापुरिस गुणालकारु' एक महत्त्वपूर्ण रचना है, उसके सम्बन्ध मे हम अगले पृष्ठो मे प्रकाश डालेगे।

जयमित्र हल्ल कृत 'वड्ढमाण-कव्वु' नामक ग्रन्थ प्राप्त होता है, जिसमे ११ सधिया है। यह काव्य देवराय के पुत्र सघाधिप होलिवर्म के लिए लिखा है। इसकी एक हस्तलिखित प्रति वि० स० १५४५ की मिली है, अत इसकी रचना इससे पूर्व की होनी चाहिए। इसमे भगवान महावीर के जीवन पर प्रकाश डाला है।

'वड्ढमाण कहा' यह कवि नरसेन की सुन्दर कृति है, जो विक्रम स० १५१२ के लगभग लिखी गई है। जिनेश्वर सूरि के शिष्य आचार्य श्री अभयदेव

रचित अपभ्रंश महावीर चरित का उल्लेख जैन ग्रन्थावली मे किया गया है। खभात के शान्तिनाथ ताडपत्रीय भण्डार म इसकी प्रति सुरक्षित है।

पुष्पदन्त के **महावीर चरित** का सम्पादन डा० हीरालाल जैन कर रहे थे। सचित्र प्रकाशित करने की योजना है। जयमित्रहल कृत **'वड्ढमाण चरिउ'** का सम्पादन डा० नेमिचन्द्र शास्त्री आरा कर रहे थे। डा० राजाराम **'सन्मति जिनचरिउ'** का सम्पादन कर चुके है और श्रीधर कृत **'वड्ढमाण चरिउ'** का कर रहे है। नीमच के डा० देवेन्द्र कुमार नरसेन कृत **'वड्ढमाण चरिउ'** का सम्पादन कर चुके है।[1]

तिसट्ठिमहापुरिस गुणालकारु महापुराण[2]

इस ग्रन्थ रत्न के रचयिता अपभ्रंश भाषा के महाकवि पुष्पदन्त हे। ९ वी और १० वी सदी के मिलन-बिन्दु पर उनका जन्म हुआ था। वे स्वभाव से फक्कड थे। पूरे बारह वर्ष तक जमकर उन्होने साहित्य-साधना की। उन्होने जो कुछ भी लिखा वह युग और परम्परा के अनुरोध पर ही लिखा तथापि उसमे मौलिक सजीवता है। इस पुराण मे १०२ सधिया हे। यह ग्रन्थ तीन भागो मे प्रकाशित हुआ है। तृतीय भाग मे भगवान महावीर का जीवन चरित है।

महावीर-चरित

'महावीर चरित' इस ग्रन्थ के रचयिता महाकवि रईधू है, उन्होने अपभ्रंश भाषा मे इस ग्रन्थ की रचना की हे। महावीर की कथा प्राचीन

---

१ हिन्दी मे उपलब्ध महावीर-साहित्य एक पर्यालोचना, — डा० कस्तूरचन्द कासलीवाल तीर्थकर मासिक वर्ष १, अक ९

२ णिग्गथाइय समउ भरतहु,
केवलि किरण हो धर विहरतह।
गय छासट्ठि दिणतर जावहि,
अमराहिउमणि चिंतइ तामहि॥
इय सामग्गि सयल जिणणाहहो,
पचमणाणुग्गय गयवाहहो।
कि कारणु णउ वाणि पयासइ,
जीवाइय तच्चाइण भासइ॥
— वर्धमान काव्य पत्र ८३ (ख)

अपभ्रंश-साहित्य

भाषा विकास की दृष्टि से अपभ्र श भापा प्राकृत-एव आधुनिक आर्य भापाओ की यात्रा मे सेतु रूप है। वह मध्यकडी है, और कहना चाहिए अनेक भारतीय भापाओ की और खास कर हिन्दी की वह जननी है, अनेक भापाओ की बडी भगिनी है। वह सस्कृत और प्राकृत दोनो की तुलना मे अधिक प्रवाहपूर्ण, मनोहर, ललित एव श्रुति-मधुर है। उसमे एक सहज-सरलता और सरसता है। साप्रदायिक व्यामोह वश भले ही कुछ विद्वानो ने, कवियो ने उसे प्राकृत की तरह साधारण जन की भाषा, भोले ग्रामीण और अपढ नारियो की भाषा चित्रित की हो, पर इससे उस का भापागत माधुर्य और स्वाभाविकता ही सिद्ध होती है।

अपभ्र श भापा— एक प्रकार से जैन साहित्य की भाषा रही है। कुछ सिद्ध (वौद्ध आचार्यो) साहित्य को छोडकर बाकी जैनतर साहित्य उसमे नगण्य-सा ही है। इस भाषा का विपुल भडार जैन आचार्यो ने भरा है। अपभ्र श मे जैन आचार्यो ने अनेक काव्य, कथा ग्रन्थ, उपदेश व दर्शन प्रधान ग्रथ एव विपुल चरित काव्यो की रचना की है। अपभ्र श भाषा का सर्वोत्कृष्ट और सर्वाधिक प्राचीन काव्य स्वयभूकृत पउमचरिय माना जाता है।

भगवान महावीर की पावन-जीवन कथा भी अपभ्रंश भाषा मे निबद्ध हुई है। अपभ्र श के अनेक विद्वान मनीषियो ने भगवान महावीर के जीवन से सम्बन्धित काव्यो की सर्जना की है। जिनमे से कुछ काव्यो का सक्षिप्त सा परिचय यहा दिया जाता है।

प्राकृत-भाषा की तरह अपभ्र श भापा मे जैन साहित्यकारो ने महत्त्वपूर्ण ग्रन्थो की रचनाए की हे। दिगम्बर विद्वान महाकवि पुष्पदत का 'तिसट्ठि-महापुरिस गुणालकारु' एक महत्त्वपूर्ण रचना है, उसके सम्बन्ध मे हम अगले पृष्ठो मे प्रकाश डालेगे।

जयमित्र हल्ल कृत 'वड्ढमाण-कव्वु' नामक ग्रन्थ प्राप्त होता है, जिसमे ११ सधिया हं। यह काव्य देवराय के पुत्र सघाधिप होलिवर्म के लिए लिखा है। इसकी एक हस्तलिखित प्रति वि० स० १५४५ की मिली है, अत इसकी रचना इससे पूर्व की होनी चाहिए। इसमे भगवान महावीर के जीवन पर प्रकाश डाला है।

'वड्ढमाण कहा' यह कवि नरसेन की सुन्दर कृति है, जो विक्रम स० १५१२ के लगभग लिखी गई है। जिनेश्वर सूरि के शिष्य आचार्य श्री अभयदेव

रचित अपभ्रंश महावीर चरित का उल्लेख जैन ग्रन्थावली मे किया गया है। खभात के शान्तिनाथ ताडपत्रीय भण्डार म इसकी प्रति सुरक्षित है।

पुष्पदन्त के **महावीर चरित** का सम्पादन डा० हीरालाल जैन कर रहे थे। सचित्र प्रकाशित करने की योजना है। जयमित्र हल कृत **'वड्ढमाण चरिउ'** का सम्पादन डा० नेमिचन्द्र शास्त्री आरा कर रहे थे। डा० राजाराम **'सन्मति जिनचरिउ'** का सम्पादन कर चुके है और श्रीधर कृत **'वड्ढमाण चरिउ'** का कर रहे है। नीमच के डा० देवेन्द्र कुमार नरसेन कृत **'वड्ढमाण चरिउ'** का सम्पादन कर चुके है।[1]

तिसट्ठिमहापुरिस गुणालकारु महापुराण[2]

इस ग्रन्थ रत्न के रचयिता अपभ्रंश भापा के महाकवि पुष्पदन्त है। ९ वी और १० वी सदी के मिलन-बिन्दु पर उनका जन्म हुआ था। वे स्वभाव से फक्कड थे। पूरे बारह वर्ष तक जमकर उन्होने साहित्य-साधना की। उन्होने जो कुछ भी लिखा वह युग और परम्परा के अनुरोध पर ही लिखा तथापि उसमे मौलिक सजीवता है। इस पुराण मे १०२ सधिया है। यह ग्रन्थ तीन भागो मे प्रकाशित हुआ है। तृतीय भाग मे भगवान महावीर का जीवन चरित है।

महावीर-चरित

'महावीर चरित' इस ग्रन्थ के रचयिता महाकवि रईधू है, उन्होने अपभ्रंश भापा मे इस ग्रन्थ की रचना की है। महावीर की कथा प्राचीन

---

१ हिन्दी मे उपलब्ध महावीर-साहित्य एक पर्यालोचना,— डा० कस्तूरचन्द कासलीवाल तीर्थंकर मासिक वर्प १, अक ९

२ णिग्गथाइय समउ भरतहु,
केवलि किरण हो धर विहरतहु।
गय छासट्ठि दिणतर जावहि,
अमराहिउमणि चितइ तामहि॥
इय सामग्गि सयल जिणणाहहो,
पचमणाणुगगय गयवाहहो।
कि कारणु णउ वाणि पयासइ,
जीवाइय तच्चाइण भासइ॥
— वर्धमान काव्य पत्र ८३ (ख)

ग्रन्थो के आधार से है, पर नयी बात यह है कि रईधू ने जन्माभिषेक के समय सुमेरु के कम्पित होने का उल्लेख किया है। दीक्षार्थ जाते हुए भगवान के सात पग पैदल चलने का वर्णन भी कवि ने किया है।

'वड्ढमाणचरिउ'

'वड्ढमाण चरिउ' के रचयिता कवि श्रीधर है। इसकी भाषा अपभ्र श है। कथा-वस्तु का मूलस्रोत दिगम्बर परम्परा का रहा है तथापि श्वेताम्बर महावीर चरित्रो का भी इस पर प्रभाव पडा है। जैसे—त्रिपृष्ट वासुदेव के भव मे सिह को मारने की घटना। महावीर के जन्म होने के दिन से ही सिद्धार्थ के घर लक्ष्मी दिन-दिन बढने लगी, जिससे उनका नाम वर्धमान रखा गया आदि वर्णन भी इसमे है।

वर्धमान काव्य

वर्धमान काव्य के रचयिता जयमित्तहल्ल कवि है। उन्होने अपभ्र श भापा मे इसकी रचना की हे। महावीर का चरित दिगम्बर परम्परानुसार ही है तथापि कुछ नई बाते भी इसमे जुडी हे।

कवि ने भगवान के जन्माभिषेक के समय मेरु-कम्पन की घटना का वर्णन बहुत रोचक शैली मे किया है।

पूर्व के दिगम्बर साहित्य मे भगवान के केवलज्ञान होने पर ६६ दिन तक दिव्य ध्वनि नही खिरने का तो उल्लेख है, पर उस समय उनके विहार का उल्लेख नही हे, किन्तु प्रस्तुत ग्रन्थ मे उस समय भी उनके विहार का उल्लेख किया है। इस ग्रन्थ का सम्पादन डा० नेमिचन्द्र शास्त्री, आरा कर रहे थे।

इन चरित काव्यो के अतिरिक्त अन्य अनेक ग्र थ ऐसे है जिनमे भगवान महावीर की जीवन-कथा का वर्णन आया है, पर अभी अपभ्र श साहित्य अधकार मे पडा है, किसी दृष्टिसपन्न अनुसधाता की प्रतीक्षा मे ' सभव है जैसे जसे अपभ्र श साहित्य पर खोज होगी महावीर से सम्बन्धित नये काव्य और मध्ययुग मे प्रचलित कुछ नई घटनाए भी प्रकाश मे आये।

राजस्थानी-साहित्य

हम बता चुके है कि अपभ्र श अनेक भारतीय भाषाओ की आदि कडी है। जिसे हम पुरानी हिन्दी, पुरानी राजस्थानी और जूनी गुजराती कहते है, वह अपभ्र श का आखिरी रूप ही है। अपभ्र श भाषा से ही अन्य देशी भाषाओ का विस्तार हुआ और अनेक धाराए प्रवाहित हुई।

राजस्थानी भाषा का सीधा सम्बन्ध अपभ्र श से है। जूनी गुजराती इसकी बहन है। प्राचीन राजस्थानी रासो आदि मे गुजराती का काफी प्रभाव है। कुछ शब्द फारसी-अरबी के भी उसमे आगये है जो कि उस युग के मुगल शासको की भाषा थी।

राजस्थानी साहित्य जिसे डिंगल साहित्य भी कहा जाता है, अधिकतर वीररस के लिए प्रसिद्ध है किंतु यह भाषा इतनी मधुर और लचकदार है कि जहा वीर रस का अस्खलित प्रवाह इसमे प्रवाहित हुआ है, वहा पर शृ गार-रस, शात-रस (करुण-रस) आदि की रसधारा मे भी सर्वथा समर्थ सिद्ध हुई है। श्रुतिमाधुर्य के साथ शब्दो की लचक इस भाषा की अपनी विशिष्टता है। राजस्थानी भाषा मे भक्तिसाहित्य भी प्रचुर मात्रा मे लिखा गया है। चरित कथाए भी 'रास' के नाम से विशाल सख्या मे लिखे गये है। यहा पर सिर्फ भगवान महावीर से सम्बन्धित राजस्थानी साहित्य की एक सामान्य सी झलक प्रस्तुत की जा रही है।

महावीर रास (वर्द्धमान रास)

महावीर रास के रचयिता श्री कुमुदचन्द्र है। उन्होने इसकी रचना राजस्थानी भाषा मे की है। सकलकीर्ति रचित महावीर चरित का आधार लिया गया है।

वर्धमान पुराण

वर्धमान पुराण के रचयिता कवि नवलशाह है। कथानक का मूल आधार सकलकीति है। ग्रन्थ की रचना दोहा, चौपाई, सोरठा, गीत, जोगी-रासा, सवैया आदि अनेक छन्दो मे की गई है।

महावीर नो रास

इसके रचयिता पद्मकवि है, जो हिन्दी के भी अच्छे विद्वान थे, भट्टारक शुभचन्द्र के शिष्य थे। इसमे भगवान महावीर के जीवन का सुविस्तृत काव्य-निबद्ध वर्णन मिलता है। पाण्डुलिपि ६५ पृष्ठ की है। उसका लखनकाल स० १८९१ है और रचनाकाल स० १६०९ है।

वर्द्धमान रास

इसके रचयिता वर्द्धमान कवि है, जो भट्टारक वाद भूषण के शिष्य थे। काव्य दृष्टि से यह भी उत्तम रचना कही जा सकती है। १६६५ मे इसकी रचना की गई।

वर्धमान पुराण

यह महत्वपूर्ण रचना नवलराय जी की है। जिसे कवि ने स० १६९१ के अगहन मास मे पूर्ण किया था। रचनाकर ने कवि सकलकीर्ति का उल्लेख किया है, जिसकी प्रेरणा से कवि ने अपने पुत्र के सहयोग से यह पुराण लिखा था। **"पिता पुत्र मिलि रच्यो पुराण"** ऐसा उल्लेख स्वय कवि ने किया है।

वर्धमान चरित

इसके रचयिता केशरीसिह जयपुर नगर के निवासी थे। यह पुराण मूलत भट्टारक सकलकीर्ति कृत वर्धमान पुराण की भाषा-वचनिका है। यह रचना बालचन्द्र छावडा के पौत्र ज्ञानचन्द्र के आग्रह पर की गई थी। इसकी भाषा प० दौलतरामजी कासलीवाल की गद्य कृतिया जैसी ही है।

वर्धमान सूचनिका

यह बुधजन जी की लघु कृति है। जिसमे भगवान महावीर का परिचयात्मक वर्णन दिया गया है।

महावीर पुराण

यह पुराण मनसुखसागर द्वारा निर्मित है। पर यह कोई स्वतत्र रचना नही है। यह शिखरमहात्म्य भाषा का ही अन्तिम अध्याय है। इस अध्याय मे ६६ पद्य है। मनसुख सागर, लोहाचार्य की पट्ट परपरा के भट्टारक महीचन्द्र की परम्परा मे होने वाले भट्टारक गुलाबकीर्तिके प्रशिष्य व ब्रह्म सतोष सागर के शिष्य थे।

महावीर नी विनती

भट्टारक शुभचन्द्र कृत यह एक स्तवन है। जिसमे भगवान महावीर का गुणानुवाद है।

'महावीर छन्द' भी इसी तरह की लघु कृति है, जिसमे महावीर के गर्भ कल्याणक का वर्णन है। इसमे १६ स्वप्नो का भी वर्णन है। भाषा सस्कृत-निष्ठ है।

राजस्थानी भाषा मे भगवान महावीर के अन्य भी सकडो चरित्र लिखे

गये होगे, चू कि राजस्थान के भक्त और सन्त प्राय कवि हुए है, और वे अपने आराध्य की पावन-जीवन कथा से अपनी सरस्वती को पवित्र न करे यह कैसे सभव है ? पर विशेष परिचय उपलब्ध न होने से अधिक लिख पाना सभव नही है।

आधुनिक-साहित्य

प्राचीन युग मे भगवान महावीर पर प्राकृत, अपभ्र श और सस्कृत तथा राजस्थानी एव अन्य प्रान्तीय भापाओ मे अनेकानेक जो ग्रन्थ लिखे गये है, उन सभी का परिचय देना साधनाभाव के कारण सभव नही है तथापि जिन ग्रन्था का परिचय दिया गया है उनसे एक सामान्य भाकी तो मिल ही सकती है। वर्तमान युग मे हिन्दी, गुजराती व आग्लभापा मे शोधप्रधान व जनसाधारण के उपयोगी बहुत से ग्रन्थ प्रकाशित हुए है और महावीर की पच्चीसवी निर्वाण शताब्दी के उपलक्ष्य मे बहुत से अधिकारी विद्वानो के द्वारा लिखे भी जा रहे है। मुख्य ग्रन्थो का परिचय देकर शेष ग्रन्थो की सूची दे रहे है।

श्री महावीर स्वामी चरित्र[1]

श्री महावीर स्वामी चरित्र, (लेखक स्वर्गस्थ वकील नन्दलाल लल्लू भाई बडोदरा,) इस ग्रन्थ का प्रथम सस्करण १९२५ मे प्रकाशित हुआ था। लेखक की भापा गुजराती है। लेखक ने त्रिपष्टिशलाका पुरुष चरित्र का मुख्य आधार लिया है। साथ ही राजा श्रेणिक, उनके पुत्र व रानियो का परिचय प्रदान करने के लिए अन्तकृद्दशाग, अनुत्तरोपपातिक, ज्ञातृधर्म कथा आदि का उपयोग किया है। लेखक की शैली सुन्दर है।

महावीर कथा[2]

प्रस्तुत ग्रन्थ के लेखक गोपालदास जीवाभाई पटेल है। इसकी प्रथम आवृत्ति सन् १९४१ मे और द्वितीय आवृत्ति मे सन् १९५० मे प्रकाशित हुई। प्रामाणिक महावीर चरित्र लिखने की कल्पना से ही प्रस्तुत ग्रन्थ का प्रणयन

---

१ मुक्तिकमल जैन मोहनमाला, कोठीपोल बडोदरा

२ गुजरात विद्यापीठ, नवजीवन कार्यालय, अहमदाबाद

है। महावीर की कथा को रसप्रद बनाने का लेखक ने प्रयास किया है। यह ग्रन्थ चार खण्डो मे विभाजित है। प्रथम खण्ड मे महावीर के मुख्य-मुख्य पूर्व भव दिये गये है। द्वितीय खण्ड मे जन्म से लेकर परिनिर्वाण तक की घटनाएँ है। तृतीय खण्ड मे महावीर के द्वारा कथित पन्द्रह दृष्टान्त कथाएँ दी गई है और चतुर्थ खण्ड मे, उनके उपदेशो पर प्रकाश डाला गया है। इस प्रकार ग्रन्थ उपयोगी व पठनीय है।

भगवान महावीर[3]

इस ग्रन्थ के लेखक चन्द्रराज भण्डारी है। यह ग्रन्थ चार खण्डो मे विभक्त है। प्रथम खण्ड ऐतिहासिक है, जिसमे निम्न विषयो पर प्रकाश डाला है- (१) उस समय का भारतवर्ष, (२) उस समय के बडे नगर, (३) ग्राम रचना (४) आर्थिक अवस्था, (५) सामाजिक स्थिति, (६) वर्णाश्रम-धर्म का इतिहास, (७) धार्मिक स्थिति, (८) बौद्ध धम का उदय, (९) आजाविक मम्प्रदाय (१०) उस समय के दूसरे सम्प्रदाय, (११) जैन और बौद्ध धर्म मे सघर्ष, (१२) क्या महावीर जैनधर्म के मूल सस्थापक थे (१३) जैनधर्म की उन्नति और समाज पर प्रभाव, (१४) भगवान महावीर का काल निर्णय, (१५) जन्मभूमि, (१६) माता पिता, (१७) जन्म, (१८) जैन धर्म और बौद्ध धर्म पर तुलनात्मक दृष्टि।

द्वितीय खण्ड मनोवैज्ञानिक है। प्रारम्भ मे उस समय की मनोवैज्ञानिक स्थिति का चित्रण करने के पश्चात् महावीर का बाल्यकाल से लेकर सक्षेप मे निर्वाण तक का परिचय दिया है। तृतीय पौराणिक खण्ड है। इसमे महावीर के पूर्वभव आदि पर प्रकाश डाला है। चतुर्थ दार्शनिक खण्ड म अहिसा और अनेकान्त आदि विषयो पर चर्चा की गई है। इस प्रकार महावीर पर ऐतिहासिक, मनोवैज्ञानिक दृष्टि से चिन्तन किया है। भाषा हिन्दी है, विक्रम स० १९८१ मे यह प्रकाशित हुई है।

श्री महावीर चरित्र[4]

इसके लेखक स्थानकवासी मुनि श्री हर्षचन्द्रजी है। इसका प्रथम सस्करण १९२९ व द्वितीय सस्करण १९४५ मे प्रकाशित हुआ है। भगवान महावीर पर सक्षेप मे प्रकाश डाला है। भाषा गुजराती है।

---

३ श्री महावीर ग्रन्थ प्रकाशन मन्दिर, भानपुरा (होलकर राज्य)

४ शाह नानालाल धरमशी, बुकसेलर एण्ड पब्लिशर, भावनगर (गुजरात)

श्री वर्धमान चरित्र[५]

इसके लेखक उपाध्याय श्री आत्मारामजी महाराज के स्वर्गीय सुशिष्य ज्ञानचन्द्र जी है। जिन्होने प्राचीन ग्रन्थो के आधार से ही सक्षेप मे महावीर पर लिखा है।

भगवान महावीर का आदर्श जीवन[६]

इस ग्रन्थ के लेखक स्थानकवासी मुनि जैनदिवाकर चौथमलजी महाराज है। जिन्होने भगवान महावीर पर विस्तार से लिखा है। प्रारम्भ मे तेईस तीर्थकरो का परिचय दिया है। बहत्तर कलाओ पर विस्तृत प्रकाश डाला है। अन्त मे जैन तत्वज्ञान पर भी सक्षेप मे लिखा है।

श्रमण भगवान महावीर[७]

प्रस्तुत ग्रन्थ के लेखक पुरात्त्ववेत्ता मुनि श्री कल्याणविजय जी है। आवश्यक निर्युक्ति व चूर्णि आदि मे भगवान महावीर के छद्मस्थ अवस्था तक का विहार व वर्षावास का वर्णन पूर्ण रूप से मिलता है, पर केवलज्ञान के बाद का नही। मुनि श्री ने इस कमी को प्राचीन ग्रन्थो के प्रकाश मे और अपनी मौलिक कल्पना से पूर्ण किया है। उन्होने छियालीस वर्षावास की सूची दी है। भगवान कहा पधारे और किस प्रकार प्रचार आदि हुआ वह भी लिखा है। प्रस्तुत ग्रन्थ महावीर जीवन पर एक अनूठा ग्रन्थ है। परिशिष्ट मे भौगोलिक क्षेत्रो का भी परिचय दिया है।

तीर्थंकर वर्द्धमान[८]

इसके लेखक श्रीचन्द रामपुरिया है, इन्होने मुख्य रूप से आगम साहित्य के आधार से महावीर के जीवन पर सप्रमाण प्रकाश डाला है। चूर्णि आदि का आधार न लेने से महावीर जीवन के बहुत से महत्त्व पूर्ण प्रसग इसमे नही आए है। द्वितीय खण्ड मे महावीर वाणी का सकलन है।

तीर्थंकर महावीर[९]—भाग—१-२

इस ग्रन्थ रत्न के लेखक इतिहासतत्त्व महोदधि विजयेन्द्रसूरि है।

---

५ मेहरचन्द लक्ष्मणदास जैनी, सस्कृत पुस्तकाध्यक्ष, लाहोर (पजाब)

६ जैनदिवाकर दिव्य ज्योति कार्यालय, ब्यावर

७ कल्याण विजय शास्त्र सग्रह समिति, गढ जालोर

८ हमीरमल पूनमचन्द रामपुरिया, सुजानगढ (बीकानेर)

९ यशोधर्म मन्दिर, १६६ मर्जवान रोड, अधेरी बम्बई ५८

इन्होने मुनि श्री कल्याण विजय जी की शैली का ही वर्षावास की दृष्टि से अनुसरण किया है, पर अनेक ऐतिहासिक नवीन बाते भी उन्होने प्रस्तुत की है। सर्वत्र लेखक की शोध-प्रधान दृष्टि के दर्शन किये जा सकते है। दोनो भाग अत्यन्त महत्त्व पूर्ण है।

आगम और त्रिपिटक एक अनुशीलन[10]

प्रस्तुत ग्रन्थ के लेखक मुनि श्री नगराज जी है। आगम व त्रिपिटक साहित्य के आधार से भगवान महावीर और बुद्ध पर तुलनात्मक दृष्टि से लिखा है। काल-निर्णय प्रकरण और 'त्रिपिटको मे निगण्ठ व निगण्ठ नातपुत्त' प्रकरण बहुत ही शोध प्रधान है।

जैनधर्म का मौलिक इतिहास[11]

इस ग्रन्थ के लेखक आचार्य श्री हस्तीमल जी महाराज है। गन्थ के प्रथम खण्ड मे चोवीस तीर्थकरो का परिचय दिया गया है। भगवान महावार के जोवन पर भी विस्तार से लिखा गया है। मुनिश्री कल्याण विजयजो के श्रमण भगवान् महावीर का विशेप रूप से अनुसरण किया गया है। तथापि अन्य अनेक मौलिक सूझबूझ भी हे।

सन्मति महावीर[12]

इस ग्रन्थ के लेखक श्री सुरेश मुनि जी शास्त्री हे। ग्रन्थ को भापा इतनी प्रवाह पूर्ण है कि पाठक पढते-पढते आनन्द-विभोर हो जाता है।

महावीर सिद्धान्त और उपदेश[13]

उपाध्याय अमर मुनि जी द्वारा लिखित इस छोटा सी पुस्तक मे गागर मे सागर भर दिया गया है।

विश्वज्योति-महावीर[14]

इस पुस्तक के लेखक भी उपाध्याय अमर मुनिजी है। पुस्तक मे जीवन चरित्र प्रधान नही है, विचार प्रधान हे।

---

१० जैन श्वेताम्बर तेरापन्थी महासभा, ३ पोर्चुगीज चर्च स्ट्रीट कलकत्ता १

११ सम्यक्ज्ञान प्रचारक मडल, जयपुर

१२ सन्मति ज्ञानपीठ लोहामण्डी, आगरा—२

१३ सन्मति ज्ञानपीठ आगरा—२

१४ वही।

चार तीर्थंकर[१५]

पुस्तक के लेखक प० सुखलाल जी सघवी है। पुस्तक मे भगवान ऋषभदेव, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ और महावीर पर शोधप्रधान दृष्टि से लिखा गया है। पुस्तक की प्रत्येक पक्ति मे पण्डितजी की बहुश्रुतता व गभीर चिन्तन स्पष्ट रूप से झलक रहा है।

महावीर-वाणी[१६]

महावीर वाणी के सम्पादकीय लेख मे प० बेचरदास दोशी ने महावीर और उनकी महिमा पर प्रकाश डाला है।

वैशाली के राजकुमार तीर्थंकर वर्द्धमान महावीर[१७]

इस ग्रन्थ के लेखक डा० नेमिचन्द्र जैन है। लेखक ने चित्ताकर्षक भाषा मे दिगम्बर परम्परा के अनुसार महावीर के व्यक्तित्व और कृतित्व पर प्रकाश डाला है।

काल्पनिक अध्यात्म महावीर[१८]

प्रस्तुत ग्र थ के लेखक योगनिष्ठ आचार्य श्री बुद्धिसागर जी है। यह ग्र थ तीन भागो मे प्रकाशित हुआ है। ग्र थ मे महावीर जीवन तो मुख्य नही है, पर उन्ही ऐतिहासिक पात्रो के आधार से लेखक ने कमनीय कल्पना के गगन मे विहरण कर महावीर को अध्यात्म रूप मे प्रस्तुत करने का प्रयास किया है।

महावीर . मेरी दृष्टि मे[१९]

आचार्य रजनीश के प्रवचन व प्रश्नोत्तरो का यह सकलन है। आचार्य रजनीश की अपनी शैली है, अपने विचार है। वे प्रत्येक वस्तु पर अपनी दृष्टि से सोचते ह, चिन्तन करते है। महावीर और उनके सिद्धान्तो पर उन्होने अपनी दृष्टि से प्रकाश डाला है। महावीर को वैज्ञानिक दृष्टि से प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। उनके विचारो से सबको सहमत होना आवश्यक नही है।

---

१५ जैन सस्कृति सशोधक मडल, बनारस–५
१६ सर्वसेवा सघ, राजघाट वाराणसी
श्री वीर निर्वाण ग्रन्थ प्रकाशन समिति, ४८ सीतला माता बाजार, इन्दौर–२
श्रीमद् बुद्धिसागर सूरि साहित्य सरक्षक, प्रकाशन समिति, झवेरीवाड, अहमदाबाद
[illegible]लाल बनारसीदास, बगलो रोड, जवाहरनगर दिल्ली ७

इन्होने मुनि श्री कल्याण विजय जी की शैली का ही वर्षावास की दृष्टि से अनुसरण किया है, पर अनेक ऐतिहासिक नवीन बाते भी उन्होने प्रस्तुत की है। सर्वत्र लेखक की शोध-प्रधान दृष्टि के दर्शन किये जा सकते है। दोनो भाग अत्यन्त महत्त्व पूर्ण है।

आगम और त्रिपिटक एक अनुशीलन[१०]

प्रस्तुत ग्रन्थ के लेखक मुनि श्री नगराज जी है। आगम व त्रिपिटक साहित्य के आधार से भगवान महावीर और बुद्ध पर तुलनात्मक दृष्टि स लिखा है। काल-निर्णय प्रकरण और 'त्रिपिटिको मे निगण्ठ व निगण्ठ नातपुत्त' प्रकरण बहुत ही शोध प्रधान है।

जैनधर्म का मौलिक इतिहास[११]

इस ग्रन्थ के लेखक आचार्य श्री हस्तीमल जी महाराज है। ग्रन्थ के प्रथम खण्ड मे चोबीस तीर्थंकरो का परिचय दिया गया है। भगवान महावीर के जीवन पर भी विस्तार से लिखा गया है। मुनिश्री कल्याण विजयजी के श्रमण भगवान् महावीर का विशेष रूप से अनुसरण किया गया है। तथापि अन्य अनेक मौलिक सूझबूझ भी है।

सन्मति महावीर[१२]

इस ग्रन्थ के लेखक श्री सुरेश मुनि जी शास्त्री है। ग्रन्थ की भाषा इतनी प्रवाह पूर्ण है कि पाठक पढते-पढते आनन्द-विभोर हो जाता है।

महावीर सिद्धान्त और उपदेश[१३]

उपाध्याय अमर मुनि जी द्वारा लिखित इस छोटी सी पुस्तक मे गागर मे सागर भर दिया गया है।

विश्वज्योति-महावीर[१४]

इस पुस्तक के लेखक भी उपाध्याय अमर मुनिजी है। पुस्तक मे जीवन चरित्र प्रधान नही है, विचार प्रधान है।

---

१० जैन श्वेताम्बर तेरापन्थी महासभा, ३ पोर्चुगीज चर्च स्ट्रीट कलकत्ता १

११ सम्यक्ज्ञान प्रचारक मडल, जयपुर

१२ सन्मति ज्ञानपीठ लोहामण्डी, आगरा-२

१३ सन्मति ज्ञानपीठ आगरा-२

१४ वही।

चार तीर्थंकर[१५]

पुस्तक के लेखक प० सुखलाल जी सघवी है। पुस्तक मे भगवान ऋषभदेव, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ और महावीर पर शोधप्रधान दृष्टि से लिखा गया है। पुस्तक की प्रत्येक पक्ति मे पण्डितजी की बहुश्रुतता व गभीर चिन्तन स्पष्ट रूप से झलक रहा है।

महावीर-वाणी[१६]

महावीर वाणी के सम्पादकीय लेख मे प० बेचरदास दोशी ने महावीर और उनकी महिमा पर प्रकाश डाला है।

वैशाली के राजकुमार तीर्थंकर वर्द्धमान महावीर[१७]

इस ग्रन्थ के लेखक डा० नेमिचन्द्र जैन है। लेखक ने चित्ताकर्षक भाषा मे दिगम्बर परम्परा के अनुसार महावीर के व्यक्तित्व और कृतित्व पर प्रकाश डाला है।

काल्पनिक अध्यात्म महावीर[१८]

प्रस्तुत ग्र थ के लेखक योगनिष्ठ आचार्य श्री बुद्धिसागर जी है। यह ग्र थ तीन भागो मे प्रकाशित हुआ है। ग्र थ मे महावीर जीवन तो मुख्य नही है, पर उन्ही ऐतिहासिक पात्रो के आधार से लेखक ने कमनीय कल्पना के गगन मे विहरण कर महावीर को अध्यात्म रूप मे प्रस्तुत करने का प्रयास किया है।

महावीर . मेरी दृष्टि मे[१९]

आचार्य रजनीश के प्रवचन व प्रश्नोत्तरो का यह सकलन है। आचार्य रजनीश की अपनी शैली है, अपने विचार है। वे प्रत्येक वस्तु पर अपनी दृष्टि से सोचते ह, चिन्तन करते है। महावीर और उनके सिद्धान्तो पर उन्होने अपनी दृष्टि से प्रकाश डाला है। महावीर को वैज्ञानिक दृष्टि से प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। उनके विचारो से सबको सहमत होना आवश्यक नही है।

---

१५ जैन सस्कृति सशोधक मडल, बनारस–५

१६ सर्वसेवा सघ, राजघाट वाराणसी

१७ श्री वीर निर्वाण ग्रन्थ प्रकाशन समिति, ४८ सीतला माता बाजार, इन्दौर–२

१८ श्रीमद् बुद्धिसागर सूरि साहित्य सरक्षक, प्रकाशन समिति, झवेरीवाड, अहमदाबाद

१९ मोतीलाल बनारसीदास, बगलो रोड, जवाहरनगर दिल्ली ७

भगवान महावीर[20]

इसके लेखक श्री कामताप्रसाद जैन है। लेखक ने दिगम्बर ग्रन्थो के आधार व शोधपरक दृष्टि से महावीर के जीवन पर प्रकाश डाला है।

निर्ग्रन्थ भगवान महावीर

गुजराती साहित्य के महान लेखक जयभिक्खु ने अपनी साहित्यिक भाषा व लाक्षणिक शैली मे प्रस्तुत पुस्तक लिखी है।

युगपुरुष महावीर[21]

प्रस्तुत पुस्तक के लेखक शरदकुमार 'साधक' है। शैली शोध-प्रधान है।

जगदुद्धारक भगवान महावीर[22]

पुस्तक के लेखक वकील अम्बेलाल नारायण जी जोशी है। गुजराती भाषा मे लेखक ने महावीर के जीवन प्रसगो को अङ्कित किया है।

कुण्डलपुर के राजकुमार भगवान महावीर[23]

लेखक जयप्रकाश शर्मा है। प्राचीन ग्रन्थो के आधार से इसमे कितने ही प्रसग मेल नही खाते है।

प्रभु महावीरनु जीवन चरित्र[24]

लेखक स्थानकवासी मुनि श्री अम्बाजी स्वामी है। गद्य-पद्य मिश्रित यह रचना है। लेखक का मूल आधार कल्पसूत्र रहा है। भाषा गुजराती है।

वर्द्धमान (महाकाव्य)[25]

हिन्दी भाषा मे महावीर पर लिखा गया यह प्रथम महाकाव्य है। लेखक दिगम्बर परम्परा से प्रभावित है अत दिगम्बर विचारधारा यत्र-तत्र आई है। इसके रचयिता अनूप कवि है।

---

२० भारतीय दिगम्बर जैन परिषद् पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली

२१ निर्ग्रन्थ प्रकाशन, के० ६६।४० नरहरपुरा, वाराणसी

२२ गुर्जर ग्रन्थ रत्न कार्यालय, गाधी रस्तो, अहमदाबाद

२३ प्रभात पाकेट बुक्स, मेरठ शहर

२४ शाह ललीतचन्द हीराचन्द स्था० जैन उपाश्रय के पास, पोरबन्दर (सोराष्ट्र)

२५ भारतीय ज्ञानपीठ, काशी

वीरायण (महाकाव्य)[२६]

रामचरित मानस की शैली मे गुजराती भाषा मे महावीर पर लिखा गया यह महाकाव्य है।

ज्ञातपुत्र श्रमण भगवान महावीर[२७]

प्रोफेसर हीरालाल रसिकदास कापडिया के महावीर सम्बन्धी लेखो व भाषणो का सग्रह है।

त्रिशलानन्दन महावीर[२८]

रतिलाल मफाभाई शाह ने सक्षेप मे महावीर के जीवन पर प्रकाश डाला है।

श्रमण भगवान श्री महावीरदेवनु जीवन[२९]

मुनि श्री भद्र कर विजय जी ने विहगम दृष्टि से महावीर पर प्रकाश डालने का प्रयास किया है।

महावीर वर्धमान[३०]

डा० जगदीशचन्द्र जैन द्वारा लिखित यह पुस्तक शोधप्रधान है। अत्यन्त सक्षेप मे लिखी है।

भारत की प्रान्तीय भाषाओ मे भी विभिन्न कवियो ने भगवान महावीर के जीवन पर चरित-काव्य, पुराण, रास, गीत व स्तवन लिखकर उनका यशोगान किया है। इसी तरह कथा, चौपाई, बत्तीसी, छत्तीसी, चोढाल्या एव अष्टक के माध्यम से जीवन को विभिन्न दृष्टियो से आका गया है, किन्तु खेद की बात है कि हमारे प्राचीन कवियो की अधिकाश रचनाए शास्त्र-भण्डारो की ही शोभा बढा रही हे और अपनी दुर्दशा पर आसू बहा रही है। उन सभी को भण्डारो की छान-बीन कर निकाला जाय और प्रकाश मे लाया जाय।

उपर्युक्त पक्तियो मे भगवान महावीर का जीवन सूत्र आगम युग से लेकर वर्तमान युग तक किस प्रकार विभिन्न ग्रन्थो मे विकसित होता रहा है, इसकी

---

२६ लाधाजी स्वामी पुस्तकालय, लिमडी (सौराष्ट्र)

२७ श्री नेमि-विज्ञान-कस्तूरसूरि ज्ञान मदिर, मोटो रस्तो, गोपीपुरा, सूरत २

२८ सस्तु साहित्य वधक कार्यालय, ठि० भद्र पासे अहमदाबाद

२९ कल्याण प्रकाशन मन्दिर, पालीताणा (सौराष्ट्र)

३० श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन कान्फरन्स टी० जी० शाह बिल्डिग, पायधुनी बम्बई-३

हल्की-सी झाकी प्रस्तुत की है। साथ ही पाठको को यह भी पता चलेगा कि आगमो मे भगवान महावीर की अनेक जीवन-घटनाए सग्रहीत नही हुई है, किन्तु पश्चाद्वर्ती मनीषी आचार्यों ने अनुश्रुति आदि के आधार पर उन घटना सूत्रो का सकलन किया। महावीर का कथा-सूत्र धीरे-धीरे विकसित हुआ, उसमे अनेक काल्पनिक और विवादास्पद घटनाए भी जुड गई। वर्तमान युग मे तो ऐसा लगता है, अनेक ऐतिहासिक मान्यताओ का अपलाप कर नई घटनाए रची जा रही है, और चरित्र लेखक अपने को नई कल्पना का उद्भावक सिद्ध करने का प्रयत्न कर रहा है।

हमारा अभिमत है, महावीर ऐतिहासिक पुरुष है—अत उनके जीवन से सम्बद्ध वे ही घटनाए लिखी जानी चाहिए जिनका कुछ ऐतिहासिक आधार हो। महापुरुषो के विषय मे मनगढत कल्पनाए चाहे वह सुन्दर ही हो, उनका महत्त्व नही बढाती।

मैंने प्रस्तुत ग्र थ मे यही प्रयत्न किया है कि भगवान महावीर के जीवन प्रसगो को पाठको के समक्ष रोचक शैली मे तो प्रस्तुत किया जाय, किन्तु ऐतिहासिकता का अपलाप नही होना चाहिए।

● ●

बौद्ध साहित्य में महावीर

भगवान महावीर के सम्बन्ध मे वैदिक साहित्य मे कोई विशेष चर्चा उपलब्ध नही होती, न तो उनके समकालीन साहित्य मे और न उत्तरवर्ती साहित्य मे। इसका भी एक खास कारण माना जाता है—भगवान महावीर के युग मे वैदिक प्रतिभा बहुत दुर्बल हो गई थी। उपनिषद्काल तक तो उसमे आध्यात्मिक तेज था किन्तु उसके पश्चात क्रियाकाडो की जडता से वह कु ठित प्राय होने लग गई, और विशेप कर महावीर की विद्यमानता मे तो ऐसा कोई वैदिक विद्वान नही मिलता जो उनके सम्बन्ध मे कोई विशेष चर्चा करता हो, उनके दर्शन और चरित्र की आलोचना करता हो, उत्तरवर्ती वदिक साहित्य ने भी महावीर की उपेक्षा की। इसका मुख्य कारण यही हो सकता है कि तब तक श्रमण परम्परा वैदिक परम्परा के समक्ष एक प्रभावशाली प्रतिस्पर्धी के रूप मे आकर उपस्थित हो गई थी। वैदिक यज्ञ-याग, ब्राह्मणवाद के विरोध के कारण वैदिक विद्वान श्रमणो से द्वेष करते थे, उनके विरोध मे और मुख्यत दार्शनिक सिद्धान्तो के विरोध मे तर्क-वितर्क देते थे। भगवान महावीर का व्यक्तित्व तो निर्विवाद एव अत्यन्त निर्मल था, अत उसकी चर्चा करना, उसके विषय मे कुछ कहना, विकट समस्या थी, प्रशसा कर नही सकते और निन्दा करने के सूत्र उन्हे मिले नही होगे। हा जहाँ तहाँ श्रमणो पर आक्षेप जरूर किये गये, पर भगवान महावीर के सम्बन्ध मे वैदिक साहित्य प्राय मौन ही रहा है।

बौद्ध साहित्य मे ऐसी स्थिति नही है। इसका कारण है—बुद्ध भगवान महावीर के समकालीन थे, दोनो का प्रचार व विहार क्षेत्र एक ही था, अनेक राजवश दोनो के प्रभाव व सपर्क मे आये। दोनो ही श्रमण परम्परा के दो तेजस्वी महापुरुष थे—और दोनो ही ब्राह्मणवाद व हिंसात्मक यज्ञो के विरोधी। दोनो ने ही वेदो की अपौरुषेयता को चुनौती दी, अत दोनो के दृष्टिकोण मे काफी समानता थी, इसलिए न केवल समय की निकटता, किन्तु चिंतन की निकटता भी उनमे थी। इस कारण यह सभव ही था कि बौद्ध साहित्य

हल्की-सी झाकी प्रस्तुत की है। साथ ही पाठको को यह भी पता चलेगा कि आगमो मे भगवान महावीर की अनेक जीवन-घटनाए सग्रहीत नही हुई है, किन्तु पश्चाद्वर्ती मनीषी आचार्यों ने अनुश्रुति आदि के आधार पर उन घटना सूत्रो का सकलन किया। महावीर का कथा-सूत्र धीरे-धीरे विकसित हुआ, उसमे अनेक काल्पनिक और विवादास्पद घटनाए भी जुड गई। वर्तमान युग मे तो ऐसा लगता है, अनेक ऐतिहासिक मान्यताओ का अपलाप कर नई घटनाए रची जा रही है, और चरित्र लेखक अपने को नई कल्पना का उद्भावक सिद्ध करने का प्रयत्न कर रहा है।

हमारा अभिमत है, महावीर ऐतिहासिक पुरुष है—अत उनके जीवन से सम्बद्ध वे ही घटनाए लिखी जानी चाहिए जिनका कुछ ऐतिहासिक आधार हो। महापुरुषो के विषय मे मनगढत कल्पनाए चाहे वह सुन्दर ही हो, उनका महत्त्व नही बढाती।

मैंने प्रस्तुत ग्रथ मे यही प्रयत्न किया है कि भगवान महावीर के जीवन प्रसगो को पाठको के समक्ष रोचक शैली मे तो प्रस्तुत किया जाय, किन्तु ऐतिहासिकता का अपलाप नही होना चाहिए।

● ●

बौद्ध साहित्य में महावीर

भगवान महावीर के सम्बन्ध मे वैदिक साहित्य मे कोई विशेष चर्चा उपलब्ध नही होती, न तो उनके समकालीन साहित्य मे और न उत्तरवर्ती साहित्य मे। इसका भी एक खास कारण माना जाता है—भगवान महावीर के युग मे वैदिक प्रतिभा बहुत दुर्बल हो गई थी। उपनिषद्काल तक तो उसमे आध्यात्मिक तेज था किन्तु उसके पश्चात क्रियाकाडो की जडता से वह कु ठित प्राय होने लग गई, और विशेष कर महावीर की विद्यमानता मे तो ऐसा कोई वैदिक विद्वान नही मिलता जो उनके सम्बन्ध मे कोई विशेष चर्चा करता हो, उनके दर्शन और चरित्र की आलोचना करता हो, उत्तरवर्ती वदिक साहित्य ने भी महावीर की उपेक्षा की। इसका मुख्य कारण यही हो सकता है कि तब तक श्रमण परम्परा वैदिक परम्परा के समक्ष एक प्रभावशाली प्रतिस्पर्धी के रूप मे आकर उपस्थित हो गई थी। वैदिक यज्ञ याग, ब्राह्मणवाद के विरोध के कारण वैदिक विद्वान श्रमणो से द्वेष करते थे, उनके विरोध मे और मुख्यत दार्शनिक सिद्धान्तो के विरोध मे तर्क-वितर्क देते थे। भगवान महावीर का व्यक्तित्व तो निर्विवाद एव अत्यन्त निर्मल था, अत उसकी चर्चा करना, उसके विषय मे कुछ कहना, विकट समस्या थी, प्रशसा कर नही सकते और निन्दा करने के सूत्र उन्हे मिले नही होगे। हा जहा तहाँ श्रमणो पर आक्षेप जरूर किये गये, पर भगवान महावीर के सम्बन्ध मे वैदिक साहित्य प्राय मौन ही रहा है।

बौद्ध साहित्य मे ऐसी स्थिति नही है। इसका कारण है—बुद्ध भगवान महावीर के समकालीन थे, दोनो का प्रचार व विहार क्षेत्र एक ही था, अनेक राजवश दोनो के प्रभाव व सपर्क मे आये। दोनो ही श्रमण परम्परा के दो तेजस्वी महापुरुष थे—और दोनो ही ब्राह्मणवाद व हिंसात्मक यज्ञो के विरोधी। दोनो ने ही वेदो की अपौरुषेयता को चुनौती दी, अत दोनो के दृष्टि-कोण मे काफी समानता थी, इसलिए न केवल समय की निकटता, किन्तु चितन की निकटता भी उनमे थी। इस कारण यह सभव ही था कि बौद्ध साहित्य

मे भगवान महावीर की चर्चा बार-बार होती । हा यह एक आश्चर्य की बात लगती है कि जैन आगमो मे तथागत बुद्ध की कोई विशेष चर्चा कही दृष्टिगत नही होती । इसका कारण विद्वानो ने यह बताया है कि महावीर बुद्ध से ज्येष्ठ थे, उनकी परम्परा और दर्शन बुद्ध से अधिक प्राचीन और जनव्यापी थे, अत उन्होने उस नई परम्परा के प्रति उपेक्षा बताई, जबकि बुद्ध ने स्थान-स्थान पर महावीर के अनुयायियो को अपनी ओर खीचने का प्रयत्न किया, इसलिए उनकी चर्चा भी की । चर्चा मे अधूरापन, साम्प्रदायिक कटुता अवश्य ही दृष्टिगत होती है, किन्तु उस भिन्नता को दूर रखकर हमे यहा यही बताना अभीष्ट है कि बौद्ध साहित्य मे भगवान महावीर की किन किन ग्रन्थो मे किस रूप मे चर्चा की गई है । विद्वान उसमे से सत्य को स्वय ही ग्रहण कर लेगे—हसो यथा क्षीरमिवाम्बुमध्यात् । बस इसी अपेक्षा के साथ यहा बौद्ध साहित्य से महावीर पर एक विहगम अवलोकन प्रस्तुत है—

बौद्ध साहित्य मे भगवान् महावीर का व्यवस्थित व क्रमबद्ध जीवन । चरित्र नही मिलता है । समग्र बौद्ध साहित्य का परिशीलन करने पर ऐसे इकावन समुल्लेख प्राप्त होते हे जो निगण्ठ नातपुत्त व उनके शिष्यो से सम्बन्धित ह । उन सभी उल्लेखो का सकलन-आकलन मुनि श्री नगराज जी ने "आगम और त्रिपिटक एक अनुशीलन ग्रथ" मे किया हे ।[1] इन इकावन समुल्लेखो मे बत्तीस तो मूल त्रिपिटको के है । मज्झिमनिकाय के दस हे, दीघ-निकाय के चार हे, अगुत्तर निकाय व सयुक्त निकाय के सात-सात हे । सुत्तनिपात मे दो और विनयपिटक मे दो सन्दर्भ मिलते हे । इन उल्लेखो मे अनेक विपयो पर बुद्ध व निर्ग्रन्थो के बीच की चर्चाए, घटनाए व उल्लेख हैं ।

कितने ही सन्दर्भो मे आचार विषयक चर्चा है । निर्ग्रन्थो के चातुर्याम सवर पर मुख्य रूप से चर्चा है । प्राणातिपात, मृषावाद, चौर्य व अब्रह्मचर्य की निवृत्ति रूप चार याम बताये है ।[2] और किन्ही स्थलो मे कच्चे पानी और

---

१ त्रिपिटक साहित्य मे निगण्ठ व निगण्ठ नात-पुत्त, प्रकरण पृ० ४०२-५०८

२ (क) सयुत्त निकाय, नाना तित्थिय सुत्त, २।३।१०

(ख) सयुत्त निकाय, सख सुत्त ४०।८

(ग) अगुत्तर निकाय, पचक निपात ५।२८।८।१७

(घ) मज्झिम निकाय, उपालि सुत्त २।१।६

पापो की निवृत्ति रूप चार याम बताए है।[3] एक सन्दर्भ मे यह प्रश्न उठाया गया है कि जिसमे दूसरो को अप्रिय लगे, इस प्रकार के वचन बुद्ध बोल सकते है या नही।[4] मासाहार की चर्चा मे निर्ग्रन्थो द्वारा उद्दिष्ट मास की आलोचना की गई है।[5] साधु के बाह्य वेश और आचार के सम्बन्ध म चर्चा है।[6] साधु के द्वारा प्रातिहार्य (दिव्य-शक्ति) का प्रदर्शन अकरणीय बताया गया है जो साधु के आचार के सम्बन्ध मे प्रकाश डालता है।[7] श्रावको के आचार-विचार की चर्चा करते हुए उपोसथ-सम्बन्धी विवरण दिया गया है।[8]

कितने ही सन्दर्भ तत्त्व-चर्चा से सम्बन्धित है। निर्ग्रन्थो की तपस्या[9] और कर्मवाद[10] की चर्चा अनेक स्थानो पर की गई है, जिसमे तप से कर्म-निर्जरा व दुःख नष्ट की बात पर चिन्तन किया है। दीर्घतपस्वी निर्ग्रन्थ व गृहपति उपालि के साथ बुद्ध मनोदण्ड, वचनदण्ड, और कायदण्ड के सम्बन्ध मे चर्चा करते है।[11] जैन परिभाषा की दृष्टि से भी तप से निर्जरा का विधान किया गया है वह यथार्थ है। दण्ड, वेदनीय, कर्म, आदि शब्द प्रयोग जैन साहित्य मे प्रचुर मात्रा मे प्रयुक्त हुए है। आश्रव[12] अभिजाति (लेश्या)[13]

---

३ दीघनिकाय, सामञ्जफल सुत्त, १।२
४ मज्झिमनिकाय, अभयकुमार सुत्त २।१।८
५ विनयपिटक, महावाग, भैषज्य खन्धक ६।४।८
६ सयुत्त निकाय, जटिल सुत्त ३।२।१
७ विनय पिटक, चुल्लवग्ग, खुद्दक वत्थुखन्धक ५।१।१०। तथा धम्मपद अट्ठकथा ४।२
८ अगुत्तर निकाय, तिक निपात ७०
९ (क) मज्झिम निकाय, चूल दुक्खक्खध सुत्त १।२।४
  (ख) अगुत्तर निकाय, तिक निपात ७४।
  (ग) मज्झिम निकाय, देवदह सुत्त ३।१।१
  (घ) अगुत्तर निकाय, चतुक्क निपात ४।२०।५
  (ङ) अगुत्तर निकाय चतुक्क निपात भाग २, पृ० १९७ से १९९ हिन्दी अनुवाद
१० (क) मज्झिम निकाय देवदह सुत्त ३।१।१
  (ख) अगुत्तर निकाय, चतुक्क निपात ४।२०।५
११ मज्झिम निकाय, उपालि सुत्त २।१।६
१२ अगुत्तर निकाय, वप्प सुत्त ४।२०।५
१३ अगुत्तर निकाय, छक्क सुत्त ६।६।५७

लोक की सान्तता, अनन्तता[१४], अवितर्क अविचार समाधि, (ध्यान)[१५] क्रिया-वाद-अक्रियावाद[१६] पात्र-अपात्रदान[१७] आदि तत्त्वज्ञान सम्बन्धी जो चर्चाए है वे जैन दृष्टिकोण को प्रकट करती है। जैनधर्म सम्मत सर्वज्ञता का अनेक स्थानो पर स्पष्ट उल्लेख हुआ है और समीक्षा भी की है।[१८] कितने ही उल्लेख ऐसे भी मिलते है जिनमे निगण्ठ नातपुत्त के व्यक्तित्व की समीक्षा कर बुद्ध की तुलना मे उनको हीन बताने का प्रयत्न किया गया है।[१९]

इस तरह हम देखते है बौद्ध त्रिपिटक साहित्य मे, जैन आचार, तत्त्व-ज्ञान, भगवान महावीर के व्यक्तित्व, उनकी सघीय स्थिति आदि पर विस्तार से प्रकाश डाला गया है, जिसका ऐतिहासिक दृष्टि से अत्यधिक महत्त्व है। महावीर और बुद्ध दोनो समसामयिक युग पुरुष थे, यह तो हम पूर्व ही कह चुके है।

१४ अगुत्तर निकाय, नवक निपात।९।४।७

१५ सयुत्त निकाय, गामणी सयुत्त ३९।८

१६ विनय पिटक, महावग्ग, भैषज्य खन्धक ६।४।८

१७ मज्झिम निकाय, चूल सच्चक सुत्त।१।४।६

१८ (क) मज्झिम निकाय, खन्दक सुत्त २।३।६
(ख) मज्झिम निकाय, चूल सकुलुदायि सुत्त २।३।९
(ग) अगुत्तर निकाय, तिक निपात ७४

१९ (क) सुत्त निपात, धम्मिक सुत्त, पृ० ७५-७७ हिन्दी अनुवाद
(ख) दीघनिकाय, महापरिनिब्बाण सुत्त २।३
(ग) सयुक्त निकाय दहर सुत्त ३।१।१
(घ) सुत्त निपात, सभिय सुत्त

भगवान महावीर : एक अनुशीलन

द्वितीय खण्ड

० जीवन की सहस्रमुखी साधना

१ भगवान महावीर के पूर्वभव
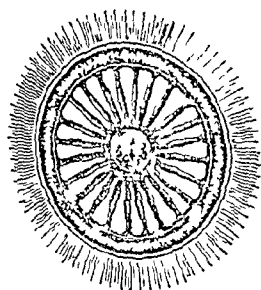
* दो धाराएं

पूर्वभव

* नयसार का प्रथम भव (१)
* तुलना
* मरीचि (त्रिदण्डी) (३)
* कौशिक (५)
* पुण्यमित्र (६)
* अग्निद्योत (८)
* अग्निभूति (१०)
* भारद्वाज (१२)
* स्थावर (१४)
* परिव्राजक के छह भव
* विश्वभूति (१६)
* समीक्षा
* त्रिपृष्ठ वासुदेव (१८)
* प्रियमित्र चक्रवर्ती (२२)
* नन्दन राजकुमार (२५)
* तीर्थंकर नामकर्म का उपार्जन
* देवानन्दा के गर्भ में (२७)
* पूर्वभव एक तुलना

भगवान महावीर के पूर्वभव

दो धाराए

भारतीय सस्कृति मूलत दो सास्कृतिक धाराओ का समन्वित प्रवाह है—वे है ब्राह्मण सस्कृति और श्रमण सस्कृति। श्रमण और ब्राह्मण—दोनो ही सस्कृतियो का मूल केन्द्र अध्यात्म रहा है, फिर भी दोनो की चितन पद्धति और जीवन शैली मे काफी अन्तर है। वैसे तो ब्राह्मण सस्कृति का लक्ष्य ब्रह्म (ज्ञान की उपलब्धि) है और श्रमण सस्कृति का लक्ष्य सम (समता की पूर्ण उपलब्धि) है। ब्रह्म और सम दोनो के आध्यत्मिक स्वरूप मे कोई विशेष अन्तर नही है, किंतु लक्ष्य की दृष्टि से काफी अन्तर आ जाता है। ब्राह्मण सस्कृति मूलत कर्मकाडप्रधान है, श्रमणसस्कृति त्यागप्रधान। ब्राह्मण सस्कृति के जीवन का चरम लक्ष्य स्वर्गीय वैभव की प्राप्ति है जबकि श्रमण सस्कृति का अतिम ध्येय सर्व बधनो से मुक्त होकर मोक्ष-अर्थात् आत्म-स्वरूप की उपलब्धि। ब्राह्मण सस्कृति मे जीव और ईश्वर दो भिन्न तत्त्व है, कही-कही जीव को ईश्वर का अश माना है, जबकि श्रमण सस्कृति मे आत्मा और परमात्मा मे कोई मौलिक भेद नही माना है। आत्मा की शुद्ध निर्विकार दशा ही परमात्मा है, और उस शुद्ध स्वरूप मे आत्मा की अव-स्थिति करने के लिए ही सब प्रयत्न—साधना है। एक दृष्टि से ब्राह्मण सस्कृति समाज और राष्ट्र की सस्कृति है और श्रमणसस्कृति व्यक्ति की आध्यात्मिक साधना की सस्कृति है।

ब्राह्मणसस्कृति के चितन ने मीमासादर्शन, वेदान्तदर्शन, वैशेपिक-दर्शन, और न्यायदर्शन को जन्म दिया। श्रमणसस्कृति के चितन ने जैन-दर्शन, बौद्धदर्शन, साख्यदर्शन, योगदर्शन, और आजीवकदर्शन को जन्म दिया। ब्राह्मणसस्कृति मे गृहस्थाश्रम को अत्यधिक महत्त्व दिया है, उसे सभी आश्रमो मे प्रमुख माना है किन्तु श्रमणसस्कृति ने गृहस्थ जीवन से भी श्रमण जीवन को अधिक महत्त्व दिया है और उससे ही मोक्ष की प्राप्ति

मानी है, श्रमण के विचार और आचार का अनुगमन करने वाली परम्परा श्रमण संस्कृति है।[1]

कपिल ने साख्य सूत्र मे और पतजलि ने योग-सूत्र मे जीवनोत्थान के लिए सन्यास को प्रमुख स्थान दिया है। उच्चतम साधकों के लिए उन्होंने सन्यासी, परिव्राजक, और योगी शब्द का प्रयोग किया है, किन्तु 'श्रमण' शब्द का नही। अर्थ की दृष्टि से विशेष अन्तर नही है। साख्य-दर्शन के सन्यासी, योग दर्शन के योगी, और श्रमणसंस्कृति के श्रमण इन तीनों का अन्तिम लक्ष्य यही है कि जीवन का चरम विकास कर अनन्त आनन्द की उपलब्धि की जाय। भाषा, परिभाषाओं मे अन्तर होने पर भी सन्यास धर्म को प्रमुखता देने के कारण साख्य और योग श्रमणसंस्कृति की ही शाखाएं मानी गई है। आजीवक मत भी श्रमणसंस्कृति का अग रहा है, किन्तु आज उसकी परम्पराए लुप्त और विस्मृत हो चुकी है। इस प्रकार श्रमणसंस्कृति की परिधि बहुत ही विस्तृत रही है।

आज श्रमण संस्कृति से जैन और बौद्ध दोनों परम्पराओं का ही परिज्ञान होता है।

ब्राह्मण संस्कृति अवतारवादी रही है तो श्रमणसंस्कृति उत्तारवादी। ब्राह्मण संस्कृति प्रत्येक महापुरुष को ईश्वर का पूर्णावतार व अशावतार मानती रही है, उनके द्वारा किये गये आचरण की मीमासा न करके उन समस्त कृत्यों को लीला का नाम देकर उस पर श्रद्धा का आवरण डालने का प्रयत्न करती रही है। श्रमण संस्कृति के उन्नायकों ने अपने आपको कभी भी ईश्वर का पूर्णावतार व अशावतार नही कहा है। उसका यह स्पष्ट मन्तव्य है कि कोई भी ईश्वर जन्म लेकर अधर्म को नष्ट नही करता। शुद्ध स्थिति से अशुद्ध स्थिति मे नही आ सकता। ईश्वर का मनुष्य के रूप मे अवतरण—अर्थात् ह्रास नही होता, किन्तु मनुष्य का ईश्वर के रूप मे उत्तरण-विकास होता है। अवतार का अर्थ है नीचे उतरना और उत्तार का अर्थ है ऊपर चढना। अवतारवादी परम्परा मे ईश्वर मानव के रूप मे नीचे उतरता है और उत्तारवादी परम्परा मे मानव अपना आध्यात्मिक विकास कर ईश्वर बन सकता है।

जैन तीर्थंकरों का जीवन इस बात का ज्वलत प्रमाण है। भगवान् महावीर के जीवन के वे सुनहले चित्र हमारे सामने है, उन्होंने साधना काल

---

१ श्रमण संस्कृति सिद्धान्त और साधना, पृ-२६

मे जो सयम-साधना, तप । आराधना और मनोमथन कर दोषो का परिहार किया था और तीर्थंकर बने थे। ऐसी साधना की प्रक्रिया अवतारवाद की परम्परा मे नही है। वैदिक सस्कृति की दृष्टि से राम और कृष्ण, महावीर तथा बुद्ध की तरह साधना नही करते हैं, उनके जीवन मे साधना का कोई महत्त्व नही है क्योंकि वे जन्म के साथ ही पूर्ण पुरुष है, निर्दोष है, मुक्त है।

श्रमण सस्कृति का यह मन्तव्य है कि यह जाव अनादि काल से इस विराट् विश्व मे परिभ्रमण कर रहा है। जब वह ससार से विमुख होकर निर्वाण मार्ग की ओर अग्रसर होता है तब वह अपने मे रहे हुए दोषो का परिष्कार करता है और नर से नारायण बनता है, आत्मा से परमात्मा बनता है।

भगवान महावीर के पूर्व-भव

आध्यात्मिक उत्क्रान्ति की दृष्टि से सम्यग् दर्शन का अत्यधिक महत्त्व रहा है, जिसे दृष्टिलाभ या बोधिलाभ भी कहते है। यह प्रगति का प्रथम सोपान है। जब जीव उसे एक बार प्राप्त कर लेता है तो वह परित-ससारी हो जाता है। भगवान् महावीर के जीव ने अन्य जीवो की भाति अनेक जन्म-मरण (भव) किये है, उनकी परिगणना करना सभव नही है। किन्तु जब भगवान् महावीर के जीव ने सर्वप्रथम बोधिलाभ प्राप्त किया तो वे परित-ससारी हो गए, आत्मसाधना की एक दिशा उन्हे मिल गई, अत तभी से उनके भवो की गणना यहा की गई है।

भगवान् महावीर के जीवन की परिचय-रेखा सर्वप्रथम आचाराग[२] और कल्पसूत्र[३] मे उपलब्ध होती है। पर वहा पर भगवान् महावीर ने कब दृष्टि-लाभ प्राप्त किया, इस सम्बन्ध मे किसी भी प्रकार की सूचना नही है और न उनके पूर्व-भवो के सम्बन्ध मे ही कोई उल्लेख है। उनमे सिर्फ भगवान् महावीर का जीव दसवे देवलोक से च्युत होकर अन्तिम भव मे मनुष्य बना इतना-सा उल्लेख है, पर देव भव से पहले वे कहा थे, और कहा से आये थे, इस सम्बन्ध मे कोई वर्णन नही मिलता।

समवायाग मे 'श्रमण भगवान महावीर तीर्थंकर भवग्रहण से पूर्व छठे भव मे पोटिल्ल थे और वहाँ पर एक करोड वर्ष तक श्रामण्य पर्याय का

---

२ आचाराग, भावना, अ० १५, गद्यपद ३, आयारो तह आयार चूला पृ० ३२९

३ कल्पसूत्र

पालन किया था[४] यह उल्लेख है। परन्तु वहा पर उन्होने सम्यग्दर्शन प्राप्त किया, यह उल्लेख नही है और न वहा पर छह भवो के नाम ही बताये गये है।

भगवान महावीर के जीव ने सबसे पहले सम्यग्दर्शन किस भव मे प्राप्त किया, इसकी सूचना सर्वप्रथम आवश्यकनिर्युक्ति मे मिलती है। पण्डित श्री दलसुख मालवणिया का मन्तव्य है कि आवश्यकनिर्युक्ति के भी अनेक सस्करण हुए है, उसमे सबसे प्राचीनतम सस्करण मूलाचार है, उसमे इस प्रकार की सूचना नही है।[५] पर वर्तमान मे जो आवश्यकनिर्युक्ति है उसमे यह सूचना है, महावीर सम्बन्धी जो ग्रन्थ है उन सभी से वह प्राचीन है, इसमे कोई सशय नही है।[६]

आवश्यकनिर्युक्ति मे जिनका सकेत किया गया है उन्ही का विस्तार बाद मे विशेषावश्यकभाष्य, आवश्यकचूर्णि, आवश्यक हरिभद्रीयवृत्ति, आवश्यकमलयगिरिवृत्ति, चउपन्न महापुरिसचरिय, महावीरचरिय, त्रिषष्टि शलाकापुरुष चरित्र और कल्पसूत्र की विभिन्न टीकाओ मे किया गया है।

दिगम्बरपरम्परा मे महावीर के पूर्वभवो का उल्लेख सर्वप्रथम उत्तरपुराण मे हुआ है, उसी का अनुसरण असग कवि ने श्री वर्धमान चरित मे, भट्टारक सकलकीर्ति ने वीर वर्धमान चरित मे, रइधू ने महावीर चरित मे, सिरिहर ने वड्ढमाण चरिउ मे, जयमित्तहल्ल ने वर्धमान काव्य मे और कुमुदचन्द्र ने महावीर रास मे किया है।[७]

महावीर के पूर्व भवो के सम्बन्ध मे अगले पृष्ठो मे चर्चा करेगे।

श्वेताम्बर ग्रन्थो मे महावीर के सत्ताईस भवो का निरूपण है[८] और

---

४ समणे भगव महावीरे तित्थगरभवग्गहणाओ छट्ठे पोटिल्ल भवग्गहणे एग वास कोडि सामण्ण परियाग ।

— समवायाग, समवाय १३४, पत्र ६८

५ महावीर प० दलसुख मालवणिया की पाण्डुलिपि

६ (क) जैन साहित्य का बृहद् इतिहास, भाग ३, पृ० ७१

(ख) प्राकृत साहित्य का इतिहास डा० जगदीशचन्द्र जैन,

७ वीरोदयकाव्य प्रस्तावना हीरालाल सिद्धान्तशास्त्री

८ (क) आवश्यक चूर्णि पृ०

(ख) त्रिषष्टि० १०।१

मे जो सयम-साधना, तप। आराधना और मनोमथन कर दोषो का परिहार किया था और तीर्थंकर बने थे। ऐसी साधना की प्रक्रिया अवतारवाद की परम्परा मे नही है। वैदिक संस्कृति की दृष्टि से राम और कृष्ण, महावीर तथा बुद्ध की तरह साधना नही करते है, उनके जीवन मे साधना का कोई महत्त्व नही है क्योकि वे जन्म के साथ ही पूर्ण पुरुष है, निर्दोष हैं, मुक्त हैं।

श्रमण सस्कृति का यह मन्तव्य है कि यह जीव अनादि काल से इस विराट् विश्व मे परिभ्रमण कर रहा है। जब वह ससार से विमुख होकर निर्वाण मार्ग की ओर अग्रसर होता है तब वह अपने मे रहे हुए दोषो का परिष्कार करता है और नर से नारायण बनता है, आत्मा से परमात्मा बनता है।

भगवान महावीर के पूर्व-भव

आध्यात्मिक उत्क्रान्ति की दृष्टि से सम्यग् दर्शन का अत्यधिक महत्त्व रहा है, जिसे दृष्टिलाभ या बोधिलाभ भी कहते है यह प्रगति का प्रथम सोपान है। जब जीव उसे एक बार प्राप्त कर लेता है तो वह परित-ससारी हो जाता है। भगवान् महावीर के जीव ने अन्य जीवो की भाति अनेक जन्म-मरण (भव) किये है, उनकी परिगणना करना सभव नहीं है। किन्तु जब भगवान् महावीर के जीव ने सर्वप्रथम बोधिलाभ प्राप्त किया तो वे परित-ससारी हो गए, आत्मसाधना की एक दिशा उन्हे मिल गई, अत तभी से उनके भवो की गणना यहा की गई है।

भगवान् महावीर के जीवन की परिचय-रेखा सर्वप्रथम आचाराग[2] और कल्पसूत्र[3] मे उपलब्ध होती है। पर वहा पर भगवान् महावीर ने कब दृष्टि-लाभ प्राप्त किया, इस सम्बन्ध मे किसी भी प्रकार की सूचना नहीं है और न उनके पूर्व-भवो के सम्बन्ध मे ही कोई उल्लेख है। उनमे सिर्फ भगवान् महावीर का जीव दसवे देवलोक से च्युत होकर अन्तिम भव मे मनुष्य बना इतना-सा उल्लेख है, पर देव भव से पहले वे कहा थे, और कहा से आये थे, इस सम्बन्ध मे कोई वर्णन नहीं मिलता।

समवायाग मे 'श्रमण भगवान महावीर तीर्थंकर भवग्रहण से पूर्व छठे भव मे पोट्टिल थे और वहा पर एक करोड वर्ष तक श्रामण्य पर्याय का

---

२ आचाराग, भावना, अ० १५, गब्भपद ३, आयारो तह आयार चूला पृ० ३२६

३ कल्पसूत्र

पालन किया था'[4] यह उल्लेख है। परन्तु वहा पर उन्होने सम्यग्दर्शन प्राप्त किया, यह उल्लेख नही है और न वहा पर छह भवो के नाम ही बताये गये है।

भगवान महावीर के जीव ने सबसे पहले सम्यग्दर्शन किस भव मे प्राप्त किया, इसकी सूचना सर्वप्रथम आवश्यकनिर्युक्ति मे मिलती है। पण्डित श्री दलसुख मालवणिया का मन्तव्य है कि आवश्यकनिर्युक्ति के भी अनेक सस्करण हुए है, उसमे सबसे प्राचीनतम सस्करण मूलाचार है, उसम इस प्रकार की सूचना नही है।[5] पर वतमान मे जो आवश्यकनिर्युक्ति है उसमे यह सूचना है, महावीर सम्बन्धी जो ग्रन्थ है उन सभी से वह प्राचीन है, इसमे कोई सशय नही है।[6]

आवश्यकनिर्युक्ति मे जिनका सकेत किया गया है उन्ही का विस्तार बाद मे विशेषावश्यकभाष्य, आवश्यकचूर्णि, आवश्यक हरिभद्रीयवृत्ति, आवश्यकमलयगिरिवृत्ति, चउपन्न महापुरिसचरिय, महावीरचरिय, त्रिषष्टि शलाकापुरुष चरित्र और कल्पसूत्र की विभिन्न टीकाओ मे किया गया है।

दिगम्बरपरम्परा म महावीर के पूर्वभवो का उल्लेख सर्वप्रथम उत्तरपुराण मे हुआ है, उसी का अनुसरण असग कवि ने श्री वर्धमान चरित मे, भट्टारक सकलकीर्ति ने वीर वर्धमान चरित मे, रइधू ने महावीर चरित मे, सिरिहर ने वड्ढमाण चरिउ मे, जयमित्तहल्ल ने वर्धमान काव्य मे और कुमुदचन्द्र ने महावीर रास मे किया है।[7]

महावीर के पूर्व भवो के सम्बन्ध मे अगले पृष्ठो मे चर्चा करेगे।

श्वेताम्बर ग्रन्थो मे महावीर के सत्ताईस भवो का निरूपण है[8] और

---

४ समणे भगव महावीरे तित्थगरभवग्गहणाओ छट्ठे पोटिल्ल भवग्गहणे एग वास कोडि सामण्ण परियाग ।

— समवायाग, समवाय १३४, पत्र ९८

५ महावीर पृ० दलसुख मालवणिया की पाण्डुलिपि

६ (क) जैन साहित्य का बृहद् इतिहास, भाग ३, पृ० ७१

(ख) प्राकृत साहित्य का इतिहास डा० जगदीशचन्द्र जैन,

७ वीरोदयकाव्य प्रस्तावना हीरालाल सिद्धान्तशास्त्री

८ (क) आवश्यक चूर्णि पृ०

(ख) त्रिषष्टि० १०।१

दिगम्बर ग्रन्थो मे तेतीस भवो का।[९] इसके अतिरिक्त नाम, स्थल व आयु आदि के सम्बन्ध मे भी दोनो परम्पराओ मे अन्तर है किन्तु इतना तो स्पष्ट है कि उनका तीर्थंकरत्व अनेक जन्मो की साधना का निश्चित परिणाम था। प्रश्न है कि 'सत्ताईस' या तेतीस भवो का ही वर्णन क्यो है ?

इसका कारण क्या ?

उत्तर है—महावीर के जीव ने नयसार या पुरुरवा के भव मे ही सर्वप्रथम सम्यग्दर्शन प्राप्त किया था, अत उसी भव से उनके भवो की गणना की गई है। नयसार या पुरुरवा के भव के पश्चात् भी अनेक बार अनेक भवो मे सम्यग्दर्शन की उपलब्धि हुई थी।

सत्ताईस या तेतीस भवो की जो परिगणना की गई है, वह भी क्रम-बद्ध नही है। इन भवो के अतिरिक्त भी अनेक बार उन्होने नरक तिर्यच, मनुष्य व देव के और अन्य क्षुद्र भव भी ग्रहण किये है, पर उनका नाम निर्देश नही है। हमारी दृष्टि से भी सत्ताईस या तेतीस भवो की सख्या मे जो अन्तर है उसका मुख्य कारण भी यह रहा है। जहा श्वेताम्बर आचार्य "**ससारे कियन्तमपि कालमटित्वा**"[१०] लिखकर आगे बढ गये है, वहा दिगम्बराचार्य ने कुछ और भवो का वर्णन कर दिया है जिससे सख्या मे वृद्धि हो गई है, पर उन्होने भी सभी भवो का वणन किया हो, ऐसी बात तो नही है। अनेक स्थलो पर उन्होने भी इसी प्रकार लिखा है।[११]

सत्ताईस भवो की परिगणना के भी दो प्रकार ग्रन्थो मे प्राप्त होते है। आवश्यकनियुक्ति, विशेषावश्यकभाष्य चूर्णि, वृत्ति, महावीरचरिय, त्रिपष्टि शलाकापुरुप चरित्र, कल्पसूत्र को टीकाओ मे सत्ताईसवा भव देवानन्दा ब्राह्मणी की कुक्षि मे जन्म लेना बताया है। मूल समवायाग मे तो यह उल्लेख नही है कि महावीर का सत्ताईसवा भव कौन-सा था, पर समवायाग की वृत्ति मे आचार्य अभयदेव ने छब्बीसवा भव देवानन्दा ब्राह्मणी की कुक्षि मे जन्म ग्रहण करने का बताया है और सत्ताईसवा भव त्रिशला रानी

---

९ उत्तरपुराण

१० आवश्यक निर्युक्ति मलयगिरिवृत्ति प० २४८

११ **फलेनाधोगती सर्वा प्रविश्य गुरुदु खभाक्।**
त्रस स्थावरवर्गेषु, सख्यातीतसमाश्चिरम्।
परिभ्रम्य परिश्रान्तस्तदन्ते मगधाह्वये॥

—उत्तर पुराण ७४। पृ० ४४८

के गर्भ मे आने का। आचार्य अभयदेव के अतिरिक्त किसी भी ग्रन्थ मे गर्भ-परिवतन को भव नही माना है। सभव है आचार्य अभयदेव ने समवायाग मे जो छठे भव मे महावीर का जीव पोट्टिल्ल था इस बात को सगति बिठाने के लिए ही इस प्रकार की परिकल्पना की हो।

नयसार का प्रथम भव

आवश्यकनिर्युक्ति मे भगवान् महावीर के जीव ने सबसे पहले सम्यग्दर्शन प्राप्त किया, उस समय उनका क्या नाम था, वे कहा के निवासी थे इस सम्बन्ध मे किन्चिन्मात्र भी उल्लेख नही है, केवल इतना-सा सूचन है कि अटवी मे परिभ्रमण करते हुए साधुओ को मार्ग बताया और सम्यक्त्व को प्राप्त किया।[१२] आचार्य जिनभद्रगणी क्षमाश्रमण ने निर्युक्ति की गाथा का स्पष्टीकरण करते हुए लिखा है कि वे अपर महाविदेह मे ग्राम चिन्तक थे, साधुओ को मार्ग दिखाने के साथ अनुकम्पा कर दान भी दिया।[१३] पर ग्राम-चिन्तक का क्या नाम था, वह नही बताया गया है।

जिनदासगणी महत्तर ने आवश्यक चूर्णि मे १४ प्रस्तुत प्रसग को कुछ अधिक विस्तार के साथ अङ्कित किया है। धर्मकथा करने वाला सन्त लब्धि सम्पन्न था।[१५] उसने उपदेश दिया, ग्राम-चिन्तक को सवेग-भाव-जागृत हुआ और सम्यक्त्व की उपलब्धि हुई। तत्त्वार्थसूत्र मे सम्यग्दर्शन के प्रशम, सवेग, निर्वेद, अनुकम्पा और आस्तिक्य ये पाच लक्षण बताये है, उसमे से ग्राम चिन्तक के भव मे महावीर के जीव को अनुकम्पा और सवेग का प्राबल्य था, यह कहा जा सकता है।

---

१२ (क) पथ किर देसेत्ता, साधूण अडविविप्पणट्ठाण ।
सम्मत्त पढमलभो, बोद्धव्वो वद्धमाणस्स ॥

—आवश्यक निर्यु० १४१

(ख) विशेषावश्यक भाष्य १५४७

१३ अवरविदेहे गामस्स चिन्तओ रायदारुवणगमण ।
साधू भिक्खाणिमित्त सत्था हीणे तहि पासे ॥
दाणऽण्ण पथणयण अणुकप गुरूण कधण सम्मत्त ॥

—वि० भाषा, १५४८, १५४९, भा० २ पृ० २८५

१४ आवश्यक चूर्णि—पृ० १२८

१५ आव० चूर्णि पृ० १२८

गुणचन्द्र ने महावीरचरिय मे, और आचार्य हेमचन्द्र ने त्रिषष्टि-शलाकापुरुष चरित्र मे कथा का और अधिक विस्तार किया है तथा कथा को रसप्रद बनाने का प्रयास भी किया है। वह इस प्रकार है –

अपर महाविदेह के महावप्र विजय क्षेत्र की जयन्ती नगरी मे शत्रुमर्दन नामक सम्राट थे। प्रस्तुत प्रान्त के पृथ्वीप्रतिष्ठान ग्राम मे भगवान् महावीर का जीव उस समय नयसार नामक ग्रामचिन्तक (गाव का मुखिया) बना।[16] गाँव का मुखिया होते हुए भी वह बडा सरल, विनम्र और हसमुख स्वभाव का था। सम्राट् को नव्य-भव्य प्रासाद हेतु बढिया इमारती लकडी की आवश्यकता हुई उसने नयसार को आदेश दिया। नयसार अनेक कर्मचारियो को व गाडियो को लेकर अरण्य मे गया। देवदार साल आदि के वृक्षो को कटवाकर इमारती लकडिया निकलवाने लगा। काम करते-करते दुपहर हो गई, धूप बहुत तेज थी। मजदूर थककर चूर-चूर हो गए थे। नयसार ने सब को भोजन और आराम की छुट्टी दी, और स्वय भोजन के लिए तैयार हुआ। उसी समय कर्मकरो ने बढिया भोजन लाकर सामने रखा। नयसार चिन्तन करने लगा कि इस समय कोई अतिथि आ जाय तो मैं उन्हे भोजन कराकर फिर भोजन करू, जब तक अतिथि को न दू तब तक कैसे खाऊ। वह उठकर अपने स्थान से आगे बढा, दूर जगल मे दृष्टि फैलाकर इधर-उधर देखने लगा, तभी दूर, बहुत दूर पर्वत की तलहटियो मे इधर-उधर मार्ग खोजते हुए कोई मुनि दिखाई दिये। नयसार बहुत प्रसन्न हुआ। उसने ध्यान से देखा कि वे इधर ही आ रहे है। नयसार खाना छोडकर उन्हे लिवाने गया। मुनि-वृन्द बहुत ही थक गया था। रास्ता भूलकर घाटियो मे इधर-उधर भटक रहा था। वे भूख और प्यास से भी पीडित हो गए थे। नयसार ने नमस्कार कर पूछा—"आर्य। इस निर्जन जगल मे आप कैसे घूम रहे है ?"

सन्तो ने कहा—भद्र! हमने सार्थवाह के साथ प्रस्थान किया था, सार्थ ने एक स्थान पर विश्राम लिया। हम निकटस्थ ग्राम मे भिक्षा के लिए

---

१६ (क) पुहइप्पइट्ठाणनामपि गामे नयसारो नाम गामचिंतगो अहेसि।

—महावीर चरित्र पत्र २

(ख) तस्य ग्रामे तु पृथिवीप्रतिष्ठानाभिधेऽभवत्।
स्वामिभक्तो नयसाराभिधानो ग्रामचिन्तक ॥

—त्रिषष्टि,० १०।१।

गये। पुन अपने विश्राम स्थल पर गये तो देखा कि—सार्थ-समूह पहले ही प्रस्थान कर चुका है, हम भी चले, किन्तु भूलकर जगल मे भटक गये।

नयसार ने मुनियो से प्रार्थना की—महाराज! भिक्षा लेवें, दीवड मे मीठी छाछ भी तैयार है। बुझते-दीपक को तैल मिल गया। मुनियो ने नयसार के आग्रह पर वह निर्दोष आहार ग्रहण किया। मुनियो को शान्ति मिली। नयसार भी बहुत प्रसन्न हुआ।

कुछ समय तक विश्राम लेने के पश्चात् मुनि आगे चलने को हुए। नयसार रास्ता बताने के लिए बहुत दूर तक उनके साथ चला। मुनियो ने देखा नयसार एक भावुक-भक्त है, इसकी आखो मे से सरलता और विनम्रता टपक रही है। कितना महान् है इसका सेवा भाव। ऐसे सरल हृदय मे धर्म का बीज सहज रूप मे उत्पन्न हो सकता है। मुनियो ने कहा, भक्त! 'तुमने हमे रास्ता बताया है, हमारी खूब ही सेवा की है, हम भी तुम्हे कुछ रास्ता बता दे।"

नयसार ने नम्रता से निवेदन किया—हा, महाराज अवश्य बताइए। मुनियो ने उसे धर्म का रहस्य बताते हुए कहा—सरलता, शान्ति और समता यही धर्म का बीज है। देव, गुरु और धर्म की भक्ति करो जिससे जीवन का कल्याण होगा।

नयसार ने धर्म को सुना, हृदय मे उतारा। उसे धर्म का बोधिबीज-सम्यक्त्व प्राप्त हो गया।

तुलना

भगवान् महावीर के जीव ने मार्ग भूले हुए सन्तो को मार्ग बताया, इसी प्रकार की घटना तथागत बुद्ध के पूर्वभव मे भी आती है। जब बुद्ध पूर्वभव मे सुमेध पण्डित थे, तब उन्होने दीपकर बुद्ध के लिए मार्ग तैयार किया था,[१८] और दीपकर ने उनके सम्बन्ध मे भविष्य-वाणी की थी।[१९] इन दोनो प्रसगो मे मार्ग की घटना सामान्य रूप से आई है। वे दोनो बाह्य मार्ग बताते है और उन्हे आन्तरिक विशुद्धि का मार्ग मिलता है। यह समानता ध्यान देने योग्य है।

---

१७ (क) महावीरचरिय, गुणचन्द्र पन्ना ६,

(ख) महावीरचरिय,

(ग) त्रिषष्टि,० १०।१।२२

१८ जातकट्ठ कथा, सुमेधकथा पृ० १०, भारतीय ज्ञानपीठ काशी

१९ अेजन पृ० १२

आचार्य गुणभद्र रचित उत्तरपुराण मे नयसार की घटना कुछ अन्य रूप स चित्रित की गई है। उसमे नयसार के स्थान पर पुरुरवा का नाम मिलता है।[२०] वह जाति से भील था,[२१] ओर जम्बूद्वीपस्थ विदेह क्षेत्र मे सीता सरिता के सन्निकट पुष्कलावती देश की पुण्डरीकिणा नगरी के मधुवन मे रहता था। उस वन मे दिग्भ्रम से भ्रमित सागरसेन मुनि को मृग समझ कर वह मारने के लिए उद्यत हुआ। किंतु पत्नो ने कहा ये वन के देवता है, इन्हे न मारो। यह सुनकर वह मुनि के पास गया ओर श्रद्धा से नमस्कार किया और उनके मिश्री-से मधुर वचन सुनकर शान्त हो गया। उसने उक्त मुनिराज से मधु, मास और शराब आदि तीनो के सेवन का त्याग का व्रत ग्रहण किया और जीवन पर्यन्त बडे आदर के साथ उसका पालन किया।

श्वेताम्बर ग्रन्थो मे ग्रामचिन्तक कहा है तो दिगम्बर ग्रन्थो मे भीलो का मुखिया कहा हे।[२२] गुणचन्द्र और हेमचन्द्र ने ग्रामचिन्तक को विशिष्ट आचार का पालन करने वाला, धर्मशास्त्र मे श्रद्धालु, हेय और उपादेय का ज्ञाता, स्वभाव से गम्भीर, प्रकृति से सरल, विनीत परोपकारपरायण आदि विशेपण देकर उसके सद्गुणो को प्रकट किया है,[२३] पर दिगम्बर परम्परा मे पुरुरवा के वर्णन मे उसमे दुर्गुणो की प्रधानता बताई हे।[२४] इस प्रकार एक ही व्यक्ति होने पर भी पात्र की प्रकृति मे बहुत अन्तर है। दिगम्बर और श्वेताम्बर दोनो ही ग्रन्थो मे मुनि का सत्सग तो समान बताया है, श्वेताम्बर ग्रन्थो मे श्रद्धा की प्रमुखता बताई है, पर त्याग का उल्लेख नही है। दिगम्बर परम्परा में उसने मधु-आदि का त्याग भी किया ऐसा उल्लेख है। श्वेताम्बर

---

२० पुरुरवा प्रियास्यासीत्,

—उत्तर० ७४।१५

२१ उत्तरपुराण, ७४।१५

२२ मधुकाख्ये वने तस्या नाम्ना व्याधाधिपाऽभवत्।

—उत्तरपुराण ७४।१५

२३ (क) महावीर चरिय पृ० ३

(ख) साधुसम्बन्धबाह्योऽपि सोऽकृत्येभ्य पराड्मुख
दोषान्वेषणविमुखो गुणग्रहणतत्पर।

—त्रिषष्टि० १०।१।६

२४ उत्तरपुराण ७४।१७-१८

ग्रन्थो मे उत्तरविदेह का उल्लेख हुआ है[२५] तो उत्तरपुराण मे पूर्व विदेह का।[२६]

पउमचरिय (आचार्य श्री विमलसूरि) मे चौवीस तीर्थंकरो के पूर्वभवो का वर्णन किया है,[२७] पर वहा तीर्थंकरो के पूर्व के दो भव बताये है। एक देवभव और दूसरा मानव का भव। भगवान महावीर पूर्वभव मे छत्ताग्रार नगरी मे सुनन्द नाम से थे और उनके गुरु पोटिल्ल थे। यह सुनन्द मर कर पुष्पोत्तर विमान मे गया और वहाँ मे च्युत होकर वर्धमान हुए।[२८] इस प्रकार दो भवो की चर्चा उन्होने की, किन्तु सम्यक्त्व प्राप्ति की कोई भी चर्चा उसमे नही है। ऋषभ के पास मरीचि ने दीक्षा ली, यह उल्लेख पउमचरिय मे है, पर वह महावीर का पूर्व भव है या वह ऋषभ का पौत्र है, यह उल्लेख उसमे नही है।[२९]

(२) प्रथम देवलोक

नयसार वहाँ से आयुष्यपूर्ण कर सौधमकल्प मे एक पल्योपम की स्थिति वाला महर्द्धिक देव बना।[३०] उत्तरपुराण के अनुसार उसकी एक सागर की आयु थी।[३१]

(३) मरीचि (त्रिदण्डी)

नयसार का जीव स्वर्ग से आयुष्य पूर्ण होने पर तृतीय भव मे चक्रवर्ती सम्राट भरत का पुत्र मरीचि के रूप मे उत्पन्न हुआ।[३२]

---

२५ विशेपा० भाष्य १५४८

२६ उत्तरपुराण ७४।१४

२७ पउमचरिय उद्देशक २०

२८ वही २०।२४

२९ पउमचरिय ११।९८, पृ० १२६

३० (क) सोधम्मे उववण्णो पलिताउ ततोचुतो मिरियी।

—विशे० भाष्य १५४९, भाग० २,

(ख) आव० निर्युक्ति गा० १४४

३१ सागरोपमदिव्यायु सौधर्मेऽनिमिषोऽभवत्।

—उत्तरपुराण ७४।२२

३२ (क) विशेपा० भाष्य १५५०

(ख) आव० नि० गा० १४२

आवश्यकनिर्युक्ति[33] विशेषावश्यकभाष्य[34], आवश्यक मलयगिरीय वृत्ति,[35] त्रिषष्टि शलाकापुरुषचरित्र,[36] कल्पलता,[37] कल्पद्रुम कलिका,[38] प्रभृति श्वेताम्बर ग्रन्थो के अनुसार भगवान के प्रथम प्रवचन को श्रवण कर सम्राट भरत का पुत्र मरीचि भगवान ऋषभदेव के पास दीक्षित होता है, तप सयम की विशुद्ध आराधना साधना करता हुआ[39] एकादश अगो का अध्ययन करता है। पर एक बार भीष्म-ग्रीष्म के आतप से प्रताडित होकर मरीचि साधना के कठोर कटकाकीर्ण मार्ग से विचलित हो जाता है। उसके अन्तर्मानस मे दुर्बलतामयी विभिन्न विकल्प लहरिया तरगित हो उठती है कि 'मेरु पर्वत सदृश यह सयम का गुरुतर भार मैं एक मुहूर्त भी सहन करने मे असमर्थ हूँ। क्या मुझे पुन गृहस्थाश्रम स्वीकार करना चाहिए ? नही, कदापि नही। किन्तु जबकि मैं सयम का विशुद्धता से पालन नही कर पाता, तब श्रमण वेप को छोडकर नवीन वेष-भूषा अपनाना ही उचित है।[40] अनेक सकल्प विकल्प के बाद उसने निश्चय किया—'श्रमण सस्कृति के श्रमण त्रिदण्ड-मन, वचन और काय के अशुभ व्यापारो से रहित होते है, इन्द्रिय-विजेता होते है, पर मै त्रिदण्ड से युक्त हूँ और अजितेन्द्रिय हूँ अत इसके प्रतीक रूप मे त्रिदण्ड धारण करूगा।[41]

'श्रमण द्रव्य और भाव से मुण्डित होते है सर्व प्राणातिपातविरमण महाव्रत के धारक होते है पर मै शिखा सहित हूँ, क्षुरमुडन कराऊगा और स्थूल-प्राणातिपात का विरमण करूगा।'

'श्रमण अकिंचन तथा शील की सौरभ से सुरभित होते हैं, पर मैं वैसा नही हूं, मैं सपरिग्रह रहकर शील की सौरभ के अभाव मे चन्दनादि की सुगन्ध से सुगन्धित रहूँगा।'

---

३३ आ० नि० ३४७, आव० हरिभद्रीय वृत्ति ३४४

३४ विशेपा०भाष्य १७०८-१७१२

३५ आव० मल० वृत्ति पृ० २३०।१

३६ त्रिपष्टि० १०।१।२२-२३

३७ कल्पसूत्र कल्पलता पृ० २०७

३८ कल्पसूत्र, कल्पद्रुम कलिका १५१

३९ विशे० भाष्य १७२०

४० आव० नियुक्ति० २७६, विशे० भाष्य० १७२४

४१ (क) आ० नि० २८० (ख) विशे० भाष्य० १७२५ (ग) त्रिपष्टि० १०।१।३६

'श्रमण निर्मोही होते है, पर मैं मोह-ममता के मरुस्थल मे घूम रहा हूँ। इसके प्रतीक रूप मे छत्र धारण करूँगा। श्रमण नंगे होते है, पर मैं उपानह् (काष्ठ पादुका) पहनूँगा।'

'श्रमण जो स्थविरकल्पी है, वे श्वेत वस्त्र धारण करते है और जिनकल्पी निर्वस्त्र होते है, पर मैं कषाय से कलुषित हूँ अत उसके प्रतीक स्वरूप काषाय वस्त्र धारण करूँगा।

'श्रमण पापभीरु और बहुत जीवो की घात करने वाले आरम्भ परिग्रह से मुक्त होते हैं। सचित्त जल का प्रयोग नही करते है। पर मै वैसा नही कर पाता, अत स्नान और पीने के लिए परिमित जल ग्रहण करूँगा।'[४२]

इस प्रकार मरीचि ने अपनी नवीन परिकल्पना से परिव्राजक-परिधान एव मर्यादा का निर्माण किया और भगवान् के साथ ही ग्राम नगर आदि मे विचरने लगा। भगवान् आदिनाथ के श्रमणो से मरीचि की पृथक् वेशभूषा देखकर लोगो के मन मे कुतूहल उत्पन्न होता। जिज्ञासु बनकर वे उसके पास पहुँचते। मरीचि अपनी कमजोरिया प्रकट करता भगवान् के श्रमण धर्म की प्रशसा कर उन्हे प्रतिबोध देकर भगवान् का शिष्य बनाता।[४३]

एक समय सम्राट् भरत ने भगवान् श्री ऋषभदेव से जिज्ञासा की—"प्रभो! क्या इस परिषद मे कोई व्यक्ति ऐसा भाग्यशाली है जो आपके सदृश ही दिव्य विभूतियो से सम्पन्न तीर्थकर बनेगा?[४४] जिज्ञासा का समाधान करते हुए भगवान् ने कहा—स्वाध्याय और ध्यान से आत्मा को ध्याता हुआ तुम्हारा पुत्र मरीचि परिव्राजक भविष्य मे वर्धमान नामक अन्तिम तीर्थंकर होगा, इससे पूर्व वह पोतनपुर का अधिपति त्रिपृष्ट वासुदेव बनेगा, और विदेह क्षेत्र की मूका नगरी मे तुम्हारे जैसा ही प्रियमित्र नामक चक्रवर्ती

---

४२ (क) आ० नि० २८१-८५ (ख) विशे० भाष्य १७२६-३०
(ग त्रिषष्टि० १०।१।३७-४१

४३ (क) आव० नि० २८६ से २८८
(ख) विशे० भाष्य १७३१-३३।
(ग) महावीरचरिय, गुणचन्द्र, प्रस्ताव, २, पत्र १६।१

४४ (क) आव० निर्यु० २९५,
(ख) विशे० भाष्य० १७४१
(ग) महावीरचरिय गा० १२४, प० १८।१

बनेगा । इस प्रकार तीन विशिष्ट उपाधियो को वह अकेला प्राप्त करेगा ।[४५]

भगवान् की भविष्यवाणी सुनकर भरत का तन-मन पुलक उठा । वे शीघ्र ही भगवान् को नमस्कार कर जहा पर मरीचि परिव्राजक बैठा था वहा पहुचे । और हर्षावेग मे पुकार उठे—मरीचि ! तू धन्य है, तू बडा भाग्यशाली है, तेरा भविष्य महान् है । तू भविष्य मे वासुदेव बनेगा । चक्रवर्ती का पद पावेगा और अन्तिम तीर्थंकर बनकर ससार मे धर्मोद्योत करेगा । भगवान ऋषभदेव ने तेरा भविष्य बताया है, मैं तेरा अभिनन्दन करता हूँ ।[४६]

चक्रवर्ती भरत के मुह से अपनी प्रशसा और भावी जीवन की गौरव-गाथा सुनकर मरीचि खुशी के मारे बासो उछलने लगा । हर्पोल्लास स मत्त होकर नाचने लगा । उसकी खुशिया अहकार मे बदल गई—"अहा ! मैं कितना महान् हू । मेरा कुल और वश कितना उच्च है । मेरे दादा प्रथम तीर्थंकर, मेरे पिता प्रथम चक्रवर्ती और मैं, मै प्रथम वासुदेव, चक्रवर्ती और अन्तिम तीर्थंकर बनू गा ! क्या कहना मेरे कुल की महानता का ।" हर्ष और जातीय गौरव मे फूलकर उसने अपने पैरो को तीन बार जमीन पर पछाडकर कहा—"मैंने बहुत प्राप्त कर लिया है, अब इससे अधिक मुझे किसी की आवश्यकता नही"—वह नाचता हुआ आने-जाने वालो से कहने लगा—"देखो ! देखो मेरा कुल कितना महान् है, कितना उत्तम है !"[४७]

मरीचि इस गौरव को पचा नही सका, वह प्रत्येक व्यक्ति के सामने अपनी शेखी बघारता, कुल-गौरव के गीत गाता, और आत्म-प्रशसा की डीगे हाकता ।

अहकार, पतन की पहली सीढी है । वह जातीय अहकार और आत्म-प्रशसा के कारण अपनी उत्कृष्ट साधना के फल से वचित हो गया । उसने कुल-मद के कारण यहाँ नीच गोत्र का बध कर लिया ।[४८]

---

४५ (क) आव० निय० मलयगिरिवृत्ति, गा० ४२२-४२४
(ख) महावीरचरिय गा० १२६-१२८, प० १८।१

४६ (क) आव० नि० मलयगिरिवृत्ति गा० ४२८ प० २४४
(ख) महावीरचरिय गा० १२९ से १३६ प० १९
(ग) विशेपा० भाष्य, गा० १७७५, (घ) आ० नि० ३११

४७ (क) आ० नि० ३१३ से ३१५,
(ख) विशे० भाष्य, गा० १७७७ से १७७९

४८ (क) आव० नि० ३२१-३२२

एक दिन मरीचि बीमार पड गया। उसकी सेवा करने वाला कोई नही था। सेवा करने वाले के अभाव मे क्षुब्ध होकर मरीचि के मानस मे ये विकल्प उठे कि "मैने अनेको को उपदेश देकर भगवान का शिष्य बनाया, पर आज मैं स्वय सेवा करने वाले शिष्य से वचित हू, स्वस्थ होने पर मै स्वय अपना शिष्य बनाऊगा।" वह स्वस्थ हुआ। राजकुमार कपिल धर्म की जिज्ञासा से उसके पास आया। उसने आर्हती दीक्षा की प्रेरणा दी। कपिल ने प्रश्न किया—"आप स्वय आर्हत धर्म का पालन क्यो नही करते ?"

उत्तर मे मरीचि ने कहा मैं उग्र कठोर व्रत वाले धर्म का पालन करने म असमर्थ हू।' कपिल ने पुन प्रश्न किया—'क्या आप जिस मार्ग का अनुसरण कर रहे हे, उसमे धर्म नही है।"

इस प्रश्न ने मरीचि के मानस मे आत्म-सम्मान का सघर्ष पैदा कर दिया और कुछ क्षण रुककर उसने कहा—"यहा पर भी वही हे जो जिनधर्म मे है।"[49]

कपिल मरीचि का शिष्य बना और मिथ्या मत की सस्थापना की, जिसके कारण वह बहु ससारी बना और कृत दोषो की आलोचना किए बिना ही उसने आयु पूर्ण किया।[50] पश्चात् कोटाकोटी सागरोपम काल तक ससार मे भ्रमण करता रहा।[51] मरीचि के भव मे कुलाभिमान करने की घटना सर्वप्रथम आवश्यकनिर्युक्ति मे आई है।[52]

जैसे भगवान् ऋषभदेव ने मरीचि तापस के लिए उद्घोषणा की कि यह अन्तिम तीर्थंकर महावीर होगा, वैसे ही जातक अट्ठकथा के अनुसार प्रथम बुद्ध दीपकर ने सुमेध तापस के लिए यह घोषणा की कि यह गोतम

(ख) विशे० भाष्य, १७८७-१७८८

(ग) आ० नि० हृ० ४३८-३९,

(घ) महावीरचरिय, गुणचन्द्र प्र० २, गा० १४५, प० ११

(ङ) त्रिषष्टि० १०।१।५९

४९ (क) आव० नि० मलय० वृ० प० २४७

(ख) आ० नि० हृ० ४३७

(ग) महावीरचरिय प० २२,

(घ) त्रिषष्टि० १०।१।६९

५० आव० नि० ३२०, विशे० १७८९

५१ त्रिषष्टि० १०।१।७०-७१

५२ महावीर – (पाण्डुलिपि) प० दलसुख मालवणिया

बुद्ध होगा ।[५३] महावीर की घटना उनके पच्चीस भव पूर्व की है तो बुद्ध की घटना पाँच सौ इक्यावन भव पूर्व की है ।[५४] दोनो की घटना एक अनोखी समानता लिए हुए है ।

दिगम्बर परम्परा के आचार्य गुणभद्र, सकलकीर्ति और विमलसूरि[५५] के मन्तव्यानुसार जिन चार हजार राजाओ ने भगवान ऋषभदेव के साथ दीक्षा ली थी, उनके साथ ही मरीचि ने भी दीक्षा ली थी, पर यह स्मरण रखना चाहिए कि आवश्यकनिर्युक्ति, विशेषावश्यक भाष्य, महावीर चरिय, त्रिषष्टि शलाकापुरुष चरित्र आदि के अनुसार भगवान ऋषभदेव को केवल ज्ञान होने पर प्रथम प्रवचन को सुनकर दीक्षा ली ऐसा उल्लेख है।

आचार्य जिनसेन के अनुसार मरीचि भी अन्य राजाओ के समान ही क्षुधा-पिपासा से आकुल व्याकुल होकर परिव्राजक हो गया था । मरीचि के अतिरिक्त सभी परिव्राजको के आराध्यदेव श्री ऋषभदेव ही थे ।[५६] भगवान को केवलज्ञान होने पर मरीचि को छोडकर अन्य सभी भ्रष्ट बने हुए साधक तत्त्वो का यथार्थ स्वरूप समझकर पुन दीक्षित बने ।[५७]

गुणभद्राचार्य ने मरीचि को भरत का ज्येष्ठ पुत्र कहा है ।[५८] पर श्वेताम्बर ग्रन्थो मे वह ज्येष्ठ पुत्र ही था ऐसा उल्लेख नही है। दोनो ही परम्परा के ग्रन्थ इस बात मे एक मत है कि मरीचि आद्यपरिव्राजक था[५९] और उसने

---

५३ (क) जातक अट्ठकथा, दूरे निदान पृ० २ से ३६

(ख) जातकट्ठकथा—पृ० १२, भारतीय ज्ञानपीठ काशी

(ग) पालि प्रोपरनेम्स, बुद्ध, दीपकर और सुमेघ शब्द

५४ आगम और त्रिपिटक एक अनुशीलन पृ० १२६

५५ (क) उत्तरपुराण ७४।५२, पृ० ४४६

(ख) महावीर पुराण पृ० ९

(ग) पउमचरिय ११।९४, पृ० १२६

५६ महापुराण — जिनसेन, प० १८, श्लोक ६०-६१, पृ० ४०२-४०३

५७ महापुराण—जिनसेन २४।१८२।५०२

५८ प्रज्ञाविक्रमयोर्लक्ष्मीविशेषो वा पुरुरवा ।
मरुद्भूतस्तयोरासीन्मरीचि सूनुरग्रणी ॥

—उत्तरपुराण ७४।५१

५९ (क) शशस भगवानेव, य एष तव नन्दन ।
मरीचिर्नामधेयेन, परिव्राजक आदिम ॥

— त्रिषष्टि० १।६।३७

साख्य शास्त्र का प्रवर्तन किया था।[६०] पउमचरिय से यह तो स्पष्ट नहीं होता कि मरीचि ऋषभ का पौत्र था, पर उसमे भी यह बात स्पष्ट है कि उसने परिव्राजक धर्म का प्रवर्तन किया था।[६१] चउपन्नमहापुरिस चरिय मे मरीचि को भागवत धर्म का प्ररूपक बताया गया है।[६२] पर वहा आगे चल कर कपिल और आसुरि सङ्गित का उल्लेख भी किया है,[६३] इसस स्पष्ट है कि वहाँ भी लेखक को साख्यमत ही अभिप्रेत है।

इससे यह सिद्ध होता है कि प्राचीन परिव्राजकों की परम्परा जैनधर्म के कठोर आचार से घबराकर मध्यम मार्ग स्वीकार करने वाले साधकों की परम्परा रही है। उसके मूल मे जैनत्व का सस्कार छिपा है, पर समय के प्रवाह मे आज वह भी लुप्तप्राय हो गया है।

मरीचि और कपिल का वर्णन जैसा जैनसाहित्य मे मिलता है वैसा भागवत[६४] और विष्णुपुराण[६५] मे नही मिलता। जैन साहित्य मे मरीचि को भरत का पुत्र माना गया है, भागवतकार ने भरत की वश परम्परा का वर्णन करते हुए उसे अनेक पीढियो के पश्चात् 'सम्राट' का पुत्र बताया है और उसका माता का नाम उत्कला दिया है।[६६]

जैन साहित्य मे कपिल को राजपुत्र बताया है, वैदिक साहित्य मे उसे कर्दम ऋषि का पुत्र बताया है, साथ ही उन्हे विष्णु का पाचवा अवतार भी माना है।[६७] वेदो मे उनका उल्लेख आदि विद्वान और महाज्ञानी के रूप मे

(ख) उत्तरपुराण ७ ।५६।४४७

६० (क) महापुराण १८।६१ मे ६३
(ख) त्रिषष्टि० १।६।५२

६१ पउमचरिय ११।६५-६६, पृ० १२६

६२ पयट्टाविय च तेण कुलिंग भागवयदरिसण ।

—चउप्पन्न महापुरिसचरिय पृ० ६७

६३ चउप्पन्न महापुरिस० पृ० ६७

६४ भागवत ५।१

६५ विष्णु पुराण २।११

६६ भागवत ५।१५।१५।६०६

६७ पचम कपिलो नाम सिद्धेश कालविप्लुतम्।
प्रोवाचासुरये साख्य तत्त्वग्रामविनिर्णयम्॥

— भागवत स्कध १। अ० श्लोक १० पृ० ५६

आया है। भगवद्गीता मे उन्हे सिद्धो मे सर्वश्रेष्ठ बताया है । पर उनके सम्बन्ध मे ऐतिहासिक दृष्टि से कुछ भी नही कहा जा सकता ।[६८]

आचार्य जिनसेन आदि ने मरीचि के सम्बन्ध मे भावी तीर्थंकर होने की भविष्य वाणी का उल्लेख नही किया है, और न कुलाभिमान करने की बात लिखी है और शायद इसीलिए उन्होने गर्भापहार की घटना की भी कोई चर्चा नही की है।

(४) ब्रह्मदेव लोक

चौरासी लक्षपूर्व की आयु पूर्ण कर मरीचि का जीव ब्रह्मदेव लोक मे दस सागर की स्थिति वाला देव बना ।[६९]

(५) कौशिक

ब्रह्मस्वर्ग च्यवकर मरीचि का जीव कोल्लाक सन्निवेश मे अस्सी लाख पूर्व की आयु वाला कौशिक नामक ब्राह्मण बना[७०] और वहा भी वैराग्यधारण कर परिव्राजक बना ।[७१] आचार्य शीलाङ्क ने—'लिखा है कि कौशिक मर कर सौधर्म देवलोक मे उत्कृष्ट स्थिति वाला देव बना ।[७२]

दिगम्बराचार्य गुणभद्र ने लिखा है—ब्रह्मदेव लोक के च्युत होकर अयोध्या नगरी मे कपिल नामक ब्राह्मण की काली नामकी स्त्री से वेदो को जानने वाला जटिल नामक पुत्र हुआ। परिव्राजक बनकर पहले की तरह चिर काल तक उसी मार्ग का उपदेश दिया, और मरकर सौधर्म स्वर्ग मे देव हुआ। और दो सागर की वहा पर स्थिति प्राप्त की ।[७३] आवश्यक नियुक्ति, विशेषावश्यक भाष्य, आवश्यक चूर्णि, महावीर चरिय, त्रिषष्टि शलाकापुरुष चरित्र

---

६८ (क) देखिए प्राचीन चरित्र कोप
(ख) हमारी परम्परा पृ० ३७२

६९ (क) आव० नियुक्ति ३२३
(ख) विशेषा० भाष्य १७८९ (ग) आव० चू० पृ० २२९

७० (क) आव० नि० ३२३
(ख) विशे० भाष्य० १७८९
(ग) त्रिपष्टि० १०।१

७१ चउप्पन्न० पृ० ९७

७२ चउप्पन्न० पृ० ९७

७३ उत्तरपुराण ७४।६८ से ७०

आदि ग्रन्थो मे सौधर्मस्वर्ग मे जाने का उल्लेख नही है, आवश्यक मलयगिरि वृत्ति मे यह उल्लेख आया है कि कौशिक के पश्चात् अनेक भव करके स्थूणा नगरी मे जन्म लिया।[७४] किन्तु उनके नामो का उल्लेख नही किया गया है। सम्भव है कि अनेक भवो मे एक भव सौधर्म स्वर्ग मे जाने का भी गिना हो।

(६) पुष्यमित्र

कौशिक की आयु पूर्ण करके वह स्थूणानगरी मे पुष्यमित्र नामक ब्राह्मण हुआ। उसकी वहत्तर लाख पूर्व की आयु थी। अन्त समय मे वहा भी त्रिदण्डी परिव्राजक बना।[७५]

(७) सौधर्म देवलोक

वहा से आयु पूर्ण कर सौधर्म कल्प मे मध्यम स्थिति वाला देव बना।[७६]

(८) अग्निद्योत

वहा से च्यवकर वह चैत्य सन्निवेश मे अग्निद्योत नामक ब्राह्मण हुआ। उसकी आयु चौसठ लाख पूर्व की थी। अन्त मे त्रिदण्डी परिव्राजक हुआ।[७७] उत्तर पुराण मे इस भव का वर्णन नही है।

(९) ईशान देवलोक

वहा से आयु पूर्णकर ईशान देवलोक मे मध्यम स्थिति वाला देव बना। इस भव का वर्णन भी उत्तर पुराण मे नही है।

(१०) अग्निभूति

तत्पश्चात् मरीचि के जीव ने मन्दिर नामक सन्निवेश मे अग्निभूति

---

७४ ससारे कियन्तमपि कालमटित्वा स्थूणाया नगर्यां जात।

—आ० नि० मल० वृत्ति प० २४८

७५ (क) आव० नि० ३२४

(ख) विशेषा० भाष्य १७६०,

(ग) आ० मल० वृत्ति पत्र, २४८

(घ) आव० चूर्णि० २२६

(ङ) त्रिषष्टि० १०।१।७७

(च) उत्तरपुराण ७४।७१-७२

७६ उपर्युक्त सभी स्थल देखे।

७७ उपर्युक्त सभी स्थल देखे।

नामक ब्राह्मण के रूप मे जन्म लिया। उसकी आयु छप्पन लाख पूर्व की थी। जीवन की साध्य वेला मे वहा भी वह त्रिदण्डी परिव्राजक बना।[७८] इससे स्पष्ट होता है कि मरीचि-भव के परिव्राजक धर्म के सस्कार उसके अन्त करण मे काफी गहरे घुल गये थे।

उत्तर पुराण मे लिखा हे कि सूतिका नामक गॉव मे अग्निभूति ब्राह्मण की गौतमी नामक स्त्री से अग्निसह नामक पुत्र हुआ।[७९] श्वेताम्बर परम्परा के ग्रन्थो मे अग्निभूति नाम मिलता हे, पर अग्निमह नही। पूज्यश्री घासीलाल जी म० ने प्रस्तुत भव की परिगणना नही को हे,[८०] किन्तु प्रमाण के अभाव मे उनकी उक्तधारण कोई महत्त्व नही रखती है।

(११) सनत्कुमार देवलोक

वहाँ से आयु पूर्ण कर सनत्कुमार कल्प मे मध्यम स्थिति वाला देव हुआ।[८१]

(१२) भारद्वाज

सनत्कुमार कल्प से आयु पूर्ण कर श्वेताम्बिका नगरी मे भारद्वाज नाम का ब्राह्मण हुआ। उसकी आयु चवालीस लक्ष पूर्व की थी। अन्तिम समय मे त्रिदण्डी परिव्राजक बना।[८२]

---

७८ (क) **तत्थवि परिव्वाओ**

—आव० चूर्णि० २३०

(ख) **परिव्राजक दीक्षाया नीत्वा काल स पूर्ववत्।**

उत्तरपुराण ७४।७५

७९ उत्तरपुराण ७४।७४ पृ० ४४८

८० कल्पसूत्र प्रथम भाग, पृ० २१०, श्री घासीलाल जी म० सम्पादित

८१ (क) आव० नि० ३२५,

(ख) विशेपा० भाष्य १७९१

(ग) **सणकुमारे मज्झिमट्ठितो उववन्नो।**

—आव० चूर्णि पृ० २३०

(घ) उत्तरपुराण, ७४।७४।

(ङ) त्रिषष्टि०, १०।१।८१

८२ (क) आव० नि० ३२५

(ख) विशे० भाष्य, १७९१

उत्तर पुराण के अनुसार इसके पूर्व एक भव अग्निमित्र का और द्वितीय भव माहेन्द्र कल्प का ये दो भव और हुए है और उसके बाद वहा से च्यवकर मन्दिर नगर मे शालङ्कायन ब्राह्मण की पत्नी मन्दिरा से विश्व-विश्रुत भारद्वाज पुत्र हुआ।[८३]

(१३) माहेन्द्र देवलोक

वहा से आयु पूर्ण कर वह माहेन्द्र कल्प मे मध्यमस्थिति वाला देव बना।[८४]

(१४) स्थावर

मरीचि का जीव देवलोक से च्यवकर और कितने ही काल तक संसार मे परिभ्रमण कर राजगृह नगर मे स्थावर नामक ब्राह्मण हुआ। वहा पर उसकी आयु चौतीस लक्ष पूर्व की थी। जीवन के प्रान्त भाग मे वहा भी त्रिदण्डी परिव्राजक बना, मिथ्यामत का उपदेश दिया।

परिव्राजक के छह भव

भगवान् महावीर के जीव ने सर्व प्रथम नयसार के भव मे सम्यग्दर्शन प्राप्त किया था और मरीचि के भव मे उस सद्बोध का अपलाप कर वह पुन मिथ्यात्वी हो गया।

आचार्य शीलांक के अनुसार

मरीचि के पश्चात् उसने जो पाच भव मनुष्य के किये है उसमे वह बार-बार परिव्राजक बनता है। और मरीचि के भव को मिलाने से छ भव परिव्राजक के होते है। अन्य सभी ग्रन्थकारो ने मरीचि के अतिरिक्त छ परिव्राजक के भव माने है।[८५] इस सम्बन्ध मे श्वेताम्बर और दिगम्बर दोनो परम्परा

(ग) आव० चूर्णि, २३०
(घ) त्रिषष्टि०, १०।१।८२

८३ उत्तरपुराण ७४।७७-७८

८४ (क) आव० नि० ३२५,
(ख) विशे० भाष्य १७६१,

८५ (क) आव० नियुक्ति ३२६, (ख) विशे० भाष्य० १७६२
(ग) आव० चूर्णि २३०, (घ) आव० मलय० वृत्ति २४८
(च) उत्तरपुराण ७४।८२, ८३-८५

के ग्रन्थ एकमत है।[८७] एक बार सम्यग्दर्शन की उपलब्धि हो जाने पर भी पुन: आत्मा को पथभ्रष्ट होने की अधिक सभावना है। चू कि मिथ्यात्व का वेग बडा प्रबल होता है यदि सावधानी न रखी जाय तो मरीचि की तरह आत्मा सम्यग्दर्शन रत्न को खो बैठता है।

हम तटस्थ दृष्टि से चिन्तन करे तो ज्ञात होगा कि प्रारम्भ मे परिव्राजको मे और निर्ग्रन्थ समुदाय मे मात्र आचार का भेद रहा है। निर्ग्रन्थ सम्प्रदाय का आचार अत्यधिक कठोर था, जिसका पालन मरीचि न कर सका और उसने नवीन वेष भूषा की परिकल्पना की। जिसके कारण वह परिव्राजक सम्प्रदाय का प्रवर्तक माना गया। किन्तु उस समय निर्ग्रन्थ सम्प्रदाय के साथ तात्त्विक मान्यता मे किन-किन बातो मे मत-भेद था, इसका कुछ भी निर्देश निर्युक्ति आदि मे नही मिलता है। मरीचि राजकुमार कपिल को भी यही कहता है '**कविला एत्थ पि इधइ पि**"[८८] हे कपिल, जो बात वहा (भ० आदिनाथ) के पास है, वही यहा है, इसका अर्थ है तब तक सिद्धान्तो का कोई विशेप भेद नही खडा हुआ होगा। किन्तु धीरे-धीरे सिद्धान्तो मे दूरी आने लगी और दर्शन का एक गहरा भेद खडा हो गया।

हमारी दृष्टि से जहा तक सम्यग्दर्शन का प्रश्न है, वह आचार से सम्बन्धित नही है, जितना विचारो से है। निग्रन्थ सम्प्रदाय मे भी सभी एक सदृश आचार पालन करने वाले नही होते, उनमे भी तरतमता होती है, इसलिए आचार शैथिल्य के साथ विचारो मे भी मौलिक मत भेद रहना चाहिए! बहुत सम्भव है दार्शनिक मान्यताओ के मौलिक मतभेद से ही सम्यक्त्व से भ्रष्ट होने का प्रसग उपस्थित हुआ होगा। इस प्रश्न के समाधान के लिए ही जिनदासगणी महत्तर ने आवश्यक चूर्णि मे सर्वप्रथम मरीचि का सम्बन्ध साख्य दर्शन के साथ जोडा है। उसका अनुसरण आवश्यक वृत्ति और महावीर चरिय आदि मे किया गया है। पाठको को मूल ग्रन्थ देखने चाहिए।

---

८६ **छत्सु वि पारिवज्ज भमितो तत्तो य ससार**—आव० नि० ३२६

८७ (क) महावीर चरिय २।२६६, (ख) उत्तरपुराण ७४।६८-८५

८८ (क) आव० निर्यु० ३२०   (ख) विशेषा० भाष्य १७८६

(ग) आवश्यक चूर्णि २२८

(१५) ब्रह्म देवलोक

पन्द्रहवे भव मे वह ब्रह्म देवलोक मे मध्यमस्थिति वाला देव हुआ। उत्तरपुराणकार ने ब्रह्म के स्थान पर माहेन्द्र नाम दिया है।[८९]

(१६) विश्वभूति

देवलोक की आयु पूर्ण होने पर लम्बे समय तक ससार मे परिभ्रमण करने के पश्चात् वह राजगृह नगर मे विश्वनन्दी राजा का भ्राता तथा युवराज विशाखभूति का पुत्र विश्वभूति हुआ। राजा विश्वनन्दी के पुत्र का नाम विशाखनन्दी था।[९०] दोनो भाइयो मे परस्पर बडी ईर्ष्या और सघर्ष था। विश्वभूति यद्यपि छुट भाई का पुत्र था, किन्तु वह बडा ही तेजस्वी, पराक्रमी और साहसी था। राजा का पुत्र विशाखनन्दी कायर, भीरु और चिटचिडा था। अपने पराक्रम के कारण विश्वभूति पूरे राजपरिवार पर छाया हुआ था। उसे पुष्पक्रीडा का अत्यधिक शौक था। वह अपनी रानियो के साथ राजकीय उद्यान मे चला जाता और वही रात-दिन पुष्पक्रीडा मे लीन रहता। फूलो के हार, गेद आदि बनाकर रानियो के साथ खेलने मे उसे बहुत ही आनन्द आता। जब राजकुमार अपने सेवको के मुह से विश्वभूति की क्रीडाओ की चर्चा सुनता तो वह ईर्ष्या से जल जाता। उसमे इतना साहस तो नही था कि विश्वभूति को निकाल कर स्वय उस उद्यान मे क्रीडा करने जाये। विश्वभूति के तेजस्वी व्यक्तित्व के सामने वह कुछ भी नही कर सकता था। कभी-कभी अपनी माता के सामने आकर अवश्य गिडगिडाया करता था।

एक समय विश्वभूति पुष्प-करडक उद्यान मे अपनी पत्नियो के साथ उन्मुक्त क्रीडा कर रहा था। महारानी की दासिया उस उद्यान मे पुष्प आदि

---

८९ (क) आव० नि० ३२६ (ख) विशेषा० भाष्य १७९२
(ग) बमलोए सुरो—आव० चूर्णि० पृ० २३० (घ) आव० मल० २४८
(ङ) त्रिषष्ठि० १०।१।८४ (च) उत्तरपुराण ७४।८५

९० (क) **रायगिह विस्सणदी विसाहभूती य तस्स जुवराया।**
जुवरण्णो विस्सभूती विसाहणन्दी य इतरस्स॥

—आव० निर्युक्ति ३२७

(ख) विशेषा० भाष्य० १७९३, (ग) आव० चूर्णि० २३०
(घ) महावीर चरिय गुण० पृ० ३, प० २९, (ङ) त्रिषष्टि० १०।१।८६

लेने के लिए आई, उन्होने विश्वभूति को इस प्रकार सुख के सागर मे तैरता हुआ देखा तो ईर्ष्या से उनका मुख म्लान हो गया, उन्हाने महारानी के कान भरे—"महारानी जी, राजवैभव का सच्चा आनन्द तो विश्वभूति कुमार लूट रहा है। विशाखनन्दी को राजकुमार होने पर भी विश्वभूति की तरह सुख कहा है ? कुमार विशाखनन्दी तो विचारे निर्वासित-से रहते है, वे उद्यान मे घूम-फिर भी नही सकते है। कहलाने को आप भले ही अपना राज्य कहे, पर सच्चा राज्य तो विश्वभूति का है।"[९१] दासियो की बात रानी को चुभ गई। अपने प्यारे पुत्र का दु ख व अपमान देखकर वह आग बबूला हो गई। क्रोध मे आकर उसने राजा से कहा—"आपके राज्य मे कितना अधेर है ? अपना पुत्र शरणार्थी की तरह इधर-उधर मु ह ताकता रहे और छोटे भाई के बेटे मौज उडाते रहे। हमारे राजकीय उद्यान मे जहा रग-विरगे पुष्प खिल रहे है और विश्वभूति उनका आनन्द लूट रहा है, वहा अपने बेटे विशाखनन्दी को तो भिखारी की तरह बाहर रोक दिया जाता है। जब आपकी आखो के समक्ष यह स्थिति है तो बाद मे क्या होगा ?"

राजा ने रानी को समझाया—"यह हमारी कुल-मर्यादा है। जब कोई राजा व राजकुमार आदि अपने अन्त पुर सहित उद्यान मे हो तब दूसरा कोई भी उसमे प्रवेश नही कर सकता।"

रानी ने तैस मे आकर कहा—"ऐसी मर्यादा चूल्हे मे जाये। घर का स्वामी तो मु ह ताकता रहे और चोर माल खाते रहे जब तक विश्वभूति को उद्यान से बाहर नही निकाला जायेगा तब तक मैं अन्न-जल ग्रहण नही करू गी।"

राजा विश्वनन्दी के सामने कठिन समस्या उपस्थित हो गई। उसने अमात्य से कहा। अमात्य ने प्रस्तुत समस्या को सुलझाने के लिए अज्ञात मनुष्यो के हाथ राजा के पास कृत्रिम लेख पहुचाया। लेख पढते ही राजा ने युद्ध की घोषणा की। रणभेरी बज गई। वह युद्ध-यात्रा के लिए प्रस्थान करने लगा। विश्वभूति को यह सूचना मिलते ही वह उद्यान से निकलकर राजा के पास पहुँचा। देखा कि महाराज स्वय युद्ध मे जाने की तैयारी कर रहे है। कुमार ने पूछा—"महाराज ! अचानक युद्ध की घोषणा कैसे ? क्या बात है ?"

---

९१ (क) आवश्यक चूर्णि० पृ० २३० (ख) आव० मल० २४६
(ग) त्रिषष्टि० १०।१।६०

राजा ने बताया—"सीमा पर एक पुरुषसिंह सामन्त है जो बहुत दिनों से सिर उठा रहा है, मैं उसी के साथ युद्ध करने जा रहा हूं।" वह अज्ञात पत्र भी उसके हाथ में थमा दिया।

"महाराज, मैं घर पर बैठा रहूं, और आप युद्ध के लिए जायें, क्या यह मेरे लिए लज्जा की बात नहीं है। आप मुझे आज्ञा प्रदान करें।"

राजा तो यही चाहता था, उसने उसी समय स्वीकृति दे दी। विश्वभूति सेना के साथ चल पड़ा। पर पुरुषसिंह तो लड़ना चाहता ही नहीं था, वह उपहार लेकर सामने आया। हाथी, घोड़े, हीरे-मोती विविध उपहार देकर विश्वभूति को प्रसन्न किया। विश्वभूति ने पुरुषसिंह को अनुकूल देखा, उसने उसको सीमा की सुरक्षा की जिम्मेदारी देकर, बिना युद्ध किये ही, विजय वैजयन्ती फहराकर पुनः दल बल सहित लौट आया।

इधर विश्वभूति के जाने के पश्चात् राजकुमार विशाखनन्दी ने अन्तःपुर सहित उद्यान में अपना डेरा डाल दिया। विश्वभूति पुनः लौटकर जब उद्यान में प्रवेश करने लगा तो दण्डधारी द्वारपालों ने रोक दिया। उन्होंने कहा—"अन्दर सपत्नीक विशाखनन्दी राजकुमार है।"

विश्वभूति रुक गया, उसके हृदय को गहरा आघात लगा। वह सोचने लगा—"अहो! मुझे इस उद्यान से निकालने के लिए ही कहीं यह युद्ध का नाटक तो नहीं रचा गया? और इस नाटक के सूत्रधार महाराजा स्वयं हैं ? मैं जिनके लिए प्राणोत्सर्ग करने के लिए तैयार हूं, वे महाराजा मेरे साथ इस प्रकार कपट युक्त व्यवहार करते हैं? उसे राजा के व्यवहार पर बड़ी ग्लानि हुई। क्रोध भी उमड़ आया, और क्रोधावेग में वहीं पर कपित्थ (कैथ) के वृक्ष पर एक जोरदार पाद-प्रहार किया जिससे सारे कपित्थ के फल भूमि पर गिर पड़े। उसने द्वारपालों को ललकारते हुए कहा 'अधमो! इसी प्रकार मैं तुम्हारे सिर को भी उड़ा सकता हूं, पर राजा के गौरव की रक्षा के लिए ऐसा नहीं करता। मुझसे मांगकर उद्यान लिया जा सकता था, परन्तु इस प्रकार छल-छद्म करना अनुचित है। कुमार से कह देना कि भाई के साथ धोखा करने का परिणाम अच्छा नहीं होगा।'[९३]

---

९२ (क) आवश्यक चूर्णि पृ० २३१, (ख) महावीर चरियं ३। पृ० ३३-३६

(ग) त्रिषष्टि० १०।१।९६

९३ वही, सभी स्थल

विश्वभूति के क्रोध को देखकर पहरेदारो का पसीना छूट गया। वे थरथर कापने लगे, किन्तु कुमार ने अपने उमडते हुए क्रोध के वेग को रोक लिया। ग्लानि वैराग्य मे बदल गई, उसे ससार से विरक्ति हो गई। वह घर से निकल कर आर्य सभूति स्थविर के पास पहुँचा और सयम ग्रहण कर लिया। कठोर साधना ओर दीर्घतपस्या से आत्मा को भावित करते हुए उसने अनेक प्रकार की तपोजन्य लब्धियाँ प्राप्त की।[९४]

एक समय विहार करते हुए विश्वभूति अनगार मथुरा नगरी मे आये। इधर विशाखनन्दी कुमार भी मथुरा की राजकन्या से विवाह करने वहाँ आया और मुख्य मार्ग पर स्थित राजप्रासाद मे ठहरा। विश्वभूति अनगार मासिक उपवास के पारणा हेतु घूमते हुए उधर निकल आये। विशाखनन्दी के सेवको ने मुनि को पहचान लिया। उन्होने शीघ्र ही विशाखनन्दी को खबर दी। विशाखनन्दी आया, देखा, एक महान् योद्धा विश्वभूति आज अत्यन्त दुर्बल जीर्ण-शीर्ण हुआ धकियाता हुआ चल रहा है। मुनि को देखते ही उसके अन्तर्मानस मे क्रोध की आँधी उठी। सरोष नेत्रो से वह मुनि को देख ही रहा था कि एक सद्य प्रसूता गाय की टक्कर से विश्वभूति अनगार भूमि पर गिर पडे। गिरे हुए मुनि का उपहास करते हुए विशाखनन्दी कुमार ने कहा—"विश्वभूति तुम्हारा वह पराक्रम, जो कपित्थ को तोडते समय देखा गया था, आज कहाँ गायब हो गया है ?"

राजकुमार के व्यग्य वचन से मुनि की क्रोधाग्नि भडक उठी। "दुष्ट! मैं साधु बन गया हूँ तो भी आज तू मेरी मजाक कर रहा है। मेरी क्षमा और तपस्या को तू दुर्बलता समझ रहा है ?" विश्वभूति अनगार ने आवेश मे आकर गाय के दोनो शृ गो को पकडकर चक्र की तरह घुमाकर, आकाश मे उछाल दिया[९५] और कहा—"क्या दुर्बल सिंह शृगाल से भी गया गुजारा होता है, यदि मेरे तप-जप व ब्रह्मचर्य का फल हो तो आगामी भव मे अपरिमित बल वाला बनू।" इस प्रकार मुनि ने निदान कर व दोष की आलोचना किये बिना ही समय पर आयुष्य पूर्ण किया।

---

९४ वही।

९५ ताहे अमरिसेण त गावि अग्गसिगेहि गहाय उड्ढ उव्विहति।

—आव० चूर्णि० २३२

(ख) आव० मल० वृत्ति २४९

(ग) त्रिषष्ठि० १०।१।१०९

(घ) महावीर चरिय ३।११, पृ० ४०

दिगम्बराचार्य गुणभद्र ने विश्वभूति के स्थान पर विश्वनन्दी यह नाम दिया है और विश्वनन्दी के स्थान पर विश्वभूति।[९६] परिवार के नामो मे भी परिवर्तन हुआ है।

उत्तरपुराण मे बताया है—विश्वभूति दीक्षा लेते है और अपने लघु भ्राता को राज्य अर्पित कर देते है। पर कथा की मौलिक घटना, उद्यान की पुष्प क्रीडा, भाइ का अधिकार तथा किस प्रकार कपट युद्ध का रूप तैयार किया गया आदि घटना दोनो ही परम्परा मे एक-सी है।

जैसा कि पूर्व बताया है कि श्वेताम्बर ग्रन्थो के अनुसार विशाखनन्दो कुमार मथुरा मे विवाह के लिए जाता है, पर उत्तरपुराण के अनुसार वह व्यसनो मे फस कर राज्य से च्युत हो जाता है, और एक राजा का दूत बनकर वह मथुरा जाता है। वहाँ वह एक वेश्या के मकान मे बैठा था और मुनि को सद्य प्रसूता गाय की टक्कर लगने से नीचे गिर जाने पर उसका परिहास करना बताया गया है।[९७]

किन्तु आश्चर्य इस बात का है कि इन्ही गुणभद्र ने श्रेयास तीर्थंकर के प्रसग मे त्रिपृष्ट वासुदेव के पूर्वभव को बताने के लिए विश्वनन्दो की कथा दी है, यद्यपि वह अति सक्षिप्त है, तथा पृथक्-रूप से चित्रित की गई है, केवल उद्यान और गाय का प्रसग समान है। किन्तु कपित्थ को बात उसमे नही आई है और न कपटयुद्ध का प्रसग ही उसमे है। उद्यान के लिए दोनो भाइयो मे युद्ध होता है और विशाखनन्दी भाग जाता है। बाद मे विश्वनन्दी को वैराग्य होता है[९८] और वह सम्भूत स्थविर के पास दीक्षा लेता है।

---

९६ उत्तरपुराण ७४।८६ ८७, ८८

९७ प्रविष्टवान् विनष्टात्मबलश्चलपदस्थिति ।
तदा व्यसनससर्गाद् भ्रष्टराज्यो महीपते ।११३।
कस्यचिद् दूतभावेन मथुरा पुरमागत ।
विशाखनन्दी वेश्याया प्रासादतलमाश्रित ।११४।

—उत्तरपुराण ७४

९८ विशाखभूतिपुत्रेण निर्भत्स्य वनपालकान् ।
स्वीकृत तद्‌बलात्तेन तेनासीत्सयुगस्तयो ॥
सग्रामासहनात्तत्र दृष्टवा तस्य पलायनम् ।
विश्वनन्दी विरक्त सन् धिग्मोहमिति चिन्तयन् ॥

—उत्तर पुराण ५७।७६-७७

सभव है कि गुणभद्र को महावीर की कथा लिखते समय पूर्ण कथा मिली हो, यदि कथा पूव मिल जाती तो एक ही ग्रन्थ मे कथा के दो रूप शायद नही आ सकते थे।[९९]

समीक्षा

आवश्यक नियुक्ति मे कथा के पात्र, दीक्षा, निदान आदि की केवल सूचनामात्र है, उसी का विस्तार आवश्यक चूर्णि मे किया गया है। महावीर चरिय, त्रिपष्टि शलाकापुरुप चरित्र ओर कल्पसूत्र की टीकाओ मे प्रस्तुत प्रसग काव्यात्मक शैली मे प्रस्तुत किया गया है।

मरीचि के पश्चात् ६ परिव्राजकभव करने के वाद महावीर का जीव पुन इस भव मे सम्यग्दर्शन प्राप्त करता है और आर्हती दीक्षा भी ग्रहण कर उत्कृष्ट तप-साधना भी करता है। इस दृष्टि से इस भव का विशेष महत्त्व है, किन्तु अन्त मे निदान कर वासुदेव जैसी विशिष्ट उपाधि को प्राप्त करता है। भौतिक वैभव की दृष्टि से इसका कम महत्त्व नही है किन्तु आन्तरिक उन्नति के अभाव मे उसे नरक की दारुण वेदना भोगनी पडी। इस कथा का साराश यह है—साधना के प्रशस्त पथ को भूलकर जो साधक भौतिक वैभव आदि की आकाक्षा करता है, उसे वह वस्तु तो भले प्राप्त हो जाती है, पर उसके वाद उस भौतिक समृद्धि का उपयोग करने से उसका पतन अवश्य ही होता है। जैन परिभाषा मे उसे 'निदान' कहा गया है। जो शल्य की तरह सदा चुभता रहता है। हम इस वात की तुलना वैदिक-परम्परा के उन तापसो के साथ कर सकते है जो अपने दिव्य तपोबल से किसी को आशीर्वाद और शाप देते थे।

इस कथा से निदान का दुष्परिणाम भी प्रतिपादित किया गया है। निदान करने पर भी यदि वह जीवन की साध्यवेला मे आलोचना और प्राय-

---

९९ महावीर—प० दलसुख मालवणिया की पाण्डुलिपि

१०० (क) रायगिह विस्सणदी विसाहभूती य तस्स जुवराया।
जुवरण्णो विस्सभूती विसाहणन्दो य इतरस्स॥
रायगिह विस्सभूती विसाहभूतिसुतखत्तिए कोडी।
हस्स दिक्खा सभूतजतिस्स पासम्मि॥
गोत्तासितो मधुराए सणिदाणो मासएण भत्तेण॥

—आव० निर्युक्ति ३२७-३२९

(ख) विशेषा० भाष्य १७९३ से १७९५

श्चित्त कर लेता तो जीवन विशुद्ध बन सकता है। पर वैर को उसी समय शमन न किया जाय तो उसकी वह परम्परा दीर्घकाल तक चलती रहती है। आगे के भवो मे उसी बात का प्रतिपादन किया गया है।

(१७) महाशुक्र देवलोक

वहाँ से आयु पूर्ण कर महाशुक्र कल्प मे उत्कृष्ट स्थिति वाला देव हुआ।

(१८) त्रिपृष्ट वासुदेव

त्रिपृष्ट वासुदेव की कथा आवश्यक निर्युक्ति मे नही है, केवल नगरी माता, पिता और वह प्रथम वासुदेव है, केवल इतना-सा सूचन है, किन्तु आवश्यक चूर्णि, महावीर चरिय, आवश्यक हरिभद्रीय व मलयगिरि वृत्ति, त्रिषष्टि शलाकापुरुष चरित्र मे विस्तार से कथा आई है जो इस प्रकार है—देवलोक की आयु पूर्ण होने पर वह पोतनपुर नगर मे प्रजापति राजा की महारानी मृगावती की कुक्षि मे उत्पन्न हुआ। माता ने सात स्वप्न देखे।[१] जन्म होने पर पुत्र के पृष्ठ भाग मे तीन पसलियाँ होने के कारण उसका 'त्रिपृष्ठ' नाम रखा।[२]

राजा प्रजापति प्रतिवासुदेव अश्वग्रीव के माण्डलिक थे। एक बार प्रतिवासुदेव ने निमित्तज्ञ से प्रश्न किया कि "मेरी मृत्यु कैसे होगी?" निमित्तज्ञ ने बताया कि—जो आपके चण्डमेघ दूत को पीटेगा, तुङ्गगिरि पर रहे हुए केसरीसिंह को मारेगा उसी के हाथ से आपकी मृत्यु होगी।[३]

---

१ (क) सत्त सुविणा दिट्ठा।

—आव० मल० वृत्ति० २५०

(ख) आव० चूर्णि २३२

२ (क) आव० नि० ३३०

(ख) विशेषा० भाष्य १७७६

(ग) तिन्नि पिट्ठकरडगा तेण से तिविट्ठत्ति णाम कत।

—आव० चूर्णि २३२

(घ) त्रिकरडकपृष्टत्वात्तिपृष्ट इति सज्ञित

—त्रिपष्टि० १०।१।११६

(ङ) उत्तरपुराण ७४।१२२। पृ० ४५१

३ इओ य महामडलीओ आसग्गीतो राया, सो णेमित्ती अप्पणो मच्चु पुच्छति, कतो मम भयति ? तेण भणिय—जो एत्त सीह मारिहित्ति चडमेह दूत्त आधरिसेहिति, ततो भय ते।

—आव० चूर्णि २३३

सभव है कि गुणभद्र को महावीर की कथा लिखते समय पूर्ण कथा मिली हो, यदि कथा पूर्व मिल जाती तो एक ही ग्रन्थ मे कथा के दो रूप शायद नही आ सकते थे।[९९]

समीक्षा

आवश्यक नियु क्ति मे कथा के पात्र, दीक्षा, निदान आदि की केवल सूचनामात्र है, उसी का विस्तार आवश्यक चूर्णि मे किया गया है। महावीर चरिय, त्रिपष्टि शलाकापुरुप चरित्र और कल्पसूत्र की टीकाओ मे प्रस्तुत प्रसग काव्यात्मक शैली मे प्रस्तुत किया गया है।

मरीचि के पश्चात् ६ परिव्राजकभव करने के बाद महावीर का जीव पुन इस भव मे सम्यग्दर्शन प्राप्त करता है और आर्हती दीक्षा भी ग्रहण कर उत्कृष्ट तप-साधना भी करता है। इस दृष्टि से इस भव का विशेष महत्त्व है, किन्तु अन्त मे निदान कर वासुदेव जैसी विशिष्ट उपाधि को प्राप्त करता है। भौतिक वैभव की दृष्टि से इसका कम महत्त्व नही है किन्तु आन्तरिक उन्नति के अभाव मे उसे नरक की दारुण वेदना भोगनी पडी। इस कथा का साराश यह है—साधना के प्रशस्त पथ को भूलकर जो साधक भौतिक वैभव आदि की आकाक्षा करता है, उसे वह वस्तु तो भले प्राप्त हो जाती है, पर उसके बाद उस भौतिक समृद्धि का उपयोग करने से उसका पतन अवश्य ही होता है। जैन परिभापा मे उसे 'निदान' कहा गया है। जो शल्य की तरह सदा चुभता रहता है। हम इस बात की तुलना वैदिक-परम्परा के उन तापसो के साथ कर सकते है जो अपने दिव्य तपोबल से किसी को आशीर्वाद और शाप देते थे।

इस कथा से निदान का दुष्परिणाम भी प्रतिपादित किया गया है। निदान करने पर भी यदि वह जीवन की साध्यवेला मे आलोचना और प्राय-

९९ महावीर—प० दलसुख मालवणिया की पाण्डुलिपि

१०० (क) रायगिह विस्सणदी विसाहभूती य तस्स जुवराया।
जुवरण्णो विस्सभूती विसाहणन्दी य इतरस्स॥
रायगिह विस्सभूती विसाहभूतिसुतखत्तिए कोडी।
वाससहस्स दिक्खा सभूतजतिस्स पासम्मि॥
गोत्तासितो मधुराए सणिदाणो मासएण भत्तेण॥

—आव० निर्युक्ति ३२७-३२९

(ख) विशेपा० भाष्य १७९३ से १७९५

श्चित्त कर लेता तो जीवन विशुद्ध बन सकता है। पर वैर को उसी समय शमन न किया जाय तो उसकी वह परम्परा दीर्घकाल तक चलती रहती है। आगे के भवो मे उसी बात का प्रतिपादन किया गया है।

(१७) महाशुक्र देवलोक

वहाँ से आयु पूर्ण कर महाशुक्र कल्प मे उत्कृष्ट स्थिति वाला देव हुआ।

(१८) त्रिपृष्ट वासुदेव

त्रिपृष्ट वासुदेव की कथा आवश्यक निर्युक्ति मे नही है, केवल नगरी माता, पिता और वह प्रथम वासुदेव है, केवल इतना-सा सूचन है, किन्तु आवश्यक चूर्णि, महावीर चरिय, आवश्यक हरिभद्रीय व मलयगिरि वृत्ति, त्रिषष्टि शलाकापुरुष चरित्र मे विस्तार से कथा आई है जो इस प्रकार है—देवलोक की आयु पूर्ण होने पर वह पोतनपुर नगर मे प्रजापति राजा की महारानी मृगावती की कुक्षि मे उत्पन्न हुआ। माता ने सात स्वप्न देखे। जन्म होने पर पुत्र के पृष्ठ भाग मे तीन पसलियाँ होने के कारण उसका 'त्रिपृष्ठ' नाम रखा।[२]

राजा प्रजापति प्रतिवासुदेव अश्वग्रीव के माण्डलिक थे। एक बार प्रतिवासुदेव ने निमित्तज्ञ से प्रश्न किया कि "मेरी मृत्यु कैसे होगी?" निमित्तज्ञ ने बताया कि—जो आपके चण्डमेघ दूत को पीटेगा, तुङ्गगिरि पर रहे हुए केसरीसिंह को मारेगा उसी के हाथ से आपकी मृत्यु होगी।[३]

---

१ (क) सत्त सुविणा दिट्ठा।

—आव० मल० वृत्ति० २५०

(ख) आव० चूर्णि २३२

२ (क) आव० नि० ३३०

(ख) विशेषा० भाष्य १७७६

(ग) तिन्नि पिट्ठकरडगा तेण से तिविट्ठत्ति णाम कत।

—आव० चूर्णि २३२

(घ) त्रिकरडकपृष्टत्वात्तिपृष्ट इति सज्ञित

—त्रिषष्टि० १०।१।११६

(ङ) उत्तरपुराण ७४।१२२। पृ० ४५१

३ इओ य महामडलीओ आसग्गीवो राया, सो णेमित्ती अप्पणो मच्चु पुच्छति, कतो मम भयति ? तेण भणिय—जो एत्त सीह मारिहिति चडमेह दूत आधरिसेहिति, ततो भय ते।

—आव० चूर्णि २३३

यह सुनकर अश्वग्रीव भयभीत हुआ। दूतो के मुख से उसने सुना—प्रजापति राजा के पुत्र बडे ही बलवान् ह। परीक्षा करने के लिए चण्डमेघ दूत को वहाँ भेजा गया।

राजा प्रजापति अपने पुत्र तथा सभासदो के साथ राजसभा मे बैठा था। सगीत की झकार से राजसभा का वातावरण रसमय हो रहा था। सभी तन्मय होकर नृत्य और सगीत का आनन्द लूट रहे थे, ठीक उसी समय अभिमानी दूत ने बिना कुछ पूर्व सूचना दिये ही धृष्टतापूर्वक राजसभा मे प्रवेश किया। राजा ने सम्भ्रान्त होकर दूत का स्वागत किया। सगीत और नृत्य का कार्य स्थगित कर उसका सन्देश सुना।[४]

त्रिपृष्ट कुमार को रग मे भग करने वाले दूत की यह उद्दण्डता बहुत अखरी। उन्होने अपने सेवको को यह आदेश दिया कि जब यह दूत यहाँ से रवाना हो तब हमे सूचित करना।

राजा ने प्रतिवासुदेव का सब सदेश सुनकर सत्कारपूर्वक दूत को विदा किया। इधर दोनो राजकुमार उसके जाने की प्रतीक्षा मे थे ही। जैसे ही सूचना मिली वे जगल मे पहुँचकर दूत को पकडकर बुरी तरह पीटने लगे। दूत के जो भी साथी– सहायक थे वे सभी भाग छूटे, दूत की खूब पिटाई हुई।[५]

जब प्रजापति को अपने पुत्रो द्वारा किया गया घटनाचक्र ज्ञात हुआ तो वे चिन्तातुर हो गये। दूत को पुन अपने पास बुलाकर अत्यधिक उपहार दिये और कहा कि 'पुत्रो की यह भूल अश्वग्रीव से न कहना। दूत ने स्वीकार कर लिया, पर उसके साथी जो पहले पहुँच चुके थे, उन्होने सारा वृतान्त अश्वग्रीव को बता दिया। अश्वग्रीव अत्यधिक क्रुद्ध हुआ। उसे लगा यही राजकुमार उसका काल है। अत दोनो राजकुमारो को मरवाने की योजना बनाने लगा।

---

४ (क) आव० चूर्णि २३३ मे 'तत्थ य अतेपुरपेच्छणय वट्टति, तत्थ दूतो पविट्ठो अन्त पुर का उल्लेख हुआ है।
(ख) प्रजापते कारयत सगीत निजपर्षदि।
अकस्मात्प्राविशच्चण्डवेग स्वामिबलोन्मद।
—त्रिषष्टि० १०।१।१२६

५ (क) आव० चूर्णि पृ० २३३ (ख) आव० मल० २५०
(ग) त्रिषष्टि १०।१।१३१

अश्वग्रीव ने तुङ्गग्रीव क्षेत्र मे शालिधान्य की खेती करवाई और कुछ समय के पश्चात् प्रजापति के पास दूत भेजा। दूत ने आदेश सुनाया कि शालिके खेतो मे एक क्रूर सिह ने उपद्रव मचा रखा है, वहा की रखवाली करने वालो को उसने मार डाला, पूरा क्षेत्र भयग्रस्त है, अत आप जाकर सिह से शालिक्षेत्र की रक्षा कीजिये।

प्रजापति स्वय शालिक्षेत्र की ओर प्रस्थान करने लगा। पुत्रो ने प्रार्थना की—"पिताजी ! आप ठहरिये, इस छोटे से काम के लिए तो हम दोनो भाई काफी है। आप आराम करिए, हमे जाने दीजिए।"

राजा ने सिह की भयकरता का वर्णन करते हुए बताया—"पुत्रो ! मै अब नदी किनारे का वृक्ष हूँ। कभी भी जाना ही है, पर तुम आशा के दीपक हो। इस क्यारी के मुस्कराते हुए फूल हो, इसलिए तुम्हे अपनी रक्षा सतत करनी चाहिए।"

पुत्रो ने बहुत आग्रह किया। पिता की अनुमति लेकर कुमार उधर चल पडे। पिता ने बहुत-से तीक्ष्ण शस्त्र और वीर सैनिक साथ दिये। शालिक्षेत्र मे जाकर कुमार ने खेत के रक्षको से पूछा—"अन्य राजा यहाँ पर किस प्रकार और कितने समय रहते है?" उन्होने निवेदन किया—"जब तक शालि (धान्य) पक नही जाता तब तक चतुरगिनी सेना का घेरा डालकर यहाँ रहते ह और सिह से रक्षा करते ह।"

त्रिपृष्ट ने कहा—"मुझे वह स्थान बतलाओ, जहाँ वह नवहत्या केसरी सिंह रहता है?"

वृद्ध किसानो ने हसते हुए कहा—"राजकुमार ! आप तो ऐसी बात कर रहे है, जैसे हिरण और खरगोश का शिकार करने आये हो। वह तो खूखार केसरीसिह है। बडे-बडे राजा यहाँ आ चुके है, किन्तु अभी तक तो उसे कोई मार नही सका है और आप आते ही उसकी गुफा पूछ रहे ह?"

त्रिपृष्ट की भुजाए फडक रही थी। बल और साहस उनसे फूट कर निकल रहा था। बोले—"है तो वह सिह ही। चुटकियो मे ही हम उसका शिकार कर लेगे। रथारूढ होकर सशस्त्र त्रिपृष्टकुमार वहाँ पहुँचे। सिह को ललकारा। सिह भी अगडाई लेकर उठा और मेघगभीर-गर्जना से पर्वत की चोटियो को कपाता हुआ बाहर निकल आया। त्रिपृष्ट ने सोचा—यह पैदल है और हम रथारूढ ह। यह शस्त्ररहित है और हम शस्त्रो स

सज्जित है। इस प्रकार की स्थिति मे आक्रमण करना उचित नही। ऐसा विचार कर वह रथ से नीचे उतर गया और शस्त्र भी फेक दिये।[६]

सिह ने सोचा—यह वज्र मूर्ख है। प्रथम तो एकाकी मेरी गुफा पर आया है, दूसरे रथ से भी नीचे उतर गया है, तीसरे शस्त्र भी डाल दिये है। अब एक झपाटे मे ही इसे चीर डालूँ, ऐसा सोचकर वह त्रिपृष्ट पर टूट पडा। त्रिपृष्ट ने भी पूरी शक्ति के साथ (पूर्वकृत निदान के अनुसार) उसके जबडो को पकडा और पुराने वस्त्र की तरह उसे चीर डाला। यह देखकर दर्शक आनन्दविभोर हो उठे। दूर खडे दर्शक कुमार त्रिपृष्ट का साहस देखकर स्तब्ध रह गये। जयघोषो से गगन मडल गूज उठा। यह सिह विशाखा नन्दी का ही जीव था।[७]

त्रिपृष्ट कुमार सिह चर्म को लेकर अपने नगर मे आये। आने के पूर्व उसने कृपको को कहा—'उस घोटकग्रीव को कह देना अब निश्चित रहे।" अश्वग्रीव ने कुमार त्रिपृष्ठ के अद्भुत शौर्य की कहानी सुनी तो वह दिग्मूढ-सा रह गया। ईर्ष्या और भय की आग मे जल उठा। अश्वग्रीव ने दोनो राजकुमारो को बुलाया। वे जब उनके पास नही गये तब अश्वग्रीव ने ससैन्य पोतनपुर पर चढाई कर दी। त्रिपृष्ट कुमार भी अपनी सेना के साथ देश की सीमा पर आ गया। भयकर युद्ध हुआ। त्रिपृष्ट को यह नर-सहार अच्छा न लगा। उसने अश्वग्रीव से कहा—'निरपराध सैनिको को मारने से लाभ क्या है? अच्छा हो, हम दोनो ही युद्ध करे।" अश्वग्रीव ने प्रस्ताव स्वीकार कर किया। दोनो मे तुमुल युद्ध हुआ। अश्वग्रीव के सभी शस्त्र समाप्त हो गए। उसने चक्ररत्न फेका। त्रिपृष्ट ने उसे पकड लिया

---

६ (क) कुमारो चिंतेति—एस पयायेहिं अह रहेण, विसरिस जुद्ध, ताहे असि-खेडगहत्थो रहातो उत्तिन्नो, ताहे पुणो चिंतित—एस दाढणक्खाउधो अह असिखेडएण एवमवि विसम ताहे त पि णेण असिखेडग छड्डित ।

—आव० चूर्णि पृ० २३४

(ख) आवश्यक हरिभद्रीयावृत्ति

(ग) आवश्यक मल० वृत्ति २५०

(घ) त्रिपष्टि० १०।१।१४४-१४५

७ विशाखनन्दि जोवोऽथ भव भ्रान्त्वा मृगाधिप ।
जातस्तु गगिरौ शखपुरदेशमुपाद्रवत् ॥

—त्रिपष्टि० १०।१।१२१

और उसी से अपने शत्रु के सिर का छेदन कर डाला। तभी दिव्यवाणी से नभोमण्डल गूंज उठा—'त्रिपृष्ट नामक प्रथम वासुदेव प्रकट हो गया।'[८]

श्वेताम्बर परम्परा के ग्रन्थो के अनुसार विशाखनन्दी का जीव सिंह बना था पर उत्तरपुराण के अनुसार विशाखनन्दी का जीव अश्वग्रीव प्रति-वासुदेव हुआ।[९] उत्तरपुराण मे सिंह का उपरोक्त प्रसग नही है। समय आने पर अश्वग्रीव को नष्टकर वह त्रिपृष्ट वासुदेव बना।[१०]

गुणचन्द्र ने ओर आचार्य हेमचन्द्र ने एक नवीन घटना का उल्लेख किया है। वह इस प्रकार है—

एक बार सध्या की सुहावनी वेला थी। सूर्य अस्ताचल की ओर पहुँच गया था। उस समय त्रिपृष्ट वासुदेव के पास सगीतज्ञ आये। उन्होने सगीत की सुमधुर स्वरलहरी से वातावरण को मुखरित कर दिया। निद्रा आने का समय होने पर वासुदेव ने शय्यापालक से कहा—जब मुझे निद्रा आ जाये उस समय तुम गायको को रोक देना। शय्यापालको ने 'तथास्तु' कहा। कुछ ही समय मे सम्राट् को नीद लग गई। शय्यापालक सगीत पर इतना अधिक मुग्ध हो गया कि सगीतज्ञो को उसने विसर्जित भी नही किया। रात भर सगीत चलता रहा। ऊषा की सुनहरी किरणे प्राची पर मुस्कराने वाली थी कि सम्राट् की निद्रा टूटी। सम्राट् ने पूर्ववत् ही सगीत चालू देखा। शय्यापालक से पूछा—"इन्हे विसर्जित क्यो नही किया ?" उसने नम्र निवेदन किया—"सगीत सुनने के आनन्द मे अनुरक्त हो जाने से उन्हे विसर्जित नही किया।"

यह सुन त्रिपृष्ट वासुदेव को क्रोध भडक आया। अपने सेवको को बुलाकर कहा—"आज्ञा की अवहेलना करने वाले एव सगीत-लोभी इस

---

८ (क) देवेहि उग्घुट्ठ एस पढमो तिविट्ठ नामेण वासुदेवो त्ति।

—आव० चूर्णि पृ० २३४

(ख) आव० निर्युक्ति, मलय० पृ० २५०

९ विशाखनन्द ससारे चिर भ्रान्त्वातिदु खित।
अश्वग्रीवाभिध सूनुरजनिष्ठापचारवान्॥

—उत्तरपुराण ७४।१२९

१० उत्तरपुराण ७४।१६१ से १६४, पृ० ४५४

शय्यापालक के कर्णकुहरो मे गर्मागर्म शीशा उडेल दो ।[११] सम्राट् की कठोर आज्ञा से शय्यापालक के कानो मे शीशा उडेला गया । भयकर वेदना से छटपटाते हुए उसने प्राण त्याग दिये । त्रिपृष्ट वासुदेव ने सत्ता के मद मे उन्मत्त वनकर इस क्रूरकृत्य के कारण निकाचित कर्मों का वधन किया । महारभ और महापरिग्रह मे मशगूल वनकर चौरासी लाख वर्ष तक राज्य-श्री का उपभोग करता रहा ।

समीक्षा

प्रस्तुत कथाप्रसग मे चूर्णि से लेकर सभी ग्रन्थकारो ने प्रजापति की कथा दी है, विस्तारभय के कारण मैंने उसका उल्लेख उपर्युक्त पक्तियो मे नही किया है। यह कथा वैदिको के प्रजापति की कथा के सदृश ही है, जिसका मूल ऐतरीय ब्राह्मण है ।[१२]

'त्रिपृष्ट' यह नामकरण कैसे हुआ, इसके लिये आवश्यक चूर्णि, आदि मे 'तिन्निपिट्ठकरडगा'[१३] शब्द आया है, पृष्टकरडक शब्द का अर्थ पीठ मे बढी हुई हड्डी (खु ध) होता है ।[१४] आचार्य शीलाक ने 'वसतिय' शब्द का प्रयोग किया है ।[१५]

त्रिपृष्ट प्रथम वासुदेव है और अश्वग्रीव प्रतिवासुदेव है । अश्वग्रीव मृत्यु के भय मे उसी प्रकार कापता है जैसे कस कृष्ण के भय से कापता था । इस प्रसग की तुलना हम भागवत[१६] और अन्य पुराणो मे आई हुई कथा से कर सकते है ।[१७]

---

११ (क) तत्ततउयतवरस खिवेइ सवणेसु त्ति ।

—महावीर चरिय ३।६२

(ख) तच्छ्रुत्वा कुपितो विष्णु प्रभाते तस्य कर्णयो ।
अक्षेपयत्त्रपु तप्त शय्यापालो मृतश्च स ॥

—त्रिपष्टि० १०।१।१७८

१२ (क) ऐतरीय ब्राह्मण ३।३२,
(ख) विशेप परिचय के लिए देखे 'भारतवर्षीय प्राचीन चरित्रकोश' मे **प्रजापति** शब्द पृ० ४६४

१३ (क) आव० चूर्णि २३२, (ख) महावीर चरिय पृ०-४३

१४ पाइअसद्दमहण्णवो पृ० ५६८, पृष्ठकरडक शब्द

१५ चउप्पन्न महापुरिस चरिय, पृ० ६५

१६ भागवत १०।२,३,४

१७ भारतवर्षीय प्राचीन चरित्र कोप 'कस' शब्द पृ० १०६

यह स्पष्ट है कि आवश्यक चूर्णि से ही अन्य ग्रन्थकारो ने कथासूत्र लिया है। किन्तु कथाप्रसग समान होने पर भी कथाक्रम एक सदृश नही है। सिंह को मारने का प्रसग चूर्णि मे प्रतिवासुदेव की आज्ञा से आया है, जबकि चउप्पन्न महापुरिसचरिय मे स्वतत्र रूप से आया है। परम्परा समान होने पर भी लेखको ने लिखने मे अपनी स्वतन्त्रता का भी उपयोग किया है

आवश्यक चूर्णि मे त्रिपृष्ट के भव मे सम्यक्त्व रत्न नष्ट हो गया था, यह बात नही आई है, पर गुणचन्द्र[१८] और नेमिचन्द्र[१९] के महावीर चरिय मे तथा चउप्पन्न महापुरिस चरिय[२०] मे स्पष्ट रूप से उल्लेख आया है कि इस भव मे उसका सम्यक्त्व रत्न विनष्ट हो गया।

उत्तरपुराण मे त्रिपृष्ट की जो कथा दी गई है, उसमे किसी भी प्रकार का सूचन नही किया गया है, पर उसके अगले भव मे जब वह सिंह होता है तब शिकार कर हरिण को खाता है, उस समय एक चारण मुनि वहाँ आकर उसे उद्बोधन देते हुए कहते है कि—"त्रिपृष्ट के भव मे तुमने अत्यन्त विषय-भोगो का उपभोग किया, तथापि तुझे तृप्ति नही हुई और सम्यग्दर्शन तथा पाच व्रतो से रहित होने के कारण सप्तम नरक मे प्रविष्ट हुआ।[२१] यह उद्बोधन सुन कर सिंह प्रबुद्ध हो गया।

आचार्य हेमचन्द्र ने सम्यक्त्व के लोप का उल्लेख नही किया है, किन्तु हिंसा, अविरत और महारभी व महापरिग्रही होने से वह सातवी नरक मे गया, यह उल्लेख जरूर किया है।[२२] इसका कारण हमारी दृष्टि से यही हो

---

१८ अइकूरज्झवसाणेण य परिगलियसम्मत्तरयणो।

—महावीरचरिय ३।६२

१९ परिगलिय सम्मत्त ज दुलह भवसएहि पि।

—महावीरचरिय ६७, पृ० १३

२० अइकूरज्झवसाइणो गलिय सम्मत्तरयण।

—चउप्पन्न० पृ० १०३

२१ उत्तरपुराण, ७४।१८२

२२ अहिंसादिष्वविरतो महारभपरिग्रह।
चतुरशीत्यब्दलक्षीं प्राजापत्योऽत्यवाहयत्॥

—त्रिषष्टि० १०।१।१८०

सकता है कि जैन परम्परा मे महारभी और महापरिग्रही वही व्यक्ति होता है जो मिथ्यात्वी होता है, इसलिए आचार्य हेमचन्द्र को सम्यक्त्व परिगलन का निर्देश आवश्यक न लगा हो।

उत्तरपुराण मे प्रस्तुत कथा के वर्णन मे वासुदव के रत्नो का भी उल्लेख किया है। उसने स्त्री-रत्न किस प्रकार प्राप्त किया उसका भी वर्णन मिलता है। [3]

उत्तरपुराण की कथा मे यद्यपि नवीन बात नही है तथापि पूर्व-पूर्व भव मे किस प्रकार शत्रु और मित्रता का भाव रहा है, उसकी सयोजना सुन्दर रूप से हुई है और कथा कवित्व युक्त हे।[२४]

(१६) सातवी नरक—

त्रिपृष्ट वासुदेव आयु पूर्ण कर सातवे तमस्तमा नरक के अप्रतिष्ठान नरकावास मे नैरयिक रूप उत्पन्न हुआ।[२५]

(२०) सिह भव

वहाँ से निकलकर वह केसरीसिंह बना। निर्युक्ति आदि श्वेताम्बर ग्रन्थो मे उसका विशेष परिचय नही दिया गया है। उत्तरपुराण के अनुसार वह भयकर सिह किसी समय हरिण को पकडकर खा रहा था, उस समय एक चारणलब्धिधारी मुनिराज वहाँ आये और उच्च स्वर मे उन्होने धर्म का उपदेश प्रारम्भ किया और बताया कि "त्रिपृष्ट के भव मे तुमने अत्यन्त विषय-भोग किये, परिणामस्वरूप तू सम्यक्त्व से भ्रष्ट होकर वहाँ से मरकर सिह हुआ है।" मुनिराज की वाणी को सुनकर उसे जाति स्मरण ज्ञान हुआ। उसे अत्यधिक पश्चात्ताप हुआ। मुनिराज ने पुरुरवा आदि पूर्व भवो का उल्लेख किया और कहा कि अब इस भव से तू दशवे भव मे अन्तिम तीर्थंकर होगा। यह सब मैंने श्रीधर तीर्थंकर से सुना है। उसी समय काल आदि लब्धियो के मिल जाने से शीघ्र ही तत्त्वश्रद्धान धारण किया और मन स्थिर कर

---

२३ उत्तरपुराण ७४।१३५-१५५

२४ महावीर—ले० प० दलसुख मालवणिया।

२५ (क) आव० नि ३३१, (ख) विशे० भाष्य १७६७ (ग) आ० मल० वृ० २५१।
(घ) सत्तमाए पुढवीए अपइट्ठाणे नरए उववन्नो। —आव० चूर्णि २३५
(ङ) महावीरचरिय ३।६२, (च) त्रिषष्टि० १०।१।१८१।
(छ) उत्तरपुराण ७४।१६७।

श्रावक के व्रत ग्रहण किये।[२६] वहाँ से मर कर वह सोधम स्वर्ग मे सिहकेतु नामक देव हुआ। वहाँ दो सागर की स्थिति भोग कर आर पूर्ण कर धातकी खण्डद्वीप के पूव मे जो विदेह क्षेत्र है वहाँ कनकप्रभ नगर म राजा कनकपुङ्गव और कनकमाला रानी के गर्भ स कनकोज्ज्वल नामक पुत्र हुआ।[२७] वह एक बार अपनी पत्नी कनकवती के साथ मन्दरगिरि पर गया, वहा उसन प्रिय मित्र मुनि के दर्शन किथ, अन्त मे सयम धारण कर सातव स्वर्ग म देव हुआ। वहा से च्यवकर जम्बूद्वीप के कोसलदेश मे साकेत नगरी के अधिपति राजा वज्रसेन की शीलवती रानी की कुक्षि से जन्म लिया। उसका नाम हरिषेण रखा। अपने स्वाभाविक गुणो से सब को प्रसन्न करता रहा। जीवन के सान्ध्य-काल मे उसने श्री श्रुतसागर नाम के सद्गुरु के पास दीक्षा ग्रहण की और आयु पूर्ण होने पर महाशुक्र स्वर्ग मे देव हुआ। वहाँ सोलह सागर की स्थिति प्राप्त हुई थी।[२८]

इन भवो की चर्चा श्वेताम्बर ग्रन्थो मे नही हुई है।

(२१) चतुर्थ नरक

श्वेताम्बर ग्रन्थो के अनुसार सिह का जीव मरकर चतुर्थ नरक मे गया।[२९] नरक से निकलने के पश्चात् उसने अनेक भव तिर्यंच और मनुष्य के किये। किन्तु उन भवो के नाम नही बताये गये है।[30]

(२२) मनुष्य

आवश्यक मलयगिरिवृत्ति, महावीर चरिय, त्रिषष्टि शलाकापुरुष चरित्र और श्रमण भगवान महावीर[31] ग्रन्थ मे बावीसवा भव मानव का लिखा है। किंतु इन ग्रन्थो मे उसका नाम, आयुष्य और जीवन के प्रसगो का उल्लेख

---

२६ इतोऽस्मिन्दशमे भावी भवेऽन्त्यस्तीर्थकृद् भवान्।
सवमश्रावि तीर्थेशात्मयेद श्रीधराह्वयात्॥

—उत्तरपुराण ७४।२०४ से २०८

२७ उत्तरपुराण ७४।२२० से २२२

२८ उत्तरपुराण ७४।२३४

२९ (क) पुणो नरएसु—आवश्यक चूर्णि २३५

(ख) त्रिषष्टि० १०।१।१८२

३० ताहे कतिवयाइ तिरियमणूसभवग्गहणाइ भमिऊण —आवश्यक चूर्णि पृ० २३५

३१ (क) आव० नि० मल० वृत्ति० प० २५१

(ख) महावीर चरिय ३। पृ० ६४, गा० ६

नही किया गया है। महावीर चरिय मे गुणचन्द्र ने यह अवश्य बताया है कि इस भव मे तप-जप की साधना कर चक्रवर्ती के योग्य पुण्य उपार्जित किये थे।[3]

गोपालदास जीवाभाई पटेल ने महावीर कथा मे और आचार्य विजय धर्मसूरि जी ने 'श्रमण भगवान् महावीर के छब्बीस भव[33] शीर्षक पुस्तक मे नाम, स्थल आदि का उल्लेख किया है। वे लिखते हे कि भगवान् महावीर का जीव बावीसवे भव मे विमल राजा बना, उनकी माता का नाम विमला था और पिता का नाम प्रियमित्र था। युवावस्था मे आर्हती दीक्षा ग्रहण की, 'उत्कृष्ट' तप-जप की साधना की, पर उन्होने किसी भी प्राचीन ग्रन्थ का प्रमाण प्रस्तुत करने का कष्ट नही किया हे।

समवायाङ्ग सूत्र की वृत्ति मे आचाय अभयदेव ने महावीर के छह पूर्व भव दिये ह। यदि बावीसवा भव मनुष्य का माना जाय तो समवायाग की वृत्ति से मेत नही बैठता है, इसलिए कल्पसूत्र के विवेचन मे मैने बावीसवा भव मनुष्य का नही लिखा, पर इन दोनो ग्रन्थो के सूक्ष्म अवलोकन के साथ चिन्तन करने पर प्रतीत हुआ कि यह कथन उचित नही है एक आचार्य अभय देव को छोडकर सभी ग्रन्थकारो ने गर्भपरिवर्तन को भव नही माना है, एक जन्म मे दो भव किस प्रकार हो सकते हे ? यह तर्क की दृष्टि से भी उचित कम प्रतीत होता है, यदि मूल समवायाग मे यह बात होती तो तर्क की गु जाइश नही थी, पर मूल मे तो वह नही है, वह तो वृत्ति मे है। वृत्ति की अपेक्षा नियु क्ति और चूर्णि की बात अधिक प्रामाणिक मानी जाती है। विशेष इस विपय पर अन्वेपको को तटस्थ दृष्टि से चिन्तन करने की मैं नम्र प्रार्थना करता हूँ।

(२३) प्रियमित्र चक्रवर्ती

वहाँ से वह आयु समाप्त कर महाविदेह क्षेत्र की मूका नगरी मे धनजय राजा की धारणी रानी से प्रियमित्र चक्रवर्ती हुआ। पोट्टिलाचार्य के पावन प्रवचनरूपी पीयूष का पान कर मन मे वैराग्य की ज्योति प्रज्ज्वलित

(ग) त्रिपष्टि० १०।१।१८३

(घ) श्रमण भगवान् महावीर, कल्याण विजय पृ० १७१

३२ महावीर चरिय ३।

३३ (क) महावीर कथा पृ० ४४

(ख) पृ० १३४ से १३८

हुई। दीक्षा ग्रहण की। एक करोड वर्ष तक सयम की कठोर साधना की।[३४]

समवायाग सूत्र मे श्रमण भगवान् महावीर ने तीर्थंकर के भवग्रहण से पूर्व छट्ठा पोट्टिल का भव ग्रहण किया और एक करोड वर्ष तक श्रमण पर्याय का पालन किया।[३५] नवाङ्गी टीकाकार आचार्य अभयदेव ने प्रस्तुत सूत्र पर टीका करते हुए भगवान् पोट्टिल नामक राजपुत्र हुए लिखा है।[३६] भगवान् के जीव ने दो बार पोट्टिलाचार्य के पास दीक्षा ग्रहण की पर स्वय का नाम पोट्टिल था, यह समवायाग के अतिरिक्त आवश्यक निर्युक्ति, आवश्यक चूर्णि, महावीर चरिय, आदि किसी ग्रन्थ मे नही मिलता है, यह एक आश्चर्य की बात है। सभव है पोट्टिलाचार्य के पास दीक्षा ग्रहण करने के कारण प्रियमित्र चक्रवर्ती ही पोट्टिल कहे गये हो। या प्रियमित्र का ही अपर नाम पोट्टिल हो, पर गुरु-शिष्य का नाम होने से भ्रम हो जाय, इस दृष्टि से निर्युक्तिकार आदि ने नाम न दिया हो।

प्रियमित्र व पोट्टिल दोनो की श्रमण-पर्याय एक वर्ष कोटि की है,[३७] जो यह सिद्ध करती है कि वे दोनो पृथक् पृथक् नही थे।

दिगम्बराचार्य गुणभद्र ने 'मूका' नगरी के स्थान पर 'पुण्डरीकिणी' नाम दिया है और माता-पिता का नाम मनोरमा और सुमित्र लिखा है।[३८]

---

३४ (क) पुत्तो धणजयस्सा पुट्टिल परियाओ कोडि सव्वट्ठे —आव० नि० ३३२,
(ख) विशेष० भाष्य १७९८ (ग) आव० चूर्णि० २३५

३५ समणे भगव महावीरे तित्थगरभवग्गहणाओ छट्ठे पोट्टिल भवग्गहणे एग वास-कोडि सामन्न-परियाग पाउणित्ता।

—समवायाग सूत्र १३३, पृ० ९८।१

३६ 'समणे' त्यादि यतो भगवान् पोट्टिलाभिधान राजपुत्रो बभूव, तत्र वर्षकोटि प्रव्रज्या पालितावानित्येको भव।

—समवायाग अभय० वृत्ति १३६ स० प० ९९

३७ (क) प्रव्रज्यापर्यायो वषकोटिबभूव।

—आव० मल० वृत्ति

(ख) आव० निर्युक्ति० ३३२ (ग) विशेषा० भाष्य० १७९८
(घ) महावीर चरिय ३।७१

३८ विषये पुष्कलावत्या धरेश पुण्डरीकिणी।
पति. सुमित्रविख्याति सुव्रतास्य मनोरमा। —उत्तरपुराण ७४।२३६

पोट्टिलाचार्य के स्थान पर भगवान् क्षमकर के पास प्रियमित्र चक्रवर्ती ने एक हजार राजाओ के साथ सयम ग्रहण किया।[३६]

(२४) महाशुक्र

वहाँ से आयु पूर्ण कर वह महाशुक्र कल्प के सर्वार्थ-विमान मे समुत्पन्न हुआ।[४०] समवायाग मे महाशुक्र के स्थान पर सहस्रारकल्प के सर्वार्थ विमान का उल्लेख है।[४१] आचार्य अभयदेव ने नामनिर्देश नही किया है।[४२] उत्तरपुराणकार ने भी समवायाग की तरह सहस्रारकल्प का निर्देश किया है।[४३] निर्युक्तिकार ने महाशुक्र का नाम न देकर 'सव्वट्ठे' ही लिखा है।[४४]

आचार्य जिनदास महत्तर व आचार्य मलयगिरि ने महाशुक्र कल्प का अर्थ सर्वार्थ विमान किया है।[४५] सत्तरह सागरोपम तक वहाँ वे देव सम्बन्धी सुखो का उपभोग करते रहे।[४६] उत्तरपुराणकार ने अठारह सागर की आयु लिखी है।[४७]

(२५) नन्दन राजकुमार

वहाँ से च्यवकर भरत क्षेत्र की छत्रानगरी मे जितशत्रु सम्राट् की भद्रा महारानी की कुक्षि मे पुत्र रूप मे उत्पन्न हुए। नन्दन नाम रखा गया।[४८]

---

३६ उत्तरपुराण ७४।२३७ से २४०

४० (क) महासुक्के कप्पे सव्वट्ठे विमाणे देवो जातो। —आव० चूर्णि० २३५

(ख) आव० मल० प० २५१-५२

(ग) त्रिषष्टि० १०।१।२१६

४१ सहस्सारे कप्पे सव्वट्ठविमाणे देवत्ताए उववन्ने।

—समवायाग सूत्र १३३, प० ६८।१

४२ ततो देवोऽभूदिति द्वितीय।

—समवायाग अभय० वृत्ति १३६, प० ६६

४३ प्रान्ते प्राप्य सहस्रारमभूत्सयप्रभोऽमर।

—उत्तरपुराण ७४।२४१

४४ (क) आव० नि० ३३२, (ख) विशेषा० १७६८

४५ (क) आवश्यक चूर्णि पृ० २३५, (ख) आव० मल० वृत्ति २५१

४६ आव० चूर्णि पृ० ३३५

४७ उत्तरपुराण ७४।२४१, पृ० ४५६

४८ (क) णदणो णाम कुमारो जातो। —आव० चूर्णि २३५

(ख) आव० मल० वृत्ति २५२

राजकुमार नन्दन बाल्यकाल से ही खाने-पीने व खेल-कूद के प्रति उदासीन था किसी दु खी को देखकर उसका हृदय दया से द्रवित हो जाता था, श्रमणो के प्रति उसकी सहज भक्ति थी, उसमे अनेको गुण थे। उसका जीवन गुणो का गुलदस्ता था। पच्चीस लक्ष वर्ष की सम्पूर्ण आयु थी जिससे वह चौबीस लक्ष वर्ष तक गृहवास मे रहा। एक लक्ष वर्ष अवशेष रहने पर पोट्टिलाचार्य के पास सयम ग्रहण किया। एक लाख वर्ष तक निरन्तर मास खमण की तपस्या की। ग्यारह लाख साठ हजार मास खमण हुए, और तीन हजार तीन सौ तेतीस वर्ष तीन मास उनतीस दिन पारणा के हुए। तप के साथ, क्षमा, सेवा और ध्यान की त्रिवेणी बहने लगी, उच्चतर साधना करने से आत्मा विशुद्ध दशा मे पहुँच गई।

तीर्थंकर नाम कर्म का उपार्जन

यह स्मरण रखना चाहिए कि प्रियमित्र चक्रवर्ती के भव से महावीर का जीव पुन श्रमण दीक्षा लेता है और उसके पश्चात् के सभी भवो मे श्रमण दीक्षा लेता है और आध्यात्मिक उत्कर्ष करता है, आवश्यक चूर्णिकार ने स्पष्ट बताया कि जिसके फलस्वरूप वह नन्दन के भव मे तीर्थंकर नाम गोत्र बाँधता है जिससे वह वर्धमान भव मे तीर्थंकर बनता है। ध्यान देने योग्य बात यह है कि आवश्यक निर्युक्ति,[४९] विशेपावश्यकभाष्य[५०] आवश्यक हरिभद्रीया वृत्ति,[५१] आदि मे नन्दन के भव की चर्चा के प्रसग मे उनके तीर्थंकर नाम गोत्र बाँधने का उल्लेख नही किया है, परन्तु देवलोक मे जाकर ब्राह्मण कुल मे उत्पन्न होते है उसके निर्देश के पश्चात तीर्थंकर नाम कर्म के बीस कारण बताए है, वे इस प्रकार है—[५२]

(ग) समवायाग वृत्ति १३३, प० ६६

(घ) त्रिपष्टि० १०।१।२१७

४९ आव० गा० ३३२,३३३,

५० विशेपावश्यक भाष्य १७९८-१७९९

५१ आव० हरिभद्रीया० ४४९-४५०

५२ अरहतसिद्धपवयणगुरुथेरबहुस्सुते तवस्सीसु।
वच्छल्लता य एसि अभिक्खणाणोवयोगे य॥
दसण विणए आवस्सए य सीलव्वले णिरतियारो।
—————ए वेयावच्चे समाधी य॥

१ अरिहत की आराधना	११ षडावश्यक का विधिवत् समाचरण
२ सिद्ध गुरु की आराधना	१२ ब्रह्मचर्य का निरतिचार पालन
३ प्रवचन की आराधना	१३ ध्यान
४ गुरु का विनय	१४ तपश्चर्या
५ स्थविर का विनय	१५ पात्र-दान
६ बहुश्रुत का विनय	१६ वैयावृत्य
७ तपस्वी का विनय	१७ समाधि-दान
८ अभीक्षण ज्ञानोपयोग	१८ अपूर्व ज्ञानाभ्यास
९ निर्मल सम्यग्दर्शन	१९ श्रुत भक्ति
१० विनय	२० प्रवचन-प्रभावना

निर्युक्तिकार ने यह भी बताया है, इन बीस कारणो मे से सभी कारणो की आराधना अन्तिम तीर्थङ्कर ने की है।[५३] ये बीस कारणो की गाथाएँ भगवान ऋषभ के वर्णन के प्रसग पर भी आई है।[५४] उन्ही को यहाँ पुन उट्टङ्कित किया है। जिस क्रम से ये गाथाएँ दी गई है, यदि वही क्रम निर्युक्तिकार को अभिप्रेत है तो तीर्थकर नाम कर्म का बध वर्धमान महावीर के भव मे हुआ ऐसा मानना होगा, पर यह निश्चित है कि नियुक्तिकार ने इन गाथाओ का सम्बन्ध किसी भव के साथ बताया नही है।

आवश्यक चूर्णि मे[५५] महावीर चरिय[५६] मे और त्रिपष्टिशलाका

अप्पुव्वणाणगहणे सुतभत्ती पवयणे पभावणया।
एतेहि कारणेहि तित्थकरत्त लभति जीवो॥

—आव० नि० ३३४ से ३३६

५३ (क) पढमेण पच्छिमेण य एते सव्वे वि फासित्ता ठाणा।

—आव० निर्युक्ति ३३७,

(ख) विशेषा० भाष्य० १८०३

५४ (क) आव० निर्यु० १७२-१७५, (ख) विशेषा० १५८२ से १५८५,
(ग) आव० नि० हरिभद्री, १७९ से १८२

५५ इमेहि वीसाए कारणेहि आसेवितबहुलीकतेहि तित्थगरनामगोय णिव्वत्तेति।

— आव० चूर्णि० २३५

५६ सो नदणमुणिवसहो इय बीसइठाणगाइ फासित्ता।
तित्थयरनामगोत्त कम्म बधेइ परमप्पा॥

—महावीर चरिय गुण० १११

पुरुष चरित्र[५७] आदि श्वेताम्बर ग्रन्थों मे नन्दन के भव मे तीर्थङ्कर नाम कर्म का बध किया यह स्पष्ट लिखा है।

उत्तरपुराण मे भी नन्द के भव मे ही तीर्थंकर नाम कर्म बाँधने का उल्लेख है। पुराणकार ने बीस कारण न देकर सोलह कारण दिये है।[५८]

इस प्रकार नन्दन या नद ने इस भव मे तीर्थङ्कर गोत्र बाँधा और अन्त मे मासिक सलेखना करके आयुपूर्ण किया।[५९] उत्तरपुराण मे नन्द के माता-पिता का नाम वीरवती और नन्दिवर्धन है।[६०]

(२६) प्राणत देवलोक

वहाँ से आयु पूर्ण होने पर वह प्राणत देवलोक के पुष्पोत्तरावतमक विमान मे बीस सागर की स्थिति वाले देव हुए।[६१]

उत्तरपुराण के अनुसार अच्युत स्वर्ग के पुष्पोत्तर विमान मे वह श्रेष्ठ इन्द्र हुआ। वहाँ उसकी आयु बावीस सागर की थी।[६२]

(२७) देवानन्दा के गर्भ मे

भगवान महावीर का जीव ग्रीष्म ऋतु के चतुर्थ मास, अष्टम पक्ष, आषाढ शुक्ला षष्ठी के दिन हस्तोत्तर नक्षत्र का योग आने पर प्राणत नामक दशवे स्वर्ग के पुष्पोत्तर प्रवर पुण्डरीक नामक महाविमान से बीस सागरोपम प्रमाण देव आयुष्य को पूर्ण कर वहाँ से च्युत हुए।[६३] और इसी जम्बूद्वीप के दक्षिण भरतक्षेत्र मे दक्षिण ब्राह्मणकुण्ड सन्निवेश मे कोडाल गोत्रीय ऋषभदत्त की जालधर गोत्रीया देवानन्दा ब्राह्मणी की कुक्षि मे अव-

---

५७ अर्हद्भक्त्यादिभि स्थानैर्विंशत्यापि महातपा।
दुरर्जमर्जयामास, तीर्थकृन्नामकर्म स।

—त्रिषष्टि० १०।१।२२६

५८ उत्तरपुराण ७५।२४५

५९ आव० चूर्णि० २३५

६० उत्तरपुराण ७४।२४३

६१ (क) आव० निर्यु० ३३३, (ख) विशेष० भाष्य० १७९९
(ग) आवश्यक चूर्णि० २३५ (घ) समवायाग अभ० वृत्ति० १३६ प० ९९

६२ उत्तरपुराण ७३।२४६

६३ (क) कल्पसूत्र, सूत्र २ देवेन्द्र मुनि, सम्पादित (ख) आचाराग द्वि० श्रु० ३८८

तरित हुए।[६४] क्षण-भर के लिए तीनो ही लोक मे आनन्द का मचार हो गया और सर्वत्र एक दिव्य प्रकाश फैल गया।

भगवान् महावीर उस समय मति, श्रुत और अवधि इन तीन ज्ञान से युक्त थे। देवगति से च्युत होना है, यह उन्होने जाना, च्युत होकर मैं देवानन्दा ब्राह्मणी की कुक्षि मे पहुच चुका हूँ, यह भी उन्होने जाना, किन्तु च्यवन काल को उन्होने नही जाना, क्योकि वह अत्यन्त सूक्ष्म होता है।[६५]

गर्भाधान के समय देवानन्दा अर्द्ध निद्रित अवस्था मे थी, उस समय चौदह महास्वप्न आये। वह प्रसन्न होकर उठी, और उसने ऋषभदत्त को सारा स्वप्न वृत्तान्त सुनाया। ऋषभदत्त भी बहुत हर्षित हुआ। उसने कहा—सुभगे! ये स्वप्न विलक्षण ह। कल्याण व शिवरूप हे, मगलमय हे, आरोग्य-दायक व मगलकारक है। इन स्वप्नो के फलस्वरूप तुझे अर्थ, भोग, पुत्र, और सुख लाभ होगा। नौ मास और साढे सात दिन व्यतीत होने पर तू एक अलोकिक पुत्र को जन्म देगी। उसके हाथ-पॉव अत्यन्त सुकुमार होगे। वह पॉचो इन्द्रियो से प्रतिपूर्ण व सागोपाग होगा। उसका शरीर सुगठित और सर्वाङ्ग सुन्दर होगा। विशिष्ट लक्षण, व्यजन व गुणसम्पन्न होगा। वह चन्द्र के समान सौम्य, सबको प्रिय, कान्त व मनोज्ञ होगा। शैशवकाल को पार कर जब वह यौवन मे प्रविष्ट होगा, तब वह ऋग्वेद, यजुर्वेद सामवेद व अथर्ववेद, इतिहास तथा निघण्टु का सागोपाग ज्ञाता होगा। उनके गभीर रहस्यो को उद्घाटित करेगा। वेदो के विस्मृत हार्द को पुन प्रकट करेगा। वेद के षडङ्ग व षष्टितत्र (कापिलीय) शास्त्र मे निष्णात होगा। गणितशास्त्र, ज्योतिष, व्याकरण, ब्राह्मणशास्त्र, परिव्राजक शास्त्र आदि मे भी पारगत होगा।[६६]

ऋषभदत्त द्वारा स्वप्नफल सुनकर देवानन्दा अत्यत उल्लसित हो गई। महावीर के गर्भावतरण की घटना जब शक्रेन्द्र को उसी समय ज्ञात हुई तो उन्हे विचार आया—तीर्थङ्कर, चक्रवर्ती, बलदेव, वासुदेव आदि शूद्र, अधम, तुच्छ, अल्प कौटुम्बिक निर्धन, कृपण, भिक्षुक, या ब्राह्मण कुल मे

---

६४ (क) आव० निर्युक्ति, ३३९ (ख) विशेषा० भाष्य० १८२०
(ग) महावीर चरिय, (घ) त्रिषष्टि० १०।२।३
(च) कल्पसूत्र, सूत्र २, पृ० २३

६५ (क) कल्पसूत्र सूत्र ३ (ख) आचाराग द्वि० श्रु० भावनाधिकार प० ३८८

६६ कल्पसूत्र, सूत्र ४ से ९

अवतरित नही होते, वे तो राजन्य कुल मे ज्ञात, क्षत्रिय, इक्ष्वाकु, हरि आदि वशो मे ही अवतरित होते है।[६७] शक्रेन्द्र ने उसी समय हरिणैगमेषी देव को बुलाया और गर्भ-परिवर्तन का आदेश दिया।[६८]

मरीचि के भव मे जाति व कुल की श्रेष्ठता के दर्प रूप सर्प ने जो डसा था, उसका विष अभी उतरा नही था, उसी फलस्वरूप देवानन्दा के गर्भ मे आना पडा और बयासी रात्रि तक उस गर्भ मे रहे, तिरासिवी रात्रि को हरिणैगमेषी देव ने देवानन्दा की कुक्षि से सहरण कर उन्हे त्रिशला क्षत्रियाणी की कुक्षि मे प्रस्थापित किया।[६९] उस समय भी महावीर तीन ज्ञान के धारक थे, सहरण से पूर्व उन्हे यह ज्ञात था कि ऐसा हो रहा है। सहरण के पश्चात् भी उन्हे ज्ञात था कि ऐसा हो चुका है और सहरण हो रहा है, यह भी उन्हे ज्ञात था, चैत्रशुक्लात्रयोदशी को उनका जन्म हुआ। उनके तेजस्वी व्यक्तित्व और लोक मगलकारी कृतित्व की परिचय रेखा अगले अध्याय मे प्रस्तुत है।

पूर्वभव एक तुलना

उत्तरपुराण आदि दिगम्बर ग्रन्थो के अनुसार महावीर का जीव देवलोक से च्युत होकर त्रिशला की कुक्षि मे ही आता है।[७०] गर्भ-सहरण की घटना उनके वहाँ पर नही है।

सक्षेप मे श्वेताम्बर ग्रन्थो के अनुसार महावीर के पूर्वभव इस प्रकार है—

१ ग्रामचिन्तक —आव० नि० गा० १५४१, वि० १४७, हरि० १४५
२ सौधर्म देवलोक (विशे० गा० १५४६)
३ मरीचि (आव० वि० १४२, वि० १५५० आव० हरि० १४६)
४ ब्रह्मदेव
५ कौशिक (परिव्राजक) (आ० नि० ३२६ वि०१७६२, हरि० ४४३

---

६७ कल्पसूत्र १३-१७

६८ कल्पसूत्र २५

६९ (क) कल्पसूत्र २७, (ख) समवायाग ८३, पत्र० ८३-२
(ग) स्थानाग २।५

७० उत्तरपुराण ७४।२५३-२६२

६ पुष्यमित्र (परिव्राजक) (चउप्पन्न० मे इस भव का उल्लेख नही है इससे मरीचि सहित ६ परिव्राजक भव होते हे पृ० ६७-६८)
७ सौधर्म देवलोक
८ अग्निद्योत ब्राह्मण (परिव्राजक)
९ ईशानकल्प देव
१० अग्निभूत मन्दिर सन्निवेश मे (परिव्राजक)
११ सनत्कुमार देव
१२ भारद्वाज (परिव्राजक)
१३ माहेन्दकल्प मे (वाद मे ससार भ्रमण)
१४ स्थावर (परिव्राजक)
१५ ब्रह्मदेवलोक
१६ विश्वभूति (मरीचि के भव के पश्चात् इस भव मे अर्हत दीक्षा—महावीर चरिय प्र० ३)
१७ महाशुक्रदेव
१८ त्रिपृष्ट (आदि वासुदेव)
१९ नरक
२० सिंह
२१ नरक (तिर्यच, और मनुष्य भव)
२२ प्रियमित्र चक्रवर्ती, (मूकानगरी मे, पोट्टिल्ल के पास श्रमण दीक्षा)
२३ महाशुक्रदेव
२४ नन्दन—छत्रानगरी (श्रमण दीक्षा—तीर्थंकर नाम कर्म का अनुवन्धन)
२५ पुष्पोत्तर विमान मे देव
२६ ब्राह्मण कुल मे (देवानन्दा के गर्भ मे)

चउप्पन्न महापुरिस चरिय के अनुसार (पृ० ९७-१०३)

१ मरीचि परिव्राजक
२ ब्रह्मदेवलोक मे देव,
३ कोसिय परिव्राजक
४ सौधर्म देव
५ अग्गिज्जोअ परिव्राजक
६ ईशान देव
७ अग्गिभूई परिव्राजक

८ सनत्कुमार देव
९ भारद्वाज परिव्राजक
१० माहेन्द्र देव
११ थावर परिव्राजक
१२ ब्रह्मदेवलोक
१३ विश्वभूति
१४ महाशुक्र देव
१५ त्रिपृष्ट
१६ अप्रतिष्ठान नरक सातवी

इतने भव बताने के पश्चात् आचार्य शीलाङ्क लिखते है अओ उत्तर **वद्धमाणतित्थयरचरियाहिगारे कहिस्सामो त्ति** (पृ० १०३) किन्तु भगवान् महावीर के चरित्र वर्णन करते हुए इतना ही बताया कि मरीचि का जीव अनेक भव कर पुष्पोत्तर विमान से देवानन्दा के गर्भ मे आया।[७१] त्रिपृष्ट के पश्चात् के भवो का उल्लेख आचार्य शीलाङ्क ने नही किया है।[७२] यह तो हम नही कह सकते है कि उसकी जानकारी आचार्य शीलाक को नहीं थी, क्योकि उसके पूर्व आवश्यक निर्युक्ति, आवश्यक चूर्णि आदि ग्रन्थ विद्यमान थे, जिसमे महावीर के पूर्व भवो का उल्लेख हुआ है। उन्होने सत्तरह से लेकर छब्बीसवे भव तक और प्रारम्भ के दो भवो का उल्लेख क्यो नहीं किया, यह चिन्तनीय प्रश्न है।

दिगम्बराचार्य गुणभद्र के उत्तरपुराण के अनुसार महावीर के पूर्वभव इस प्रकार है—

१ पुरुरवा (७४।१४-२१)
२ सौधर्मदेव (७४।२२)
३ मरीचि (७४।२२-६६)
४ ब्रह्मदेव लोक मे देव (७४।६७)
५ जटिल परिव्राजक[७३] (७४।६८)
६ सौधर्म देव[७४] (७४।६९)

---

७१ चउप्पन्न० पृ० २७०
७२ देखो चउप्पन्न० पृ० २७०
७३ आव० नि० मे कौशिक
७४ आव० नि० मे तिर्यंच आदि अनेक भव है

७ पुष्यमित्र परिव्राजक (७४।७०-७२)
८ सोधर्म देव (७४।७३)
९ अग्निसह परिव्राजक[७५] (७४।७४-७५)
१० सनत्कुमार देव[७६] (७४।७५)
११ अग्निमित्र परिव्राजक[७७] (७४।७६-७७)
१२ माहेन्द्रदेव[७८] ७४।७८
१३ भारद्वाज परिव्राजक ७४।७८-७९
१४ माहेन्द्रदेव ७४।८०
१५ त्रस स्थावरादि अनेक भव ७४।८१
१६ स्थावर परिव्राजक ७४।८२-८५
१७ माहेन्द्रदेव[७९] ७४-८५
१८ विश्वनन्दी[८०] (श्रमण दीक्षा) ७४।८६-११७
१९ महाशुक्रदेव ७४।११८
२० त्रिपृष्ट वासुदेव ७४।१२२-१६६
२१ सातवी नरक ७४।१६७
२२ सिंह ७४।१६८
२३ प्रथम नरक ७४।१७०
२४ सिंह[८१] (तीर्थंकर बनने के लिए चारण मुनि की घोषणा और श्रावक के व्रत को ग्रहण) ७४।२०४
२५ सौधर्मदेव सिंह केतु[८२] ७४।२१९
२६ कनकोज्ज्वल विद्याधर[८३] (जैनदीक्षा) ७४।२२२-२-९
२७ सातवे स्वर्ग मे देव[८४] ७४।२२९

---

७५ आव० नियु० मे अग्निद्योत
७६ ,, ,, ईशानकल्प
७७ ,, ,, अग्निभूति
७८ ,, ,, सनत्कुमार
७९ ,, ,, यह भव नही है।
८० ,, ,, ब्रह्मदेव लोक फिर ससार।
८१ ,, ,, विश्वभूति।
८२ ,, ,, तिर्यंच मनुष्य आदि भव।
८३ ,, ,, यह भव नही है।
८४ ,, ,, ,, ,,

२८ हरिषेण (जैनदीक्षा)[८५] ७४।२३०-२३३
२९ महाशुक्रदेव[८६] ७४।२३४
३० प्रियमित्र चक्रवर्ती (जैनदीक्षा) ७४।२३५-२४०
३१ सहस्रार कल्प मे सूर्यप्रभ[८७] ७४।२४१
३२ नन्द (जैनदीक्षा) ७४-२४२-२४३
३३ अच्युत के पुष्पोत्तर विमान ७४।२४६
३४ सिद्धार्थ पत्नी प्रियकारिणी के पुत्र वर्द्धमान ७४।२५१

आवश्यक निर्युक्ति के साथ उत्तरपुराण के पूर्वभवो की तुलना करने पर ज्ञात होता है कि इन भवो मे किसी भी प्रकार का महत्त्वपूर्ण परिवर्तन नही है। केवल सख्या मे अन्तर है। जो महत्त्व के भव है, वे दोनो परम्परा मे प्राय समान ही है। निर्युक्तिकार ने मरीचि के भव मे "यहाँ भी धर्म है" यह प्ररूपणा की जिससे उसका अनन्त ससार बढ गया, पर उत्तरपुराण मे इस प्रकार का कोई भी प्रसग नही बताया है।

उपर्युक्त पक्तियो मे भगवान महावीर के पूर्व भवो के सम्बन्ध मे तुलनात्मक दृष्टि से कुछ लिखा गया है, जो जीवन के उत्कर्ष और अपकर्ष की स्पष्ट झाँकी है। भौतिक ऐश्वर्य की उन्नति वस्तुत उन्नति नही है। आध्यात्मिक उन्नति के अभाव मे भौतिक उन्नति किस प्रकार अवनति का कारण बनती है। थोडी-सी असावधानी से कितना गहरा पतन हो सकता है फिर उत्थान के लिए कितना कठोर श्रम व तप करना पडता है आदि बाते महावीर के पूर्वभव के अध्ययन से स्पष्ट हो जाती है। साथ ही यह भी सत्य स्पष्ट होता है कि भगवान महावीर ने तीर्थंकर बनकर जो अनन्त आध्यात्मिक ऐश्वर्य प्राप्त किया वह एक जन्म की साधना का पथ नही, अपितु अनेक जन्मो की कठोर तप-ध्यान आदि साधना का ही परिणाम है। उस साधना से आत्मा का उत्थान हुआ। जैन-दर्शन सम्मत आत्म-उत्तारवाद की एक विरल झाँकी भी इन पूर्व भवो के परिशीलन से हमारे समक्ष स्पष्ट हो जाती है।

❁ ❁

---

८५ आव० निर्युक्ति मे यह भव नही है
८६ ,, ,, ,, ,,
८७ ,, ,, महाशुक्र

७ पुष्यमित्र परिव्राजक (७४।७०-७२)
८ सौधर्म देव (७४।७३)
९ अग्निसह परिव्राजक[७५] (७४।७४-७५)
१० सनत्कुमार देव[७६] (७४।७५)
११ अग्निमित्र परिव्राजक[७७] (७४।७६-७७)
१२ माहेन्द्रदेव[७८] ७४।७८
१३ भारद्वाज परिव्राजक ७४।७८-७९
१४ माहेन्द्रदेव ७४।८०
१५ त्रस स्थावरादि अनेक भव ७४।८१
१६ स्थावर परिव्राजक ७४।८२-८५
१७ माहेन्द्रदेव[७९] ७४-८५
१८ विश्वनन्दी[८०] (श्रमण दीक्षा) ७४।८६-११७
१९ महाशुक्रदेव ७४।११८
२० त्रिपृष्ट वासुदेव ७४।१२२-१६६
२१ सातवी नरक ७४।१६७
२२ सिंह ७४।१६८
२३ प्रथम नरक ७४।१७०
२४ सिंह[८१] (तीर्थंकर बनने के लिए चारण मुनि की घोषणा और श्रावक के व्रत को ग्रहण) ७४।२०४
२५ सौधर्मदेव सिंह केतु[८२] ७४।२१९
२६ कनकोज्ज्वल विद्याधर[८३] (जैनदीक्षा) ७४।२२२-२-९
२७ सातवे स्वर्ग मे देव[८४] ७४।२२९

---

७५ आव० नियु० मे अग्निद्योत
७६ ,, ,, ईशानकल्प
७७ ,, ,, अग्निभूति
७८ ,, ,, सनत्कुमार
७९ ,, ,, यह भव नही है ।
८० ,, ,, ब्रह्मदेव लोक फिर ससार ।
८१ ,, ,, विश्वभूति ।
८२ ,, ,, तिर्यंच मनुष्य आदि भव ।
८३ ,, ,, यह भव नही है ।
८४ ,, ,, ,, ,,

२८ हरिषेण (जैनदीक्षा)[८५] ७४।२३०-२३३
२९ महाशुक्रदेव[८६] ७४।२३४
३० प्रियमित्र चक्रवर्ती (जैनदीक्षा) ७४।२३५-२४०
३१ सहस्रार कल्प मे सूर्यप्रभ[८७] ७४।२४१
३२ नन्द (जैनदीक्षा) ७४-२४२-२४३
३३ अच्युत के पुष्पोत्तर विमान ७४।२४६
३४ सिद्धार्थ पत्नी प्रियकारिणी के पुत्र वर्द्धमान ७४।२५१

आवश्यक निर्युक्ति के साथ उत्तरपुराण के पूर्वभवों की तुलना करने पर ज्ञात होता है कि इन भवो मे किसी भी प्रकार का महत्त्वपूण परिवर्तन नही है। केवल सख्या मे अन्तर है। जो महत्त्व के भव है, वे दोनो परम्परा मे प्राय समान ही है। निर्युक्तिकार ने मरीचि के भव मे "यहाँ भी धर्म है" यह प्ररूपणा की जिससे उसका अनन्त ससार बढ गया, पर उत्तरपुराण मे इस प्रकार का कोई भी प्रसग नही बताया है।

उपर्युक्त पक्तियो मे भगवान महावीर के पूव भवो के सम्बन्ध मे तुलनात्मक दृष्टि से कुछ लिखा गया है, जो जीवन के उत्कर्ष और अपकर्ष की स्पष्ट झाँकी है। भौतिक ऐश्वर्य की उन्नति वस्तुत उन्नति नही है। आध्यात्मिक उन्नति के अभाव मे भौतिक उन्नति किस प्रकार अवनति का कारण बनती है। थोडी-सी असावधानी से कितना गहरा पतन हो सकता है फिर उत्थान के लिए कितना कठोर श्रम व तप करना पडता है आदि बाते महावीर के पूर्वभव के अध्ययन से स्पष्ट हो जाती है। साथ ही यह भी सत्य स्पष्ट होता है कि भगवान महावीर ने तीर्थंकर बनकर जो अनन्त आध्यात्मिक ऐश्वर्य प्राप्त किया वह एक जन्म की साधना का पथ नही, अपितु अनेक जन्मो की कठोर तप-ध्यान आदि साधना का ही परिणाम है। उस साधना से आत्मा का उत्थान हुआ। जैन-दर्शन सम्मत आत्म-उत्तारवाद की एक विरल झाँकी भी इन पूव भवो के परिशीलन से हमारे सपक्ष स्पष्ट हो जाती है।

❁ ❁

---

८५ आव० निर्युक्ति मे यह भव नही है
८६ ,, ,, ,, ,,
८७ ,, ,, महाशुक्र
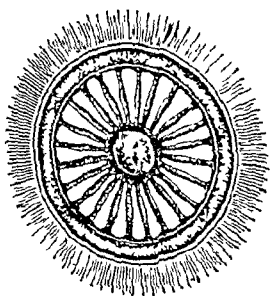
२

जीवन का प्रथम चरण
(गृहस्थ जीवन)

---

* जन्मपूर्व की परिस्थितियाँ
* जन्मस्थली एक परिचय
* त्रिशला के गर्भ में
* स्वप्न-दर्शन
* जन्म और उत्सव
* माता-पिता की ख्याति
* नामकरण एक विश्लेषण

  वर्धमान महावीर सन्मति काश्यप ज्ञातपुत्र विदेह वैशालिक

* जन्मकुंडली एक चिन्तन
* विराट व्यक्तित्व के बीज

  बाह्य व्यक्तित्व बाल क्रीडा तिन्दुपक क्रीडा अतुल बल विद्याशाला में

विवाह प्रकरण

माता-पिता का स्वर्गवास

सर्वस्व-त्याग

अभिनिष्क्रमण

अभिग्रह

जन्म-पूर्व की परिस्थिति

आज से छब्बीस सौ वर्ष पूर्व भारत की स्थिति बडी विषम थी। वह युग भारतीय संस्कृति के इतिहास मे एक अधकारपूर्ण युग के रूप मे चित्रित किया गया है। चारो ओर हिसा, असत्य, अन्याय विषमता शोषण और उत्पीडन का बोलबाला था। अधर्म धर्म का सुनहरी परिधान पहनकर जन-जन को भुलावे मे डाल रहा था। जीवन के आध्यात्मिक उच्चादर्शों को विस्मृत होकर मानव भौतिक एषणाओ एव सामाजिक विषमताओ की चक्की मे पिसा जा रहा था। जन जीवन मे दैवी भावनाओ के स्थान पर आसुरी भावनाएँ द्रौपदी के दुकूल की तरह बढ रही थी। मानवता के नाम पर दानवता का नग्न नृत्य हो रहा था।

बौद्धिक दृष्टि से भी वह युग विचित्र परिस्थितियो मे से होकर गुजर रहा था। दार्शनिक चिन्तन का स्थान अधश्रद्धा ने ले लिया था, धर्म सप्रदायो की स्थिति बडी भ्रान्त थी। कटे हुए पतग की तरह धर्म जिज्ञासु मानव मन भटका हुआ था। चार्वाक के अनुयायी भौतिकता की पराकाष्ठा को ही जीवन का अन्तिम छोर मानते थे।[1] कोई-अ-क्रियावाद मे धर्म मानता था। किसी का आघोष था कि अकर्मण्यता ही धर्म है,[2] तो कोई क्षणिकवाद मे धर्म मानकर नित्यवाद का खण्डन करता था,[3] कोई नित्यवाद का समर्थन

---

१ चार्वाक दर्शन का मन्तव्य था –

(क) यावज्जीवेत् सुख जीवेत् ऋण कृत्वा घृत पिबेत्।
भस्मीभूतस्य देहस्य, पुनरागमन कुत।

(ख) पिब, खाद च वरलोचने!

—सर्वदर्शन सग्रह

२ यह विचारधारा पूर्ण काश्यप की थी—देखिए—भगवान् बुद्ध – धर्मानन्द, कौसम्वी पृ० १८१

३ यह विचारधारा—तथागत बुद्ध की थी—यत् क्षणिक तत सत, तथा सर्व अनित्यम्"।

कर क्षणिकवाद का उपहास करता था[४] कोई नियतिवाद का समर्थन करता[५] तो कोई उच्छेदवाद का,[६] कोई अन्योन्यवाद को महत्त्व देता था[७] तो कोई विक्षेपवाद[८] को, सभी अपने वैचारिक कठघरे मे आवद्ध थे। स्वर्ग और नरक बिक रहे थे। अव्यवस्था, मनमानी, औद्धत्य और स्वैराचार ने धर्म की पवित्रता, दर्शन की दिव्यता को खण्डित कर दिया था। इस प्रकार धर्म और दर्शन के नाम पर अराजकता फैली हुई थी। एक प्रकार का बौद्धिक कोलाहल तथा धार्मिक विश्रृंखलता-सी छायी हुई थी।

उस युग मे जातिवाद का स्वर प्रखर था, समाज, धर्म और राजनीति के मच पर ब्राह्मणवाद का सितारा बुलुन्द था। समाज और धर्म के नेतृत्व की बागडोर उनके हाथो मे थी। उनके बढते हुए वर्चस्व मे श्रमण सस्कृति दबी जा रही थी। यज्ञ, याग और बाह्य क्रियाकाण्डो को ही धर्म माना जा रहा था। यज्ञ मे घृत और मधु को तो होमते थे, किन्तु साथ ही पशु और मानवो को भी होमा जाता था। वे उसे धर्म मानते थे और अधिकार की भाषा मे कहते थे कि भगवान् ने यज्ञ के लिए ही पशुओ की रचनाएँ की है।[९] वेद विहित यज्ञ मे की जाने वाली हिंसा, हिंसा नही, अपितु अहिंसा है।[१०] स्वर्ग के रगीन प्रलोभन देकर पशु-वध का दुश्चक्र तेजी से चलाया जा रहा था।

सस्कृति व धर्म के सरक्षण का भार तथाकथित ब्राह्मणो के कधो पर था, ब्राह्मण चाहे विद्वान् हो या मूर्ख, सदाचारी हो या व्यभिचारी, अग्नि के

---

४ साख्यदर्शन आत्मा को कूटस्थ नित्य मानता है।

५ गोशालक नियतिवाद का प्रचारक था।

६ अजित केशकम्बल—दीघ निकाय सामञ्ञफल सुत्त।

७ प्रक्रुद्ध कात्यायन— ,, ,,

८ सजयवेलट्ठिपुत्र ,, ,,

९ यज्ञार्थं पशव सृष्टा स्वयमेव स्वयभुवा।
यज्ञस्य भूत्यै सर्वस्य तस्मात् यज्ञे वधोऽवध ॥

—मनुस्मृति ५।२२।३९

१० या वेदविहिता हिंसा नियतास्मिश्चराचरे।
अहिंसामेव ता विद्यात् वैदाद् धर्मो हि निर्बभौ ॥

—मनुस्मृति ५।२२।४४

समान सदा पूजनीय व पवित्र माना जाता था।[११] पण्डे और पुरोहित उस युग के विचारो के नियन्ता थे। जनता उनके हाथो की कठपुतली थी, वे अपनी उद्दाम लालसाओ को पूर्ण करने के लिए जनता को गुमराह किया करते थे। ब्राह्मण निस्सकोच होकर शूद्र का धन ले लेते, क्योकि शूद्र का अपना कुछ भी नही है। उसका सब धन उसके स्वामी ब्राह्मण का है।[१२] वर्ण-व्यवस्था और जातिवाद के निविड बधन मे मानव-समाज इतना जकडा और उलझा हुआ था कि निम्न जाति के व्यक्तियो को सुख-सुविधा और आध्यात्मिक साधना के लिए किसी भी प्रकार की स्वतत्रता नही थी। भारत के एक छोर से लेकर दूसरे छोर तक जात-पात के पचडे को लेकर विषमता की सगीन दीवारे खडी हो रही थी। ब्राह्मण अपने आपको ब्रह्ममुख व सभी प्राणियो मे अपने को सर्वश्रेष्ठ और सर्वज्येष्ठ मानता था और शूद्रो को नीच, अधम एव नृशस समझ कर उनकी छाया से भी परहेज करता था। कपोल-कल्पित अहभाव की खोखली नीव पर जातीयता के महल को खडा कर मानवता के साथ क्रूर अट्टहास किया जा रहा था।[१३] आचार और विचार की श्रेष्ठता को विस्मृत कर जातीयता की महत्ता प्रदर्शित की जा रही थी।[१४]

---

११ अविद्वाश्चेव विद्वाश्च, ब्राह्मणो दैवत महत्।
प्रणीतश्चाप्रणीतश्च, यथाग्निर्दैवत महत्॥
श्मशानेष्वपि तेजस्वी, पावको नैव दुष्यति।
हूयमानश्च यज्ञेषु भूय एवाभिवर्द्धते॥
एव यद्यप्यनिष्टेषु वर्तन्ते सर्वकर्मसु।
सर्वथा ब्राह्मणा पूज्या, परम दैवत हि तत्॥

—मनुस्मृति ८।३१७ से ३१९

१२ विश्रब्ध ब्राह्मण शूद्राद् द्रव्योपादानमाचरेत्।
न हि तस्यास्ति किञ्चित्स्व भर्तृहार्यधनो हि स॥

- मनुस्मृति ८।४१७

१३ यश्चास्योपदिशेद्धर्मं, यश्चास्य व्रतमादिशेत्।
सोऽसवृत तमो घोर सह तेन प्रपद्यते॥

—वशिष्ठ स्मृति १८।१३

१४ दु शीलोऽपि द्विज पूज्यो न शूद्रो विजितेन्द्रिय।
क परित्यज्य दुष्टाङ्गा दुहेच्छीलवती खरीम्॥

—पाराशर स्मृति ८।३२

ब्राह्मण जो ज्ञान का अधिष्ठाता था वह ज्ञान व सेवा के प्रशस्त पथ को भूलकर स्वार्थवाद की अंधेरी गलियों मे इधर-उधर भटक रहा था, और साथ ही दूसरो को भी भटका रहा था। शिक्षा-दीक्षा और वेद आदि के अध्ययन-अध्यापन व श्रवण का अधिकार एक मात्र ब्राह्मण को ही था। शूद्र लोग वेद की ऋचाए न सुन सकते थे, न पढ सकते थे और न मुख से उच्चारण ही कर सकते थे। शूद्रो की तरह स्त्री भी वेद के पढने की अधिकारिणी नहीं थी।[15] यदि शूद्र कभी भूल से वेद सुन लेता तो उसके कानों मे गर्मागर्म शीशा उडेला जाता था। वेद की ऋचा बोलने पर उसकी जिह्वा काट ली जाती थी और वेद की ऋचाए कठस्थ कर लेने पर उसे बुरी तरह से मारा जाता था। इतना ही नही किन्तु उनके लिए यह प्रार्थना भी की जाती थी कि उन्हे बुद्धि न दी जाय, यज्ञ का प्रसाद न दिया जाय और व्रतादि का उपदेश भी न दिया जाय।[16]

बौद्धो के चित्त-सम्भूत जातक मे एक प्रसग है—एक समय ब्राह्मण और वैश्य-कुल की दो महिलाए नगर के एक महाद्वार से निकल रही थी, उनको मार्ग मे दो चाण्डाल मिल गये। चाण्डालो को निहारते ही उन्होने अपशकुन समझा। वे पुन लौटकर घर आई, उन्होने शुद्ध होने के लिए अपनी आखो को धोया। घर के लोगो को कहकर उन चाण्डालो को खूब पिटवाया

---

१५ न स्त्रीशूद्रौ वेदमधीयेताम्।

१६ (क) वेदमुपशृण्वतस्त्रपु जतुभ्या श्रोत्र प्रतिपूरणमुच्चारणे जिह्वाच्छेदो धारणे शरीरभेद।

—गोतम धर्मसूत्र पृ० १६५

टीका—उपश्रुत्य बुद्धिपूर्वकमक्षरग्रहणमुपश्रवणम्। अस्य शूद्रस्य वेदमुपशृण्वतस्त्रपु-जतुभ्या त्रपुणा (शीशकेन) जतुना च द्रवीकृतेन श्रोत्रे प्रतिपूरयितव्ये। स चेद् द्विजातिभि सह वेदाक्षराण्युदाहरेदुच्चरेत्, तस्य जिह्वा छेद्या। धारणे सति यदाऽन्यत्र गतोऽपि स्वयमुच्चारयितु शक्नोति तत परश्वादिना शरीरमस्य भेद्यम्।

— गौतम धर्मसूत्र अ० ३, सू० ४, पृ० ८९-९०, पूना सस्करण

(ख) न शूद्राय मति दद्यान्नोच्छिष्ट न हविष्कृतम्।
न चास्योपदिशेद्धर्म न चास्य व्रतमादिशेत्॥

—वशिष्ठ स्मृति १८।१२

और उनकी बहुत दुर्गति करवाई। इसके अतिरिक्त मातग जातक और सद्धर्म जातक मे भी अछूतो के प्रति किये जाने वाले निकृष्ट व्यवहार का पता लगता है।[17]

शूद्रता और अस्पृश्यता के नाम पर हजारो-लाखो व्यक्ति मानवता के अधिकार से वञ्चित कर दिये गये थे। वे पशुओ से भी गई-गुजरी हालत मे थे। मानव का मानव के रूप मे सम्मान करना उस काल मे नफरत की निगाह से देखा जाता था।

मातृ-जाति की दशा भी दयनीय थी। उसे गृहस्वामिनी के गौरव-पूर्ण पद से हटाकर गृहदासी बना दिया गया था। शाक सब्जी की तरह उसे चौराहो पर खडी रखकर बेचते थे।[18] उसे हेय और पापाचार की मूर्ति मानते थे। 'न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति'[19] का तुमुल घोष चारो ओर गूज रहा था। सामाजिक और धार्मिक सभी तरह के अधिकारो से सर्वथा वचित कर दिया गया था, ऐसे सिद्धान्त प्रचारित कर दिये गये थे कि—"नारी किसी भी स्थिति मे स्वतन्त्र रहने के योग्य नही है क्योकि पुरुष प्रधान है, उस पर पुरुष का अधिकार है।"[20] बचपन मे पिता, विवाहोपरान्त पति एव वृद्धावस्था मे पुत्रो के सरक्षण मे रहकर उसे अपना जीवन व्यतीत करना चाहिए।[21] स्त्रिया, वैश्य और शूद्र ये सब पाप-योनि है, पाप-जन्मा है।[21] उनके जात-कर्म आदि के सस्कार भी बिना मन्त्रो के ही किये जाते थे, इस भय से कि कही मन्त्र ही अपवित्र न हो जाए।

राजनैतिक दृष्टि से भी वह समय उथल-पुथल का समय था। उसमे स्थिरता और एकरूपता का अभाव था। अनेक स्थलो पर प्रजातन्त्रात्मक गण-

---

१७ देखिए वीरोदय काव्य की प्रस्तावना, पृ० ५५

१८ आवश्यक हारिभद्रीय वृत्ति पत्र २२५

१९ वशिष्ठ स्मृति

२० अस्वतन्त्रा स्त्री पुरुषप्रधाना।

—वशिष्ठ स्मृति ५।१

२१ पिता रक्षति कौमारे भर्त्ता रक्षति यौवने।
पुत्रस्तु स्थाविरे भावे न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति॥

—बौधायन स्मृति २।२।५२

२२ स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रा येऽपि स्यु पापयोनय।

—गीता ९।३२

राज्य थे। जिसमे व्यवस्थित रूप से प्रतिनिधियो का चुनाव होता था। जो प्रतिनिधि राज्य-मडल या साथागार के सदस्य होते थे वे जनता-जनार्दन के हितो का भी लक्ष्य रखते थे। उस समय के गणराज्यो मे से लिच्छवी गण-राज्य सब मे अधिक प्रमुख था। उसकी राजधानी वैशाली थी। महाराज चेटक इस गणराज्य के प्रधान थे। काशी और कौशल के प्रदेश इसी गणराज्य मे सम्मिलित थे। इनकी व्यवस्थापिका सभा 'वज्जियन राज सघ' के नाम से विश्रुत थी।

उस समय लिच्छवी गणराज्य के साथ शाक्य गणराज्य भी था। जिसकी राजधानी 'कपिलवस्तु' थी। जिसके प्रधान राजा शुद्धोदन थे जो तथागत बुद्ध के पिता थे। इन गणराज्यो के अतिरिक्त मल्ल गणराज्य था, जिसकी राजधानी कुशीनारा और पावा थी। कोल्य गणराज्य, आम्लकप्पा के बुलिगण, पिप्पलिवन के मोरीयगण आदि अनेक छोटे और बडे गणराज्य थे। इन गणराज्यो के अतिरिक्त मगध, उत्तरी कोशल, वत्स, अवन्ति, कलिग, अग, वग आदि कितने ही स्वतत्र राजतत्र भी थे। उक्त गणराज्यो मे परस्पर स्नेह-सम्बन्ध था, तथापि शूद्रो की दशा अत्यन्त दयनीय थी, नारीवर्ग की स्थिति गभीर थी। सभी ओर पाखण्ड, स्वार्थ लोलुपता एव पुरोहितवाद की आधिया उमड-घुमडकर आ रही थी। भारत के क्षितिज पर एक घना अधेरा छाया हुआ था।

भारत के एक महान तेजस्वी भगवान् पार्श्वनाथ की परपरा के अन्तिम प्रतिनिधि केशीकुमार श्रमण इस सघन अधकार मे भटकते हुए और ठोकर खाते हुए जन-मानस को देखकर द्रवित हो उठे थे, उनका हृदय करुणा से छलक उठा। "वे विचारने लगे आज चारो ओर अधकार-ही-अधकार छा रहा है। भोली-भाली जनता अधकार मे भटक रही है। इस कालरात्रि का कब अन्त होगा और कौनसा सूर्य इस क्षितिज पर प्रकाश-रश्मिया बिखेरता हुआ ससार को आलोकित करेगा ?"[२३] इन्द्रभूति गौतम के समक्ष उन्होने अपनी इस अन्तर्व्यथा को व्यक्त भी किया था।

श्रमण केशीकुमार के इन वेदना-विह्वल शब्दो मे युग की पीडा का स्पष्ट प्रतिबिम्ब झलक रहा है। उस समय मे भगवान पार्श्वनाथ की परम्परा के सन्त विद्यमान थे किन्तु आचार और विचार व सगठन की शिथिलता के

---

२३ अधयारे तमे घोरे, चिट्ठन्ति पाणिणो बहु।
को करिस्सइ उज्जोय, सव्वलोगम्मि पाणिण ॥ —उत्तराध्ययन २३।७५

कारण वे जनता का जैसा चाहिए वैसा पथ-प्रदर्शन नही कर पा रहे थे। यह सत्य है कि कुछ सन्त उनमे अवश्य ही प्रतिभासम्पन्न थे, वे हिंसा का विरोध कर अहिंसा का प्रचार कर रहे थे पर उनकी आवाज भी लोग जिस चाव से सुनना चाहिए उस चाव से सुन नही पा रहे थे।

भारत की ही नही, किन्तु सम्पूर्ण विश्व की स्थिति डावाडोल थी। सभी स्थानो पर महापुरुषो की अपलक प्रतीक्षा की जा रही थी, जो भूले-भटके जीवन राहियो को सही मार्गदर्शन दे, न्याय, नीति, समानता, सुख, शान्ति का महापाठ पढाए। उस समय विश्व के अनेक अचलो मे महान् धर्म-पुरुष अवतीर्ण हुए थे, भारत मे भगवान् महावीर और तथागत बुद्ध आये जिन्होने अहिंसा का उपदेश देकर जन-जन के मन मे नई आशा, नया उत्साह, अभिनव चेतना और नवस्फूर्ति का सचार किया, उसी समय चीन मे लाओत्से और काग्फ्यूत्सी, यूनान मे पाइथोगरस, अफलातून और सुकरात, ईरान मे जरथुष्ट, फिलिस्तीन मे जिरेमिया और इजकिल आदि विचारको ने अपने-अपने क्षेत्र मे धार्मिक व सास्कृतिक क्रान्ति की।

भगवान् महावीर ने अपने दिव्य व भव्य सन्देश द्वारा अवरुद्ध मानसिक जडता को झकझोर कर विशुद्ध मानवता का पाठ पढाया। धार्मिक विचारो मे जो अज्ञान का जग लग चुका था उसे साफ किया। निभयता पूर्वक पुरोहितो के काले कारनामो को जन-जीवन के समक्ष प्रस्तुत करते हुए कहा—मनुष्य जाति एक है। जैसे ब्राह्मणो को धर्म करने का अधिकार है, वैसा ही अधिकार शूद्रो को भी है। जैसे पुरुष आध्यात्मिक विकास कर सकता है वैसे ही नारी भी कर सकती है। इस प्रकार सत्य, शिव और सुन्दरम् का मधुर घोष जन-जन के कर्णकुहरो मे गूजने लगा। उस क्रान्ति के सूर्य ने जन-जीवन मे से अज्ञान-अधकार को नष्ट कर दिया। सर्वत्र समता का नव प्रकाश फैलने लगा।

जन्मस्थली : एक परिचय

भगवान महावीर की जन्मस्थली के सम्बन्ध मे इतिहासज्ञ विद्वानो मे अनेक मत है, कितने ही विद्वान् आगम व आगमेतर साहित्य मे आये हुए 'वेसालिय' शब्द को देखकर भगवान को जन्मस्थली वैशाली मानते है, पर भगवान् महावीर का जन्मस्थान वैशाली नही है। किन्तु वैशाली के

सन्निकट कुण्डपुर है ।[1] मुनिश्री कल्याणविजय जी[2] ने कुण्डपुर को वैशाली का उपनगर माना है, श्री विजयेन्द्रसूरि जी ने उसे उपनगर नहीं किन्तु स्वतन्त्र नगर माना है ।[3] जैन साहित्य के पर्यवेक्षण से ज्ञात होता है—कि ब्राह्मण कुण्डग्राम नगर और क्षत्रिय कुण्डग्राम नगर ये दो थे । कही कही पर इन्हे सन्निवेश भी कहा है ।[4] दक्षिण मे ब्राह्मण कुण्डपुर सन्निवेश था तो उत्तर मे क्षत्रिय कु डपुर सनिवेश था ।[5] पाश्चात्य विद्वानो का अभिमत है कि कुण्डग्राम एक ही नगर था, उसके दो विभाग थे । जिस विभाग मे प्रधानत ब्राह्मणो की बसति थी, उसे ब्राह्मण कुण्डग्राम और जिसमे प्रधानत क्षत्रियो की बसति थी उसे क्षत्रिय कुण्डग्राम कहते हे ।[6] आगमो के वर्णन से ऐसा प्रतीत होता है कि दोनो नगर भिन्न--भिन्न थे । ब्राह्मण कुण्डग्राम नगर के बाहर बहुसाल नामक चैत्य था[7] और क्षत्रिय कुण्डग्राम नगर के बाहर 'णायसड'—ज्ञातृखण्ड नामक उद्यान या वन था ।[8] इससे दोनो के पृथक्-पृथक् होने का सकेत प्राप्त होता है, दोनो के बीच मे दूरी भी होनी चाहिए क्योकि क्षत्रियकुण्ड से ब्राह्मणकुण्ड जाने का जो वर्णन है उससे यह स्पष्ट अनुमान होता है । क्षत्रिय कुण्डग्राम नगर से एक साथ पाच सौ क्षत्रियो के प्रव्रजित होने का उल्लेख मिलता है[9] जो उसकी विशाल जन सख्या का सूचक हे ।

---

१ (क) आचाराग २।१५।३-५
   (ख) कल्पसूत्र ३०
   (ग) आवश्यक निर्युक्ति ३४०, (घ) विशेषा० भाष्य १८२१ और खत्तियकुण्डगॉव के लिये गा० १८३१, १८४० देख (ङ) आव० हारिभद्रीया० १७७
   (च) त्रिषष्टि १०।२।१–

२ श्रमण भगवान् महावीर० पृ० ५

३ तीर्थंकर महावीर पृ०

४ (क) भगवती, अमोलक० ६।३३,।१-२१ (देवानन्दा और जमालि प्रकरण)
   (ख) आचाराग
   (ग) कल्पसूत्र २, १५, २०, २१, २४, २६, २८, ३०, ६७, १००,

५ दाहिणमाहण-कुण्डपुर-सन्निवेसाओ उत्तरखत्तिय-कुण्डपुरसन्निवेससि ।
—आचाराग २ । १५।५

६ Uvasagadasao (Hoevnle)—Lecture 1 3 Note 8, Page 3 to 6

७ भगवती ६।३३, १।२२ २३, (देवानन्दा और जमाली प्रकरण)

उक्त प्रसग मे क्षत्रिय कुण्डग्राम को वाहर और भीतर से सजाने की बात आई है।[10] नगर मे शृगाटक, त्रिक, चौक आदि रास्ते थे।[11] इससे यह सहज ही अनुमान होता है कि क्षत्रिय कुण्डग्राम एक बडा नगर होगा और उसी तरह ब्राह्मण कुण्डग्राम भी। ये दोनो नगर जम्बूद्वीप भारत के दक्षिणार्द्ध भारत मे अवस्थित थे।[12] तीर्थंकर महावीर ब्राह्मण कुण्डग्राम नगर के दक्षिण भाग मे माता के गर्भ मे आए और क्षत्रिय कुण्डग्राम नगर के उत्तर भाग मे उनका जन्म हुआ।[13]

कितने ही विद्वानो का मन्तव्य है कि आवश्यक निर्युक्ति,[14] आवश्यक चूर्णि,[15] आवश्यक हरिभद्रीयावृत्ति,[16] कल्पसूत्र,[17] महावीरचरिय[18]

---

८ उत्तरखत्तियकुडपुर सणिवेसस्स मज्झमज्झेण णिगच्छइ, णिगच्छित्ता जेणेव णायसडे उज्जाणे तेणेव उवागच्छइ।

—आचाराग २।१५।२६,

(ख) कल्पसूत्र

(ग) सपत्तो णायसडवण।

—विशेपावश्यक भाष्य १८८६

९ भगवती सूत्र श० ६, उ० ३३-७३ (जमालिप्रकरण)

१० भगवती० ६।३३-४१

११ (क) भगवती ६।३३-२२,

(ख) कल्पसूत्र १००

१२ (क) आचाराग सूत्र श्रुत २, अ १५

(ख) कल्पसूत्र २।१५।२०, २४, २८

१३ आचाराग-२।१५।३-५

१४ अध चेत्तसुद्ध पक्खस्स तेरसी पुव्वरत्तकालम्मि।
हत्थुत्तराहि जातो कुण्डग्गामे महावीरो॥

— आ०व० नि० ३६४

१५ आवश्यक चूर्णि— २४३, २४४, २५०, २५६, २६५, २६६, ४१६,

१६ आवश्यक हरिभद्रीयावृत्ति पत्र—१६०।२, १८०।१, १८०।१, १८३।१, १८३।१ १८३।२, १८४।१,

१७ कल्पसूत्र, ६५, ६७, ११३

१८ महावीर चरिय— नेमिचन्द्र ३३।१, गाथा ६६, पत्र ३६।२, गाथा ७, ३६।१ गाथा ४३

पउम चरिय,[१९] वराङ्ग, चरितम्[२०] आदि मे कुण्डपुर का उल्लेख हुआ है। दिगम्बर परम्परा के ग्रन्थो मे भी कुण्डपुर का ही उल्लेख है,[२१] क्षत्रियकुण्ड का नही। इसलिए महावीर की जन्मस्थली कुण्डपुर होनी चाहिए। आचाराग आदि मे क्षत्रियकुण्ड का उल्लेख हुआ है।[२२] हमारी धारणा के अनुसार वस्तुत कुण्डपुर का ही एक विभाग क्षत्रियकुण्डपुर होना चाहिए और दूसरा विभाग ब्राह्मणकुण्डपुर है। क्षत्रियकुण्ड को ही कुण्डपुर कहा गया है।

कुण्डपुर की अवस्थिति के सम्बन्ध मे विद्वानो मे मतैक्य नही है। कुछ विद्वान उसे अग देश मे मानते ह तो कुछ विद्वान् मगध देश मे मानते ह तो कुछ उसे विदेह मे। पर ऐतिहासिक प्रमाणो से यह सिद्ध है कि वह — कुण्डपुर का एक विभाग क्षत्रिय कुण्डपुर मगध या अग देश मे नही था किन्तु वह विदेह मे था।

आचाराग और कल्पसूत्र आदि मे महावीर को विदेहवासी कहा है। दिगम्बराचार्यो ने भी कुण्डपुर-क्षत्रियकुण्ड की अवस्थिति जम्बूद्वीप के भारतवर्ष मे विदेह के अन्तर्गत मानी है।[३]

हम यह पूर्व बता चुके है कि वैशाली के निकट ही कुण्डपुर था। वैशाली लिच्छिवियो की राजधानी थी[२४] और लिच्छिवियो की राजधानी

(ख) महावीर चरिय-गुणचन्द्र ११५।२, १२४।१, १३५।१, १८२।१ १४२।२

१९ अत्थेत्थ भरहवासे, कुण्डगगाम पुर गुणसमिद्ध ।

—पउमचरिय २।२०

२० जटासिहनन्दि-विरचित पृ० २७२, श्लोक० ८५

२१ (क) जिनेन्द्रवीरस्य समुद्भवोत्सवे तदागत कुण्डपुर सुहृत्पर ।
सुपूजित कुण्डपुरस्य भूभृता नृपोऽयमाखण्डलतुल्यविक्रम ॥

—हरिवशपुराण ६६।७

(ख) उत्तरपुराण ७४।२५२

२२ आचाराग २।१५।५

२३ सिद्धार्थनृपति तनयो, भारतवास्ये विदेह कुडपुरे ।

— दशभक्ति पृ० ११६, आचार्य पूज्यपाद

(ख) भरतेऽस्मिन् विदेहाख्ये विषये भवनागणे ।
राज्ञ कुण्डपुरेशस्य, वसुधारापतत् पृथु ॥

— हरिवशपुराण १।२।२५१-५२

२४ डिक्शनरी आव पाली प्रापर नेम्स, भाग २, पृ० ६८०

होने मे वह मगध और अगदेश मे नही हो सकती क्योकि वहाँ लिच्छवियो का राज्य कभी नही रहा। उनका राज्य, गगा के उत्तर, विदेह मे था।

सयुक्तनिकाय के अनुसार वज्जी (लिच्छवि और विदेहो का राष्ट्र) और मगध जनपदो के बीच गगा नदी की सीमा थी।[२५]

एक बार बिम्बिसार ने राजगृह से लेकर गगा तक का पूरा मार्ग झण्डो और वन्दनवारो से सजाया था। उसी तरह से लिच्छवियो ने वैशाली से लेकर गगा तक का मार्ग तोरण आदि से सज्जित किया था।[२६]

मगध के उत्तर और गगा के उस पार वज्जियो का राज्य था (मुख्य नगर वैशाली) और उससे भी उत्तर की ओर मल्ल वसते थे।[२७]

लिच्छवी-वश की समृद्धिशाली राजधानी वैशाली (बिहार के मुजफ्फरपुर जिले मे स्थित, वर्तमान मे वैशाली जिले मे वसाढ) नगर प्रारभिक दिनो मे बौद्धधर्म का दुर्ग था।[२८]

तथागत बुद्ध के समय मे वैशाली गगा से तीन योजन (२४ मील) दूरी पर थी। बुद्ध तीन दिनो मे गगा तट से वैशाली पहुँचे थे।[२९] युआन च्याङ् ने गगा से वैशाली की दूरी १३५ ली[३०] (२७ मील) लिखी है।[३१] वर्तमान मुजफ्फरपुर जिले मे स्थित वसाढ गॉव जो पटना से सत्ताइस मील और हाजीपुर से बीस मील उत्तर मे है, वही प्राचीन वैशाली थी और वसाढ के निकट वासुकुण्ड स्थान है उसी का नाम प्राचीन कुण्डपुर है, वही भगवान् महावीर की जन्मस्थली है।[३२]

महानिव्वान-सुत मे बुद्ध की अन्तिम यात्रा का वर्णन दिया है, उसमे कुण्डपुर (क्षत्रिय कुण्ड) अथवा नातिक वज्जी (विदेह) देश के अन्तर्गत था।

---

२५ सयुक्त निकाय, भाग पहला पृ० ३

२६ ज्याग्रैफी आव अर्ली बुद्धिज्म पृ० १०

२८ २५०० इयर्स आव बुद्धिज्म पृ० ३२०

२९ डिक्शनरी आव पाली प्रापर नेम्स भाग २ पृ० ६४१

३० ली दूरी नापने का एक पैमाना है। कनिंघम के अनुसार १ ली १।५ मील के बराबर होता है।

एन्सियेन्ट जोग्राफी आफ इण्डिया

३१ ऐशेण्ट ज्याग्रैफी आव इण्डिया—कनिंघम पृ० ६५४

३२ श्रमण भ० महावीर और तीर्थंकर महावीर

महापरिनिब्बान-सुत्त के चीनी-सस्करण मे नातिक की अवस्थिति वैशाली से ७ 'ली' की दूरी पर बताई है।[33]

उपर्युक्त प्रमाणो के प्रकाश मे स्पष्ट है कि वैशाली के सन्निकट का क्षत्रियकुण्ड ही भगवान् महावीर की जन्मभूमि है। आधुनिक क्षत्रियकुण्ड जो आजकल पूर्व बिहार मे गिद्धोर स्टेट मे (किउल-क्यूल) स्टेशन से पश्चिम की ओर आठ कोस पर लच्छुआड गाँव है, जिसका अपर नाम क्षत्रियकुण्ड भी है, जो पूर्वकालीन प्रादेशिक सीमा की दृष्टि से अगदेश मे पडता है, वह भगवान महावीर की जन्मस्थली नही है, क्योकि भगवान् दीक्षा के दूसरे दिन कोल्लागसन्निवेश मे जाकर पारणा करते है।[34] जैनसाहित्य मे कोल्लाग सन्निवेश दो आये है। एक वाणिज्यगाव के पास और दूसरा राजगृह के पास। यदि भगवान् का जन्मस्थान आजकल का क्षत्रियकुण्ड माना जाय तो दूसरे दिन कोल्लाग मे किस प्रकार पारणा हो सकता है। राजगृह के पास वाला कोल्लागसन्निवेश लगभग चालीस मील दूर पश्चिम मे और वाणिज्य गाव वाला कोल्लाग इससे भी दूर है। इससे यही तर्कसगत लगता है भगवान् ने वैशाली के सन्निकट क्षत्रियकुण्ड मे ही जन्म लिया था।[35]

दूसरी बात क्षत्रियकुण्ड मे दीक्षा लेकर भगवान् ने कर्मारग्राम, कोल्लाग सन्निवेश, मोराक सन्निवेश आदि मे विचरण कर अस्थिक ग्राम मे वर्षाकाल व्यतीत किया। वर्षावास के पश्चात् मोराक, वाचाला, कनकखल आश्रमपद और श्वेताम्बिका आदि स्थानो मे परिभ्रमण करने के पश्चात् राजगृह की ओर पधारे और राजगृह मे वर्षावास किया।

उक्त विहार वर्णन मे से दो तथ्य हमारे सामने आते है—प्रथम तो यह कि वर्षावास के पश्चात् श्वेताम्बिका की ओर जाते है और द्वितीय यह कि उधर से विहार करने के बाद गगा नदी उतर कर राजगृह जाते है। श्वेताम्बिका श्रावस्ती से कपिलवस्तु जाते समय मार्ग मे आती है। यह भूमि-प्रदेश कोशल के पूर्वोत्तर मे और विदेह के पश्चिम मे पडता है और वहा से राजगृह जाते समय बीच मे गगा नदी आती है। आधुनिक क्षत्रियकुण्ड के

---

३३ (क) साइनो-इण्डियन-स्टडीज वाल्यूम १, भाग ४, पृ० १९५

(ख) जुलाई १९४५ कम्परेटिव स्टडीज इन द परिनिब्बान सुत्त एण्ड चाईनीज वर्जन, फाच-लिखित

३४ आवश्यक निर्युक्ति गा० ३१९-३२५

३५ श्रमण भगवान् महावीर की प्रस्तावना

होने से वह मगध और अगदेश मे नही हो सकती क्योकि वहाँ लिच्छिवियो का राज्य कभी नही रहा। उनका राज्य, गगा के उत्तर, विदेह मे था।

सयुक्तनिकाय के अनुसार वज्जी (लिच्छिवि और विदेहो का राष्ट्र) और मगध जनपदो के बीच गगा नदी की सीमा थी।[२५]

एक बार बिम्बिसार ने राजगृह से लेकर गगा तक का पूरा मार्ग झण्डो और वन्दनवारो से सजाया था। उसी तरह से लिच्छिवियो ने वैशाली से लेकर गगा तक का मार्ग तोरण आदि से सज्जित किया था।[२६]

मगध के उत्तर और गगा के उस पार वज्जियो का राज्य था (मुख्य नगर वैशाली) और उससे भी उत्तर की ओर मल्ल बसते थे।[२७]

लिच्छवी-वश की समृद्धिशाली राजधानी वैशाली (बिहार के मुजफ्फरपुर जिले मे स्थित, वर्तमान मे वैशाली जिले मे बसाढ) नगर प्रारभिक दिनो मे बोद्धधर्म का दुर्ग था।[२८]

तथागत बुद्ध के समय मे वैशाली गगा से तीन योजन (२४ मील) दूरी पर थी। बुद्ध तीन दिनो मे गगा तट से वैशाली पहुँचे थे।[२९] युआन च्याङ् ने गगा से वैशाली की दूरी १३५ ली[३०] (२७ मील) लिखी है।[३१] वर्तमान मुजफ्फरपुर जिले मे स्थित बसाढ गाँव जो पटना से सत्ताइस मील और हाजीपुर से बीस मील उत्तर मे है, वही प्राचीन वैशाली थी आर बसाढ के निकट वासुकुण्ड स्थान है उसी का नाम प्राचीन कुण्डपुर है, वही भगवान् महावीर की जन्मस्थली है।[३२]

महानिव्वान-सुत मे बुद्ध की अन्तिम यात्रा का वर्णन दिया है, उसमे कुण्डपुर (क्षत्रिय कुण्ड) अथवा नातिक वज्जी (विदेह) देश के अन्तर्गत था।

---

२५ सयुक्त निकाय, भाग पहला पृ० ३

२६ ज्यागरैफी आव अर्ली बुद्धिज्म पृ० १०

२८ २५०० इयर्स आव बुद्धिज्म पृ० ३२०

२९ डिक्शनरी आव पाली प्रापर नेम्स भाग २, पृ० ९४१

३० ली दूरी नापने का एक पैमाना है। कनिंघम के अनुसार १ ली १।५ मील के बराबर होता है।

एन्सियेन्ट जोग्राफी आफ इण्डिया

३१ ऐशेण्ट ज्यागरैफी आव इण्डिया—कर्निघम पृ० ६५४

३२ श्रमण भ० महावीर और तीर्थंकर महावीर

आसपास न तो श्वेताम्बिका नगरी थी और न उधर से जाते समय गगा पार करनी पडती, इससे भी स्पष्ट है कि भगवान् की जन्मस्थली वैशाली के पास का ही क्षत्रियकुण्ड है ।[३६]

कुण्डग्राम नगर के आसपास वाणिज्य ग्राम, वैशाली, कोल्लागसन्निवेश और कर्मार गॉव थे । भगवान् ने चतुर्थ पौरुषी मे दीक्षा ली और वहा से विहार कर उसी दिन मुहूर्त रहते कर्मार गॉव पहुँचे ।[३७] इससे सिद्ध है कि कर्मार गॉव के पास ही क्षत्रियकुण्ड था और दूसरे दिन सुबह ही कोल्लागसन्निवेश पहुँचे थे[३८], इसलिए कोल्लागसन्निवेश भी पास ही था । एक समय गणधर गौतम वाणिज्यग्राम से बाहर उत्तरपूर्व मे आये हुए दुइपलासय[३९] चैत्य से निकलकर वाणिज्यगाव नगर मे भिक्षा के लिए आये, पुन लौटते समय वाणिज्यग्राम नगर से निकलकर कोल्लागसन्निवेश होकर लौटे ।[४०] इससे भी पता चलता हे कि कोल्लागसन्निवेश वाणिज्यग्राम नगर के बाहर उत्तर-पूर्व दिशा की ओर अवस्थित था ।[४१] इस प्रकार क्षत्रियकुण्ड ओर वाणिज्यग्राम ये दोनो नगर पास-पास ही थे । वाणिज्यगाव और वैशाली के बीच गडकी नदी बहती थी[४२], इसलिए वैशाली भी पास ही था ।

डॉक्टर हारनले[४३] ने महावीर का जन्मस्थान कोल्लागसन्निवेश होना लिखा हे, पर यह उचित नही है, यह उनकी कल्पना निराधार हे, क्यो

---

३६ श्रमण भगवान महावीर की प्रस्तावना

३७ आचाराग २।१५।३५

३८ त्रिषष्टि० १०।२।३४

३९ (क) विपाक सूत्र अ० २।३

(ख) उपासकदशागसूत्र अ० १।३

४० उपासकदशा अ० १।७८-८०

४१ उपासकदशा अ० १।७

४२ नाथोऽपि सिद्धार्थपुराद्वैशालीं नगरी ययौ ।
शख पितृसुहृत्तत्राभ्यानर्च गणराट् प्रभुम् ॥
तत प्रतस्थे भगवान् ग्राम वाणिजक प्रति ।
मार्गे गडिकिका नाम नदी नावोत्ततार च ॥

—त्रिषष्टि० १०।४।१३९

४३ जैन साहित्य सशोधक, खण्ड १, अक ४, पृ० २१८ मे डा० हारनले का 'महावीर तीर्थंकर की जन्मभूमि' लेख

कि आगम व आगमेतर साहित्य मे स्पष्ट रूप से क्षत्रियकुड का उल्लेख है, तथापि कोल्लागसन्निवेश मे ज्ञातृकुल की पौषधशाला थी। इसके आधार से भगवान् महावीर की जन्म भूमि मानना युक्ति-युक्त नही है।

त्रिशला के गर्भ में

जैसा कि पूर्वखण्ड मे बताया गया है भगवान महावीर का जीव प्राणत स्वर्ग से च्यवनकर ब्राह्मणकुड के ऋषभदत्त ब्राह्मण की धर्मपत्नी देवानदा के गर्भ मे आये। बियासी रात्रि तक उसके गर्भ मे रहे और उसके पश्चात् त्रिशला क्षत्रियाणी के गर्भ मे साहरित किये गये।

यहाँ पर यह बता देना भी अभीष्ट होगा कि जैन परम्परा मे तीर्थंकर का जन्म क्षत्रिय कुल मे होना ही माना गया है, अन्य किसी कुल मे नही। लगता है यह धारणा उस युग मे एक प्रमुख व व्यापक धारणा बनी हुई थी कि ब्राह्मण ज्ञानयोगी हो सकता है, पर कर्मयोगी नही। कर्म, पुरुषार्थ, विजय—इनके लिए जिस महान पराक्रम की अपेक्षा हो होती है, वह क्षत्रिय-वश मे ही सहजतया विकसित होती है। केवल श्रमण सस्कृति मे ही नही किंतु ब्राह्मण सस्कृति मे भी यह धारणा बद्धमूल थी। वैदिक सस्कृति जिन्हे अपना इष्ट व आराध्य भगवान मानती है उन मर्यादापुरुषोत्तम राम और कर्मयोगी श्रीकृष्ण का अवतार भी वह क्षत्रियकुल मे ही कराती है।

बौद्ध ग्रन्थो के अनुसार बुद्ध की आत्मा जब स्वर्ग मे थी तब वह भी यह सोचती है कि बुद्ध का जन्म ब्राह्मण या क्षत्रिय—इन दो कुलो मे ही होना चाहिए, मुझे क्षत्रिय कुल मे जन्म लेना है। इससे भी यह ध्वनित होता है कि ब्राह्मण व क्षत्रिय दोनो कुल योग्य समझकर भी बुद्ध ने अपने जन्म के लिए क्षत्रिय कुल को ही श्रेष्ठ समझा। क्षत्रिय मे विजेता की वृत्ति थी जो जैनत्व के अधिक निकट थी। वह पुरुषार्थी व कर्मयोगी था, जब कि ब्राह्मण भाग्यवादी और पराश्रितवृत्ति का प्रतीक माना जाता था। एक यह भी धारणा थी कि क्षत्रियकुलोद्भव महापुरुष ज्ञानयोग एव कर्मयोग के साक्षात्-सगम होते थे, जबकि ब्राह्मण केवल ज्ञानवाद, क्षत्रिय केवल पुरुषार्थ-वाद का प्रतीक बन गया था। इसी कारण महापुरुषो की जन्म परपरा के अनुसार भगवान महावीर का जन्म क्षत्रियकुल मे होना एक युगीन-सगति ही माना जाता है।

क्षत्रियकु ड वैशाली का ही एक उपनगर था और वैशाली गणराज्य से सम्बन्धित भी। वहाँ के राजा मिद्धार्थ क्षत्रिय बडे ही प्रभावशाली और वीर क्षत्रिय थे। सिद्धार्थ के वर्चस्व व व्यापक प्रभाव का पता इससे भी चलता है कि उसका सम्बन्ध वैशाली गणराज्य के अध्यक्ष चेटक की बहन त्रिशला के साथ हुआ।[1] उस युग के अनेक गणराजा तथा राजतत्र के प्रमुख शासको के सम्बन्ध वैशाली राजवश के साथ थे, जैसे श्रेणिक, चड प्रद्योतन, उदायन आदि। उमी राजवश के साथ मिद्धार्थ का सम्बन्ध होना और पश्चात् चेटक की पुत्री ज्येष्ठा के साथ सिद्धार्थ के ज्येष्ठ पुत्र नन्दिवर्धन का सम्बन्ध होना राजा सिद्धार्थ के प्रभाव की व्यापकता का सूचक है।

हा, तो उस सिद्धार्थ राजा की धर्मपत्नी वैशाली गणाध्यक्ष चेटक की बहन त्रिशला के गर्भ मे भगवान महावीर का साहरण किया गया। शक्रेन्द्र की आज्ञा से हरिणेगमेषी देव द्वारा तिरासीवी रात्रि को अद्भुत कुशलता के साथ महावीर के शिशुबिंब को त्रिशला की कुक्षि मे प्रस्थापित किया गया।[2]

स्वप्न-दर्शन

देवानन्दा अपने शयनकक्ष मे सुखपूर्वक सोयी थी। गर्भकाल की बियासीवी रात्रि मे उसने अचानक यह स्वप्न देखा कि उसके चौदह मगलकारी शुभ स्वप्न उसके मु ह से बाहर निकल गये है। वह उसी समय जाग उठी और शोक से आकुल-व्याकुल होकर विलाप करने लगी कि त्रिशला क्षत्रियाणी ने उसके गर्भ का अपहरण कर लिया है।[3]

---

१ भगवतो माया चेडगस्सभगिणी।

—आव० चूर्णि भाग १ पत्र २४५

२ (क) आचाराग २।१५।५

(ख) कल्पसूत्र-३०

(ग) विशेपावश्यक भाष्य १८२७ से १८३२

उधर महारानी त्रिशला ने निम्न चौदह महास्वप्न देखे—[४]

१ गज	८ ध्वजा
२ वृषभ	९ कुम्भ
३ सिंह	१० पद्मसरोवर
४ लक्ष्मी	११ समुद्र
५ पुष्पमाला	१२ विमान
६ चन्द्र	१३ रत्नराशि
७ सूर्य	१४ निर्धूम अग्नि

उक्त स्वप्न देखकर त्रिशला जगी। प्रसन्नमना वह राजा सिद्धार्थ के पास गई। उसने स्वप्न के सम्बन्ध मे राजा को बताया। राजा को भी इस शुभ सम्वाद से हार्दिक प्रसन्नता हुई। उसने त्रिशला से कहा—'देवि! तुमने कल्याणकारी स्वप्न देखे है। इनके फलस्वरूप हमे अर्थ, भोग, पुत्र व सुख की प्राप्ति होगी और राज्य की अभिवृद्धि होगी। कोई महान् आत्मा जन्म लेगी।''[५]

सिद्धार्थ राजा द्वारा अपने स्वप्नो का सक्षिप्त व विशिष्ट फल सुनकर त्रिशला प्रमुदित हुई। राजा के पास से उठकर वह अपने शयनागार मे आई। मागलिक स्वप्न कही निष्फल न चले जाये, एतदर्थ शेष रात्रि अध्यात्म-जागरण कर व्यतीत की।[६]

राजा सिद्धार्थ प्रात उठा। आज उसके शरीर मे अपूर्व स्फूर्ति थी। प्रातकालीन कृत्यो से निवृत्त हो व्यायामशाला मे गया। शस्त्राभ्यास,

---

३ (क) कल्पसूत्र ३२
(ख) विशेपावश्यक भाष्य १८३४
(ग) आव० चूर्णि० पृ० २४०-२४१
(घ) महावीर चरिय गुणचन्द्र पत्र ११२
(ङ) देवानन्दा ब्राह्मणी सा शयिता पूर्ववीक्षितान्।
मुखानि सरतोऽद्राक्षीन्महास्वप्नाश्चतुर्दश।

—त्रिषष्टि० १०।२।२७

४ (क) कल्पसूत्र ३४ से ४७ मे काव्यात्मक स्वप्नो का वर्णन है।
(ख) त्रिषष्टि० १०।२।३०-३१

५ कल्पसूत्र ४९ से ५४

६ कल्पसूत्र ५६ से ५७

वलान (कूदना), व्यामर्दन, मल्लयुद्ध व पद्मासन आदि विविध आसन किये। थकान मिटाने के लिए शतपाक व सहस्रपाक तेल का मर्दन कराया। मज्जन-गृह मे जाकर स्नान किया। गोशीर्ष चन्दन का विलेपन किया। सुन्दर वस्त्राभूषण धारण किये। सभी तरह से सज्जित हो सभाभवन मे आया। राजा सिद्धार्थ के सिहासन के समीप ही यवनिका के पीछे रानी त्रिशला के लिए रत्न जटित भद्रासन रखा। राजा ने कौटुम्बिको को आदेश दिया कि अष्टागनिमित्त के ज्ञाता स्वप्न पाठको को राजसभा मे आमन्त्रित किया जाय। कौटुम्बिको ने उसी समय राजा के आदेश को क्रियान्वित किया।[७]

स्वप्न-फल

राजा के निमत्रण को पाकर स्वप्न-पाठक प्रमुदित हुए। सुन्दर वस्त्रादि पहनकर वे राज-सभा मे पहुँचे। राजा ने उनका अभिवादन किया और त्रिशला द्वारा देखे गये चौदह स्वप्नो का फल पूछा।[८]

सभी स्वप्न पाठको ने परस्पर विचार-विनिमिय कर कहा—"राजन्! स्वप्न शास्त्र मे बयालीस सामान्य फल देने वाले और तीस उत्तम फल देने वाले महास्वप्न बताए है। इस प्रकार कुल बहत्तर स्वप्न होते है। तीर्थंकर और चक्रवर्ती की माता तीस महास्वप्नो मे से चौदह स्वप्न देखती है।[९]

---

७ (क) कल्पसूत्र ६० से ६५

(ख) आचाराग २।१५, भावनाध्ययन मे स्वप्न व फल का वर्णन नही है। विशेषावश्यक मे स्वप्न के नाम बताए है पर स्वप्नफल आदि का वर्णन नही है। महावीर चरिय मे गुणचन्द्र ने कुछ विस्तार से वर्णन किया है पर कल्पसूत्र जैसा नही।

८ कल्पसूत्र—६६ से ६९

९ कल्पसूत्र ७१

(ख) व्याख्याप्रज्ञप्ति, अभयदेव वृत्ति भा० ३, १६।६।५७९

तीर्थंकर व चक्रवर्ती दोनो की माता चौदह स्वप्न देखती है पर तीर्थंकर की माता बहुत स्पष्ट देखती है, चक्रवर्ती की माता कुछ धुधला देखती है। देखिए—

सार्वभौमस्य मातापि स्वप्नानेतान्निरीक्षते।
किन्तु किंचिन्न्यूनकान्ती-नर्हन्मातुरपेक्षया॥

—काललोकप्रकाश, सर्ग ३०, पृ० १९८

(ख) **चतुर्दशाप्यमून्स्वप्नान् या पश्येत्कचिदस्फुटान्।**
सा प्रभो प्रमदा सूते नन्दन चक्रवर्तिनम्॥

—श्री वर्धमानसूरि-वासुपूज्य-चरित्र ३।८१

वासुदेव की माता सात[१०], बलदेव की माता चार[११] और माण्डलिक राजा की माता एक स्वप्न देखती है।[१२]

स्वप्नशास्त्रियो ने अपनी बात को स्पष्ट करते हुए कहा—राजन्! महारानी त्रिशला ने चौदह स्वप्न देखे है। अत अर्थलाभ, पुत्र लाभ, सुख-लाभ और राज्य-लाभ होगा। नौ मास और साढे सात अहोरात्र व्यतीत होने पर कुल-केतु, कुल-दीपक, कुल किरीट कुल-तिलक सर्वाङ्ग सुन्दर, चन्द्र के समान सौम्य आकृति वाला, कान्त, प्रियदर्शी और सुरूप पुत्र को वह जन्म देगी। वह पुत्र लक्षण व व्यजन गुणो से युक्त होगा।

शैशव समाप्त कर परिपक्व ज्ञान वाला होगा। जब वह यौवन मे प्रविष्ट होगा, दानवीर, पराक्रमी व चारो दिशाओ का अधिशास्ता, चक्रवर्ती, या चार गति का अन्त करने वाला धर्म-चक्रवर्ती तीर्थंकर होगा।

देखिए इन चौदह महास्वप्नो का एक-एक तात्पर्य यह है—[१३] (तीर्थंकर पक्ष मे)

(१) चार दात वाले हाथी को देखने से वह चार प्रकार के धर्म (श्रमण, श्रमणी, श्रावक, श्राविका रूप) को कहने वाला होगा।

(२) वृषभ को देखने से भरत-क्षेत्र मे बोधि-बीज का वपन करेगा।

(३) सिंह को देखने से कामदेव आदि विकार रूप उन्मत्त हाथियो से नष्ट करते हुए भव्य-जीव रूप वन का सरक्षण करेगा।

(४) लक्ष्मी को देखने से वार्षिक दान देकर तीर्थंकर पद के अपार ऐश्वर्य का उपभोग करेगा।

---

१० (क) त्रिषष्टि० ४।१।२१७

(ख) सिंह, सूय, कुभ समुद्र, लक्ष्मी, रत्नराशि, अग्नि ये सात स्वप्न वासुदेव की माता देखती है।

११ (क) त्रिषष्टि० ४।१।१६८

(ख) हाथी, पद्मसरोवर, चन्द्र, वृषभ ये चार स्वप्न बलदेव की माता देखती है।

—सेनप्रश्न पृ० ३७९

(ग) प्रतिवासुदेव की माता ३ स्वप्न देखती है।

— हरीप्रश्नप्रकाश ४, पृ० २३६

१२ काललोक प्रकाश सर्ग ३०, पृ० १९९

१३ कल्पसूत्र-विवेचन, देवेन्द्र मुनि पृ० ११३-१४

(५) माला को देखने से तीन भुवन के मस्तक पर धारण करने योग्य अर्थात् त्रिलोक पूज्य होगा।

(६) चन्द्र को देखने से भव्य-जीव रूप चन्द्रविकासी कमलो को विकसित करने वाला होगा अथवा चन्द्रमा के समान शान्तिदायी क्षमाधर्म का उपदेश करेगा।

(७) सूर्य को देखन से अज्ञान रूप अधकार को नाश करके ज्ञान का उद्योत फैलाएगा।

(८) ध्वजा-दर्शन से अर्थ है धर्म-रूप ध्वजा को विश्व क्षितिज पर लहरायेगा या ज्ञातृ-कुल मे ध्वजा रूप होगा।

(९) कलश देखने से कुल या धर्म रूपी प्रासाद के शिखर पर यह स्वर्ण-कलश के रूप मे होगा।

(१०) पद्मसरोवर देखने से देव-निर्मित स्वर्णकमल पर उसका आसन लगेगा।

(११) समुद्र को देखने से समुद्र की तरह अनन्त ज्ञान-दर्शन रूप मणि-रत्नो का धारक होगा।

(१२) विमान को देखने स वैमानिक देवो का पूज्य होगा।

(१३) रत्न-राशि देखने से मणि-रत्नो से विभूषित होगा।

(१४) निर्धूम अग्नि को देखने से धर्म-रूप सुवर्ण को विशुद्ध व निर्मल करने वाला होगा।

स्वप्नपाठको से सविस्तार विवेचन सुनकर सिद्धार्थ और त्रिशला बहुत ही प्रसन्न हुए। उन्होने जी भरकर दक्षिणा दी और सत्कार कर उनको विदा किया।

दिगम्बर-परम्परा मे सोलह स्वप्नो का उल्लेख है, वह इस प्रकार है—

१ गज	९ झपयुगल
२ वृषभ	१० सागर
३ सिंह	११ सरोवर
४ लक्ष्मी	१२ सिंहासन
५ माल्यद्विक	१३ देव-विमान
६ शशि	१४ नाग-विमान
७ सूय	१५ रत्नराशि
८ कुम्भद्विक	१६ निर्धूम अग्नि

दोनों परम्परा में तेरह स्वप्न तो एक सदृश हैं किन्तु दिगम्बर परम्परा में जहाँ झष (मीन) का उल्लेख है वहाँ श्वेताम्बर परम्परा में 'झय' ध्वजा का उल्लेख है। संभव है झय के स्थान पर झष हो गया है। इन चौदह स्वप्न के अतिरिक्त दो स्वप्न और अधिक माने हैं—एक सिंहासन और दूसरा भवन-वासी देवों का नाग-मन्दिर या नाग विमान।

श्वेताम्बर परम्परा के अनुसार स्वर्ग से आने वाले तीर्थंकर की माता को देव-विमान स्वप्न में दीखता है, नाग-भवन नहीं, इसी तरह नरक से आने वाले तीर्थंकर की माता को स्वप्न में नाग भवन दीखता है देव-विमान नहीं। दिगम्बर आचार्यों की दृष्टि से देव-विमान ऊर्ध्वलोक के अधिपतित्व का, सिंहासन मध्यलोक के स्वामित्व का, और नाग-विमान या भवन अधोलोक के आधिपत्य का सूचक है जिसका तात्पर्य है कि गर्भ में आने वाला जीव तीनों लोकों के अधिपतियों का पूज्य होगा।

उत्तरपुराण के अनुसार स्वप्न का फल सिद्धार्थ ही बताता है, स्वप्न-पाठक नहीं।[१३]

गर्भ में प्रतिज्ञा

कल्पसूत्र[१४], आवश्यक चूर्णि[१५], चउप्पन्न महापुरिस चरियं[१६], महावीर चरियं[१७] और त्रिषष्टि शलाकापुरुष चरित्र[१८] में महावीर के गर्भ का एक रोचक प्रसंग उट्टङ्कित किया है कि भगवान् महावीर ने गर्भ में एक बार सोचा—कि मेरे हिलने-डुलने से माता को कष्ट होता होगा। मुझे इसमें निमित्त नहीं बनना चाहिए, यह सोचकर वे निश्चल हो गए, उन्होंने हिलना-डुलना बन्द कर दिया, अकम्प बन गये, अपने अंगोपाङ्गों को भी सिकोड़ लिया। त्रिशला के अन्तर्मानस में विविध आशंकाएं हुईं—क्या किसी देव ने मेरे गर्भ का अप-

---

१३ उत्तरपुराण ७४।२५८-२५९

१४ कल्पसूत्र—८७—८८

१५ आवश्यक चूर्णि पृ० २४२

१६ चउप्पन्न २७०—२७१

१७ (क) महावीर चरियं पृ० ११४—गुणचन्द्र
(ख) महावीर चरियं गा० ३७-७१, नेमिचन्द्र

१८ त्रिषष्टि० १०।२।३७-४८

हरण कर लिया है, क्या वह मर गया है ? क्या वह गल गया है ? विविध आशकाओ ने त्रिशला के हृदय को गहरा आघात पहुँचाया। वह रोने लगी, करुण-क्रन्दन करने लगी, मूर्च्छित होकर गिर पडी। परिचारिकाओ ने उपचार किया। कुछ स्वस्थ होने पर बोली—"रानी जी ! आप क्यो रो रही है। आपका मुखकमल क्यो मुरझा गया है ? आपका देह तो स्वस्थ है न ? आपका गर्भस्थ बालक तो सकुशल है न ? त्रिशला ने अत्यत करुण स्वर मे कहा—पता नही, मेरे गर्भस्थ शिशु को क्या हो गया है, वह न हिलता है न डुलता है, उसका स्पन्दन भी बद हो गया है। यह सुनकर सभी घबराए। कुल की वृद्धा नारिया शान्ति कर्म, मगल व उपचार के निमित्त मनौतिया करने लगी और ज्योतिषियो को बुलाकर विविध प्रश्न पूछने लगी। सिद्धार्थ ने भी जब यह सुना तो वह भी चिन्तित हो उठा। मत्री-गण भी किंकर्तव्य-विमूढ हो गया, राज भवन का राग-रग समाप्त हो गया।

भगवान् (गर्भस्थ शिशु) ने अवधिज्ञान से माता-पिता और परिजनो को शोकविह्वल देखा। सोचा—अरे ! यह क्या हो रहा है। मैंने तो माता-पिता के सुख के लिए यह कार्य किया था पर यह तो उल्टा उनके दु ख का कारण बन गया। मोह की गति बडी विचित्र है जैसे दुष् धातु से गुण करने से 'दोष' की निष्पत्ति होती है वैसे ही मैंने सुख के लिए जो कार्य किया उससे उल्टा दु ख ही निष्पन्न हुआ।[१९] ऐसा विचार कर उन्होने अपने शरीर को पुन स्वाभाविक स्थिति मे स्पन्दनशील कर लिया।

गर्भ की कुशलता से त्रिशला पुलक उठी। उसे अपने पूर्व चिन्तन पर अनुताप हुआ। वह सोचने लगी मैंने यह अमगल चिन्तन क्यो किया ? निश्चय ही मेरे गर्भ का हरण नही हुआ है और न मेरा गर्भ गला ही है। मेरा गर्भ पहले हिलता नही था अब हिलने लगा है। त्रिशला की प्रसन्नता से सारा राज-भवन आनन्दमग्न हो गया।

यह घटना उस समय की है जब महावीर को गर्भ मे आये सार्ध छ मास व्यतीत हो गए थे। इस घटना से महावीर के मन पर एक असर हुआ, उन्होने सोचा अभी तो मैं गर्भ मे हूँ, माँ ने मेरा मुँह भी नही देखा है, तथापि माता को इतना मोह है, तो जन्म के पश्चात कितना मोह होगा ? माता

---

१९ किं कुर्म ? कस्य वा ब्रूमो ? मोहस्य गतिरीदृशी।
दुषेर्धातोरिवास्माक दोषनिष्पत्तये गुण ॥

पिता की विद्यमानता मे यदि मैं सयम लू गा तो उन्हे बहुत ही दु ख होगा, अत मातृ-स्नेह के वश मे होकर उन्होने प्रतिज्ञा ग्रहण की— जब तक मेरे माता-पिता जीवित रहेगे तब तक मैं मुण्डित होकर गृहवास का त्याग कर दीक्षा अगीकार नही करूँगा।[२०]

विशेपावश्यकभाष्य मे केवल इतना ही वर्णन है कि सातवे मास मे गर्भस्थिति मे भगवान् महावीर ने यह प्रतिज्ञा ग्रहण की कि माता पिता के जीवित रहते मैं श्रमण नही बनू गा।[२१]

प्रस्तुत घटना का उल्लेख आचाराग के भावनाध्ययन मे, आवश्यक निर्युक्ति मे और पउम चरिय मे नही है। दिगम्बर ग्रन्थो मे भी यह घटना नही है।

गर्भ परिपालना

गर्भ को सुरक्षित स्थिति मे पाकर त्रिशला ने स्नानादि किया और आभूपण आदि धारण किये। गर्भ-पोषण के लिए वह अति शीत, अति उष्ण, अति तिक्त, अति कटुक, अति कषायित, अति आम्ल, अति स्निग्ध, अति रुक्ष, अति आर्द्र, अति शुष्क भोजन का परिहार कर ऋतु के अनुकूल भोजन करती। वह सदा अत्यन्त चिन्ता, शोक, दैन्य, मोह, भय, त्रास आदि से बचकर रहती।

वयोवृद्धा व अनुभवी महिलाओ की हित-शिक्षाओ का स्मरण कर शनै शनै चलती, व धीरे-धीरे वार्तालाप करती, क्रोध आदि नही करती, पथ्य आदि का सेवन करती आदि सभी बातो का वह पूर्ण ध्यान रखती थी।[२२]

धन-धान्यादि की वृद्धि

जब से महावीर गर्भ मे आये तब से सिद्धार्थ के घर मे अत्यधिक धन-

---

२० तए ण समणे भगव महावीरे गब्भत्थे चेव इमेयारूव अभिग्गह अभिगिण्हइ नो खलु मे कप्पइ अम्मापिएहि जीवतेहि मु डे भवित्ता अगारवासाओ अणगारिय पव्वइत्तए। —कल्पसूत्र० ९१

२१ अध सत्तमम्मि मासे गब्भत्थो चेवभिग्गह गेण्हे।
णाह समणो होह अम्मापितरम्मि जीवते॥
—विशेपावश्यकभाष्य १८३८

२२ देखिए कल्पसूत्र० पृ० १२७

धान्य की अभिवृद्धि होने लगी। शक्रेन्द्र के आदेश से वैश्रमण जृम्भक देवो के द्वारा भूमिगत धन भण्डार, बिना स्वामी का धन-भण्डार, बिना सरक्षण का धन-भण्डार और ऐसे भूमिगत धन-भण्डार जो किसी को मालूम नही है तथा गाव, नगर अरण्य, रास्ता, जलाशय, तीर्थस्थान उद्यान, शून्यागार, गिरि-कन्दरा, आदि मे सगोपित धन-भण्डार थे - उनको वहाँ से उठा-उठाकर सिद्धार्थ के घर पहुँचाने लगे। राज्य मे प्रचुर धन-धान्य यान-वाहन आदि की वृद्धि होने लगी।[२३]

श्वेताम्बर परम्परा के आचार्य विमलसूरि ने पउमचरिय[२४] मे और दिगम्बर परम्परा के आचार्य जिनसेन ने आदिपुराण[२५] मे यह मान्यता अभिव्यक्त की है कि प्रत्येक तीर्थकर के गर्भावतरण के छह मास पूर्व से ही देवगण तीर्थकर के माता-पिता के राजप्रासाद पर रत्नो की वृष्टि करना प्रारभ कर देते हे।

दोहद

गर्भ के प्रभाव से माता त्रिशला को दिव्य दोहद उत्पन्न हुए।[२६] मै अपने हाथो से दान दूँ, सद्गुरुओ को आहार आदि प्रदान करूँ, देश मे अमारी पटह बजवाऊँ, कैदियो को कारागृह से मुक्त कराऊँ, समुद्र चन्द्र और पीयूष का पान करूँ, उत्तम प्रकार के भोजन, आभूषण धारण करूँ सिंहासन पर बैठकर शासन का सचालन करूँ और हस्ती पर बैठकर उद्यान आदि मे परिभ्रमण करूँ। राजा सिद्धार्थ ने रानी के समस्त दोहद पूर्ण किये।

कल्पसूत्र की कल्पलता वृत्ति के अनुसार त्रिशला रानी को एक विचित्र दोहद उत्पन्न हुआ। मैं इन्द्राणी के कानो से कुण्डल-युगल छीनकर पहनूँ। किन्तु ऐसा हो पाना सर्वथा असभव था, अत वह दुर्मनस्क रहने लगी।

२३ महावीर चरिय, गुणचन्द्र पत्र ११४

२४ छम्मासेण जिणवरो, होही गब्भम्मि चवणकालाओ।
पाडेइ रयणवुट्ठी धणओ मासाणि पण्णरस॥

—पउमचरिय ३।६७

२५ षड्भिर्मासैरथैतस्मिन् स्वर्गादवतरिष्यति।
रत्नवृष्टि दिवो देवा पातयामासुरादरात्॥

—आदिपुराण १२।८४

२६ कल्पसूत्र—सूत्र ८२

सहसा इन्द्र का आसन कम्पित हुआ। अपने अवधिज्ञान के बल से सब कुछ जाना। इसे पूर्ण करने के लिए उसने इन्द्राणी प्रभृति अप्सराओं को साथ लिया और एक दुगम पर्वत के अन्तर्वर्ती विषम स्थान में दिव्य देवनगर का निर्माण किया और वहाँ रहने लगा। राजा सिद्धार्थ को ज्ञात होने पर वह ससैन्य इन्द्र के पास आया और कुण्डलों की याचना की। इन्द्र ने उसे देने से इन्कार कर दिया। दोनों में युद्ध हुआ। इन्द्र युद्ध में जानकर पराजित हुआ। किले पर सिद्धार्थ ने अधिकार किया। इन्द्राणी के कानों से कुण्डल छीनकर रानी को पहनाये। दोहद पूर्ण होने से त्रिशला अत्यन्त प्रमुदित हुई।

जन्म और उत्सव

वर्ष के बारह महीनों में चैत्र का महीना सबसे श्रेष्ठ माना गया है। श्री कृष्ण ने गीता में कहा—'मासाना मधुमासोस्मि' मैं महीनों में माधव-मास—चैत्र महीना हूं और ऋतुओं में वसन्त ऋतु। पतझड की मुहरमी उदासी और कसकते सूनापन के तूफानों से गुजर कर प्रकृति नये उल्लास से पुलक उठती है, वह भूमि के कण-कण में नई अगडाई भर देती है। सर्वत्र मन-मोहक हरियाली, प्राकृतिक सुषमा और शान्त, सौम्य-स्वास्थ्यप्रद वायु के सचरण विचरण से जन-जीवन में नया उल्लास, नवीन चेतना, नवीन उमगें मचलने लगती हे। यजुर्वेद में वसन्त को प्राण शक्ति का पुत्र कहा है।[1] वह मधु मास है जो सर्वत्र मधु की वर्षा करता है। प्रकृति के कण-कण को मधुरस से आप्लावित करता है। सर्वत्र उल्लास की उर्मियाँ उठते हुए देखकर ऐसा ज्ञात होता है कि जैसे कोई ज्ञानी या योगी अन्दर की आनन्दोर्मियों से पुलक-पुलक कर आनन्दविभोर हो रहा है। सभवत इसीलिए शतपथ ब्राह्मण में ऋषियों ने इसे ज्ञानियों का, साधकों का ऋतु कहा है।[2] इसी माह में चैत्र कृष्णा अष्टमी को भगवान् ऋषभदेव का जन्म हुआ।[3] चैत्र शुक्ला नवमी को श्री राम का जन्म हुआ।[4] चैत्र सुदी पूर्णिमा को

---

१ वसन्त प्राणायन। — यजुर्वेद १३।५४

२ ब्रह्म व वसन्त (ब्राह्मण वसन्त है) —शतपथ ब्राह्मण २।३।५

३ कल्पसूत्र १९३

४ त्रिषष्टि शलाकापुरुष-चरित्र

धान्य की अभिवृद्धि होने लगी। शक्रेन्द्र के आदेश से वैश्रमण जृम्भक देवो के द्वारा भूमिगत धन भण्डार, बिना स्वामी का धन-भण्डार, बिना सरक्षण का धन-भण्डार और ऐसे भूमिगत धन-भण्डार जो किसी को मालूम नही है तथा गाव, नगर अरण्य, रास्ता, जलाशय, तीर्थस्थान उद्यान, शून्यागार, गिरि-कन्दरा, आदि मे सगोपित धन-भण्डार थे - उनको वहाँ से उठा-उठाकर सिद्धार्थ के घर पहुँचाने लगे। राज्य मे प्रचुर धन-धान्य यान-वाहन आदि की वृद्धि होने लगी।[२३]

श्वेताम्बर परम्परा के आचार्य विमलसूरि ने पउमचरिय[२४] मे और दिगम्बर परम्परा के आचार्य जिनसेन ने आदिपुराण[२५] मे यह मान्यता अभिव्यक्त की है कि प्रत्येक तीर्थकर के गर्भावतरण के छह माम पूर्व से ही देवगण तीर्थकर के माता-पिता के राजप्रामाद पर रत्नो की वृष्टि करना प्रारभ कर देते है।

दोहद

गर्भ के प्रभाव से माता त्रिशला को दिव्य दोहद उत्पन्न हुए।[२६] मै अपने हाथो से दान दूँ, सद्गुरुओ को आहार आदि प्रदान करूँ, देश मे अमारी पटह बजवाऊँ, कैदियो को कारागृह से मुक्त कराऊँ, समुद्र चन्द्र और पीयूष का पान करूँ, उत्तम प्रकार के भोजन, आभूषण धारण करूँ सिहासन पर बैठकर शासन का सचालन करूँ और हस्ती पर बैठकर उद्यान आदि मे परिभ्रमण करूँ। राजा सिद्धार्थ ने रानी के समस्त दोहद पूर्ण किये।

कल्पसूत्र की कल्पलता वृत्ति के अनुसार त्रिशला रानी को एक विचित्र दोहद उत्पन्न हुआ। मैं इन्द्राणी के कानो से कुण्डल-युगल छीनकर पहनूँ। किन्तु ऐसा हो पाना मर्वथा असभव था, अत वह दुमनस्क रहने लगी।

२३ महावीर चरिय, गुणचन्द्र पत्र ११४

२४ छम्मासेण जिणवरो, होही गब्भम्मि चवणकालाओ।
पाडेइ रयणवुट्ठी धणओ मासाणि पण्णरस॥

—पउमचरिय ३।६७

२५ षडभिर्मासैरथैतस्मिन् स्वर्गादवतरिष्यति।
रत्नवृष्टि दिनो देवा पातयामासुरादरात्॥

—आदिपुराण १२।८४

२६ कल्पसूत्र—सूत्र ८२

सहसा इन्द्र का आसन कम्पित हुआ। अपने अवधिज्ञान के बल से सब कुछ जाना। इसे पूर्ण करने के लिए उसने इन्द्राणी प्रभृति अप्सराओं को साथ लिया और एक दुगम पर्वत के अन्तर्वर्ती विषम स्थान मे दिव्य देवनगर का निर्माण किया और वहाँ रहने लगा। राजा सिद्धार्थ को ज्ञात होने पर वह ससैन्य इन्द्र के पास आया और कुण्डलो की याचना की। इन्द्र ने उसे देने से इन्कार कर दिया। दोनो मे युद्ध हुआ। इन्द्र युद्ध मे जानकर पराजित हुआ। किले पर सिद्धार्थ ने अधिकार किया। इन्द्राणी के कानों से कुण्डल छीनकर रानी को पहनाये। दोहद पूर्ण होने से त्रिशला अत्यन्त प्रमुदित हुई।

जन्म और उत्सव

वर्ष के बारह महीनो मे चैत्र का महीना सबसे श्रेष्ठ माना गया है। श्री कृष्ण ने गीता मे कहा—'मासाना मधुमासोऽस्मि' मैं महीनो मे माधव-मास—चैत्र महीना हूँ और ऋतुओ मे वसन्त ऋतु। पतझड की मुहरमी उदासी और कसकते सूनापन के तूफानो से गुजर कर प्रकृति नये उल्लास से पुलक उठती है, वह भूमि के कण-कण मे नई अगडाई भर देती है। सर्वत्र मन-मोहक हरियाली, प्राकृतिक सुषमा और शान्ति, सौम्य-स्वास्थ्यप्रद वायु के सचरण विचरण से जन-जीवन मे नया उल्लास, नवीन चेतना, नवीन उमगे मचलने लगती है। यजुर्वेद मे वसन्त को प्राण शक्ति का पुत्र कहा है।[1] वह मधु मास है जो सर्वत्र मधु की वर्षा करता है। प्रकृति के कण-कण को मधुरस से आप्लावित करता है। सर्वत्र उल्लास की उर्मियाँ उठते हुए देखकर ऐसा ज्ञात होता है कि जैसे कोई ज्ञानी या योगी अन्दर की आनन्दोर्मियो से पुलक-पुलक कर आनन्दविभोर हो रहा है। सभवत इसीलिए शतपथ ब्राह्मण मे ऋषियो ने इसे ज्ञानियो का, साधको का ऋतु कहा है।[2] इसी माह मे चैत्र कृष्णा अष्टमी को भगवान् ऋषभदेव का जन्म हुआ।[3] चैत्र शुक्ला नवमी को श्री राम का जन्म हुआ।[4] चैत्र सुदी पूर्णिमा को

---

१ वसन्त प्राणायन। — यजुर्वेद १३।५४

२ ब्रह्मं व वसन्त (ब्राह्मण वसन्त है) —शतपथ ब्राह्मण २।३।५

३ कल्पसूत्र १६३

४ त्रिशष्टि शलाकापुरुष-चरित्र

धान्य की अभिवृद्धि होने लगी। शक्रेन्द्र के आदेश से वैश्रमण जृम्भक देवो के द्वारा भूमिगत धन भण्डार, बिना स्वामी का धन-भण्डार, बिना सरक्षण का धन-भण्डार और ऐसे भूमिगत धन-भण्डार जो किसी को मालूम नही है तथा गाव, नगर अरण्य, रास्ता, जलाशय, तीर्थस्थान उद्यान, शून्यागार, गिरि-कन्दरा, आदि मे सगोपित धन-भण्डार थे -उनको वहाँ से उठा-उठाकर सिद्धार्थ के घर पहुँचाने लगे। राज्य मे प्रचुर धन-धान्य यान-वाहन आदि की वृद्धि होने लगी।[23]

श्वेताम्बर परम्परा के आचार्य विमलसूरि ने पउमचरिय[24] मे और दिगम्बर परम्परा के आचार्य जिनसेन ने आदिपुराण[25] मे यह मान्यता अभिव्यक्त की है कि प्रत्येक तीर्थंकर के गर्भावतरण के छह माम पूर्व से ही देव-गण तीर्थंकर के माता-पिता के राजप्रासाद पर रत्नो की वृष्टि करना प्रारभ कर देते ह।

दोहद

गर्भ के प्रभाव से माता त्रिशला को दिव्य दोहद उत्पन्न हुए।[26] मैं अपने हाथो से दान दूँ, सद्गुरुओ को आहार आदि प्रदान करूँ, देश मे अमारी पटह बजवाऊँ, कैदियो को कारागृह से मुक्त कराऊँ, समुद्र चन्द्र और पीयूष का पान करूँ, उत्तम प्रकार के भोजन, आभूषण धारण करूँ सिंहासन पर बैठकर शासन का सचालन करूँ और हस्ती पर बैठकर उद्यान आदि मे परिभ्रमण करूँ। राजा सिद्धार्थ ने रानी के समस्त दोहद पूर्ण किये।

कल्पसूत्र की कल्पलता वृत्ति के अनुसार त्रिशला रानी को एक विचित्र दोहद उत्पन्न हुआ। मैं इन्द्राणी के कानो से कुण्डल-युगल छीनकर पहनूँ। किन्तु ऐसा हो पाना सर्वथा असभव था, अत वह दुर्मनस्क रहने लगी।

२३ महावीर चरिय, गुणचन्द्र पत्र ११४

२४ छम्मासेण जिणवरो, होही गब्भम्मि चवणकालाओ।
पाडेइ रयणवुट्ठी धणओ मासाणि पण्णरस ॥
—पउमचरिय ३।६७

२५ षड्भिर्मासैरथैतस्मिन् स्वर्गादवतरिष्यति।
रत्नवृष्टि दिवो देवा पातयामासुरादरात् ॥
—आदिपुराण १२।८४

२६ कल्पसूत्र—सूत्र ८२

सहसा इन्द्र का आसन कम्पित हुआ। अपने अवधिज्ञान के बल से सब कुछ जाना। इसे पूर्ण करने के लिए उसने इन्द्राणी प्रभृति अप्सराओ को साथ लिया और एक दुगम पर्वत के अन्तर्वर्ती विपम स्थान मे दिव्य देवनगर का निर्माण किया और वहाँ रहने लगा। राजा सिद्धार्थ को ज्ञात होने पर वह ससैन्य इन्द्र के पास आया और कुण्डलो की याचना की। इन्द्र ने उसे देने से इन्कार कर दिया। दोनो मे युद्ध हुआ। इन्द्र युद्ध मे जानकर पराजित हुआ। किले पर सिद्धार्थ ने अधिकार किया। इन्द्राणी के कानो से कुण्डल छीनकर रानी को पहनाये। दोहद पूर्ण होने से त्रिशला अत्यन्त प्रमुदित हुई।

जन्म और उत्सव

वर्ष के बारह महीनो मे चैत्र का महीना सबसे श्रेष्ठ माना गया है। श्री कृष्ण ने गीता मे कहा—'मासाना मधुमासोस्मि' मैं महीनो मे माधव-मास—चैत्र महीना हूँ और ऋतुओ मे वसन्त ऋतु। पतझड की मुहरमी उदासी और कसकते सूनापन के तूफानो से गुजर कर प्रकृति नये उल्लास स पुलक उठती है, वह भूमि के कण-कण मे नई अगडाई भर देती है। सर्वत्र मन-मोहक हरियाली, प्राकृतिक सुपमा और शान्त, सौम्य-स्वास्थ्यप्रद वायु के सचरण विचरण से जन-जीवन मे नया उल्लास, नवीन चेतना, नवीन उमगे मचलने लगती है। यजुर्वेद मे वसन्त को प्राण शक्ति का पुत्र कहा है।[1] वह मधु मास है जो सर्वत्र मधु की वर्षा करता है। प्रकृति के कण कण को मधुरस से आप्लावित करता है। सर्वत्र उल्लास की उर्मियाँ उठते हुए देखकर ऐसा ज्ञात होता है कि जैसे कोई ज्ञानी या योगी अन्दर की आनन्दोर्मियो से पुलक-पुलक कर आनन्दविभोर हो रहा है। सभवत इसीलिए शतपथ ब्राह्मण मे ऋपियो ने इसे ज्ञानियो का, साधको का ऋतु कहा है।[2] इसी माह मे चैत्र कृष्णा अष्टमी को भगवान् ऋपभदेव का जन्म हुआ।[3] चैत्र शुक्ला नवमी को श्री राम का जन्म हुआ।[4] चैत्र सुदी पूर्णिमा को

---

१ वसन्त प्राणायन । — यजुर्वेद १३।५४

२ ब्रह्म व वसन्त (ब्राह्मण वसन्त है) —शतपथ ब्राह्मण २।३।५

३ कल्पसूत्र १९३

४ त्रिशष्टि शलाकापुरुप-चरित्र

हनुमान का जन्म हुआ और चैत्र सुदी त्रयोदशी को भगवान् महावीर का जन्म हुआ।"[५]

नौ महीने साढे सात दिन पूर्ण होने पर हस्तोत्तरा नक्षत्र के योग मे त्रिशला क्षत्रियाणी ने आरोग्यपूर्वक एक दिव्य पुत्र को जन्म दिया। वे देवताओ की भाति जरायु-रुधिर व मल से रहित थे। उस दिन सातो ग्रह उच्च स्थान मे थे और उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र के साथ चन्द्रमा का योग था, सारा ससार प्रकाश से जगमगा उठा था, शीतल, मन्द, सुगन्धित दाक्षिणात्य पवन चल रहा था। सभी दिशाए शान्त और विशुद्ध थी। शकुन जय-विजय के सूचक थे।[६]

देवो द्वारा उत्साह

भगवान् के जन्म के समय छप्पन दिक्कुमारिया आईं। भगवान का सूतिका-कर्म करके जन्मोत्सव मनाया और अपने-अपने स्थान पर चली गईं।[७]

भगवान् का जन्म होते ही शक्रेन्द्र का सिंहासन कम्पित हुआ। उसने अवधिज्ञान से देखा भगवान् का जन्म हो गया है, वह अत्यत आह्लादित हुआ। अनेक देव-देवियो के परिवार के साथ कुण्डपुर आया। साथ ही भवनपति, वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक देवनिकाय के इन्द्र और देवगण भी आये।[८] उस समय देवो मे परस्पर प्रतिस्पर्धा-सी लगी हुई थी। वे एक दूसरे से आगे बढने का प्रयास कर रहे थे। सर्वप्रथम शक्रेन्द्र ने भगवान् को और माता त्रिशला को तीन वार प्रदक्षिणा कर नमस्कार किया। महावीर

---

५ (क) आचाराग २।१५।८
(ख) कल्पसूत्र ९३
(ग) विशेपावश्यकभाष्य १८४०
(घ) महावीर चरिय
(ङ) त्रिपष्टि० १०।

६ कल्पसूत्र

७ षट्पञ्चाशद्दिक्कुमार्योऽभ्येत्य भोगकरादय।
स्वामिन स्वामिमातुश्च सूतिकर्माणि चक्रिरे॥

— त्रिपष्टि० १०।२।५२

८ (क) आचाराग २।१५।९
(ख) कल्पसूत्र ९६
(ग) विशे० भाष्य १८४३

(शिशु) का एक प्रतिबिम्ब बनाकर माता के पास रखा। अवस्वापिनी निद्रा मे माता को सुलाकर महावीर को मेरुपर्वत के शिखर पर ले गये।[९] यह स्मरण रखना चाहिए कि आचाराग मे तीर्थंकर का अभिषेक किया ऐसा वर्णन है और कल्पसूत्र मे देवो द्वारा तीर्थंकरो के जन्माभिषेक की महिमा की गई ऐसा लिखा है पर मेरुपर्वत पर ले जाने का उल्लेख नही है।

विशेषावश्यकभाष्य, महावीर चरिय, त्रिपष्टि शलाकापुरुष चरित्र पउमचरिय आदि ग्रन्थो मे मेरुपर्वत पर ले जाकर अभिषेक करने का उल्लेख है।[१०]

मेरुकपन

आचाराग, कल्पसूत्र, आवश्यक नियुक्ति, विशेषावश्यकभाष्य आदि प्राचीन साहित्य मे मेरु-कपन का उल्लेख नही है। दिगम्बराचार्य गुणचन्द्र ने भी उत्तरपुराण मे इस घटना का उल्लेख नही किया है, परन्तु पउमचरिय मे विमलसूरि ने सक्षेप मे लिखा कि "मेरुपर्वत को अपने अगूठे से क्रीडा-मात्र मे उन्होने हिला दिया था, इसलिये सुरेन्द्रो ने उनका नाम महावीर रखा[११]

---

९ त्रिपष्टि शलाकापुरुष चरित्र १०।२।५३ से ५४ मे वर्णन है कि सौधर्मेन्द्र स्वय प्रसूतिगृह मे जाता है और भगवान् का प्रतिबिम्ब माता के पास रखकर माता को अवस्वापिनी निद्रा देकर भगवान् को मेरु पर्वत पर अभिषेक के लिये ले जाते हैं पर दिगम्बर परम्परा के आचार्य जिनसेन के आदिपुराण १३।२७ से ३६ मे वर्णन है कि सौधर्मेंद्र की इन्द्राणी प्रसूतिगृह मे जाती है और भगवान् के प्रतिबिम्ब को रखकर भगवान् को बाहर लाकर इन्द्र को देती है। चउप्पन-महापुरिस चरिय पृ० २७१ गा० १३ मे इन्द्र के आदेश से हरिणैगमेषी भ० को लाकर इन्द्र के हाथ मे देता है।

१० (क) देवीहि सपरिवुडो देविंदो गेण्हिऊण तित्थकर।
पोत्तूण मन्दरगिरिं अभिसेय तत्थ कासी य। विशेषा० भाष्य० १८४४

(ख) महावीर चरिय पृ० ११६

(ग) त्रिषष्टि० १०।२,५३ से ५८

(घ) पउमचरिय २।२४

११ आकम्पिओ य जेण, मेरु अङ्गुट्ठएण लीलाए।
तेणेह महावीरो, नाम सि कय सुरिन्देहिं।

—पउमचरिय २।२६, पृ० १०

आचार्य शीलाङ्क ने लिखा है कि अनेक इन्द्रो द्वारा एक साथ मे की जाती हुई अभिषेक-धाराओ को यह नन्हा सा बालक किस प्रकार सहन कर सकेगा—इस प्रकार की आशका इन्द्र के अन्तर्मानस मे जगी। भगवान् ने इन्द्र की उपर्युक्त आशका को अपने अवधिज्ञान से देखा और उसके निवारण हेतु भगवान् ने एक अगूठे से मेरु पर्वत को प्रकम्पित कर दिया, जिससे समग्र विश्व मे क्षोभ उत्पन्न हो गया।

उस प्रसग पर इन्द्र ने विचार किया कि भगवान् के अभिषेक से तो सम्पूर्ण विश्व मे प्रसन्नता की लहर व्याप्त होनी चाहिए, यह अकस्मात् भूकम्प कैसे आ गया? उसने अपने अवधिज्ञान से देखा कि यह तो जिनेश्वर देव के अनन्त सामर्थ्य का ही परिणाम है। तब इन्द्र ने प्रभु से अपने अपराध की क्षमा माँगी।[१२] प्रस्तुत प्रसग आचार्य नेमिचन्द्र[१३] और आचाय गुणचन्द्र[१४] व आचार्य हेमचन्द्र[१५] और कल्पसूत्र की टीकाओ मे विस्तार के साथ उट्टङ्कित किया गया है। पर महावीर के नाम के साथ उक्त प्रसग को जोडा नही है। दिगम्बराचार्य रविषेण ने पउमचरिय का अनुसरण कर महावीर के नाम के साथ उक्त प्रसग को जोड दिया है।[१६]

पण्डित सुखलाल जी ने भागवत मे आये हुए श्री कृष्ण के जीवन के उस प्रसग के साथ तुलना की है कि तरुण श्री कृष्ण ने इन्द्र के द्वारा किए गये उपद्रवो से रक्षण के लिए योजन प्रमाण गोवर्धन पर्वत को सात दिन तक ऊपर उठाये रखा[१७] तो जन्मते हुए महावीर ने अँगूठे से मेरु को कपा दिया।[१८]

---

१२ चउप्पन्न महापुरिस चरिय पृ० २७१

१३ महावीर चरिय गा० १-३४, पृ० ३०-३१

१४ महावीर चरिय गा० १-३, तथा पृ० १२०-१२१

१५ त्रिषष्टि० १०।२।५८-६६

१६ पादागुष्ठेन यो मेरुमनायासेन कपयन्।
लेभे नाम महावीर इति नाकालयाधिपात्॥
— पद्मचरितम् २।१।७६, पृ० १५

१७ भागवत दशमस्कध अ० ४३, श्लो० २६-२७

१८ चार तीर्थंकर—प० सुखलाल जी पृ०-६०

बौद्ध परम्परा मे भी इस प्रकार की घटना का उल्लेख है। भिक्षु मौद्गल्यायन द्वारा वैजयन्त प्रासाद को अगुष्ट-स्पर्श से प्रकम्पित कर इन्द्र को प्रभावित करने का वर्णन है।[१९] कहा जाता है, एक समय बुद्ध मौद्गल्यायन प्रभृति पूर्वाराम के अपरिभौम मे थे। प्रासाद के नीचे कुछ प्रमादी भिक्षु वार्ता, उपहास आदि कर रहे थे। उनका ध्यान अपनी ओर आकर्षित करने के लिए अपने ऋद्धि-बल से मौद्गल्यायन ने सारे प्रासाद को प्रकम्पित कर दिया। सविग्न और रोमाञ्चित उन प्रमादी भिक्षुओ को बुद्ध ने उद्बोधन दिया।[२०]

इस प्रकार मेरु-कपन गोवर्धन-धारण एव प्रासाद-कपन की घटनाए उस युग मे अपने-अपने आराध्य पुरुषो के सामर्थ्य, पराक्रम एव ऐश्वर्य की प्रतीक बन गई थी।

जन्माभिषेक का महोत्सव सम्पन्न कर इन्द्र ने बालक वर्धमान को पुन माता के पास लाकर सुला दिया।

अगूठे मे अमृत का लेप

जन्माभिषेक के पश्चात बालक वर्धमान के अगूठे मे इन्द्र अमृत का लेप करता है उसको चूसकर वर्धमान ने बालभाव को पूर्ण किया, यह उल्लेख सर्वप्रथम पउमचरिय मे मिलता है।[२१] किन्तु अन्य श्वेताम्बर ग्रन्थो मे नही। आचाराग मे तो स्पष्ट रूप से **खीरधाई, मज्जणधाई** आदि का उल्लेख है। क्षीरधातृ का कार्य भगवान को दूध पिलाने का है, यदि वह दूध नही पिलाती थी तो उसका उल्लेख क्यो किया गया? अत अमृतलेप का प्रसग महिमामय होते हुए भी प्राचीन ग्रन्थो के प्रमाण की अपेक्षा रखता है—जो कम उपलब्ध है।

रत्नो की वृष्टि

श्वेताम्बर आचार्य विमलसूरि[२२] और दिगम्बर आचार्य जिनसेन[२३] ने

---

१९ मज्झिमनिकाय, चूलतण्हासखयसुत्त।

२० सयुत्तनिकाय, महावग्ग, ऋद्धिपाद, सयुक्त प्रासादकम्पनवग्ग, मोग्गलान सुत्त।

२१ सुखइदिन्नाहारो, अङ्गुट्ठयअमयलेवलेहेण।
उम्मुक्कबालभावो, तीसइवरिसो जिणो जाओ॥

२२ पउमचरिय ३।६७

२३ आदिपुराण १२।८४

यह मान्यता अभिव्यक्त की है कि प्रत्येक तीर्थंकर के गर्भावतरण के छह मास पूर्व से ही देवगण तीर्थंकर के माता-पिता के राजप्रासाद पर रत्नो की वृष्टि करना प्रारम्भ कर देते हे।

विशेपावश्यकभाष्य[२४] महावीरचरिय[२५] और त्रिपष्टि शलाकापुरुष-चरित्र[२६] आदि मे गर्भावतरण के पश्चात् शक्राज्ञा से तृजृभक देव ने तीर्थंकरो के पिता के राज्य-कोपो को विपुल निधियो से परिपूर्ण किया और जन्म के समय रत्नादि की वृष्टि की।

इस प्रकार भगवान के जन्म के समय सर्वप्रथम देवगण द्वारा उनका जन्म महोत्सव मनाया। इसके पश्चात् प्रात काल राजा सिद्धार्थ को जब भगवान की जन्म की बधाई मिली तो वह भी अत्यत आल्हादित हुआ और विशाल उत्सव का आयोजन किया।

सिद्धार्थ द्वारा जन्मोत्सव

प्रियवदा दासी ने प्रात काल होते ही यह पुत्र-जन्म का सवाद राजा सिद्धार्थ को सुनाया। इस सवाद को सुनकर राजा सिद्धार्थ अत्यधिक प्रसन्न हुआ। उसने मुकुट के अतिरिक्त अपने शरीर पर धारण किय हुए सभी आभूपण दासी को उपहार मे प्रदान कर दिये और जीवनपर्यन्त के लिए दासी को दासत्व से मुक्त कर दिया।[२७] पश्चात् आरक्षको को बुलाकर आदेश देते हुए कहा—कारागृह से सभी कैदियो को मुक्त कर दो। ऋणी-जनो को ऋण से मुक्त कर दो। बाजार मे सभी व्यापारियो को यह सूचित कर दो कि जिस किसी को किसी वस्तु की आवश्यकता हो, पर अर्थाभाव के कारण जो स्वय न खरीद सकता हो उसको बिना मूल्य लिये ही वस्तु दी जाय और उसका मूल्य राज्य कोप से प्राप्त कर लिया जाय। जो वस्तुए

२४ खोम कुण्डलजुयल सिरिदाम चेव देति से सक्को।
माणिक्कणगरतणवास उवच्छुभे जभगा देवा॥
वेसमणवयणसचोतिता तु ते तिरिय जभगा देवा।
कोडिग्गसो हिरण्ण रतणाणि य तत्थ उवणेन्ति॥
—विशेपा० भाष्य १८४६-४७

२५ महावीरचरिय प्रस्ताव ४, पृ० १२३, १

२६ त्रिपष्टि० १०।२।६०

२७ कल्पसूत्र की टीकाए

माप और तोल कर दी जाती है उसके माप और तोल मे वृद्धि कर दी जाय। नगर मे सभी स्थानो पर सफाई कर दी जाय और सभी स्थानो पर सुगन्धित जल छिटक दिया जाय। राजमार्ग आदि सभी दर्शनीय स्थानो को सजा दिया जाय, बाजारो मे व अन्य मुख्य स्थानो पर मच बना दिया जाय जिससे नागरिक उस पर सुखपूर्वक बैठकर महोत्सव को निहार सके। दीवारो पर सफेदी करवा दो और उन पर मगल सूचक थापे भी लगवा दो शहर मे सभी नाटक करनेवालो को नाचने वालो को, रस्सी पर खेलनेवालो को, कुश्ती और मुष्टियुद्ध करनेवालो को, विदूषको को, बन्दर के समान इधर से उधर उछल-कूद करनेवालो को, गड्ढे फान्दनेवालो को, नदी तैरनेवालो को, कथा-वाचको को सूक्ति-पाठको को, रास करनेवालो को, बास पर चढ कर विविध प्रकार के खेल करने वालो को, हाथ मे चित्र लेकर भिक्षा मांगने वाले मखो को, तूण नामक वाद्य बजानेवालो को, वीणा, मृदग व तालिया बजानेवालो को, सज्ज करो, त्रिक, चतुष्पथ, व चच्चर आदि मे अपनी श्रेष्ठ कलाबाजिया लोगो को दिखाए, यह उन्हे निदेश दो। राजाज्ञा पाकर सभी अधिकृत अधिकारी अपने अपने कार्य मे तल्लीनता के साथ लग गये।[२८]

उसके बाद राजा सिद्धार्थ व्यायामशाला मे आया। दैनिक कार्यक्रम सम्पन्न कर वह राजसभा मे आया। आनन्द और उल्लास के मधुर क्षणो मे दस दिन तक स्थितिपतित नामक महोत्सव किया।[२९]

तीसरे दिन महावीर को चन्द्र-सूर्य के दर्शन कराये गये। छठे दिन रात्रि-जागरण हुआ। बारहवे दिन नाम सस्कार किया गया। उस दिन सिद्धार्थ ने अपने इष्ट मित्रो, स्वजनो, स्नेहियो व भृत्यो को आमन्त्रित कर भोजन, पानी, अलकार आदि से सबका सत्कार किया, प्रसन्न किया।

---

२८ कल्पसूत्र० सूत्र० ९७ से ९८

२९ (क) कुलक्रमादागते पुत्रजन्मानुष्ठाने (नि० १।१।१)

(ख) भगवती ११।११

(ग) नाया धम्मकहा १।१४

(घ) रायप्रश्नीय० २८६

माता-पिता की ख्याति

भगवान महावीर के जन्मोत्सव का वर्णन पाठक पढ चुके है, और उनके नामकरण का तथा विविध नामो का विस्तृत विवरण भी अगले पृष्ठो पर पाठको के समक्ष आ रहा है। इस प्रसग के बीच यह जानने की उत्सुकता भी हो रही होगी कि भगवान महावीर जैसे दिव्य पुत्र को जन्म देने वाले माता-पिता के कुल एव परिवार, ऐश्वर्य तथा समृद्धि का सक्षिप्त परिचय तो मिलना ही चाहिए। पाठको की इसी जिज्ञासा की परितृप्ति हेतु भगवान महावीर के माता पिता की ख्याति का सक्षिप्त परिचय यहा प्रस्तुत है।

भगवान् महावीर के पिता का नाम सिद्धार्थ था, उनका अपर नाम 'श्रेयास' और 'यशस्वी' भी था। भगवान् महावीर की माता का नाम 'त्रिशला' था। उनका अपर नाम विदेहदिण्णा' और 'प्रियकारिणी' था।[1] वे भगवान् पार्श्वनाथ की परम्परा के अनुयायी थे।[2] उनके लिए राजा और नरेन्द्र शब्दो का प्रयोग भी हुआ है।[3] उनके गणनायक, दण्डनायक, युवराज, तलधर, माडम्बिक, कौटुम्बिक, मत्री, महामत्री, गणक, दौवारिक, अमात्य, चेट, पीठमर्दक, नागर, निगम, श्रेष्ठी, सेनापति, सार्थवाह, दूत, सधिपाल आदि पदाधिकारी थे।[4]

इस प्रकार स्पष्ट है कि सिद्धार्थ एक राजा था। तथापि डाक्टर हार्नेल[5] और जैकोबी[6] ने अपन लेखो मे सिद्धार्थ को राजा न मानकर एक

१ (क) आयारो० आयर चूला २।१५।१७-१८
  (ख) कल्पसूत्र १०५-१०६

२ समणस्स ण भगवओ महावीरस्स अम्मापियरो पासावच्चिज्जा समणोवासगा यावि होत्था।

—आचाराग २, चूलिका सूत्र० ४-१

३ (क) सिद्धत्थे—कल्पसूत्र० ५२
  (ख) नरिंदे—कल्पसूत्र ६२

४ कल्पसूत्र ६२

५ 'महावीर तीर्थकरनी जन्मभमि' लेख, जैन साहित्य सशोधक, खण्ड १, अक ४, पृ० २१९

६ 'जैन सूत्रोनी प्रस्तावना का अनुवाद' जैन साहित्य सशोधक, खण्ड १, अक ४, पृ० ७१

प्रतिष्ठित उमराव या सरदार माना है, जो आगम-सम्मत नहीं है क्योंकि आचारांग और कल्पसूत्र मे स्थान-स्थान पर 'सिद्धत्थे खत्तिए' शब्द का प्रयोग हुआ है, जिसके कारण उनको यह भ्रम हो गया है किन्तु 'क्षत्रिय' शब्द का अर्थ साधारण क्षत्रिय के अतिरिक्त 'राजा' भी होता है। अभिधान चिन्तामणि मे कहा है—कि क्षत्रिय, क्षत्र आदि शब्दो का प्रयोग राजा के लिए भी होता है।[७] प्रवचनसारोद्धार मे 'महसेणे य खत्तिए' शब्द आया है। वहा टीकाकार ने क्षत्रिय का अर्थ राजा किया है।[८]

'पूर्व मीमासा-सूत्र (द्वितीय भाग) की टीका मे शबरस्वामी लिखते है—'राजा तथा क्षत्रिय शब्द समानार्थी है। टीकाकार के समय मे भी आध्र के लोग 'क्षत्रिय' के लिए 'राजा' शब्द का प्रयोग करते थे।[९]

सिद्धार्थ साधारण क्षत्रिय नहीं किन्तु राजा था। उसके लिए नरेन्द्र शब्द का प्रयोग हुआ है। प्राचीन साहित्य मे नरेन्द्र शब्द का प्रयोग राजा के लिए ही होता था। यदि सिद्धार्थ साधारण क्षत्रिय होता तो क्या वैशाली का महान् प्रतापी चेटक जो काशी, कौशल के अठारह गणराजाओं का अध्यक्ष था, अपनी बहन त्रिशला का विवाह साधारण क्षत्रिय के साथ करता? इससे स्पष्ट है कि त्रिशला साधारण क्षत्रियाणी ही नहीं एक महारानी भी थी और उसका जन्मवश गौरवशाली था।

यह भी सत्य है कि राजा सिद्धार्थ चेटक की तरह बडे राजा नही थे तथापि वे एक प्रमुख राजा थे, इसमे दो मत नही है और विदेह देश के राज-वशो मे उनका काफी सम्मान एव प्रभाव था।

---

७ क्षत्र तु क्षत्रियो राजा, राजन्यो बाहुसभव।

—अभिधान चिन्तामणि काण्ड ३, श्लोक ५२७

८ (क) प्रवचनसारोद्धार सटीक पत्र ८४

(ख) चन्द्रप्रभस्य महासेन क्षत्रियो राजा।

—प्रवचन सारोद्धार, सटीक पत्र ८४

९ ट्राइब्स इन ऐशेंट इडिया, पृ० ३२२

नामकरण : एक विश्लेषण

भगवान महावीर का विश्व-विश्रुत नाम 'महावीर' है, वर्धमान नाम भी काफी प्रसिद्ध है। इसके अतिरिक्त आगम व प्राचीन ग्र थो मे उनके अनेक नामो की चर्चा आती है। कुछ नाम जाति व कुल से सम्बन्ध रखते है, कुछ उनके कर्तृत्व से व उदात्त गुणो से। देश जाति आदि के सूचक नामो से उनकी स्थानीय स्थितियो को जानकारी मिलती है तो गुणसूचक नामो से उनके जीवन के उदात्त गुण व गौरव की झाँकी स्पष्ट होती है। ऐतिहासिक प्रमाणो के सदर्भ मे यहा पर उनके नामकरण की चर्चा की जाती है।

नामकरण

वर्द्धमान–आवश्यकनिर्युक्ति, विशेपावश्यकभाष्य[1] मे भगवान् महावीर का जन्म होने पर देवो ने स्वर्ण, रत्न आदि सिद्धार्थ के घर पर लाकर रखे और जृ भक देवो ने मणि-रत्नादि की वृष्टि की ऐसा तो बताया गया पर उस कारण से उनका नाम वर्धमान रखा ऐसा नही बताया गया है।

आचार्य भद्रबाहु ने कल्पसूत्र मे वर्धमान नाम देने के सबन्ध मे लिखा है—"जिस रात्रि मे श्रमण भगवान् महावीर ज्ञातृकुल मे लाये गये, उस रात्रि से ही सम्पूर्ण ज्ञातृकुल चादी से, स्वर्ण से, धन-धान्य से, राज्य से, राष्ट्र से, सेना से, वाहन से, कोश से, कोष्ठागार से, नगर से, अन्त पुर से, जनपद से, यश और कीर्ति से वृद्धि प्राप्त करने लगा।[2]

ज्ञातृकुल के लोगो मे परस्पर प्रीति, आदर और सत्कार-सद्भाव बढने लगा। जिससे भगवान् महावीर के माता-पिता के अन्तर्मानस मे यह विचार उठा कि जबसे यह हमारा पुत्र कुक्षि मे गर्भ रूप से आया है, तब से हमारी हिरण्य से सुवर्ण से, धन से, धान्य से, राज्य से राष्ट्र से, सेना से, वाहनो से, धन-भण्डार से, पुर से, अन्त पुर से, जनपद से, यश कीर्ति से वृद्धि हो रही है, तथा धन, कनक, रत्न, मणि, मुक्ता, शख शिलाप्रवाल, माणिक आदि बढने लगे है परस्पर प्रीति और आदर-सत्कार भी बढने लगे है इसलिए

---

१ (क) आव० हारिभद्रीयावृत्ति गा० ६७-६८
 (ख) आव० मलयगिरिवृत्ति० गा० ६७-६८, पृ० २५७
 (ग) विशेपावश्यकभाष्य गा० १८४६-१८४७

२ कल्पसूत्र ८५

जब हमारा यह पुत्र जन्म लेगा, तब इसका गुणनिष्पन्न नाम वर्द्धमान रखेंगे। इसी सकल्प के अनुसार उन्होंने वर्धमान यह नाम रखा।[३] इस बात का समर्थन आचाराग[४] महावीरचरिय[५], चउप्पन्न महापुरिस चरिय[६], त्रिपष्टि शलाकापुरुष चरित्र[७] आदि से भी होता है। महावीर का सर्वप्रथम वर्द्धमान नामकरण हुआ।

भगवान महावीर का एक नाम वर्द्धमान था, इसका सूचन हमे अन्य प्राचीन आगमो मे भी मिलता है। सूत्रकृताग मे वर्धमान को ऋषियो मे श्रेष्ठ कहा है।[८]

पउमचरिय मे चौबीस तीर्थंकर के नामो की गणना की गई है। वहा भी वर्धमान नाम दिया है[९], पर यह नाम किसने प्रदान किया इसकी चर्चा नही है।

हरिवशपुराण मे कहा है—मेरु पर्वत पर अभिषेक कर पुन लाकर महावीर को माता के पास रख दिया, तब देवो ने वर्धमान कहकर उनकी स्तुति की।[१०]

उत्तरपुराण मे कहा है—श्रेष्ठ आभूषणो से सज्जित कर इन्द्र ने वीर और वर्धमान ये दो नाम रखे।[११]

---

३ कल्पसूत्र १०३

४ चूलिका २।१५।१२-१३

५ (क) महावीर चरिय, गुणचन्द्र, प्र० ४, पृ० ११४-१२४

(ख) महावीर चरिय० ७७०, पृ० ३४ नेमिचन्द्र

६ चउप्पन्न० पृ० २७१

७ त्रिपष्टि० १०।२।९८-९९

८ खत्तीण सेट्ठे जह दन्तवक्के, इसीण सेट्ठे तह वद्धमाणे।

—सूत्रकृताग १।६।१२

९ पासो य वद्धमाणो, जस्स इय वट्टए तित्थ।

—पउमचरिय २०।९, पृ० १८२

१० हरिवशपुराण २।४४, पृ० १५

११ अल तदिति त भक्त्या विभूष्योद्घविभूषणै।
वीर श्रौ वधमानश्चेत्यस्याख्याद्वितय व्यधात्॥

—उत्तरपुराण ७४।२७६

नामकरण : एक विश्लेषण

भगवान महावीर का विश्व-विश्रुत नाम 'महावीर' है, वर्धमान नाम भी काफी प्रसिद्ध है। इसके अतिरिक्त आगम व प्राचीन ग्र थो मे उनके अनेक नामो की चर्चा आती है। कुछ नाम जाति व कुल से सम्बन्ध रखते है, कुछ उनके कर्तृत्व से व उदात्त गुणो से। देश-जाति आदि के सूचक नामो से उनकी स्थानीय स्थितियो को जानकारी मिलती है तो गुणसूचक नामो से उनके जीवन के उदात्त गुण व गौरव की झाँकी स्पष्ट होती है। ऐतिहासिक प्रमाणो के सदर्भ मे यहा पर उनके नामकरण की चर्चा की जाती है।

नामकरण

वर्द्धमान–आवश्यकनिर्युक्ति, विशेषावश्यकभाष्य[1] मे भगवान् महावीर का जन्म होने पर देवो ने स्वर्ण, रत्न आदि सिद्धार्थ के घर पर लाकर रखे और जृ भक देवो ने मणि-रत्नादि की वृष्टि की ऐसा तो बताया गया पर उस कारण से उनका नाम वर्धमान रखा ऐसा नही बताया गया है।

आचार्य भद्रबाहु ने कल्पसूत्र मे वर्धमान नाम देने के सबन्ध मे लिखा है—"जिस रात्रि मे श्रमण भगवान् महावीर ज्ञातृकुल मे लाये गये, उस रात्रि से ही सम्पूर्ण ज्ञातृकुल चादी से, स्वर्ण से, धन-धान्य से, राज्य से, राष्ट्र से, सेना से, वाहन से, कोश से, कोष्ठागार से, नगर से, अन्त पुर से, जनपद से, यश और कीर्ति से वृद्धि प्राप्त करने लगा।[2]

ज्ञातृकुल के लोगो मे परस्पर प्रीति, आदर और सत्कार सद्भाव बढने लगा। जिससे भगवान् महावीर के माता-पिता के अन्तर्मानस मे यह विचार उठा कि जबसे यह हमारा पुत्र कुक्षि मे गर्भ रूप से आया है, तब से हमारी हिरण्य से सुवर्ण से, धन से, धान्य से, राज्य से राष्ट्र से, सेना से, वाहनो से, धन-भण्डार से, पुर से, अन्त पुर से, जनपद से, यश कीर्ति से वृद्धि हो रही है, तथा धन, कनक, रत्न, मणि, मुक्ता, शख शिलाप्रवाल, माणिक्य आदि बढने लगे है परस्पर प्रीति और आदर-सत्कार भी बढने लगे हे इसलिए

---

१ (क) आव० हारिभद्रीयावृत्ति गा० ६७-६८
(ख) आव० मलयगिरिवृत्ति० गा० ६७-६८, पृ० २५७
(ग) विशेषावश्यकभाष्य गा० १८४६-१८४७

२ कल्पसूत्र ८५

जब हमारा यह पुत्र जन्म लेगा, तब इसका गुणनिष्पन्न नाम वर्द्धमान रखेंगे। इसी संकल्प के अनुसार उन्होंने वर्धमान यह नाम रखा।[3] इस बात का समर्थन आचारांग[4] महावीरचरियं[5], चउप्पन्न महापुरिस चरियं[6], त्रिषष्टि शलाकापुरुष चरित्र[7] आदि से भी होता है। महावीर का सर्वप्रथम वर्द्धमान नामकरण हुआ।

भगवान महावीर का एक नाम वर्द्धमान था, इसका सूचन हमें अन्य प्राचीन आगमों में भी मिलता है। सूत्रकृतांग में वर्धमान को ऋषियों में श्रेष्ठ कहा है।[8]

पउमचरियं में चौबीस तीर्थंकर के नामों की गणना की गई है। वहाँ भी वर्धमान नाम दिया है[9], पर यह नाम किसने प्रदान किया इसकी चर्चा नहीं है।

हरिवंशपुराण में कहा है—मेरु पर्वत पर अभिषेक कर पुनः लाकर महावीर को माता के पास रख दिया, तब देवों ने वर्धमान कहकर उनकी स्तुति की।[10]

उत्तरपुराण में कहा है—श्रेष्ठ आभूषणों से सज्जित कर इन्द्र ने वीर और वर्धमान ये दो नाम रखे।[11]

---

३ कल्पसूत्र १०३

४ चूलिका २।१५।१२-१३

५ (क) महावीर चरियं, गुणचन्द्र, प्र० ४, पृ० ११४ १२४
  (ख) महावीर चरियं० ७७०, पृ० ३४ नेमिचन्द्र

६ चउप्पन्न० पृ० २७१

७ त्रिषष्टि० १०।२।९८-९९

८ खत्तीण सेट्ठे जह दन्तवक्के, इसीण सेट्ठे तह वद्धमाणे।

—सूत्रकृतांग १।६।१२

९ पासो य वद्धमाणो, जस्स इय वट्टए तित्थं।

—पउमचरियं २०।६, पृ० १८२

१० हरिवंशपुराण २।४४, पृ० १५

११ अलं तदिति तं भक्त्या विभूष्योद्घविभूषणैः।
  वीरं श्री वर्धमानश्चेत्यस्याख्याद्वितयं व्यधात्॥

—उत्तरपुराण ७४।२७६

रविषेण ने पद्मचरित[१२] मे भगवान महावीर के कारण ऋद्धि और सपत्ति की वृद्धि हुई, यह वर्णन किया है, पर उस कारण से उनका नाम वर्धमान हुआ यह उल्लेख नही है।

उक्त सदर्भो से स्पष्ट होता है कि महावीर का एक नाम 'वर्धमान' था, इसमे किसी भी प्रकार का सन्देह नही है।

महावीर–वर्धमान का दूसरा नाम महावीर किस प्रकार हुआ, इस सम्बन्ध मे आचाराग[१३] और कल्पसूत्र[१४] मे बताया है कि किसी भी प्रकार का भय उत्पन्न होने पर भी अचल रहनेवाले, अपने सकल्प से तनिक मात्र भी विचलित नही होने वाले, निष्कप, किसी भी प्रकार के परीषह और उपसर्ग आने पर चलित नही होने वाले। उन परीषहो और उपसर्गो को शान्त भाव से सहन करने मे समर्थ, भिक्षु प्रतिमाओ का पालन करने वाले, धीमान्, शोक और हर्ष मे समभावी, सद्गुणो के आगार, अतुलबली होने के कारण देवताओ ने उनका नाम 'महावीर' रखा।

आवश्यक नियुक्ति मे बताया है कि भगवान् महावीर ने अपने साधनाकाल मे अनेक परीषह और कष्ट सहे, जिससे वे महावीर हुए।[१५]

इसी बात का समर्थन महावीरचरिय और त्रिपष्टि शलाकापुरुष चरित्र आदि मे भी किया गया है।[१६]

---

१२ पद्मचरित २।७९-८३

१३ भीम भयभेरव उराल अचेलय परिसह सहइ त्ति कट्टु देवेहि से णाम कय 'समणे भगव महावीरे।'

—आयारो० आयार० २।१५-१६

१४ अयले भयभेरवाण परीसहोवसग्गाण खतिखये पडिमाण पालए धीय अरतिरति सहे दविए वीरियसपन्ने देवेहि से णाम कय समणे भगव महावीरे।

—कल्पसूत्र० १०४

१५ (क) घोर परीसहचमु अधियासित्ता महावीरो।

—आव० नियुक्ति० ४२०

(ख) विशेपावश्यक भाष्य १९७२ (ग) आ० हरिभद्रीय० ५३७

१६ (क) महावीरचरिय ४।१२५

(ख) महोपसर्गैरप्येष न कम्प्य इति वज्रिणा।
महावीर इत्यपर नाम चक्रे जगत्पते ॥

—त्रिपष्टि० १०।२।१००

तत्त्वार्थ सूत्र की प्रारभिक कारिका मे 'जगति महावीर इति त्रिदशैर्गुणत कृताभिख्य' यह उल्लेख आया है।

आचार्य हरिभद्र ने दशवैकालिक वृत्ति मे लिखा है—'जो शूर-विक्रान्त होता है वह वीर कहलाता है। कपायादि महान् अन्तरग शत्रुओ को जीतने से भगवान् महाविक्रान्त—महावीर कहलाये।[१८]

जिनदासगणी महत्तर ने लिखा है—यश और गुणो मे महान वीर होने से भगवान् का नाम महावीर हुआ।[१९]

भगवान् वर्धमान का महावीर नाम आगमो मे अनेक स्थलो पर व्यवहृत हुआ है।[२०] जिससे स्पष्ट है कि वर्धमान नाम होने पर भी अपनी वीरता-धीरता के कारण 'महावीर' इस नाम से वे अधिक प्रसिद्ध हुए।

सन्मति—उत्तरपुराण आदि दिगम्बर ग्रन्थो मे महावीर का एक नाम 'सन्मति' भी आया है। सन्मति यह नाम क्यो दिया गया, इसके कारण पर प्रकाश डालते हुए लिखा है—सजय और विजय नामक दो चारण मुनियो के मन मे कोई तत्व विषयक शका हुई, वे भगवान के सन्निकट आये, जिससे उनकी शका का निराकरण हो गया, तब उन्होने भगवान् का 'सन्मति' नाम रखा और यह भविष्य कथन किया कि यह 'तीर्थंकर' होगे।[२१]

काश्यप—भगवान् महावीर के लिए 'कासव' शब्द का प्रयोग हुआ है।[२२] भगवान् के पिता सिद्धार्थ क्षत्रिय काश्यप गोत्री थे। इसलिए भगवान् महावीर

---

१७ (क) पउमचरिय २।२६

(ख) पद्मचरित २।७६, रविषेणाचार्य

१८ महावीरेण– शूर वीर विक्रान्ताविति कषायादिशत्रुजयान्महाविक्रान्तो महावीर।

—दशवै० हरिभद्रीय वृत्ति पत्र० १३७

१९ महतो यसोगुणेहि वीरोत्ति महावीरो।

—दशवै० जिनदास चूर्णि पृ० १३२

२० (क) आचाराग ६।१।१३, ६।३।८, ६।४।८।१४, ६।२।१, ६।१३।१३

(ख) नायपुत्ते महावीरे।

—सूत्रकृताग १।१।१।२७

२१ उत्तरपुराण ७४।२८२-२८३, पृ० ४६२

२२ दशवैकालिक ४।१

भी काश्यप गोत्री कहलाये।[23] सूत्रकृताङ्ग,[24] भगवती,[25] उत्तराध्ययन,[26] आचाराग,[27] कल्पसूत्र[28] आदि मे महावीर का नाम काश्यप मिलता है। धनञ्जय ने भगवान् महावीर का नाम 'अन्त्यकाश्यप' लिखा है।[29] प्रथम तीर्थंकर भगवान् ऋषभदेव आदिकाश्यप थे और अन्तिम तीर्थंकर भगवान् महावीर 'अन्त्यकाश्यप'। 'अन्त्यकाश्यप' की व्याख्या करते हुए कहा गया है कि इक्षुरस का पान करने के कारण भगवान् ऋषभ काश्यप कहलाये और उनके गोत्र मे उत्पन्न होने से महावीर भी काश्यप कहलाये।[30] काश्यप इक्ष्वाकुवश का एक गोत्र था। भगवान् पार्श्व के पिता विश्वसेन को भी इक्ष्वाकुवशी और काश्यप गोत्री कहा है। भगवान् महावीर इक्ष्वाकुवशी

---

२३ (क) समणस्स ण भगवओ महावीरस्स पिआ कासवगोत्ते ण समणे भगव महावीरे कासवगोत्ते।

— आचाराग २।१५

(ख) काश्यप गोत्त कुल यस्य सोऽय काशपगोत्तो तेण काशप गोत्ते ण।

—दशवैकालिक जिन० चूर्णि १३२

(ग) काश्यपेने ति काश्यपसगोत्रे ण।

—दशवै० हारि० वृ० प० १३७

२४ सूत्र० १।६।७, १।१५।२१, १।३।२।१४, १।२।१।११, ५, ३२

२५ भगवती १५।८७-८८

२६ उत्तराध्ययन २।१, ४६, २९।१

२७ आचाराग २।२४।९९३, १००३

२८ कल्पसूत्र १०९

२९ सन्मतिर्महतीर्वीरो महावीरोऽन्त्यकाश्यप।
नाथान्वयो वधमानो यत्तीर्थमिह साम्प्रतम्॥

—धनञ्जय नाममाला ११५। पृ० ५८

३० कास— उच्छू तस्य विकारो-कास्य रस सो जस्य पाण सो कासवो उसभ स्वामी तस्स जो गोत्तजाता ते कासवा ते कासवा तेण वद्धमाण स्वामी कासवो तेण कासवेण।

—दशवैकालिक अगस्त्यसिंह चूर्णि

३१ तत्पतिर्विश्वसेनाख्योऽप्यभूद विश्वगुणैकभ।
काश्यपाख्यसुगोत्रस्थेक्ष्वाकुवशरिवाशुमान्॥

थे। भगवान् सुव्रत और अरिष्टनेमि गौतम गोत्री हरिवशी थे। अन्य बाईस तीर्थंकर काश्यप गोत्री और इक्ष्वाकुवशी थे।[32]

ज्ञात-पुत्र - कल्पसूत्र मे नाय, नायपुत्त, नायकुलचन्द, विदेह, विदेहदिन्न, विदेहजच्च और विदेहसूमाल ये विशेषण भगवान् महावीर के लिए प्रयुक्त हुए है।[33] पहले के तीन विशेषण पितृपक्ष मे सम्बन्धित है और आगे के चार विशेषण मातृ पक्ष से सम्बन्धित है। आचाराग[34], सूत्रकृताङ्ग[35], भगवती[36], उत्तराध्ययन[37] और दशवैकालिक[38] आदि आगमो मे प्रस्तुत नाम का बार-बार उल्लेख है।

---

३२ (क) विशेषावश्यक भाष्य १३८७

(ख) गोयमगुत्ता हरिवशसभवा नेमिसुव्वया दोवि।
कासवगोत्ता इक्खागु-वसजा सेस बावीस ॥

—सप्ततिस्थान १०५

३३ समणे भगव महावीरे नाए नायपुत्ते नायकुलचदे विदेहे, विदेहदिन्ने विदेहजच्चे विदेहसूमाले।

—कल्पसूत्र ११०

३४ (क) णाए, णायपुत्ते णायकुलणिव्वते।

—आचाराग श्रु० २, अ० १५, सू० १००३

(ख) णायपुत्तेण साहिए।

— आचा० श्रु० १, अ० ८ उ० ८, सू० ४४८

३५ (क) चिच्चा वित्त च नायओ आरभ च सुसवुड चरे।

—सूत्र० उ० १, गा० २२

(ख) कह च नाण कह दसण से।
सील कह नायसुयस्स आसि ॥

— सूत्र० १।६।२

(ग) न नायपुत्ता परमत्थि नाणी।

—सूत्र० १।६।२४

(घ) तवोवमे समणे नायपुत्ते इच्चेव मे होइ मई वियक्को।

—सू० २।६।१९

३६ भगवती १५।७९

३७ अरहा नायपुत्ते भगव।

उत्तरा० ६।१७

३८ एय च दास दट्ठूण, नायपुत्तेण भासिय।

—दशवै० अ० ५, उ० २, गा० ४९ तथा ६।२५ एव ६।२१ मे

विनयपिटक,[३९] मज्झिमनिकाय,[४०] दीघनिकाय[४१] सुत्तनिपात[४२] आदि बौद्ध-पिटको मे भगवान महावीर का उल्लेख 'निग्गण्ठ नातपुत्त' के नाम मे किया है। 'नाय और नात' का सस्कृत रूप 'ज्ञात' होता है। इसलिए भगवान् को ज्ञातपुत्र माना जाता है।

'ज्ञात' नाम या कुल ?

ज्ञात शब्द के साथ एक ऐतिहासिक प्रश्न जुडा है कि ज्ञात क्या है, यह व्यक्तिविशेप का नाम है या कुल का नाम है ? प्राचीनकाल मे नामकरण की पद्धति के अनुसार माता-पिता अथवा कुल के आगे पुत्र या सुत शब्द का व्यवहार होता था। जैस जैन साहित्य मे 'थावच्चापुत्त (काकन्दीयपुत्त) और बौद्ध साहित्य मे 'सारीपुत्त' आदि नाम मातृपरक है। सिद्धत्थपुत्त यह नाम पितृपरक है। 'नाय' शब्द का सम्बन्ध माता-पिता से नही है। यह नाम कुल-वाचक है। नामकरण की पद्धति के सम्बन्ध मे अनुयोगद्वार मे विस्तार से निरूपण किया गया है। वहाँ पर कुल नाम को स्थापना नाम का एक प्रकार बताया है। उसके विवेचन मे कहा गया है कि उग्ग, भोग, राइण्ण (राजन्य) खत्तिय, इक्खग्ग, णात और कोरव्व—ये कुल नाम है।[४३] भगवान् महावीर

---

३९ विनयपिटक महावग्ग पृ० २४२

४० मज्झिमनिकाय हिन्दी उपालि-सुत्तन्त पृ० २२२
- चूल-दुक्खक्खन्ध-सुत्तन्त पृ० ५९
- चूल सारोपम सुत्तन्त पृ० १२४
- महासच्चक सुत्तन्त पृ० १४७
- अभयराज कुमार सुत्तन्त पृ० २३४
- देवदह-सुत्तन्त पृ० ४४१

४१ दीघनिकाय सामञ्जफल सुत्त पृ० १८।२१
- ,, ,, सगीति परियाय सुत्त पृ० २८२
- ,, ,, महापरिनिब्बाण सुत्त पृ० १४५
- ,, ,, पासादिक सुत्त पृ० २५२

४२ सुत्तनिपात-सुभिय सुत्त पृ० १०८

४३ से किं त कुल नामे ? उग्गे, भोगे, राइण्णे, खत्तिए, इक्खागे, णाते, कोरव्वे।
— अनुयोगद्वार सूत्र १३०

का कुल 'नाय' या 'नात' था, एतदर्थ वे ज्ञातपुत्र या ज्ञातसुत कहलाये थे। श्री लालशेखर का भी यही अभिमत है कि 'नात' और 'नाय' यह कुल का नाम है। पालि प्रोपर नेम्स[४४] व सयुक्तनिकाय की टीका के आधार से लिखा है 'नात' यह भगवान् महावीर के पिता का नाम था, साथ ही यह भी बताया है कि यह कुल ब्राह्मण था या क्षत्रिय इस सम्बन्ध मे पालि मे किसी भी प्रकार की जानकारी नही है। किन्तु इसका स्पष्टीकरण आचाराग के द्वितीय श्रुतस्कध,[४५] व कल्पसूत्र[४६] मे गर्भापहरण प्रसग मे मिलता है। 'नाय यह कुल है किन्तु जैन और वैदिक साहित्य मे जहा कुलो की चर्चा की गई है वहा 'ज्ञात' कुल की चर्चा नही है। आवश्यक नियुक्ति मे भगवान ऋषभदेव ने जिन कुलो की सस्थापना की वे उग्र, भोग, राजन्य और क्षत्रिय कुल है। राज्य की सुव्यवस्था हेतु आरक्षक दल की सस्थापना की, जिसके अधिकारी उग्र कहलाये। मन्त्रि-मण्डल बनाया जिसके अधिकारी 'भोग' नाम से प्रसिद्ध हुए। सम्राट् के समीपस्थ जन जो परामर्श प्रदाता थे, वे राजन्य के नाम से विख्यात हुए और अन्य राजकर्मचारी 'क्षत्रिय' के नाम से पहचाने गये।[४७]

आवश्यक नियुक्ति की उपर्युक्त सूची मे चार कुलो का ही निर्देश है किन्तु ज्ञातृ कुल का उल्लेख नही हुआ है। जिनभद्रगणी क्षमाश्रमण ने विशेषावश्यक भाष्य मे भगवान् महावीर के चरित्र वर्णन के प्रसग पर जो गाथा दी है उसमे उग्र, भोग, क्षत्रिय, इक्ष्वाकु, कोरव, हरिवश, और ज्ञात का उल्लेख किया है, तीर्थंकर आदि महापुरुष इन्ही कुलो मे उत्पन्न होते है।[४८]

---

४४ पालि प्रोपर नेम्स भाग—२, पृ० ६४

४५ नायाण खत्तियाण सिद्धत्थस्स खत्तियस्स कासव गुत्तस्स तिसलाए खत्तियाणीए वासिट्ठगुत्ताए। - आचाराग द्वि० सूत्र० १७६

४६ कल्पसूत्र सूत्र १-२ देवेन्द्रमुनि सम्पादित

४७ (क) उग्गा भोगा राइण्ण खत्तिया सगहो भवे चउधा।
आरक्खि गुरुवयसा सेसा जे खत्तिया ते उ॥
—आव० नियुक्ति १९३

(ख) आव० मल० मे १९८, (ग) हरिभद्र मे २०२०, विशेपा० १६०४, और भी आव० २०५, विशे० १६४३

४८ उग्गकुलभोगखत्तियकुलेसु इक्खागणात कोरव्वे हरिवसे य विसाले आयत्ति तहिं पुरिससीहा।
—विशेपा० भाष्य० १८२३

इस गाथा मे उग्र, भोग, क्षत्रिय के अतिरिक्त इक्ष्वाकु ज्ञात, कौरव और हरिवश का उल्लेख किया है पर निर्युक्ति की गाथा मे जो राजन्य पृथक् रूप से आया था किन्तु भाष्य मे वह पृथक् नही आया है। भगवती, स्थानाग और प्रज्ञापना[४९] मे क्षत्रिय को भी पृथक् स्थान नही मिला है। पउम चरिय मे इक्ष्वाकु और हरिवश के साथ सोम आदि महावशो की भी गणना की गई है।[५०] साराश यह है कि निर्युक्ति मे ज्ञातृवश का उल्लेख नही हुआ तो भाष्य की सूची मे राजन्य को छोडकर ज्ञातृ को स्थान मिला है तो भगवती आदि मे क्षत्रिय को छोडकर ज्ञातृवश को स्थान प्राप्त हुआ है। आगम और विशेषावश्यक भाष्य आदि मे स्पष्ट रूप से इक्ष्वाकु वश और ज्ञातृवश को पृथक् पृथक् माना है।

ज्ञातृधर्मकथा की टीका मे आचार्य अभयदेव[५१] ने और चउप्पन्न महापुरिसचरिय[५२] मे आचार्य शीलाक ने ज्ञातृवश को इक्ष्वाकुवश का ही रूप माना है।

जिनदासगणी महत्तर ने आवश्यक चूर्णि मे[५३] स्पष्ट शब्दो मे लिखा है कि भगवान् ऋषभदेव के जो स्वजन थे, जो जाति भाई थे वे ज्ञातृ कहलाये। आवश्यक निर्युक्ति मे जो चार कुल बताए है उनमे ज्ञातृवश को हम क्षत्रिय कह सकते है इसलिए जहाँ पर ज्ञातृ शब्द नही आया है उसे क्षत्रिय के अन्तर्गत गिन लिया है।

---

४९ (क) भगवती २०।८

(ख) स्थानाङ्ग ४९७

(ग) प्रज्ञापना १०४

५० पउमचरिय के मत से चार वश है, इक्खाग, सोम, विज्जाहर और हरिवश। (५।१-२)

५१ ज्ञात· इक्ष्वाकुवशविशेषभूता।

—ज्ञातृधर्मकथा टीका पृ० १५३

५२ इक्खाग वसपभव।

—चउप्पन्न० पृ० २७१

५३ (क) णाता नाम जे उसभसामिस्स सयणिज्जगा ते णातवसा।

—आवश्यकचूर्णि० भाग० १, पृ० २४५

(ख) तत्र ज्ञाता श्री ऋषभस्वजनवशजा इक्ष्वाकु-वश्या एव 'ज्ञाता इक्ष्वाकुवशा विशेषा।

(ग) कल्पसूत्र सन्देहविषौषधि वृत्ति पत्र ३०-३१, जिनप्रभसूरि

कल्पसूत्र मे तीर्थंकर के योग्य जो कुल गिनाये है उनमें उग्र, भोग, राजन्य, इक्ष्वाकु, क्षत्रिय, और हरिवश को गिना है।[५४] इसमें जो क्षत्रिय-कुल का उल्लेख है वही ज्ञातृ कुल का वाचक मानना चाहिए।

बृहत्कल्प मे उग्र, भोग, राजन्य, क्षत्रिय, ज्ञात, कोरव्व और इक्ष्वाकु-वश इन छह को कुलार्य माना है।[५५] इस गाथा मे क्षत्रिय के दो भेद ज्ञात और कोरव गिनने से ही छह कुलार्य होते है। प्रस्तुत गाथा की वृत्ति मे मलय-गिरि ने क्षत्रिय का तो निर्युक्ति मे पृथक् स्थान है इसलिए ज्ञात और कोरव को एक माना है।[५६] पण्डित दलसुख मालवणिया का अभिमत है कि क्षत्रिय शब्द जो निर्युक्ति मे है, उसी के ज्ञात और कोरव ये दो भेद करना अधिक सगत प्रतीत होता है।

क्षत्रियकुण्ड मे ज्ञातृ क्षत्रिय रहते थे। इस कारण बौद्ध ग्रन्थो मे ज्ञातिक अथवा नातिक नाम से भी इसका उल्लेख है। ज्ञातियो की बस्ती होने से इसको ज्ञातृग्राम भी कहा गया है।[५७] 'ज्ञातृक' की अवस्थिति वज्जी-देश के अन्तर्गत वैशाली और कोटिग्राम के मध्य बताई गई है। उनके अभि-मतानुसार कुडपुर, क्षत्रियकुण्ड अथवा 'ज्ञातृक' वज्जि विदेह देश के अन्तर्गत था। महापरिनिव्वान सुत्त के चीनी सस्करण मे इस नातिक की स्थिति और भी अधिक स्पष्ट कर दी है। वहाँ पर इसे वैशाली से सात ली अर्थात् १३/५ मील दूर बताया गया है।[५८]

---

५४ कल्पसूत्र १७

५५ उग्गा भोगा राइण्णा खत्तिया तह णात कोरव्वा।
इक्खागा वि य छट्ठा कुलारिया होंति णायव्वा ॥

—बृहत्कल्प० ३२६५

५६ ज्ञाता उदारक्षत्रिया कोरवा कुरुवशोद्भवा ऐते द्वयेऽप्येक एव भेद ।

—बृहत्कल्प० टीका ३२६५

५७ ञातिकेति द्विन्न ञातकाना गामे ।

—सयुक्त निकाय की बुद्धघोष की सारत्थप्पकासिनी टीका

५८ (क) Sino Indian studies vol I Part 4 Page 195, July 1945

(ख) Comparative studies "The Parinivvan sutta and its chinese version", by Faub

(ग) ली, दूरी नापने का एक पैमाना है। कनिंघम के अनुसार १ ली १.५ मील के बराबर होती है।

—एन्सियेन्ट जोग्राफी आफ इण्डिया

इस गाथा मे उग्र, भोग, क्षत्रिय के अतिरिक्त इक्ष्वाकु ज्ञात, कौरव और हरिवश का उल्लेख किया है पर निर्युक्ति की गाथा मे जो राजन्य पृथक रूप से आया था किन्तु भाष्य मे वह पृथक् नही आया है। भगवती, स्थानाग और प्रज्ञापना[४९] मे क्षत्रिय को भी पृथक् स्थान नही मिला है। पउम चरिय मे इक्ष्वाकु और हरिवश के साथ सोम आदि महावशो की भी गणना की गई है।[५०] साराश यह है कि निर्युक्ति मे ज्ञातृवश का उल्लेख नही हुआ तो भाष्य की सूची मे राजन्य को छोडकर ज्ञातृ को स्थान मिला है तो भगवती आदि मे क्षत्रिय को छोडकर ज्ञातृवश को स्थान प्राप्त हुआ है। आगम और विशेषावश्यक भाष्य आदि मे स्पष्ट रूप से इक्ष्वाकु वश और ज्ञातृवश को पृथक् पृथक् माना है।

ज्ञातृधर्मकथा की टीका मे आचार्य अभयदेव[५१] ने और चउप्पन्न महापुरिसचरिय[५२] मे आचार्य शीलाक ने ज्ञातृवश को इक्ष्वाकुवश का ही रूप माना है।

जिनदासगणी महत्तर ने आवश्यक चूर्णि मे[५३] स्पष्ट शब्दो मे लिखा है कि भगवान् ऋषभदेव के जो स्वजन थे, जो जाति भाई थे वे ज्ञातृ कहलाये। आवश्यक निर्युक्ति मे जो चार कुल बताए है उनमे ज्ञातृवश को हम क्षत्रिय कह सकते है इसलिए जहाँ पर ज्ञातृ शब्द नही आया है उसे क्षत्रिय के अन्त र्गत गिन लिया है।

४९ (क) भगवती २०।८

(ख) स्थानाङ्ग ४९७

(ग) प्रज्ञापना १०४

५० पउमचरिय के मत से चार वश है, इक्खाग, सोम, विज्जाहर और हरिवश। (५।१-२)

५१ ज्ञात· इक्ष्वाकुवशविशेषभूता।

—ज्ञातृधर्मकथा टीका पृ० १५३

५२ इक्खाग वसपभव।

—चउप्पन्न० पृ० २७१

५३ (क) णाता नाम जे उसभसामिस्स सयणिज्जगा ते णातवसा।

—आवश्यकचूर्णि० भाग० १, पृ० २४५

(ख) तत्र ज्ञाता श्री ऋषभस्वजनवशजा इक्ष्वाकु-वश्या एव 'ज्ञाता इक्ष्वाकुवशा विशेषा।

(ग) कल्पसूत्र सन्देहविषौषधि वृत्ति पत्र ३०-३१, जिनप्रभसूरि

कल्पसूत्र मे तीर्थंकर के योग्य जो कल गिनाये है उनमें उग्र, भोग, राजन्य, इक्ष्वाकु, क्षत्रिय, और हरिवश को गिना है।[५४] इनमें जो क्षत्रिय-कुल का उल्लेख है वही ज्ञातृ कुल का वाचक मानना चाहिए।

बृहत्कल्प मे उग्र, भोग, राजन्य, क्षत्रिय, ज्ञात, कौरव्व और इक्ष्वाकु-वश इन छह को कुलार्य माना है।[५५] इस गाथा मे क्षत्रिय के दो भेद ज्ञात और कोरव गिनने से ही छह कुलार्य होते है। प्रस्तुत गाथा की वृत्ति मे मलय-गिरि ने क्षत्रिय का तो निर्युक्ति मे पृथक् स्थान है इसलिए ज्ञात और कोरव को एक माना है।[५६] पण्डित दलसुख मालवणिया का अभिमत है कि क्षत्रिय शब्द जो निर्युक्ति मे है, उसी के ज्ञात और कोरव ये दो भेद करना अधिक सगत प्रतीत होता है।

क्षत्रियकुण्ड मे ज्ञातृ क्षत्रिय रहते थे। इस कारण बौद्ध ग्रन्थो मे ज्ञातिक अथवा नातिक नाम से भी इसका उल्लेख है। ज्ञातियो की वस्ती होने से इसको ज्ञातृग्राम भी कहा गया है।[५७] 'ज्ञातृक' की अवस्थिति वज्जी-देश के अन्तर्गत वैशाली और कोटिग्राम के मध्य बताई गई है। उनके अभि-मतानुसार कुण्डपुर, क्षत्रियकुण्ड अथवा 'ज्ञातृक' वज्जि विदेह देश के अन्तर्गत था। महापरिनिव्वान सुत्त के चीनी सस्करण मे इस नातिक की स्थिति और भी अधिक स्पष्ट कर दी है। वहाँ पर इसे वैशाली से सात ली अर्थात् १$\frac{3}{5}$ मील दूर बताया गया है।[५८]

---

५४ कल्पसूत्र १७

५५ उग्गा भोगा राइण्णा खत्तिया तह णात कोरव्वा।
इक्खागा वि य छट्ठा कुलारिया होंति णायव्वा॥

—बृहत्कल्प० ३२६५

५६ ज्ञाता उदारक्षत्रिया कोरवा कुरुवशोद्भवा एते द्वयेऽप्येक एव भेद।

—बृहत्कल्प० टीका ३२६५

५७ ञातिकेति द्विन्न ञातकाना गामे।

—सयुक्त निकाय की बुद्धघोष की सारत्थप्पकासिनी टीका

५८ (क) Sino Indian studies vol I Part 4 Page 195, July 1945

(ख) Comparative studies "The Parinirvan sutta and its chinese version", by Faub

(ग) ली, दूरी नापने का एक पैमाना है। कनिघम के अनुसार १ ली ११५ मील के बराबर होती है।

—एन्सियेन्ट जोग्राफी आफ इण्डिया

आवश्यक नियुक्ति,[५९] विशेपावश्यक भाष्य, वसुदेव हिण्डी, त्रिपष्टि शलाका पुरुप चरित्र आदि मे स्पष्ट है कि भगवान् ऋषभ जब एक वर्ष से कुछ कम थे तब वे पिता की गोद मे बैठकर क्रीडा कर रहे थे, उस समय शक्रेन्द्र हाथ मे इक्षु लेकर आया, ऋपभ ने उसे लेने के लिए हाथ आगे बढाया। बालक का इक्षु के प्रति आकर्पण देखकर उस वश का नाम इक्ष्वाकु-वश रखा। इस वश की स्थापना इन्द्र ने की थी। पउमचरिय आदि मे ऋपभदेव को इक्ष्वाकुकुल के उत्तम नरेन्द्र कहे है परन्तु इक्ष्वाकुकुल की उत्पत्ति ऋपभदेव से न मानकर भरतपुत्र आदित्ययश से मानी है।[६०]

पउमचरिय के अभिमत से भी 'इक्ष्वाकुवश का नाम 'इक्षु' के आधार से हुआ है। "इक्खूण य इक्खागो"[६१] लिखा है पर वह प्रसग उन्होने नही बताया है।

दिगम्बराचार्य यतिवृपभ ने तिलोयपण्णत्ति[६२] ग्रन्थ मे लिखा है कि धर्म, अर और कुन्थु ये तीन तीर्थंकर 'कुरुवश' मे हुए। महावीर 'नाहवश' और पार्श्व 'उग्रवश' मे, मुनिसुव्रत और नेमि 'यादववश' मे और शेष तीर्थंकर 'इक्ष्वाकुकुल' मे हुए। इससे परिज्ञात होता है कि तिलोयपण्णत्ति के अभिमतानुसार महावीर का इक्ष्वाकु वश नही था, साथ ही यह भी ज्ञात होता है कि णाह और इक्खागु ये पृथक्-पृथक् वश थे।

आचार्य उमास्वाति ने तत्त्वार्थसूत्र की प्रारम्भिक कारिका मे यह

---

५९ (क) सक्को वसट्ठवणे इक्खु अगू तेण होन्ति इक्खागा।

—आव० निर्युक्ति० १८१

(ख) विशेपावश्यक भाष्य १५९१

(ग) वसुदेवहिण्डी पृ० १६१

(घ) त्रिपष्टि० १।२।६५४-६५९

(च) आवश्यक चूर्णि पृ० १५२

(छ) विशेप देखिए -ऋपभदेव एक परिशीलन पृ० ६८-६९

६० एसो ते परिकहिओ आइच्चजसाइसभवो वसो।
एत्तो सुणाहिनरवर ! उप्पत्ती सोमवसस्स ॥

—पउमचरिय ५-९

६१ पउमचरिय ३।८८

६२ तिलोयपण्णत्ति ४।५५०

भाव प्रदर्शित किया है कि भगवान् महावीर इक्ष्वाकुवश मे हुए। उन्होने ज्ञात और इक्ष्वाकु को अलग-अलग नही माना है।[६३]

भगवान् के पिता सिद्धार्थ को 'ज्ञातकुल-निर्वत्त' कहा है। इससे स्पष्ट है कि भगवान् का कुल ज्ञात था। अगस्त्यसिंह स्थविर[६४] और जिनदास महत्तर[६५] के अनुसार 'ज्ञात' क्षत्रियो का एक कुल या जाति है। 'ज्ञात' शब्द से वे ज्ञातकुल-उत्पन्न सिद्धार्थ का ग्रहण करते है और ज्ञातपुत्र से भगवान् का। हरिभद्रसूरि ने 'ज्ञात' का अर्थ उदार-क्षत्रिय सिद्धार्थ किया है।[६६] प्रोफेसर वसन्तकुमार चट्टोपाध्याय के अनुसार लिच्छवियो की एक शाखा या वश का नाम 'नाय' (नात) था। 'नाय' शब्द का अर्थ सभवत ज्ञाति (राजा के ज्ञातिजन) है।[६७]

जैनागमो मे एक आगम का नाम 'नायधम्म कहा' है। यहा नाय शब्द भगवान् के नाम का प्रतीक है ऐसा कितने ही विद्वानो का अभिमत है। 'नायधम्म कहा' को दिगम्बर साहित्य मे 'नाथधम्म कहा'[६८] व ज्ञातृधर्म कथा' लिखा है।[६९] धनञ्जय नाममाला मे भी महावीर का वश नाथ माना है और उन्हे 'नाथान्वय' कहा है।[७०] उत्तरपुराण मे भी भगवान् का वश

---

६३ य शुभकर्मनिवनभावितभावो भवेष्वनेकेषु।
जज्ञे ज्ञातेक्ष्वाकुषु सिद्धार्थनरेन्द्रकुलदीप ॥

—तत्त्वार्थप्रारभिक कारिका

६४ णायकुलप्पभूयसिद्धत्थखत्तियसुतेण।

—दशवै० अगस्त्यसिंहस्थविर

६५ णाया नाम खत्तियाण जातिविसेसो।
तम्मि सभूओ सिद्धत्थो, तस्स पुत्तो णायपुत्तो॥

—दशवै० जिनदास चूर्णि पृ० २२१

६६ ज्ञात उदारक्षत्रिय सिद्धार्थ तत्पुत्रेण।

—दशवै० हारिभद्रीया वृत्ति १६६

६७ जैन भारती वर्ष २, अक १४-१५, पृ० २७६

६८ (क) णाह धम्मकहा णाम अग तित्थयराण सरूव वण्णेदि।

—जयधवला भाग० १। पृ० १२५

(ख) गोम्मटसार

६९ तत्त्वार्थराजवार्तिक—अकलकदेव

७० धनञ्जय नाममाला ११५

'नाथ' लिखा है।[७१] सभवत 'नाय शब्द का ही नाथ और 'नात' अपभ्रंश हो गया है। 'नाथ' शब्द का आधार श्वेताम्बर आगमो मे नही मिलता। ज्ञातृ' नाथ का रूपान्तर नही हो सकता।[७२]

यह स्मरण रखना चाहिए कि नायाधम्मकहा' मे जो 'नाया' शब्द है उसका सम्बन्ध भगवान् महावीर के वश के साथ नही है। समवायाङ्ग[७३] व नन्दी[७४] मे आये हुए वर्णन के अनुसार नायाधम्मकहा' मे ज्ञातो-उदाहरण भूत मेघकुमार आदि व्यक्तियो के नगर, उद्यान, चैत्य, वनखण्ड, राजा, माता-पिता, समवसरण, धर्माचार्य आदि का वर्णन है। मलयगिरि और अभयदेव ने भी स्पष्ट लिखा है 'ज्ञाताधर्मकथासु ज्ञाताना उदाहरणभूताना नगरादीनि व्याख्यायन्ते"। यहा पर ज्ञात का अर्थ उदाहरण है। स्थानाङ्ग मे भी उदाहरण के अर्थ मे ही 'नात' शब्द का प्रयोग हुआ है। दशवैकालिक नियुक्ति मे 'नाय' और उदाहरण को पर्यायवाची माना है।[७५] तत्त्वार्थ भाष्य मे भी उदाहरणो के द्वारा जिसमे धर्म का कथन किया हो वह ज्ञात माना है।[७६]

नायाधम्मकहा मे दो श्रुतस्कध है। प्रथम श्रुतस्कध मे उन्नीस नाय-ज्ञात है। प्रत्येक अध्ययन के साथ ज्ञात शब्द प्रयुक्त होता है।[७७] द्वितीय श्रुत स्कध मे धर्मकथाओ के दस वर्ग है। दोनो श्रुतस्कधो का सयुक्त नाम नाया-धम्मकहा है, अत इसका सम्बन्ध भगवान् के वश के साथ नही है।

अब प्रश्न यह है कि भगवान महावीर के 'ज्ञातृकुल' का सम्बन्ध किसके साथ है? उत्तर स्पष्ट है कि उस समय वैशाली मे लिच्छवी अथवा

७१ उत्तरपुराण पृ० ४५०

७२ अतीत का अनावरण पृ० १४१

७३ समवायाग सूत्र १०१ पृ० १२५ कमलमुनि सम्पादित

७४ नन्दी सूत्र ५० मलयगिरि टीका

७५ नायमुदाहरणति य, दिट्ठतोवमनिदरिसण तहा य।
एगट्ठ त दुविह, चउव्विह चेव नायव्व ॥

—दशवै० नियुक्ति ५२

७६ ज्ञाता दृष्टान्ता तानुपादाय धर्मो यत्र कथ्यते ज्ञातधर्मकथा।

—तत्त्वार्थ भाष्य

७७ णायाण कति अज्झयणा? णायाण एगूणवीस अज्झयणा। एवमौचित्येन सर्वत्र ज्ञात शब्दो योज्य।

—ज्ञाता धर्मकथा

वज्जियो का गणराज्य था और सभवत वह नौ कुलो का था। क्योंकि नव लेच्छई' इस प्रकार का उल्लेख निरयावलिका,[७८] भगवती आदि मे मिलता है। श्री राहुल साकृत्यायन का अनुमान है कि इन नौ कुलो मे से एक ज्ञातृ-कुल था[७९] पर लिच्छवियो का गोत्र वासिष्ठ है और ज्ञातृ वशी महावीर काश्यप गोत्री है,[८०] इससे यह मानना उचित प्रतीत होता है कि लिच्छवी से उनका वह वश पृथक् था।

ज्ञातृकुल के लोक आज जथरिया के नाम से विश्रुत है। श्री राहुल ने ज्ञातृ+ज्ञातर, जतर, जथर-इय (सस्कृत मे इक) इस प्रकार जथरिया शब्द के साथ ज्ञातृ शब्द का सम्बन्ध जोडा है। भगवान महावीर का गोत्र काश्यप था और जथरिया जाति वाले भी काश्यप गोत्री है। बसाढ, जो पूर्व वैशाली था आज उसके आस पास जथरिया लोगो का बाहुल्य है। राहुल सास्कृत्या-यन और पण्डित दलसुख मालवणिया लिखते है कि बसाढ जो मुजफ्फरपुर जिले के रत्ती परगने मे है, रत्ती-शब्द ज्ञातृको की नादिका का विकृत रूप है, उसका सम्बन्ध भी ज्ञातृ के साथ जोड सकते है। रत्ती-नत्ती, नत्ती नाती नादि (पालि) और यह नादिका-जातिका नामक वज्जी देश मे ज्ञातृवश का बडा गाव था। वह कोटि गाव के मध्य मे है। ऐसा उल्लेख पाली मे है।[८१]

ज्ञातृवश क्षत्रिय होने पर भी आज के भूमिहार ब्राह्मण कहलाते है। इस कारण पर प्रकाश डालते हुए राहुल साकृत्यायन लिखते है कि गुप्तकाल मे कन्नौज का जब महत्व बढा तब अनेक जातियो ने अपनी गुटबन्दी प्रारभ की, उस समय कितने ही क्षत्रियो ने ब्राह्मण जाति मे जाने का पसन्द किया,

---

७८ (क) निरयावलिया पृ० १८
(ख) भगवती सूत्र ७।९
(ग) भगवती सार पृ० २५४

७९ पुरातत्त्व निबन्धावली पृ० १०९

८० कल्पसूत्र २।१ मे सिद्धार्थ को काश्यपगोत्री और त्रिशला को वशिष्ट गोत्री कहा है।

८१ (क) महावीर पाण्डुलिपि प० दलसुख मालवणिया
(ख) इस ग्रन्थ के विशेष परिचय देखे 'पालि प्रापर नेम्स' मे 'ज्ञातिक' शब्द, राहुल ने इसका सम्बन्ध ज्ञातृवश के साथ जोडा है। देखे बुद्धचर्या पृष्ठ ४९३

इस कारण ज्ञातृवश के लोग आज भूमिहार ब्राह्मण के रूप मे पहचाने जाते है।[८२]

ज्ञातृवश के लोग वैशाली और उसके आस-पास रहते थे। उसमे क्षत्रियकुण्डग्राम, वाणिज्यगाव और कोल्लागसन्निवेश का विशेष रूप से उल्लेख है। उसमे जो कुण्डग्राम था, आज वह विद्वानो के अभिमतानुसार वसुकुण्ड है।[८३]

वैशाली मे राज्यव्यवस्था गणतत्र की थी। अनेक गण मिलकर एक प्रमुख को चुनते थे। महावीर के पिता सिद्धार्थ को प्राचीन अवतरणो मे क्षत्रिय कहा है बाद मे राजा भी लिखा है। पडित मालवणिया का यह मानना है कि गणराज्य मे उनका महत्वपूर्ण स्थान रहा होगा। अन्यथा गण के मुखिया चेटक की बहन के साथ सिद्धार्थ का विवाह कैसे सभव होता? विद्वानो की यह धारणा है कि भगवान् महावीर को धर्मप्रचार मे इन सम्बन्धियो के कारण सरलता रही होगी, पर यह मानना गलत है। उन्होने साधनाकाल मे किसी का भी सहयोग नही लिया। तप और त्याग के प्रभाव से ही जनता उनकी ओर आकर्षित हुई थी।

'नात' और 'नाग'

आचार्य अभयदेव ने औपपातिक की वृत्ति मे 'नाय' का अर्थ 'नाग' भी किया है।[८४] आगे चलकर उन्होने प्रस्तुत आगम के २७ वे सूत्र की वृत्ति मे नाय का मुख्य अर्थ नागवशी और गौण रूप से ज्ञातवशी किया है।[८५]

भगवती मे वैशाली गणराज्य के प्रमुख चेटक और अजातशत्रु

---

८२ (क) पुरातत्त्व निबन्धावली पृ० १११
(ख) वर्धमान महावीर पृ० १६

८३ यह वसुकुड आज तिरहुत जिले मे बताया जाता है। इस तिरहुत का प्राचीन नाम 'तीरभुक्ति' था।

८४ उग्गपव्वइया, भोगपव्वइया राइण्णनायकोरव्वखत्तियपव्वइया—ज्ञाता इक्ष्वाकुवशविशेषभूता, नागा वा नागवशप्रसूता।
—औपपातिक वृत्ति

८५ क्वचित् पठ्यते--इक्खागा नाया कोरव्वा--नायति नागवश्या वा।
—औपपा[illegible]

कोणिक के युद्ध मे वरुण का उल्लेख है।[८६] 'नागनत्तुए' उसका विशेपण है, (नत्तुए-नप्तृक—पौत्र या दौहित्र) वह वरुण नाग का पौत्र या दौहित्र था। विष्णुपुराण[८७] के अभिमतानुसार नौ नागवशी राजा पद्मावर्ती, कान्तिपुरी, और मथुरा मे राज्य करते थे। राजस्थान मे नाग लोगो का शासन था।[८८]

नागो और कोरवो मे आपस मे सघर्प भी चलता था। तक्ष नाम के नाग ने परीक्षित को मार डाला, जनमेजय ने उसका वदला लिया। उसने नागो को तक्षशिला से हटा दिया और दहकती हुई आग मे डाल दिया।[८९] इस प्रकार नागकुल का इतिहास प्राचीन है। वह भारत के उत्तर और दक्षिण दोनो भागो मे मिलता है। नेपाल के इतिहास मे भी नाग राजाओ का उल्लेख है।[९०]

श्रेणिक बिबसार का वश हर्यंक था। नाग जाति की ही एक शाखा हर्यक वश है। बार्हद्रथ वश के पश्चात् मगध मे नागो की सत्ता स्थापित हुई, यह एक ऐतिहासिक तथ्य है। मगव मे नागो की सत्ता स्थापित होने से पहले काशी मे नागो की सत्ता स्थापित हो गई थी।[९१]

नागवश की उत्पत्ति इक्ष्वाकुवश से हुई है।[९२] नाग आर्य-पूर्व जाति है। आवश्यक नियुक्ति के अनुसार कच्छ और महाकच्छ के पुत्र नमि और विनमि ने भगवान् ऋपभदेव के श्रमण बनने के पश्चात राज्य की माग की। भगवान् मौन रहे। उस समय नागराज वन्दना करने आये, उसने नमि और विनमि को विद्याये दी और वैताढ्य पर्वत पर उनके लिए उत्तरश्रेणि मे ६० और दक्षिण मे ५० नगर बसाये।[९३] उस समय से नाग पूजा प्रचलित हुई। आचार्य क्षितिमोहन सेन का भी यही मानना है कि नागपूजा अवैदिक है।[९४]

---

८६ भगवती ७।९

८७ विष्णुपुराण ४।२४।६३

८८ राजपुताने का इतिहास प्रथम भाग पृ० २३०-२३२

८९ भारतीय इतिहास की रूपरेखा पृ० ५२३

९० द हिस्ट्री आव-नेपाल पृ० ७०-७४

९१ अतीत का अनावरण पृ० १३४

९२ भगवान् पार्श्वनाथ भाग० १, पृ० ५२३

९३ आव० निर्युक्ति० ३४०

९४ भारतवर्ष मे जातिभेद पृ० ७७

इस कारण ज्ञातृवश के लोग आज भूमिहार ब्राह्मण के रूप मे पहचाने जाते है।[८२]

ज्ञातृवश के लोग वैशाली और उसके आस-पास रहते थे। उसमे क्षत्रियकुण्डग्राम, वाणिज्यगाव और कोल्लागसन्निवेश का विशेष रूप से उल्लेख है। उसमे जो कुण्डग्राम था, आज वह विद्वानो के अभिमतानुसार वसुकुण्ड है।[८३]

वैशाली में राज्यव्यवस्था गणतत्र की थी। अनेक गण मिलकर एक प्रमुख को चुनते थे। महावीर के पिता सिद्धार्थ को प्राचीन अवतरणो मे क्षत्रिय कहा है बाद मे राजा भी लिखा है। पडित मालवणिया का यह मानना है कि गणराज्य मे उनका महत्वपूर्ण स्थान रहा होगा। अन्यथा गण के मुखिया चेटक की बहन के साथ सिद्धार्थ का विवाह कैसे सभव होता? विद्वानो की यह धारणा है कि भगवान् महावीर को धर्मप्रचार में इन सम्बन्धियो के कारण सरलता रही होगी, पर यह मानना गलत है। उन्होने साधनाकाल मे किसी का भी सहयोग नही लिया। तप और त्याग के प्रभाव से ही जनता उनकी ओर आकर्षित हुई थी।

'नात' और 'नाग'

आचार्य अभयदेव ने औपपातिक की वृत्ति मे 'नाय' का अर्थ 'नाग' भी किया है।[८४] आगे चलकर उन्होने प्रस्तुत आगम के २७ वे सूत्र की वृत्ति मे नाय का मुख्य अर्थ नागवशी और गौण रूप से ज्ञातवशी किया है।[८५]

भगवती मे वैशाली गणराज्य के प्रमुख चेटक और अजातशत्रु

८२ (क) पुरातत्त्व निवन्धावली पृ० १११
(ख) वर्धमान महावीर पृ० १६

८३ यह वसुकुड आज तिरहुत जिले मे बताया जाता है। इस तिरहुत का प्राचीन नाम 'तीरभुक्ति' था।

८४ उग्गपव्वइया, भोगपव्वइया राइण्णनायकोरव्वखत्तियपव्वइया—ज्ञाता इक्ष्वाकुवशविशेषभूता, नागा वा नागवशप्रसूता।

—औपपातिक वृत्ति पत्र ५०

८५ क्वचित् पठ्यते--इक्खागा नाया कोरव्वा--नायत्ति नागवश्या वा।

—औपपातिक पत्र ११०

कोणिक के युद्ध मे वरुण का उल्लेख है।[८६] 'नागनत्तुए' उसका विशेषण है, (नत्तुए-नप्तृक—पौत्र या दौहित्र) वह वरुण नाग का पौत्र या दौहित्र था। विष्णुपुराण[८७] के अभिमतानुसार नौ नागवशी राजा पद्मावती, कान्तिपुरी, और मथुरा मे राज्य करते थे। राजस्थान मे नाग लोगो का शासन था।[८८]

नागो और कौरवो मे आपस मे सघर्ष भी चलता था। तक्ष नाम के नाग ने परीक्षित को मार डाला, जनमेजय ने उसका बदला लिया। उसने नागो को तक्षशिला से हटा दिया और दहकती हुई आग मे डाल दिया।[८९] इस प्रकार नागकुल का इतिहास प्राचीन है। वह भारत के उत्तर और दक्षिण दोनो भागो मे मिलता है। नेपाल के इतिहास मे भी नाग राजाओ का उल्लेख है।[९०]

श्रेणिक बिबसार का वश हर्यंक था। नाग जाति की ही एक शाखा हर्यक वश है। बार्हद्रथ वश के पश्चात् मगध मे नागो की सत्ता स्थापित हुई, यह एक ऐतिहासिक तथ्य है। मगध मे नागो की सत्ता स्थापित होने से पहले काशी मे नागो की सत्ता स्थापित हो गई थी।[९१]

नागवश की उत्पत्ति इक्ष्वाकुवश से हुई है।[९२] नाग आर्य-पूर्व जाति है। आवश्यक नियुक्ति के अनुसार कच्छ और महाकच्छ के पुत्र नमि और विनमि ने भगवान् ऋषभदेव के श्रमण बनने के पश्चात राज्य की माग की। भगवान् मौन रहे। उस समय नागराज वन्दना करने आये, उसने नमि और विनमि को विद्याये दी और वैताढ्य पर्वत पर उनके लिए उत्तरश्रेणि मे ६० और दक्षिण मे ५० नगर बसाये।[९३] उस समय से नाग पूजा प्रचलित हुई। आचार्य क्षितिमोहन सेन का भी यही मानना है कि नागपूजा अवैदिक है।[९४]

---

८६ भगवती ७।९

८७ विष्णुपुराण ४।२४।६३

८८ राजपुताने का इतिहास प्रथम भाग पृ० २३०-२३२

८९ भारतीय इतिहास की रूपरेखा पृ० ५२३

९० द हिस्ट्री आव-नेपाल पृ० ७०-७४

९१ अतीत का अनावरण पृ० १३४

९२ भगवान् पार्श्वनाथ भाग० १, पृ० ५२३

९३ आव० निर्युक्ति० ३४०

९४ —रतवर्ष मे जातिभेद पृ० ७७

पण्डित, मुनि श्री नथमल जी के भगवान् महावीर ज्ञातपुत्र थे या नागपुत्र' और 'भगवान महावीर का नागवश' शीर्षक से दो निबन्ध प्रकाशित हुए है। उनमे अनेक प्रमाण देकर यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि भगवान् महावीर ज्ञातपुत्र नही नागपुत्र थे, क्योकि 'नाय' का सस्कृत रूप 'नाग' हो सकता है किन्तु 'नात' का ज्ञात होता है, नाग नही, किन्तु 'नात' का ज्ञात होता है 'नाग' नही यह प्रश्न अवश्य ही एक बार भ्रम मे डालने वाला है, किन्तु हम आगमो मे शब्द प्रयोगा की ओर ध्यान देते है तो वह भ्रम स्वय निरावृत्त हो जाता है। उनमे 'त' का प्रयोग प्रचुरता से मिलता है। अनेक वर्णों मे 'त' का आदेश होता है—पन्द्रहवी शताब्दी से १८ वी शताब्दी तक लिखित आगम के आदर्शों मे 'त' का प्रयोग अ, आ, इ, उ ए ओ, स्वरो तथा दसो वर्णों के स्थान पर मिलता है। 'नाग' का 'नात' या 'ग' के स्थान मे 'य' होने के पश्चात् 'नाय' का नात रूप मिलता है, वह कोई आश्चर्य की बात नही है तथा नात मे 'त' होने के कारण ही हम उसका सस्कृत रूप ज्ञात करने मे विवश भी नही है। 'नाय' शब्द के अर्थ मे भी लगता है कि भ्रम हुआ है और नाग के बदले ज्ञात का प्रचलन हो गया है— हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते है कि भगवान् महावीर ज्ञातपुत्र नही किन्तु नागपुत्र थे।[९५]

इतिहास के पृष्ठो मे नागवश अत्यधिक, प्रसिद्ध रहा है जिसकी हम पूव चर्चा कर आये है। सभव है इसी कारण से मुनि श्री नथमल जी ने भगवान् को नागपुत्र माना। जो उन्होने तथ्य दिये है वे उपेक्षणीय तो नही है, पर सर्वथा स्वीकार भी नही किये जा सकते।

जैन आगम साहित्य के उद्भट विद्वान् पण्डित बेचरदास जी मुनि श्री नथमल जी की विचारधारा से सहमत नही है, वे लिखते हे—एक जैन मुनि ने 'नायपुत्त' का सस्कृत रूपान्तर 'नागपुत्र' करके श्रमण भगवान् महावीर को नागवशी प्रमाणित करने का प्रयत्न किया है। यह प्रयत्न जैन और बौद्ध साहित्य तथा ऐतिहासिक परम्परा की दृष्टि से सर्वथा असगत है। जब कि बौद्ध त्रिपिटक ग्रन्थो के मूल में **'दीघतपस्सी निगठो नातपुत्तो''** के रूप मे अनेकश भगवान् महावीर के लिए 'नातपुत्त' शब्द का प्रयोग हुआ है और वह साक्षी रूप मे आज भी निर्विवाद रूप से पाली त्रिपिटक मे उपलब्ध है,

---

९५ अतीत का अनावरण पृ० १३१-१४३

तब प्राकृत जैनागमो मे प्रयुक्त नायपुत्त का सस्कृत रूप नागपुत्र' समझना और भगवान् महावीर को इतिहास प्रसिद्ध ज्ञातृवश से सम्बन्धित न मानकर उनका नागवश से सम्बन्ध जोडना, स्पष्ट ही निराधार कल्पना नही तो और क्या है ? आचार्य हरिभद्र और आचार्य हेमचन्द्र आदि प्राचीन बहुश्रुत आचार्यो ने भी नायपुत्त का ज्ञातपुत्र ही सस्कृत रूप बताया है और अनेक स्थानो पर उनका 'ज्ञातनन्दन' के रूप मे उल्लेख किया है। ऐसी स्थिति मे व्यर्थ ही निराधार एव भ्रान्त कल्पनाओ के आधार पर हम अपने प्राचीन उल्लेखो एव मान्यताओ को सहसा कैसे झुठला सकते है [९६]

विदेह—भगवान् महावीर के पितृकुल के आधार से 'ज्ञातृकुल' का निर्देश हुआ है। उनके माता के कुल के आधार से भी 'विदेहे' 'विदेहदिन्ने' 'विदेह-जच्चे' 'विदेहसूमाले' आदि विशेषण है। भगवान् महावीर की माता का नाम विदेहदिन्ना[९७] यह मिलता है। भारत के पूर्व भाग मे विदेह नाम की जाति ब्राह्मण काल मे प्रसिद्धि मे आई थी। महाभारत में विदेह राजा जनक की राजधानी मिथिला बताई है। सीता विदेह की होने से वैदेही कहलाई। इसलिए त्रिशला भी 'विदेहा' इत्यादि नामो से पहचानी गई।

उपाध्याय विनयविजय जी ने विदेह का अर्थ वज्रऋषभनाराच सहनन, समचतुरस्रसस्थान से मनोहर विशिष्ट देह को विदेह माना है,[९८] अन्य टीकाकारो ने भी इसी तरह से अर्थ किया है जो सगत नही लगता है। डाक्टर हर्मन जेकोबी ने 'विदेह' का अर्थ विदेहवासी किया है,[९९] परन्तु

---

९६ गुरुदेव श्री रत्न मुनि स्मृतिग्रन्थ पृ० १०१ जैन अग सूत्रो के विशेष विचारणीय कुछ शब्द और प्रसग।

९७ (क) आचाराग २।१७६

(ख) समणस्स ण भगवओ महावीरस्स माया वासिट्ठा गोत्तेण तीसेण तओ नामधिज्जा एवमाहिज्जन्ति-त जहा तिसला इवा, विदेहदिण्णा इवा, पियकारिणी इवा।

—कल्पसूत्र १०६

९८ (विदेह) वज्रऋषभनाराचसहननसमचतुरस्रसस्थानमनोहरत्वाद् विशिष्टो देहो यस्य स विदेह।

—कल्पसूत्र सुबोधिका पत्र २६२-२६३

९९ सेक्रेड बुक्स आफ दी ईस्ट, सेक्स २२, पृ० २५६

'विदेहजच्चे' का अर्थ देह मे श्रेष्ठ होना चाहिए क्योकि 'जच्चे जात्य' का अर्थ उत्कृष्ट होता है। कल्पसूत्र के बगला अनुवादक वसन्तकुमार चट्टोपाध्याय ने इसी मत का समर्थन किया है।[१००]

भगवान् महावीर की जन्मस्थली विदेह मे थी। इसलिए भी वे विदेह कहलाये हो। कुण्डपुर मगध और अग देश मे नही था किन्तु विदेह मे था।

वैशालिक—जैनागमो मे अनेक स्थलो पर भगवान् महावीर को 'वैशालिक' कहकर सम्बोधित किया है।[१] उत्तराध्ययन के चूर्णिकार ने वैशालिक के कई अर्थ किये है[२]—

(१) जिनके गुण विशाल हो,
(२) जिनका शासन विशाल हो,
(३) जो विशाल इक्ष्वाकुवश मे जन्मा हो,
(४) जिनकी माता वैशाली हो,
(५) जिनका कुल विशाल हो,

उसे वैशालिक कहा जाता है। इसके सस्कृत रूप वैशालीय, वैशालिय, विशालिक, विशालीय और वैशालिक है।

भगवान् का जन्म स्थान कुण्डग्राम था, वह वैशाली के पास था। भगवान् की माता त्रिशला वैशाली के गणराज्य के अधिपति चेटक की बहिन

---

१०० कल्पसूत्र अनु० ब० कलकत्ता विश्वविद्यालय ई० स० १९५३ पृ० २७

१ (क) आचाराग १।२।३।२२
(ख) उत्तराध्ययन अ० ६, गा० १७

२ (क) वेसालीए त्ति गुणा अस्य विशाला इति वैशालीय विशाल शासन वा विशाले वा इक्ष्वाकुवशे भवा वैशालिया।

वैशाली जननी यस्य, विशाल कुलमेव च।
विशाल प्रवचन वा, तेन वैशालिको जिन ॥

(ख) विसालिअ सावए त्ति विशाला-महावीर-जननी तस्या, अपत्यमिति वैशालिको भगवान्, तस्य वचन शृणोति तद्रसिकत्वादिति वैशालिक श्रावक ।
—भगवती, अभयदेव वृत्ति, भाग १, शतक २, उद्दे० १, पृ० २४६

(ग) सूत्रकृताग-शीलाकाचार्य वृत्ति पृ० ७८

थी, इस दृष्टि से त्रिशला वैशालिक कहलाती थी। वैशाली के पुत्र होने से महावीर वैशालिक कहलाए।

कुछ विद्वान् आगम साहित्य मे आए हुए वेसालिय' शब्द को देखकर भगवान् की जन्मस्थली वैशाली मानते है, क्योकि पाणिनीय व्याकरण के अनुसार 'विशालाया भव' इस अथ मे छण् प्रत्यय होकर वेसालिय शब्द बनता है, इसका अर्थ है वैशाली मे उत्पन्न होने वाला। भगवान् की जन्म-भूमि वैशाली नही है किन्तु वैशाली के सन्निकटस्थ कुण्डपुर है। कुण्डपुर के सम्बन्ध मे हम जन्मस्थली शीर्षक मे विचार कर चुके है।

जिस प्रकार 'वैशाली' नाम से नगरी प्रसिद्ध थी, उसीप्रकार वैशाली के नाम से जनपद भी विख्यात था और उस देश के निवासी 'वैशालिक' कहे जाते थे।

दीघनिकाय परिनिव्वान-सुत्त का प्रसग है कि अम्वपाली गणिका ने बुद्ध को भिक्षु सघ के साथ निमत्रण दिया और बुद्ध ने स्वीकार कर लिया तब लिच्छवियो ने अम्बपाली से कहा कि यह लाभ हमे मिलना चाहिए, तब अम्बपाली ने कहा—आर्यपुत्रो! यदि वैशाली जनपद भी दो तो भी मैं यह महान भात (भोजन) नही दूगी।[3]

महावस्तु मे 'वैशालकाना लिच्छिवीना वचनेन' का प्रयोग भी हुआ है जिससे भी स्पष्ट है कि 'वैशाली' इस देश का नाम था।[4]

चीनी यात्री युवान्च्वाङ् ने अपनी यात्रा के वर्णन मे लिखा है कि वैशाली-देश की परिधि ५००० ली से भी अधिक थी।[5]

पार्जिटर ने लिखा है—'राजा विशाल ने विशाला अथवा वैशाली नगरी को बसाया और राजधानी बनाई, वह राज्य भी वैशाली कहा जाता था और राजा वैशालिक राजा कहे जाते थे। यह वैशालिक शब्द उस कुल मे उत्पन्न सभी के लिए प्रयुक्त होता था।[6]

---

३ स चे 'पि अय्यपुत्ता वेसालिं साहार दस्सथ एव महन्त भत्त न दस्सामी ति।

—दीघनिकाय महापरिनिव्वान-सुत्त पृ० १२८

४ महावस्तु भाग १ पृ० २५४

५ बुद्धिस्ट रेकार्ड आव वेस्टर्न इण्डिया खण्ड २, पृ० ६६

६ ऐशेंट इडियन हिस्टारिकल ट्रैडीशन पृ० ६७

इन सब प्रमाणो के प्रकाश मे स्पष्ट हो जाता है कि भगवान् वैशालिक क्यो कहलाए।

उक्त चर्चा का निष्कर्ष यह है कि भगवान महावीर को प्राचीन साहित्य मे मुख्यत इन नामो से सम्बोधित किया गया है—

वर्धमान
महावीर
सन्मति
काश्यप (अत्यकाश्यप)
ज्ञातपुत्र (नातपुत्र)
विदेह
वैशालिक

यह भी प्राय स्पष्ट है कि उनको गृहस्थावास मे प्राय 'वर्धमान' नाम से ही पुकारा गया है। महावीर नाम बाद मे पडा तथा अन्य नाम साहित्यकारो द्वारा दिये गये।

जन्म-कुण्डली : एक चिन्तन

भगवान महावीर की जन्म-कुण्डली अनेक ग्रन्थो मे उपलब्ध होती है, पर प्रश्न यह है कि प्रस्तुत जन्मकुण्डली क्या उनके जीवनकाल मे ही बन चुकी थी ? यदि बन चुकी थी तो क्या उस समय वर्तमान मे प्रचलित मेष, वृषभ आदि राशियो का भी प्रचलन हो गया था ?

उक्त प्रश्नो पर हम आगम साहित्य के प्रकाश मे चिन्तन करे तो ज्ञात होगा कि आचाराग के द्वितीय श्रुतस्कन्ध मे भगवान महावीर की जन्म-कालीन स्थिति का ज्योतिष की दृष्टि से इस प्रकार चित्रण किया गया है 'ग्रीष्म ऋतु के प्रथम मास, दूसरे पक्ष,—चैत्र सुदी त्रयोदशी को हस्तोत्तरा अर्थात् उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र का योग होने पर श्रमण भगवान् महावीर का जन्म हुआ।'[१]

---

१ आचाराग—२

इस उल्लेख से यह स्पष्ट नही होता कि उस समय वर्तमान मे प्रचलित राशियो का प्रचलन हो चुका था और न यह भी स्पष्ट होता है कि जन्म के समय लग्न कौनसा था, चू कि जन्म का समय नही बतलाया गया है। इस उल्लेख से इतना अवश्य ज्ञात होता है कि जन्म के समय चन्द्रमा कन्या राशि मे था और सभव है सूर्य मेप राशि मे आ गया हो।

यह स्मरण रखना चाहिए कि अङ्ग, उपाङ्ग, और मूल सूत्रो मे जहाँ कही भी अन्य ज्योतिप सम्बन्धी चर्चाये ह वहाँ पर वर्तमान मे प्रचलित पञ्चाग के पाँच अगो मे से केवल तिथि, नक्षत्र और करण इन अगो की ही चर्चाये की गई है। सूर्य और बार्हस्पत्य सवत्सर के मानो का उल्लेख है वहाँ पर भी राशियो के सम्बन्ध मे कोई भी चर्चा नही मिलती है, उनके लिए वे ही श्रावण आदि चान्द्रमासो के नाम बताए गए है। जहाँ पर बार्हस्पत्य और शनैश्चर सम्वत्सर की परिभाषा की गई है वहाँ पर भी समूचे नक्षत्र मण्डल के साथ योग करने का उल्लेख किया है किन्तु समूचे राशि मण्डल का नही। इससे यह स्पष्ट है कि उस समय मेप आदि राशियो का प्रचलन भी नही था, यदि होता तो आशिक रूप से भी कही-न-कही उल्लेख अवश्य होता।

आचाराग के पश्चात् कल्पसूत्र मे भगवान महावीर के जन्म का उल्लेख है, वहा पर आचाराग से दो बाते अधिक है एक तो ग्रहो के उच्च स्थानगत होने पर 'उच्चठाणगएसु गहेसु' और दूसरा मध्यरात्रि मे—'पुव्वरत्ता व रत्तकाल समयसि'।

कल्पसूत्र के टीकाकारो ने उक्त स्थल पर विवेचन करते हुए ग्रहो के उच्च स्थान इस प्रकार लिखे है

ग्रह	राशि	अ श
सूर्य	मेप	१०
चन्द्रमा	वृपभ	३
मगल	मकर	२८
बुध	कन्या	१५
गुरु	कर्क	५
शुक्र	मीन	२७
शनि	तुला	२०

सुखी, भोगी, धनी, नेता, मण्डलपति, नृपति और चक्रवर्ती क्रमश उच्च ग्रहो का फल है। तीन ग्रह उच्च होने पर नरेन्द्र होता है, पाँच ग्रह उच्च होने पर अर्धचक्री (त्रिखण्डाधिपति) होता है और छह ग्रह उच्च होने पर चक्रवर्ती होता है और सात ग्रह उच्च होने पर तीर्थंकर होता है। यदि एक ग्रह भी उच्च हो तो वह व्यक्ति महान् उन्नति करता है, यदि दो-तीन ग्रह उच्च हो, वह महान उन्नति करे, इसमे क्या आश्चर्य है ?[२]

कल्पसूत्र की एक अन्य हिन्दी टीका मे लिखा है कि" ऐसे आनन्द के समय मे चैत्र सुदी त्रयोदशी को मध्य रात्रि मे भगवान की जन्म कुण्डली मे सूर्य-चन्द्र, मगल, बुध, गुरु, शुक्र, और शनि ये ७ गह उच्च स्थान मे आगए थे, उस समय मकर लग्न मे माता त्रिशला देवी ने श्री महावीर स्वामी को सुख पूर्वक जन्म दिया।[3]

समीक्षा

वर्तमान मे जो जातक साहित्य उपलब्ध है उसमे भी ग्रहो के उच्च राश्यशादि का वर्णन इसी तरह मिलता है। कुछ जातको मे राहु-केतु की क्रमश उच्चराशि वृषभ ओर वृश्चिक मानी है। किन्तु कल्पसूत्र के टीकाकार ने राहु और केतु का उल्लेख नही किया है।

---

२ ग्रहाणामुच्चस्थानान्येवम् —

अर्क्कादुच्चान्यज १ वृप २ मृग ३ कन्या ४ कर्क ५ मीन ६ वणिजो ७ ऽशैं ।
दिग् १० दहना ३ ष्टाविशति २८
तिथी १५ पु ५ नक्षत्र २७ विशतिभि २० ॥१॥

फल त्वेवम् —

सुखी भोगी धनी नेता जायते मण्डलाधिप ।
नपति चक्रवर्ती च क्रमादुच्चग्रहे फलम् ॥१॥

तहा—तिहि उच्चेहि नरिंदो पचहि तह होई अद्धचक्की अ ।
छहि होइ चक्कवट्टी, सत्तहि तित्थकरो होइ ॥२॥
इक्को जइ उच्चत्थो, हवइ गहो उन्नइ पर कुणइ ।
पुण वेतिण्णि गहाओ, कुणति को इत्थ सदेहो ॥

—कल्पसूत्र किरणावली टीका पत्र ७६

३ कल्पसूत्र पृ० १३७ व्याख्यान ४, प्रकाशक—श्री श्वेताम्बर सघ कोटा-छबडा

सुखी, भोगी, धनी, नेता, मण्डलपति, नृपति और चक्रवर्ती क्रमश. उच्च ग्रहों का फल है। तीन ग्रह उच्च होने पर नरेन्द्र होता है, पाँच ग्रह उच्च होने पर अर्धचक्री (त्रिखण्डाधिपति) होता है और छह ग्रह उच्च होने पर चक्रवर्ती होता है और सात ग्रह उच्च होने पर तीर्थंकर होता है। यदि एक ग्रह भी उच्च हो तो वह व्यक्ति महान् उन्नति करता है, यदि दो-तीन ग्रह उच्च हो, वह महान उन्नति करे, इसमे क्या आश्चर्य है ?[2]

कल्पसूत्र की एक अन्य हिन्दी टीका मे लिखा है कि" ऐसे आनन्द के समय में चैत्र सुदी त्रयोदशी को मध्य रात्रि मे भगवान की जन्म कुण्डली मे सूर्य-चन्द्र, मगल, बुध, गुरु, शुक्र, और शनि ये ७ ग्रह उच्च स्थान मे आगए ये, उस समय मकर लग्न मे माता त्रिशला देवी ने श्री महावीर स्वामी को सुख पूर्वक जन्म दिया।[3]

समीक्षा

वर्तमान मे जो जातक साहित्य उपलब्ध है उसमे भी गहो के उच्च राश्यशादि का वर्णन इसी तरह मिलता है। कुछ जातको मे राहु-केतु की क्रमश उच्चराशि वृषभ और वृश्चिक मानी है। किन्तु कल्पसूत्र के टीकाकार ने राहु और केतु का उल्लेख नही किया है।

---

२ ग्रहाणामुच्चस्थानान्येवम् —

अर्क्कादुच्चान्यज १ वृप २ मृग ३ कन्या ४ कर्क ५ मीन ६ वणिजो ७ ऽशैं।
दिग् १० दहना ३ ष्टाविंशति २८
तिथी १५ पु ५ नक्षत्र २७ विंशतिभि २० ॥१॥

फल त्वेवम् —

सुखी भोगी धनी नेता जायते मण्डलाधिप।
नपति चक्रवर्ती च क्रमादुच्चग्रहे फलम् ॥१॥

तहा—तिहि उच्चेहिं नरिंदो, पचहिं तह होई अद्धचक्की अ।
छहिं होइ चक्कवट्टी, सत्तहिं तित्थकरो होइ ॥२॥
इक्को जइ उच्चत्थो, हवइ गहो उन्नइ पर कुणइ।
पुण बेतिण्णि गहाओ, कुणति को इत्थ सदेहो ॥

—कल्पसूत्र किरणावली टीका पत्र ७६

३ कल्पसूत्र पृ० १३७ व्याख्यान ४, प्रकाशक—श्री श्वेताम्बर सघ कोटा-छवडा

कल्पसूत्र के मूलपाठ मे ग्रहो के उच्च स्थानगत होने पर तीर्थंकर होते है इसका उल्लेख नही है। टीकाकार ने सात ग्रह उच्च होने पर लिखा है, पर उसका मूल आधार क्या है इसका उन्होने निर्देश नही किया है। चिन्तनीय प्रश्न यह है कि जैसे सात ग्रहो को जिस रूप मे एक साथ उच्च बताए गए है उस रूप मे सातो गह क्या एक साथ उच्च हो सकते है? जबकि बुध सूर्य की राशि से अधिक से अधिक २८ अश हो सकता है और शुक्र ४८ अश से अधिक दूर नही हो सकता, अत. जब सूर्य किसी की कुण्डली मे मेप राशि, जो सूर्य की उच्च राशि मानी गई है उस कुण्डली मे बुध की केवल तीन ही स्थिति हो सकती है, अर्थात् सूर्य के साथ बुध यानि मेप राशि, सूर्य से बारहवे बुध अर्थात् मीन राशि और सूर्य से दूसरे बुध यानि वृपभ राशि मे ही जा सकता है। जबकि बुध की उच्च राशि कन्या मानी गई है जो इस उच्च के सूर्य से छठी राशि मे आती है, इसलिए उच्च के सूर्य वाली कुण्डली मे बुध किसी भी स्थिति मे उच्च का नही बन सकता।

बुध और शुक्र दोनो ग्रह एक साथ तभी उच्च हो सकते है जब उन दोनो के मध्य एक ओर १९२ अश का दूसरी ओर १६८ अश का अन्तर हो, पर इतना अन्तर इनमे कभी नही होता।

तात्पर्य यह है कि जब सूर्य उच्चस्थ होगा तब अधिक-से-अधिक छह ग्रह उच्च हो सकते है किन्तु बुध कदापि नही हो सकता और जब बुध उच्चस्थ होगा उस समय पाच से अधिक उच्चस्थ ग्रह नही हो सकते। सूर्य और शुक्र दोनो ग्रह तब उच्चस्थ नही होते। स्पष्ट है कि वर्तमान ज्योतिप-शास्त्र की दृष्टि से एक समय सातो ही ग्रह उच्चस्थ कभी नही हो सकते।

इस पद्धति से भगवान महावीर के जन्मकालीन ग्रहो मे चन्द्रमा और बुध ये दोनो ग्रह निश्चय रूप से उच्चस्थ नही थे। चू कि उच्चस्थ चन्द्रमा के निर्दिष्ट वृपभ राशि अश के अनुसार कृतिका नक्षत्र के अन्तिम चरण मे यह उच्चस्थ होता है, परन्तु आचाराग और कल्पसूत्र के अनुसार उस समय उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र था। इसलिए चन्द्रमा उच्चस्थ नही हो सकता। क्योकि उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र कन्या राशि का नक्षत्र है।

वर्तमान मे प्रचलित सायन और निरयन दोनो पद्धतियो के अनुसार चैत्र शुक्ला १३ के दिन मेप सक्रान्ति होने मे बाधा नही है अत सभव है कि उस समय सूर्य उच्चस्थ रहा हो। सूर्य उच्चस्थ होने पर शुक्र भी उच्चस्थ हो सकता है, स्वगृही भी हो सकता है, और सूर्य के साथ युति भी हो सकती है। हम पहले ही बता चुके है कि जब सूर्य उच्चस्थ होगा तब बुध उच्चस्थ नही

सुखी, भोगी, धनी, नेता, मण्डलपति, नृपति और चक्रवर्ती क्रमश उच्च ग्रहो का फल है। तीन ग्रह उच्च होने पर नरेन्द्र होता है, पाँच ग्रह उच्च होने पर अर्धचक्री (त्रिखण्डाधिपति) होता है और छह ग्रह उच्च होने पर चक्रवर्ती होता है और सात ग्रह उच्च होने पर तीर्थंकर होता है। यदि एक ग्रह भी उच्च हो तो वह व्यक्ति महान् उन्नति करता है, यदि दो-तीन ग्रह उच्च हो, वह महान उन्नति करे, इसमे क्या आश्चर्य है ?[२]

कल्पसूत्र की एक अन्य हिन्दी टीका मे लिखा है कि" ऐसे आनन्द के समय मे चैत्र सुदी त्रयोदशी को मध्य रात्रि मे भगवान की जन्म कुण्डली मे सूर्य-चन्द्र, मगल, बुध, गुरु, शुक्र, और शनि ये ७ ग्रह उच्च स्थान मे आगए थे, उस समय मकर लग्न मे माता त्रिशला देवी ने श्री महावीर स्वामी को सुख पूर्वक जन्म दिया।[3]

समीक्षा

वर्तमान मे जो जातक साहित्य उपलब्ध है उसमे भी ग्रहो के उच्च राश्यशादि का वर्णन इसी तरह मिलता है। कुछ जातको मे राहु-केतु की क्रमश उच्चराशि वृषभ और वृश्चिक मानी है। किन्तु कल्पसूत्र के टीकाकार ने राहु और केतु का उल्लेख नही किया है।

---

२ ग्रहाणामुच्चस्थानान्येवम् —

अर्कांचुच्चान्यज १ वृष २ मृग ३ कन्या ४ कर्क ५ मीन ६ वणिजो ७ ऽशै ।
दिग् १० दहना ३ ष्टाविंशति २८
तिथी १५ षु ५ नक्षत्र २७ विंशतिभि २० ॥१॥

फल त्वेवम् —

सुखी भोगी धनी नेता जायते मण्डलाधिप ।
नपति चक्रवर्ती च क्रमादुच्चग्रहे फलम् ॥१॥
तहा—तिहि उच्चेहिं नरिंदो, पर्चाहि तह होई अद्धचक्की अ ।
छहिं होइ चक्कवट्टी, सत्तहिं तित्थकरो होइ ॥२॥
इक्को जइ उच्चत्थो, हवइ गहो उन्नइ पर कुणइ ।
पुण बेतिण्णि गहाओ, कुणति को इत्थ सदेहो ॥

—कल्पसूत्र किरणावली टीका पत्र ७६

३ कल्पसूत्र पृ० १३७ व्याख्यान ४, प्रकाशक—श्री श्वेताम्बर सघ कोटा-छबडा

कल्पसूत्र के मूलपाठ मे ग्रहो के उच्च स्थानगत होने पर तीर्थंकर होते है इसका उल्लेख नही है। टीकाकार ने सात ग्रह उच्च होने पर लिखा है, पर उसका मूल आधार क्या है इसका उन्होने निर्देश नही किया है। चिन्तनीय प्रश्न यह है कि जैसे सात ग्रहो को जिस रूप मे एक साथ उच्च बताए गए है उस रूप मे सातो ग्रह क्या एक साथ उच्च हो सकते है? जबकि बुध सूर्य की राशि से अधिक से अधिक २८ अश हो सकता है और शुक्र ४८ अश से अधिक दूर नही हो सकता, अत- जब सूर्य किसी की कुण्डली मे मेप राशि, जो सूर्य की उच्च राशि मानी गई है उस कुण्डली मे बुध की केवल तीन ही स्थिति हो सकती है, अर्थात् सूर्य के साथ बुध यानि मेप राशि, सूर्य से बारहवे बुध अर्थात् मीन राशि और सूर्य से दूसरे बुध यानि वृपभ राशि मे ही जा सकता है। जबकि बुध की उच्च राशि कन्या मानी गई है जो इस उच्च के सूर्य से छठी राशि मे आती है, इसलिए उच्च के सूर्य वाली कुण्डली मे बुध किसी भी स्थिति मे उच्च का नही बन सकता।

बुध और शुक्र दोनो ग्रह एक साथ तभी उच्च हो सकते है जब उन दोनो के मध्य एक ओर १९२ अश का दूसरी ओर १६८ अश का अन्तर हो, पर इतना अन्तर इनमे कभी नही होता।

तात्पर्य यह है कि जब सूर्य उच्चस्थ होगा तब अधिक-से-अधिक छह ग्रह उच्च हो सकते है किन्तु बुध कदापि नही हो सकता और जब बुध उच्चस्थ होगा उस समय पाच से अधिक उच्चस्थ ग्रह नही हो सकते। सूर्य और शुक्र दोनो ग्रह तब उच्चस्थ नही होते। स्पष्ट है कि वर्तमान ज्योतिप-शास्त्र की दृष्टि से एक समय सातो ही ग्रह उच्चस्थ कभी नही हो सकते।

इस पद्धति से भगवान महावीर के जन्मकालीन ग्रहो मे चन्द्रमा और बुध ये दोनो ग्रह निश्चय रूप से उच्चस्थ नही थे। चू कि उच्चस्थ चन्द्रमा के निर्दिष्ट वृपभ राशि अश के अनुसार कृतिका नक्षत्र के अन्तिम चरण मे यह उच्चस्थ होता है, परन्तु आचाराग और कल्पसूत्र के अनुसार उस समय उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र था। इसलिए चन्द्रमा उच्चस्थ नही हो सकता। क्योकि उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र कन्या राशि का नक्षत्र है।

वर्तमान मे प्रचलित सायन और निरयन दोनो पद्धतियो के अनुसार चैत्र शुक्ला १३ के दिन मेप सक्रान्ति होने मे बाधा नही है अत सभव है कि उस समय सूर्य उच्चस्थ रहा हो। सूर्य उच्चस्थ होने पर शुक्र भी उच्चस्थ हो सकता है, स्वगृही भी हो सकता है, और सूर्य के साथ युति भी हो सकती है। हम पहले ही बता चुके है कि जब सूर्य उच्चस्थ होगा तब बुध उच्चस्थ नही

हो सकता। जब बुध उच्चस्थ होगा उस समय सूर्य अपने स्वगृह के आस-पास या नीचस्थ राशिगत या बुध के साथ हो सकता है, इस दृष्टि से स्पष्ट है कि बुध भी उच्चस्थ नही था।

'सात ग्रह उच्च होने पर तीर्थंकर होते है।' यदि टीकाकार के उक्त कथन को सत्य माने तो हमे यह भी मानना होगा कि "प्रत्येक तीर्थंकर का जन्म कृतिका नक्षत्र के अन्तिम चरण मे ही होता है" किन्तु आगमिक प्रमाणो के आधार से प्रस्तुत कथन मिथ्या ठहरता है, क्योकि आगम साहित्य मे तीर्थंकरो के जन्म नक्षत्र पृथक्-पृथक् बताए है। और साथ ही जन्म मास भी पृथक्-पृथक् है।

कल्पसूत्र के मूल मे यह उल्लेख नही है कि उस समय सभी ग्रह उच्च थे या प्रत्येक तीर्थंकर के जन्म के समय सभी ग्रहो का उच्चस्थ होना अनिवार्य है। सूत्र का तात्पर्य इतना ही है जन्म के समय एक से अधिक ग्रह उच्च थे। यदि यह माने कि 'बहुवचन' का प्रयोग सभी ग्रहो के उच्चस्थ होने की ओर सकेत करता है तो यह साधिकार कहा जा सकता है कि टीकाकार ने उच्चस्थ का जो प्रारूप प्रस्तुत किया है वह कल्पसूत्र के दृष्टिकोण से पृथक् है। सात ग्रह उच्च होने पर तीर्थंकर होते है, यह कथन युक्ति-युक्त नही है। सभव है टीकाकार का इस सम्बन्ध मे अध्ययन न रहा हो, उन्होने गतिकानुगति का अनुसरण कर लिया हो।[४]

वर्तमान मे भगवान महावीर की जो कुण्डली अनेक ग्रन्थो मे उपलब्ध होती है, उसमे भी सात ग्रह उच्च नही बताए है। वह कुण्डली इस प्रकार है –

भगवान महावीर की जन्म कुडली

---
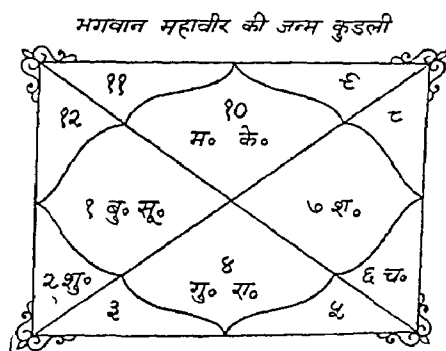
४ जैन भारती वर्ष २२, अङ्क ३-४ भगवान महावीर की जन्म कुण्डली, लेखक—मुनि चन्दनमल जी

प्रस्तुत कुण्डली के आधार पर भगवान महावीर का जन्म मकर लग्न मे हुआ है। लग्न मे मगल उच्च का है। चतुर्थ घर मे सूर्य उच्च का है। सप्तम घर मे वृहस्पति उच्च का है, और दशवे घर मे शनि उच्च का है। इस प्रकार केवल चार ग्रह उच्च राशिस्थ है। इस कुण्डली मे विशेप रूप से उल्लेखनीय यह है कि चारो ही केन्द्र के स्थान मे उच्च ग्रह बैठे हुए ह। शुक्र पञ्चम घर मे स्वगृही है, नौवे घर मे चन्द्रमा स्थित है। बुध सूर्य के साथ चौथे घर मे बैठा है। इसप्रकार सभी ग्रहो को बल मिल गया हे। इस कुण्डली मे एक भी ग्रह नीच का नही है और कोई भी ग्रह छठे, आठवें, बारहवे जो अनिष्ट घर माने जाते है, उसमे नही है। इसलिए ज्योतिप शास्त्र की दृष्टि से इस कुण्डली का अत्यधिक महत्त्व है।

प्रसिद्ध ज्योतिर्विद प्रोफेसर बी० सी० मेहता[५] का अभिमत है कि आधुनिक ज्योतिप शास्त्र मे ऐसा स्पष्ट उल्लेख है कि यदि मगल, गुरु, शनि, बुध और शुक्र इन पाच ग्रहो मे से एक भी ग्रह केन्द्र मे उच्च राशि का होता है तो महापुरुष योग वनता है। भगवान महावीर की कुण्डली मे इस प्रकार पाँच महापुरुप योग, तीन उच्च ग्रह केन्द्र मे होने से उत्कृष्ट महापुरुप योग वन गया है अर्थात् तीर्थकर योग बन गया है। इसके अतिरिक्त चतुर्थ घर मे भी सूर्य उच्च का हो गया है, अर्थात् चारो ही महत्त्वपूर्ण केन्द्र उच्च ग्रहो से परिपूर्ण है। सूर्य की राशि के हिसाब से भी ये तीनो ही उच्च के ग्रह केन्द्र मे आ जाते है, अत पूर्ण रूप से पञ्च महापुरुप योग इस कुण्डली मे बनता है। इसलिए यह कुण्डली जो प्रचलित है, वह पूर्णरूप से सही प्रतीत होती है। जहा तक अनुभव बताता है कि प्रत्येक तीर्थंकर की कुण्डली मे इस प्रकार पच महापुरुष योग होता ही है।

सक्षेप मे साराश यह है कि भगवान महावीर के जीवन काल मे कुण्डली का निर्माण नही हुआ था। आचाराग आदि के रचनाकाल तक मेष आदि राशियो का प्रचलन भी नही हुआ था। कल्पसूत्र की रचना के समय सभव है राशियाँ व्यवहृत होने लगी थी। सातग्रह उच्च होने पर तीर्थकर होते है, यह टीकाकार का कथन आधारहीन है। जो हमने कुण्डली दी है वह वास्तविकता के अधिक सन्निकट है, ऐसा हमारा स्पष्ट अभिमत है।

---

५ सचालक दि जैन ज्योतिप व्यूरो, व्यावर (राजस्थान)

हो सकता। जब बुध उच्चस्थ होगा उस समय सूर्य अपने स्वगृह के आस-पास या नीचस्थ राशिगत या बुध के साथ हो सकता है, इस दृष्टि से स्पष्ट है कि बुध भी उच्चस्थ नही था।

'सात ग्रह उच्च होने पर तीर्थंकर होते हे।' यदि टीकाकार के उक्त कथन को सत्य माने तो हमे यह भी मानना होगा कि "प्रत्येक तीर्थंकर का जन्म कृतिका नक्षत्र के अन्तिम चरण मे ही होता है" किन्तु आगमिक प्रमाणो के आधार से प्रस्तुत कथन मिथ्या ठहरता है, क्योकि आगम साहित्य मे तीर्थकरो के जन्म नक्षत्र पृथक्-पृथक् बताए हे। और साथ ही जन्म मास भी पृथक्-पृथक् हे।

कल्पसूत्र के मूल मे यह उल्लेख नही है कि उस समय सभी ग्रह उच्च थे या प्रत्येक तीर्थंकर के जन्म के समय सभी ग्रहो का उच्चस्थ होना अनिवार्य है। सूत्र का तात्पर्य इतना ही है जन्म के समय एक से अधिक ग्रह उच्च थे। यदि यह माने कि 'बहुवचन' का प्रयोग सभी गहो के उच्चस्थ होने की ओर सकेत करता है तो यह साधिकार कहा जा सकता है कि टीकाकार ने उच्चस्थ का जो प्रारूप प्रस्तुत किया है वह कल्पसूत्र के दृष्टिकोण से पृथक् है। सात ग्रह उच्च होने पर तीर्थकर होते है, यह कथन युक्ति-युक्त नही है। सभव है टीकाकार का इस सम्बन्ध मे अध्ययन न रहा हो, उन्होने गतिकानुगति का अनुसरण कर लिया हो।[४]

वर्तमान मे भगवान महावीर की जो कुण्डली अनेक ग्रन्थो मे उपलब्ध होती है, उसमे भी सात ग्रह उच्च नही बताए है। वह कुण्डली इस प्रकार है –

भगवान महावीर की जन्म कुडली

४ जैन भारती वर्ष २२, अङ्क ३-४ भगवान महावीर की जन्म कुण्डली, लेखक—मुनि चन्दनमल जी

विराट व्यक्तित्व के बीज

बाह्य व्यक्तित्व

आवश्यक निर्युक्ति मे वृद्धि और स्मरण ये दो द्वार बताये है।[1] जिन-भद्र गणी क्षमाश्रमण ने उसकी व्याख्या करते हुए भगवान् महावीर के बाह्य व्यक्तित्व का परिचय दिया है।[2] भगवती मे कहा है-भगवान का शरीर उदार, शृ गारित, अलकार-रहित होते हुए भी विभूषित, लक्षण-व्यजन और गुण से युक्त तथा श्री से अत्यन्त शोभान्वित था।[3] औपपातिक सूत्र मे विस्तार के साथ परिचय देते हुए लिखा है—कि उनकी आखें पद्मकमल के समान विकसित थी, ललाट अर्धचन्द्र के समान दीप्तियुक्त था। वृषभ के समान मासल स्कन्ध थे। भुजाए लम्बो थी। पूरा शरीर सुगठित व सुन्दर आकार वाला था, प्रज्वलित निर्धूम अग्नि की शिखा के समान तेजस्वी था। जिसे देखते ही मन मुग्ध हो जाता था, आखे बार-बार देखने को लालायित होती थी और दर्शन के साथ ही मन मे प्रियता व भव्यता का भाव जाग पडता।[4] उनका शारीरिक सगठन, सस्थान, आकार अत्युत्तम था।[5] उनके शरीर की प्रभा निर्मल स्वर्णरेखा के समान थी,[6] वे एक हजार आठ लक्षणो से युक्त थे।[7]

---

१ (क) आव० निर्युक्ति ३४१
(ख) विशेपा० भाष्य १८२२

२ असितसिरओ सुणयणो बिंबोट्ठो धवलदन्तपन्तीओ।
वरपउमगब्भगोरो फुल्लुप्पल-गधणीसासो॥
—विशेपा० १८४६

३ भगवती श० २ उ० १, १४

४ अवदालिय पु डरीयणयणे चन्दद्धसमणिडाले-वरमहिस-वराह-सीह सद्दूल उसभ नागवरपडिपुण्ण विउलक्खधे।
—औपपातिक १

५ (क) प्रज्ञापना सूत्र २३
(ख) त्रिपष्टिश लाकापुरुपचरित्र

६ वरकणग तवियगोरा सोलस तित्थकरा मुणेयव्वा।
एसो वण्णविभागो चउवीसाए जिणवराण॥—आव० मलय० वृत्ति गा० ३७७

७ त्रिपष्टि० १०।२।१०२

उस समय भगवान् को जातिस्मरण अर्थात् पूर्वभवो का ज्ञान था, और अप्रतिपाति मति, श्रुत और अवधि ये तीन ज्ञान थे। मानव समुदाय मे उनकी कान्ति और बुद्धि विशेष थी।[८]

भगवान् महावीर का लालन-पालन उच्च एव पवित्र सस्कारो के भव्य वातावरण मे हुआ। आचाराग के अनुसार लालन पालन के लिए पाच सुदक्ष धाइया नियुक्त की गई जो उनके प्रत्येक कार्य को सम्यक् प्रकार से सचालित करती। उन पाचो के अलग-अलग कार्य थे—दूध पिलाना, स्नान कराना, वस्त्राभूषण पहनाना, क्रीडा कराना और गोद मे लेना।[९] बालक वर्धमान के सभी लक्षण विलक्षण थे। सुकुमार सुमन की तरह उनका बचपन नई अगडाई ले रहा था। उनका इठलाता हुआ तन सुगठित, बलिष्ठ और कान्तिमान् था और मुखमण्डल सूर्य की तरह तेजस्वी था। उनका हृदय मखमल-सा कोमल और भावनाए समुद्र-सी विराट् थी। बालक होने पर भी वे वीर, साहसी और धैर्यशाली थे।

शुक्ल पक्ष के चाद की तरह वे बढ रहे थे। उनके मन मे सहज शौर्य और पराक्रम की लहरे उठ रही थी।

बाल-क्रीडा

आचाराग, कल्पसूत्र और आवश्यकनिर्युक्ति मे भगवान् महावीर की बाल-क्रीडा का कुछ भी वर्णन नही आया है। बाल-क्रीडा का वर्णन सर्वप्रथम आवश्यक निर्युक्ति के भीषण पद की व्याख्या करते हुए विशेषावश्यक भाष्य[१०] मे सक्षेप मे कुछ सकेत किया, उसके बाद मे आचार्यों ने उस पर विस्तार से लिखा है। वह इस प्रकार है—

भगवान् आठ वर्ष के भी नही हुए थे, उस समय वे अपने हमजोले सगी-साथियो के साथ गृहोद्यान (प्रमदवन) मे क्रीडा कर रहे थे। उस क्रीडा मे सभी बालक किसी एक वृक्ष को लक्ष्य करके दौडते, जो बालक सबसे पहले

---

८ (क) जातीसरो तु भगव अप्पडिपडिपत्तेहिं तिहि तु णाणेहि।
कती य य बुद्धीय य अब्भुतिओ तेसु मणुएसु॥
— विशेषा० भाष्य १८५०

(ख) आवश्यक चूर्णि २४५

९ आयारो तह आयारचूला० २।१५।१४

१० विशेषा० भाष्य १८५२ से १८५४

वृक्ष पर चढकर नीचे उतर जाता, वह विजयी बालक पराजित बच्चो के कधो पर चढकर उस स्थान पर जाता, जहा से दौड शुरू की थी।

उस समय देवराज देवेन्द्र ने बालक वर्द्धमान के वीरत्व एव पराक्रम की प्रशसा की। एक अभिमानी देव शक्र की प्रशसा को चुनौती देता हुआ उनके साहस की परीक्षा लेने के लिए भयकर सर्प का रूप धारण कर उस वृक्ष पर लिपट गया। फुफकार करते हुए नागराज को निहार कर अन्य सभी बालक भयभीत होकर वहा से भाग गये, पर किशोर वर्धमान ने बिना डरे और बिना झिझके उस सर्प को पकडकर एक तरफ रख दिया।[११]

आचार्य शीलाङ्क[१२] ने उक्त क्रीडा का नाम 'आमलयखेड' दिया है। आचार्य हेमचन्द्र[१३] ने आमलकी क्रीडा' कहा है। नेमिचन्द्र[१४] ने भी यही नाम दिया है। जिनदासगणी महत्तर[१५] ने 'सुकलिकडएण' दिया है आचार्य हरिभद्र[१६] ने व गुणचन्द्रने[१७] रुक्खखेड्डेण लिखा है तो गुण-

---

११ (क) आवश्यक चूर्णि पृ० २४६
(ख) आवश्यक हारिभद्रीय वृत्ति पृ० १८१
(ग) आवश्यक मलय० वृत्ति २५८
(घ) चउप्पन्नमहापुरिस० पृ० २७१
(ड) त्रिषष्टि० १०।२।१०३-१०७
(च) उत्तरपुराण ७४।२८६-२९५
(छ) महावीरचरिय—नेमिचन्द्र ७५-८८ पृ० ३३
(ज) महावीरचरिय—गुणचन्द्र प्र० ४, पृ० १२५

१२ पारद्ध च एक्कम्मि तरुणो हेट्ठम्मि आमलयखेड्ड।

—चउप्पन्न० २७१

१३ कुर्वत्यामलकीं क्रीडा राजपुत्रै सह प्रभौ।

—त्रिषष्टि० १०।२।१०६

१४ अह ऊणअट्ठवासो भयव कीलइ कुमारएहिं सय।
आमलियाखेल्लेण लोयपसिद्धेण पुरबाहिं॥

—महावीर० ७५। पृ० ३३, १

१५ आवश्यक चूर्णि पृ० २४६

१६ भगव पुण चेडरूवेहिं सम रुक्खखेड्डेण कीलइ।

—आव० हारि० वृत्ति पृ० १८१

१७ सम पारद्धो रुक्खखेड्डेण अभिरमिउ।

—महावीरचरिय पृ० १२५

भद्राचार्य[18] ने 'द्रुमक्रीडा' कहा है। इस प्रकार क्रीडा के नामो मे अन्तर आया है।

तिन्दुषक क्रीडा

बालक पुन एकत्र हुए और खेल फिर प्रारभ हुआ। इस बार वे 'तिंदुषक क्रीडा[19] खेलने लगे। जिसमे किसी एक वृक्ष को अनुलक्ष कर सभी बालक दौडते। जो सर्वप्रथम वृक्ष को छू लेता, वह विजयी होता और जो पराजित होता उसकी पीठ पर विजयी बालक आरूढ होता। इस बार वह देव भी किशोर का रूप धारण कर उस क्रीडादल मे सम्मिलित हो गया, खेल मे वर्द्धमान के साथ हार जाने पर नियमानुसार उसे वर्द्धमान को पीठ पर बैठाकर दौडना पडा। किशोर रूप धारी देव दौडता-दौडता बहुत आगे निकल गया और उसने विकराल रूप बनाकर वर्द्धमान को डराना चाहा। देखते ही देखते किशोर ने लम्बा ताड-सा भयकर पिशाच रूप बनाया।[20] किन्तु वर्द्धमान उसकी करतूत देखकर के भी घबराये नहीं। वे अविचल रहे, और साहस के साथ उसकी पीठ पर ऐसा मुष्टिप्रहार किया कि देवता वेदना से चीख उठा। शीघ्र ही विकराल पिशाच का रूप सिमटाकर नन्हा-सा किशोर बन गया। उसका गर्व खडित हो गया। उसने बालक वर्द्धमान के पराक्रम का लौहा माना और वन्दना करते हुए कहा—इन्द्र ने जैसी आपकी प्रशसा की थी, आप उससे भी अधिक धीर व वीर है। देव स्तुति कर अपने स्थान पर चला गया।

---

१८ कुमार भास्वराकार द्रुमक्रीडापरायणम्।
स विभीषयितु वाञ्छन् महानागाकृति दधत्॥

—उत्तरपुराण ७४।२९१

१९ (क) अह पुणरवि सामी तदूसएण अभिरमति।

— आवश्यक चूर्णि पृ० २४६

(ख) अह पुणोऽवि सामी तिंदूसएण अभिरमइ।

—महावीर गुण० पृ० १२५-१२६

२० (क) आव० चूर्णि पृ० २४६
(ख) महावीर० पृ० १२६
(ग) त्रिषष्टि० १०।२।१११-११७
(घ) आवश्यक मलय० पृ० २५८

आवश्यक चूर्णि, महावीरचरिय, चउप्पनमहापुरिसचरिय और त्रिषष्टि शलाकापुरुष मे उपर्युक्त घटना आई है, पर उसमे देव का नाम नही बताया है और दूसरी बात उस देव ने महावीर यह नाम दिया यह उल्लेख नही हुआ है। वह 'वन्दिय वीर पडिनियत्तो,'[२१] भगवान् को वन्दन कर चला गया। विशेषावश्यक भाष्य के अनुसार इन्द्र ने महावीर कहा है[२२] पर उसने यह नाम नही दिया है, पर उत्तरपुराणकार ने देव का नाम सगम दिया है, उसमे सर्प की ही एक घटना है। तिंदुषक क्रीडा का उल्लेख नही है और उस सगम देव ने महावीर की स्तुति की और महावीर यह नाम रखा।[२३] श्वेताम्बर परम्परा के ग्रन्थो मे सगम देव का उल्लेख आया है पर इस समय नही, किन्तु भगवान् के साधना काल मे आया है।

अतुल बल

भगवान् महावीर जन्म से ही अतुल बली थे। उनके बल के सम्बन्ध मे उपमालकार से बताया गया है कि बारह सुभटो का बल एक वृषभ मे, दस वृषभो का बल एक अश्व मे, बारह अश्वो का बल एक महिष मे, पन्द्रह महिषो का बल एक हाथी मे, पाच सौ हाथियो का बल एक केसरी सिंह मे, दो हजार केसरी सिंह का बल एक अष्टापद मे, दस लाख अष्टापदो का बल एक बलदेव मे, दो बलदेवो का बल एक वासुदेव मे, दो वासुदेवो का बल एक चक्रवर्ती मे, एक लाख चक्रवर्तियो का बल एक नागेन्द्र मे, एक करोड नागेन्द्रो का बल एक इन्द्र मे, ऐसे अनन्त इन्द्रो का बल तीर्थंकरो की एक कनिष्ठ अगुलि मे होता है। उनके बल की तुलना किसी के बल से नही की जा सकती।[२४]

प्रकारान्तर से भाष्य मे कहा है—कुए के किनारे बैठे हुए वासुदेव को लोह की शृंखलाओ से बाधकर यदि सोलह हजार राजा अपनी सेनाओ के

---

२१ विशेषावश्यक भाष्य १८५४

२२ विशे० भाष्य १८५२

२३ ललजिह्वाशतारयुग्रमारुह्य तमहि विभो।
कुमार क्रीडयामास मातृपर्यकवत्तदा॥
विजृम्भमाणहर्षाम्भोनिधि सङ्गमकोऽमर।
स्तुत्वा भवान्महावीर इति नाम चकार स॥

—उत्तरपुराण ७४।२९४-२९५

२४ (क) आगम और त्रिपिटक एक अनुशीलन, पृ० १४७
(ख) जैनधर्म का मौलिक इतिहास पृ० ३५६

साथ सम्पूर्ण शक्ति लगाकर खीचे, तथापि वासुदेव आनन्द पूर्वक बैठे हुए भोजन करते रहे, किञ्चित्-मात्र भी उस स्थान से न हिले न डुले अर्थात् वहा से चलायमान नही होते हे, ऐसे वासुदेव से दुगुना बल चक्रवर्ती मे होता है और चक्रवर्ती से भी अपरिमित बल तीर्थकरो मे होता हे।[२५]

देव व इन्द्रो को भी इसीलिए वे पराजित कर देते हे, क्योकि तन-बल के साथ ही उनमे अतुल आत्मबल होता है।

विद्याशाला मे

आचाराग और कल्पसूत्र मे भगवान् महावीर का कलाचार्य के पास जाकर अध्ययन करने की किंचित् मात्र भी सूचना नही है। चउप्पन्न महापुरिस चरिय और उत्तरपुराण मे भी इस घटना का उल्लेख नही हुआ है। यह घटना सर्वप्रथम जिनभद्रगणी क्षमाश्रमण के विशेषावश्यक भाष्य मे आई है।[२६] भाष्य मे कथा का इतना विस्तार नही है जितना बाद के लेखको ने किया है। आवश्यकचूर्णि मे जिनदासगणी महत्तर ने स्पष्टीकरण करते हुए लिखा है कि आवश्यक नियुक्ति मे इस द्वार का उल्लेख न होने पर भी उसकी सूचना 'च' शब्द से करने मे आई है।[२७] भाष्य के कथासकेत को चूर्णि मे कुछ विस्तार दिया है और फिर महावीर चरिय, त्रिषष्टि शलाकापुरुष चरित्र

---

२५ सोलस रायसहस्सा, सव्व-बलेण तु सकलनिबद्ध।
अछति वासुदेव, अगडतडम्मि ठिय सत॥
घेतूण सकल सो, वाम हत्थेण अछमाणाण।
भुजिज्ज विलिपिज्ज व, महुमण ते न चाए ति॥
दो सोला बत्तीसा सव्व बलेण तु सकल निबद्ध।
अछति चक्कवट्टि अगडतडम्मि ठिय सत॥
घेतूण सकल सो वामगहत्थेण अछमाणाण।
भुजिज्ज विलिपिज्ज व चक्कहर ते न चायन्ति॥
ज केसवस्स बल, त दुगुण होइ चक्कवट्टिस्स।
तत्तो बला बलवगा, अपरिमियबला जिणवरिंदा॥

—विशे० भाष्य मूल पृ० ५७-५८

२६ अध त अम्मापितरे जाणित्ता अधिय अट्ठवासाय।
कतकौतुअलकार लेहायरियस्स उवणेन्ति॥

—विशेषावश्यक भाष्य १८५५-१८५८

२७ इयाणि च सद्दसूचित लेहायारियोवणयणति दार।

—आव० चूर्णि पृ० २४७

तथा कल्पसूत्र की विभिन्न टीकाओ मे उसे अधिक काव्यमय व रसप्रद बनाया गया है। वह कथा इस प्रकार है—

महावीर जब आठ वर्ष के हुए तब माता-पिता ने शुभ मुहूर्त देखकर उनको अध्ययन के लिए कलाचार्य के पास भेजा। माता-पिता को उनके जन्मसिद्ध तीन ज्ञान और अलौकिक प्रतिभा का परिचय नही था। उन्होने परम्परानुसार पण्डित को उपहार मे नारियल, बहुमूल्य वस्त्र व आभूपण दिए। विद्यार्थियो के लिए खाने योग्य श्रेष्ठ पदार्थ व उपयोगी वस्तुए वितरित की। पण्डित ने महावीर के बैठने के लिए विशेप आसन की व्यवस्था की।

माता-पिता जब महावीर को अध्ययन के लिए ले जा रहे थे तब इन्द्र का आसन चलायमान हुआ, उसने अवधिज्ञान से देखा कि विशिष्ट ज्ञानी को सामान्य जन क्या पढायेगा। महावीर के बुद्धिवैभव तथा सहज प्रतिभा का परिचय विद्यागुरु तथा जनता को कराने की दृष्टि से वह एक वृद्ध ब्राह्मण का रूप बनाकर वहा पर आया।[२८] उसने सभी विद्यार्थियो व पण्डितो की उपस्थिति मे व्याकरण सम्बन्धी अनेक जटिल प्रश्न पूछे। महावीर ने उनके सभी प्रश्नो का उत्तर दे दिया। पण्डित व विद्यार्थी महावीर की अलौकिक प्रतिभा को देखकर चकित हो गये। पण्डित ने भी अपनी कुछ पुरानी शकाए महावीर के सामने उपस्थित की। महावीर ने उनका तर्कपुरस्सर उत्तर दिया।

जब पण्डित, बालक वर्द्धमान की ओर साश्चर्य देखने लगा तो वृद्ध ब्राह्मण रूपधारी इन्द्र ने कहा—विज्ञवर! यह साधारण बालक नही है, यह विद्या का सागर है और सम्पूर्ण शास्त्रो का पारगमी है। वृद्ध ब्राह्मण ने महावीर के मुख से निस्सृत उन उत्तरो को व्यवस्थित सकलित कर ऐन्द्र व्याकरण की सज्ञा दी।[२९]

---

२८ (क) आवश्यक चूर्णि २४८
(ख) आवश्यक हारिभद्रीय वृत्ति पृ० १८२
(ग) ,, मलयगिरिवृत्ति पृ० २५६।१
(घ) महावीर चरिय गा० ६२-६५ पृ० ३४ नेमि०
(ङ) ,, ,, गुणचन्द्र पृ० १२७
(च) त्रिपष्टि० १०।२।११६-२०

२९ (क) आव० चूर्णि २४८
(ख) इद भगवतेन्द्राय प्रोक्त शब्दानुशासनम्।
उपाध्यायेन तच्छ्रुत्वा लोकेष्वैन्द्रमितीरितम्॥
—त्रिपष्टि० १०।२।१२१-२२

राजा सिद्धार्थ और माता त्रिशला ने पुत्र की असाधारण योग्यता देखी तो बहुत ही प्रसन्न हुए, उनके हृत्तन्त्री के तार झनझना उठे कि हमारा पुत्र तो गुरुओ का भी गुरु है।

विवाह-प्रकरण

भगवान महावीर के 'विवाह-प्रकरण' को लेकर श्वेताम्बर और दिगम्बर ग्र थो मे गहरा मतभेद है। एक विद्वान ने लिखा है कि—"दिगम्बर परम्परा के अनुसार महावीर के समक्ष विवाह प्रस्ताव आया जरूर, पर अपनी सहज वीतराग वृत्ति के कारण उन्होने स्वीकार नही किया, श्वेताम्बर परम्परा कहती है—वर्धमान स्वय भोगो के प्रति अनासक्त थे, किंतु माता-पिता के स्नेहाग्रह के कारण उन्होने विवाह प्रस्ताव स्वीकार कर लिया।"

मानव मनोविज्ञान की दृष्टि से विवाह न करके त्यागी बनने की अपेक्षा विवाह करके उससे विरक्त हो जाना त्याग और उच्च सकल्प को अधिक तीव्रता के साथ प्रस्तुत करता है। महावीर न स्वय भी तो कहा है—"**जे य कते पिये भोए लद्धे विप्पिट्ठी कुव्वई**" जो कात-प्रिय भोगो को प्राप्त होने पर छोड देता है वह वास्तविक त्यागी है। इस दृष्टि से विवाहोपरात गृहत्याग महावीर की विरक्ति को अधिक प्रभावशाली बनाता है। अस्तु यह तो हुई साहित्य एव मनोविज्ञान की बात, हमे प्राचीन परम्परा व ग्र थो आदि के प्रकाश मे भी यह देखना है कि वास्तविकता क्या है, और श्वेताम्बर परम्परा के प्रमाण महावीर के विवाह प्रकरण को किस रूप मे स्वीकार करते है।

आचाराग, और कल्पसूत्र मे महावीर के विवाह करने का वर्णन नही आया है, पर जहा भगवान् के सम्बन्धियो का परिचय दिया गया है, वहा बताया है कि—उनकी पत्नी का नाम **यशोदा**, पुत्री का नाम **प्रियदर्शना** और उसका दूसरा नाम **अनवद्या** तथा दोहित्री का नाम **शेशवती** था और वह यशस्वती के नाम से भी विश्रुत थी।[1] इससे यह सिद्ध होता है कि उन्होने विवाह किया था।

---

१ (क) **समणस्स ण भगवओ महावीरस्स भज्जा 'जसोया' कोडिण्णागोत्तेण।**

—आयारो तह आयार चूला, २।१५।२२ से २४

(ख) कल्पसूत्र १०७ से १०९

विशेपावश्यक भाष्य[२], आवश्यक हारिभद्रीया वृत्ति[३], आवश्यक मलयगिरि वृत्ति[४], महावीर चरिय[५], त्रिपष्टि शलाकापुरुप चरित्र[६] और कल्पसूत्र[७] की विभिन्न टीकाओ मे विवाह का उल्लेख करते हुए लिखा है—

जीवन के उपाकाल से ही महावीर चिन्तनशील थे। उनका उर्वर मस्तिष्क सदा, सर्वदा अध्यात्मसागर की गहराई मे डुबकिया लगाता रहता था, वे ससार मे अनुरक्त नही, विरक्त थे, जिससे माता-पिता के मानस मे ये विचार तरगे उठती रहती थी कि कही पुत्र श्रमण न बन जाय। जब वे युवा हुए तब उन्होने मित्रो के मायध्म से महावीर के सामने विवाह का प्रस्ताव प्रस्तुत किया। महावीर ने अपने मित्रो से विवाह का विरोध करते हुए कहा—"विवाह मोह-वृद्धि का हेतु होने से भव-भ्रमण का भी कारण है। मेरी आन्तरिक इच्छा दीक्षा लेने की है, पर मेरे कारण माता-पिता को दु ख न हो इसलिए मे दीक्षा ग्रहण नही कर रहा हू।"

मित्रो के साथ महावीर का वार्तालाप चल ही रहा था, उसी समय माता त्रिशला भी वहा आ पहुँची। महावीर ने खडे होकर माता के प्रति आदर प्रदर्शित किया। माता ने कहा—'पुत्र! मै जानती हूँ कि तुम्हारे मन मे त्याग-वैराग्य की भावना प्रबल है, पर हमारी यह उत्कट इच्छा है कि तुम योग्य राजकन्या के साथ पाणिग्रहण करो।'[८]

माता-पिता के स्नेह भरे आग्रह को महावीर का भावुक हृदय टाल न सका। वसन्तपुर के महासामन्त[९] समरवीर की पुत्री यशोदा जो उस युग की श्रेष्ठ सुन्दरी थी, के साथ पाणिग्रहण सम्पन्न हुआ।

---

२ उम्मुक्क बालभावो कमेण अध जोव्वण अणुप्पत्तो।
भोगसमत्थ णातु अम्मापितरो य वीरस्स।
तिधिरिक्खम्मि पसत्थे महलसामन्तकुल पसूताए।
कारेन्ति पाणिगहण जसोतवररायकण्णाए॥
—विशे० भाष्य १८५७-१८५८

३ आव० हारि० वृत्ति० पृ-१८२

४ आव० मल० वृत्ति पृ० २५९

५ (क) महावीर चरिय-नेमिचन्द्र गा० १-३ पृ० ३४।१
(ख) गुणचन्द्र प्र० ४। पृ० १२८-१२९

६ त्रिपष्टि० १०।२।१२५-१३७

७ कल्पसूत्र सुबोधिका

८ त्रिपष्टि० १०।२।१३८-१४६

सभी ग्रन्थो मे महावीर की एक पत्नी यशोदा का ही उल्लेख हुआ है, पर आचार्य शीलाङ्क ने लिखा है कि जब महावीर युवा हुए तब उनके गुणो से आकर्षित होकर अनेक राजा अपनी रूपवान् कन्याओ को लेकर आये, महावीर विषय भावना से विरक्त थे तथापि माता-पिता के आग्रहवश अनेक कन्याओ के साथ विवाह किया।[10]

दिगम्बर परम्परा के समर्थ आचार्य जिनसेन ने भी लिखा है कि जब भगवान् महावीर का जन्मोत्सव हो रहा था तब जितशत्रु राजा कुण्डपुर आया था। राजा सिद्धार्थ ने उसका अच्छा स्वागत किया था। उसके यशोदया रानी से उत्पन्न यशोदा नाम की पवित्र पुत्री थी। अनेक कन्याओ से सहित उस यशोदा का भगवान् महावीर के साथ विवाह-मगल देखने की वह उत्कृष्ट अभिलाषा रखता था। पर महावीर तप के लिए चले गये। तब जितशत्रु भी निराश होकर तप के मार्ग की ओर मुडा।[11]

इससे ज्ञात होता है आचार्य जिनसेन को, भगवान् महावीर की पत्नी यशोदा थी ऐसी कोई परम्परा प्राप्त हुई होगी,[12] पर उसका समर्थन करने

---

९ वैजयन्ती कोष (पृ ८४७) मे सामन्त का अर्थ पडौसी राजा किया है। कौटिलीय अर्थशास्त्र मे भी सामन्त शब्द का यही अर्थ उपलब्ध होता है। पडौसी राजाओ मे भी जो प्रमुख होते थे, वे महासामन्त कहलाते थे।

—देखिए हर्षचरित परिशिष्ट २, पृ० २१७-१८, डा० वासुदेवशरण

१० एव च परियप्पेऊण विसयविरत्तचित्तेणावि पडिच्छियाओ कण्णयाओ। वत्त जहाविहिं वारेज्ज।

—चउपन्न० पृ० २७२

११ जिनेन्द्रवीरस्य समुद्भवोत्सवे तदागत कुण्डपुर सुहृत्पर।
सुपूजित कुण्डपुरस्य भूभृता नृपोऽयमाखण्डलतुल्यविक्रम ॥
यशोदयाया सुतता यशोदया पवित्रया वीरविवाहमङ्गलम्।
अनेककन्यापरिवारयारुहत् समीक्षितु तुङ्गमनोरथ तदा ॥

—हरिवश ६६।७ से ९

१२ हरिवश पुराण की रचना जिनसेन ने सौराष्ट्र के 'वर्धमानपुर' जिसका वर्तमान मे नाम 'वढवाण' है वहा प्रारभ की थी (६६।५३)। जहा पर श्वेताम्बर परम्परा का प्राधान्य था, सभव है इस कारण श्वेताम्बर ग्रन्थो से उनका परिचय रहा होगा, किन्तु यशोदा का निर्देश करके भी उन्होने कहानी को अपनी परम्परा-

के बजाय, उन्होने अपनी दृष्टि से घटना को बदल दिया है। दूसरी बात चउप्पन्न महापुरिस चरिय मे बहुत कन्याओ की बात आई है, उसका समर्थन हरिवश पुराण से भी होता है।

श्वेताम्बर ग्रन्थो मे यशोदा को समरवीर की पुत्री लिखा है।[१३] हरिवश पुराण मे जितशत्रु की पुत्री लिखा है।[१४] आचाराग[१५] और कल्पसूत्र मे उसका गोत्र कोडिन्य लिखा है, विशेपावश्यक मे महासामन्त कुल कहा है।[१६] हरिवश पुराण मे हरिवश लिखा है।[१७] इस प्रकार कुछ मत भेद है।

समवायाङ्ग मे उन्नीस तीर्थंकरो ने [टीकाकार ने यहाँ पर राज्य भोग-कर ऐसा अर्थ किया है] गृहस्थाश्रम भोग कर दीक्षा ली ऐसा बताया है।[१८] स्थानाङ्ग मे वासुपूज्य, मल्ली, अरिष्टनेमि, पार्श्व और महावीर को कुमारवास मे प्रव्रजित कहा है।[१९] इसी का अनुसरण आवश्यक निर्युक्ति,[२०] पउमचरिय

गत धारणा की सुरक्षा के लिए बदल दी है। यह भी स्मरण रखना चाहिए कि हरिवश पुराण के प्रारभ मे जहा पर महावीर चरित्र विस्तार से दिया है, सर्ग २ मे वहा यशोदा का प्रसग नही आया है।

१३ समरवीर नृपपुत्रीं यशोदा परिणायित ।

—कल्पसुबोधिका टीका, पत्र २६०

१४ हरिवश पुराण ६६।५ से ८

१५ (क) महावीरस्स भज्जा 'जसोया' कोडिण्णा गोत्तेण ।

—आचाराग २।१५।२२

(ख) कल्पसूत्र १०७

१६ महन्तसामन्तकुलपसूताए ।

—विशेपा० १८५६

१७ हरिवश० ६६।५ से ८

१८ एगूणवीस तित्थयरा अगारवासमज्झे वसित्ता मुडे भवित्ता ण अगाराओ अणगारिय पव्वइया ।

—समवायाग सूत्र १९

१९ पच तित्थयरा कुमारवासमज्झे वसित्ता मुडा जाव पव्वइया त जहा—वासुपुज्जे, मल्ली, अरिट्ठनेमी पासे वीरे ।

—स्थानाङ्ग ५।३।५४३

२० (क) आव० निर्युक्ति हारिभद्रीप्रतिपु पृ० २९५

लोकप्रकाश मे स्पष्ट रूप से लिखा है कि मल्लिनाथ और अरिष्टनेमि ने बिना विवाह किये ही दीक्षा ग्रहण की।[२३]

साराश यह है कि श्वेताम्बर परम्परा के मन्तव्यानुसार भगवान् महावीर ने यशोदा के साथ विवाह किया था तो दिगम्बर परम्परा के अनुसार उन्होने विवाह नही किया था।

आचाराग, कल्पसूत्र मे महावीर के पारिवारिक जनो का परिचय भी मिलता है। उनके चाचा का नाम सुपार्श्व था, अग्रज का नाम नन्दीवर्धन था,[२४] बडी बहन का नाम सुदर्शना था। पत्नी, पुत्री, माता-पिता का नाम पूर्व बताया जा चुका हे।

आश्चर्य है आचार्य शीलाङ्क ने नन्दीवर्धन का लघु भाई के रूप मे उल्लेख किया हे। माता-पिता के स्वर्गस्थ होने पर अपने कनिष्ठ भाई को राज्य सौप कर दीक्षा ली,[२५] यहा नाम नही है पर आगे चलकर वस्त्रदान के प्रसग मे उसका नाम नन्दीवर्धन लिखा है।[२६]

(ग) कुमार—सन, बाय यूथ, ए बिलो फाइव, ए प्रिन्स।

—आप्टे सस्कृत-इ ग्लिश डि० पृ० ३६३

(घ) युवराजस्तु कुमारो भर्तृदारक।

— अमरकोष काड १, नाट्यवग

२३ अभोगफलकर्माणौ मल्लिनेमिजिनेश्वरौ।
निरीयतुरनुद्वाहौ कृतोद्वाहा परे जिना।'

—लोकप्रकाश सर्ग ३२।१००४ पृ० ५२४

२४ (क) महावीरस्स जेट्ठे भाया 'णदिवद्धणे''।

—आचाराग २।१५।२०

(ख) कल्पसूत्र

२५ परलोयमइगतेसु जणाणि-जणएसु पणामिऊण णियकणिट्ठस्स भाउणो रज्ज।

—चउप्पन्न० २७२

२६ तओ गतूण णदिवद्धणस्स भयवओ भाउणो।

—चउप्पन्न २७४

माता-पिता का स्वर्गवास

यह हम पूर्व ही बता चुके है कि महावीर के माता- पिता भगवान् पार्श्वनाथ के श्रमणोपासक थे। उन्होने दीर्घकाल तक श्रावक धर्म का पालन किया, जब जीवन का अन्तिम समय सन्निकट आया तब उन्होने आत्मा की विशुद्धि के लिए कृत-पापो की आलोचना की, प्रायश्चित्त लेकर आत्मा को निर्मल बनाया। डाभ के सथारे (आसन) पर बैठकर चारो प्रकार के आहार का त्याग कर सथारा किया और फिर अपश्चिम मारणान्तिक सलेखना से झूषित शरीर वाले काल के समय मे काल कर अच्युतकल्प मे देव रूप मे उत्पन्न हुए। वे स्वर्ग से च्युत होकर महाविदेह मे उत्पन्न होगे और सिद्धि प्राप्त करेगे।[1]

दिगम्बर परम्परा के ग्रन्थो मे महावीर का गर्भ मे प्रतिज्ञा करने का उल्लेख नही है और न माता-पिता के स्वर्गगमन के पश्चात् दीक्षा लेने का ही उल्लेख है। जब महावीर ने दीक्षा ली उस समय उनके माता-पिता जीवित थे, ऐसा भी उल्लेख है। भट्टारक श्री सकलकीर्ति ने वीर-वर्धमान चरित्र मे लिखा है—"वैराग्य उत्पादक मधुर-सभाषण से अपने दीक्षा लेने का भाव माता-पिता और कुटुम्बी जनो को अवगत कराया।[2]

---

१ (क) आयारो तह आयार चूला २।१५।२५

(ख) अम्मापितीहि भगव देवत्तगतेहि पव्वइतो।

—आव० निर्युक्ति० ३४२

(ग) विशेषा० भाष्य १८६०

(घ) आव० चूर्णि पृ० २४९

(च) अष्टाविशे जन्मतोऽब्दे स्वामिन पितरावथ।
विहितानशनौ मृत्वा जग्मतु कल्पमच्युतम् ॥

—त्रिषष्टि० १०।२।१५६

२ तदा स मातर स्वस्य महामोहात्तमानसाम्।
बन्धूश्च पितर दक्ष महाकष्टेन तीर्थकृत् ॥
विविक्तैर्मधुरालापैरुपदेशशतादिभि ।
वैराग्यजनकैर्वाक्यै स्वदीक्षायै ह्यबोधयत् ॥

—वीरवर्धमान चरित्र ४१-४२

लोकप्रकाश मे स्पष्ट रूप से लिखा है कि मल्लिनाथ और अरिष्टनेमि ने बिना विवाह किये ही दीक्षा ग्रहण की ।[२३]

साराश यह है कि श्वेताम्बर परम्परा के मन्तव्यानुसार भगवान् महावीर ने यशोदा के साथ विवाह किया था तो दिगम्बर परम्परा के अनुसार उन्होने विवाह नही किया था ।

आचाराग, कल्पसूत्र मे महावीर के पारिवारिक जनो का परिचय भी मिलता है। उनके चाचा का नाम सुपार्श्व था, अग्रज का नाम नन्दीवर्धन था,[२४] बडी बहन का नाम सुदर्शना था । पत्नी, पुत्री, माता-पिता का नाम पूर्व बताया जा चुका हे ।

आश्चर्य है आचार्य शीलाङ्क ने नन्दीवर्धन का लघु भाई के रूप मे उल्लेख किया है । माता-पिता के स्वर्गस्थ होने पर अपने कनिष्ठ भाई को राज्य सौप कर दीक्षा ली,[२५] यहा नाम नही है पर आगे चलकर वस्त्रदान के प्रसग मे उसका नाम नन्दीवर्धन लिखा है ।[२६]

(ग) कुमार—सन, बाय यूथ, ए बिलो फाइव, ए प्रिन्स ।

—आप्टे सस्कृत-इ ग्लिश डि० पृ० ३६३

(घ) युवराजस्तु कुमारो भर्तृदारक ।

— अमरकोप काड १, नाट्यवर्ग

२३ अभोगफलकर्माणौ मल्लिनेमिजिनेश्वरौ ।
निरीयतुरनुद्वाहौ कृतोद्वाहा परे जिना ।'

—लोकप्रकाश सर्ग ३२।१००४ पृ० ५२४

२४ (क) महावीरस्स जेट्ठे भाया 'णदिवद्धणे' ।

—आचाराग २।१५।२०

(ख) कल्पसूत्र

२५ परलोयमइगतेसु जणाणि-जणएसु पणामिऊण णियकणिट्ठस्स भाउणो रज्ज ।

—चउप्पन्न० २७२

२६ तओ गतूण णदिवद्धणस्स भयवओ भाउणो ।

-चउप्पन्न २७४

माता-पिता का स्वर्गवास

यह हम पूर्व ही बता चुके है कि महावीर के माता-पिता भगवान् पार्श्वनाथ के श्रमणोपासक थे। उन्होने दीर्घकाल तक श्रावक धर्म का पालन किया, जब जीवन का अन्तिम समय सन्निकट आया तब उन्होने आत्मा की विशुद्धि के लिए कृत-पापो की आलोचना की, प्रायश्चित्त लेकर आत्मा को निर्मल बनाया। डाभ के सथारे (आसन) पर बैठकर चारो प्रकार के आहार का त्याग कर सथारा किया और फिर अपश्चिम मारणान्तिक सलेखना से भूपित शरीर वाले काल के समय मे काल कर अच्युतकल्प मे देव रूप मे उत्पन्न हुए। वे स्वर्ग से च्युत होकर महाविदेह मे उत्पन्न होगे और सिद्धि प्राप्त करेगे।[1]

दिगम्बर परम्परा के ग्रन्थो मे महावीर का गर्भ मे प्रतिज्ञा करने का उल्लेख नही है और न माता-पिता के स्वर्गगमन के पश्चात् दीक्षा लेने का ही उल्लेख है। जब महावीर ने दीक्षा ली उस समय उनके माता-पिता जीवित थे, ऐसा भी उल्लेख है। भट्टारक श्री सकलकीर्ति ने वीर-वर्धमान चरित्र मे लिखा है—"वैराग्य उत्पादक मधुर-सभापण से अपने दीक्षा लेने का भाव माता-पिता और कुटुम्बी जनो को अवगत कराया।[2]

---

१ (क) आयारो तह आयार चूला २।१५।२५

(ख) अम्मापितीहि भगव देवत्तगतेहि पव्वइतो।

—आव० निर्युक्ति० ३४२

(ग) विशेपा० भाष्य १८६०

(घ) आव० चूर्णि पृ० २४९

(च) अष्टाविंशे जन्मतोऽब्दे स्वामिन पितरावथ।
विहितानशनौ मृत्वा जग्मतु कल्पमच्युतम्॥

—त्रिपष्टि० १०।२।१५६

२ तदा स मातर स्वस्य महामोहात्तमानसाम्।
बन्धूश्च पितर दक्ष महाकष्टेन तीर्थकृत्॥
विविक्तैर्मधुरालापैरुपदेशशताविभि।
वैराग्यजनकैर्वाक्यै स्वदीक्षायै ह्यबोधयत्॥

—वीरवर्धमान चरित्र ४१-४२

भगवान् ने दीक्षा लेकर ज्यो ही वन की ओर प्रयाण किया त्यो ही माता प्रियकारिणी त्रिशला पुत्र वियोग से पीडित होकर करुण-क्रन्दन करने लगी और जगल की ओर भागने लगी। कवि ने माता के करुण-क्रन्दन का जो शब्द-चित्र उपस्थित किया है, उसे पढकर हृदय करुणा से छलक उठता है।

भगवान् के दीक्षा लेने पर माता त्रिशला के करुण-विलाप का वर्णन कुमुदचन्द्र ने भी महावीर-रास मे किया है।

श्वेताम्बर ग्रन्थो मे भगवान् जब अट्ठाईस वर्ष के थे तब उनके माता-पिता स्वर्गस्थ हुए ऐसा वर्णन है।

वैराग्य भावना

आवश्यक निर्युक्ति और विशेषावश्यक भाष्य मे जिस बात का निर्देश नही है, वह बात आवश्यक चूर्णि मे आई है और उसी का अनुसरण आवश्यक हारिभद्रीयवृत्ति मलयगिरिवृत्ति, महावीरचरिय, त्रिपष्टि शलाकापुरुष चरित्र मे किया गया है कि —जब महावीर अट्ठाईस वर्ष के हुए तब माता-पिता के दिवगत होने पर महावीर ने नन्दिवर्धन, सुपार्श्व आदि स्वजनो से कहा—"अब मेरी प्रतिज्ञा पूर्ण हो चुकी है, मै दीक्षा ग्रहण करू गा।"[3]

नन्दिवर्धन आदि का शोक पूर्वापेक्षा द्विगुणित हो गया, उन्होने बहुत दु खित होते हुए कहा—"अभी माता-पिता के वियोगजन्य दु ख को हम विस्मृत ही नही कर पाये ह और तुम प्रव्रज्या की बात करते हो, क्या यह कार्य इस समय घाव पर नमक छिटकने जैसा नही है ? अत. कुछ काल तक ठहरो, बाद मे प्रव्रज्या लेना। तब तक हम शोक रहित हो जाये।"[4]

भगवान ने अवधिज्ञान से देखा कि मुझ पर इनका अपार स्नेह है। मेरे प्रव्रजित होने पर इनके दिल को गहरा आघात लगेगा। अत कुछ समय रुककर इन्हे धीरज देना चाहिए। इसलिए उन्होने कहा—अच्छा तो मुझे कब तक ठहरना होगा ? उन्होने बताया—कि हमारा शोक दो वर्ष मे शान्त हो जायेगा।"[5]

---

३ (क) आव० चूर्णि० पृ० २४६
(ख) आव० हारि० पृ० १८३, (ग) आ० मल० वृत्ति २६०
(घ) महावीरचरिय, गुणचन्द्र पृ० १३४
४ आव० चूर्णि० पृ० २४६
५ (क) आव० चूर्णि० २४६

भगवान् महावीर ने कहा —"आप लोगो की बात मुझे मान्य है किन्तु इस समय भोजन आदि क्रिया अपनी इच्छानुसार करूगा।' परिजनो ने महावीर की बात मान्य कर ली।

दो वर्ष से भी कुछ अधिक काल तक महावीर विरक्त भाव से घर मे रहे। वे सचित्त जल से स्नान नहीं करते थे। हाथ पैरो का प्रक्षालन भी अचित्त जल से ही करते थे और आचमन भी उसी का लेते थे, इस अवधि मे अप्रासुक आहार, रात्रि-भोजन का उपयोग भी नही किया है।[६] ब्रह्मचर्य का भी पूर्ण पालन किया। टीकाकार के अभिमतानुसार महावीर ने इस काल मे प्राणातिपात की तरह असत्य, कुशील और अदत्त आदि का भी परित्याग कर रखा था। भूमि-शयन करते एव क्रोधादि से रहित हो एकत्वभाव मे लीन रहते थे।[७]

चक्रवर्ती नही

भगवान् महावीर जब गर्भ मे आये थे तब माता त्रिशला ने चौदह महास्वप्न देखे थे। तथा शरीर पर भी एक हजार आठ लक्षण थे, इस कारण लोगो मे यह कल्पना चल रही थी कि हो न हो यह कुमार चक्रवर्ती होगे। चक्रवर्ती बनने पर ये हमे निहाल कर देंगे, इस दृष्टि से श्रेणिक, चण्डप्रद्योतन आदि बडे-बडे राजाओ ने अपने-अपने कुमार सेवा मे भेजे थे। पर उन्होने जब महावीर के त्याग-वैराग्य से ओत-प्रोत जीवन को देखा, पारिवारिक जनो के प्रति भी उनके मन मे विरक्ति देखी तब उन्हे यह विश्वास हो गया कि ये

(ख) भगवानाह-कियन्तम् ? स्वजन आह-वर्ष-द्वय।

—आव० हारि० पृ० १८३

(ग) महावीर चरिय १३४

६ (क) अविसाहिए दुवेवासे सीतोदगमभोच्चा णिक्खते अफासुग आहार राइभत्त च अणाहारेतो अविसाहिए दुते वासे, सीतोद अभोच्चा णिक्खते।

—आव० चूर्णि पृ० २४९

(ख) अविसाहिए दुवे वासे, सीतोद अभोच्चा णिक्खते।

—आचाराग १।९।११

७ (क) आचाराग प्र० टीका पृ० २७५, आगमोदय समिति

(ख) आवश्यक चूर्णि १ पृ० २४९

अनुसरण है।[२०] त्रिषष्टि मे पहले लोकान्तिक देवो का उद्बोधन है और बाद मे दान का वर्णन है।[२१] हरिवश पुराण मे भगवान् जब तीस वर्ष के हुए तब देवो ने सम्बोधन किया यह बात तो आई है पर साम्वत्सरिक दान का उल्लेख नही है।[२२] उत्तरपुराण मे भी साम्वत्सरिक दान का उल्लेख नही है।[२३]

आवश्यक चूर्णि, और महावीर चरिय[२४]आदि मे वर्णन है कि जब दीक्षा लेने का एक वर्ष अवशेष रहा तब महावीर ने मन मे यह सकल्प किया कि मैं एक वर्ष के पश्चात् निष्क्रमण करू गा, तब देवेन्द्र का आसन चलायमान हुआ, उसने अवधिज्ञान से देखा कि वर्धमान वार्षिक दान देने का विचार कर रहे है, अब मेरा कर्तव्य है कि मैं तीन अरब अठासी करोड और ८० लाख की सुवर्ण मुद्राए उनके भडार मे भर दू। उसने वैश्रमण देव के द्वारा उतनी सम्पत्ति वर्धमान के भडारो मे पहुँचाई। फिर वर्धमान प्रतिदिन दान देने लगे। दान लेने वालो मे सनाथ, अनाथ, रोगी, भिक्षुक, दरिद्र आदि अनेक प्रकार के व्यक्ति थे। भगवान् प्रतिदिन एक करोड आठ लाख सुवर्ण मुद्राए दान मे देते। भारत के एक कोने से लेकर दूसरे कोने तक के लोग दान के लिए आने लगे।

राजा नन्दिवर्धन ने कुण्डग्राम नगर मे तथा उस प्रान्त मे यत्र-तत्र-सर्वत्र भोजनशालाए निर्माण कराई, जिसमे सभी आनन्द से भोजन कर सकें, वस्त्र, पात्र आदि जो वस्तुए जिसे चाहिए वे वस्तुए भी देने लगे, जिससे लोगो मे यह बात फैल गई कि नन्दिवर्धन राजा के वहा पर जिसे जिस वस्तु की आवश्यकता है उसे वह वस्तु मिलती है। इस प्रकार भगवान् को देवो ने जो सम्पत्ति दी वह सभी जनता-जनार्दन के कल्याण लिए समर्पित कर दी।

---

२० चउप्पन्न पृ० २०२

२१ तीर्थं प्रवर्तयेत्युक्तस्ततो लोकान्तिकामरैः ।
यथाकामितमर्थिभ्यो दान स्वाम्याब्दिक ददौ ॥

—त्रिषष्टि० १०।२।१६६

२२ हरिवश पुराण २।४७-५० पृ० १६

२३ उत्तरपुराण ७४।२९६-३०४

२४ (क) आवश्यक चूर्णि पृ० २४९-२५०

(ख) महावीर चरिय० प्रस्ताव ४, पृ० १३५

यहाँ पर एक प्रश्न उपस्थित होता है कि भगवान् महावीर ने अपने परिवार की सपत्ति दान दी या देवो द्वारा भडार मे रखी गई सपत्ति का दान किया ? चू कि परिवार की सपत्ति पर तो और दूसरो का भी अधिकार था और वे साधु नही बन रहे थे, अत उनको सपत्ति दान देने का कोई औचित्य नही लगता। परम्परागत धारणा भी यही है कि देवता भडार भरते है और वही सपत्ति तीर्थंकर वर्षीदान मे देते है।

अभिनिष्क्रमण

तीस वर्ष की अवस्था पार करने पर महावीर सम्पन्न प्रतिज्ञ हुए। तब लोकान्तिक देवो ने आकर प्रार्थना की—"हे क्षत्रिय वर वृषभ! आपकी जय हो। अब आप दीक्षा ग्रहण करे और समस्त प्राणियो के लिए हितकर धर्म-तीर्थ का प्रवर्तन करे।"[२५]

भगवान् महावीर ने भी अपने ज्येष्ठ भ्राता नन्दिवर्धन व चाचा सुपार्श्व आदि अभिभावको के समक्ष दीक्षा विपयक अपना दृढ सकल्प व्यक्त किया। सभी ने उसका अनुमोदन किया। नन्दिवर्धन ने अभिनिष्क्रमण महोत्सव प्रारभ किया।

आचाराग[२६] आदि के अनुसार महावीर के अभिनिष्क्रमण के अभिप्राय को जानकर भवनपति, वाण-व्यन्तर, ज्योतिष और वैमानिक देव-देविया अपनी ऋद्धि और समृद्धि के साथ आये। उन्होने वैक्रियशक्ति से सिहासन की रचना की। सभी ने मिलकर महावीर को सिहासन पर पूर्वाभिमुख बैठाया। उन्होने शतपाक व सहस्रपाक तेल से उनके शरीर का मालिश किया और स्वच्छ जल से उनका अभिषेक किया। गधकापाय वस्त्र से शरीर को पोछा गया और गोशीर्ष चन्दन का लेपन किया। अल्पभार वाले बहुमूल्य वस्त्र व आभूपण पहनाये। महावीर इन सभी कार्यों से निवृत्त होकर सुविस्तृत व

---

२५ जयजय खत्तिय वर वसभ! बुज्झहि भयव।
सव्व जगज्जीव हिय अरहतित्थ पव्वतेहि॥

२६ आचाराग २।१५।२७-२८-२९

२७ दिगम्बर परम्परा मे भी शिविका का नाम चन्द्रप्रभा दिया है। देखिए—
चन्द्रप्रभाख्यशिविकामधिरूढो दृढव्रत।

—उत्तरपुराण ७४।२९९

अभिग्रह

आचारांग के अनुसार दीक्षित होते ही महावीर ने मित्र, ज्ञाति व सम्बन्धी वर्ग को विसर्जित किया और एक महान् कठोर अभिग्रह धारण किया—

"आज से साढे बारह वर्ष पर्यन्त जब तक केवलज्ञान उत्पन्न न हो तब तक मैं देह की ममता को छोडकर रहूँगा। अर्थात् इस बीच मे देव, मानव या तिर्यंच जीवो की ओर से जो भी उपसर्ग—कष्ट उत्पन्न होंगे, उनको समभाव पूर्वक, सम्यक् रूप से सहन करूंगा।[४०]

ऐसा भी बताया गया है बाद मे जो भी उपसर्ग हुए वे सभी भगवान ने अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार सहन किये।

कल्पसूत्र[४१] मे उपसर्ग सहन करने का उल्लेख है परन्तु अभिग्रह करने का उल्लेख नही है।

आवश्यक चूर्णि व महावीर चरिय मे भी अभिग्रह का उल्लेख नही है।

विशेषावश्यक भाष्य मे तो सर्व पापो के अकरण की प्रतिज्ञा को ही अभिग्रह की सज्ञा दी है।[४२]

तीस वर्ष की आयु मे महावीर ने गृहत्याग कर, दृढ सकल्प कर साधना के असिधारा पथ पर कदम बढाया। ज्ञातखण्ड उद्यान के अचल से अब वे एकाकी विकट जनशून्य पथ को ओर बढ गये।

---

४० आयारो० २।१५।३४

४१ कल्पसूत्र सूत्र ११६

४२ कातूण णमोक्कार सिद्धाण अभिग्गह तु सो गेण्हे।
सव्व मे अकरणिज्ज पावत्ति चरित्तमारूढो॥
—विशेषा० भाष्य० १८६०

२

साधक जीवन
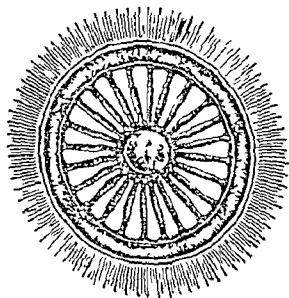
* दरिद्र ब्राह्मण को वस्त्रदान
* क्षमामूर्ति महावीर
* स्वावलम्बी महावीर
* प्रथम पारणा
* तापस के आश्रम मे
* शूलपाणि यक्ष का उपद्रव
* दस स्वप्न
* मोराक सन्निवेश मे
* चण्डकौशिक को प्रतिबोध
* श्वेताम्बा की ओर
* नाव किनारे लग गई
* धर्मचक्रवर्ती
* गोशालक की भेट
* गोशालक एक परिचय
* सगम के उपसर्ग
* जीर्ण की भावना पूर्ण का दान
* चमरेन्द्र द्वारा शरणग्रहण
* विदेह-साधना
* लाढप्रदेश मे
* तिल का प्रश्न वैश्यायन तापस
* महावीर भूले
* आजीविक सम्प्रदाय
* घोर अभिग्रह
* स्वातिदत्त के प्रश्न
* ग्वाले द्वारा कानो मे कीले
* साधना काल मे सहिष्णुता
* महावीर का तप
* कैवल्यप्राप्ति

साधक जीवन

भगवान महावीर के ३० वर्ष के गृहिजीवन की जो कुछ घटनाए वर्तमान साहित्य मे उपलब्ध है, उनकी चर्चा पिछले पृष्ठो पर की गई है। ३० वर्ष की भरी जवानी मे ससार के असीम ऐश्वय एव भोग सामग्रियो को लात मार कर साधना के आग्नेय पथ पर बढ जाना उत्कट साहस, अद्भुत वैराग्य एव प्रचड पौरुप का प्रतीक है।

भगवान का साधना काल तो वास्तव मे ही साधना काल था, उस जीवन मे उन्हे जो दैविक, पाशविक एव मानुपिक उपसर्ग, कष्ट एव परीषह उपस्थित हुए और उन प्रसगो पर उनकी अन्त करण की करुणा, कोमलता, कठोर तितिक्षा, दृढ मनोबल और अविचल ध्यान-समाधि की जो अपूर्व विजय हुई—उसका एक प्रामाणिक चित्र अगले पृष्ठो पर अकित किया जा रहा है।

दरिद्र ब्रा ण को वस्त्रदान

भगवान महावीर के साधक जीवन की सबसे पहली घटना दरिद्र ब्राह्मण को 'वस्त्रदान' की है। उस सम्बध मे प्राचीन ग्रथो मे दो मत है।

आचाराग,[1] कल्पसूत्र,[2] आवश्यक निर्युक्ति, विशेपावश्यक भाष्य के मूल मे दरिद्र ब्राह्मण को वस्त्र देने का उल्लेख नही है, किन्तु आवश्यक चूर्णि,[3] आवश्यक हारिभद्रीय वृति,[4] आवश्यक मलयगिरिवृत्ति,[5] चउप्पन्न महापुरिस

---

१ सवच्छर साहिय मास ज ण रिक्कासि वत्थ भगव।
अचेलए तओ चाइ, त वोसिरिज्ज वत्थमणगारे॥ —आचाराग १।६।१।४

२ कल्पसूत्र ११५

३ आवश्यक चूर्णि पृ० २६८

४ आव० हारि० वृत्ति० १८७।१

५ आव० मलय० वृत्ति० पृ० २६६

चरिय[6] महावीरचरिय,[7] त्रिषष्टि शलाकापुरुष चरित्र[8] और कल्पसूत्र की टीकाओ[9] मे वह वर्णन आया है, जो इस प्रकार है—

प्रव्रज्या ग्रहण करने के पश्चात् भगवान ज्ञातृखण्ड वन से प्रस्थान करते है। जन जन के नयन तब तक टकटकी लगाकर निहारते रहे जब तक भगवान् नजर से ओझल न हो गए। ओझल होते ही नेत्रो से आँसुओ के मोती बरस पडे।

समभाव मे निमग्न महावीर अकिंचन भिक्षु बनकर बढे जा रहे थे। उन्हे मार्ग मे राजा सिद्धार्थ का परिचित मित्र सोम नामक वृद्ध ब्राह्मण मिला।[10]

महावीर से निवेदन करता हुआ कहने लगा—"भगवन्! मै दीन और दरिद्र हूँ, न खाने को अन्न है, न पहनने को पूरे वस्त्र है और न रहने को अच्छा झोपडा ही है। भगवन्! जिस समय आपने साम्वत्सरिक दान दिया उस समय मैं भूख से बिलखते हुए परिवार को छोडकर धन की आशा से दूरस्थ प्रदेश मे भीख मागने गया हुआ था।[11] मुझ अभागे को यह पता ही न चला कि आप धन की वर्षा कर रहे है। मैं तो भ्रमण कर हताश और निराश होकर खाली हाथ घर लौटा। पत्नी ने भाग्य की भर्त्सना करते हुए कहा—यहाँ सोने का मेह उमड-घुमड कर बरस रहा था, उस समय आप

---

६ चउप्पन्न० चरिय पृ० २७३-२७४

७ (क) महावीर चरिय—नेमिचन्द्र गा० ५७-६७ पृ० ३६-३७

(ख) महावीर चरिय—गुणचन्द्र पृ० १४२-१४४

८ त्रिषष्टि० १०।३।२-१५

६ कल्पसूत्र सुबोधिका

१० (क) आव० मल० वृत्ति २६६

(ख) महावीर चरिय गु० प्र० ५, पृ० १४२

(ग) त्रिषष्टि० १०।३।२

११ (क) महावीर चरिय ५।४

(ख) त्रिषष्टि० १०।३।३

१२ (क) महावीर चरिय (गुण) पृ० १४३

कहा भटकते रहे ? अब भी शीघ्र जाओ और महावीर से याचना करो। वे दीनबन्धु आपको निहाल कर देंगे।"[१२]

भगवन् ! कृपा कीजिए, यह दीन ब्राह्मण आपके सामने भीख माग रहा है।

महावीर—भद्र ! इस समय मैं एक अकिंचन भिक्षु हू।[१३]

ब्राह्मण—भगवन् ! क्या कल्पवृक्ष के पास आकर के भी मेरी मनो-वाछित कामना पूर्ण नही होगी ? यह कहते-कहते ब्राह्मण का गला रुध गया। आँखे आँसुओ से छलछला आई। वह महावीर के चरणारविन्दो से लिपट गया।

ब्राह्मण की दयनीय दशा को देखकर महावीर का दयालु हृदय द्रवित हो गया। उन्होने उसी क्षण इन्द्र द्वारा प्रदत्त देवदूष्य चीवर का अर्धभाग उसे प्रदान कर दिया।[१४] ब्राह्मण अपने भाग्य को सराहता हुआ चल दिया।

ब्राह्मणी उसे देखकर परम सन्तुष्ट हुई। उसके एक किनारे को ठीक करने के लिए उसने रफूगर को वह चीवर दिया। रफूगर उस अमूल्य चीवर

(ख) त्रिषष्टि० १।३।७

१३ (क) भो देवाणुप्पिय ! परिचत्तासेससगोऽह सपय।

—महावीर चरिय (गुण०) १४३-१४४

(ख) त्रिषष्टि० १०।३।८

१४ (क) ताहे सामिणा तस्स देवदूसस्स अद्ध दिन्न।

—आव० चूर्णि २६८

(ख) इय विन्नत्तो भयव, करुणेक्करसोणुकपाए वियरइ दूसद्ध अन्न मह नत्थि किं पि इय भणिउ सो वि गओ पणमित्ता, महापसाओ त्ति त गहिउ।

—महावीर चरिय (नेमिचन्द्र) ८६३-८६४

(ग) गिण्हसु इमस्स देवदूसस्स अद्ध ति।

—महावीर चरिय (गुणभद्र) पृ० १४४

(घ) त्रिषष्टि० १०।३।८

(ङ) ताहे सामिणा तस्स दूसस्स अद्ध दिण्ण।

—आव० हारिभ० पृ० १८७

(च) ताहे सामिणा तस्स देवदूसस्स अद्ध दिन्न।

—आव० मल० पृ० २६६

की चमक-दमक देखकर चौक उठा। ब्राह्मण से उसने कहा—यह तो महा मूल्य वाला देवदूष्य है। यदि पूरा वस्त्र मिल जाये तो लाख स्वर्ण मुद्रा मिल सकती हे। रफूगर की प्रेरणा से उत्प्रेरित होकर वह पुन अर्ध चीवर को लेने गया।[१५] एक वर्ष और एक मास के पश्चात् वह चीवर महावीर के स्कध से नीचे गिर पडा।

ब्राह्मण ने लाकर उसे रफूगर को दिया, उसे ठीक कर दिया और एक लाख दीनार मे नन्दीवर्धन को बेच दिया।[१७] ब्राह्मण जीवन भर के लिए परम सुखी बन गया। इस प्रकार वस्त्रदान की घटना से जहा भगवान की परम कारुणिकता झलती हे, वहा स्वदेह के प्रति उत्कृष्ट अनासक्त वृत्ति भी।

क्षमामूर्ति महावीर

राजकुमार वर्धमान अब श्रमण वर्धमान बन गये थे। ऐश्वर्य की कोमल पुष्पशैय्या पर से साधना के अति कठिन कटकिल पथ पर उन्होने अपने कदम बढाये थे। प्रव्रजित होते ही उन्होने कर्मारग्राम की ओर प्रस्थान किया था।[१८] जिसका नाम वर्तमान मे 'कामन' छपरा' है।[१९] उस दिन एक मुहूर्त दिन अवशेप रहने पर वे वहा पधारे। सूर्य पश्चिम क्षितिज पर से नीचे उतर रहा था। उजली धूप पीली पड चुकी थी। पछी अपने-अपने घोसलो पर लौट रहे थे। सध्या हो रही थी पर महावीर के मन मे आध्यात्मिक जागरण का सुनहला-प्रभात प्रस्फुटिन हो रहा था, एतदर्थ गॉव

---

१५ (क) महावीर चरिय ५।१४४

(ख) सोऽपि वासोऽर्धमादाय हृष्टो निजगृहं ययौ।
दशावन्धकृते तुन्नवायस्यादर्शयच्च तत्॥

—त्रिपष्टि० १०।३।१६

१६ (क) महावोर चरिय, गुणचन्द्र ५।१४

(ख) आव० मलय० वृत्ति प० २६६

(ग) त्रिपष्टि० १०।३।१४

१७ महावीर चरिय ५।१५८

१८ विशेपा० भाष्य १८६२

१९ वीर—विहार-मीमासा-विजयेन्द्रसूरि पृ० २३

के बाहर वृक्ष के नीचे नासिका के अग्रभाग पर दृष्टि केन्द्रित कर स्थाणु की की तरह ध्यान मे स्थिर हो गये ।[20]

एक ग्वाला अपने बैलो को लिए वहा आया । गोदोहन का समय हो रहा था । ग्वाले को गाँव मे जाना था । पर उसके सामने समस्या थी कि बैलो को किसे सभलाए । उसने इधर-उधर दृष्टि फैलाकर देखा, एक श्रमण ध्यान मे स्थिर खडा है । ग्वाले ने निकट आकर कहा —जरा बैलो का ध्यान रखना मैं शीघ्र ही गायें दुहकर आता हूँ ।[21]

ग्वाला चला गया । महाश्रमण अपने ध्यान मे तल्लीन थे । समाधि मे स्थिर थे । वे भला किसके बैलो की रखवाली करते ?

बैल दिन-भर खेत मे काम करके आये थे । क्षुधा और पिपासा से पीडित वे बैल चरते चरते अटवी मे दूर तक चले गये । कुछ समय के पश्चात् ग्वाला लौटा, पर बैलो को वहाँ नही देखा, तब उसने महावीर से पूछा — बतलाओ मेरे बैल कहा गये है । महावीर ध्यानस्थ थे । कुछ उत्तर नही पाकर वह आगे बढ गया । नदी के किनारे-किनारे, ऊचे टीले, गहरे नाले, घनी झाडिया, झुरमुट, जगल का कौना कौना छान डाला । रात भर भटकता रहा, इधर उधर ठोकरे खाता रहा, पर बैल नही मिले ।

पूर्व क्षितिज पर स्वर्णिम प्रभात की सुनहरी आभा फूट रही थी, पर ग्वाले के मन मे निराशा की काली-कजराली निशा छायी हुयी थी । सारी रात भटक कर थका हुआ खिन्नचित्त से मुह लटकाये लौट रहा था। इधर से बैल भी जगल मे से फिरते-फिरते महावीर के पास आकर बैठ गये थे । ग्वाले ने महावीर के पास बैलो को बैठे हुए देखा तो वह मारे क्रोध के आपे से बाहर हो गया, उसकी आँखे तमतमा गई — दुष्ट ! साधु के वेश मे चोर ! मेरे बैलो को छुपाकर रातभर कही एकान्त मे रख लिया, मालूम

---

२० (क) तत्थ जया भगव कम्मारगामवाहि पडिम ठितो ।

—आवश्यक मलय० २६७

(ख) आव० हारि० वृत्ति १८८

(ग) त्रिषष्टि० १०।३।१६

२१ (क) आवश्यक चूर्णि पृ० २६६

(ख) आवश्य मलय० २६७

(ग) महावीर चरियं ५।१४४

होता है अभी लेकर चम्पत होना चाहता था। मैं रातभर भटकता-भटकता हैरान हो गया, पर बैल मिलते भी कैसे। ले अभी उसका तुझे दण्ड देता हूँ। क्रोधाभिभूत ग्वाला बैलो को बाँधने की रस्सी से महावीर को मारने दौडा।[22]

उस समय देवसभा मे बैठे हुए देवराज इन्द्र ने विचार किया कि देखू इस समय भगवान् महावीर क्या कर रहे है? अवधिज्ञान से ग्वाले को इस प्रकार मारने को सन्नद्ध देखकर इन्द्र ने उसे वही स्तम्भित कर दिया और साक्षात् प्रकट होकर कहा--अरे दुष्ट! क्या कर रहा है? सावधान!

देवराज इन्द्र की कडकती हुई ललकार से ग्वाला सकपकाकर एक ओर खडा हो गया। इन्द्र ने कहा—मूर्ख! जिसे तू चोर समझता है, वे चोर नही है, ये तो राजा सिद्धार्थ के तेजस्वी पुत्र वर्धमान है। राज-वैभव को लात मारकर ये आत्म-साधना के लिए निकले है, ये तेरे बैलो की क्या चोरी करेंगे? खेद है तू प्रभु पर प्रहार कर रहा है?[23]

ग्वाला थर-थर कापने लगा। उसने गिड-गिडाकर प्रभु के चरण पकड लिये। महावीर की स्नेहसुधा-स्निग्ध आखो मे से असीम करुणा छलक रही थी। वह प्रभु को वन्दन कर चल दिया।

स्वावलम्बी महावीर

महावीर की साधना पूर्ण स्वावलम्बी थी। अपनी सहायता के लिए किसी के सामने हाथ पसारना तो दूर रहा, भक्ति भावना से विभोर होकर अभ्यर्थना करने वालो का सहयोग भी उन्होने कभी नही चाहा। ग्वाले की मूढता को देखकर देवराज के मन मे आया—जनता प्राय अज्ञानग्रस्त है, प्रभु का साधनापथ बडा विकट है, अत प्रभु से प्रार्थना की --भगवन्! वर्तमान मे मानव अज्ञानी व मूढ है। वह आप जैसे घोर तपस्वियो को भी प्रताडित

---

२२ (क) आव० मल० वृत्ति २६७
(ख) आव० हारि० पृ० १८८

२३ (क) दुरप्पा! न याणसि सिद्धत्थरायपुत्तो एस पव्वइत्तो।
—आव० मल० २६७
(ख) त्रिषष्टि० १०।३।२५

करने पर उतारू हो जाता है, आने वाले साढे बारह वर्ष तक आपको विविध कष्टो का सामना करना पडेगा, अत आज्ञा प्रदान कीजिए कि तब तक मैं आपकी सेवा मे रहकर कष्ट-निवारण किया करू ।[२४]

महाश्रमण ने देवराज को भक्ति-पूण प्रार्थना का उत्तर देते हुए कहा— 'देवराज ! आत्मसाधक के जीवन मे आज तक यह कभी न हुआ और न कभी होगा, और न अब ही यह हो सकता है कि आत्मसिद्धि या मुक्ति किसी दूसरे के बल पर या किसी दूसरे की सहायता से प्राप्त की जा सके। साधक का आदर्श है **एगोचरे खग्गविसाणकप्पे**' वह अकेला अपने पुरुषार्थ से चलता रहे।'[२५]

महाश्रमण की तेजोदीप्त वाणी के समक्ष देवराज विनत हो गए। सत्य है आत्मसाधक सकटो से घिरने पर भी दूसरो की सहायता की कभी अपेक्षा नही रखता। क्या विराट्काय हाथियो से घिर जाने पर भी सिंह कभी दूसरो के सहयोग की ओर मुह ताकता है।[२६] श्रद्धाभिभूत होकर देवराज ने महाश्रमण को नमस्कार किया।

---

२४ (क) ता कुणह पसाय, अणुमन्नह एत्तिय काल मम, जेण समीवट्ठिओ वेयावच्च भे करेमित्ति।

—महावीर चरिय ५।१४५

(ख) आवश्यक मलय प० २६७

(ग) त्रिषष्टि० १०।३।२८

२५ नो खलु देविन्दा ! एव भूय वा भवइ वा भविस्सइ वा ज ण अरहता देविंदाण वा असुरिंदाण वा णीसाए केवलनाणमुप्पाइ सु उप्पायति उप्पाइस्सति वा तव वा कारिसु वा करेति वा, करिस्सति वा, अरहता सएण उट्ठाणबलवीरिय पुरिसक्कार परक्कमेण केवलनाणमुप्पाइ सु उप्पायति उप्पाइस्सति वा।

—आव० मल० वृत्ति पृ० २६७

(ख) त्रिषष्टि० १०।३।२९ से ३१

(ग) महावीर चरिय, गुणचन्द्र ५।१४५

२६ करिसघट्टे सीहो, अहिलसइ किमन्न साहेज्ज ?

—महावीर चरिय (नेमिचन्द्र) ८८२

प्रथम पारणा

द्वितीय दिन वहा से विहार कर भगवान् वर्धमान कोल्लाग सन्निवेश मे पहुँचे। वहा बहुल नामक ब्राह्मण के घर घृत और शक्कर मिश्रित परमान्न (खीर) की भिक्षा प्राप्त कर षष्टभक्त का पारणा किया।[२७]

समवायाङ्ग मे कहा है—ऋषभदेव के अतिरिक्त शेष तेवीस तीर्थंकरो ने दूसरे दिन पारणा किया और पारणा मे अमृत सदृश मधुर खीर उन्हे प्राप्त हुई।[२८]

उत्तरपुराण के अनुसार महावीरस्वामी आहार के लिए वन से निकले और विद्याधरो के नगर के समान सुशोभित कुलग्राम नामकी नगरी मे पहुँचे, वहाँ के कूल नामक राजा ने भक्ति-भाव से विभोर हो उनके दर्शन किये, नमस्कार कर परमान्न (खीर) समर्पित किया।[२९] इस प्रकार गुणभद्र ने कोल्लाग सन्निवेश के स्थान पर 'कुलग्राम' और बहुल ब्राह्मण के स्थान पर कूल राजा का नाम दिया है।

तापस के आश्रम में

वहाँ से विहार कर भगवान् मोराक सन्निवेश मे आए। वहाँ पर दुइज्जत तापसो का विशाल आश्रम था। आश्रम का कुलपति भगवान् के

---

२७ (क) समवायाग
(ख) आव० नियु० ३४४
(ग) विशेषा० भाष्य १८९३
(घ) आव० मलय० वृत्ति० २६८।१

२८ सवच्छरेणभिक्खा, खोयलद्धाउसभेण लोगणाहेण सेसेहि बीय दिवसे लद्धाओ पढम भिक्खाओ, उसभस्स पढमभिक्खा खोयरसो आसि लोगणाहस्स, सेसाण परमण्ण अमियरस रसोवम आसि।

—समवायाग

२९ उत्तरपुराण ७४।३१८-३२१

पिता सिद्धार्थ का परम मित्र था।[३०] उसने भगवान् को आते देखा तो स्नेह और श्रद्धा से उनका स्वागत किया। भगवान् ने भी पूर्व के अभ्यासवश उनसे मिलने हेतु दोनो बाहे पसारी।[३१] और उनके मधुर आग्रह को सम्मान देकर वे एक दिन वहाँ विराजे।

प्रस्थान करते समय कुलपति ने निवेदन किया—"हे कुमार वर ! यह आश्रम आपका ही है। आप इसे दूसरो का न समझे। कुछ समय यहाँ पर स्थिति रखे व एकान्त-शान्त स्थान मे वर्षाकाल की इच्छा हो तो यहाँ अवश्य पधारे, मै अनुग्रहीत होऊँगा।" भगवान् ने एक दिन ठहर कर वहाँ से विहार किया।

भगवान् तो सिंह की तरह अनिकेतचारी ठहरे। अपना राजमहल भी छोड आए, सुख-सुविधाओ का परित्याग कर निकल पडे थे, अब कहाँ स्थिर रहना ? और कहा सुविधाओ का व्यामोह ! तथापि कुलपति के स्नेह और आग्रह को देखकर अपना प्रथम वर्षावास वहा करने का विचार किया।

पूर्व निश्चय के अनुसार वर्षावास का समय आने पर भगवान् कुलपति के आश्रम मे पहुँचे। तापस ने महाश्रमण को वर्षावास के लिए एक अच्छी छाई हुई कुटिया दे दी। महाश्रमण वही पर ध्यान मुद्रा मे खडे हो गए।

मोराक सन्निवेश और उसके आस-पास के प्रदेश मे भयकर ताप व सूखा पड रहा था। छिटपुट हल्की हल्की बू दाबादी से धरती की उष्मा अच्छी तरह शान्त नही हुई थी, और तो क्या, नया घास भी अकुरित नही

---

३० तेसिं च कुलवती भयवतो पिउमित्तो।

—आव० नि० मल० वृत्ति २६८

३१ (क) सामिणा पुव्वपयोगेण बाहिया पसारिया।

—आव० मलय० २६८

(ख) ताहे सामिणा पुव्वपतोगेण तस्स सागत दिन।

—आ० चूर्णि २७१

(ग) पुव्वनेहेण सामिं दट्ठूण सागयति भणिऊण समुहमुवट्ठिओ भयवयावि पुव्वपओगेण चेव बाहा पसारिया।

—महावीर चरिय (गुणचन्द्र) ५।१४६

(घ) पितृमित्र कुलपतिस्तत्र नाथमुपस्थित।
पूर्वाभ्यासात् स्वामिनापि तस्मिन् बाहु प्रसारित ॥

—त्रिपष्टि० १०।३।५०

हुआ था। गावो के पशु भूख के मारे इधर-उधर भटकते। तापसो की झोपडिया घास-फूस की बनी हुई थी, वे उसमे मुँह डालते। आश्रम के तापस पशुओ से हैरान-परेशान हो गये, कुछ समय के लिए भी इधर-उधर हुए कि झोपडी साफ हो जाती। अन्त मे उन्होने पशुओ को डडे मारकर भगाना शुरु किया। महावीर जिस एकान्त झोपडी मे थे, पशु उसे खाने लगे। महावीर ध्यानस्थ थे। उन्हे झोपडी की क्या, अपनी देह की भी चिन्ता नही थी। दीक्षा लेते समय जो शरीर पर सुगन्धित गोशीर्ष चन्दन आदि लगाया गया था और जिसके कारण न जाने कितने कीट, पतग, डास, मच्छर आदि जहरीले जीव दश लगाते पर कभी उधर उन्होने ध्यान नही दिया।[३२]

महावीर की उपेक्षा से कुछ तापस उद्विग्न हो गए। सोचने लगे "हम दिन भर डडा लिए अपनी-अपनी झोपडी की रक्षा करते है और यह श्रमण बिल्कुल ही आलसी, उदासीन और निश्चिन्त है, यो तो कुछ ही दिनो मे पशु झोपडी का घास-फूँस खा जायेंगे और यह फिर हमारी झोपडी माँगेगा। हमे फिर से नई झोपडी बाधकर इसे देनी पडेगी। अच्छा तपस्वी है यह ? अतिथि के नाते हमारी अपनी झोपडी के साथ इसकी झोपडी की भी हमे रक्षा करनी पडती है। इस अर्थहीन अतिथि सत्कार से तो हम हैरान हो गए।"

तापसो ने कुलपति से कहा—"तुम्हारा यह मेहमान कैसा आलसी है, अपनी कुटिया की भी रक्षा नही कर सकता ? दूसरी झोपडी कौन छा कर देगा ?"

कुलपति भी महावीर की उदासीनता से अप्रसन्न हो गया। वह महाश्रमण के निकट आकर बोला—कुमारवर ! पक्षिगण भी अपने घोसले की रक्षा करते है, पर आप राजकुमार होकर भी इतनी उपेक्षा क्यो रखते है ? दुष्टो को दण्ड देना आपका कर्तव्य है, फिर कर्तव्य-विमुख क्यो हो रहे है ?[३३] इस प्रकार सकेत कर कुलपति अपने स्थान चला गया।

महावीर ने कुलपति की बाते सुनी, पर ध्यानस्थ होने से उन्होने कुछ भी उत्तर नही दिया। वे सोचने लगे—"घर परिवार का परित्याग करने

---

३२ दिव्वेहि गधेहि आगरिसित्ता त तस्स देहमागम्म आरुज्झ काय विहरति विधति य

—आ० चूर्णि २६६

३३ (क) कुमारवर ! सउणी वि ताव नेड्ड रक्खई।

—आवश्यक चूर्णि २७१

(ख) महावीर चरिय—५१२ से ८। पृ० १४८

वाला साधक भी झोपडी की ममता मे उलझ रहा है ? झोपडी की रक्षा के लिए वह साधना को भी विस्मृत हो जाता है। ध्यान, समाधि और साधना के ऊपर झोपडी ने अपना प्रभुत्व जमा लिया है। झोपडी ममता और अहकार का प्रतीक है। मैं अपने घर का त्याग कर आया साधना के लिए, अब इस पराई झोपडी मे उलझ कर साधना को भूल जाऊ, यह नही हो सकता। मेरा साधना-दीप तो वृक्ष के नीचे, गुफा मे, खण्डहर मे कही पर भी जल सकता है।"

महाश्रमण चिन्तन की गहराई मे उतर गये-"मैं झोपडी की रक्षा नही कर सकता और झोपडी पर पशु मुह मारते है जिससे कुलपति और अन्य तापस गण उद्विग्न होते है। मेरी समाधि उनकी असमाधि का कारण बनती है, जो मेरे लिए उचित नही है।" महाश्रमण ने कुलपति की अनुमति लेकर परम सद्भाव के साथ वर्षावास के पन्द्रह दिन व्यतीत होने पर उन्होने वहा से विहार कर दिया।[३४]

महावीर की प्रतिज्ञाए

उस समय महावीर ने पाच प्रतिज्ञाए ग्रहण की, वे इस प्रकार है—

१ अप्रीतिकारक स्थान मे नही रहूँगा,
२ सदा ध्यानस्थ रहूँगा,
३ मौन रखूगा,
४ हाथ मे भोजन करूगा
५ गृहस्थो का विनय नही करूगा।[३५]

---

३४ क) भगवान् अर्द्धमास स्थित्वा ततोपच्छा अट्ठियगाम।
—आव० मल० वृत्ति प० २६८
(ख) त्रिषष्टि० १०।३।७५

३५ (क) आवश्यक चूर्णि २७१
(ख) इमेण तेण पच अभिग्गहा गहिया-त जहा—१ अचियत्तोग्गहे न वसितव्व २ निच्चवोसट्ठकाये ३ मोण च ४ पाणीसु भोत्तव्व ५ गिहत्थो न वदियव्वो न अब्भुट्ठेयव्वो, ए ए पच अभिग्गहा गहिया।
—आव० निर्युक्ति २६८
(ग) महावीर० गुणचन्द्र ५।१४८
(घ) कल्प० सुबोधिका वृत्ति प० २८८
(ङ) त्रिषष्टि० १०।३।७६-७७

वाला साधक भी झोपडी की ममता मे उलझ रहा है ? झोपडी की रक्षा के लिए वह साधना को भी विस्मृत हो जाता है। ध्यान, समाधि और साधना के ऊपर झोपडी ने अपना प्रभुत्व जमा लिया है। झोपडी ममता और अहकार का प्रतीक है। मैं अपने घर का त्याग कर आया साधना के लिए, अब इस पराई झोपडी मे उलझ कर साधना को भूल जाऊ, यह नही हो सकता। मेरा साधना-दीप तो वृक्ष के नीचे, गुफा मे, खण्डहर मे कही पर भी जल सकता है।"

महाश्रमण चिन्तन की गहराई मे उतर गये—"मैं झोपडी की रक्षा नही कर सकता और झोपडी पर पशु मुह मारते है जिससे कुलपति और अन्य तापस गण उद्विग्न होते हे। मेरी समाधि उनकी असमाधि का कारण बनती है, जो मेरे लिए उचित नही है।" महाश्रमण ने कुलपति की अनुमति लेकर परम सद्भाव के साथ वर्षावास के पन्द्रह दिन व्यतीत होने पर उन्होने वहा से विहार कर दिया।[३४]

महावीर की प्रतिज्ञाए

उस समय महावीर ने पाच प्रतिज्ञाए ग्रहण की, वे इस प्रकार है—

१ अप्रीतिकारक स्थान मे नही रहूँगा,
२ सदा ध्यानस्थ रहूँगा,
३ मौन रखू गा,
४ हाथ मे भोजन करू गा
५ गृहस्थो का विनय नही करू गा।[३५]

३४ क) भगवान् अर्द्धमास स्थित्वा ततोपच्छा अट्ठियगाम।

—आव० मल० वृत्ति प० २६८

(ख) त्रिषष्टि० १०।३।७५

३५ (क) आवश्यक चूर्णि २७१

(ख) इमेण तेण पच अभिग्गहा गहिया-त जहा—१ अचियत्तोग्गहे न वसितव्व २ निच्चवोसट्ठकाये ३ मोण च ४ पाणीसु भोत्तव्व ५ गिहत्थो न वदियव्वो न अब्भुट्ठेयव्वो, ए ए पच अभिग्गहा गहिया।

—आव० निर्युक्ति २६८

(ग) महावीर० गुणचन्द्र ५।१४८

(घ) कल्प० सुबोधिका वृत्ति प० २८८

(ङ) त्रिषष्टि० १०।३।७६-७७

स्मरण रखना चाहिए कि आचाराग के अनुसार महावीर ने कभी भी दूसरे के पात्र मे भोजन नही किया,[३६] किन्तु जिनदास गणी महत्तर,[३७] आचार्य मलयगिरि[३८] व गुणचन्द्र[३९] के अभिमतानुसार प्रस्तुत प्रतिज्ञा ग्रहण करने के पूर्व भगवान् ने गृहस्थ के पात्र का उपयोग किया था और केवलज्ञान होने के पश्चात प्रवचन-लाघव के कारण वे स्वय भिक्षा हतु नही पधारते थे।[४०] उस समय शिष्यो के द्वारा पात्र मे लाई गई भिक्षा का उपयोग करते थे। एतदर्थ ही लोहार्य अनगार धन्य माना गया जिसने भगवान् को केवल ज्ञान होने पर भिक्षा लाकर प्रदान की।[४१]

दिगम्बर ग्रन्थ धवला मे सुधर्मा का अपर नाम 'लोहार्य' बताया है।[४२] श्वेताम्बर ग्रन्थो मे सुधर्मा का लोहार्य नाम देखने मे नही आया है। अभिधान राजेन्द्र कोष ने लोहार्य का अर्थ महावीर को केवलज्ञान उत्पन्न होने पर भिक्षा लाने वाला साधु किया है[४३] पर वह साधु कौन था, यह नाम नही

---

३६ नो सेवई य परवत्थ, परपाए वि से न भु जित्था।

आचाराग १।९।१ गा० १९

३७ ता केई इच्छति-सपत्तो धम्मो पन्नवेयव्वोत्ति तेण पढमपारणगे परपत्ते भुत्त, तेण पर पाणिपते।

—आवश्यक चूर्णि २७१

३८ प्रथम पारणक गृहस्थपात्रे बभूव, तत पाणिपात्रभोजिना मया भवितव्यमित्यभिग्रहो गृहीत।

—आवश्यक म० वृ० प २६८

३९ महावीर चरिय ५।१४८

४० अथोत्पन्नेऽपि केवलज्ञाने कस्मान्न भिक्षार्थ भगवानटति ? उच्यते, तस्यामवस्थाया भिक्षाटने प्रवचनलाघवसभवात्, उक्त च।

देविदचक्कवट्टी मडलिया ईसरा तलवरा य।
अभिगच्छति जिणिद गोयरचरिय न सो अडइ॥

—आव० निर्युक्ति मलय० वृत्ति २६८

४१ उत्पन्नणाणस्स उ लोहज्जो आणेति,
धन्नो सो लोहज्जो खतिखमोपवरलोहसरिवन्नो जस्स जिणो पत्ताओ इच्छइ पाणीहि भोत्तु जे।

—आवश्यक चूर्णि० पृ० २७१

४२ जैनेन्द्र कोष, भाग ३, पृ०

४३ लोहज्ज० लोहार्य्य० उत्पन्न केवलज्ञानवीरस्य भिक्षादायके साधौ।

—अभिधान राजेन्द्रकोष भा० ६ पृ० ७५५

घबराकर ? बहुत अच्छा हुआ, आज मानव का भक्ष्य मिलेगा। अह 'ह ।' यक्ष ने पुन. एक क्रूर अट्टहास किया, मन्दिर की जीर्ण दीवारे काँप उठी।[४७]

महाश्रमण उस समय भी मौन, अचल और निर्भय खडे थे। उनकी प्रशान्त मुखमुद्रा पर न भय की रेखा थी और न उनके तन पर भय का हल्का-सा रोमाच ही था।

यक्ष आश्चर्यचकित था। वह सोचने लगा—अट्टहास से ही वडे-बडे योद्धा भूमिसात् हो जाते ह, पर यह तो वडा विचित्र मानव हे। इसका धैर्य तो वज्र की तरह अविचल, अविकल है, क्या यह मानव है या अन्य है।

यक्ष ने अबकी बार पूरी शक्ति लगाकर अपना रौद्र रूप प्रकट किया। उसने हाथी का रूप बनाया। दन्तप्रहार करने और पॉव से रौदने पर भी वे अचल रहे। यक्ष ने पिशाच का विकराल रूप बनाकर तीक्ष्ण नाखून व दॉतो से महावीर के अगो को नोचा तो भी उनके मन मे रोप नही आया। मुह से 'सी' नही निकला। उसने सर्प बनकर जोर से काटा तो भी महावीर का ध्यान भङ्ग नही हुआ। अन्त मे उसने अपनी दिव्य देवशक्ति से उनके आँख, कान, नाक, सिर, दॉत, नख और पीठ मे भयकर वेदना उत्पन्न की। इस प्रकार की एक वेदना से भी साधारण प्राणी छटपटाता हुआ तत्क्षण मृत्यु को प्राप्त हो जाता है, पर महावीर तो उन सभी (सात भयकर) वेदनाओ को शान्त भाव से सहन कर गये।[४८] वे अब भी 'मेरुव्व वाएण अकपमाणा''—सुमेरु की तरह अकपित थे। वे यक्ष को प्रतिबोध देने आये थे पर क्रोध की उष्ण मनोभूमि मे बोध का कल्पवृक्ष किस प्रकार अकुरित हो

---

४७ (क) आव० चूर्णि पृ० २७३
(ख) आव० मल० वृत्ति पृ० २६६
(ग) आव० हारि० वृत्ति १९१
(घ) महावीर चरियं० ५।१५४

४८ (क) सत्तविह वेयण करेति—सीसवेयण कन्नवेयण अच्छिवेयण दतवेयण, णहवेयण, नक्कवेयण पिट्ठिवेययण, एक्केका वेयणा समत्था पागतस्स जीत सकामेत्तु, किं पुण सत्त तायो उज्जलाओ।

—आव० चूर्णि २७४

(ख) आव० मलय० वृत्ति पृ० २७०।१
(ग) आ० हारिभद्रीया वृत्ति पृ० १९१
(घ) महावीर चरिय ५।१५४

सकता है। मन के दैत्य के परास्त हुए बिना अन्तरतम के देवता के दर्शन नही हो सकते।

लोमहर्षक उपद्रवो को लम्बी शृखला चलती रही। यक्ष सोचता रहा—अब गिरा, अब मरा, पर वह महाश्रमण न गिरा न मरा। उपद्रव करते-करते यक्ष स्वय ही थककर चूर चूर हो गया था। राक्षसी बल महावीर के आत्मबल से परास्त हो गया, उसका धैर्य ध्वस्त हो गया। प्रभु की अद्भुत तितिक्षा देखकर चकित व स्तभित-सा रह गया। धीरे-धीरे उसका हृदय परिवर्तन हो गया। वह महाश्रमण के चरणो मे झुका 'प्रभु! मुझे क्षमा करो। मैने अपराध ही नही, महा-अपराध किया है। आपको पहचाना नही।'[४९]

प्रभु ने ध्यान-समाधि खोली। उनके नेत्रो से स्नेह और करुणा की भाषा मुखरित हो रही थी—'यक्ष! भयभीत न बनो, मैने प्राणिमात्र को अभय दिया है। तुम क्रोध और घृणा के वशीभूत होकर मानव की अस्थियो के साथ खेलते रहे हो, पर यह क्रूर क्रीडा तुम्हारे मन को कभी भी शान्ति नही दे सकी है। क्षमा और प्रेम से ही हृदय मे शान्ति अगडाई लेने लगती है। यही अभय का प्रशस्त मार्ग है।'

भगवान् के उद्बोधन से शूलपाणि के अन्तर् चक्षु खुल गये, मन का भय मिट गया, उसका क्रोध शान्त हो गया। एक को प्रतिबोधित करते ही हजारो लाखो मानवो की विपत्तियाँ निर्मूल हो गई।

यक्ष का पहले भय-प्रेरित नमस्कार था, अब वह श्रद्धास्निग्ध भक्ति के रूप मे परिवर्तित हो गया। रेगिस्तान जैसे नीरस हृदय मे करुणा की स्रोतस्विनी प्रवाहित होने लगी। कुछ क्षणो पूर्व जो निष्ठुर और उद्धत दानव था, अब वह भक्ति से विनत हो गया था। उसने भक्ति-विभोर होकर मधुर स्वर मे प्रभु की स्तुति प्रारभ की। पहले भीषण हुँकार और अट्टहास से दिशाएँ काप रही थी, अब सगीत की सुमधुर स्वरलहरियो से दिग्दिगन्त मुखरित हो रहा था।

---

४९ (क) आव० चूर्णि-२७४
(ख) आव० मल० वृत्ति २७०।१
(ग) आव० हारि० वृत्ति १९१
(घ) महावीर चरियं० ५।१५४

वताया है। मेरी दृष्टि से लोहार्य सुधर्मा स्वामी ही होने चाहिए,क्योकि उनका लोहार्य नाम मिलता है इससे उनका कितना सेवापरायण जीवन रहा होगा, यह सकेत मिलता है। केवलज्ञान होने पर द्वितीय प्रवचन परिषद् मे उनकी दीक्षा हुई थी।

दिगम्बर परम्परा केवली को कवलाहार नही मानती है, इसलिए वहा पर भिक्षा लाने का उल्लेख नही हुआ है।

शूलपाणि यक्ष का उपद्रव

दुईज्जत तापसो के आश्रम से विहार कर भगवान् अस्थिग्राम पधारे। गॉव के वाहर उद्यान मे एक यक्ष का मन्दिर था, जिसके आस-पास मे न तो वस्ती थी और न लोगो का आवागमन ही था। सुनसान और वडा भयानक वातावरण था। भगवान् ने ध्यान के लिए उस स्थान को उपयुक्त समझा और उधर चल पडे।

गॉव के सीधे मार्ग को छोडकर यक्ष-मन्दिर की ओर वढते हुए देखकर लोगो ने कहा—देवार्य! उधर कहाँ जा रहे हो?

महाश्रमण ने शान्त और धीर स्वर मे उनसे पूछा—मुझे ध्यान करने के लिए एकान्त स्थान चाहिए, क्या मैं उस मन्दिर मे ठहर सकता हूँ? क्या तुम्हारी अनुमति है?[४४]

लोगो ने आश्चर्य के साथ कहा—क्या कहा उस मन्दिर मे? कदापि नही। देवार्य! वह यक्ष वडा रौद्र है, उपद्रवी है। मानव की आकृति से ही नही, पर मानव के शरीर की गध से भी वह घृणा करता है। जो मानव रात्रि-निवास करता है, वह प्रात मरा हुआ मिलता है। सूर्य की तरह आपका चेहरा दमक रहा है। गुलाव के फूल की तरह आपका सुकुमार सौन्दर्य खिल रहा है। आँखो मे से सहज-स्नेह का अमृत झलक रहा है। आप वहाँ न जाये। हमारी नम्र प्रार्थना है कि आप हमारी वस्ती मे ठहरो,

---

४४ (क) आवश्यक चूर्णि २७२

(ख) अहो एत्थ जक्खगिहे अम्हे निवसामो?

—महावीर चरियं – गुणचन्द्र १५३

हम आपके लिए अच्छे मकान की व्यवस्था कर देंगे। पर भगवान् ने यक्ष को प्रतिबोध देने के लिए और उपसर्ग को सहन करने के लिए उसी स्थान की पुन याचना की। ग्रामनिवासियो ने आज्ञा प्रदान की। भगवान् एक कोने मे ध्यानस्थ हो गए।[४५]

साध्य पूजा हेतु इन्द्रशर्मा नाम का पुजारी आया, पूजा के पश्चात् सभी यात्रियो को यक्षायतन से बाहर निकाला। भगवान से उसने कहा - देवार्य! तुम भी बाहर चलो, परन्तु वे मौन थे, ध्यानस्थ थे, इन्द्रशर्मा ने पुन यक्ष के भयकर उत्पात का रोमाचक वर्णन किया, फिर भी भगवान् विचलित नही हुए और वे वही स्थिर रहे, इन्द्रशर्मा चला गया।[४६]

दिन भर का थका सूर्य अस्ताचल की गोद मे जा छुपा था। सध्या की स्वर्णिम किरणो पर अधकार की काली परत चढ गई थी। चारो ओर गभीर सन्नाटा था। दूर-दूर मे कही मानव की आवाज भी नही सुनाई दे रही थी। गहन अधकार के रूप मे यक्षायतन की दीवारो से मानो भय का काला धुँआ उठकर वातावरण को अधिकाधिक विभीषिकापूर्ण बनाता जा रहा था। तभी शूलपाणि यक्ष प्रकट हुआ। बिजली की तरह चमकता हुआ भयकर शूल उसके हाथ मे था, ऐसा प्रतीत हो रहा था, मानो साक्षात् यमराज ही मृत्यु का सन्देश लिए आ रहा हो। रौद्ररस देहधारण कर आ गया है।

भगवान् को स्थिर खडा देखकर उसने कहा—"मृत्यु को चाहने वाला यह गाँव निवासियो व देवार्चक द्वारा निषेध करने पर भी न माना। ज्ञात होता है इसे अभी तक मेरे प्रबल-पराक्रम का परिचय नही है।" पराक्रम का परिचय देने के लिए उसने भयकर अट्टहास किया।

यक्ष के अट्टहास की प्रतिध्वनि शून्य दिशाओ से टकराने लगी।

ओह! हो!! तुम्हारा शरीर तो अत्यन्त सुन्दर और सुकुमार है। यह तो अधकार मे भी बिजली की तरह चमक रहा है। युवक है, पुरुषार्थी भी लगता है, फिर भी तू यहाँ मरने के लिए क्यो आया है? क्या जीवन से

---

४५ जाणइ सो सवुज्झिहिइ, ततो गता एगे कूणे पडिम ठितो।

—आव० मल० २६७

४६ (क) देवज्जगा! तुब्भेवि नीहरह, मा इमिणा जक्खेण मारिज्जिहिह।

—महावीर चरिय ५।१५३

(ख) त्रिषष्टि० १०।३।११८

घबराकर ? बहुत अच्छा हुआ, आज मानव का भक्ष्य मिलेगा। अह 'ह !' यक्ष ने पुन. एक क्रूर अट्टहास किया, मन्दिर की जीर्ण दीवारे काँप उठी।[४७]

महाश्रमण उस समय भी मौन, अचल और निर्भय खडे थे। उनकी प्रशान्त मुखमुद्रा पर न भय की रेखा थी और न उनके तन पर भय का हल्का-सा रोमाच ही था।

यक्ष आश्चर्यचकित था। वह सोचने लगा—अट्टहास से ही बडे-बडे योद्धा भूमिसात हो जाते ह, पर यह तो बडा विचित्र मानव है। इसका धैर्य तो वज्र की तरह अविचल, अविकल है, क्या यह मानव है या अन्य है।

यक्ष ने अबकी बार पूरी शक्ति लगाकर अपना रौद्र रूप प्रकट किया। उसने हाथी का रूप बनाया। दन्तप्रहार करने और पॉव से रौदने पर भी वे अचल रहे। यक्ष ने पिशाच का विकराल रूप बनाकर तीक्ष्ण नाखून व दाँतो से महावीर के अगो को नोचा तो भी उनके मन मे रोप नही आया। मुह से 'सी' नही निकला। उसने सर्प बनकर जोर से काटा तो भी महावीर का ध्यान भङ्ग नही हुआ। अन्त मे उसने अपनी दिव्य देवशक्ति से उनके ऑख, कान, नाक, सिर, दाँत, नख और पीठ मे भयकर वेदना उत्पन्न की। इस प्रकार की एक वेदना से भी साधारण प्राणी छटपटाता हुआ तत्क्षण मृत्यु को प्राप्त हो जाता है, पर महावीर तो उन सभी (सात भयकर) वेदनाओ को शान्त भाव से सहन कर गये।[४८] वे अब भी 'मेरुव्व वाएण अकपमाणा"—सुमेरु की तरह अकपित थे। वे यक्ष को प्रतिबोध देने आये थे पर क्रोध की उष्ण मनोभूमि मे बोध का कल्पवृक्ष किस प्रकार अकुरित हो

४७ (क) आव० चूर्णि पृ० २७३
(ख) आव० मल० वृत्ति पृ० २६६
(ग) आव० हारि० वृत्ति १६१
(घ) महावीर चरियं० ५।१५४

४८ (क) सत्तविहं वेयण करेति—सीसवेयण कन्नवेयण अच्छिवेयण दतवेयण, णहवेयण, नक्कवेयण पिट्ठिवेययण, एक्केका वेयणा समत्था पागतस्स जीत सकामेत्तु, किं पुण सत्त तायो उज्जलाओ।

—आव० चूर्णि २७४

(ख) आव० मलय० वृत्ति पृ० २७०।१
(ग) आ० हारिभद्रीया वृत्ति पृ० १६१
(घ) महावीर चरिय ५।१५४

सकता है। मन के दैत्य के परास्त हुए बिना अन्तरतम के देवता के दर्शन नही हो सकते।

लोमहर्षक उपद्रवो को लम्बी शृंखला चलती रही। यक्ष सोचता रहा—अब गिरा, अब मरा, पर वह महाश्रमण न गिरा न मरा। उपद्रव करते-करते यक्ष स्वय ही थककर चूर चूर हो गया था। राक्षसी बल महावीर के आत्मबल से परास्त हो गया, उसका धैर्य ध्वस्त हो गया। प्रभु की अद्भुत तितिक्षा देखकर चकित व स्तभित-सा रह गया। धीरे-धीरे उसका हृदय परिवर्तन हो गया। वह महाश्रमण के चरणो मे झुका 'प्रभु! मुझे क्षमा करो। मैने अपराध ही नही, महा-अपराध किया है। आपको पहचाना नही।'[४९]

प्रभु ने ध्यान-समाधि खोली। उनके नेत्रो से स्नेह और करुणा की भाषा मुखरित हो रही थी—'यक्ष! भयभीत न बनो, मैने प्राणिमात्र को अभय दिया है। तुम क्रोध और घृणा के वशीभूत होकर मानव की अस्थिया के साथ खेलते रहे हो, पर यह क्रूर क्रीडा तुम्हारे मन को कभी भी शान्ति नही दे सकी है। क्षमा और प्रेम से ही हृदय मे शान्ति अगडाई लेने लगती है। यही अभय का प्रशस्त मार्ग है।'

भगवान् के उद्बोधन से शूलपाणि के अन्तर् चक्षु खुल गये, मन का भय मिट गया, उसका क्रोध शान्त हो गया। एक को प्रतिबोधित करते ही हजारो लाखो मानवो की विपत्तियाँ निर्मूल हो गई।

यक्ष का पहले भय-प्रेरित नमस्कार था, अब वह श्रद्धास्निग्ध भक्ति के रूप मे परिवर्तित हो गया। रेगिस्तान जैसे नीरस हृदय मे करुणा की स्रोतस्विनी प्रवाहित होने लगी। कुछ क्षणो पूर्व जो निष्ठुर और उद्धत दानव था, अब वह भक्ति से विनत हो गया था। उसने भक्ति-विभोर होकर मधुर स्वर मे प्रभु की स्तुति प्रारभ की। पहले भीषण हुँकार और अट्टहास से दिशाएँ काप रही थी, अब सगीत की सुमधुर स्वरलहरियो से दिग्दिगन्त मुखरित हो रहा था।

---

४९ (क) आव० चूर्णि-२७४
(ख) आव० मल० वृत्ति २७०।१
(ग) आव० हारि० वृत्ति १९१
(घ) महावीर चरियं० ५।१५४

दस स्वप्न

एक मुहूर्त भर रात्रि अवशेप रहने पर भगवान् को उस रात मे कुछ क्षण भर निद्रा आ गई। उस समय उन्होने दस स्वप्न देखे—[५०]

(१) मै एक भयकर ताड-सदृश पिशाच को मार रहा हूँ।

(२) मेरे सामने एक श्वेत पु स्कोकिल उपस्थित है।

(३) मेरे सामने एक रग-विरगा पु स्कोकिल उपस्थित हे।

(४) दो रत्न मालाये मेरे सम्मुख है।

(५) एक श्वेत गोकुल मेरे सम्मुख है।

(६) एक विकसित पद्मसरोवर मेरे सामने स्थित है।

(७) मै तरगाकुल महासमुद्र को अपने हाथो से तैर कर पार कर चुका हू।

(८) जाज्वल्यमान सूर्य सारे विश्व को आलोकित कर रहा है।

(९) मैं अपनी वैडूर्य वर्ण आतो से मानुषोत्तर पर्वत को आवेष्टित कर रहा हू।

(१०) मैं मेरु पर्वत पर चढ रहा हूँ।

स्वप्नानन्तर भगवान् की नीद खुल गई, क्योकि निद्रा ग्रहण के समय भगवान् खडे ही थे। साधनाकालीन यह प्रथम प्रसग था जब भगवान् को क्षण भर नीद आई। यह भगवान् के जीवनकाल की अन्तिम निद्रा थी।

रात्रि मे शूलपाणि के भयकर अट्टहास को श्रवण कर ग्रामवासियो ने उसी समय अनुमान लगा लिया था कि मन्दिर मे स्थित वह साधु सदा-सदा के लिये चल बसा है और प्रात काल के पूर्व जब सगीत की सुमधुर स्वर-लहरिया सुनी तो उनका अनुमान और अधिक दृढ हो गया कि साधु की मृत्यु से ही यक्ष अपने हृदय की प्रसन्नता सगीत के माध्यम से अभिव्यक्त कर रहा है।

---

५० (क) तत्थ सामी देसूणे चत्तारि जाये अतीव परितावितो पभायकाले मुहुत्तमेत्त निद्दापमाय गतो। —आव० मल० २७०।१

(ख) महावीर चरियं० ५।१५५

(ग) त्रिपष्टि० १०।३।१४७

उत्पल नामक एक निमित्तज्ञ अस्थिक ग्राम मे रहता था। पहले वह भगवान पार्श्वनाथ को परम्परा मे श्रमण बना था। पर कुछ कारणो से श्रमणत्व से भ्रष्ट हो गया था। जब उसे भगवान् महावीर के यक्षायतन मे ठहरने के समाचार ज्ञात हुए तो अनिष्ट की कल्पना से उसका हृदय धडक उठा। प्रात इन्द्रशर्मा पुजारी के साथ वहाँ यक्षायतन पहुँचा, पर अपनी कल्पना से विपरीत यक्ष के द्वारा भगवान् महावीर को अर्चित देखकर उसके आश्चर्य का आर पार नही रहा। वे दोनो ही प्रभु के चरणो मे नमस्कार करने लगे—प्रभो! आपका आत्म-तेज अपूर्व है। आपने यक्षप्रकोप को शान्त कर दिया है। धन्य है आप![५२]

निमित्तज्ञ उत्पल ने निवेदन किया—प्रभो, आपने जो रात्रि के पश्चिम प्रहर मे दस स्वप्न देखे है, उनका फल इस प्रकार होगा—

(१) आप मोहनीय कर्म को नष्ट करेगे।
(२) सदा-सर्वदा आप शुक्लध्यान मे रहेगे।
(३) विविध ज्ञानमय द्वादशाङ्ग श्रुत की प्ररूपणा करेगे।
(४) ? (इसका फल मुझे ज्ञात नही है)
(५) चतुर्विध सघ आपकी सेवा मे सलग्न रहेगा।
(६) चतुर्विध देव भी आपकी सेवा मे रहेगे।
(७) ससार सागर को आप पार करेगे।
(८) केवलज्ञान और केवलदर्शन को आप प्राप्त करेगे।
(९) यत्र-तत्र-सर्वत्र आपकी कीर्ति-कौमुदी चमकेगी।
(१०) समवसरण मे सिहासन पर विराजकर आप धर्म की सस्थापना करेगे।[५३]

इस प्रकार इन नौ स्वप्नो का फल मुझे ज्ञात हो गया है, पर चतुर्थ स्वप्न का फल मेरी समझ मे नही आया। भगवान् ने स्वय चतुर्थ स्वप्न

---

५२ (क) आवश्यक मल० २७०
(ख) महावीर चरिय० ५५५।१
५३ (क) आवश्यक चूर्णि २७५
(ख) आव० मल० वृत्ति २७०
(ग) महावीर चरिय ५।१५५
(घ) भगवती सूत्र १६।६।५८०

०

का फल बताते हुए कहा—उत्पल, मैं सर्वविरति व देश-विरति रूप दो प्रकार के धर्म की प्ररूपणा करूँगा।[५६] भगवान् की बात को सुनकर निमित्तज्ञ अत्यन्त प्रसन्न हुआ।

अरियकग्राम के इस वर्षाकाल मे फिर भगवान् को किसी भी प्रकार का उपसर्ग नही हुआ। प्रस्तुत वर्षावास मे भगवान् ने पन्द्रह-पन्द्रह दिन के आठ अधमास उपवास किये।[५५]

महावीर और बुद्ध के स्वप्नों की तुलना

तथागत बुद्ध भी अपने साधना काल की अन्तिम रात्रि मे पॉच महा-स्वप्न देखते है, जिनका सम्बन्ध भी भावी जीवन से है। यद्यपि स्वप्नो की सघटना भिन्न है किन्तु तात्पर्य बहुत समान है।

(१) बुद्ध ने देखा – मैं एक महापर्यक पर सो रहा हूँ। हिमालय मेरा उपधान है। बाया हाथ पूर्वी समुद्र को छू रहा है, दाया हाथ पश्चिमी समुद्र को छू रहा है, और मेरे पैर दक्षिणी समुद्र को छू रहे ह। इसका अर्थ है—तथागत द्वारा पूर्ण बोधि प्राप्ति।[५२]

(२) बुद्ध ने देखा, तिरिया नामक एक वृक्ष उनके हाथ मे प्रादुर्भूत होकर आकाश तक पहुँच गया है। इसका अर्थ है—अष्टागिक मार्ग का निरूपण।

(३) बुद्ध ने देखा—श्वेत कीट, जिनका शिरोभाग काला है, मेरे घुटने तक रेक रहे है। इसका तात्पर्य है—श्वेत वस्त्रधारी गृहस्थो का शरणागत होना।

---

५४ आवश्यक० मलय० वृत्ति २७०

५५ (क) तत्थ सामी अद्धमास अद्धमासेण खमइ, एस पढमो वासारत्तो।

—आव० मल० वृत्ति २७०

(ख) महावीर चरिय ५।१५५

(ग) त्रिषष्टि० १०।३।९८

५६ प्रस्तुत स्वप्न का फल भगवती मे उसी जन्म मे मोक्ष-प्राप्ति माना है—

—भगवती १६।६, सूत्र ५८०

(४) बुद्ध ने देखा—रग-बिरगे चार पक्षी चार दिशाओ से आते है, उनके चरणो मे गिरते है और श्वेत हो जाते है। इसका अर्थ है—चारो वर्णों के लोग उनके पास सन्यस्त होगे और वे निर्वाण प्राप्त करेगे।

(५) बुद्ध ने देखा—वे एक गोमय पर्वत पर चल रहे है, किन्तु फिसल या गिर नही रहे है। इसका तात्पर्य है-सुलभ भौतिक सामग्री मे अनासक्ति।"[५७]

भगवान महावीर और तथागत बुद्ध दोनो ही अपने साधनाकाल मे स्वप्न देखते है। और उनकी सूचना मिलती है भविष्य मे शीघ्र ही बोधि लाभ प्राप्त कर धर्मचक्र प्रवर्तन की।

मोराकसन्निवेश में

वहा से वर्षावास के पश्चात् विहार कर भगवान् मोराकसन्निवेश पधारे और उद्यान मे विराजे।[५८] वहा भगवान् के तप पूत जीवन और ज्ञान की तेजस्विता से जन-जन के मन मे श्रद्धा के दीप प्रज्वलित हो उठे। ध्यान-परायण तपस्वी महावीर के चारो ओर जनता श्रद्धापूर्वक आकर नमन करने लगी।

इस सन्निवेश मे अच्छन्दक जाति के पाषण्डस्थ (ज्योतिषी) रहते थे, जो अपनी जीविका ज्योतिष आदि से चलाते थे। महावीर की अपूर्व ध्यान एव तपोजन्य सहज सिद्धियो के कारण अच्छन्दको का प्रभुत्व जनता मे क्षीण हो गया। तब उसने घबराकर भगवान् से निवेदन किया—भगवन्! आपका व्यक्तित्व अपूर्व है। आप अन्यत्र पधारे, क्योकि आपके यहा विराजने से हमारी जीविका नही चलती है, हम अन्यत्र जायें तो परिचय और प्रतिभा के अभाव मे हमे कोई भी पूछेगा नही।[५९] करुणावतार महावीर ने वहा से

५७ (क) अगुत्तर निकाय ३-२४०
(ख) महावस्तु २।१३६

५८ (क) आव० चूर्णि २७५
(ख) आव० मलय०वृत्ति० २७०
(ग) आव० हारि० १९४
(घ) महावीर चरिय० ५।१५६

५९ (क) "भयव तुब्भे अन्नत्थवि पुज्जा, अह कहिं जाथि ?
—आव० मल० वृत्ति०

विहार कर दिया।[६०] यह घटना बताती है कि भगवान की अहिंसा और करुणा इतनी उत्कट थी कि उनके कारण यदि किसी की आजीविका पर आघात पहुँचे तो भी वे उस पथ से हट जाते थे, किसी के मन को सूक्ष्म पीडा भी न हो, यह उनका लक्ष्य था।

चण्डकौशिक को प्रतिबोध

दक्षिण वाचाला से उत्तर वाचाला जाने के दो मार्ग थे। एक कनकखल आश्रम से होकर और दूसरा बाहर मे। आश्रम का मार्ग सीधा होने पर भी निर्जन, भयानक व विकट सकट से युक्त था। बाहर का पथ कुछ टेढा छोटी-छोटी पगडडियो मे बटा हुआ तथा लम्बा था, पर सुगम और विपदा से मुक्त था। आत्मा की मस्ती मे गजराज की तरह झूमते हुए महावीर सीधे पथ पर ही अपने धीर-गभीर कदमो को बढाते हुए चले जा रहे थे।[६१]

मार्ग के किनारे एक वृक्ष की छाया मे बैठे हुए ग्वाल-बालो ने देखा, एक श्रमण इस वियावान जगल की ओर बढता आ रहा है। उसके सुनहले शरीर की काति से वन-प्रदेश यो आलोकित हो रहा है जैसे प्रभात के बाल सूर्य से दिशाएँ। उसके मुख-मण्डल पर अदम्य ओज है, आँखो मे अपार स्नेह का सागर छलक रहा है। उसके धीर गभीर कदम दृढता के साथ आगे बढ रहे हैं।

(ख) महावीर चरिय ५।१५८

(ग) त्रिषष्टि० १०।३।२१५-२१७

६० (क) ताहे अचियत्तोग्गहोत्ति काऊण सामी निग्गतो।

—आव० मल० वृ० २७२

(ख) त्रिषष्टि० १०।३।२१८

६१ (क) कणकखल णाम आसमपद, दो पथा—उज्जुओ य वको य, जो सो उज्जुओ सो कणगखलमज्झेण वच्चति, वको परिहरन्तो, सामी उज्जुएण पधाइतो।

—आव० चूर्णि० २७८

(ख) आव० मल० वृत्ति० २७३।१

(ग) महावीर चरिय, नेमिचन्द्र ६६२

(घ) महावीर चरिय, गुणचन्द्र ५।१५६

ग्वाल-बालो का हृदय भविष्य की कल्पना से सिहर उठा—विचारा भिक्षु, इधर अनजाने मार्ग पर जा रहा है देखो इसकी सूरत कितनी सुहावनी है, कही यह महारुद्र चण्डकौशिक का, नाग जो झाडियो मे छिपा है, उसका भक्ष्य न बन जाय, इसलिए हमे इन्हे रोकना चाहिए।

ग्वालो ने टोकते हुए कहा—देवार्य ! इधर न पधारिये। इस पथ मे एक भयकर दृष्टिविष सर्प रहता है, जिसकी विषैली फुकार से मानव तो क्या, पशु-पक्षीगण भी भस्मसात् हो जाते है। वह इतना भयकर है कि जिधर देखता है उधर जहर बरसने लगता है, आग की लपटे उठने लगती है। उसके कारण आसपास के वृक्ष भी सूख गये हैं, चारो ओर सुनसान हो गया है, दूर-दूर तक का वनप्रदेश उजाड है। जगल का वातावरण भय से साय-साय कर रहा है। अत श्रेयस्कर यही है कि आप बाहर के मार्ग से पधारे।[६२]

महावीर मौन थे। वे अपने लक्ष्य की ओर बढे जा रहे थे। पथ से विचलित होना उन्होने सीखा ही न था।

श्रमण को आगे बढता देखा तो ग्वालो का हृदय पसीज गया—अरे रे ! विचारा मारा जायेगा। अभी तो जिद्द कर रहा है पर उस क्रूर नागराज के सामने किसकी जिद् चली है ? ग्वाले दौडकर महाश्रमण के निकट आये और बोले—बाबा, उधर न जाओ, महाभयकर विषधर साप है, काट खायेगा, एक फुकार से ही झुलसा देगा, बेमौत मर जाओगे, हमारी बात मानो, दूसरे मार्ग से चले जाओ।

महाश्रमण देख रहे थे कि ग्वालो की ऑखो मे से सहज सहृदयता छलक रही है और वे मुह से सर्प की भयकरता का नग्न चित्र उपस्थित कर रहे है, तथापि महाश्रमण मौन थे, अभय थे, वे तो मृत्यु को पराजित करने जा रहे थे। उनके हृदय मे अमृत की स्रोतस्विनी उमड रही थी, वे मृत्यु से भयभीत कैसे हो सकते थे। वे तो अविनाशी आत्म-चेतना के साधक थे,

---

६२ (क) आव० चूर्णि० २७८
(ख) आव० मलय० वृत्ति २७३
(ग) आव० हारि० वृत्ति १९५
(घ) महावीरचरिय (नेमि०) ६६३
(ङ) महावीरचरिय (गुण) ५।१५६
(च) चउप्पन्न महापुरुष चरिय
(छ) त्रिषष्टि० १०।३।२२५-२२८

जिन्होने कभी भी अपने लक्ष्य से च्युत होना जाना ही न था। स्थितप्रज्ञ महावीर ने ग्वाल-बालो को आश्वासन की अभय मुद्रा से आश्वस्त किया और निर्भय एव निर्द्वन्द्व गति से आगे बढ गये।

महावीर चण्डकौशिक को बावी पर जाकर ध्यान लगाकर खडे हो गये।[६३] उनके मन मे प्रेम का पयोधि उछाले मार रहा था। मानवीय गध पाते ही नागराज विष उगलता हुआ बाहर निकला। बावी के पास भगवान् को देखकर वह सहम गया। उसने क्षुब्ध होकर एक भयकर फुकार मारी, वायुमण्डल मे दूर दूर तक विषाक्त लहरें फैल गई। सन्निकट मे उडते कीट-पतग वही ढेर हो गये। पर महावीर अविचल मुद्रा मे खडे थे।

फुकार को निष्फल जाते देखकर चण्डकौशिक का क्रोध दुगुने वेग के साथ उफना। पूरे आवेश के साथ उसने महाश्रमण के चरणो मे दश-प्रहार किया। कही ये मेरे ऊपर न गिर पडे, इस आशका से वह एक ओर सरक गया। उसे अपने दशप्रहार पर पूर्ण विश्वास था।

पर आश्चर्य! लाल रुधिर के स्थान पर श्वेत रुधिर बह रहा है! वैसे ही स्थिर, अचचल खडे है, पहले जैसा ही उनका चेहरा मधुरहास के साथ खिल रहा है, बडी सौम्यता व शान्ति टपक रही है, जैसे उन्हे कुछ पता ही नही कि क्या हुआ। नागराज स्तब्ध और विस्मित बनकर देखता रहा।

अपने शरीर को कुडलाकार बनाकर उसने अपने को कसा, फन को अच्छी तरह से उठाकर भयकर वेग के साथ फिर दश मारा और पूर्व की तरह पुन पीछे की ओर खिसक गया। पर वह महातपस्वी तो अब भी शान्त खडा था। पीडा से चीखा तक भी नही।

तृतीय बार फिर उसने दश का तीव्र प्रहार किया। पर वह महा-श्रमण तो हिमगिरि की दुर्द्धर्ष चट्टान की तरह अडोल खडे थे।[६४]

---

६३ (क) आव० चूर्णि० २७८
(ख) आवश्यक मलय वृत्ति २७३
(ग) आव० हारि० वृत्ति १९६
(घ) महावीरचरिय, ५।१५९
(ड) महावीर चरिय, नेमिचन्द्र ९६४
(च) त्रिषष्टि० १०।३।२४८-२५१

चण्डकौशिक घबरा गया। उसका प्रचण्ड जहर आज पानी हो गया। उसकी आस्था हिल गई।

पराजित नागराज की विपदृष्टि महावीर की दिव्य व अमृत दृष्टि पर स्थिर हो गई, उनकी दृष्टि से करुणा का अमृत झर रहा था। जिससे उसका उग्र विप शान्त हो गया। हृदय के कण-कण मे शीतलता का सचार होने लगा।

महावीर ने नागराज को शान्त देखकर ध्यान से निवृत्त होकर कहा—'चण्डकौशिक! शान्त होओ! "उवसम भो चण्डकोसिया"! जागृत होओ! अज्ञानान्धकार मे कहाँ भटक रहे हो, पूर्वजन्म के दुष्कर्मों के कारण तुम्हे सर्प बनना पडा है, यदि अब भी तुम न सँभले तो ?[६५] भगवान् के सुधा-सिक्त वचनो ने नागराज के अन्तर्मानस मे विचार-ज्योति प्रज्वलित कर दी। चिन्तन करते-करते पूर्वजन्म का चलचित्र नेत्रो के सामने नाचने लगा—[६६]

---

६४ (क) आसुरत्तो मम ण जाणसित्ति सूरिएणाझाइत्ता पच्छा सामिं पलोएति, जाव सो ण डज्झति, जहा अन्ने, एव दो तिन्नि वारे, ताहे गतूण डसति, डसित्ता सरत्ति अवक्कमति मा मे उवरि पडिहिति तहवि ण मरति एव तिन्नि वारे, ताहे पलोए तो अच्छति अमरिसेण।

—आव० चूर्णि० २७८

(ख) आव० मलय० वृत्ति २७३

(ग) आव० हारिभद्रीया वृत्ति० १९६

(घ) महावीर चरिय (नेमि०) ९८१

(ङ) त्रिपष्टि० १०।३।२५५-२६१

६५ (क) आव० चूर्णि० २७८

(ख) महावीर चरिय (नेमिचन्द्र) ९८४

(ग) त्रिपष्टि० १०।३।२६५

६६ (क) ताहे तस्स ईहापूहमग्गणगवेसण करेतस्स जातिस्सरण समुप्पन्न।

—आव० चूर्णि० २७८

(ख) महावीर चरिय, नेमिचन्द्र ९८९

(ग) महावीर चरिय, गुणचन्द्र ५।

(घ) त्रिपष्टि० १०।३।२३६

(ङ) आव० निर्युक्ति० ३५०

(च) विशेपा० भाष्य १९०२

मै पूर्व भव मे श्रमण था, उग्र तपश्चरण करके शरीर को सुखा डाला था। मैं एक बार भिक्षा के लिए घूम रहा था, असावधानी से पैर के नीचे दबकर एक क्षुद्र मेढक मर गया। मेरे साथ एक लघु विनीत शिष्य भी था। उसने मुझ से निवेदन किया—गुरुदेव ! भूल से आपके पैर के नीचे मेढक दब गया है।

शिष्य की विनम्र सूचना पर भी मैने ध्यान नही दिया। मैंने शिष्य की ओर घूरते हुए मार्ग मे मरे पडे दूसरे मेढक बताये—क्या इनको भी मैंने ही कुचल डाला है ? शिष्य ने सोचा इस समय गुरुजी को क्रोध आ रहा है, वह मौन रहा। हम दोनो उपाश्रय लौट आये।

सध्या के समय शिष्य ने देखा—गुरुदेव ! प्रतिक्रमण कर चुके है किन्तु मेढक की प्राण-विराध की हिंसा का प्रायश्चित नही किया है। सभवत भूल गये है। विनय और सद्भावना के साथ प्रात कालीन विराधना की आलोचना के लिए सकेत किया। बस फिर क्या था ? मेरा क्रोध भडक उठा। दुष्ट, सुबह से ही मेरे पीछे पड गया है, मुझे बार-बार उद्विग्न करता है। ले अभी मेढक और तेरी दोनो की हत्या का प्रायश्चित एक ही साथ कर लू गा। हाथ मे डडा लेकर शिष्य को मारने दौडा, पर मेरे रौद्र रूप को देखकर शिष्य चपलता से शीघ्र ही एक ओर खिसक गया। अधकार मे कुछ भी स्पष्ट दिखाई नही दे रहा था। दूसरी ओर क्रोध का अधकार भी इतना गहन था कि मैं एक खम्भे से जा टकराया। मेरे सिर के टुकडे-टुकडे हो गए।

वहाँ से मरकर मैं पूर्व तप के कारण ज्योतिपी देव बना और वहाँ से च्युत होकर इसी कनकखल आश्रम मे कुलपति का पुत्र कौशिक हुआ। युवावस्था आने पर आश्रम के पाँच सौ तपस्वियो का अधिनायक बना। बाल्यकाल से ही मैं क्रोधी था, पर अधिकार हाथ मे आने पर मेरा रूप अत्यधिक उग्र हो गया। अत्यन्त क्रोधी होने से लोग मुझे 'चण्डकौशिक' कहकर पुकारने लगे।

आश्रम पर मेरी अत्यधिक आसक्ति और ममता थी, किसी को भी मैं आश्रम का एक भी पत्ता नही तोडने देता था। यदि कोई एक पत्ता भी उठा लेता तो मै उसे दण्ड देने के जिए परशु (कुल्हाडी) लेकर मारने दौडता। मेरी क्रूर प्रकृति से सभी कापते थे।

एक दिन मैं बाहर गया हुआ था। श्वेताम्बिका के राजकुमार खेलते-कूदते उस आश्रम मे आ पहुचे। किलकारियाँ मारकर खेलने लगे और कच्चे व पक्के फल तोड-तोड कर गिराने लगे। फूलो व पत्तो को नोच डाला। लता और पौधो को उखाडकर ढेर लगा दिया।

ज्यो ही मैं बाहर आया, राजकुमारो को ऊधम करते हुए देखा तो मेरी आँखो से खून बरसने लगा। आवेश मे मेरे सिर की नसे फटने लगी। मैं उन्हे मारने के लिए तेज कुल्हाडी लेकर दौडा—अरे दुष्टो! लो अभी मैं तुम्हे इसका मजा चखाता हूँ, तुम्हारे गर्म व ताजे खून से वृक्षो की जडे सीचूगा।[६७]

मेरे विकराल चेहरे को देखकर बालक काँप उठे। मुझे और अधिक चिढाने के लिये तालिया बजाते हुए इधर-उधर दौडने लगे। मैं उन्हे पकडने के लिये इधर से उधर दौड रहा था। दौडते-दौडते दम फूल गया। पसीने से शरीर तरबतर हो गया आँखो के आगे अधकार छा गया। आँखे लडको को देखने मे लगी थी, एक बहुत बडा गड्ढा था, मैं धडाम-से उसमे गिर पडा। हाथ मे कुल्हाडी थी, वह मेरे सिर लगी, जिससे सिर के टुकडे-टुकडे हो गए। भयानक क्रोधावेश मे मरकर मैं यही पर दृष्टिविष सर्प बना। इस जन्म मे भी मेरा क्रोध कहा शान्त हुआ। अपनी विषाक्त फु कारो से सारे वनप्रान्त को विषाक्त बना दिया। सुन्दर जनाकीर्ण प्रदेश को निर्जन बना दिया। आज मेरे से सभी भयभीत है।" इस प्रकार पूर्व पापो की सस्मृति से चडकौशिक का हृदय विकल और विह्वल हो उठा। आत्म-ज्ञान होते ही वह अपनी की हुई भूलो पर पश्चात्ताप करने लगा।[६८] भगवान् के चरणारविन्दो मे आकर झुक गया। उसका प्रस्तर हृदय पिघल गया। भगवान् के पावन प्रवचन से वह पवित्र हो गया। उसने दृढ प्रतिज्ञा ग्रहण की कि "आज से मैं किसी को न सताऊँगा। भगवन्! क्षमा करो, मुझ पतित पर करुणा करो। मैंने भयकर अपराध किया है। इस विपाक्त जीवन जीने

---

६७ मा वेगेण पलायह वट्टह सवडमुहा खण एक्क।
तालफलाणिव सीसे, जेण कुहाडेण पाडेमि॥

— महावीर चरिय (गुण०) १७५

६८ उम्मीलियविवेगो समुल्लसियधम्मपरिणामो।

—महावीर चरिय (गुण०) १७६

से तो मरना भला।' उसने उसी समय आजीवन अनशन व्रत ग्रहण कर लिया।[६९]

भगवान् को खडा देखकर लोग आने लगे। नागराज मे यह अद्भुत परिवर्तन देखकर जनता चकित थी। जिसे मारने के लिए एक दिन जनता आतुर थी, आज वही उसकी अर्चना कर आनन्द-विभोर हो रही थी। नागराज बिल मे मुह छिपाकर घुस गया था, कोई उस पर दूध और शक्कर चढा रहा था। कितने ही उस पर कु कुम का तिलक लगा रहे थे। मधुरता व स्निग्धता के कारण कुछ ही समय मे हजारो चीटिया आकर नाग के शरीर पर चिपक गई, उसे काटने लगी। असह्य पीडा होने पर भी वह समभाव से उसे सहन करता रहा। शुभ भावो मे आयु पूर्ण कर आठवें स्वर्ग मे गया।[७०] भगवान के परिचय मे आने से उसके जीवन का नक्शा ही बदल गया।

चण्डनाग-विजय के साथ तुलना

जिस प्रकार जैन ग्र थो मे चण्डकौशिक नाग को प्रतिबोध देने की घटना प्रसिद्ध है उसी प्रकार बौद्ध साहित्य (विनयपिटक महावग्ग) मे चण्ड-नाग-विजय का उल्लेख है। न्यूनाधिक रूपान्तर होने पर भी दोनो घटनाओ मे अत्यधिक समानता है। बुद्ध के जीवन की वह घटना इस प्रकार है—तथागत बुद्ध एक बार काश्यप जटिल के आश्रम मे पहुँचे और उससे कहा—यदि तुम्हे असुविधा न हो तो मैं तुम्हारी अग्निशाला मे निवास करना चाहता हूँ।

उरुवेल काश्यप ने नम्र निवेदन करते हुए कहा—महाश्रमण ! आपके निवास से मुझे किसी भी प्रकार की असुविधा नही है, किन्तु यहा पर अत्यन्त चण्ड व दिव्य शक्तिधर आशीविप नागराज रहता है जो कही आपको कष्ट न दे।

---

६९ (क) आवश्यक चूर्णि २७८
(ख) आवश्यक मलय० २७३
(ग) महावीर चरिय पृ० १७६

७० (क) आवश्यक चूर्णि २७९
(ख) त्रिपष्टि० १०।३।२७१-२७९

बुद्ध ने आत्मविश्वास के साथ कहा—काश्यप, वह नाग मुझे हानि नही पहुँचाएगा, तू मुझे अग्निशाला मे रहने की स्वीकृति दे दे। बुद्ध ने अपनी बात अनेक बार दुहराई।

उरुवेल ने स्वीकृति प्रदान की, बुद्ध ने अपना आसन बिछाया, स्मृति को स्थिर कर वहा पर बैठ गये। नागराज ने बुद्ध को देखा तो क्रुद्ध हो धुँआ उगलने लगा। बुद्ध ने अपने योग बल से नागराज के चर्म, मास नस, अस्थि, मज्जा को बिना किसी भी प्रकार की क्षति पहुँचाए उसका सारा तेज खीच लिया, प्रात पात्र मे रखकर उरुवेल काश्यप को दिखाते हुए कहा, अब यह निर्विष है, किसी को हानि नही पहुचायेगा।[71]

इस प्रकार महावीर ने चण्डकौशिक का उद्धार किया तो बुद्ध ने चण्ड-नाग पर विजय की। घटना मे समानता होते हुए भी विजय की प्रक्रिया ओर उपदेश शैली मे काफी अतर भी है।

नाग और महापुरुष

भारतीय साहित्य मे नाग का सम्बन्ध अनेक महापुरुषो के जीवन से जुडा हुआ है। वैदिक परम्परा मे तीन देवो की कल्पना है, ब्रह्मा नाग की सृष्टि करता है, विष्णु शेषनाग की शय्या पर सोते है और महेश नाग को गले मे लगा कर फिरते है। श्री कृष्ण ने कालिया नाग का दमन किया था[72] पार्श्वनाथ ने जलते हुए नाग की रक्षा की तो धरणेन्द्र ने सप्तफना नाग बनकर उन पर छत्र किया।[73] इस प्रकार नाग-विजय या नाग-उद्धार की कहानिया अनेक महापुरुषो के जीवन से जुडी हुई है। इसका तात्पर्य यही हो सकता है कि महापुरुष ससार मे स्नेह, सद्‌भाव, प्रेम, करुणा और अहिंसा का अमृत बाटने आते है, ईर्ष्या, द्वेष, क्लेश, भय और ममत्व का विष (नाग) जो ससार को सत्रस्त कर रहा है, उससे स्वय तो अभय होते ही है, किंतु ससार को भी अभय करते हैं, इसी मे उनके महापुरुषत्व की विशिष्टता द्योतित होती है।

---

७१ विनयपिटक, महावग्ग, महाखन्धक

७२ (क) त्रिषष्टि० ८।५।२६२-२६५

(ख) 'भगवान अरिष्टनेमि और कर्मयोगी श्रीकृष्ण एक अनुशीलन' ले देवेन्द्रमुनि पृ० २१२-२१३

७३ (क) 'भ० पार्श्व एक समीक्षात्मक अध्ययन'—देवेन्द्र मुनि, पृ० १०१

(ख) चउप्पन्न महापुरिस चरिय पृ० २६७

(ग) सिरिपासणाह चरिय ३।१९३

श्वेताम्बी की ओर

चण्डकौशिक को प्रतिबोध देकर भगवान् उत्तर वाचाला पधारे। नागसेन के घर पर पन्द्रह दिन के उपवास का पारणा कर श्वेताम्बी पधारे।[७४] सम्राट् प्रदेशी ने भाव भीना स्वागत किया. वहा से सुरभिपुर पधार रहे थे कि मार्ग मे सम्राट् प्रदेशी के पास जाते हुए पाच नैयिक राजाओ ने भगवान् की वन्दना-नन्दना की।[७५]

नाव किनारे लग गई

सुरभिपुर की ओर जाते समय गगा नदी को पार करने हेतु भगवान् सिद्धदत्त नामक नाविक की नौका मे आरूढ हुए। नौका ने ज्यो ही प्रस्थान किया, त्यो ही दाहिनी ओर से उल्लूक के कर्णकटु शब्दो को श्रवण कर खेमिल निमित्तज्ञ ने यात्रियो से कहा - बडा अपशकुन हुआ है, पर प्रस्तुत महापुरुष की प्रबल पुण्यवानी से हम बच जायेंगे।

आगे बढते ही आधी और तूफान से नौका भवर मे फस गई। बताया गया है कि त्रिपृष्ठ वासुदेव के भव मे जिस सिंह को मारा था, वह सिंह का जीव सुदष्ट्र नाम का देव हुआ था और पूर्व वैर को स्मरण कर उसने गगा मे तूफान खडा कर दिया। अन्य यात्रीगण भय से काप उठे, पर महावीर निष्कम्प थे। अन्त मे महावीर के तपोपूत प्रभाव से नौका किनारे लग गई। कम्बल ओर शम्बल नाम के नागकुमारो ने इस उपसर्ग का निवारण किया।[७६]

---

७४ उत्तरवाचाल णागसेण खीरेण भोयण दिन्वा।

—आव० नि० ३५१

(ख) विशेपा० भाष्य १९०३

(ग) आव० चूर्णि २७९

(घ) त्रिपष्टि० १०।३।२८१-२८५

७५ (क) सेतवियाए पतेसी पचरधे णिज्जरायाणो।

—आव० निर्युक्ति ३५१

(ख) विशेपावश्यक भाष्य १९०३

(ग) आव० चूर्णि २७९-२८०

धर्मचक्रवर्ती

नाव से उतरकर भगवान गगा के किनारे स्थित थूणाकसन्निवेश के बाहर ध्यानमुद्रा मे खडे हो गए। भगवान् के चरण-चिह्नो को देखकर पुष्य नामक एक निमित्तज्ञ के मानस मे विचार उठा कि ये चरण-चिह्न तो अवश्य ही किसी चक्रवर्ती सम्राट के है, जो अभी किसी विपदा से ग्रस्त होकर अकेला घूम रहा है। मैं जाकर इसकी सेवा करू। चक्रवर्ती सम्राट बनने पर वह प्रसन्न होकर मुझे निहाल कर देगा।[७७] वह चरण-चिह्नो को देखता हुआ भगवान के पास पहुँचा, किन्तु भिक्षुक के वेप मे भगवान् को देखकर उसके आश्चर्य का पार नही रहा। वह यह नही समझ सका कि चक्रवर्ती सम्राट के सम्पूर्ण लक्षण विद्यमान होने पर भी यह भिक्षुक कैसे? उसे ज्योतिप शास्त्र का कथन मिथ्या प्रतीत हुआ। वह अपने ज्योतिप (सामुद्रिक) शास्त्र को गगा मे बहाने के लिए तैयारी कर ही रहा था कि देवेन्द्र ने प्रकट होकर

---

७६ (क) सुरभिपुरसिद्धयत्तो गगा कोसिय विदूय खेमिलओ।
णागसुडाढ सीहे कम्बलसबला य जिणमहिम।

—आवश्यक निर्युक्ति ३५२

(ख) विशेपावश्यक भाष्य १६०४, १६०५, १६०६

(ग) आवश्यक चूर्णि पृ० २८०, २८१

(घ) आव० मलय० वृत्ति २७४

(ड) महावीर चरिय, गुणचन्द्र १७८

(च) निशीथ भाष्य गा० ४२१८ पृ० ३६६, ततीय भाग

७७ (क) आव० निर्युक्ति ३५५

(ख) विशेपा० भाष्य १६०७

(ग) तत्थ पूसो णाम सम्मुद्दो, सो ताणि सोचिते लक्खणाणि पासणि ताहे एस चक्कवट्टी एगागी गतो वच्चामिण वागरेमि तो मम एत्तो भागवती भविस्सति, सेवामि ण कुमारत्ते।

—आव० चूर्णि २८२

(घ) आव० मल० वृत्ति २७५

(ड) महावीर चरिय १८१

(च) त्रिपष्टि० १०।३।३४८-३५१

कहा—पुष्य । यह कोई साधारण भिक्षुक नही है । धर्म-चक्रवर्ती है । चक्रवर्ती सम्राट् से भी बढकर है । देवो व इन्द्रो के द्वारा भी वन्दनीय और अर्चनीय है । पुष्य भगवान को वन्दना करके चल दिया ।[७८]

गोशालक की भेंट

भगवान महावीर ने द्वितीय वर्षावास राजगृह के उपनगर नालन्दा की तन्तुवायशाला (बुनकर की उद्योगशाला) मे किया । वहा मखलिपुत्र गोशालक भी वर्षावास हेतु आया हुआ था । वह भगवान् के तप और त्याग से आकर्पित हुआ । जब उसने भगवान् के मासक्षपण के पारणे मे पॉच दिव्य प्रकट हुए देखे, आकाश मे देव-दुन्दुभि सुनी तो वह उनके चामत्कारिक तप से आकृष्ट होकर उनका शिष्य बनने के लिए उत्सुक हो गया । वह भगवान से शिष्य रूप मे स्वीकार करने की प्रार्थना करने लगा, प्रभु मौन रहे । उस वर्षावास मे भगवान ने एक-एक मास का दीर्घ तप किया ।[७९] वर्षावास की पूर्णाहुति के दिन गोशालक भिक्षा के लिए निकला तो उसने प्रभु से जिज्ञासा की—तपस्वी ! आज मुझे भिक्षा मे क्या प्राप्त होगा ? उत्तर देते हुए भगवान ने कहा—'कोदो का वासी तन्दुल, खट्टी छाछ और खोटा रुपया । भगवान् की भविष्यवाणी को मिथ्या करने हेतु वह श्रेष्ठियो के गगनचुम्बी भव्य भवनो मे पहुँचा, पर हताश और निराश होकर पुन खाली हाथ लौट

---

७८ (क) आवश्यक चूर्णि २८२

(ख) भो पूस ! किं विसन्नो अमुणन्तो लक्खणाण परमत्थ ।
एसो तिहुयण-महिओ अट्ठुत्तरलक्खणसहस्सो ॥
— महावीर चरिय (नेमिचन्द्र) १०३०

७९ (क) रायगिह ततुसाला मासक्खमण च गोसालो । —आव० निर्युक्ति ३५५

(ख) विशेषा भाष्य १९०७

(ग) आव० चूर्णि २८२

(घ) आव० मलय वृत्ति २७३।१

(ङ) महावीर चरिय (नेमिचन्द्र) १०३६

(च) महावीर चरिय (गुणचन्द्र) ६।१८३

(छ) त्रिपष्टि० १०।३।३७२

आया। फिर गरीबो की झोपडियो की ओर बढा। एक लुहार के घर घर उसे खट्टी छाछ, बासी भात व दक्षिणा मे एक रुपया प्राप्त हुआ।[80] बस, इस घटना ने उसे नियतिवाद की ओर प्रेरित कर दिया। वह सोचने लगा—जो होना होता है, वह होकर रहता है और वह सब कुछ पहले से ही निश्चित रहता है।

भगवान महावीर नालदा से विहार कर कोल्लागसन्निवेश पधारे और वहा एक ब्राह्मण के घर पर चातुर्मासतप का पारणा किया। इधर गोशालक भिक्षा से लौटा। भगवान् को वहा न पाकर ढूढता हुआ कोल्लागसन्निवेश मे आ पहुँचा।[81] भगवान से शिष्य बना लेने की की पुन-पुन अभ्यर्थना की, भगवान ने स्वीकार की।

गोशालक प्रकृति से चचल, उद्धत व लोलुप था। वह भगवान के साथ ही कोल्लागसन्निवेश से सुवर्णखल जा रहा था। मार्ग मे एक ग्वालमण्डली खीर पका रही थी, खीर को देखकर गोशालक का मन उसे खाने के लिए ललचा उठा। महावीर से निवेदन किया। महावीर ने कहा—खीर पकने के पूर्व ही हण्डी फूटने के कारण धूल मे मिल जायेगी। गोशालक ने ग्वालो को सचेत किया और स्वय खीर खाने की अभिलाषा से वहीं रुक गया। भगवान आगे बढ गये। ग्वालो के द्वारा हण्डी की सुरक्षा करने पर भी हण्डी फूट गई और खीर धूल मे मिल गई।[82] गोशालक छोटा-सा मुँह लिये महावीर के

---

८० (क) आव० चूर्णि २८२
(ख) आव० मल० वृत्ति २७६
(ग) आव० हारिभद्रीया वृत्ति १६६
(घ) महावीर चरियं (नेमिचन्द्र) १०४६
(ङ) महावीर चरियं (गुण०) ६।१८६

८१ (क) आवश्यक चूर्णि पृ० २८२
(ख) सामिं अपेच्छमाणो रायगिहे सब्भितरबाहिरे गवेसेइ जाहे न पेच्छइ ताहे मुडण काउ गतो कोल्लाग तत्थ भयवतो मिलितो।

—आ० मलय० वृत्ति २७६

(ग) विशेषा० भाष्य० १६०६

८२ (क) आव० चूर्णि २८३
(ख) बाहिं सुवण्णखल पायसथाली णियतीय गहण च।

—आव० निर्युक्ति ३५७

(ग) विशेषा० भाष्य १६०६

पास पहुँचा। इस घटना से उसकी यह धारणा दृढ हो गई कि होनहार कभी टल नही सकता। वह 'नियतिवाद' का पक्का समर्थक बन गया।

वहाँ से विहार कर भगवान ब्राह्मणगाँव पधारे। उसके दो विभाग थे। एक 'नन्दपाटक और दूसरा 'उपनन्दपाटक'। भगवान नन्दपाटक मे नन्द के घर पर भिक्षा के लिए पधारे। भगवान को बासी भोजन प्राप्त हुआ, परन्तु शान्त भाव से उन्होंने उसे स्वीकार किया। गोशालक उपनन्दपाटक मे उपनन्द के यहाँ भिक्षा के लिए गया, दासी वासी तन्दुलो की भिक्षा देने लगी तो गोशालक ने मुह मचका कर उसे लेने से इन्कार कर दिया। गोशालक के अभद्र व्यवहार से उपनन्द क्रुद्ध हो गया और दासी से कहा—वह भिक्षा न ले तो उसके शिर पर फेंक दे। दासी ने स्वामी की आज्ञा से उसी के शिर पर डाल दी। गोशालक आपे से बाहर हो गया। शाप देकर बकता हुआ वहाँ से चल दिया।

भगवान् वहा से अगदेश की राजधानी चम्पानगरी पधारे। गोशालक भी साथ ही था। भगवान् ने तृतीय वर्षावास वही व्यतीत किया। वर्षावास मे दो-दो मास के उत्कट तप के साथ विविध आसन व ध्यानयोग की साधना की। प्रथम पारणा चम्पा मे किया और द्वितीय चम्पा से बाहर।[८३]

वर्षावास के पश्चात कालायसन्निवेश पधारे। वहा से पत्तकालाय पधारे और दोनो ही स्थानो पर खण्डहरो मे स्थित होकर ध्यान किया।[८४]

(घ) आव० मलय० वृत्ति २७६

(ड) महावीर चरिय नेमि० १०५५-१०५६

८३ (क) बभणगामे णन्दोवणद उवणन्द ते य पच्चद्धे।
चम्पा दुमासखमणे वासावास मुणी खमइ॥

—आव० निर्युक्ति ३५८

(ख) विशेपावश्यक भाष्य १६१०

(ग) आवश्यक मलय० वृत्ति २७७

(घ) महावीर चरिय गुणचन्द्र ६।१८८

८४ (क) कालाए सुण्णगारे सीहो विज्जुमति गोटिठदासीए।
खदओ दतिलियाए पत्तालग सुण्णगारम्मि॥

—आव० निर्युक्ति ३५९

(ख) विशेषा० भाष्य १६११

दोनो ही स्थानो पर गोशालक अपनी विकारयुक्त एव अविवेकी प्रवृत्ति के कारण लोगो के द्वारा पीटा गया। भगवान तो रात-रात भर ध्यान मे लीन रहे।

वहा से भगवान् कुमारक सन्निवेश पधारे, वहा पर चम्पक रमणीय उद्यान मे कायोत्सर्ग प्रतिमा धारण करके रहे।[८५]

भिक्षा का समय होने पर गोशालक ने भिक्षा के लिए चलने हेतु महावीर से प्रार्थना की। भगवान ने कहा—"मेरे उपवास है।"

गोशालक चला। उस समय पार्श्वापत्य मुनि चन्द्रस्थविर कुमारक सन्निवेश मे कुम्हार कूवणय की शाला मे ठहरे हुए थे। गोशालक ने पार्श्वापत्य मुनियो के रग-बिरगे वस्त्र देखकर पूछा—"तुम कौन हो?" उन्होने उत्तर दिया—"हम निर्ग्रन्थ है और भगवान पार्श्वनाथ के शिष्य है।"

गोशालक ने कहा—'तुम कैसे निर्ग्रन्थ हो? इतना सारा वस्त्र और पात्र रखा है, फिर भी अपने को निर्ग्रन्थ कहते हो? ज्ञात होता है अपनी आजीविका चलाने के लिये ही यह प्रपंच कर रखा है। देखिए—सच्चे निर्ग्रन्थ तो मेरे धर्माचार्य है जो वस्त्र और पात्र से रहित है तथा तप और त्याग की साक्षात् प्रतिमूर्ति है।"[८६]

(ग) आव० मलय० वृत्ति० प० २७७

(घ) महावीर चरिय ६।१८७

८५ (क) आव० मलय० वृत्ति २७८

(ख) महावीर चरिय (गुण०) ६।१८६

८६ (क) सोऽपश्यत्पार्श्वशिष्यास्तान् विचित्रवसनावृतान्।
पात्रादिधारिण के नु यूयमित्यन्वयुक्त च॥
निग्रन्था पार्श्वशिष्या स्यो वयमित्यूचिरेऽथ ते।
गोशालोऽपि हसन्नूचे धिग्वो मिथ्याभिभाषिण॥
कथ नु यूय निर्ग्रन्था वस्त्रादिग्रन्थधारिण?
केवल जीविकाहेतोरिय पाखण्ड-कल्पना।
वस्त्रादिसगरहितो निरपेक्षो वपुष्यपि।
धर्माचार्यो हि यादृड्मे निर्ग्रन्थास्तादृशा खलु॥
—त्रिषष्टि० १०।३।४५३ से ५६

(ख) आवश्यक चूर्णि पत्र २८५

पार्श्वापत्य श्रमणो ने कहा—"जैसा तू है, वैसे ही तेरे धर्माचार्य भी स्वय-गृहीतलिग होगे।"

गोशालक ने क्रुद्ध होकर कहा—"मेरे धर्माचार्य की तुम लोग निन्दा कर रहे हो। मेरे धर्माचार्य के दिव्य तपस्तेज से तुम्हारा उपाश्रय जलकर भस्म हो जाये।" गोशालक ने अनेक बार कहा, पर कुछ नही हुआ।

पार्श्वापत्य श्रमणो ने कहा—"क्यो व्यर्थ कष्ट कर रहे हो- हम तुम्हारे जैसो के शाप से भस्म होने वाले नही है।"

लम्बे समय तक वाद विवाद करने के पश्चात् गोशालक लौटकर महावीर के पास आया ओर बोला "आज मेरी सारभ और सपरिग्रह श्रमणो से भेट हुई। मेरे शाप देने पर भी उनका तनिक भी बाल-बाका नही हुआ।"

भगवान् ने बताया कि वे पार्श्वापत्य अनगार है।

वहाँ से विहार कर भगवान् चोराक सन्निवेश पधारे। वहाँ तस्करो का अत्यधिक भय था। अत आरक्षक (पहरेदार) सतत सावधान रहते थे। आरक्षको ने परिचय प्राप्त करने के लिए भगवान् से प्रश्न किया, पर भगवान् मौन रहे। आरक्षको ने गुप्तचर समझकर भगवान् को अनेक यातनाये दी। सोमा और जयन्ती नामक परिव्राजिकाये जो उत्पल नैमित्तिक की बहने थी, जब उन्हे ज्ञात हुआ तब वे शीघ्र ही वहा पहुँची और आरक्षको को बताया कि ये 'सिद्धार्थनन्दन महावीर है।' आरक्षको ने उन्हे मुक्त कर क्षमा याचना की।[८७]

वहाँ से पृष्ठ चम्पा पधारे और चतुर्थ वर्षावास वहाँ पर व्यतीत किया। प्रस्तुत वर्षावास मे चार मास के लिए आहार का परिहार कर आत्म चिन्तन व ध्यानमुद्रा मे खडे रहे।[८८]

---

८७ (क) आव० निर्युक्ति ३६०

(ख) विशेषा० भाष्य १९१२

(ग) आवश्यक चूर्णि २८७

(घ) आव० मलय० वृत्ति २७८-२७९

८८ पिट्ठी चपा वास तत्थ चतुम्मासिएण खमणेण।

— आव० निर्युक्ति ३६१

वर्षावास के पश्चात् भगवान् कयगला नगरी पधारे। वहाँ दरिद्दथेर के देवल में ध्यानस्थ हुए।[८९] वहाँ से विहार कर श्रावस्ती के बाहर ध्यान किया।[९०] कडकडाती सर्दी पड रही थी तथापि भगवान् सर्दी की परवाह किये बिना रातभर ध्यान मे रहे। सर्दी से गोशालक बहुत परेशान हुआ। इधर देवल मे धार्मिक उत्सव होने से स्त्री-पुरुष आदि एकत्र होकर नृत्य-गाना-बजाना कर रहे थे। गोशालक उनकी मजाक करने लगा—'यह कैसा धर्म है, जिसमे स्त्री-पुरुष साथ-साथ निर्लज्ज होकर नाचे गाये।' लोगो ने गोशालक को पकडकर बाहर धकेल दिया। वह सर्दी से ठिठुरने लगा, बोला—"इस ससार मे सच बोलकर विपत्ति मोल लेना है।" लोगो ने देवार्य का शिष्य समझकर पुन: भीतर बुलाया, मगर वह तो अपनी आदत से लाचार था, पहले युवको ने पीटा, फिर वृद्धो ने उसकी बाते अनसुनी करके खूब जोर से बाजे बजाने के लिए कहा। प्रात भगवान् वहाँ से विहार कर श्रावस्ती पधारे। श्रावस्ती मे शिवदत्त ब्राह्मण की पत्नी ने मृत बालक के रुधिर-मास से खीर बनाई और वह गोशालक को दी। गोशालक ने खाई, प्रभु ने रहस्योद्घाटन किया। गोशालक ने वमन किया, वही सब चीजे देखकर उसे नियतिवाद पर दृढ विश्वास हो गया।[९१]

श्रावस्ती से विहार कर भगवान 'हलिद्दुग' गाँव पधारे।[९२] गाव के समीप ही एक हलिद्दुग नामक विराट् वृक्ष था। भगवान् ने ध्यान हेतु

---

८९ (क) कयगलदेउलवरिसे दरिद्दथेरा य गोसालो।

—आव० निर्युक्ति ३६१

(ख) विशेषा० भाष्य १९१३

९० (क) सावत्थी सिरिभद्दा णिन्दू पितुदत्त पयस सिवदत्ते।

—आव० निर्युक्ति ३६२

(ख) विशेषा० भाष्य १९१४

९१ त्रिषष्टि० १०।३।५०६-५१८

९२ (क) दारठाणि णक्खवाले, हलिद्दपडिमाठाणी पधिया।

—आव० निर्युक्ति ३६२

(ख) विशेषावश्यक भाष्य १९१४

(ग) आव० चूर्णि २८८

(घ) सामिस्स पादादड्ढा।

—आव० चूर्णि २८८

पार्श्वापत्य श्रमणो ने कहा—"जैसा तू है, वैसे ही तेरे धर्माचार्य भी स्वय-गृहीतलिंग होंगे।"

गोशालक ने क्रुद्ध होकर कहा—"मेरे धर्माचार्य की तुम लोग निन्दा कर रहे हो। मेरे धर्माचार्य के दिव्य तपस्तेज से तुम्हारा उपाश्रय जलकर भस्म हो जाये।" गोशालक ने अनेक बार कहा, पर कुछ नही हुआ।

पार्श्वापत्य श्रमणो ने कहा—"क्यो व्यर्थ कष्ट कर रहे हो- हम तुम्हारे जैसो के शाप से भस्म होने वाले नही है।"

लम्बे समय तक वाद विवाद करने के पश्चात् गोशालक लौटकर महावीर के पास आया और बोला "आज मेरी सारभ और सपरिग्रह श्रमणो से भेट हुई। मेरे शाप देने पर भी उनका तनिक भी बाल-बाका नही हुआ।"

भगवान् ने बताया कि वे पार्श्वापत्य अनगार है।

वहाँ से विहार कर भगवान् चोराक सन्निवेश पधारे। वहाँ तस्करो का अत्यधिक भय था। अत आरक्षक (पहरेदार) सतत सावधान रहते थे। आरक्षको ने परिचय प्राप्त करने के लिए भगवान् से प्रश्न किया, पर भगवान् मौन रहे। आरक्षको ने गुप्तचर समझकर भगवान् को अनेक यातनाये दी। सोमा और जयन्ती नामक परिव्राजिकाये जो उत्पल नैमित्तिक की बहने थी, जब उन्हे ज्ञात हुआ तब वे शीघ्र ही वहा पहुँची और आरक्षको को बताया कि ये 'सिद्धार्थनन्दन महावीर है।' आरक्षको ने उन्हे मुक्त कर क्षमा याचना की।[८७]

वहाँ से पृष्ठ चम्पा पधारे और चतुर्थ वर्षावास वहाँ पर व्यतीत किया। प्रस्तुत वर्षावास मे चार मास के लिए आहार का परिहार कर आत्म-चिन्तन व ध्यानमुद्रा मे खडे रहे।[८८]

---

८७ (क) आव० निर्युक्ति ३६०
(ख) विशेषा० भाष्य १९१२
(ग) आवश्यक चूर्णि २८७
(घ) आव० मलय० वृत्ति २७८-२७९

८८ पिट्ठो चपा वास तत्थ चतुम्मासिएण खमणेण।
— आव० निर्युक्ति ३६१

वर्षावास के पश्चात् भगवान् कयगला नगरी पधारे। वहाँ दरिद्दथेर के देवल मे ध्यानस्थ हुए।[८९] वहाँ से विहार कर श्रावस्ती के बाहर ध्यान किया।[९०] कडकडाती सर्दी पड रही थी तथापि भगवान् सर्दी की परवाह किये बिना रातभर ध्यान मे रहे। सर्दी से गोशालक बहुत परेशान हुआ। इधर देवल मे धार्मिक उत्सव होने से स्त्री-पुरुष आदि एकत्र होकर नृत्य-गाना-बजाना कर रहे थे। गोशालक उनकी मजाक करने लगा—'यह कैसा धर्म है, जिसमे स्त्री-पुरुष साथ-साथ निर्लज्ज होकर नाचे गाये।' लोगो ने गोशालक को पकडकर बाहर धकेल दिया। वह सर्दी से ठिठुरने लगा, बोला—"इस ससार मे सच बोलकर विपत्ति मोल लेना है।" लोगो ने देवार्य का शिष्य समझकर पुन भीतर बुलाया, मगर वह तो अपनी आदत से लाचार था, पहले युवको ने पीटा, फिर वृद्धो ने उसकी बाते अनसुनी करके खूब जोर से बाजे बजाने के लिए कहा। प्रात भगवान् वहाँ से विहार कर श्रावस्ती पधारे। श्रावस्ती मे शिवदत्त ब्राह्मण की पत्नी ने मृत बालक के रुधिर-मास से खीर बनाई और वह गोशालक को दी। गोशालक ने खाई, प्रभु ने रहस्योद्घाटन किया। गोशालक ने वमन किया, वही सब चीजे देखकर उसे नियतिवाद पर दृढ विश्वास हो गया।[९१]

श्रावस्ती से विहार कर भगवान 'हलिद्दुग' गाँव पधारे।[९२] गाव के समीप ही एक हलिद्दुग नामक विराट् वृक्ष था। भगवान् ने ध्यान हेतु

---

८९ (क) कयगलदेउलवरिसे दरिद्दथेरा य गोसालो।

—आव० निर्युक्ति ३६१

(ख) विशेषा० भाष्य १९१३

९० (क) सावत्थी सिरिभद्दा णिन्दू पितुदत्त पयस सिवदत्ते।

—आव० निर्युक्ति ३६२

(ख) विशेषा० भाष्य १९१४

९१ त्रिषष्टि० १०।३।५०६-५१८

९२ (क) दारऽगणि णक्खवाले, हलिद्दपडिमाऽगणी पधिया।

—आव० निर्युक्ति ३६२

(ख) विशेषावश्यक भाष्य १९१४

(ग) आव० चूर्णि २८८

(घ) सामिस्स पादादड्ढा।

—आव० चूर्णि २८८

उपयुक्त स्थल समझकर वही अवस्थिति की। अन्य यात्रियो ने भी वहाँ पर रात्रि मे विश्राम किया। उन्होने सर्दी से बचने के लिए अग्नि जलाई। सूर्योदय के पूर्व ही यात्रियो ने वहाँ से आगे प्रस्थान कर दिया। वह अग्नि धीरे-धीरे बढती हुई ध्यानस्थ महावीर के निकट आ पहुची। गोशालक ने ज्यो ही आग की लपलपाती लपटो को अपनी ओर आते हुए देखा त्यो ही चिल्लाता हुआ वहाँ से भाग छूटा, परन्तु महावीर अपने ध्यान मे मग्न थे। ज्वाला आगे बढी, महावीर के पैर उस ज्वाला की लपटो से झुलस गये। तथापि वे ध्यान से विचलित नही हुए। मध्याह्न मे वहाँ से आगे प्रस्थान किया। 'नगला' होते हुए 'आवर्त्त' पधारे और क्रमश वासुदेव तथा बलदेव के मन्दिरो मे ध्यान किया।[९३]

इस प्रकार अन्य अनेक क्षेत्रो को पाद-पद्मो से पवित्र करते हुए भगवान चोराक सन्निवेश पधारे।[९४] यहा लोगो ने गोशालक को गुप्तचर समझकर बहुत पीटा। वहाँ से भगवान कलबुका सन्निवेश को जा रहे थे कि उसी मार्ग से वहा के अधिकारी कालहस्ती तस्करो का पीछा करते हुए उधर से निकले तो बीच मे भगवान् महावीर और गोशालक मिले। उन्होने परिचय पूछा, परन्तु महावीर मौन थे और कुतूहल देखने के लिए गोशालक भी चुप रहा। दोनो को तस्कर समझकर अनेक यातनाये दी। तथापि भगवान ने मौन भग नही किया। आखिर रस्सियो से जकडकर उन्हे अपने ज्येष्ठ भ्राता मेघ के पास भेज दिया। मेघ ने गृहस्थाश्रम मे क्षत्रियकुण्ड

---

९३ (क) तत्तो अ णगलाए डिम्भ मुणी अच्छिक ड्ढण चेव।
आवत्ते मुहतासे मुणिय त्ति वाहि बलदेवो॥
—आव० निर्युक्ति ३६३

(ख) विशेषा० भाष्य १९१५

(ग) आव० मल० वृत्ति २८१।१

९४ (क) चोरा मण्डवभोज्ज गोसालो वधण तेय झावणता।
मेहो य कालहत्थी कलबुआए य उवसग्गा॥
—आव० निर्युक्ति ३६४

(ख) विशेषा० भाष्य १९१६

(ग) आव० मलय० वृत्ति २८१

(घ) महावीर चरियं ६।१९४

(ङ) त्रिषष्टि० १०।३।५४२

मे महावीर को देखा था अत देखते ही स्मृतियाँ सचेतन हो उठी और पहचान लिया, शीघ्र ही बधनो से मुक्त कर अपने अज्ञानवश किये गये अपराध की क्षमायाचना की।[६५]

गोशालक : एक परिचय

भगवान महावीर के जीवन मे गोशालक एक मुख्य चर्चास्पद व्यक्ति रहा है। अनेक स्थानो पर उसकी चर्चाए है और उसकी विभिन्न प्रकार की वृत्तिया प्रदर्शित की गई है। प्रारभ मे वह भगवान का शिष्य बना, फिर प्रतिस्पर्धी और एक विद्रोही। आजीवक मत का आचार्य बनकर उसने स्वय को तीर्थंकर भी उद्घोपित किया।

वास्तव मे गोशालक क्या था और उसका तथा आजीवक मत का उस युग मे क्या प्रभाव था, इस पर यहा सक्षेप मे हम कुछ विचार करते है, ताकि गोशालक के विषय मे कुछ स्पष्ट धारणा बनाई जा सके।

भगवती सूत्र के पन्द्रहवें शतक मे गोशालक की विस्तार से चर्चा है। वह सारी चर्चा यहा पर आवश्यक न होने से हमने नही की है। आवश्यक निर्युक्ति, चूर्णि, महावीरचरिय और त्रिषष्टि शलाकापुरुष चरित्र मे जो प्रसग आये है, वे सक्षेप मे दिये गये है।

गोशालक के नाम और व्यवसाय के सम्बन्ध मे विभिन्न व्याख्याए है। भगवती, उपासकदशाग आदि आगमो मे **'गोसाले मखलीपुत्ते'** इस शब्द का प्रयोग हुआ है। गोशालक मख कर्म करने वाला मखलि नामक व्यक्ति का पुत्र था। मख शब्द का अर्थ कही पर चित्रकार और कही पर चित्रविक्रेता किया है। नवाङ्गी टीकाकार अभयदेव ने लिखा है—**'चित्रफलक हस्ते गत यस्य स तथा'** जो चित्रपट्टक हाथ मे रखकर अपनी आजीविका चलाता है। यह अर्थ हमारी दृष्टि से विशेष सगत है। मख एक जाति थी, उस जाति के

---

६५ (क) आव० चूर्णि २८९-२९०

(ख) आव० मलय० वृत्ति २८१

(ग) आवश्यक हारिभद्रीया २०६

(घ) महावीर चरिय ६।१९५

(ङ) त्रिषष्टि० १०।३।५४३-५५२

लोग शिव या किसी देव का चित्रपट्ट हाथ मे रखकर अपनी आजीविका चलाते थे। जैसे आज भी डाकौत जाति के लोग 'शनि' देव की मूर्ति या चित्र रखकर अपनी आजीविका करते हे।

बौद्ध-साहित्य मे भी आजीवक नेता को 'मक्खलि गोशाल' कहा है। मक्खली नाम क्यो हुआ इस सम्बन्ध मे बौद्ध-साहित्य मे एक कथा है—गोशालक एक दास था। एक बार वह अपने स्वामी के आगे तेल का घडा उठाकर चल रहा था। कुछ दूर जाने पर चिकनी ढलावू भूमि आई। उसके स्वामी ने कहा—"**तात ! मा खलि, तात ! मा खलि**" अरे स्खलित मत होना, अरे स्खलित मत होना। पर गोशालक का पैर फिसल गया और तेल भूमि पर गिर पडा। वह स्वामी के भय से भागने लगा, पर स्वामी ने भागते हुए का वस्त्र पकड लिया। वह वस्त्र छोडकर नगा ही भाग गया। इस प्रकार वह नग्न हो गया और लोग उसे 'मखलि' कहने लगे।[९६]

यह कथा बौद्ध-परम्परा मे उत्तरकालीन साहित्य मे आयी है। इसलिए इसका अधिक महत्त्व नही मानना चाहिए।[९७]

पाणिनि ने इसे 'मस्करी' शब्द माना है। 'मस्करी' शब्द का सामान्य अर्थ परिव्राजक किया है।[९८] भाष्यकार पतजलि ने लिखा है—मस्करी वह साधु नही है जो हाथ मे मस्कर या बास की लाठी लेकर चलता है। फिर क्या है ? मस्करी वह है जो उपदेश देता है, कर्म मत करो। शान्ति का मार्ग ही श्रेयस्कर है।[९९] यद्यपि पाणिनि और पतञ्जलि ने गोशालक के नाम का निर्देश नही किया है, पर उनका लक्ष्य वही है। ऐसा ज्ञात होता है 'कर्म मत करो' की व्याख्या तभी प्रचलित हुई जब गोशालक एक धर्माचार्य के रूप मे विश्रुत हो चुका था। हो सकता है, प्रचलित नाम की नवीन व्याख्या

९६ (क) धम्मपद-अट्ठकथा—आचार्य बुद्धघोष १-१४३
(ख) मज्झिमनिकाय—अट्ठकथा १-४२२

९७ आगम और त्रिपिटक एक अनुशीलन पृ० ४१

९८ मस्करमस्करिणौ वेणुपरिव्राजकयो ।

—पाणिनि व्याकरण ६।१।१५४

९९ न वै मस्करोऽस्यातीति मस्करी परिव्राजक ।
किं तर्हि ? माकृत कर्माणि माकृत कर्माणि,
शान्तिर्व श्रेयसीत्याहातो मस्करी परिव्राजक ॥

—पातञ्जल महाभाष्य ५।१।

दी हो। जैन आगम व आगमेतर साहित्य मे इससे भी अधिक स्पष्टता है।[100] वे मखलि का पुत्र तो कहते ही है साथ ही उसे 'गोशाला' मे उत्पन्न भी बताते है। जिसकी पुष्टि पाणिनि 'गोशालाया जात गोशाल' (४।३।३५) इस व्युत्पत्ति नियम से करते है। सामञ्जफल सुत्त की टीका मे आचार्य बुद्धघोष ने गोशालक का जन्म गोशाला मे हुआ माना है।[1]

कुछ वर्षो मे गोशालक और आजीवक मत के सम्बन्ध मे पाश्चात्य और पौर्वात्य विज्ञो ने काफी अन्वेषणा की है, और नवीन स्थापना भी की है। नवीन स्थापना करते समय इतिहास और परम्परा का ज्ञान तथा तटस्थता अपेक्षित है। जब स्थापना करते समय इस सम्बन्ध मे विवेक नही रखा जाता है तब वह स्थापना भयावह हो जाती है। खेद इस बात का है कि कितने विद्वान् गोशालक सम्बन्धी इतिहास को मूल से ही परिवर्तन करना चाहते है। जैन श्वेताम्बर साहित्य मे गोशालक के गुरु भगवान महावीर बताये है।[2] दिगम्बर परम्परा के अनुसार गोशालक भगवान पार्श्वनाथ की परम्परा का एक मुनि था। महावीर की परम्परा मे आकर वह गणधर पद पर नियुक्त होना चाहता था, महावीर के समवसरण मे आया, पर जब उसकी नियुक्ति गणधर पद पर नही हुई तब वह वहाँ से पृथक् हो गया। श्रावस्ती मे आकर आजीवक सम्प्रदाय का नेता बना और अपने को तीर्थंकर कहने लगा।[3] पर डाक्टर वेणीमाधव बरुआ लिखते है-- 'यह तो कहा ही जा सकता है कि जैन और बौद्ध परम्पराओ से मिलने वाली जानकारी से यह प्रमाणित नही हो सकता कि जिस प्रकार जैन गोशालक को महावीर के दो ढोगी शिष्यो मे से एक ढोगी शिष्य बताते है, वैसा वह था। प्रत्युत उन जानकारियो से विपरीत ही प्रमाणित होता है, अर्थात् मैं कहना चाहता हूँ कि इस विवादग्रस्त प्रश्न पर इतिहासकार प्रयत्नशील होते है तो उन्हे

१०० भगवती, सूत्रकृताग, उपासकदशाग, आवश्यक चूर्णि, आवश्यक हारिभद्रीय वृत्ति, आवश्यक मलयगिरी वृत्ति आदि।

१ सुमगल विलासिनी (दीघनिकाय अट्ठकथा) पृ० १४३-४४

२ भगवती १५ शतक

३ मसयरि पूरणारिसिणो उप्पण्णो पासणाहतित्थम्मि।
सिरिवीर समवसरणे अगहियझुणिणा नियत्तेण ॥
बहिणिग्गएण उत्त मज्झ एयार सागधारिस्स।
णिग्गइ झुणीण अरुहो णिग्गय विस्सास सीसस्स ॥

कहना ही होगा कि उन दोनो मे एक दूसरे का कोई ऋणी है तो वास्तव में गुरु ही ऋणी है, न कि जैनो द्वारा माना गया उनका ढोगी शिष्य।[४] डा० बरुआ आगे लिखते है कि महावीर पहले पार्श्वनाथ के पथ मे थे किन्तु एक वर्ष बाद जब वे अचेलक हुए तब आजीवक पथ मे चले गये।[५] गोशालक भगवान् महावीर से दो वर्ष पूर्व जिनपद प्राप्त कर चुके थे।[६] डा० बरुआ ने यह स्वीकार किया है कि ये सब कल्पना के ही महान् प्रयोग कहे जा सकते है तथापि इन कल्पनाओ ने गोपालदास जीवाभाई पटेल,[७] धर्मानन्द कोशाम्बी आदि को प्रभावित किया है। इस मान्यता के मूल सर्जक डाक्टर हर्मन जेकोबी रहे है[८] और उसी का अनुसरण डा० वाशम ने अपने महानिबन्ध 'आजीवको का इतिहास और सिद्धान्त' मे इस सम्बन्ध मे विस्तार से प्रकाश डाला है। इस मनोवृत्ति का मूल है "किसी भी पाश्चात्य विचारक ने जो लिख दिया है वह सही ही है यह भ्रान्त धारणा।" वे विद्वान जो गोशालक के सम्बन्ध मे लिखते है वे जैन और बौद्ध परम्परा के ग्रन्थो के आधार से ही लिखते है, इन ग्रन्थो के अतिरिक्त कही भी उसका वर्णन मिलता नही है, पर आश्चर्य है कि उसमे से कितनो को सही माने और कितनो को गलत, यह ऐतिहासिक दृष्टि नही हो सकती। जैन साहित्य मे जो तथ्य दिये है उनका समर्थन बौद्ध परम्परा के ग्रन्थो से भी होता है इसलिए उन्हे निराधार मानना अनुचित है। जैन ग्रन्थो ने जहाँ गोशालक व आजीवक मत की आलोचना की है वहाँ उसे बारहवे अच्युत कल्प मे भी पहुँचाया है और उसे मोक्षगामी भी बताया है। गोशालक के सम्बन्ध मे यह मानना कि वह महावीर का गुरु था, सर्वथा कपोलकल्पित और निराधार बात है। गोशालक ने स्वय माना है कि "गोशालक तुम्हारा शिष्य था, पर मैं वह नही हूँ। मैंने गोशालक के शरीर मे प्रवेश किया है। यह शरीर उस गोशालक का है,

ण मुणइ जिणकहिय सुय सपइ दिक्खाय गहिय गोयमओ।
विप्पो वेयब्भासी तम्हा मोक्ख ण णाणाओ।

—भावसग्रह गा० १७६-१७८

४ The Ajivikas J D L Vol II 1920 pp 17-18

५ वही० पृ० १८

६ वही० पृ० २१

७ महावीरस्वामीनो सयमधर्म (सूत्रकृताग का गुजराती अनुवाद पृ० ३४)

८ S B E Vol XLV, Introduction pp XXIX to XXXII

पर आत्मा भिन्न है।" इस तरह विरोधी प्रमाण के अभाव मे विद्वानो की कल्पनाएँ नितान्त अर्थशून्य है। प्रसन्नता इस बात की है कि अब विद्वानो को सत्य तथ्य ज्ञात होने लगा है और वे भ्रान्त धारणा का निरसन भी करने लगे है।

भद्रा, महाभद्रा और सर्वतोभद्रा प्रतिमा

चोराक सन्निवेश से भगवान ने वाणिज्यग्राम की ओर विहार किया। बीच मे गडकी नदी आती थी, उसे पार करने के लिए नौका मे बैठकर पहले किनारे पहुचे। नाविक ने किराया मागा, पर महावीर मौन थे। उसने क्रुद्ध होकर भगवान को किराया न देने के कारण जबर्दस्ती तप्त तवे-सी रेती पर खडा कर दिया। सयोगवश उसी समय शख राजा का भगिनीपुत्र (भानजा) चित्र, वहाँ आ पहुँचा और उसने नाविक की यत्रणा से भगवान को मुक्त करवाया।[1]

वहाँ से भगवान् वाणिज्यग्राम पधारे। वहाँ पर आनन्द नाम के श्रमणोपासक को अवधिज्ञान की उपलब्धि हुई थी। वह महावीर के चरणो मे पहुँचा और नम्र निवेदन किया—प्रभो! आपको शीघ्र ही केवलज्ञान उत्पन्न होगा।[2] यहा पर स्मरण रखना चाहिए कि उपासकदशाग सूत्र मे वर्णित गाथापति आनन्द से यह आनन्द भिन्न है।

---

१ (क) आव० निर्युक्ति ३७७
(ख) विशेषा० भाष्य १९२९
(ग) आव० चूर्णि २९९
(घ) आव० मलय० वृत्ति २८७
(ङ) महावीर चरिय ७।२२४
(च) त्रिषष्टि० १०।४।१३९-१४२

२ (क) वाणियगामातावण आणदोवी परिसहसहे त्ति।
—आव० निर्युक्ति ३७८
(ख) विशेषा० भाष्य १९३०
(ग) त्रिषष्टि० १०।४।१४३-१४७
(घ) आव० मल० २८५

भगवान् वाणिज्यग्राम से विहार कर श्रावस्ती पधारे। विविध प्रकार के तप व योग क्रियाओ की साधना के द्वारा आत्मा को भावित करते हुए दसवाँ वर्षावास वहाँ पूर्ण किया।[3]

वर्षावास के पूर्ण होने पर 'सानुलट्ठिय' सन्निवेश पधारे। वहाँ पर 'भद्रा, महाभद्रा और सर्वतोभद्रा प्रतिमा नामक तपश्चर्या की आराधना की।[4]

चारो दिशाओ मे चार-चार प्रहर तक कायोत्सर्ग करना भद्रा प्रतिमा है।[5] इस प्रतिमा की आराधना करने वाला प्रथम दिन पूर्व दिशा की ओर मुख करके कायोत्सर्ग करता है, रात्रि मे दक्षिण दिशा की ओर मुख कर कायोत्सर्ग करता है। द्वितीय दिन पश्चिम दिशा की ओर मुख कर कायोत्सर्ग करता है और रात्रि मे उत्तर की ओर मुख कर कायोत्सर्ग करता है। भगवान् ने भद्रा प्रतिमा के पश्चात ही महाभद्रा प्रतिमा प्रारम्भ कर दी। उसमे चारो दिशाओ मे एक दिन-रात कायोत्सर्ग किया जाता है।[6] भगवान् ने चार अहोरात्र तक इसकी आराधना की। इसके पश्चात् सर्वतोभद्रा प्रतिमा का प्रारम्भ किया, इसमे दस दिन-रात लगे। इस प्रतिमा मे दशो दिशाओ मे क्रमश अहोरात्र कायोत्सर्ग किया जाता है।[7] इस प्रकार भगवान् सोलह दिन-रात तक सतत ध्यानरत और उपवासी रहे और इस कठोर तपश्चरण की आराधना की।

---

३ (क) सावत्थीए वास चित्ततवो साणुलट्ठि वहि। —आव० निर्युक्ति ३७८
 (ख) विशेषा० भाष्य १९३०

४ (क) पडिमा भद्द महाभद्द सव्वतोभद्द पढमिया चतुरो।
 अट्ठ य वीसाणदे बहुलीय तध उज्झिति य दिव्वा॥
 —आवश्यक निर्युक्ति ३७९
 (ख) विशेषावश्यक भाष्य १९३१

५ पूर्वादिदिक्चतुष्टये प्रत्येक प्रहरचतुष्टय कायोत्सर्गकरणरूपा, अहोरात्रद्वयमानेति।
 —स्थानाग सटीक प्र० भा०, पत्र ६५-२

६ महाभद्रापि तथैव, नवरमहोरात्रकायोत्सर्गरूपा अहोरात्रचतुष्टयमाना।
 —स्थानाग वृत्ति प्र० भा०, पत्र ६५-२

७ (क) सर्वतोभद्रा तु दशसु, दिक्षु प्रत्येकमहोरात्र कायोत्सर्गरूपा अहोरात्रदशकप्रमाणेति। —स्थानाग वृत्ति, पत्र ५-२
 (ख) आवश्यक चूर्णि ३००
 (ग) आवश्यक मल० वृत्ति २८८
 (घ) आवश्यक हारिभद्रीय वृत्ति २१५
 (ङ) महावीर चरियं (गुणभद्र) ७।२२५
 (च) त्रिषष्टि० १०।४।१४९-१५४

इस तप का पारणा करने के लिए भगवान् भिक्षार्थ पर्यटन करते हुए आनन्द के वहा पर पधारे। उसकी बहुला भृत्तिका (दासी) बचा हुआ बासी अन्न बाहर फेंकने के लिए ज्योंही निकली, भगवान् को द्वार पर खडा देखा, उसने प्रभु की ओर प्रश्न भरी दृष्टि से देखा, तो प्रभु ने दोनो हाथ भिक्षा के लिए फैलाए, दासी ने भक्ति भावना से विभोर होकर वह अवशेष अन्न प्रभु को भिक्षा मे प्रदान किया और भगवान् ने उस बासी अन्न से ही पारणा किया।[८]

संगम के उपसर्ग

सानुलट्ठिय से भगवान् ने दृढभूमि की ओर प्रस्थान किया। पेढाल उद्यान मे अवस्थित पोलास चैत्य मे तीन दिन का उपवास कर कायोत्सर्ग मुद्रा की। उनका तन आगे की ओर कुछ झुका हुआ था। एक पुदगल पर दृष्टि केन्द्रित थी। आँखे अनिमेष थी। तन प्रणिहित था, इन्द्रिया गुप्त थी। दोनो पैर सटे हुए थे और दोनो हाथ प्रलम्बित थे। प्रस्तुत मुद्रा मे भगवान ने एक रात्रि की महाप्रतिमा की।[१]

---

८ (क) पच्छा तासु सम्मत्तासु आणदस्स गाहावत्तिस्स घरे बहुलियाए दासिए महाणसिणीए भायणाणि खणीकरेतीए दोसीण छड्डेउकामाए सामी पविट्ठो ताए भन्नति—कि भगव ! एतेण अट्ठो, सामिणा पाणी पसारित्ता, ताए परमाए सद्धाए दिन्न ।

—आव० चूर्णि ३००, ३०१

(ख) आव० मल० वृत्ति० २८८

(ग) महावीर चरिय ५७।२२५

(घ) त्रिषष्टि० १०।४।१५५-१५७

१ (क) आव० निर्युक्ति ३८०

(ख) विशेषा० भाष्य १९३२

(ग) ततो सामी दढभूमी गतो, तत्थ अट्ठमेण भत्तेण अप्पाणएण ईसिप ब्भार-गतेण, ईसिपब्भारगतो नाम ईसि ओणओ काओ, एगपोग्गलनिरुद्धदिट्ठी अणिमिसणयणो तत्थवि जे अचित्तपोग्गला तेसु दिट्ठि निवेसेति, सचित्तेहि दिट्ठी अप्पाइज्जति, अहापणिहितेहि गत्तेहि सव्विदिएहि गुत्तेहि दो वि पादे साहट्टु वग्घारियपाणी एगराइय महापडिम ठितो ।

—आव० चूर्णि पृ० ३०१

भगवान् की इस अपूर्व एकाग्रता, कष्टसहिष्णुता और अचल धैर्य को देखकर देवराज इन्द्र ने भरी सभा मे गद्गद स्वर मे प्रभु को वन्दन करते हुए कहा—"प्रभो ! आपका धैर्य, आपका साहस, आपका ध्यान अनूठा है। मानव तो क्या, शक्तिशाली देव और दैत्य भी आपको इस साधना से विचलित नही कर सकते।"[2] शक्र की भावना तथा स्तवना का सारी सभा ने तुमुल जय-घोष के साथ अनुमोदन किया किन्तु सगम नामक देव के अन्तर्मानस मे यह बात न जच सकी। उसे अपनी दिव्य दैवी शक्ति पर बडा गर्व था। उसने विरोध किया और भगवान् को साधनामार्ग से चलित करने की दृष्टि से देवेन्द्र का वचन लेकर वही पहुँचा जहाँ भगवान् ध्यानमग्न थे। उसने आते ही उपसर्गों का जाल बिछा दिया। एक के पश्चात् एक भयकर विपत्तियो का वात्याचक्र चलाया। जितना भी वह कष्ट दे सकता था, दिया। तन के कण-कण मे पीडा उत्पन्न की, पर भगवान् जब प्रतिकूल उपसर्गों से तनिक भी प्रकम्पित नही हुए तब अनुकूल उपसर्ग प्रारम्भ किये। प्रलोभन के और विषय-वासना के मोहक दृश्य उपस्थित किये। गगनमडल से तरुण सुन्दरिया उतरी, हाव-भाव और कटाक्ष करती हुई प्रभु से कामयाचना करने लगी, पर महावीर तो निष्प्रकम्प थे, प्रस्तर-मूर्ति ज्यो, उन पर कोई असर नही हुआ। वे सुमेरु की तरह ध्यान मे अडिग रहे। सगम, ने एक रात्रि मे वीस विकट उपसर्ग दिये, वे इस प्रकार है[3]—

(घ) आव० मलय० वृत्ति २८८
(ङ) आव० हारिभ० वृत्ति २१६
(च) महावीर चरिय ७।२२६
(छ) त्रिषष्टि० १०।४।१६०-१६३

२ सक्को य देवराया सभागतो भणति हरिसितो वयण।
तिण्णि वि लोगऽसमत्था जिणवीरमिण चलेतु ज्जे॥
—आव० निर्युक्ति ३८१

३ (क) धूली पिवीलियाओ उद्दसा चेव तध य उण्होला।
विच्छुग णउला सप्पा य मूसगा चेव अट्ठयगा॥
हत्थी हत्थि णियाओ पिसायए घोररूव वग्घेय।
थेरो थेरी सूतो आगच्छति पक्कणो य तथा॥
खरवात कलकलिया कालच्चक्क तधेव य।
पाभातिय उवसग्गे वीसतिमो होति अणुलोमो॥

(१) प्रलयकाल की तरह धूलि की भीषण वृष्टि की। उस धूलि मे महावीर के कान, नेत्र, नाक आदि सर्वथा सन गये।

(२) वज्रमुखी चीटिया उत्पन्न की। उन्होने महावीर के सारे शरीर को खोखला कर दिया।

(३) मच्छरो के झुण्ड बनाये और उन्हे महावीर पर छोडा। उन्होने उनके शरीर का बहुत खून चूसा।

(४) तीक्ष्णमुखी दीमके उत्पन्न की, वे महावीर के शरीर पर चिपट गई और उन्हे काटने लगी, ऐसा लगता था कि उन्हे रोगटे खडे हो गये हो।

(५) जहरीले बिच्छुओ की सेना तैयार की। उन्होने एक साथ महावीर पर आक्रमण किया और अपने पैने डक से उन्हे डसने लगे।

(६) नेवले छोडे। भयकर शब्द करते हुए महावीर पर एक साथ टूट पडे, और उनके मास को छिन्न-भिन्न करने लगे।

(७) विषधर सर्प छोडे, जिनके दात नुकीले थे। वे महावीर को पुन - पुन काटने लगे।

(८) चूहे उत्पन्न किये। वे अपने तीक्ष्ण दातो से महावीर को काटने लगे और उन पर मलमूत्र का विसर्जन भी करने लगे। कटे हुए घावो पर मूत्र नमक का कार्य करता था।

सामाणिय देवेड्ढि देवो दाएति सो विमाणगतो।
भणइ य वरेहि महरिसि ! णिपफत्ती सग्गमोक्खाण ॥
उबहतमतिविण्णाणो ताधे वीर बहु सहावेतु।
ओधीय जिण ज्झायति झायति छज्जीवहितमेव ॥

—आव० निर्युक्ति ३८५-३८६

(ख) विशेषा० भाष्य १९३७-१९४१
(ग) आवश्यक चूर्णि ३०३-३०४
(घ) आव० मलय० वृत्ति २९०
(ङ) आवश्यक हारि० वृत्ति २१६-२१७
(च) महावीर चरिय (गुण०) ७।२२८
(छ) महावीर चरिय (नेमि०) ११०५-१०१४
(ज) चउप्पन्न० महापुरिस २८२ से २८९

(९) लम्बी सू ढ वाले हाथी तैयार किये, उन्होने महावीर को पुन-पुन आकाश मे उछाला और गिरने पर पैरो से रौद डाला, और उनकी छाती मे तीखे दातो से प्रहार किया।

(१०) हाथी की तरह हथिनी भी बनाई और उन्होंने भी उसी तरह महावीर को पैरो से रौदा।

(११) बीभत्स पिशाच का रूप बनाया और कर्ण-कटु किलकारियाँ करता हुआ, हाथ मे पैनी बर्छी लेकर महावीर पर झपटा। अपनी सम्पूर्ण शक्ति के साथ उन पर आक्रमण किया।

(१२) विकराल व्याघ्र बनकर वज्र के समान दातो से और त्रिशूल सदृश नाखूनो से महावीर के शरीर को विदारण किया।

(१३) राजा सिद्धार्थ और माता त्रिशला का रूप बनाया और करुण-क्रन्दन करते हुए वे कहने लगे कि हमे वृद्धावस्था मे असहाय छोडकर कहा जा रहा है।

(१४) दोनो पैरो के बीच अग्नि जलाई और पैरो पर बर्तन रखा, किन्तु महावीर अग्निताप से विचलित नही हुए।

(१५) महावीर के शरीर पर पक्षियो के पिंजरे लटका दिये। पक्षियो ने अपनी चोच और पजो से प्रहार कर उन्हे क्षत-विक्षत करने का प्रयत्न किया।

(१६) आधी का भयकर रूप उपस्थित किया। वृक्ष जड से उखडने लगे, मकानो की छतें उडने लगी, महावीर भी उस आधी मे कई बार उडे या गिरे।

(१७) चक्राकार पवन प्रवहमान होने लगा। महावीर उसमे चक्र की तरह घूमने लगे।

(१८) कालचक्र चलाया। महावीर घुटने तक भूमि मे धस गये।

जब प्रतिकूल परीषहो से महावीर तनिक मात्र भी विचलित नही हुए तब उसने ध्यान से विचलित करने के लिये अनुकूल परीषह उपस्थित किये।

(१९) एक देवविमान मे बैठकर महावीर के पास आया और बोला—कहिए, आपको स्वर्ग चाहिए या अपवर्ग? तुम्हारी जो भी इच्छा होगी, वह पूर्ण करूँगा।

(२०) उसने अन्त मे अप्सरा को लाकर उपस्थित किया। उसने भी अपने हाव भाव व विभ्रम-विलास से उन्हे च्युत करने का प्रयास किया, किन्तु सफलता नही मिली।

बीस भयकर उपसर्ग देने पर भी उनका मुख कुन्दन-सा चमक रहा था। मानो मध्याह्न का सूर्य हो।

प्रश्न हो सकता है कि सगम ने अनेक रूप बनाकर महावीर के शरीर को जर्जरित व घावयुक्त बना दिया, वे सारे घाव किस प्रकार मिट गये। उत्तर है कि तीर्थंकर के शरीर मे एक विशिष्ट प्रकार की सरोहण शक्ति होती है, जिससे उनके शरीर के घाव बहुत शीघ्र ठीक हो जाते है। जैसे वृद्ध व रोगी व्यक्ति के जख्म को भरने मे समय लगता है, पर नौजवान और स्वस्थ व्यक्ति का जख्म शीघ्र ठीक हो जाता है।

पौ फटी, अँधेरा छट गया, धीरे-धीरे उषा की लाली चमक उठी और सूर्य की तेजस्वी किरणे धरती पर उतरी। महावीर ने ध्यान से निवृत्त हो आगे प्रयाण किया। यद्यपि महावीर की अदम्य-शक्ति से एक रात मे ही सगम की समस्त आशाओ पर तुषारापात हो गया था, तथापि वह धीठ प्रभु का पीछा नही छोडकर साथ रहा और 'बालुका' 'सुभोग' 'सुच्छेत्ता' 'मलय' और 'हस्तीशीर्ष' आदि नगरो मे जहाँ भी भगवान् पधारे वहाँ अपनी काली करतूतो से प्रभु को पीडा पहुँचाता रहा।[४]

एक बार जब भगवान् तोसलिगाँव के उद्यान मे ध्यानस्थ थे तब वहा सगम श्रमण की वेषभूषा पहनकर गाव मे गया। घरो मे सेंध लगाने लगा। पकडा जाने पर बोला—"मुझे क्यो पकडते हो ? मैंने गुरुआज्ञा का पालन किया है। यदि तुम्हे पकडना ही है तो उद्यान मे जो ध्यान किये मेरे गुरु खडे है, उन्हे पकडो।" उसी क्षण लोग वहाँ आये और महावीर को पकडने लगे। रस्सियो से जकडकर गाँव मे ले जाने लगे। तब महाभूतिल ऐन्द्रजालिक ने भगवान् को पहचान लिया और लोगो को डाँटते हुए समझाया। लोग सगम के पीछे दौडे तो उसका कही अता-पता भी नही लगा।[५]

---

४ आव० निर्यु० ३९०-३९१ तथा पूर्वोक्त सभी स्थल

५ (क) आवश्यक निर्युक्ति ३९२

(ख) विशेषावश्यक भाष्य १९४४

(ग) आव० चूर्णि ३१२

(६) लम्बी सू ढ वाले हाथी तैयार किये, उन्होने महावीर को पुन-पुन आकाश मे उछाला और गिरने पर पैरो से रोद डाला, और उनकी छाती मे तीखे दातो से प्रहार किया।

(१०) हाथी की तरह हथिनी भी वनाई ओर उन्होने भी उसी तरह महावीर को पैरो से रौदा।

(११) बीभत्स पिशाच का रूप वनाया ओर कर्ण-कटु किलकारियाँ करता हुआ, हाथ मे पैनी वर्छी लेकर महावीर पर झपटा। अपनी सम्पूर्ण शक्ति के साथ उन पर आक्रमण किया।

(१२) विकराल व्याघ्र बनकर वज्र के समान दातो से और त्रिशूल सदृश नाखूनो से महावीर के शरीर को विदारण किया।

(१३) राजा सिद्धार्थ और माता त्रिशला का रूप वनाया और करुण-क्रन्दन करते हुए वे कहने लगे कि हमे वृद्धावस्था मे असहाय छोडकर कहा जा रहा है।

(१४) दोनो पैरो के बीच अग्नि जलाई और पैरो पर वर्तन रखा, किन्तु महावीर अग्निताप से विचलित नही हुए।

(१५) महावीर के शरीर पर पक्षियो के पिंजरे लटका दिये। पक्षियो ने अपनी चोच और पजो से प्रहार कर उन्हे क्षत-विक्षत करने का प्रयत्न किया।

(१६) आधी का भयकर रूप उपस्थित किया। वृक्ष जड से उखडने लगे, मकानो की छतें उडने लगी, महावीर भी उस आधी मे कई बार उडे या गिरे।

(१७) चक्राकार पवन प्रवहमान होने लगा। महावीर उसमे चक्र की तरह घूमने लगे।

(१८) कालचक्र चलाया। महावीर घुटने तक भूमि मे धस गये।

जब प्रतिकूल परीषहो से महावीर तनिक मात्र भी विचलित नही हुए तब उसने ध्यान से विचलित करने के लिये अनुकूल परीषह उपस्थित किये।

(१९) एक देवविमान मे बैठकर महावीर के पास आया और बोला—कहिए, आपको स्वर्ग चाहिए या अपवर्ग ? तुम्हारी जो भी इच्छा होगी, वह पूर्ण करूँगा।

(२०) उसने अन्त मे अप्सरा को लाकर उपस्थित किया। उसने भी अपने हाव भाव व विभ्रम-विलास से उन्हे च्युत करने का प्रयास किया, किन्तु सफलता नही मिली।

बीस भयकर उपसर्ग देने पर भी उनका मुख कुन्दन-सा चमक रहा था। मानो मध्याह्न का सूर्य हो।

प्रश्न हो सकता है कि सगम ने अनेक रूप बनाकर महावीर के शरीर को जर्जरित व घावयुक्त बना दिया, वे सारे घाव किस प्रकार मिट गये। उत्तर है कि तीर्थंकर के शरीर मे एक विशिष्ट प्रकार की सरोहण शक्ति होती है, जिससे उनके शरीर के घाव बहुत शीघ्र ठीक हो जाते है। जैसे वृद्ध व रोगी व्यक्ति के जख्म को भरने मे समय लगता है, पर नौजवान और स्वस्थ व्यक्ति का जख्म शीघ्र ठीक हो जाता है।

पौ फटी, अँधेरा छट गया, धीरे-धीरे उषा की लाली चमक उठी और सूर्य की तेजस्वी किरणे धरती पर उतरी। महावीर ने ध्यान से निवृत्त हो आगे प्रयाण किया। यद्यपि महावीर की अदम्य-शक्ति से एक रात मे ही सगम की समस्त आशाओ पर तुषारापात हो गया था, तथापि वह धीठ प्रभु का पीछा नही छोडकर साथ रहा और 'बालुका' 'सुभोग' 'सुच्छेत्ता' 'मलय' और 'हस्तीशीर्ष' आदि नगरो मे जहाँ भी भगवान् पधारे वहाँ अपनी काली-करतूतो से प्रभु को पीडा पहुँचाता रहा।[४]

एक बार जब भगवान् तोसलिगाँव के उद्यान मे ध्यानस्थ थे तब वहा सगम श्रमण की वेषभूषा पहनकर गाव मे गया। घरो मे सेध लगाने लगा। पकड़ा जाने पर बोला–"मुझे क्यो पकडते हो? मैंने गुरुआज्ञा का पालन किया है। यदि तुम्हे पकडना ही है तो उद्यान मे जो ध्यान किये मेरे गुरु खडे है, उन्हे पकडो।" उसी क्षण लोग वहाँ आये और महावीर को पकडने लगे। रस्सियो से जकडकर गाँव मे ले जाने लगे। तब महाभूतिल ऐन्द्रजालिक ने भगवान् को पहचान लिया और लोगो को डाँटते हुए समझाया। लोग सगम के पीछे दौडे तो उसका कही अता-पता भी नही लगा।[५]

---

४ आव० निर्यु० ३६०-३६१ तथा पूर्वोक्त सभी स्थल

५ (क) आवश्यक निर्युक्ति ३६२

(ख) विशेषावश्यक भाष्य १६४४

(ग) आव० चूर्णि ३१२

जब भगवान् मोसलि ग्राम मे पधारे तब सगम ने वहाँ पर भी भगवान् पर तस्करकृत्य का आरोप लगाया। भगवान् को पकडकर राज्य परिषद् मे ले जाया गया तब वहाँ सम्राट् सिद्धार्थ के स्नेही-साथी सुमागध राष्ट्रीय (प्रान्त का अधिपति—वर्तमान कमिश्नर जैसा) बैठे थे। उन्होने भगवान् का अभिवादन किया और बन्धनमुक्त करवाया।[६]

वहाँ से तोलसि के उद्यान मे पधारकर पुन ध्यान किया। सगम ने चोरी करके भारी शस्त्रास्त्र महावीर के सन्निकट लाकर रखे। लोगो ने चोर समझकर महावीर को पकडा ' परिचय पूछा गया, पर प्रश्न का उत्तर न मिलने से तोसलि-क्षत्रिय ने छद्मवेशी श्रमण समझकर फासी की सजा दी। फासी के तख्ते पर चढाकर गर्दन मे फासी का फन्दा डाल दिया। और नीचे से तख्ते को हटाया, पर ज्यो ही तख्ता हटा कि फन्दा टूट गया। पुन फन्दा लगाया और पुन टूट गया। इस प्रकार सात बार फदा टूट जाने पर सभी चकित रह गये। क्षत्रिय को सूचना दी, उसने प्रभु को कोई महापुरुष समझकर मुक्त कर दिया।[७]

श्रमण महावीर वहा से सिद्धार्थपुर आये, सगम जो शिकारी कुत्ते की तरह महावीर के पीछे लगा हुआ था, वहाँ भी उसने महावीर पर चोरी का आरोप लगाकर पकडवाया, पर कौशिक नामक घोडे के व्यापारी ने भगवान् का परिचय देकर मुक्त करवाया।[८]

(घ) आव० मलय० वृत्ति० २९१-९२
(ङ) आव० हारिभद्रीया० वृत्ति २१९

६ (क) मोसलि सधि सुमागध मोएती रट्ठिओ पितिवएसो।

—आव० निर्युक्ति ३९३

(ख) विशेपावश्यक भाष्य १९४५
(ग) आव० चूर्णि ३१३
(घ) आव० मलय० वृत्ति २९२
(ङ) आव० हारिभद्रीय वृत्ति २१९

७ (क) तोसलिय सत्तरज्जु वावत्ती तोसलीमोक्खे।

—आव० निर्युक्ति ३९३

(ख) विशेपा० भाष्य १९४५
(ग) ततो भगव तोसलिं गतो, तत्थवि बाहिं पडिम ठितो।

भगवान् वहाँ से व्रजगाँव पधारे। उसदिन पर्व का दिन होने से सब घरो मे खीर बनी हुई थी। भगवान् भिक्षा के लिये पधारे, पर सगम ने सर्वत्र अनेपणीय कर दिया। भगवान् भिक्षा बिना लिए ही लौट आये।[९]

छह मास तक अगणित कष्ट सहने पर भी महावीर साधना पथ से विचलित नही हुए किंतु सगम का धैर्य अवश्य ध्वस्त हो गया। वह हताश और निराश हो गया। उसका मुख मलिन हो गया। वह हारा हुआ भगवान् के पास आकर बोला—"भगवन्! देवराज इन्द्र ने जो आपके सम्बन्ध म कहा था, वह पूर्ण सत्य है। मैं भग्नप्रतिज्ञ हूँ, आप सत्यप्रतिज्ञ है, अत्र आप प्रसन्नता से भिक्षा के लिए पधारिये। मैं किसी प्रकार की विघ्न-बाधाएँ उपस्थित नही करूँगा।"[१०]

तत्थवि देवो खुडडरूव ' दिट्ठो सामी।
ताणि य परिपेरतेण पासति, गहितो आणीतो ताहे उक्कलवितो, एक्कसि रज्जू छिन्नो, एव सत्तवारा छिन्नो, ताहे सिट्ठ तस्स तोसलियस्स खत्तियस्स, सो भणति मुयह एस अचोरो, निद्दोसो त खुड्डय मग्गह, जाव ण दीसति ।
—आव० चूर्णि० ३१३

(घ) आव० मल० वृत्ति २९२

(ड) आव० हारिभद्रीय वृत्ति २१९-२२०

८ (क) सिद्धत्थपुरे तेणो त्ति कोसिओ आसवाणिओ मोक्खो।
—आव० निर्युक्ति ३९४

(ख) विशेपा० भाष्य १९४६

(ग) आव० चूर्णि ३१३

(घ) आव० मलय० २९२

९ (क) आव० निर्युक्ति ३९४

(ख) विशेपा० भाष्य १९४६

(ग) आवश्यक चूर्णि ३१३

(घ) आवश्यक मलय० वृत्ति २९२

(ड) आवश्यक हारिभद्रीय २२०

१० (क) ताहे दट्ठु आउट्टो, ण तीरेति चालेउति, जो एच्चिरेणवि कालेण छम्मासेहिं ण चलिओ, एस दीहेणावि कालेण ण सक्को चालेउ, ता पादेसुहे पडितो भणति-सच्च सच्च ज सक्को भणति, सव्व खामेमि। भगव अह भग्गपइन्नो, तुज्झे समत्तपइन्ना।
—आव० चूर्णि २१४

(ख) आव० मलय० वृत्ति २९२ (ग) आव० हारिभद्रीया २२०

छह मास तक मैंने अनेक कष्ट दिये है जिससे आप सुखपूर्वक सयम-साधना नही कर सके है। अब आनन्द के साथ साधना कीजिये, मैं जा रहा हूँ। अन्य देवो को भी रोक दूँगा। वे आपको कोई कष्ट नही देगे।

सगम के कथन पर भगवान् ने उसी प्रसन्नता के साथ कहा—सगम! मैं किसी की प्रेरणा से प्रेरित होकर या किसी के कथन को सकल्प मे रखकर तप नही करता। मुझे किसी के आश्वासन-वचन की अपेक्षा नही है।

बीस विकट उपसर्गों के पश्चात् भगवान् छह महीने मे कहाँ-कहाँ पर विचरे इसका वर्णन महावीर चरिय मे (नेमिचन्द्र और गुणचन्द्र) तथा त्रिषष्टि शलाकापुरुषचरित्र, और चउप्पन्नमहापुरुष चरिय मे नही हैं। इन ग्रन्थो मे बीस उपसर्गों का वर्णन काव्यात्मक रूप से विस्तार के साथ दिया गया है। निर्युक्ति, चूर्णि और वृत्ति मे आए हुए वर्णन को बाद मे ग्रन्थकारो ने क्यो नही दिया—यह एक विचारणीय प्रश्न है।

कुछ आधुनिक लेखको ने एक नवीन कल्पना की है कि जब सगम जाने लगा तब महाश्रमण की आखो की पलके कुछ-कुछ भीग गई। घोर सकटो और उपद्रवो से द्रवित नही होने वाला वज्र के समान कठोर हृदय सहसा द्रवित हो गया।

सगम ने देखा—छह मास मे जो पलकें कभी बाष्पार्द्र नही हुई, आज वे सहसा कैसे छलक उठी है, लगता है कोई गुप्त पीडा है।

भगवन्! यह क्या! कोई कष्ट है? सगम ने प्रभु से पूछा।

हाँ, सगम! कष्ट है, बहुत भयकर कष्ट है।

प्रभो! कहिए न! ऐसी क्या पीडा है, जिसका दैवी शक्ति से शमन नही किया जा सके। मैं आपके लिए आकाश पाताल एक कर सकता हूँ! सगम का अहकार पुन उद्दीप्त हो उठा।

सगम! तुमने जो कष्ट दिये हे, उपद्रवो की व्यूह-रचना की है, उससे मेरी आत्मा का किञ्चिन्मात्र भी अहित नही हो पाया है, क्या कभी स्वर्ण अग्नि मे गिरकर काला पडता है, नही, वह तो अधिकाधिक चमकता है। हाँ, तो वह कष्ट कुछ और ही हे।

वह कौन-सा हे?

वह यह है कि तुमने अज्ञान दशा मे मुझे जो कष्ट पहुँचाया है, नाना प्रकार के दुर्विकल्प, निकृष्ट आचरण और रौद्र भावो से तुम्हारी आत्मा का

कितना पतन हुआ है। जब मैं तुम्हारे उस अधकारपूर्ण भविष्य पर दृष्टि डालता हूँ तो काँप उठता हू, मेरा हृदय द्रवित हो जाता है। एक अबोध जीव मेरे निमित्त से दुष्कर्म बाँधकर कितना कष्ट भोगेगा, कितना दारुण दु ख पायेगा, जिस श्रमण के निमित्त से हजारो-हजार प्राणी कर्म-मुक्त बनेगे, वही मैं तुम्हारे लिए कर्म-बधन का निमित्त हो गया, इन्ही विचारो से मेरी पलकें बाष्पार्द्र हो गई हैं।

सगम का अहकार गल-गलकर नष्ट हो गया। वह प्रभु की महानता की थाह नही पा सका।

सगम स्वर्ग मे गया, पर उसके भयकर दुष्कृत्य पर इन्द्र अत्यधिक क्रुद्ध हुआ। उसकी भर्त्सना करते हुए उसे देवलोक से निर्वासित कर दिया। वह अपनी देवियो के साथ मेरु पर्वत की चूला पर रहने लगा।[११]

सगम के समान ही जातकट्ठकथा मे मारदेव पुत्र का प्रसग है। जैसे सगम ने महावीर को उपसर्ग दिये है वैसे ही उपसर्ग बुद्ध को मारदेवपुत्र देता है, पर बुद्ध दस पारमिताओ का स्मरण करते है जिससे वे आक्रमण फूलो के रूप मे बदल जाते हे और उनको कष्टकारक नही होते,[१२] पर महावीर वैसा नही करते। महावीर को ये उपसर्ग छद्मस्थ काल के ग्यारहवे वर्ष मे होते है और बुद्ध को अबोधिदशा के अन्तिम वर्ष मे होते है। इस प्रकार एक दूसरे मे काफी समानता है।

सगम के प्रस्थान के पश्चात् द्वितीय दिन भगवान् छह मास की कठिन तपस्या पूर्ण कर व्रजगाँव मे पारणा हेतु पधारे। वहाँ वत्सपालक वृद्धा ने प्रसन्नता से प्रभु को पायस की भिक्षा दी।[१३]

---

११ (क) आव० निर्युक्ति ३९५-३९६

(ख) आवश्यक चूर्णि ३१४

(ग) महावीर चरियं (नेमिचन्द्र) १११९-११२२

१२ जातकट्ठकथा निदान

१३ (क) आव० निर्युक्ति ३९५

व्रजगाँव से आलभिया, श्वेताम्बिका, श्रावस्ती, कौशाम्बी, वाराणसी, राजगृह, मिथिला आदि को पावन करते हुए वैशाली पधारे और नगर के बाहर समरोद्यान मे बलदेव के मन्दिर मे चातुर्मासिक तप के साथ वर्षावास व्यतीत किया। आवश्यक चूर्णिकार ने ग्यारहवा चातुर्मास मिथिला का लिखा है,[१४] जब कि आवश्यक मलयगिरीय वृत्ति, आवश्यक हरिभद्रीय वृत्ति, महावीर चरिय (नेमिचन्द्र, व गुणचन्द्र) त्रिपष्टि शलाकापुरुप चरित्र[१५] आदि सभी ग्रन्थो मे वैशाली का लिखा है और उसी का अनुसरण श्रमण भगवान् महावीर[१६] और तीर्थंकर महावीर[१७] मे कल्याणविजय जी और इन्द्रविजय जी ने भी किया है। हमारी दृष्टि से भी चूर्णिकार का प्रस्तुत कथन युक्तियुक्त नही है।

(ख) विशेपा० भाष्य १९४७
(ग) आव० चूर्णि ३१४
(घ) आवश्यक मलय० वृत्ति २९३
(ङ) आवश्यक हारिभद्रीया वृत्ति २२०
(च) भयव पि बीयादिवसे घोसगओ वच्छवालथेरीए।
पडिलाहिओ सुहरिसियमणाए दोसीण खीरीए॥
—महावीर चरिय (नेमि०) ११२३
(छ) महावीर चरिय (गुणचन्द्र) २३१

१४ महिलाए वासारत्तो एक्कारसमो, चाउम्मासखमण करेति।
—आव० चूर्णि पृ० ३१५

१५ (क) ततो वैशालीनगरीमगमत्, तत्रैकदेशे वर्पारात्र।
—आव० मलय० वृत्ति पत्र० २९४।१
(ख) ततो सामी वेसालि नगरिं गतो, तत्थेक्कारसमो वासारत्तो।
—आव० हारि० वृत्ति २२१
(ग) भयव वेसालीए स्पत्तो विहरमाणो उ।
समरे उज्जाणम्मी बलदेवगिहम्मि सठिओ भयव।
चाउम्मासियखमण उवसपज्जित्तु वासासु॥
—महावीर चरिय ११४२-११४३
(घ) महावीर चरिय प० २३३।१
(ङ) ततो विहरमाणोऽगाद्विशालो नगरी प्रभु।
तत्र चैकादशो वर्पाकालो व्रतदिवादभूत्॥ —त्रिपष्टि० १०।८।३४३

१६ श्रमण भगवान महावीर, पृ० ४१
१७ तीर्थंकर महावीर, पृ० २२९, प्र० भाग०

जीर्ण की भावना : पूर्ण का दान

वैशाली मे एक भावुक श्रावक जिनदत्त रहता था, उसकी सम्पत्ति क्षीण हो जाने से लोग उसे जीर्ण सेठ कहने लग गये।[1] वह सामुद्रिक शास्त्र का वेत्ता था। भगवान् की पाद-रेखाओ के अनुसधान मे वह उसी उद्यान मे गया, वहाँ प्रभु को ध्यानस्थ देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुआ।[2] अब वह प्रतिदिन भगवान् को नमस्कार करने आता और आहार आदि की अभ्यर्थना करता। निरन्तर चार मास तक चातक की तरह चाहने पर भी उसकी भव्य भावना पूर्ण नही हुई।[3] चातुर्मास समाप्ति के पश्चात् भगवान् भिक्षा के लिए निकले और अपने सकल्प के अनुसार भिक्षान्वेषण करते हुए अभिनव श्रेष्ठी के द्वार पर रुके। वह नया धनी था, मूलनाम 'पूर्ण' था। श्रेष्ठी ने लापरवाही से दासी को आदेश दिया, और उसने एक चम्मच कुलत्थ (बाकुले) दिये और भगवान् ने उसी से चार माह की तपस्या का पारणा किया।[4]

जीर्ण सेठ सोच रहा था 'कल्पवृक्ष' को अमृत से सिंचन करना सुलभ है, किन्तु तपोमूर्ति महावीर को दान देना महान् दुर्लभ है। अक्षय पुण्योदय से ही यह सौभाग्य मिलता है। इस प्रकार की कमनीय कल्पनाओ से थिरकता, हर्ष से गद्गद् हुआ जीर्ण प्रभु के आगमन की, दान देने की प्रतीक्षा

---

१ (क) जीर्ण सेठ का यह प्रसग आवश्यक निर्युक्ति, विशेपावश्यक भाष्य, चूर्णि, वृत्ति व चउप्पन्न० मे नही है, किंतु महावीर चरिय तथा त्रिपष्टिशलाका-पुरुष चरित्र मे आया है।

(ख) तत्थत्थि परमसड्ढो जिणदत्तो जो जाणम्मि विक्खाओ।
विहववक्खएण सेट्ठिपयचाइओ जिन्नसेट्ठि त्ति॥
—महा० (नेमि०) ११४४

(ग) महावीर चरिय (गुणचन्द्र) गा० ७-८, प० २३३

२ (क) परमश्रावकस्तत्र जिनदत्ताभिधोऽवसत्।
दयावान् विश्रुतो जीर्णश्रेष्ठीति विभवक्षयात्॥
—त्रिपष्टि० १०।४।३४६

(ख) महावीर चरिय (नेमि०) ११४४ से ४९

(ग) ,, ,, गुण० ७ से ११ तक, पृ० २३३

३ महावीर चरिय गुण० २३३

४ (क) महावीर चरिय गुण० २३३

(ख) त्रिपष्टि० १०।४।३५६-३५८

भ्रजगाँव से आलभिया, श्वेताम्बिका, श्रावस्ती, कोशाम्बी, वाराणसी, राजगृह, मिथिला आदि को पावन करते हुए वैशाली पधारे और नगर के बाहर समरोद्यान मे बलदेव के मन्दिर मे चातुर्मासिक तप के साथ वर्षावास व्यतीत किया। आवश्यक चूर्णिकार ने ग्यारहवा चातुर्मास मिथिला का लिखा है,[१४] जब कि आवश्यक मलयगिरीय वृत्ति, आवश्यक हरिभद्रीय वृत्ति, महावीर चरिय (नेमिचन्द्र, व गुणचन्द्र) त्रिषष्टि शलाकापुरुष चरित्र[१५] आदि सभी ग्रन्थो मे वैशाली का लिखा है और उसी का अनुसरण श्रमण भगवान् महावीर[१६] और तीर्थंकर महावीर[१७] मे कल्याणविजय जी और इन्द्रविजय जी ने भी किया है। हमारी दृष्टि से भी चूर्णिकार का प्रस्तुत कथन युक्ति-युक्त नही है।

(ख) विशेषा० भाष्य १९४७

(ग) आव० चूर्णि ३१४

(घ) आवश्यक मलय० वृत्ति २९३

(ङ) आवश्यक हारिभद्रीया वृत्ति २२०

(च) भयव पि बीयादिवसे घोसगओ वच्छवालथेरीए।
पडिलाहिओ सुहरिसियमणाए दोसीण खीरीए॥

—महावीर चरिय (नेमि०) ११२३

(छ) महावीर चरिय (गुणचन्द्र) २३१

१४ महिलाए वासारत्तो एक्कारसमो, चाउम्मासखमण करेति।

—आव० चूर्णि पृ० ३१५

१५ (क) ततो वैशालीनगरीमगमत्, तत्रैकदेशे वर्षारात्र।

—आव० मलय० वृत्ति पत्र० २९४।१

(ख) ततो सामी वेसालि नगरि गतो, तत्थेक्कारसमो वासारत्तो।

—आव० हारि० वृत्ति २२१

(ग) भयव वेसालीए स्पत्तो विहरमाणो उ।
समरे उज्जाणम्मी बलदेवगिहम्मि सठिओ भयव।
चाउम्मासियखमण उवसपज्जित्तु वासासु॥

—महावीर चरिय ११४२-११४३

(घ) महावीर चरिय प० २३३।१

(ङ) ततो विहरमाणोऽगाद्विशालो नगरी प्रभु।
तत्र चैकादशो वर्षाकालो व्रतदिवादभूत्॥ —त्रिषष्टि० १०।८।३४३

१६ श्रमण भगवान महावीर, पृ० ४१

१७ तीर्थंकर महावीर, पृ० २२९, प्र० भाग०

जीर्ण की भावना : पूर्ण का दान

वैशाली मे एक भावुक श्रावक जिनदत्त रहता था, उसकी सम्पत्ति क्षीण हो जाने से लोग उसे जीर्ण सेठ कहने लग गये ।[1] वह सामुद्रिक शास्त्र का वेत्ता था । भगवान् की पाद-रेखाओ के अनुसधान मे वह उसी उद्यान मे गया, वहाँ प्रभु को ध्यानस्थ देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुआ ।[2] अब वह प्रतिदिन भगवान् को नमस्कार करने आता और आहार आदि की अभ्यर्थना करता । निरन्तर चार मास तक चातक की तरह चाहने पर भी उसकी भव्य भावना पूर्ण नही हुई ।[3] चातुर्मास समाप्ति के पश्चात् भगवान् भिक्षा के लिए निकले और अपने सकल्प के अनुसार भिक्षान्वेषण करते हुए अभिनव श्रेष्ठी के द्वार पर रुके । वह नया धनी था, मूलनाम 'पूर्ण' था । श्रेष्ठी ने लापरवाही से दासी को आदेश दिया, और उसने एक चम्मच कुलत्थ (बाकुले) दिये और भगवान् ने उसी से चार माह की तपस्या का पारणा किया ।[4]

जीर्ण सेठ सोच रहा था 'कल्पवृक्ष' को अमृत से सिंचन करना सुलभ है, किन्तु तपोमूर्ति महावीर को दान देना महान् दुर्लभ है । अक्षय पुण्योदय से ही यह सौभाग्य मिलता है। इस प्रकार की कमनीय कल्पनाओ से थिरकता, हर्ष से गद्‌गद् हुआ जीर्ण प्रभु के आगमन की, दान देने की प्रतीक्षा

---

१ (क) जीर्ण सेठ का यह प्रसग आवश्यक निर्युक्ति, विशेषावश्यक भाष्य, चूर्णि, वृत्ति व चउप्पन्न० मे नही है, किंतु महावीर चरिय तथा त्रिषष्टिशलाका-पुरुष चरित्र मे आया है ।

(ख) तत्थत्थि परमसड्ढो जिणदत्तो जो जाणम्मि विक्खाओ ।
विहवक्खएण सेट्ठिपयचाइओ जिन्नसेट्ठि त्ति ।।
—महा० (नेमि०) ११४४

(ग) महावीर चरिय (गुणचन्द्र) गा० ७-८, प० २३३

२ (क) परमश्रावकस्तत्र जिनदत्ताभिधोऽवसत् ।
दयावान् विश्रुतो जीर्णश्रेष्ठीति विभवक्षयात् ।।
—त्रिषष्टि० १०।४।३४६

(ख) महावीर चरिय (नेमि०) ११४४ से ४९

(ग) ,, ,, गुण० ७ से ११ तक, पृ० २३३

३ महावीर चरिय गुण० २३३

४ (क) महावीर चरिय गुण० २३३

(ख) त्रिषष्टि० १०।४।३५६-३५८

मे एकटक देख रहा था। प्रतीक्षा मे प्यासी आँखे पथरा गई थी, पर अभी तक प्रभु की छवि दिखाई नही दी। जीर्ण की भावनाओ मे श्रद्धा का ज्वार उमड रहा था। प्रतीक्षा के पुण्य-पलो मे उसका हृदय अपूर्व प्रसन्नता का अनुभव कर रहा था, और भावो की उच्चतम श्रेणी पर चढा जा रहा था।

सहसा देव-दुन्दुभि बजी, पच दिव्यवृष्टि हुई। 'अहो दान अहो दान" की उद्घोषणा होने लगी, "प्रभु महावीर का चातुर्मासिक तप का पारणा हो गया है" यह सुनते ही जीर्ण की भव्य-भावनाओ पर तुषारापात हो गया। वह निराश और उदास होकर सोचने लगा कि मैं कैसा हतभागी हू, चार मास तक निरन्तर प्रतीक्षा करने पर भी प्रभु ने मेरे ऊपर कृपा नही की। कहते हैं यदि दो घडी देवदुन्दुभि जीर्ण सेठ नही सुन पाता तो केवलज्ञान हो जाता।[५]

पूर्ण सेठ ने जब पारणे का दिव्य अतिशय देखा तो वह चकित रह गया। लोगो ने पूछा—हे भाग्यवान्! प्रभु को तुमने क्या भिक्षा दी? पूर्ण ने शेखी बघारते हुए कहा—भिक्षा दान! मैंने अपने हाथो से प्रभु को परमान्न (खीर) का दान किया है।[६] इस मिथ्या अहकार से पूर्ण को कुछ भी आध्यात्मिक लाभ नही हुआ। उच्चतम भावनाओ के बल पर जीर्ण श्रेष्ठी ने बारहवें देवलोक का आयुष्य बाधा।[७]

चमरेन्द्र द्वारा शरण-ग्रहण

वर्षावास पूर्ण कर भगवान् वहाँ से सुसमारपुर पधारे। उस समय शक्रेन्द्र के भय से भयभीत हुआ चमरेन्द्र भगवान् के चरणो मे आया और

---

५ (क) खणमेत्त न सुणन्तो दुन्दुहिसद्द तु जइ सुपरिणामो।
आरुहिय खवगसेढि ता केवलमेव पाविन्तो॥
—महावीर० (नेमि०) ११६२

(ख) महावीर० (गुण०) २३४

६ लोकैश्च पृष्टोऽभिनवश्रेष्ठी माय्येवमब्रवीत्।
स्वय मया पायसेन पारण कारित प्रभु॥
—त्रिपष्टि० १०।४।३६०

७ महावीर चरिय ११६१

शरण ग्रहण की,[1] वह पूरा प्रसग भगवान् महावीर ने गौतम स्वामी को बताया है जो इस प्रकार है—[2]

असुरराज चमरेन्द्र पूर्व भव मे 'पूरण' नामक एक बाल तपस्वी था। वह छट्ठ छट्ठ का तप करता और पारणे के दिन काष्ठ के चतुष्पुट पात्र मे भिक्षा लाता। प्रथम पुट की भिक्षा पथिको को प्रदान करता। द्वितीय पुट की भिक्षा पक्षियो को चुगाता, तृतीय पुट की भिक्षा जलचरो को देता और चतुर्थ पुट की भिक्षा समभाव से स्वय ग्रहण करता। द्वादश वर्ष तक इस प्रकार घोर तप किया और एक मास के अनशन के पश्चात आयु पूर्ण कर चमरचचा राजधानी मे इन्द्र बना।

इन्द्र बनते ही उसने अवधिज्ञान से अपने ऊपर सौधर्मावतसक विमान मे शक्र नामक सिंहासन पर शक्रेन्द्र को दिव्य भोग भोगते हुए देखा। उसने मन मे विचार किया "यह मृत्यु को चाहने वाला, अशुभ लक्षणो वाला, लज्जा और शोभा रहित चतुर्दशी को जन्म लेने वाला, हीनपुण्य कौन है? मैं इसकी शोभा को नष्ट कर दूँ। पर मुझ मे इतनी शक्ति कहाँ है। वह असुरराज सु सुमारपुर नगर के सन्निकटवर्ती उपवन मे अशोकवृक्ष के नीचे जहाँ भगवान महावीर छद्मस्थावस्था के बारहवें वर्ष मे ध्यानस्थ खडे थे, वहाँ आया। उसने भगवान् महावीर की शरण ग्रहण कर शक्रेन्द्र और उनके देवो को त्रास देने के लिए विराट् व विद्रूप शरीर की विकुर्वणा की और सीधा सुधर्मा सभा के द्वार पर पहुँचकर डराने-धमकाने लगा। शक्रेन्द्र ने भी कोप करके अपना वज्रायुध उसकी तरफ फेंका। आग की चिनगारिया उगलते हुए वज्र को देखकर चमरेन्द्र जिस मार्ग से आया था, उसी मार्ग से पुन लौट गया। शक्रेन्द्र ने अवधिज्ञान से देखा तो पता चला कि यह श्रमण भगवान् महावीर की शरण लेकर आया है और पुन वही भागा जा रहा है। कही यह वज्र भगवान् महावीर को कष्ट न दे। तदर्थ वह शीघ्र ही लेने के लिए

---

१ वेसालि वास भूदाणदे चमरुप्पातो य सुस्समारपुरे।

—आव० निर्युक्ति ४००

(ख) विशेषा० भाष्य १९५२

(ग) आवश्यक चूर्णि ३१६

(घ) आवश्यक मल० वृत्ति० २९४

(ङ) महावीर चरियं—गुणचन्द्र ७, पृ० २३४-२४०

२ भगवती शतक ३, उद्दे० २,

दौडा। चमरेन्द्र ने अपना सूक्ष्म रूप बनाया और महावीर के चरणो मे आकर छिप गया। वज्र महावीर के निकट तक पहुँचने से पूर्व ही इन्द्र ने वज्र को पकड लिया[3] और चमरेन्द्र को महावीर का शरणागत होने से क्षमा कर दिया। आचार्य शीलाक ने प्रस्तुत घटना अन्य रूप से उट्टङ्कित की है। उस पर हम पूर्व विचार कर चुके हे।

असुरराज सौधर्म सभा मे कभी जाते नही, किन्तु अनन्त काल के पश्चात् वे अरिहत की शरण लेकर गये, जिसे जैन साहित्य मे आश्चर्य माना गया है।

सुसुमारपुर से भगवान् भोगपुर नन्दिग्राम होते हुए मेढियग्राम पधारे। वहा ग्वालो ने उन्हे अनेक प्रकार के उपसर्ग दिये।[४]

विदेह-साधना

भगवान् महावीर की साधना अत्यन्त उग्र रूप से चल रही थी। शीतकाल की ठिठुरती शीत लहरे, उष्णकाल की आग की लपटो-सी तेज लूएँ और वर्षा की तूफानी हवाए उनको कभी भी विचलित नही कर सकी।

दीक्षा के समय महावीर के शरीर पर गोशीर्ष चन्दन आदि अत्यन्त सुगन्धित उबटन, विलेपन आदि किये गये थे। उस विलेपन की मीठी सुगन्ध कई मास तक उनके शरीर पर महकती रही। साधारण मानव के लिए जहाँ इस प्रकार की सुगन्ध आल्हाद का कारण बनती है वहाँ पर महावीर के लिए वह अत्यन्त त्रास और पीडा का कारण बन गई।

महावीर जब जगलो मे खडे होकर ध्यान करते तो उनकी देह से मीठी सौरभ हवा के साथ फैलकर वातावरण को सुरभित बना देती। इस

---

३ मम च ण चउरगुलमसपत्त वज्ज पडिसाहरइ।

—भगवती शतक ३।२ सू० १४५।३०२

४ क) आवश्यक निर्युक्ति ४००, ४०१

(ख) विशेषा० भाष्य १९५२-१९५३

(ग) आव० चूर्णि ३१९

(घ) आव० मलय० २९४

(ङ) आव० हारिभद्रीया वृत्ति २२२

मधुर सौरभ से आकृष्ट होकर भौरे उनके शरीर पर आकर लिपटने लगते, जैसे फूलो से लिपट रहे हो। सुरभि-रस खीच लेने के लिए वे तीखे डक मारते, मास को नोच लेते और रक्त पीते रहते। इस पीडा को भगवान् अत्यन्त समता के साथ सहन करते। देह की पीडा और त्रास से मुक्त रहकर आत्म-स्वरूप मे लीन रहते। देह होते हुए भी वे विदेह थे।

लाढ़ प्रदेश में

साधनाकाल मे कुछ काल पश्चात् भगवान महावीर ने कर्मों का विशेष निर्जरा हेतु लाढ प्रदेश (सभवत बगाल मे गगा का पश्चिम किनारा) की ओर प्रस्थान किया।[1] यह प्रदेश उस युग मे अनार्य प्रदेश माना जाता था। सन्त-जीवन के लिए वह अतीव प्रतिकूल था। वहा विचरण करना अत्यन्त दुष्कर था।[2]

उस प्रान्त के दो भाग थे। एक वज्रभूमि और द्वितीय शुभ्रभूमि।[3] ये उत्तर राढ और दक्षिण राढ के नाम से भी प्रसिद्ध थे। इन दोनो के मध्य

---

१ (क) आवश्यक निर्युक्ति ३६५

(ख) विशेषा० भाष्य १६१७

(ग) भगव चिंतेति बहु कम्म निज्जरेयव्व लाढाविसय वच्चामि, ते अणारिया, तत्थ णिज्जरेमि।

(घ) आव० मलय० वृत्ति २८१

(ङ) त्रिषष्टि० १०।३।५५४-५५६

(च) महावीर चरिय (गुणचन्द्र) ६।१९५

२ (क) अह दुच्चर-लाढ-मचारी।

—आचाराग १।९।३।२

(ख) दुच्चराणि तत्थ लाढेहि।

—आचाराग ९।३ गा० ६

३ (क) वज्ज-भूमि च सुब्भ-भूमि च।

—आचाराग १।६।३।२

(ख) वज्रभूमि शुद्धभूमिलाटादिम्लेच्छभूमिषु।
कर्मनिर्जरणायागात् स्वामी गोशालकान्वित ॥

—त्रिषष्टि० १०।४।५४

मे अजय नदी बहती थी।[४] भगवान् ने दोनो ही स्थानो मे विचरण किया। उस क्षेत्र मे भगवान् को जो उग्र उपसर्ग उपस्थित हुए, उसका रोमाचक वर्णन आर्य सुधर्मा ने आचाराग मे निम्नप्रकार से किया है—

वहाँ रहने के लिए उन्हे अनुकूल आवास प्राप्त नही हुए।[५] अनेक प्रकार के उपसर्ग सहन करने पडे। रूखा-सूखा बासी भोजन भी कठिनता से उपलब्ध होता था। कुत्ते उनको दूर से देखकर ही काटने के लिए झपटते थे।[६] वहा पर ऐसे बहुत कम व्यक्ति थे जो काटते और नोचते हुए कुत्तो को हटाते किन्तु इसके विपरीत वे कुत्तो को छुछकार कर काटने के लिए उत्प्रेरित करते,[७] पर भगवान महावीर उन प्राणियो पर किसी भी प्रकार का दुर्भाव नही लाते। उन्हे अपने तन पर किसी प्रकार की ममत्वबुद्धि नही थी। आत्म-विकास का हेतु समझकर ग्राम सकटो को सहर्ष सहन करते हुए वे सदा प्रसन्न रहते थे।[८]

जैसे सग्राम मे गजराज शत्रुओ के तीखे प्रहारो की तनिक भी परवाह किये बिना आगे ही बढता जाता है उसीप्रकार भगवान् महावीर भी लाढ प्रदेश मे उपसर्गों की किंचित् परवाह किए बिना आगे बढते रहे। वहा उन्हे ठहरने के लिए कभी दूर-दूर तक गाँव भी उपलब्ध नही होते तो भयकर अरण्य मे ही रात्रिवास करते।[९] जब वे किसी गाँव मे जाते तो गाँव के सन्निकट पहुँचते ही गाँव के लोग बाहर निकलकर उन्हे मारने-पीटने लगते

४ विजयेन्द्रसूरि ने लिखा है—वस्तुत लाढ प्रदेश बगाल मे गगा के पश्चिम मे था। आजकल के तामलुक, मिदनापुर, हुगली और वर्दवान जिले उस प्रदेश के अन्तर्गत थे। मुर्शिदाबाद जिले का कुछ भाग इसकी उत्तरी सीमा के अन्तगत था।

—तीर्थंकर महावीर, भा० १ पृ० २०२

५ आचाराग १।६।३।२

६ वही १।६।३।३

७ वही १।६।३।४

८ वही १।६।३।७

६ नागो सगाम-सीसे वा, पारए तत्थ से महावीरे।
एव पि तत्थ लाढेहिं अलद्ध-पुव्वो वि एगया गामो॥

—आचाराग १।६।३।८

और अन्य गॉव जाने को कहते ।[१०] वे अनार्य लोग भगवान् पर दण्ड, मुष्टि, भाला, पत्थर व ढेलो से प्रहार करते और फिर प्रसन्न होकर चिल्लाते ।[११]

वहाँ के क्रूर मनुष्यों ने भगवान् के सुन्दर शरीर को नौच डाला, उन पर विविध प्रकार के प्रहार किये। भयकर परीपह उनके लिए उपस्थित किये। उन पर धूल फैकी।[१२] वे भगवान् को ऊपर उछाल-उछाल कर गेंद की तरह पटकते। आसन पर से धकेल देते, तथापि भगवान् शरीर के ममत्व से रहित होकर बिना किसी प्रकार की इच्छा व आकाक्षा के सयम साधना में स्थिर रहकर कष्टो को शान्ति से सहन करते।[१३]

जैसे कवच पहने हुए शूरवीर का शरीर युद्ध मे अक्षत रहता है वैसे ही अचेल भगवान् महावीर ने अत्यन्त कठोर कष्टो को सहते हुए भी अपने सयम को अक्षत रखा।[१४]

पुन: आर्यप्रदेश मे

इस प्रकार समभावपूर्वक भयकर उपसर्गों को सहनकर भगवान् ने बहुल कर्मों की निर्जरा की। वे पुन आर्यप्रदेश की ओर कदम बढा रहे थे कि पूर्णकलश सीमाप्रान्त पर दो तस्कर मिले। वे अनार्य प्रदेश मे चोरी

---

१० उवसकमत-मपडिन्न गामतियम्मि अप्पत्त।
पडिनिक्खमित्तु लुसिसु एयओ पर पलेहित्ति ॥

—आचाराग १।६।३।६

११ हय-पुव्वो तत्थ दडेण अदुवा मुट्ठिणा अदुकुन्तफलेण।
अदु लेलुणा कवालेण हता हता बहवे कदिसु ॥

—आचाराग १।६।३।१०

१२ मसाणि छिन्नपुव्वाणि, उट्ठभिया एया काय।
परीसहाइ लुञ्चिसु अदुवा पसुणा उवकरिसु ॥

—आचाराग १।६।३।११

१३ उच्चालइय निहणिसु अदुवा आसणाओ खलइसु।
वोसट्ठकाय-पणयासी दुक्ख सहे भगव अपडिन्ने ॥

—आचाराग १।६।३।१२

१४ सूरो सगाम-सीसेवा, सवुडे तत्थ से महावीरे।
पडिसेवमाणे फरुसाइ अचले भगव रीइत्था ॥

—आचाराग १।६।३।१३

करने जा रहे थे। भगवान् (मुडितशिर साधु) को सामने आते देखकर उन्होने अपशकुन समझा। वे तीक्ष्ण शस्त्र लेकर भगवान् को मारने के लिये लपके। महावीर शात एव मौन भाव से ध्यानस्थ रहे। तस्कर महावीर के दिव्य तेज को देखकर हतप्रभ हो गए। तभी इन्द्र ने प्रकट होकर उन्हे ललकारा।[१५]

भगवान् आर्यप्रदेश के मलय देश मे विहार करने लगे और उस वर्ष मलय की राजधानी भद्दिला नगरी मे अपना पाचवा चातुर्मास किया।[१६] चातुर्मासिक तप और विविध आसनो के साथ ध्यान-साधना करते हुए वर्षावास व्यतीत किया।

मुनि नन्दिषेण को केवलज्ञान

वर्षावास पूर्ण होने पर भद्दिल नगरी के बाहर चातुर्मासिक तप का पारणा कर 'कदली समागम' जम्बूसण्ड' होकर 'तबायसन्निवेश' पधारे।[१७]

---

१५ (क) आवश्यक निर्युक्ति ३६५
(ख) विशेपावश्यक भाष्य १९१७
(ग) तत्थ पुन्नकलसा णाम अणारियगामो, तत्थतरा दो तेणा लाढाविसय पविसितुकामा, ते अवसउणो एतस्सेव वहाए भवतुत्तिकट्टु सक्केण ओहिणा आभोइत्ता दोऽवि वज्जेण, हता।

—आव० चर्णि २९०

(घ) आव० निर्युक्ति पृ० २८१
(ङ) महावीर चरिय (गुणचन्द्र) ६। १९५
(च) त्रिपष्टि० १०।३।५९२ ५९५

१६ (क) आव० निर्युक्ति ३६५
(ख) विशेपा० भाष्य १९१७
(ग) —आव० चूर्णि २९०
(घ) महावीर चरिय ६।१९६।१

१७ (क) आव० चूर्णि २९०-२९१
(ख) आव० निर्युक्ति ३६६
(ग) विशेषा० भाष्य १९१८
(घ) आव० मलय० २८१-२८२
(ङ) महावीर चरिय ६।१९६

वहाँ पर पार्श्वापत्यीय स्थविर नन्दिषेण अपने बहुश्रुत मुनियो के बहुत बडे परिवार के साथ आये हुए थे। आचार्य नन्दिषेण जिनकल्प प्रतिमा मे अवस्थित थे। गोशालक ने उनको देखा और उनका तिरस्कार किया। उस रात्रि को नन्दिषेण चौराहे पर खडे होकर ध्यान कर रहे थे। आरक्षक पुत्र ने उनको चोर समझ कर भालो से आहत किया। असह्य वेदना को समभाव से सहन करते से उन्हे केवलज्ञान हुआ, वे सिद्ध, बुद्ध और मुक्त हुए।[१८]

कुपियसन्निवेश मे

तबाय से भगवान कुपियसन्निवेश पधारे। वहा लोगो ने गुप्तचर समझकर भगवान् को पकड लिया। अनेक यातनाए दी और कारागृह मे कैद कर लिया। वहा 'त्रिजया' और 'प्रगल्भा' नामक परिव्राजिकाये रहती थी। उन्हे जब पता चला कि निर्ग्रन्थ श्रमण महावीर को कैद किया गया है तो वे वहाँ पहुँची और अधिकारियो को भगवान् का परिचय दिया। अधिकारियो ने अपनी अज्ञता पर पश्चात्ताप करते हुए भगवान् को मुक्त कर दिया।[१९]

गोशालक का पृथक् विचरण

भगवान् ने वहा से वैशाली की ओर विहार किया। अब तक

---

१८ (क) आवश्यक निर्युक्ति ३६७
(ख) विशेषावश्यक भाष्य १६१६
(ग) आवश्यक चूर्णि पृ० २६१
(घ) आचार्य इन्द्रविजय जी ने तीर्थंकर महावीर भाग १, पृ० ३०३ मे नन्दिषेण को अवधिज्ञान हुआ और वह मरकर देवलोक मे गये ऐसा लिखा है पर आवश्यक चूर्णि मे केवलज्ञान का उल्लेख है। इसलिए उनका कथन आवश्यक चूर्णि से मेल नही खाता है। —लेखक

१९ (क) कूविय चारिय मोक्खण विजय पगब्भा य पत्तेय।
—आव० निर्युक्ति ३६७
(ख) विशेषा० भाष्य १६१६
(ग) आवश्यक चूर्णि पृ० २६१
(घ) आवश्यक मलय० वृत्ति २८१-२८२
(ङ) महावीर चरियं (गुणचन्द्र) ६।१६६-१६७
(च) त्रिषष्टि० १०।३।५८३-५८७

गोशालक साथ था, लेकिन वह कष्टो से घबरा रहा था। अत उसने भगवान् महावीर से कहा— 'मुझे आपके साथ रहते हुए अनेक दु सह यातनाये भोगनी पडती हे। भिक्षा भी पूरी नही मिलती और आप मेरी विपत्तियो का निवारण नही करते, अत अब मैं पृथक् विहार करूंगा।" इस बात पर भगवान् मौन रहे। गोशालक ने राजगृह की ओर प्रस्थान कर दिया।[20]

लुहार के यत्रालय मे

भगवान् क्रमश: विहार करते हुए वैशाली पधारे और लुहार के यत्रालय (कम्मारशाला) मे ध्यानस्थ स्थिर हुए। वह लुहार छह मास से अस्वस्थ था। भगवान् के आने के दूसरे ही दिन कुछ स्वस्थता अनुभव होने पर वह अपने यत्र लेकर यत्रालय मे पहुँचा। वहाँ एकान्त मे भगवान् को ध्यानमुद्रा मे देखकर उसने अमगल रूप समझा और क्रुद्ध होकर हथौडा लेकर महावीर पर प्रहार करने के लिये ज्यो ही वह उधर बढा त्यो ही दिव्य देवशक्ति से सहसा वही स्तब्ध हो गया।[21]

वैशाली से विहार कर भगवान् ग्रामक-सन्निवेश पधारे और विभेलक यक्ष के यक्षायतन मे ध्यान किया। भगवान् के तपोमय जीवन से यक्ष प्रभावित होकर उनके गुणकीर्तन करने लगा।[22]

---

२० (क) ताहे गोसालो भणई-तुज्झे मम हम्ममाण न वारेह, तुज्झेहिं सम बहू-वसगग अन्न च—अह चेव पढम हम्मामि तो वर एकल्लो विहरिस्स।

—आव० मलय वृत्ति प० २८२

(ख) आवश्यक चूर्णि २९२

(ग) महावीर चरिय ६।१९७

(घ) त्रिषष्टि० १०।३।५९५

२१ (क) भगव वेसालीए कम्मार, धणेण देविन्दो।

—आव० निर्युक्ति ३६८

(ख) विशेषा० भाष्य १९२०

(ग) आव० मल० वृत्ति २८२

(घ) आवश्यक हारि० २०८

(ङ) महावीर चरिय, (नेमिचन्द्र)

(च) " " (गुणचन्द्र) १९८

(छ) त्रिषष्टि० १०।३।६०५-६१०

२२ (क) आव० निर्युक्ति ३६९

(ख) विशेषा० भाष्य १९२१ [तथा उक्त सभी ग्रथ]

कटपूतना का उपद्रव

भगवान् महावीर ग्रामक-सन्निवेश से विहार कर शालीशीर्ष के रमणीय उद्यान मे पधारे। माघ मास का सनसनाता समीर प्रवहमान था। साधारण मनुष्य घरो मे गर्म वस्त्र ओढकर भी कॉप रहे थे, किन्तु उस ठण्डी रात मे भी भगवान् वृक्ष के नीचे ध्यानस्थ खडे थे। उस समय कटपूतना नामक व्यन्तरी देवी वहाँ आई। भगवान् को ध्यानावस्था मे देखकर उसका पूर्व वैर उद्बुद्ध हो गया। वह परिव्राजिका का रूप बनाकर मेघधारा की तरह जटाओ से भीषण जल बरसाने लगी और भगवान् के कोमल स्कधो पर खडी होकर तेज हवा करने लगी। बर्फ-सा शीतल जल और तेज पवन तलवार के प्रहार से भी अधिक तीक्ष्ण प्रतीत हो रहा था, तथापि भगवान् अपने उत्कट ध्यान से विचलित नही हुए।[२३]

उस समय समभावो की उच्च श्रेणी पर चढने से भगवान् को विशिष्ट अवधिज्ञान (लोकावधिज्ञान) की उपलब्धि हुई।[२४] परीषह सहन करने की अमित तितिक्षा एव समता को देखकर कटपूतना चकित थी, विस्मित थी। प्रभु के धैर्य के समक्ष वह पराजित होकर चरणो मे झुक गई और अपने अपराध के लिए क्षमायाचना करने लगी।

---

२३ (क) गामाग विभेलग जक्ख उवसये सालिसीस छट्ठेण।
उवसग्ग तावसी तु विसुज्झमाणस्स लोगोही॥

—आव० निर्युक्ति ३६९

(ख) विशेषा० १९२१
(ग) आवश्यक चूर्णि २९२-२९३
(घ) आवश्यक मलय० वृत्ति २८३
(ङ) आवश्यक हारि० वृत्ति
(च) महावीर चरिय ६।२१२-१३
(छ) त्रिषष्टि० १०।३।६१४-६२४

२४ (क) त दिव्व वेयण अहियासतस्स भगवतो ओही।
विगसिओ सव्वलोग पासितुमारद्धो।

—आव० चूर्णि २९३

(ख) आव० मल० वृत्ति २८३
(ग) आव० हारि० वृत्ति २०९

गोशालक पुन महावीर के पास

गोशालक भी छह मास तक पृथक् भ्रमण कर अनेक कष्ट पाता हुआ वह अन्त मे फिर से महावीर के पास आ गया।[२५]

भगवान् वहा से परिभ्रमण करते हुए भद्दिया नगरी पधारे। चातुर्मासिक तप तथा आसन व ध्यान की साधना करते हुए छट्ठा वर्षावास वहाँ पर किया।[२६]

यहाँ यह स्मरण रखना चाहिए कि प्रभु ने पाचवा और छठा ये दो चातुर्मास भद्दिया मे किये है।

वर्षावास पूर्ण होने पर नगर के बाहर पारणा कर मगध की ओर विहार किया। मगध के अनेक ग्रामो मे घूमते हुए आलभिया पधारे। आठ माह मे किसी प्रकार का उपसर्ग नही हुआ। चातुर्मासिक तप के साथ ध्यान करते हुए सातवा चातुर्मास वहा पूर्ण किया।[२७] चातुर्मासिक तप का नगर के बाहर पारणा कर कु डाग-सन्निवेश और फिर मद्दन-सन्निवेश पधारे। दोनो ही स्थलो पर क्रमश वासुदेव और बलदेव के आलय (मन्दिर) मे स्थित होकर ध्यान किया।

लोहार्गला मे

वहाँ से लोहार्गला पधारे। उस समय लोहार्गला के पडौसी राज्यो से कुछ सघर्ष चल रहे थे, अत वहा के सभी अधिकारीगण आने-जाने

---

२५ (क) छट्ठे मासे भगवतो गोसालो मिलितो।

—आव० चूर्णि २९३

२६ पुणरवि भद्दियणगरे तव विचित्त तु छट्ठवासम्मि।

—आव० निर्युक्ति ३७०

(ख) विशेषा० भाष्य १९२२

(ग) तत्थ चउमासखमण विचित्ते य अभिग्गहे कुणइ भगव ठाणादीहि।

—आव० हारि० वृत्ति २०९

२७ (क) आव० निर्युक्ति ३७०-३७१

(ख) विशेषा० भाष्य १९२२-२३

(ग) ततो पच्छा मगहविसए विहरति निरुवसग्ग अट्ठमासे उदुवद्धिए। एव विहरिऊण आलभित एति, तत्थ सत्तम वासावास उवगतो चाउम्मासखमणेण।

—आव० चूर्णि २९३

वाले यात्रियो से पूर्ण सतर्क रहते थे। परिचय के बिना राजधानी मे किसी का भी प्रवेश निषिद्ध था। भगवान् से भी परिचय पूछा गया, पर वे मौन रहे। इस कारण अधिकारी उन्हे निगृहीत कर राजसभा मे ले गये। वहाँ अस्थिक ग्राम निवासी उत्पल नैमित्तिक आया हुआ था। उसने ज्यो ही भगवान् को देखा, त्यो ही उठकर वन्दन किया और अधिकारियो से बोला—"ये गुप्तचर नही, अपितु सिद्धार्थ-नन्दन महावीर है, धर्मचक्रवर्ती हे।" परिचय प्राप्त होते ही राजा जितशत्रु ने भगवान एव गोशालक को सत्कार पूर्वक बिदा किया।[२८]

आसन और ध्यान

लोहार्गला से भगवान् ने पुरिमताल नगर की ओर प्रस्थान किया। नगर के बाहर कुछ समय तक शकटमुख उद्यान मे ध्यान किया। 'वग्गुर' श्रावक ने वहाँ आपका सत्कार किया। वहा से उन्नाग, गोभूमि को पावन करते हुए राजगृह पधारे।[२९] वहा चातुर्मासिक तप ग्रहणकर विविध आसनो के साथ ध्यान करते रहे। ऊँची-नीची और तिरछी तीनो दिशाओ मे स्थित पदार्थों पर ध्यान केन्द्रित करते हुए प्रभु ने वहा उत्कृष्ट ध्यान किया।[30] वही पर आठवा वर्षावास व्यतीत किया।

---

२८ (क) लोहग्गलम्मि चारिय जितसत्तू उप्पले मोक्खो।

—आव० निर्युक्ति ३७२

(ख) विशेषा० भाष्य १९२४

(ग) आवश्यक चूर्णि २९४

(घ) आवश्यक मलय० वृत्ति २८४

(ङ) आव० हारिभद्रीय २१०

(च) महावीर चरिय ६।२१४

२९ (क) आवश्यक निर्युक्ति ३७३-७४

(ख) विशेषावश्यक भाष्य १९२५-२६

(ग) आवश्यक चूर्णि २९४-९५

(घ) आव० मलय० वृत्ति २८४-८५

(ङ) महावीर चरिय ६।२१४-२१८

३० अविक्काह से महावीरे, आसणत्थे अकुक्कुए।
झाण उड्ढ अहे तिरिय च पेहमाणे समाहिमपडिन्ने ॥

—आचाराग १।९।४।१०८

पुन राढ देश मे

नगर के बाहर चातुर्मासिक तप का पारणा कर विशेष कर्मनिर्जरा करने के लिए प्रभु ने पुन अनार्यभूमि की ओर (राढ देश की ओर) प्रयाण किया। पूर्व की भाँति ही अनार्य प्रदेश मे कष्टो को समभाव पूर्वक सहन करते हुए कर्मों की घोर निर्जरा की।[३१]

राढ भूमि मे योग्य आवास न मिलने के कारण वृक्षो के नीचे खण्डहरो मे तथा घूमते-घामते वर्षावास पूर्ण किया। छह मास तक अनार्य प्रदेश मे विचरण कर पुन आर्य प्रदेश मे पधारे।[३२]

तिल का प्रश्न : वैश्यायन तापस

आर्यभूमि मे प्रवेश कर भगवान् सिद्धार्थपुर से कूर्मग्राम की ओर पधार रहे थे। गोशालक भी साथ ही था। पथ में सप्त पुष्प वाले एक तिल के लहलहाते हुए पौधे को देखकर गोशालक ने जिज्ञासा की कि—"भगवन्! क्या यह पोधा फलयुक्त होगा?"

समाधान करते हुए भगवान् ने कहा—"यह पौधा फलवान् होगा और सातो ही फूलो के जीव एक फली मे उत्पन्न होगे।"

३१ (क) आव० निर्यु० ३७४
(ख) विशेषा० १९२६

३२ (क) तत्थ नवमो वासारत्तो कतो, तत्थ न भत्तपाण नेव वसही लद्धा एव तत्थ छम्मासे अणिच्च जागरिय विहरतो।

—आव० मल० २८५

(ख) वसहिं च अलभमाणो सुन्नगारेसु रुक्खमूलेसु।
धम्मज्झाणाभिरओ वरिसायाल अइक्कमइ॥

—महावीर चरिय ६।१०।२१८

(ग) नवमी प्रावृप तत्र धर्मध्यानपरायण।
शून्यागारे द्रुतले वा स्थित स्वाम्यन्यवाहयत्॥

—त्रिषष्टि० १०।४।६६

गोशालक सशयशील और दुराग्रही था। भगवान के कथन को मिथ्या करने की दृष्टि से उसने पीछे रहकर उस पौधे को उखाडकर एक किनारे फेंक दिया। सयोगवश उसी समय थोडी वृष्टि हुई और वह तिल का पौधा पुन जड जमाकर लहलहा उठा। वे सात पुष्प भी उक्त प्रकार से तिल की फली मे सात तिल के रूप मे उत्पन्न हुए।[33]

भगवान् कूर्मग्राम आये।[34] कूर्मग्राम के बाहर वैश्यायन नामक तापस प्राणायामा प्रव्रज्या स्वीकार कर सूर्यमण्डल के सम्मुख दृष्टि केन्द्रित कर दोनो हाथ उपर उठाये आतापना ले रहा था। धूप से सतृप्त होकर जटा से यूकाएँ (जुएँ) पृथ्वी पर गिर रही थी और वह उनकी दया पालने हेतु उठा—उठाकर पुन जटा मे रख रहा था। गोशालक ने यह दृश्य देखा तो कुतूहलवश भगवान् के पास से उठकर उस तपस्वी के निकट चला आया और बोला—"तू कोई तपस्वी है, या जूओ का शय्यातर ?" तपस्वी शान्त रहा। इसी बात को गोशालक पुन पुन दुहराता रहा। तपस्वी क्रोध मे आ गया। वह अपनी आतापना भूमि से सात-आठ पग पीछे गया और जोश मे आकर उसने अपनी तपोलब्ध तेजोलब्धि गोशालक को भस्म करने के लिये छोड दी। गोशालक मारे डर के भागा, और प्रभु के चरणो मे छुप गया, दयालु महावीर न शीतलेश्या से उसको प्रशान्त कर दिया।[35] गोशा-

---

३३ (क) अणियचार सिद्धत्थपुर तिलथभ पुच्छ णिप्फत्ति।
उप्पादेति अणज्जो गोसालो वास बहुलाय॥

—आव० निर्युक्ति ३७५

(ख) विशेषा० भाष्य १९२७

(ग) आव० चूर्णि २९७

(घ) भगवती शतक १५, तृतीय खण्ड, पृ० ३७२-७३

(ङ) त्रिषष्टि० १०।४।६८-१२८

(च) आवश्यक मलय० वृत्ति २८५

३४ भगवती मे कूमग्राम के स्थान पर कुडग्राम लिखा है।

३५ (क) भगवती शतक १५, ततीय खण्ड, पृ० ३७३-३७४

(ख) ताहे वेसियायणो रुट्ठो तेय निसिरई, ताहे सामिणा तस्स अणुकपणट्ठाए वेसियायणस्स उसियतेय पडिसाहरणट्ठमेत्यतरा सीयलिया तेउल्लेसा निसिरिया।

—आव० मल० वृत्ति २८६

लक को सुरक्षित खडा देखकर तापस सारा रहस्य समझ गया। उसने अपनी तेजोलेश्या का प्रत्यावर्तन किया और विनम्र शब्दो मे बोलता रहा—"भगवन्! मैने आपको जाना, मैंने आपको जान लिया।"

गोशालक यह चमत्कारी शक्ति देखकर बडा ललचाया और प्राप्त करने की विधि पूछी। भगवान् ने कहा—'नाखून सहित बन्द मुट्ठी भर उडद के बाकलो और एक चुल्लू भर पानी से कोई निरन्तर छठ-छठ का तप करे और आतापना भूमि मे सूर्य के सम्मुख ऊर्ध्वबाहु होकर आतापना ले उसे छ मास के पश्चात् सक्षिप्त और विपुल दोनो प्रकार की तेजोलेश्याएँ प्राप्त होती है।'[36] गोशालक ने भगवान् की बात को विनयपूर्वक स्वीकार किया।

भगवान् ने कुछ समय के पश्चात् पुन वहाँ से सिद्धार्थपुर की ओर प्रयाण किया। तिल पौधे के स्थान पर आते ही गोशालक को अतीत की घटना की स्मृति हो आई। उसने कहा– भगवन्! आपकी वह भविष्यवाणी मिथ्या हो गई। महावीर ने कहा—"नही, वह अन्य स्थान पर उगा हुआ जो तिल का पौधा है, वह वही है जिसे तूने उखाड कर फेका था। गोशालक श्रद्धाहीन था, वह तिल के पौधे के पास गया और तिल की फली को तोडकर देखा तो सात ही तिल निकले। प्रस्तुत घटना से गोशालक नियतिवाद की ओर गहरा आकृष्ट हो गया। उसका यह विश्वास सुदृढ हो गया कि "सभी जीव मर कर पुन अपनी ही योनि मे उत्पन्न होते है।'"[37]

(ग) महावीर चरिय ६।२२२

(घ) त्रातु गोशालक स्वामी शीतलेश्यामथामुचत्।
तेजोलेश्या तयाशामि वारिणेव हुताशन ॥

—त्रिषष्टि० १०।४।११६

३६ (क) भगवती १५।३। पृ० ३७४

(ख) भगव भणइ-जे ण गोसाला। छट्ठछट्ठेण अणिक्खित्तेण तवोकम्मेण आयावेइ पारणए सनहाए कुम्मासपिडियाए एगेण य वियडासएण जावेइ जाव छम्मासा से ण सखित्तविउलतेउलेसे भवइ।

— आव० मलय० वृत्ति २८७

(ग) त्रिषष्टि० १०।४।१२२-१२४

(घ) महावीर चरिय ६।२२३।

३७ (क) भगवती १५।३। पृ० ३७४-३७५

वहाँ से गोशालक ने भगवान् का साथ छोड दिया। वह श्रावस्ती गया, और 'हालाहला' नाम की कुभारिन की भाण्डशाला मे ठहर कर महावीर द्वारा बताई विधि के अनुसार तेजोलब्धि की साधना करने लगा। यथासमय सिद्धि प्राप्त हुई। उसका प्रथम परीक्षण करने के लिये वह बाहर निकला। गाँव के बाहर कुएँ पर जल भरती हुई एक महिला दिखाई दी, गोशालक ने उसके घडे पर ककड मारा घडा टुकडे होकर गिर पडा, पानी बह गया। महिला ने क्रुद्ध होकर गाली दी, तो गोशालक ने तेजोलेश्या से उसे वही भस्म करके ढेर बना दिया।[38]

फिर भगवान पार्श्वनाथ के अनुयायी अष्टाग निमित्त के ज्ञाता शोण, कलिन्द कार्णीकार, अछिद्र, अग्निवेशायन, और अर्जुन प्रभृति से गोशालक ने निमित्तशास्त्र का अध्ययन किया। जिससे वह सुख-दुःख, लाभ-हानि, जीवन-मरण आदि बताने लगा और लोगो मे वचन-सिद्ध नैमित्तिक हो गया। इन सिद्धियो के चमत्कार से प्रसिद्धि हुई और वह अपने आपको आजीवक सम्प्रदाय का तीर्थंकर बताकर प्रख्यात हुआ।[39]

(ख) आव० मलय० वृत्ति० २८७

(ग) महावीर चरियं (गुणचन्द्र) ६।२२३

(घ) त्रिषष्टि० १०।४।१२६-१२८

३८ (क) छहिं मासेहिं सखित्तविउलतेउलेसो, सजातो, कूववडे दासीए विन्नासिय।

—आव० मल० वृत्ति० २८७

(ख) भगवती १५।३। पृ० ३७५

(ग) महावीर चरियं ६। पृ० २२३

(घ) त्रिषष्टि० १०।४।१२९-१३२

३९ (क) भगवती १५। पृ० ३७५

(ख) पच्छा तस्स छद्दिसाचरा मिलिया, तेहिं निमित्तउल्लोगो से कहितो एव सो अजिणो जिणपलावी विहरइ, एसा से विभूई सजाया।

—आव० मल० वृत्ति २८७

(ख) महावीर चरियं ६। पृ० २२३-२२४

(ग) त्रिषष्टि० १०।४।१३४-१३७। त्रिषष्टि० १३४ मे इन्हे भगवान पार्श्वनाथ के शिष्य स्पष्ट लिखा है।

महावीर भूले ?

गोशालक को तेजोलेश्या के आक्रमण से बचाने हेतु श्रमण भगवान् महावीर ने शीतललेश्या का प्रयोग किया, गोशालक की प्राणरक्षा हो गई।

भगवान् महावीर द्वारा शीतललेश्या का प्रयोग एक परम कारुणिक भावना का निदर्शन है, प्रसग पर जब सामने एक पचेन्द्रिय प्राणी जल रहा हो, और दूसरा व्यक्ति निरपेक्षभाव से खडा देखता रहे, उसके हृदय मे अनुकपा की लहर न उठे—यह कठिन बात है, कम से-कम उस साधक के लिए, जिसके हृदय के कण-कण से करुणा छलक रही हो। किंतु इस घटना प्रसग को विकट विवाद का विषय बनाकर आचार्य भीखण जी ने इस अनुकपा को महावीर की भूल बताई है। उन्होने कहा है—"**छद्मस्थ चूक्या तिण समै।**"

हमारी दृष्टि मे यह अहिंसा का ऐकान्तिक आग्रह या एकागीचिन्तन है। क्योकि महावीर की अहिंसा सिर्फ नकारात्मक नही, क्रियात्मक भी थी, और उसी का उदाहरण उन्होने गोशालक की प्राणरक्षा करके प्रस्तुत किया। यहाँ अहिंसा की चर्चा का प्रसग लबा न हो इसलिए हम इतना ही स्पष्ट कर देते है कि जो **महावीर को चूके** कहने का दुस्साहस करते है, वे अपने एकागी चिन्तन के कारण ही कर रहे ह, वास्तव मे महावीर के जीवन की गहराई मे उतरनेवाला विचारक यह मान लेगा कि महावीर जिन थे, कल्पातीत थे, सामान्य कल्प मे अटपटी व अविहित लगने वाली बाते भी कल्पातीत साधक के जीवन मे घटित होती है, भगवान् महावीर के जीवन मे ऐसे अनेक प्रसग आये है, किंतु हम उनकी गहराई को न समझकर उन्हे महावीर की भूल बताये—

यह सर्वथा अनुचित व अविवेकपूर्ण बात होगी।

आजीवक संप्रदाय

बौद्ध साहित्य मे आजीवक और जैन साहित्य मे 'आजीविक' शब्द गोशालक की श्रमण परम्परा के लिए आया है। दोनो ही शब्द एकार्थक

है। इन दोनो शब्दो का अभिप्राय है—आजीविका के लिए ही तपश्चर्या आदि करने वाले ।[४०] आजीवक सम्प्रदाय मे इसका क्या अर्थ था, वह वत-मान मे उपलब्ध नही है। सभव है उन्होने भिक्षाचरी के कठोर नियमो से आजीविका प्राप्त करने की प्रशसा के कारण इसे अपना लिया हो। जैन और बौद्ध दोनो ही साहित्य मे आजीवको के कठोर नियमो की चर्चा है। मज्झिम-निकाय के अभिमतानुसार उनके बहुत सारे नियम निर्ग्रन्थो के समान और कुछ नियम उनसे भी कठोर थे ।[४१]

आजीवको की भिक्षाचरी का प्रशसात्मक विवरण देते हुए लिखा है—"गाँवो व नगरो मे आजीवक साधु होते है। उनमे से कुछ एक दो घरो के अन्तर से, कुछ-एक तीन घरो के अन्तर से यावत् सात घरो के अन्तर से भिक्षा ग्रहण करते है ।[४२]

भगवती सूत्र[४३] मे आजीवक उपासको के आचार-विचार का प्रशसा-त्मक वर्णन करते हुए लिखा है—"वे गोशालक को अरिहत मानते है, माता-पिता की सेवा-शुश्रूषा करते है, गूलर, बड, बोर, अजीर व पिलखु—इन पाँच प्रकार के फलो का भक्षण नही करते, पलाण्डु (प्याज), लहसुन आदि कन्दमूल का भी भक्षण नही करते, बैलो को निर्लंछन नही कराते, उनके कान-नाक का छेदन नही करते व त्रस-प्राणियो की हिंसा हो ऐसा व्यापार नही करते ।"

इससे स्पष्ट है कि आजीवक सम्प्रदाय मे भिक्षा का नियम कठोर रहा है जिससे उनका नाम आजीवक पडा ।

आजीवक अब्रह्मचारी

सूत्रकृताङ्ग मे आर्द्रकुमार का प्रकरण है, उसमे आजीवक भिक्षुओ के अब्रह्म-सेवन का उल्लेख है ।[४४] कितने ही विद्वान् उसे आक्षेप मानते है, पर

---

४० (क) भगवती सूत्र वृत्ति श० १, उद्दे० २

(ख) जैनागम शब्द सग्रह पृ० १३४

(ग) Hoernle, Ajivikas in Encyclopaedia of Religion and Ethics, E J Thomas, Life ef Buddha P 130

४१ महासच्चक सुत्त १-४-६

४२ अभिधान राजेन्द्रकोप भाग०२, पृ० ११६

४३ भगवती शतक ८, उद्दे० ५

४४ (क) वीर, वर्प ३, अक १२-१३, ले डा० कामताप्रसाद

बौद्ध साहित्य मे भी आजीवको के अब्रह्म सेवन का उल्लेख है।[४५] मज्झिम-निकाय मे निग्गण्ठ को ब्रह्मचर्यवास मे और आजीवक को अब्रह्मचर्यवास मे गिना है।[४६] गोशालक कहते थे, कि तीन अवस्थाएँ होती है (१) बद्ध, (२) मुक्त, (३) और न बद्ध न मुक्त, वे स्वय को मुक्त, कर्मलेप से परे मानते है। उनका मन्तव्य था कि मुक्त पुरुप स्त्री-सहवास करे तो उसे भय नही है। ये विचार भले ही आलोचक सम्प्रदाय के हो पर निराधार नही है। इतिहासविद् डाक्टर सत्यकेतु ने भी गोशालक के भगवान् महावीर से होने वाले तीन मतभेदो मे एक स्त्री-सहवास बताया है।[४७] इससे भी स्पष्ट है कि आजीवको को जैन साहित्य मे जो अब्रह्म का पोषक बताया है वह आक्षेप मात्र नही है। कोई भी सम्प्रदाय ब्रह्मचर्य को सिद्धान्त के रूप मे मान्यता दे ही यह कोई नियम नही है। भारतवर्ष मे ऐसे अनेक सम्प्रदाय रहे है जो भोग और त्याग दोनो को महत्व देते रहे है।

इस प्रकार गोशालक के आजीवक मत के सम्बन्ध मे जो सामग्री उपलब्ध होती है, उसके आधार पर हम यही निर्णय कर सकते है कि वह प्रारम्भ मे भगवान महावीर का शिष्य बना, भगवान के उत्कट तप व ध्यान-योग से प्रभावित हुआ, उनकी दिव्य विभूतियो से आकृष्ट हुआ, फिर स्वय उन सिद्धियो को प्राप्त करने के लिए प्रयत्नशील हुआ, तेजोलब्धि तथा अष्टाग-निमित्त जैसी सिद्धिया पाकर वह गर्व से दीप्त हो गया। उसका प्रभाव समाज मे फैला, जिसका लाभ उठाकर वह सामान्य भिक्षुक अपने आपको महावीर के समान तीर्थंकर के रूप मे ख्यापित करने लगा। वह नियतिवाद का कट्टर समर्थक था, यह भी कई घटनाओ से स्पष्ट हो जाता है।

इस वर्ष के पश्चात् वह भगवान से दूर जाकर फिर उनके तीर्थंकर काल के सोलहवे वर्ष मे पुन उनके सपर्क मे सीधा आता है।

(ख) उत्तर हिन्दुस्तानमा जैनधर्म पृ० ५८ से ६१ ले चीमनलाल जयचन्द शाह, भारतीय विद्या खण्ड २, पृ० २०१-१०, खण्ड० ३, पृ० ४७-५६
Ajivika Sect—A New Inter Pretation

४५ Ajivikas, Vol I, मज्झिमनिकाय भाग १, पृ० ५१४ Encyclopaedia of Religion and Ethics, Dr Hoernle p 261

४६ मज्झिम निकाय स्कन्दक सुत्त २।३।६

४७ भारतीय सस्कृति और उसका इतिहास, पृ० १६२

बालकों द्वारा त्रास

सिद्धार्थपुर से भगवान् वैशाली पधारे। नगर के बाहर भगवान् को ध्यान-मुद्रा में देखकर अबोध बालकों ने उन्हें पिशाच समझा और अनेक प्रकार की यातनाएँ दीं। सहसा उस मार्ग से राजा सिद्धार्थ के स्नेही मित्र शंख नृपति निकले। उन्होंने उन उपद्रवी बालकों को हटाया और स्वयं प्रभु को वन्दना कर आगे बढे।[४८]

घोर अभिग्रह

मेढियग्राम से भगवान् कौशाम्बी पधारे और पौष-कृष्णा प्रतिपदा के दिन एक घोर अभिग्रह ग्रहण किया।[१]

'द्रव्य से—उडद के बाकुले हो, शूर्प के कोने में हो, क्षेत्र से—दाता का एक पैर देहली के अन्दर व एक बाहर हो, काल से—भिक्षाचरी की अतिक्रान्तवेला हो, भाव से—राजकन्या हो, दासत्व प्राप्त हो, शृखला-बद्ध हो, सिर से मुण्डित हो, तीन दिन की उपोसित हो, ऐसे संयोग में मुझे भिक्षा लेना है अन्यथा छह मास तक मुझे भिक्षा नहीं लेना है।"[२]

---

४८ (क) आव० निर्युक्ति ३७७

(ख) विशेपा० भाष्य १९२९

(ग) आव० चूर्णि २९९

(घ) महावीर चरियं ७।२२४।१

१ कोसबीए सताणीउओ अभिग्गहो पोसबहुलपाडिवए।

—आव० निर्युक्ति ४०२

(ख) विशेषावश्यक भाष्य १९५४

२ (क) सामी य इम एतारूव अभिग्गह अभिगेण्हति, चउव्विह दव्वतो कुमासे सुप्पकोणेण, खित्तओ एलुय विक्खभइत्ता, कालओ नियत्तेसु भिक्खायरेसु भावतो जदि रायधूया दासत्तण पत्ताणियलबद्धा मुडियसिरा रोममाणी अट्ठभत्तिया एव कप्पति, सेस ण कप्पति, कालो य पोसबहुल पाडिवओ। एव अभिग्गह घेत्तुण कोसबीए अच्छति।

—आवश्यक चूर्णि ३१६-३१७

(ख) आव० मलय० वृत्ति २९४-२९५

बौद्ध साहित्य मे भी आजीवको के अब्रह्म सेवन का उल्लेख है।[४५] मज्झिम-निकाय मे निग्गण्ठ को ब्रह्मचर्यवास मे और आजीवक को अब्रह्मचर्यवास मे गिना है।[४६] गोशालक कहते थे, कि तीन अवस्थाएँ होती है (१) बद्ध, (२) मुक्त, (३) और न बद्ध न मुक्त, वे स्वय को मुक्त, कर्मलेप से परे मानते है। उनका मन्तव्य था कि मुक्त पुरुष स्त्री-सहवास करे तो उसे भय नही है। ये विचार भले ही आलोचक सम्प्रदाय के हो पर निराधार नही है। इतिहासविद् डाक्टर सत्यकेतु ने भी गोशालक के भगवान् महावीर से होने वाले तीन मतभेदो मे एक स्त्री-सहवास बताया है।[४७] इससे भी स्पष्ट है कि आजीवको को जैन साहित्य मे जो अब्रह्म का पोषक बताया है वह आक्षेप मात्र नही है। कोई भी सम्प्रदाय ब्रह्मचर्य को सिद्धान्त के रूप मे मान्यता दे ही यह कोई नियम नही है। भारतवर्ष मे ऐसे अनेक सम्प्रदाय रहे है जो भोग और त्याग दोनो को महत्व देते रहे है।

इस प्रकार गोशालक के आजीवक मत के सम्बन्ध मे जो सामग्री उपलब्ध होती है, उसके आधार पर हम यही निर्णय कर सकते है कि वह प्रारम्भ मे भगवान महावीर का शिष्य बना, भगवान के उत्कट तप व ध्यान-योग से प्रभावित हुआ, उनकी दिव्य विभूतियो से आकृष्ट हुआ, फिर स्वय उन सिद्धियो को प्राप्त करने के लिए प्रयत्नशील हुआ, तेजोलब्धि तथा अष्टाग-निमित्त जैसी सिद्धिया पाकर वह गर्व से दीप्त हो गया। उसका प्रभाव समाज मे फैला, जिसका लाभ उठाकर वह सामान्य भिक्षुक अपने आपको महावीर के समान तीर्थंकर के रूप मे ख्यापित करने लगा। वह नियतिवाद का कट्टर समर्थक था, यह भी कई घटनाओ से स्पष्ट हो जाता है।

इस वर्ष के पश्चात् वह भगवान से दूर जाकर फिर उनके तीर्थंकर काल के सोलहवे वर्ष मे पुन उनके सपर्क मे सीधा आता है।

(ख) उत्तर हिन्दुस्तानमा जैनधर्म पृ० ५८ से ६१ ले चीमनलाल जयचन्द शाह, भारतीय विद्या खण्ड २, पृ० २०१-१०, खण्ड० ३, पृ० ४७-५६
Ajivika Sect—A New Inter Pretation

४५ Ajivikas, Vol I, मज्झिमनिकाय भाग १, पृ० ५१४ Encyclopaedia of Religion and Ethics, Dr Hoernle p 261

४६ मज्झिम निकाय स्कन्दक सुत्त २।३।६

४७ भारतीय सस्कृति और उसका इतिहास, पृ० १६३

बालकों द्वारा त्रास

सिद्धार्थपुर से भगवान् वैशाली पधारे। नगर के बाहर भगवान् को ध्यान-मुद्रा मे देखकर अबोध बालकों ने उन्हे पिशाच समझा और अनेक प्रकार की यातनाएँ दी। सहसा उस मार्ग से राजा सिद्धार्थ के स्नेही मित्र शख नृपति निकले। उन्होने उन उपद्रवी बालको को हटाया और स्वय प्रभु को वन्दना कर आगे बढे।[४८]

घोर अभिग्रह

मेढियग्राम से भगवान् कौशाम्बी पधारे और पौष-कृष्णा प्रतिपदा के दिन एक घोर अभिग्रह ग्रहण किया।[१]

'द्रव्य से—उडद के बाकुले हो, सूर्प के कोने मे हो, क्षेत्र से—दाता का एक पैर देहली के अन्दर व एक बाहर हो, काल से—भिक्षाचरी की अति-क्रान्तबेला हो, भाव से—राजकन्या हो, दासत्व प्राप्त हो, शृखला-बद्ध हो, सिर से मुण्डित हो, तीन दिन की उपोसित हो, ऐसे सयोग मे मुझे भिक्षा लेना है अन्यथा छह मास तक मुझे भिक्षा नही लेना है।"[२]

---

४८ (क) आव० निर्युक्ति ३७७

(ख) विशेषा० भाष्य १९२६

(ग) आव० चूर्णि २९९

(घ) महावीर चरिय ७।२२४।१

१ कोसबीए सताणीउओ अभिग्गहो पोसबहुलपाडिवए।

—आव० निर्युक्ति ४०२

(ख) विशेषावश्यक भाष्य १९५४

२ (क) सामी य इम एतारूव अभिग्गह अभिगेण्हति, चउव्विह् दव्वतो कुमासे सुप्पकोणेण, खित्तओ एलुय विक्खभइत्ता, कालओ नियत्तेसु भिक्खायरेसु भावत्तो जदि रायधूया दासत्तण पत्ताणियलबद्धा मुडियसिरा रोयमाणी अट्ठभत्तिया एव कप्पति, सेस ण कप्पति, कालो य पोसबहुल पाडिवओ। एव अभिग्गह् घेत्तुण कोसबीए अच्छति।

—आवश्यक चूर्णि ३१६-३१७

(ख) आव० मलय० वृत्ति २९४-२९५

इस प्रकार कठोरतम प्रतिज्ञा को स्वीकार करके महावीर प्रतिदिन भिक्षा के लिये कौशाम्बी मे पर्यटन करते। उच्च अट्टालिकाओ से लेकर, गरीबो की झोपडियो तक पधारते। भावुक भक्त भिक्षा देने के लिए उत्सुक होते, पर भगवान् विना कुछ लिए लौट आते। जन जन के अन्तर्मानस मे एक प्रश्न कचोट रहा था कि—"इन्हे क्या चाहिए ?"

एक दिन भगवान् कौशाम्बी के अमात्य 'सुगुप्त' के घर पधारे। अमात्य पत्नी 'नन्दा' जो कि उपासिका थी, बडी श्रद्धा से भिक्षा देने को आयी, पर जब उसके वहाँ से विना कुछ लिए लौटे तो उसका मन खिन्न हो गया। वह जलरहित मीन की तरह छट-पटाने लगी। अपने भाग्य की भर्त्सना करने लगी। परिचारिकाओ ने कहा—आप इतनी क्यो घबराती है। देवार्य तो आज ही नही चार-चार मास से बिना कुछ लिए ही इसी तरह लौट जाते है। जब उसने यह बात सुनी तो वह और अधिक चिन्तित हो गई। उसने अमात्य सुगुप्त से नम्र निवेदन किया कि "आप कैसे महामत्री है कि चार मास पूर्ण हो गये है, भगवान श्री महावीर को भिक्षा उपलब्ध नही हो रही है। उनका क्या अभिग्रह है, पता नही लगा पाये है। यह बुद्धिमानी फिर क्या काम आयेगी।"

अमात्य को अपनी त्रुटि का अनुभव हुआ। शीघ्र ही अन्वेषण का आश्वासन दिया। प्रस्तुत सलाप विजया प्रतिहारी ने सुन लिया, उसने महारानी मृगावती से निवेदन किया और मृगावती ने सम्राट् शतानिक से। सम्राट् और सुगुप्त नामक अमात्य ने अत्यधिक प्रयास किया, तब राजा ने प्रजा को भी नियमोपनियम का परिचय कराकर प्रभु का अभिग्रह पूर्ण करने की सूचना दी, परन्तु भगवान का अभिग्रह पूर्ण नही हुआ। पाँच मास और पच्चीस दिन व्यतीत हो जाने पर भी उनकी मुखमुद्रा उसी प्रकार तेजोदीप्त थी।[3]

एक दिन अपने नियमानुसार कौशाम्बी मे परिभ्रमण करते हुए भगवान् धन्नाश्रेष्ठी के द्वार पर पहुँचे। राजकुमारी चन्दना सूप मे उडद के

(ग) आव० हारि० वृत्ति २२२

(घ) महावीर चरिय (नेमिचन्द्र) १२५१-१२५३

३ (क) आवश्यक चूर्णि ३१७

(ख) आव० मलय० वृत्ति० २९५

(ग) आव० हारिभद्रीया० २२३

(घ) महावीर चरिय १२६०

बाकुले लिए हुए तीन दिन की भूखी-प्यासी द्वार के बीच वही पिता के आगमन की प्रतीक्षा कर रही थी। दूर से ही भगवान् महावीर को आते देखकर उसका मन मयूर नाच उठा। हृदयकमल खिल उठा। हथकडियाँ और बेडिया झनझना उठी, वह अपलक दृष्टि से प्रभु को अपनी ओर आते हुए देखकर सोचने लगी, मेरे धन्य भाग्य है कि भगवान् मेरे यहा पधार रहे है, उडद जैसी तुच्छ वस्तु भगवान् को किस प्रकार दूँगी—यह सोचते ही चदना की आखो से आसू आ गये। भगवान् का अभिग्रह पूर्ण हो चुका था। भगवान् ने अपना करपात्र चन्दना के सामने किया। अश्रु भीनी आँखो से और हर्षातिरेक से चन्दनबाला ने महावीर को उडद के सूखे बाकुले बहराये। महावीर ने वहाँ पारणा किया।[४] आकाश मे अहोदान-अहोदान की देव दुन्दुभि बज उठी। पाँच दिव्य प्रकट हुए। साढे बारह करोड स्वर्ण-मुद्राओ की वृष्टि हुई। चन्दनबाला का सौन्दर्य भी अतिशय निखर उठा। उसकी लोह शृ खला स्वर्ण आभूपणो मे परिवर्तित हो गई।

आवश्यक चूर्णि, आवश्यक हरिभद्रीया वृत्ति, आवश्यक मलयगिरि वृत्ति, महावीर चरिय, चउप्पन्न महापुरुष चरिय, त्रिषष्टिशलाकापुरुष चरित्र आदि किसी भी ग्रन्थ मे भगवान् का आसू न देखकर लौट जाना, लौटने पर चन्दनबाला के आँसू आना, उसके पश्चात् पुन भगवान् का

---

४ (क) ताहे कुमासा दिट्ठा, ते दाउ लोहारघर गतो, जा णियलाणि छिदावेमि ताहे सा हत्थी जथा कूल सभरितुमारद्धा एलुग विक्खभतित्ता तेहि पुरतो कएहि हिदयब्भतरतो रोवति, सामी य अतिगतो, ताए चितिय एत सामिस्स देयि मम एत अधम्मफल, भणति-भगव ! कप्पति ? सामिणा पाणी पसारितो।

—आव० चूर्णि ३१९

(ख) तयणतर अप्पडिमरूव भयवत दट्ठूण अच्चतमसार कुम्मासभोयण च निरिक्खिऊण दूरमजुत्तमेय इमस्स महामुणिस्सत्ति विभावमाणीए सोगभर-गग्गरगिराए गलतबाहप्पवाहाउललोयणाए भणियमणाए-भयव ! जइवि अणुचियमेय तहावि मय अधन्नए अणुग्गहट्ठ गिण्हह कुम्मास भोयणति भयवयावि पसारिय पाणिपुत्त।

—महावीर चरिय ७।२४।६

(ग) त्रिपष्टि० १०।५७३-५७९

पधारना आदि वर्णन नही है । तीर्थंकर महावीर[5] आगम और त्रिपिटक एक अनुशीलन[6] आदि अनेक आधुनिक ग्रन्थो मे आसू न देखकर लौटने और पुन आने का वर्णन किया है, हमारी दृष्टि से भी आधुनिक ग्रन्थो का यह वर्णन बाद के लेखको की कल्पना है जो उचित नही है, इसका मूल स्रोत कहा रहा है यह चिन्तनीय है ।

चन्दना का परिचय

उत्तर पुराण मे चन्दना का सक्षेप मे वर्णन आया है किन्तु वह श्वेताम्बर ग्रन्थो की तरह नही है, माता-पिता के नाम मे और घटना मे अन्तर है । उत्तरपुराण मे चन्दना को चेटक की पुत्री कहा है[7] जबकि आवश्यक चूर्णि आदि सभी श्वेताम्बर ग्रन्थो मे उसे दधिवाहन की पुत्री बताया है।[8] कौशाम्बी के राजा शतानीक ने यकायक चम्पा पर आक्रमण कर दिया। दधिवाहन उसके भय से भाग गया। शतानीक के सैनिक अपनी इच्छा के अनुसार चम्पा को लूटने लगे, एक सैनिक महारानी धारणी और चन्दना को लेकर जगल की ओर भागा, सैनिक ने भोग की अभ्यर्थना की तो धारणी ने अपना बलिदान देकर अपने शील की रक्षा की । अन्त मे धन्ना सेठ ने चन्दना को खरीदी, और पुत्री की तरह उसका पालन करने लगा। मूला सेठाणी ने सपत्नी के भय से उसे मुडित कर हाथो मे हथकडियाँ और पैरो मे बेडियाँ डाल दी और उसने उसी स्थिति मे भगवान् को उडद के बाकुले प्रदान किये, पर उत्तरपुराण के अनुसार एक वासना से अभिभूत हुआ विद्याधर चन्दना को एक भयानक जगल मे ले जाता है किन्तु अपनी पत्नी के भय से उसी जगल मे उसे छोड देता है,[9] वह एक भील को प्राप्त होती है और वह ऋषभ-

---

५ तीर्थंकर महावीर पृ० २३९

६ आगम और त्रिपिटक एक अनुशीलन पृ० २०१

७ कदाचिच्चेटकाख्यस्य नृपतेश्चन्दनाभिधाम् ।
सुता वीक्ष्य वनक्रीडासक्ता कामशरातुर ।

—उत्तरपुराण ७४।३३८

८ दहिवाहणस्स रन्नो धारणी देवी, तीसे धूया वसुमती ।

—आवश्यक चूर्णि ३१८

९ कृतोपायो गृहीत्वैना कश्चिद् गच्छन्नभश्चर ।
पश्चाद् भीत्वा स्वभार्याया महाटव्या व्यसर्जयत् ।

—उत्तरपुराण ७४।३३९

दत्त को बेचता है। ऋषभदत्त की पत्नी सुभद्रा विचारती है कि इसका सम्बन्ध कही सेठ से न हो जाय, इस शका से वह चन्दना को खाने के लिए मिट्टी के शकोरे मे काजी मिला हुआ कोदो का भात देती थी और क्रोधवश सदा उसे साकल से बाँधे रखती थी।[10] भगवान् महावीर वहाँ पधारे। नगर मे प्रवेश करते हुए देखकर वह स्वागतार्थ सामने जाने के लिए प्रस्तुत हुई। भक्ति के प्रभाव से उसके सभी बधन टूट गये, उसके काले-कजराले केश चमकने लगे, उसके वस्त्र-आभूषण सुन्दर हो गये, वह नव प्रकार के पुण्य की स्वामिनी बन गई, शील के माहात्म्य से उसका मिट्टी का सकोरा स्वर्णपात्र हो गया, कोदो का भात शाली चावलो का भात हो गया। उस बुद्धिमती ने विधिपूर्वक भगवान् को आहार दिया।[11]

श्वेताम्बर ग्रन्थो की तरह उत्तरपुराण मे भगवान् के घोर अभिग्रह का उल्लेख नही है। श्वेताम्बर ग्रन्थो मे आहारदान के पश्चात् उसके वस्त्र, हथकडिया आदि मे परिवर्तन होता है, पर उत्तरपुराणकार ने पहले ही परिवर्तन करा दिया है। उत्तरपुराण की कथा की अपेक्षा श्वेताम्बर ग्रन्थो की कथा विशेष वास्तविकता लिए हुए है।

चदनबाला का जीवन श्वेताम्बर ग्र थ – त्रिषष्टि शलाकापुरुष-चरित्र, आवश्यक चूर्णि आदि मे बडे ही विस्तार के साथ सुललित भाषा मे अकित किया गया है। पाठको को उक्त ग्र थ देखने की सूचना की जाती है।

कौशाम्बी से विहार कर भगवान् श्री महावीर सुमगल, सुच्छेत्ता, पालक, प्रभृति[12] क्षत्रो को पावन करते हुए चम्पानगरी पधारे और चातुर्मासिक तप से आत्मा को भावित करते हुए स्वातिदत्त ब्राह्मण की यज्ञशाला मे बारहवा वर्षावास व्यतीत किया।

---

१० उत्तरपुराण ७४।३४१-३४२

११ शीलमाहात्म्यसम्भूत पृथुहेमशराविका।
शाल्यन्नभाववत्कोद्रवौदन विधिवत्सुधी। —उत्तरपुराण ७४।३४३-३४७

१२ तत्तो सुमगलाए सणकुमार सुच्छेत्ताए य माहिदो।
पालग वाइलवणीय अमगल अप्पणो असिणा॥ —आव० निर्युक्ति० ४०४

(ख) विशेषा० भाष्य १९५६

(ग) आव० चूर्णि ३२०

(घ) आव० हारि० वृत्ति २२५

(ङ) आव० मलय० वृत्ति २६६

(च) महावीर चरिय (गुण०) ७।२४७

स्वातिदत्त के प्रश्न

भगवान के तप पूत जीवन से प्रभावित होकर पूर्णभद्र और मणिभद्र नाम के दो यक्ष सेवा करने के लिए आते। जिसे निहार कर स्वातिदत्त को भी यह दृढ विश्वास हो गया कि यह देवार्य अवश्य ही कोई विशिष्ट ज्ञानी है।[१३] उसने भगवान् श्री महावीर से जिज्ञासा की, आत्मा क्या है ? [४]

प्रभु ने समाधान दिया—जो 'मैं' शब्द का वाच्यार्थ है, वही आत्मा है।

स्वातिदत्त ने पुन जिज्ञासा की—आत्मा का स्वरूप और लक्षण क्या है ?

प्रभु ने समाधान दिया—वह अत्यन्त सूक्ष्म है और रूप, रस गध, स्पर्श आदि से रहित है तथा चेतना गुण से युक्त है।'

१३ (क) आव० निर्युक्ति ४-५

(ख) विशेषा० भाष्य० १९५७

१४ (क) चपा वासावासे जक्खेन्दो सातिदत्त पुच्छा य।
वागरणदुधा पदेसण पच्चक्खाणे य दुविवे तु॥

—आव० निर्युक्ति० ४०५

(ख) विशेषावश्यक भाष्य १९५७

(ग) ताहे विन्नासणनिमित्त पुच्छति को ह्यात्मा ? भगवानाह—योऽहमित्यभिमन्यते, स कीदृक् ? सूक्ष्मोऽसौ, किं तत्सूक्ष्न ? यन्न गृह्णीम ननु शब्द गधानिला किम्। न, ते इद्रियग्राह्या, तेन ग्रहणमात्मा ननु ग्राहयिता हि स। कतिविहे ण भते ! पएसणए ? कहविहे ण पच्चक्खाणे ? भगवानाह-सातिदत्ता ! दुविहे पदेसणये धम्मिय अधम्मिय च पएसणय नाम उवदेसो। पच्चक्खाणे दुविहे-मूलगुणपच्चक्खाणे य उत्तरगुणपच्चक्खाणे य। एतहिं पदेहिं सव्व तस्स उवागत।

—आव० चूर्णि ३२०-३२१

(घ) आव हारिभद्रीय वृति २२५-२२६

(ङ) आव० मलय० वत्ति० २६७

(च) महावीर चरिय ७।२४८ (गुण)

(छ) त्रिषष्टि० १०।६०५-६१३

प्रश्न उत्पन्न हुआ—सूक्ष्म क्या है ?

उत्तर दिया—जो इन्द्रियो से जाना-पहचाना न जाय ।

पुन जिज्ञासा प्रस्तुत हुई कि क्या आत्मा को शब्द, रूप, गध, और पवन के सदृश सूक्ष्म समझा जाय ? प्रभु ने स्पष्टीकरण किया—नही, ये इन्द्रिय ग्राह्य है । श्रोत्र के द्वारा शब्द नेत्र के द्वारा रूप, घ्राण के द्वारा गध, और शब्द स्पर्श के द्वारा पवन ग्राह्य है पर जो इन्द्रियग्राह्य नही हो वह सूक्ष्म है ।

प्रश्न—क्या ज्ञान का नाम ही आत्मा है ?

उत्तर—ज्ञान आत्मा का असाधारण गुण है, ज्ञान का आधार आत्म-ज्ञानी है ।

स्वातिदत्त—भगवन् ! प्रदेशन क्या है ?

महावीर—प्रदेशन का अर्थ-उपदेश होता है, वह धर्म सम्बन्धी भी हो सकता और अधर्म सम्बन्धी भी, इसलिए धार्मिक प्रदेशन भी है और अधार्मिक प्रदेशन भी ।

स्वातिदत्त—प्रत्याख्यान किसे कहते हैं ?

महावीर—प्रत्याख्यान का अर्थ निषेध है, वह दो प्रकार है, मूलगुण-प्रत्याख्यान और उत्तरगुण प्रत्याख्यान । आत्मा के दया, सत्य आदि मूलगुणो की रक्षा तथा हिंसा, असत्य आदि वैभाविक प्रवृत्तियो के परित्याग को मूलगुण-प्रत्याख्यान कहते है और मूलगुणो के सहायक सदाचार के विरुद्ध आचरणो के त्याग का नाम उत्तरगुण प्रत्याख्यान है ।

इस प्रकार की जिज्ञासाओ के समाधान से उसका मन अत्यधिक आह्लादित हुआ ।

ग्वाले द्वारा कानों में कीलें

वर्षावास पूर्ण होने पर भगवान् जभिय ग्राम से मिढिय ग्राम' होते हुए 'छम्माणि' पधारे और गाव के बाहर ध्यानमुद्रा मे अवस्थित हुए ।[1] साध्य-

---

१ आव० निर्युक्ति० ४०७ (ख) विशे० भाष्य १९५९

वेला मे एक ग्वाला बैलो को लेकर वहा आया। बैलो को महावीर के पास रखकर वह कही कार्यहेतु गया। बैल चरते-चरते आसपास की झाडियो मे छिप गए। ग्वाला लौटकर आया, बैल दिखाई नही दिए तो महावीर मे पूछा।[२] भगवान् मौन थे। ग्वाला क्रोध मे लाल-पीला हो उठा—'अच्छा बोलता भी नही है ! बताता भी नही है ! लगता है जैसे कुछ सुनाई नही देता हो, कानो मे तेल डालकर खडा है अभी तेरे कान खोले देता हूँ', यह कहकर उसने महावीर के कानो मे कासे की तीक्ष्ण शलाकाए डाल दी और उन शलाकाओ को कोई न देख ले अत उनका बाह्य भाग छेद दिया।

भगवान् को अत्यधिक वेदना हो रही थी तथापि वे शान्त एव प्रसन्न थे। उनके अन्तर्मानस मे किञ्चित् भी खिन्नता नही थी। वे चिन्तन कर रहे थे कि त्रिपृष्ठ वासुदेव के भव मे हसते हुए मैंने जो शय्यापालक के कानो म गर्म शीशा उडेलवाया था, उसी घोर कर्म का यह प्रतिफल मुझे प्राप्त हुआ है।

वहा से विहार कर भगवान् मध्यम पावा पधारे। भिक्षा के लिए परिभ्रमण करते हुए सिद्धार्थ श्रेष्ठा के घर पर पहुँचे। उस समय सिद्धार्थ श्रेष्ठी वैद्य-प्रवर खरक से वार्तालाप कर रहा था। प्रतिभा सम्पन्न वैद्य ने सर्व लक्षण सम्पन्न महावीर के सुन्दर व सुडौल तन को देखकर कहा कि इनके 'शरीर मे शल्य है। उसे निकालना हमारा कर्तव्य है।" वैद्य और श्रेष्ठी के द्वारा अभ्यर्थना करने पर भी भगवान् वहाँ रुके नही। वे वहाँ से चल दिये और गांव के बाहर आकर ध्यानस्थ हो गये।

---

२ (क) ताहे सो आगतो पुच्छति—देवज्जगा ! कहिं वइल्ला ? भगव मोणेण अच्छति ताहे सो परिकुवितो भगवतो कन्नेसु काससलागाओ छुभति, एगा इमेण कन्नेण एगा इमेण, ताहे पत्थरेण आहणति जाव दोवि मिलिताओ ताहे मूलभग्गाओ करेति मा कोति उक्खणिहित्ति, केति भणति-एगा चेव जाव इतरेण कन्नेण निग्गया ताहे अ भग्गा, कन्नेसु तउ तत्त गोवस्स कत तिविट्ठुणा रन्ना। कन्नेसु वद्धमाणस्स तेण छूढा कडसलागा।

—आव० चूर्णि २२१-२२२

(ख) आवश्यक हरिभद्रीय० २२६

(ग) आवश्यक मलय० वृत्ति० २६७

(घ) महावीर चरिय (नेमिचन्द्र) १३३५-१३४०

खरक वैद्य और श्रेष्ठी औषधि आदि सामग्री लेकर भगवान् को देखते-देखते उद्यान मे गये। वहाँ भगवान् ध्यानस्थ थे। उन्होने कानो मे से शलाकाएँ निकालने के पूर्व भगवान् के शरीर का तैल से मर्दन किया, और सडासी से पकडकर शलाकाएँ निकाली। कानो से रक्त की धाराए प्रवाहित हो गई। कहा जाता है कि उस अतीव भयकर वेदना से भगवान के मुह से एक चीत्कार निकल पडी जिससे सारा उद्यान व देवकुल सभ्रमित हो गया। वैद्य ने शीघ्र ही सरोहण औषधि से रक्त को बन्द कर दिया और घाव पर लगा दी। प्रभु को नमन व क्षमायाचना कर वैद्य और श्रेष्ठी अपने स्थान पर चले आये।[४]

साधना-काल में सहिष्णुता

इस प्रकार भगवान् को साधना-काल मे अनेक रोम-हर्षक कष्टो का सामना करना पडा। ताडना, तर्जना, अपमान और उत्पीडन ने प्राय पद-पद पर प्रभु की कठोर परीक्षा ली। उन सभी उपसर्गों को तीन भागो मे विभक्त करे तो जघन्य उपसर्गों मे कटपूतना का उपसर्ग महान् था। मध्यम उपसर्गों मे सगम का कालचक्र उपसर्ग विशिष्ट था और उत्कृष्ट उपसर्गों मे कानो से शलाकाएँ निकालना अत्यन्त उत्कृष्ट था।[५]

---

४ (क) तासु य अच्छिज्जतीसु भगवता आरसित, ते य मणूसे उप्पाडेत्ता उतिट्ठो, तत्थ महाभेरव उज्जाण जात देवउल च, पच्छा सरोहण ओसह दिन्न जेण ताहे चेव पउणो ताहे वदित्ता खामेत्ता य गता।

—आव० चूर्णि० ३२२

(ख) आव० हारिभद्रीय वृत्ति ३२६-३२७

(ग) आवश्यक मलय० २९७-२९८

(घ) महावीर चरिय (नेमिचन्द्र) १३४३-१३५१

(ङ) महावीर चरिय (गुणचन्द्र) ७।२४८-४९

(च) चउप्पन्न महापुरिस चरिय २९८-२९९

(छ) त्रिपष्टि० १०।४।६२७-६४६

आश्चर्य की बात है कि भगवान् का पहला उपसग भी कर्मारग्राम मे एक ग्वाले से प्रारंभ हुआ था, यह अन्तिम उपसर्ग भी एक ग्वाले के द्वारा उपस्थित किया गया। ग्वाले की अशुभ भावना होने से वह सातवी नरक मे गया और खरक वैद्य व सिद्धार्थ को शुभ भावना होने से देवलोक मे गये।[६]

भगवान् को साधना काल मे अनेक उपसर्ग आये, पर वे उपसर्गों मे सर्वदा शान्त रहे, कभी भी उन्होने रोष और द्वेष नही किया, विरोधियो के प्रति भी उनके हृदय मे स्नेह का सागर उमडता रहा। वर्षा मे, सर्दी मे, धूप मे, छाया मे, आधी और तूफानो मे भी उनका साधना-दीप जगमगाता रहा। देव, दानव, मानव और पशुओ के द्वारा भीषण कष्ट देने पर भी अदीनभाव से, अव्यथित मन से, अम्लान चित्त से, मन, वचन और काया को वश मे रखते हुए सब कुछ सहन किया। वे वीर सेनानी की भाँति निरन्तर आगे बढते रहे, कभी पीछे कदम नही रखा।[७]

---

५ (क) अहवा जहन्नगाण उवरि कडपूयणासीत, मज्झियाण कालचक्क, उक्कोसगगण उवरि सल्लुद्धरण।

—आवश्यक चूर्णि पृ० ३२२

(ख) महावीर चरिय ७।२५०

६ एव गोवेण आरद्धा उवसग्गा गोवेण चेव निट्ठिता। गोवो सत्तमि गतो, खरतो य सिद्धतो य दियलोग तिव्वमपि उदीरत तावि सुद्धभावा।

—आव० चूर्णि० पृ० ३२२

७ (क) एव विहरमाणस्स जे केइ उवसग्गा समुप्पज्जिसु दिव्वा वा माणुसा वा तेरिच्छिया वा, ते सव्वे उवसग्गे समुप्पन्ने समाणे अणाइले अव्वहिए अदीण-माणसे तिविहमणवयणकायगुत्ते सम्म सहइ खमइ तितिक्खइ अहियासेइ।

—आचाराग २।१५।३७

(ख) सूरो सगामसीसे वा, सवुडे तत्थ से महावीरे।
पडिसेवमाणे फरुसाइ अचले भगव रीइत्था॥

—आचाराग १।९।३।१३

महावीर का तप

निर्युक्तिकार आचार्य भद्रबाहु का मन्तव्य है कि अन्य तीर्थंकरो की अपेक्षा महावीर का तप कर्म अधिक उग्र था।[८] जैसे समुद्रो मे स्वयभूरमण श्रेष्ठ है, रसो मे इक्षुरस श्रेष्ठ है, उसी प्रकार तप-उपधान मे मुनि वर्धमान जयवन्त श्रेष्ठ है।[९]

भगवान् ने बारह वर्ष और तेरह पक्ष की लम्बी अवधि मे केवल तीन सौ उनपचास दिन आहार ग्रहण किया। शेष दिन निर्जल और निराहार रहे।[१०]

सक्षेप मे भगवान् का छद्मस्थ काल का तप इस प्रकार है—(यह समस्त तप जलरहित—अपानक था।)[११]

एक छ मासी तप।
एक पाच दिन न्यून छ मासी।
नौ चातुर्मासिक।
दो त्रिमासिक।
दो सार्धद्विमासिक।
छह द्विमासिक।
दो सार्धमासिक।

---

८ उग्ग च तवोकम्म विसेसओ वद्धमाणस्स।

—आवश्यक निर्युक्ति

९ सूत्रकृताग १।६।२०

१० (क) तिण्णि सते दिवसाण अउणापण्णे तु पारणाकालो।
उक्कुडुअणिसेज्जाण ठिलपडिमाण सते बहुए॥

—आव० निर्यु० ४१७

(ख) विशेषा० भाष्य १९६९

११ (क) आवश्यक निर्युक्ति ४०९-४१६
(ख) विशेषा० भाष्य १९६१ से १९६८
(ग) आव० हारिभद्रीय वृत्ति २२७-२२८
(घ) आवश्य० मल० वृत्ति २९८-२९९
(ङ) महावीर चरिय (गुणचन्द्र) ७।२५०
(च) त्रिषष्टि० १०।४।६५२-६५६

वारह मासिक ।
बहत्तर पाक्षिक ।
एक भद्रप्रतिमा (दो दिन) ।
एक महाभद्रप्रतिमा (चार दिन) ।
एक सर्वतोभद्रप्रतिमा (दस दिन) ।
दो सौ उनतीस छट्ठभक्त ।
वारह अष्टभक्त ।
तीन सौ उनपचास दिन पारणे के ।
एक दिन दीक्षा का ।

आचाराग के अनुसार दशमभक्त आदि तपस्याएँ भी भगवान् ने की थी ।[१२]

कुल मिलाकर भगवान महावीर ने अपने साधक जीवन के ४५१५ दिनो मे केवल ३४६ दिन आहार ग्रहण किया तथा ४१६६ दिन निर्जल तपश्चरण किया ।

अनेक उपमाये

कल्पसूत्र मे भगवान् के जीवन की विशिष्टताये अनेक उपमाएँ देकर चित्रित की गई है । वे इस प्रकार है[१३] –

(१) कास्यपात्र की तरह वे निर्लेप थे ।
(२) शख की तरह निरजन रागरहित थे ।
(३) जीव की तरह उनका अप्रतिहत गति थी ।
(४) वे आकाश की तरह आलम्बन रहित थे ।

---

१२ छट्ठेण एगया भुज्जे अदुवा अट्ठमेण दसमेण ।
दुवालसमेण एगया भुजे पेहमाणे समाहिअपडिन्ने ।

—आचाराग १।६।४।७

१३ (क) कल्पसूत्र० ११७
(ख) कसे सखे जीवे, गगणे वायू य सरयसलिले य ।
पुक्खरपत्ते कुम्मे, विहगे खग्गे य भारडे ।।
कुजर वसभे सीहे णगराया चेव सागरमखोभे ।
चदे सूरे कणगे वसुधरा चेव हूयवहे ।।

—कल्पसूत्र ११८

(५) पवन की तरह अप्रतिबद्ध थे ।
(६) शरदऋतु के स्वच्छ जल की तरह निर्मल थे ।
(७) कमलपत्र की तरह भोग से निर्लेप थे ।
(८) कच्छप के समान जितेन्द्रिय थे ।
(९) गेंडे की तरह राग द्वेष से रहित-एकाकी थे ।
(१०) पक्षी की तरह अनियत विहारी थे ।
(११) भारण्ड पक्षी की तरह अप्रमत्त थे ।
(१२) श्रेष्ठ हाथी के समान शूर थे ।
(१३) वृषभ के समान पराक्रमी थे ।
(१४) सिंह की तरह दुर्द्धर्ष थे ।
(१५) सुमेरु की तरह परीषहो को सहन करने मे अचल थे ।
(१६) सागर की तरह गभीर थे ।
(१७) चन्द्रवत् सौम्य थे ।
(१८) सूर्यवत् तेजस्वी थे ।
(१९) स्वर्ण की तरह कान्तिमान थे ।
(२०) पृथ्वी के समान सहिष्णु थे ।
(२१) अग्नि की तरह जाज्वल्यमान तेजस्वी थे ।

कैवल्यप्राप्ति

इस प्रकार नाना क्षेत्रो मे विचरण करते अनुपम ज्ञान अनुपम दर्शन, अनुपम सयम, अनुपम निर्दोष वसति, अनुपम विहार, अनुपम वीर्य, अनुपम सरलता, अनुपम मृदुता, अनुपम अपरिग्रहभाव, अनुपम क्षमा, अनुपम अलोभ, अनुपम गुप्ति, अनुपम प्रसन्नता, अनुपम सत्य, सयम, तप आदि सद्गुणो से आत्मा को भावित करते हुए भगवान महावीर को साढे बारह वर्ष पूर्ण हो गये । भगवान् मध्यम पावा से प्रस्थान कर जभियग्राम के निकट, ऋजुवालका नदी के किनारे जीर्ण उद्यान के पास श्यामाक नामक गाथापति के क्षेत्र मे सघन शाल के वृक्ष के नीचे गोदोहिका आसन से प्रभु आतापना ले रहे थे । वैशाखमास था, शुक्ला दशमी के दिन का अन्तिम प्रहर था । उस समय छट्ठभक्त की निर्जल तपस्या चल रही थी । आत्म-मथन चरम सीमा पर पहुँच रहा था, क्षपक श्रेणी का आरोहण कर, शुक्ल-ध्यान के द्वितीय चरण

मे मोहनीय, ज्ञानावरण, दर्शनावरण, और अन्तराय इन चार घाती कर्मों का क्षय किया और उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्र के योग मे केवलज्ञान, केवलदर्शन प्रकट हुआ।[१] भगवान् अब जिन और अरिहन्त हो गये। सर्वज्ञ और सर्वदर्शी हो गये। भगवान महावीर को कैवल्य प्राप्त होते ही एक बार अपूर्व प्रकाश से सारा ससार जगमगा उठा। दिशाये शान्त एव विशुद्ध हो गई थी, मन्द-मन्द सुखकर पवन चलने लगी, देवताओ के आसन चलित हुए और वे दिव्य देव दु दुभि का गभीर घोप करते हुए भगवान् का कैवल्य-महोत्सव मनाने पृथ्वी पर आये।[२]

---

१ (क) आचाराग २।१५।३८

(ख) कल्पसूत्र १२०

(ग) एव तवोगुणरतो अणुपुव्वेण मुणी विहरमाणो ।
घोर परीसहचमु अधियासित्ता महावीरो ।
उप्पण्णम्मि अणते णट्ठम्मि य छातुमत्थिए णाणे ।

—आव० निर्युक्ति ४२०-२१

(घ) विशेपावश्यक भाष्य १९७२-१९७३

(ड) उत्तरपुराण ७४।३४८-३५५

(च) त्रिपष्टि० १०।५।३-४

२ विज्ञायासनकपेन केवलज्ञानमीशितु ।
इन्द्रा सह सुरैस्तत्र समाजग्मु प्रमोदिन ॥
केऽप्युत्पेतु केऽपि पेतुर्ननतु केऽपि केऽपि च।
जहसु केऽपि च जगुर्वू च्चक्रु केऽपि सिहवत् ॥
स्वामिन केवलोत्पत्त्या हृष्टात्मानोऽपरेऽपि हि ।
चतुर्विधा दिविपदो विविध विचिचेष्टिरे ॥

—त्रिपष्टि० १०।५।५ से ८

३
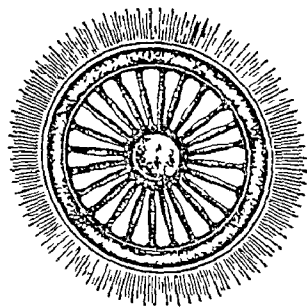
तीर्थंकर जीवन

[गणधरवाद]

इन्द्रभूति का समाधान
(आत्मा का स्वतंत्र अस्तित्व)
अग्निभूति का समाधान
(कर्म का अस्तित्व)
वायुभूति का समाधान
(आत्मा और शरीर का भेद)
व्यक्त का समाधान
(शून्यवाद का निरास)
सुधर्मा का समाधान
(इहलोक और परलोक की विचित्रता)
मण्डित का समाधान
(बन्ध और मोक्ष)
मौर्यपुत्र का समाधान
(देवो का अस्तित्व)
अकम्पित का समाधान
(नारको का अस्तित्व)
अचलभ्राता का समाधान
(पुण्य-पाप का सद्भाव)
मेतार्य का समाधान
(परलोक का सद्भाव)
प्रभास का समाधान
(निर्वाण की सिद्धि)

गणधरों के साथ दार्शनिक चर्चाएँ

प्रथम प्रवचन

यह एक शाश्वत नियम है कि जिस स्थान पर केवलज्ञान की उपलब्धि होती है, वहाँ पर तीर्थंकर एक मुहूर्त तक ठहरते है और धर्मदेशना भी करते है। भगवान् भी एक मुहूर्त तक वहाँ ठहरे।[1]

भगवान् को केवलज्ञान उत्पन्न होते ही देवगण आये, समवसरण की रचना की। पर, देवता सर्वविरति के योग्य न होने के कारण भगवान् ने एक क्षण उपदेश दिया।[2] वहाँ पर मनुष्य की उपस्थिति नही थी, अत किसी ने भी विरतिरूप चारित्रधर्म स्वीकार नही किया। इस प्रकार की घटना जैनागमो मे एक आश्चर्य के रूप मे अकित की गई है।[3]

महावीर चरिय मे आचार्य गुणचन्द्र ने प्रथम परिषद् को अभावित परिषद् मानते हुए भी उस परिषद् मे मानव की उपस्थिति मानी है।[4]

---

१ यत्र ज्ञानमुत्पद्यते तत्र जघन्यतोऽपि मुहूर्त्तमात्रमवस्थातव्य देवकृता च पूजा प्रतीच्छनीया धर्म्मदेशना च कर्तव्येति।

—आव० मलय० वृत्ति ३००

२ जइविहु एरिसनाणेण जिणवरो मुणइ जोग्गयारहिय।
कप्पोत्ति तहवि साहइ खणमेत्त धम्मपरमत्थ॥

—महावीर चरिय ५।७ पृ० २५१।१

(ख) न सर्वविरतेर्ह कोऽप्यत्रेति विदन्नपि।
कल्प इत्यकरोत्तत्र निषण्णो देशना विभु॥

—त्रिषष्टि० १०।५।१०

३ (क) स्थानाग सू० ७७७
(ख) प्रवचनसारोद्धार, सटीक उत्तरभाग

४ महावीर चरिय ७। गा० ४,४, पृ० २५१

आचार्य शीलाक ने अभावित परिषद् का उल्लेख ही नही किया है। उन्होने ऋजुबालका नदी के तट पर भगवान् महावीर की प्रथम देशना मे ही इन्द्रभूति आदि ग्यारह पण्डितो का अपने शिष्यो सहित उपस्थित होना और शकाओ का समाधान होने पर, भगवान के चरणो मे दीक्षित होना और गणधर-पद प्राप्त करने का उल्लेख किया है।[५] पर आचार्य शीलाक का प्रस्तुत कथन आचाराग,[६] आवश्यक निर्युक्ति, और विशेषावश्यक भाष्य,[७] आदि से मेल नही खाता है।

पावा मे यज्ञ समारोह

उन दिनो मध्यम पावापुरी[८] मे सोमिल नामक धनाढ्य ब्राह्मण अपने यहाँ एक विराट् यज्ञ का आयोजन कर रहा था। उस यज्ञ मे भाग लेने के लिए भारत के जाने-माने चोटी के क्रियाकाण्डी विद्वान् और आचार्य आये हुये थे। इनमे इन्द्रभूति, अग्निभूति और वायुभूति ये तीन विद्वान् चौदह विद्याओ के पारगत थे। प्रत्येक के साथ पाँच पाँच सौ शिष्य थे। तीनो ही गौतम गोत्रीय व मगध जनपद के गोबर ग्राम के निवासी थे।

व्यक्त और सुधर्मा नाम के दो विद्वान् कोल्लाक-सन्निवेश से आये थे। व्यक्त भारद्वाज गोत्रीय थे और सुधर्मा अग्नि-वैश्यायन। इनके साथ भी पाँच-पाँच सौ छात्र थे।

उस यज्ञ मे मण्डित व मौर्यपुत्र—ये दो विद्वान् मौर्य सन्निवेश से आये थे। मडित वासिष्ठ गोत्र के एव मौर्यपुत्र काश्यप गोत्र के थे। दोनो के साथ भी तीनसौ पच्चास, तीनसौ पच्चास शिष्य थे।

अकम्पित, अचलभ्राता, मेतार्य और प्रभास नाम के चार अन्य विद्वान् भी उस सभा मे थे। जो क्रमश मिथिला के गौतम गोत्रीय, कौशल के हारित गोत्रीय, तु गिक (कौशाम्बी) के कौडिन्य गोत्रीय एव राजगृह के कौडिन्य गोत्रिय थे। ये ग्यारह विद्वान् उन सभी विद्वानो मे प्रमुख थे।

---

५ चउप्पन्न महापुरिस चरिय पृ० २९३ से ३०३

६ तओ ण समणे भगव महावीरे उप्पण्णणाणद सणघरे अप्पाण च लोग च अभिसमेक्ख पुव्व देवाण धम्ममाइक्खति, तओ पच्छा मणुस्साण।

—आचाराग २।१५।४१

[illegible]) आवश्यक निर्युक्ति ४२२

[illegible]) विशेषावश्यक भाष्य १९७४

[illegible]वा के सम्बन्ध मे विस्तृत चर्चा परिशिष्ट मे देखे।

सर्वज्ञ सर्वदर्शी भगवान् ने देखा मध्यम पावापुरी का प्रस्तुत प्रसग अपूर्व लाभ का कारण है। भारत के मूर्धन्य मनीषी विज्ञगण भी अज्ञानान्धकार मे भटक रहे है, साथ ही दूसरो को भी अज्ञानान्धकार मे ढकेल रहे हैं। ये बोध प्राप्त करेंगे तो हजारो प्राणियो को भी सत्य मार्ग पर चलने को प्रेरित कर सकते ह।

भगवान् महावीर मध्यम पावापुरी मे पधारे। देवताओ ने समवसरण की रचना की, विशाल मानवमेदिनी एकत्रित हुई। सुर और असुर सभी उपदेश सुनने के लिए उपस्थित हुए। महावीर की मेघ गभीर गर्जना सुनकर सभी के मन-मयूर नाच उठे। जन-जन की जिह्वा पर महावीर की सर्वज्ञता की चर्चा होने लगी। आकाशमार्ग से आते हुए देवगणो को देखकर पण्डितो ने सोचा—हमारे यज्ञ से आकृष्ट हुए देवगण आ रहे है, हजारो लाखो आखे आकाश की ओर टकटकी लगाए देखती रही, पर जब देवविमान यज्ञ-मण्डप के ऊपर से सीधे ही आगे निकल गए, तो भारी निराशा के साथ आखे नीचे झुक गई। मुख म्लान हो गया और साश्चर्य विचारने लगे—यह क्या है? क्या देवगण भी किसी की माया मे फँस गये है? या भ्रम मे पड गये है? इन्द्रभूति ने देखा यह तो उनके साथ मजाक है। देवविमानो को देखकर यज्ञमडप मे यज्ञ की महिमा के नारे लगाये थे, पर इन देवो ने तो मेरे अहकार को नष्ट कर दिया हैं। इन्द्रभूति गौतम ने आर्य सोमिल से पूछा—आर्य! आज पावापुरी मे कौन आये हे?

आर्य सोमिल —क्या आपको मालूम नही है?

इन्द्रभूति—नही।

सोमिल—क्षत्रिय कुमार वर्धमान! जिसने लगभग तेरह वर्ष पूर्व घर को छोडकर प्रव्रज्या ग्रहण की थी, अब कठोर तप के द्वारा सिद्धि प्राप्त कर अपने यज्ञ-विरोधी, वेद-विरोधी, वर्णाश्रम विरोधी सिद्धातो के प्रचार के लिए पावापुरी मे आया है। बहुत बडा आडम्बर है, देवताओ को भी उसने अपने वश मे कर लिया है।

इन्द्रभूति—अच्छा, इतना बलशाली है वर्धमान। अच्छा अभी जाकर देखता हूँ। आर्य सोमिल! मुझे लगता है कि वर्धमान ने कुछ तपस्या करके ऐन्द्रजालिक सिद्धियाँ प्राप्त की है, वह जनता को भ्रम मे या मायाजाल मे डाल रहा है, पर यह अधकार वही तक है जब तक मेरे ज्ञान का सूर्य वहाँ नही पहुँच जाता है।

सोमिल—आर्य ! आपका कथन सत्य है, मेरी भी यही आन्तरिक इच्छा है कि वर्धमान की उठती हुई शक्ति को रोका जाय। सरिता के प्रवल प्रवाह को प्रारभ मे ही मोड देना चाहिए, नही तो वह विशेप बल पकड लेता है। श्रमण वर्धमान के पीछे भी अनेक क्षत्रिय शासको का बल है। वैशाली गणराज्य के अध्यक्ष महाराजा चेटक प्रारभ से हमारी वैदिक परम्परा के विरोधी रहे है, वे वर्धमान के मामा है। मगध, वैशाली, कपिलवस्तु आदि अनेक जनपदो मे वेदविरोधी विचारो का तूफान उठ रहा है और इधर वर्धमान महावीर भी यहाँ पर प्रचार करने के लिए आ गये है।

इन्द्रभूति—आर्य सोमिल ! आप घबराइये नही, मैं अभी जाकर वर्धमान से शास्त्राथ करूगा, उन्हे पराजित कर अपना शिष्य बनाऊगा। आप देखेगे कि वैदिकधर्म की विजय-वैजयन्ती अनन्त आकाश को चूमने लगेगी।

समवसरण की ओर

इन्द्रभूति की विद्वत्ता अद्वितीय थी, वेद और उपनिषद् का ज्ञान उनकी चेतना के कण-कण मे समाया हुआ था। न्याय, दर्शन, तर्क, ज्योतिप, व्याकरण, काव्य, आयुर्वेद की सूक्ष्मतम गुत्थियाँ सुलझाना उनके बाएँ हाथ का खेल था। वे विद्वान् के साथ जिज्ञासु भी थे। आर्य सोमिल की प्रेरणा, विद्वानो की प्रशसा, और धर्मोन्माद के कारण अपने पाँच सौ शिष्यो के साथ महावीर से शास्त्रार्थ करने महावीर के समवसरण महसेन वन की ओर बढ गये।

इन्द्रभूति गौतम जब भगवान् महावीर की धर्मसभा मे पहुँचे तो उनकी मन स्थिति क्या रही होगी, यह कहना कठिन है। वे महावीर से आयु मे ज्येष्ठ थे, महावीर लगभग बयालीस वर्ष के थे[९] और इन्द्रभूति पचास को पार कर रहे थे।[१०] इसलिए अपने को महावीर मे ज्येष्ठ समझ रहे होगे। अपने को महान् ज्ञानी और महावीर को नौसिखिया समझ रहे होगे। महावीर को शास्त्रार्थ मे चुटकियो मे पराजित करने का विचार अन्तर्मानस मे मचल रहा होगा, किन्तु जब महसेन वन के निकट पहुँचे, महावीर के समवसरण की निराली छटा देखी, हजारो देवताओ को भक्ति-भावना से विभोर होकर वन्दन करते देखा, उनकी दिव्यध्वनि सुनी तो पूर्व धारणाएँ निरस्त हो गई। उनके मन का मालिन्य धुल गया। महावीर ने चुम्बक

---

९ (क) कल्पसूत्र ११६, (ख) आचाराग २

१० आवश्यक निर्युक्ति ६५०

सर्वज्ञ सर्वदर्शी भगवान् ने देखा मध्यम पावापुरी का प्रस्तुत प्रसग अपूर्व लाभ का कारण है। भारत के मूर्धन्य मनीषी विज्ञगण भी अज्ञानान्धकार मे भटक रहे है, साथ ही दूसरो को भी अज्ञानान्धकार मे ढकेल रहे है। ये वोध प्राप्त करेंगे तो हजारो प्राणियो को भी सत्य मार्ग पर चलने को प्रेरित कर सकते है।

भगवान् महावीर मध्यम पावापुरी मे पधारे। देवताओ ने समवसरण की रचना की, विशाल मानवमेदिनी एकत्रित हुई। सुर और असुर सभी उपदेश सुनने के लिए उपस्थित हुए। महावीर की मेघ गभीर गर्जना सुनकर सभी के मन-मयूर नाच उठे। जन-जन की जिह्वा पर महावीर की सर्वज्ञता की चर्चा होने लगी। आकाशमार्ग से आते हुए देवगणो को देखकर पण्डितो ने सोचा—हमारे यज्ञ से आकृष्ट हुए देवगण आ रहे है, हजारो लाखो आखे आकाश की ओर टकटकी लगाए देखती रही, पर जब देवविमान यज्ञ-मण्डप के ऊपर से सीधे ही आगे निकल गए, तो भारी निराशा के साथ आखे नीचे झुक गई। मुख म्लान हो गया और साश्चर्य विचारने लगे—यह क्या है ? क्या देवगण भी किसी की माया मे फँस गये है ? या भ्रम मे पड गये है ? इन्द्रभूति ने देखा यह तो उनके साथ मजाक है। देवविमानो को देखकर यज्ञमडप मे यज्ञ की महिमा के नारे लगाये थे, पर इन देवो ने तो मेरे अहकार को नष्ट कर दिया है। इन्द्रभूति गौतम ने आर्य सोमिल से पूछा—आर्य ! आज पावापुरी मे कौन आये है ?

आर्य सोमिल —क्या आपको मालूम नही है ?

इन्द्रभूति—नही।

सोमिल—क्षत्रिय कुमार वर्धमान ! जिसने लगभग तेरह वर्ष पूर्व घर को छोडकर प्रव्रज्या ग्रहण की थी, अब कठोर तप के द्वारा सिद्धि प्राप्त कर अपने यज्ञ-विरोधी, वेद-विरोधी, वर्णाश्रम विरोधी सिद्धातो के प्रचार के लिए पावापुरी मे आया है। बहुत बडा आडम्बर है, देवताओ को भी उसने अपने वश मे कर लिया है।

इन्द्रभूति—अच्छा, इतना बलशाली है वर्धमान। अच्छा अभी जाकर देखता हूँ। आर्य सोमिल ! मुझे लगता है कि वर्धमान ने कुछ तपस्या करके ऐन्द्रजालिक सिद्धियाँ प्राप्त की है, वह जनता को भ्रम मे या मायाजाल मे डाल रहा है, पर यह अधकार वही तक है जब तक मेरे ज्ञान का सूर्य वहाँ नही पहुँच जाता है।

सोमिल—आर्य ! आपका कथन सत्य है, मेरी भी यही आन्तरिक इच्छा है कि वर्धमान की उठती हुई शक्ति को रोका जाय। सरिता के प्रबल प्रवाह को प्रारभ मे ही मोड देना चाहिए, नही तो वह विशेप बल पकड लेता है। श्रमण वर्धमान के पीछे भी अनेक क्षत्रिय शासको का बल है। वैशाली गणराज्य के अध्यक्ष महाराजा चेटक प्रारभ से हमारी वैदिक परम्परा के विरोधी रहे है, वे वर्धमान के मामा है। मगध, वैशाली, कपिलवस्तु आदि अनेक जनपदो मे वेदविरोधी विचारो का तूफान उठ रहा है और इधर वर्धमान महावीर भी यहाँ पर प्रचार करने के लिए आ गये है।

इन्द्रभूति—आर्य सोमिल ! आप घबराइये नही, मैं अभी जाकर वर्धमान से शास्त्राथ करूगा, उन्हे पराजित कर अपना शिष्य बनाऊगा। आप देखेगे कि वैदिकधर्म की विजय-वैजयन्ती अनन्त आकाश को चूमने लगेगी।

समवसरण की ओर

इन्द्रभूति की विद्वत्ता अद्वितीय थी, वेद और उपनिषद् का ज्ञान उनकी चेतना के कण-कण मे समाया हुआ था। न्याय, दर्शन, तर्क, ज्योतिप, व्याकरण, काव्य, आयुर्वेद की सूक्ष्मतम गुत्थियाँ सुलझाना उनके बाएँ हाथ का खेल था। वे विद्वान् के साथ जिज्ञासु भी थे। आर्य सोमिल की प्रेरणा, विद्वानो की प्रशसा, और धर्मोन्माद के कारण अपने पाँच सौ शिष्यो के साथ महावीर से शास्त्रार्थ करने महावीर के समवसरण महसेन वन की ओर बढ गये।

इन्द्रभूति गौतम जब भगवान् महावीर की धर्मसभा मे पहुँचे तो उनकी मन स्थिति क्या रही होगी, यह कहना कठिन है। वे महावीर से आयु मे ज्येष्ठ थे, महावीर लगभग बयालीस वर्ष के थे[९] और इन्द्रभूति पचास को पार कर रहे थे।[१०] इसलिए अपने को महावीर मे ज्येष्ठ समझ रहे होगे। अपने को महान् ज्ञानी और महावीर को नौसिखिया समझ रहे होगे। महावीर को शास्त्रार्थ मे चुटकियो मे पराजित करने का विचार अन्तर्मानस मे मचल रहा होगा, किन्तु जब महसेन वन के निकट पहुँचे, महावीर के समवसरण की निराली छटा देखी, हजारो देवताओ को भक्ति-भावना से विभोर होकर वन्दन करते देखा, उनकी दिव्यध्वनि सुनी तो पूर्व धारणाएँ निरस्त हो गई। उनके मन का मालिन्य धुल गया। महावीर ने चुम्बक

---

९ (क) कल्पसूत्र ११६, (ख) आचाराग २

१० आवश्यक निर्युक्ति ६५०

की तरह उनको आकर्षित किया, श्रद्धा की हिलोरे उठने लगी। मन मे ये विचार तरगित होने लगे कि मैं अभी इनके चरणो मे अपने आपको समर्पित कर दूँ। इन्द्रभूति समझ ही नही पा रहे थे कि यह क्या हो रहा है। इन्द्रभूति के मन की एक गूढप्रश्न अनबूझ जिज्ञासा उद्वेलित कर रही थी कि आत्मा है या नही।

महावीर ने ज्यो ही उन्हे गौतम ! कहकर सम्बोधित किया त्यो ही वह स्तम्भित-से रह गये। विचारा मेरी लोकव्यापिनी ख्याति के कारण ही इन्हे मेरे नाम का पता है। पर जब तक ये मेरे अन्तर के सशयो का छेदन नही कर देते तब तक मैं इन्हे सर्वज्ञ नही मान सकता। गौतम के मानस मे सकल्प की उधेडबुन चल रही थी।

इन्द्रभूति गौतम का समाधान

[आत्मा का स्वतत्र अस्तित्त्व]

भगवान ने उनके अन्तर्मानस मे रहे हुए सन्देह की ओर सकेत करते हुए कहा—तुम्हारे मन मे आत्मा के अस्तित्व के सम्बन्ध मे इस प्रकार सशय है कि यदि आत्मा का अस्तित्व है तो वह घटादि पदार्थों की तरह प्रत्यक्ष दिखाई देना चाहिए, पर वह तो आकाशकुसुम की भाँति सर्वथा अप्रत्यक्ष है, अत उसका अस्तित्व स्वीकार नही किया जा सकता। यदि कोई यह कहे कि आत्मा अनुमान से सिद्ध है तो वह भी ठीक नही है। इसका कारण यह है कि अनुमान प्रत्यक्षपूर्वक ही होता है, जो प्रत्यक्ष ही नही है उसकी सिद्धि अनुमान से किस प्रकार हो सकती है ? प्रत्यक्ष से निश्चित धूम और अग्नि के अविनाभावसबध का स्मरण होने पर ही धूम के प्रत्यक्ष से अग्नि का अनुमान कर सकते है। आत्मा के किसी भी लिंग का सम्बन्ध ग्रहण उसके साथ प्रत्यक्ष से नही होता, जिससे उस लिंग का फिर से प्रत्यक्ष होने पर उस सम्बन्ध का स्मरण हो जाए और उससे आत्मा का अनुमान किया जा सके। आत्मा का स्वतन्त्र अस्तित्व आगमप्रमाण से भी सिद्ध नही कर सकते, चूँकि जिसका प्रत्यक्ष ही नही, वह आगम का विषय किस प्रकार हो सकता है। कोई इस प्रकार का व्यक्ति दृष्टिगोचर नही होता, जिसे जीव का प्रत्यक्ष हो और जिसके वचनो को प्रामाणिक मानकर आत्मा का अस्तित्व सिद्ध कर सके। दूसरी बात—आगम प्रमाण मानन पर भी आत्मा की सिद्धि नही हो सकती, चूँकि आगम अनेक है और वे परस्पर विरोधी तत्त्वो को सिद्ध करते है।

एक आगम जिसका मण्डन करता है, दूसरा उसका खण्डन करता है। ऐसी परिस्थिति मे आगम को आधार मानकर आत्मा का अस्तित्व सिद्ध नही होता, इसलिये उसका अभाव मानना चाहिये। तथापि लोग उसका अस्तित्व क्यो मानते है ?[११]

प्रस्तुत सशय का निवारण करते हुए श्रमण भगवान् महावीर ने कहा– गौतम! तुम्हारा यह सन्देह सम्यक् नही है, तुम्हारी यह मान्यता 'जीव प्रत्यक्ष नही है, उचित नही है, चूँकि जीव तुम्हे प्रत्यक्ष है ही। ऐसी स्थिति मे तुम्हे जीव का प्रत्यक्ष हो ही रहा है। इसके अतिरिक्त 'मैंने किया, मैं करता हूँ मैं करूँगा, इत्यादि रूप से तीनो काल सम्बन्धी विविध कार्यो का जो निर्देश किया जाता है, उसमे मैं (अहम्) रूप जो ज्ञान है वह भी आत्म-प्रत्यक्ष ही है। दूसरी बात– यदि सशय करने वाला कोई न हो तो 'मै हूँ या नही' यह सशय किस प्रकार होगा। जिसको स्वरूप मे ही सन्देह हो उसके लिए विश्व मे ऐसी कौन-सी वस्तु है जो असदिग्ध होगी। इस प्रकार के व्यक्ति को सभी स्थानो पर सशय होगा।

आत्मा प्रत्यक्ष है, चूँकि उसके स्मरण आदि विज्ञानरूप गुण स्वसवेदन द्वारा प्रत्यक्ष अनुभव मे आते है। जिस गुणी के गुणो का प्रत्यक्ष अनुभव होता है उस गुणी का भी प्रत्यक्ष अनुभव होता है जिस प्रकार घट। जीव के गुण प्रत्यक्ष है, इसलिये जीव भी प्रत्यक्ष है। जैसे घट के प्रत्यक्ष का आधार उसके रूपादि गुण है वैसे ही आत्मा के प्रत्यक्ष अनुभव का आधार उसके ज्ञानादि गुण है। जो व्यक्ति गुण से गुणी को एकान्त भिन्न मानते है, उनके मतानुसार रूप आदि का ग्रहण होने पर भी घट आदि गुणी रूप पदार्थों का ग्रहण नही होगा। इन्द्रियो से केवल रूपादि का ग्रहण होने से रूपादि को तो प्रत्यक्ष मान सकते है परन्तु रूपादि से एकान्त भिन्न घट का प्रत्यक्ष नही मान सकते। इस तरह जब घटादि पदार्थ भी सिद्ध नही तो आत्मा के अस्तित्व-नास्तित्व पर विचार करने से क्या लाभ ? इसलिये स्मरण आदि गुणो के आधार पर आत्मा का अस्तित्व मानना चाहिए।[१२]

आत्मा और शरीर मे भेद

जब इन्द्रभूति यह मानने के लिये प्रस्तुत हो गए कि ज्ञानादि गुणो

---

११ विशेषावश्यक भाष्य १५४८-१५५३

१२ विशेषावश्यक भाष्य गा० १५५४-१५६०

का प्रत्यक्ष होने से उसका आधारभूत गुणी कोई अवश्य होना चाहिए। इतना मानने के पश्चात् वे एक नई शका प्रस्तुत करते हुए कहते है कि स्मरण आदि गुणो का आधार आत्मा ही है, यह मन्तव्य उचित नही है, च् कि दुर्बलता, स्थूलता प्रभृति गुणो के ममान स्मरण आदि गुण भी शरीर मे ही मिलते है। ऐसी स्थिति मे उनका गुणीभूत आधार शरीर को ही मानना चाहिए, शरीर से पृथक् आत्मा को नही। इस शका का समाधान करते हुए महावीर ने कहा—ज्ञान आदि शरीर के गुण नही हो सकते, चू कि शरीर घट के समान मूर्त है चाक्षुप है, जबकि ज्ञानादि गुण अमूर्त और अचाक्षुप है। एतदर्थ ज्ञानादि गुणो के अनुरूप देह से पृथक् किसी अमूर्त गुणी की सत्ता अवश्य माननी चाहिए ' यही गुणी आत्मा ही जीव है।

इसके पश्चात् इन्द्रभूति ने एक और शका प्रस्तुत की—'मैं अपनी देह मे आत्मा का अस्तित्व मान सकता हू, किन्तु दूसरो की देह मे भी आत्मा की सत्ता है,' इसका प्रमाण क्या है ? समाधान प्रस्तुत करते हुए महावीर ने कहा—इसी हेतु से अन्य आत्माओ की भी सिद्धि हो सकती है। दूसरो के शरीर मे भी विज्ञानमय जोव है, चूँकि उनमे भी इष्ट-प्रवृत्ति अनिष्ट-निवृत्ति आदि विज्ञानमय क्रियाएँ देख सकते है।[१३]

आत्मा की सिद्धि के हेतु

आत्मसिद्धि के लिये कुछ हेतु देते हुए महावीर ने कहा—(१) इन्द्रियो का कोई अधिष्ठाता अवश्य होना चाहिए, क्योकि वे करण है। जिस प्रकार दडादि करणो का अधिष्ठाता कुभकार होता, जिसका कोई अधिष्ठाता नही, वह आकाश के समान करण भी नही। जो इन्द्रियो का अधिष्ठाता है, वही आत्मा है।

(२) शरीर का कोई बनाने वाला होना चाहिए, क्योकि उसका घट के समान एक सादि और नियत आकार है, जिसका कोई बनाने वाला नही होता उसका सादि और निश्चित आकार भी नही होता, जैसे बादल। इस शरीर का जो कर्ता है वही आत्मा है।

(३) इन्द्रियो और विषयो मे जब आदान आदेयभाव है तब उसका कोई आदाता अवश्य होना चाहिए, जहाँ पर आदान-आदेयभाव होता है

---

१३ विशेषावश्यक भाष्य १५६१

वहाँ पर कोई आदाता अवश्य होता है जैसे सडासी और लोहे मे आदान-आदेय भाव है और लुहार आदाता है। इसी तरह इन्द्रिय और विषय मे आदान-आदेयभाव है तथा आत्मा आदाता है।

(४) देहादि का कोई भोक्ता अवश्य होना चाहिए, क्योकि वह भोग्य है, जैसे भोजन-वस्त्रादि भोग्य पदार्थों का भोक्ता पुरुषविशेष है। जो देहादि का भोक्ता है, वही आत्मा है।

(५) देह आदि का कोई स्वामी अवश्य होना चाहिये, चूँकि ये सघात रूप है, जो सघात रूप होता है उसका कोई स्वामी अवश्य होता है जैसे घर और उसका मालिक। देहादि सघातो का जो स्वामी होता है, वही आत्मा है।[१४]

व्युत्पत्तिमूलक हेतु

शब्द की व्युत्पत्ति की दृष्टि से जीव का अस्तित्व सिद्ध करते हुए महावीर ने कहा—'जीव' पद 'घट' पद के समान 'व्युत्पत्तियुक्त शुद्ध पद होने से उसका कुछ अर्थ अवश्य होना चाहिए। जो पद सार्थक नही है वह व्युत्पत्तियुक्त शुद्ध पद भी नही है। जैसे डित्थ, खरविषाण आदि। 'जीव' पद व्युत्पत्तियुक्त और शुद्ध है, एतदर्थ उसका कोई अर्थ अवश्य होना चाहिए।

महावीर के तर्क के उत्तर मे इन्द्रभूति ने कहा—शरीर ही जीव पद का अर्थ है, इससे पृथक् कोई वस्तु नही है।

महावीर ने उनके तर्क का निरसन करते हुए कहा—जीव पद का अर्थ शरीर नही, क्योकि जीव शब्द के जो पर्याय है, वे शरीर शब्द के पर्यायो से अलग है। जीव के पर्याय जन्तु, प्राणी, सत्त्व, आत्मा आदि है। शरीर के पर्याय देह, वपु, काय, कलेवर आदि है। शरीर और जीव के लक्षण भी पृथक-पृथक् है। जीव ज्ञानादि गुण युक्त है जब कि शरीर जड है।[१५] उसके पश्चात भगवान् महावीर ने अपनी सर्वज्ञता का प्रमाण देते हुए कहा—सर्वज्ञ के वचनो मे सन्देह नही करना चाहिये। चूँकि वह राग-द्वेष आदि दोषो से मुक्त होता है, जिस राग-द्वेष के कारण मानव मिथ्याभाषण करता है, उसका उसमे अभाव होता है।[१६]

---

१४ विशेषावश्यक भाष्य १५६७

१५ विशेषावश्यक भाष्य १५७५-६

१६ विशेषावश्यक भाष्य १५७७-९

जीव की अनेकता

जीव का उपयोग लक्षण है। उसके ससारी और सिद्ध ये मुख्य दो भेद है। ससारी जीव के त्रस और स्थावर पुन ये दो भेद है।[१७]

जिन लोगो का यह विश्वास है कि आकाश के समान जीव की एक ही सत्ता है,[१८] वे वस्तुत यथार्थवादी नही है। नारक, देव, मनुष्य और तिर्यच आदि के शरीर मे आकाश के समान एक ही आत्मा मानने मे क्या आपत्ति है ? तो इसका उत्तर यह है कि आकाश के समान सभो शरीरो मे एक आत्मा सभव नही है। सभी जगह आकाश का एक ही लक्षण हमारे अनुभव मे आता है, इसलिए आकाश एक है, परन्तु जीव के सम्बन्ध मे इस प्रकार नही कह सकते। प्रत्येक शरीर मे जीव विलक्षण है, इसलिये उसे सभी स्थानो पर एक नही मान सकते। जीव मे लक्षणभेद होने से वे अनेक है जैसे विविध घट। जो वस्तु अनेक नही होती उसमे लक्षणभेद भी नही होता जैसे आकाश। दूसरी बात यह है कि एक ही जीव मानने पर सुख, दु ख, बध, मोक्ष आदि की व्यवस्था भी नही हो सकती। एक ही जीव का एक ही समय मे सुखी और दु खी होना, बद्ध और मुक्त होना कथमपि सभव नही है इसलिये अनेक जीवो को सत्ता मानना तर्कसगत है। इन्द्रभूति पुन शका प्रस्तुत करते हुए कहते है—यदि जीव का लक्षण ज्ञान दर्शन रूप उपयोग है और वह सभी जोवो मे विद्यमान है तो फिर प्रत्येक पिण्ड मे लक्षण-भेद किस प्रकार माना जा सकता है ? इसका समाधान करते हुए महावीर ने कहा—सभी जीवो मे उपयोग रूप सामान्य लक्षण के विद्यमान होने के बावजूद भी प्रत्येक शरीर मे विशेष-विशेष उपयोग का अनुभव होता है। जीवो मे उपयोग के अपकर्ष और उत्कर्ष के तारतम्य के अनन्त भेद है। इसी कारण जीवो की सख्या भी अनन्त है।[१९]

जीव का स्वदेह-परिमाण

जीवो को अनेक मानने के साथ ही उन्हे सर्वव्यापक माना जाय तो क्या आपत्ति है ?[२०] इन्द्रभूति द्वारा यह जिज्ञासा प्रस्तुत करने पर महावीर

---

१७ विशेपावश्यक भाष्य १५८०

१८ ब्रह्मबिन्दु उपनिपद् ११

१९ विशेपा० भाष्य गा० १५८१-३

२० साख्य और नैयायिक मानते है।

ने कहा – जीव सर्वव्यापक नही किन्तु शरीरव्यापी है, क्योकि उसके गुण शरीर मे ही मिलते है। जैसे घट के गुण घट से बाह्यदेश मे उपलब्ध नही होते, इसलिये वह सर्वव्यापक नही, उसी तरह आत्मा के गुण भी शरीर से बाहर उपलब्ध नही होते, इसलिये वह भी स्वदेहपरिमाण ही है।[21] जहा पर जिसकी उपलब्धि प्रमाणसिद्ध नही होती वहाँ पर उसका अभाव मानना चाहिए, जिस प्रकार घट मे पट का अभाव है। शरीर से बाहर ससारी आत्मा की उपलब्धि नही है, इसलिये शरीर से बाहर उसका अभाव मानना तर्कसगत है। जीव मे कर्तृत्व, भोक्तृत्व, बध, मोक्ष, सुख-दुःख आदि सभी तर्क से सिद्ध हो सकते है, इसलिये जीव को अनेक, असर्वव्यापक-स्वशरीर-व्यापी मानना चाहिये, किन्तु एक, सर्वगत और व्यापक नही मानना चाहिये।[22]

जीव की *नित्यानित्यता*

पूर्व पर्याय नष्ट हो जाता है और अपर पर्याय की उत्पत्ति होती है, इस अपेक्षा से आत्मा अनित्य स्वभाव वाली है। घट आदि विज्ञानरूप उपयोग नष्ट होने पर पट आदि विज्ञानरूप उपयोग उत्पन्न होता है। जिससे जीव मे उत्पाद और व्यय ये दोनो सिद्ध होते है, इसलिये जीव विनाशी है। ऐसा होने पर भी विज्ञान-सन्तति की दृष्टि से जीव अविनाशी अर्थात् नित्य-ध्रुव भी सिद्ध होता है। विज्ञान-सामान्य का आत्मा मे कभी भी अभाव नही होता, किन्तु विज्ञान-विशेष का अभाव होता है, अत विज्ञानसन्तति अर्थात् विज्ञान सामान्य की दृष्टि से आत्मा नित्य है, ध्रुव है, शाश्वत है, अविनाशी है। विश्व के अन्य सभी पदार्थों का भी यही स्वभाव है।[23]

जीव भूतधर्म नहीं

कितने ही व्यक्तियो का यह मन्तव्य है कि उत्पत्ति भूतो से ही होती

---

२१ तुलना कीजिए—

यत्रैव यो दृष्टगुण स तत्र कुम्भादिवद् निष्प्रतिपक्षमेतत्।
तथापि देहाद् बहिरात्मतत्त्वमतत्त्ववादोपहता पठन्ति ॥

—अन्ययोगव्यवच्छेदद्वात्रिंशिका ९

२२ विशेषावश्यक भाष्य १५८६-७

२३ विशेषा० भाष्य १५९५

है, इसलिये विज्ञानरूप जीव भूतो का ही धर्म है।[२४] उनका यह मन्तव्य अनुचित है। भूतो के साथ विज्ञान का अन्वय-व्यतिरेक सम्बन्ध नही है। भूतो का अस्तित्व होने के बावजूद भी मृत शरीर मे ज्ञान का अभाव देखा जाता है। भूतो के अभाव मे भी मुक्तावस्था मे ज्ञान का सद्भाव है। इसलिए भूतो के साथ ज्ञान का अन्वय-व्यतिरेक असिद्ध है। अत ज्ञानरूप जीव भूत-धर्म कदापि नही हो सकता। जैसे घट का सद्भाव होने पर नियमपूर्वक पट का सद्भाव नही होता और घट के अभाव मे भी पट का सद्भाव देखा जाता है, इसलिये पट को घट से भिन्न एव स्वतत्र माना जाता है, उसी प्रकार ज्ञान को भी भूतो से भिन्न मानना चाहिए। इसलिए विज्ञानरूप जीव भूत-धर्म नही हो सकता।[२५]

इस प्रकार भगवान् महावीर ने इन्द्रभूति का जीव के सम्बन्ध मे जो सशय था, वह दूर किया। उन्होने अपने पाँचसौ शिष्यो के साथ महावीर के पास दीक्षा ग्रहण की।[२६]

अग्निभूति का समाधान

[कर्म का अस्तित्व]

इसके पश्चात् अग्निभूति महावीर के सन्निकट पहुँचे। महावीर ने उन्हे नाम और गोत्र से सबोधित करते हुए कहा—अग्निभूति! तुम्हारे मन मे यह सन्देह है कि कर्म है या नही? तुम्हारी यह धारणा है कि कर्म प्रत्यक्ष आदि किसी भी प्रमाण से सिद्ध नही है, इसलिए वह खरविषाण की भाँति अभाव रूप है। तुम्हारा प्रस्तुत सदेह उचित नही है। मैं कर्म को प्रत्यक्ष देखता हूँ, तुम इस समय उसका प्रत्यक्ष दर्शन तो नही कर सकते, किन्तु अनुमान से तुम भी उसको सिद्धि कर सकते हो। सुख-दु ख रूप कर्मफल को तुम प्रत्यक्ष देख रहे हो और उससे उसके कारणरूप कर्म की सत्ता का अनुमान भी किया जा सकता है। सुख-दु ख का कोई कारण अवश्य होना चाहिए

---

२४ यह चार्वाक दर्शन का मन्तव्य है।

२५ विशेषा० भाष्य १५६७-६

२६ विशेषा० भाष्य १६१०-२

चू कि वे कार्य है, जिस प्रकार अकुर रूप कार्य का हेतु बीज है, उसी प्रकार सुख-दु ख रूप कार्य का जो हेतु है वह कर्म है।[२७]

अग्निभूति ने पुन शका प्रस्तुत करते हुए कहा—यदि सुख-दु ख का दृष्टकारण सिद्ध हो तो अदृष्टकारणरूप कर्म का अस्तित्व मानने की क्या आवश्यकता है ? चन्दन आदि पदार्थ सुख के कारण है और साँप का जहर आदि दु ख के कारण है, इन दृष्ट कारणो के अतिरिक्त अदृष्ट कर्म मानने की क्या आवश्यकता है ?

शका का समाधान करते हुए महावीर ने कहा कि—दृष्ट कारण मे व्यभिचार दिखाई देता है, अत अदृष्ट कारण मानना अनिवार्य है, क्योकि सुख दु ख के दृष्ट कारणो के समानरूप से रहने पर भी उनके कार्य मे जो तारतम्य दिखाई देता है, वह निष्कारण नही हो सकता। इसका जो कारण है, वही कर्म है।[२८]

कर्म साधक एक और प्रमाण देते हुए भगवान ने कहा—आद्य बाल शरीर देहान्तर पूर्वक है, चू कि वह इन्द्रियादि से युक्त है, जैसे युवक का शरीर बाल-शरीर पूर्वक है। आद्य बाल शरीर जिस देहपूर्वक है वही कर्म कार्मण शरीर है।

तृतीय कर्मसाधक अनुमान इस प्रकार है—दान आदि जो भी क्रिया हम करते है उस क्रिया का फल अवश्य होना चाहिए, क्योकि वह सचेतन व्यक्तिकृत क्रिया है, जिस प्रकार कृषि। दान आदि क्रिया का जो फल है वही कम है।

अग्निभूति ने उपर्युक्त कथन को मानकर पुन. प्रश्न किया—जिस प्रकार कृषि आदि क्रिया का दृष्ट फल धान्यादि है उसी प्रकार दान आदि क्रिया का भी फल मन की शान्ति आदि क्यो न मान ले। इस दृष्ट फल का त्याग कर अदृष्ट फलरूप कर्म की सत्ता मानने से क्या लाभ है ?

भगवान् ने कहा—अग्निभूति ! क्या तुम नही जानते कि मन की शान्ति भी एक प्रकार से क्रिया ही है, इसलिए सचेतन की अन्य क्रियाओ के समान ही उसका भी फल मानना चाहिए, वही कर्मफल है। इस कर्म के

---

२७ विशेपावश्यक भाष्य गा० १६१०-२

२८ विशेपावश्यक भाष्य १६१४

कार्यरूप से सुख-दु ख आदि आगे चलकर पुन हमारे अनुभव मे आते है।[२९]

मूर्त-कर्म

यदि कार्य के अस्तित्व से कारण की सिद्धि होती है तो शरीर आदि कार्य के मूर्त होने से उसका कारणरूप कर्म भी मूर्त ही होना चाहिए। इस सशय का निवारण करते हुए महावीर ने कहा मै कर्म को मूर्त मानता हूँ चूँकि उसका कार्य मूर्त है। जैसे परमाणु का कार्य घट मूर्त है अत परमाणु भी मूर्त है। वैसे ही कर्म का शरीर आदि कार्य मूर्त है, इसलिये कर्म भी मूर्त ही है।[30]

कर्म का मूर्तत्व सिद्ध करने वाले अन्य हेतु इस प्रकार है—(१) कर्म मूर्त है, क्योकि उससे सम्बन्ध होने पर सुख-दु ख आदि की अनुभूति होती है, जैसे भोजन। जो अमूर्त होता है उससे सम्बन्ध होने पर भी सुख-दु ख की अनुभूति नही होती, जैसे आकाश।

(२) कर्म मूर्त है, चूँकि उसके सम्बन्ध होने पर वेदना की अनुभूति होती है, जैसे अग्नि।

(३) कर्म मूर्त है, चूँकि उसमे बाह्य पदार्थो से बलाधान होता है। जिस प्रकार घटादि पदार्थों पर तेल आदि बाह्य वस्तु का विलेपन करने से बलाधान होता है, अर्थात् स्निग्धता आती है उसीप्रकार कर्म मे भी माला, चन्दन, वनिता आदि बाह्य वस्तुओ के ससर्ग से बलाधान होता है, इसलिए वह मूर्त है।

(४) कर्म मूर्त है, चूँकि वह आत्मादि से भिन्न रूप मे परिणामी है, जैसे दूध।[31]

कर्म और आत्मा का सम्बन्ध

कर्म को मूर्त माना जायेगा तो अमूर्त आत्मा से उसका सम्बन्ध किस प्रकार हो सकता है? घट मूर्त है तथापि उसका सयोगसम्बन्ध अमूर्त आकाश से होता है। इसी तरह मूर्त कर्म का अमूर्त आत्मा से सम्बन्ध होता

---

२९ विशेषावश्यक भाष्य १६१५,१६

३० विशेषावश्यक भाष्य १६२५

३१ विशेषावश्यक भाष्य १६२६-७

है। अथवा जैसे अगुली आदि मूर्त द्रव्य का आकुञ्चन आदि अमूर्त क्रिया से सम्बन्ध होता है, उसी प्रकार कर्म और जीव का सम्बन्ध है।[३२]

स्थूल शरीर मूर्त है पर उसका आत्मा से सम्बन्ध प्रत्यक्ष देखते है। इसी तरह एक भव से दूसरे भव मे जाते हुए जीव का कार्मण शरीर से सम्बन्ध होना ही चाहिए। नही तो नवीन स्थूल शरीर का ग्रहण कदापि सभव नही।[३३]

प्रश्न हो सकता है कि मूर्त से अमूर्त का उपघात आर अनुग्रह किस प्रकार हो सकता है ? विज्ञान आदि अमूर्त है, किन्तु मदिरा, विप आदि मूर्त वस्तुओ स उनका उपघात होता है और घृत, दुग्व आदि पौष्टिक आहार से उसका उपकार होता है। इसी प्रकार मूर्त कर्म द्वारा अमूर्त आत्मा का अनुग्रह और उपकार हो सकता है।[३४]

दूसरे शब्दो मे यो कह सकते है—ससारी आत्मा वस्तुत एकान्तरूप से अमूर्त नही है। जीव और कर्म का अनादिकालीन सम्बन्ध होने से कथञ्चित् जीव भी कर्म-परिणाम रूप है, इसलिए वह उस रूप मे मूर्त भी है। इसी तरह मूर्त आत्मा पर मूर्त कर्म द्वारा होने वाले अनुग्रह और उपघात को स्वीकार करने मे किसी भी प्रकार की आपत्ति नही होनी चाहिए। शरीर और कर्म मे परस्पर कार्य-कारणभाव है। जिस प्रकार बीज से अकुर और अकुर से बीज की उत्पत्ति है और इस तरह से बीजाकुर-सन्तति अनादि है, उसी तरह शरीर से कर्म और कर्म से शरीर का उद्भव समझना चाहिए। देह और कर्म की यह परम्परा अनादि है।[३५]

ईश्वरकर्तृत्व का खण्डन

अग्निभूति ने कहा—यदि ईश्वरादि को जगत्-वैचित्र्य का कारण मान लें तो कर्म की आवश्यकता नही है।

महावीर ने समाधान करते हुए कहा—कर्म की सत्ता न मानकर मात्र शुद्ध जीव को ही देह आदि की विचित्रता का कर्ता माना जाए या ईश्वर

---

३२ विशेपावश्यक भाष्य १६३५

३३ वही १६३६

३४ वही १६३७

३५ विशेपा० भाष्य १६३८-६

आदि को इस समस्त वैचित्र्य का कर्ता माना जाए तो हमारी सम्पूर्ण मान्यताएँ असगत सिद्ध होगी, क्योकि शुद्ध जीव या ईश्वर आदि को कर्म-साधन की अपेक्षा नही है। वह शरीरादि का आरभ ही नही कर सकता, चूकि उसके पास आवश्यक उपकरणो का अभाव है। जिस प्रकार कुभकार दडादि उपकरणो के अभाव मे घट आदि का निर्माण नही कर सकता, उसी प्रकार ईश्वर कर्म आदि साधनो के अभाव मे शरीर आदि का निर्माण नही कर सकता। इसी तरह निश्चेष्टता, अमूर्तना आदि हेतुओ से भी ईश्वर कर्तृत्व का खण्डन हो सकता है।[३६]

भगवान महावीर ने अग्निभूति के सशय का निवारण कर दिया तो अग्निभूति ने पाँचसौ शिष्यो के साथ भगवान से आर्हतीदीक्षा ग्रहण की।[३७]

वायुभूति का समाधान

[आत्मा और शरीर का भेद]

इन्द्रभूति और अग्निभूति के अपने शिष्यो सहित प्रव्रजित होने के समाचार श्रवण कर वायुभति अपने शिष्यो सहित महावीर के सन्निकट पहुँचे। महावीर ने उनको सम्बोधित करते हुए कहा— वायुभूति! तुम्हारे मन मे यह सशय है कि जीव और शरीर एक ही है या पृथक्-पृथक् है? तुम्हे वेद-वाक्यो का सही अर्थ ज्ञात नही है, इसलिए तुम्हे इस प्रकार का सन्देह हो रहा है।[३८] तुम्हारा यह मन्तव्य है कि पृथ्वी, जल, तेज और वायु इन चार भूतो के समुदाय से चैतन्य उत्पन्न होता है। जैसे मदिरा पैदा करने वाली भिन्न-भिन्न वस्तुओ मे मदशक्ति दृष्टिगोचर नही होती तथापि उसके समुदाय से मदशक्ति उत्पन्न होती है। उसीप्रकार पृथ्वी आदि किसी भी पृथक भूत मे चैतन्य शक्ति दृष्टिगोचर नही होती तथापि उसके समुदाय से चैतन्य का प्रादुर्भाव होता है। जैसे अलग-अलग द्रव्यो के समुदाय से मदशक्ति पैदा होती है और कुछ समय तक स्थिर रहकर उसके पश्चात् कालान्तर मे विनाश

---

३६ विशेषा० भाष्य १६४१-२

३७ वही १६४४

३८ विशेषा० भाष्य १६४६

की सामग्री उपस्थित होने पर फिर से नष्ट हो जाती है इसी तरह भूतो के समुदाय से चैतन्य उत्पन्न होता है और कुछ समय तक विद्यमान रहने पर उसके पश्चात् विनाश की सामग्री मिलने पर फिर से नष्ट हो जाता है। इसलिए चैतन्य भूतो का धर्म है और भूतरूप शरीर व चैतन्यरूप आत्मा अभिन्न है।[39]

प्रस्तुत सशय का निवारण करते हुए महावीर ने कहा—वायुभूति! तुम्हारा यह सशय उचित नही है। चू कि चैतन्य केवल भूतो के समुदाय से उत्पन्न नही हो सकता, वह स्वतन्त्र रूप से सत है, क्योकि प्रत्येक भूत मे उसकी सत्ता का अभाव है। जिसका प्रत्येक अवयव मे अभाव हो वह समुदाय मे भी उत्पन्न नही हो सकता। रेत के किसी भी कण मे तेल नही है अत रेत के समुदाय मे भी तेल नही निकल सकता। तिल समुदाय से तेल निकलता है चू कि प्रत्येक तिल मे तेल की सत्ता रही हुई है।[40] तुम्हारा यह कथन भी अयुक्त है कि मदिरा के प्रत्येक द्रव्य मे मद अविद्यमान है। सही बात यह है कि मदिरा के प्रत्येक अग मे मद की न्यून या अधिक मात्रा विद्यमान है इसलिए वह समुदाय मे भी उत्पन्न होता है।[41]

मदिरा के अग के समान प्रत्येक भूत मे चैतन्य की मात्रा विद्यमान है, इसलिए वह समुदाय से भी उत्पन्न हो जाता है, यदि ऐसा मान ले तो क्या आपत्ति है? किन्तु आपका यह कथन भी उचित नही है क्योकि जैसे मदिरा के हरएक अग—धातकीपुष्प, गुड, द्राक्षा इक्षुरस आदि मे मदशक्ति दिखलाई देती है, उसीप्रकार प्रत्येक भूत मे चैतन्यशक्ति का दर्शन नही होता, इसलिए यह नही कहा जा सकता कि केवल भूतसमुदाय से ही चैतन्य उत्पन्न होता है।[42]

मदिरा के प्रत्येक अग मे भी यदि मदशक्ति न माने तो क्या आपत्ति है? यदि भूतो मे चैतन्य के समान मद्य के भी प्रत्येक अग मे मदशक्ति न हो यह नियम कदापि नही बन सकता कि मद्य के धातकीपुष्प आदि तो कारण है और दूसरे पदार्थ नही, ऐसी अवस्था मे राख, पत्थर आदि कोई भी वस्तु

---

३६ विशेपा० भाष्य १६५०

४० यह सत्कार्यवाद का मूलभूत सिद्धान्त है।

४१ विशेपा० भाष्य १६५२

४२ वही १६५३

मद का कारण बन जायेगी और किसी भी समुदाय से मदिरा पैदा हो जायेगी। किन्तु व्यवहार मे भी हम देखते ह कि ऐसा कभी नही होता, अत मदिरा के हरएक अगभूत पदार्थ मे मदशक्ति का अस्तित्व अवश्य मानना चाहिए।[४३]

इन्द्रिय-भिन्न आत्मसाधक अनुमान

भूत या इन्द्रियो से भिन्नस्वरूप किसी तत्त्व का धर्म चैतन्य है, क्योकि भूत या इन्द्रियो से उपलब्ध वस्तु का स्मरण होता है, जिस प्रकार पाच भरोखो से भिन्न स्वरूप देवदत्त का धर्म चैतन्य है। जिस प्रकार क्रमश पाँच गवाक्षो से देखनेवाला देवदत्त एक ही है और वह उन गवाक्षो से अलग है, चू कि वह पाँचो गवाक्षो से देखो हुई वस्तु का स्मरण करता है, इसी तरह पाँचो इन्द्रियो से ग्रहण किये हुए पदार्थों का स्मरण करने वाला इन्द्रियो से भिन्न कोई तत्त्व अवश्य होना चाहिए। इसी तत्त्व का नाम आत्मा, जीव या चेतन है। यदि इन्द्रियो को ही उपलब्धि कर्ता मान लिया जाए तो क्या आपत्ति है ? इन्द्रिय-व्यापार के बन्द होने पर, या इन्द्रियो का विनाश हो जाने पर भी इन्द्रियो द्वारा गृहीत वस्तु का स्मरण होता है। कभी-कभी इन्द्रिय-व्यापार का स्मरण होता है, कभी कभी इन्द्रिय-व्यापार के अस्तित्व मे भी अन्यमनस्क को वस्तु का ज्ञान नही होता, इसलिए यह मानना चाहिए कि किसी वस्तु का ज्ञान इन्द्रियो को नही होता, अपितु इन्द्रियभिन्न किसी अन्य को ही होता है, यही ज्ञाता आत्मा है।[४४]

द्वितीय अनुमान यह है, आत्मा इन्द्रियो से अलग है, चू कि वह एक इन्द्रिय से ग्रहण किये हुए पदार्थ का दूसरी अन्य इन्द्रिय से भी गहण करता है। जैसे एक गवाक्ष से देखे हुए घर पदार्थ को देवदत्त दूसरे गवाक्ष से ग्रहण करता है अत देवदत्त दोनो गवाक्ष (खिडकियो) से अलग है। वैसे ही आत्मा भी एक इन्द्रिय से ग्रहण की हुई वस्तु का दूसरी इन्द्रिय से ग्रहण करता है, अत इन्द्रियो से अलग है। दूसरी बात यह है कि वस्तु का ग्रहण एक इन्द्रिय से होता है, किन्तु विकार दूसरी इन्द्रिय मे होता है, जैसे नेत्रो के द्वारा इमली, निम्बू आदि आम्ल पदार्थ देखते है किन्तु लालास्रवादि विकार जिह्वा मे होता है, इसलिए यह मानना पडता है कि आत्मा इन्द्रियो से भिन्न है।[४५]

---

४३ विशेषावश्यक भाष्य १६५४

४४ विशेषावश्यक भाष्य १६५७-८

४५ विशेषा० भाष्य १६५६

तृतीय अनुमान यह है कि जीव इन्द्रियो से पृथक् है, चूकि वह सभी इन्द्रियो द्वारा ग्रहण किये हुए अर्थ का स्मरण करता है। जैसे अपनी इच्छा से रूप आदि एक-एक गुण के ज्ञाता ऐसे पाँच पुरुषो से रूप आदि ज्ञान को जानने वाला पुरुष अलग है, उसी तरह पाँचो इन्द्रियो से उपलब्ध अर्थ का स्मरण करने वाला, पाचों इन्द्रियो से अलग कोई तत्त्व होना चाहिए, वही तत्त्व आत्मा है।[४६]

आत्मा की नित्यता

आत्मा शरीर से अलग है, यह सिद्ध हो जाने पर भी वह शरीर के समान क्षणिक है। वह शरीर के साथ ही विनष्ट हो जाता है, फिर उसको शरीर से अलग सिद्ध करने से लाभ भी क्या है? इस प्रकार की शका करना उचित नही है। पूर्वजन्म का स्मरण करने वाले जीव का उसके पूर्व भव का शरीर विनष्ट हो जाने पर भी क्षय नही मान सकते। जीव का क्षय मानने पर पूर्वभव का स्मरण करने वाला कोई नही रहता। जैसे बाल-अवस्था का स्मरण करने वाली वृद्ध की आत्मा का बाल्यकाल मे सर्वथा नाश नही हो जाता, चूकि वह बाल्यावस्था का स्मरण करती हुई प्रत्यक्ष दिखाई देती है। इस प्रकार जीव भी पूर्व जन्म का स्मरण करता है, यह सिद्ध है। अथवा कोई व्यक्ति विदेशयात्रा के लिए गया है, वह व्यक्ति वहाँ पर अपने देश की बातो का स्मरण करता है, इसलिए उसे नष्ट नही मान सकते, इसीप्रकार पूर्वजन्म का स्मरण करने वाले जीव का भी सर्वथा नाश नही मान सकते।[४७]

यदि कोई यह तर्क करे कि जीव रूप विज्ञान को क्षणिक मानकर विज्ञान-सतति के सामर्थ्य से स्मरण को सिद्ध कर सकते है, तो इसका तात्पर्य यह है शरीर का नाश हो जाने पर भी विज्ञान-सतति का विनाश नही हुआ, इसलिए विज्ञान सतति शरीर से भिन्न ही सिद्ध हुई। विज्ञान का पूर्ण रूप से क्षणिक होना सभव नही क्योकि पूर्वोपलब्ध वस्तु का स्मरण होता है। जो क्षणिक है उसे अतीत का स्मरण नही होता इसलिये हमारा विज्ञान सर्वथा क्षणिक नही है। भगवान् ने क्षणिकवाद के अनेक दोषो की ओर सकेत करते हुए अन्त मे यह साराश प्रस्तुत किया कि ज्ञान-सतति का जो

---

४६ विशेषावश्यक भाष्य १६६०

४७ विशेषावश्यक भाष्य १६७१

सामान्यरूप है, वह नित्य है, इसलिए उसका कभी भी व्यवच्छेद नही होता। उसे ही आत्मा कहते है।[४८]

आत्मा की अदृश्यता

आत्मा शरीर से अलग है तो वह शरीर मे प्रवेश करते समय या बाहर निकलते समय दिखलाई क्यो नही देती ? किसी भी वस्तु की अनुपलब्धि के दो प्रकार है (१) जो वस्तु खरशृ ग के समान सर्वथा असत् हो वह कभी भी उपलब्ध नही होती। (२) वस्तु सत् होने पर भी अत्यन्त दूर, अत्यन्त सन्निकट, अत्यन्त सूक्ष्म होने से उपलब्ध नही होती। आत्मा स्वभाव से अमूर्त है और उसके साथ जो कार्मण शरीर है, वह परमाणु के समान सूक्ष्म है इसलिए वह हमारे शरीर मे प्रवेश करते समय और बाहर निकलते समय दिखलाई नही देता है।[४९]

जब भगवान् महावीर ने वायुभूति के सशय का निवारण कर दिया तो उन्होने अपने ५०० शिष्यो के साथ महावीर के पास दीक्षा ग्रहण की।[५०]

व्यक्त का समाधान

[शून्यवाद का निरास]

वायुभूति को अपने शिष्यो सहित दीक्षित हुआ सुना तो व्यक्त भी अपने शिष्यो सहित महावीर के पास पहुँचे। भगवान् ने उनको सम्बोधित करते हुए कहा– व्यक्त ! तुम्हारे मन मे यह सशय है कि भूतो का अस्तित्व है या नही, तुम्हे वेदवाक्यो का यथार्थ अर्थ परिज्ञात नही है, एतदर्थ ही तुम्हे इस प्रकार की शका है मैं तम्हे इनका सही अर्थ बताऊँगा जिससे तुम्हारा सशय नष्ट हो जायेगा।[५१]

व्यक्त ! तुम्हारी यह धारणा है कि प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर होने वाले ये सभी भूत स्वप्न के समान है और जीव, पुण्य, पाप आदि परोक्ष पदार्थ

---

४८ विशेपावश्यक भाष्य १६७२-१६८१

४९ विशेपा० भाष्य १६८३

५० विशेपा० भाष्य १६८६

५१ विशेपावश्यक भाष्य १६८७-८९

भी माया के समान है। इस तरह सम्पूर्ण ससार यथार्थ मे शून्यरूप है। तुम्हारा यह भी मन्तव्य है कि ससार के सभी व्यवहार ह्रस्व दीर्घ के समान सापेक्ष है इसलिए वस्तु की सिद्धि स्वत, परत, उभयत या दूसरे किसी भी प्रकार से नही हो सकती, इसलिए सब कुछ शून्य है। इसी तरह पदार्थ के साथ अस्तित्व, एकत्व, अनेकत्व, आदि किसी भी प्रकार का सम्बन्ध सिद्ध नही हो सकता इसलिए सब शून्य है। उत्पत्ति, अनुत्पत्ति, उभय, अनुभय आदि मे इसी तरह के अनेक दोष उपस्थित होते है, इसलिए जगत् का शून्य-रूप ही मानना चाहिए।[५२]

इन शकाओ का समाधान इस प्रकार है—यदि ससार मे भूतो का अस्तित्व ही नही है तो उनके विषय मे आकाश-कुसुम के समान सशय ही उत्पन्न न हो। जो वस्तु विद्यमान होती है उसी के सम्बन्ध मे सशय होता है, जिस प्रकार स्थाणु या पुरुष के सम्बन्ध मे। तो बताइए स्थाणु और पुरुष के विषय मे सन्देह होता है किन्तु आकाशकुसुम के सम्बन्ध मे नही, तो उसमे ऐसी कौन-सी विशेषता है? इसलिए यह मानना चाहिए कि आकाशकुसुम के समान सब कुछ समानरूप से शून्य नही है। प्रत्यक्ष, अनुमान और आगम से पदार्थ की सिद्धि होती है, इसलिए इन प्रमाणो के विषय-भूत पदार्थो के सम्बन्ध मे ही सशय उत्पन्न होता है। जो सर्वप्रमाणातीत है, उसके सम्बन्ध मे सशय कैसे हो सकता है? एतदर्थ ही स्थाणु-पुरुष आदि पदार्थों के सम्बन्ध मे सन्देह होता है किन्तु आकाशकुसुम आदि के सम्बन्ध मे नही। दूसरी बात यह है कि सशय आदि ज्ञानपर्याय है। ज्ञान की उत्पत्ति बिना ज्ञेय के सभव नही है, इसलिए ज्ञेय ही नही तो सशय उत्पन्न किस प्रकार होगा?[५३]

कोई इस प्रकार कह सकता है कि यह तो कोई नियम नही है कि सभी का अभाव हो तो सशय ही न हो। जैसे प्रसुप्त व्यक्ति के पास कुछ भी नही होता तथापि वह स्वप्न मे यह सशय करता है कि यह गजराज है या पर्वत है?' इसलिए सब कुछ शून्य होने पर भी सशय हो सकता है। इस प्रकार कहना उचित नही है। जो स्वप्न मे सदेह होता है। वह भी पूर्वानुभूत वस्तु के स्मरण से ही होता है। इसलिए सभी वस्तुओ का सर्वथा अभाव हो तो

---

५२ विशेषावश्यक भाष्य १६९०-९६

५३ विशेषावश्यक भाष्य १६९७-१७००

स्वप्न मे भी सशय न हो। स्वप्न आने के कारण ये है—(१) अनुभूतअर्थ—जैसे स्नान आदि, (२) दृष्टअर्थ—हाथी, घोड़े आदि (३) चिन्तितअर्थ—प्रियतमा आदि, (४) श्रुतअर्थ—स्वर्ग नरक आदि, (५) प्रकृति विकार-वात्त पित आदि, (६) अनुकूल या प्रतिकूल वेदना, (७) सजल-प्रदेश, (८) पुण्य और पाप। इसलिए स्वप्न भी भावरूप है। चूंकि घटविज्ञान आदि के समान वह भी विज्ञानरूप है, या स्वप्नभावरूप है, क्योकि वह भी अपने कारणो से उत्पन्न होता है जैसे घट आदि अपने कारणो से उत्पन्न होने से भावरूप है।[५४]

शून्यवाद के मन्तव्य मे एक दोष यह भी है कि यदि सभी कुछ शून्य है तो स्वप्न-अस्वप्न, सत्य-मिथ्या, गधर्वनगर-पाटलिपुत्र, मुख्य-गौण, साध्य-साधन, कार्य-कारण, वक्ता-वचन, त्रि-अवयव-पचावयव, स्वपक्ष-परपक्ष आदि भेद भी न हो।[५५]

इस प्रकार कहना है कि सभी व्यवहार सापेक्ष है इसलिए किसी पदार्थ की स्वरूपसिद्धि नही हो सकती अनुचित है। हमारे सामने एक प्रश्न है कि ह्रस्व-दीर्घ का ज्ञान युगपद् होता है या क्रमश होता है। यदि युगपद् होता है तो जिस समय मध्यम अगुली के विषय मे दीर्घत्व का प्रतिभास हुआ उसी समय प्रदेशिनी मे ह्रस्वत्व का प्रतिभास हुआ, ऐसा मानना होगा। इस प्रकार की अवस्था मे ऐसा नही कह सकते कि ह्रस्वत्व-दीर्घत्व सापेक्ष है। यदि ह्रस्व-दीर्घ का ज्ञान क्रमश होता तो पहले प्रदेशिनी मे ह्रस्वत्व का ज्ञान होता जो मध्यम अगुली के दीर्घत्व के प्रतिभास से निरपेक्ष है। इसलिए यह मानना पडता है कि ह्रस्वत्व-दीर्घत्व का व्यवहार केवल सापेक्ष नही है। दृष्टान्त के द्वारा इस बात को इस प्रकार समझ सकते है—बालक जन्म लेने के पश्चात् सबसे पहले नेत्रो को खोलकर जो प्राप्त करता है, उसमे किसकी अपेक्षा है? दो समान पदार्थों का ज्ञान यदि एक साथ हो तो उसमे भी किसी की अपेक्षा दिखलाई नही देती। इन सभी बातो को लक्ष्य मे रखते हुए यह मानना ही चाहिए कि किसी एक वस्तु का स्वविषयक ज्ञान अन्य किसी वस्तु की अपेक्षा के बिना ही होता है। उसके प्रतिपक्षी पदार्थ का स्मरण होने पर इस प्रकार का व्यपदेश होता है कि यह अमुक देश से ह्रस्व है, अमुक से दीर्घ, आदि। इसलिए पदार्थों को अपने आप सिद्ध मानना चाहिए।[५६]

---

५४ विशेषावश्यक भाष्य १७०२-४

५५ विशेषावश्यक भाष्य १७०५ से ६

५६ विशेषा० भाष्य १७१०-११

पदार्थों के अस्तित्व आदि धर्मों को इस प्रकार सिद्ध कर सकते है— यदि पदार्थ के अस्तित्व आदि धर्म अन्यनिरपेक्ष न हो तो ह्रस्व पदार्थों के नष्ट होने पर, दीर्घ पदार्थों को भी सर्वथा नष्ट हो जाना चाहिए, चूँकि दीर्घ पदार्थों की सत्ता ह्रस्व पदार्थ सापेक्ष है। पर इस प्रकार नही होता। इसलिए यह सिद्ध होता है कि पदार्थ के ह्रस्व आदि धर्मों का ज्ञान और व्यवहार ही परसापेक्ष है, उसके अस्तित्व आदि धर्म नही।[५७] घट-सत्ता घट का धर्म होने से घट से अभिन्न है, किन्तु पट आदि से भिन्न है। घट के समान पट आदि की सत्ता, पट आदि मे है ही, इसलिए घट के समान अघटरूप पट आदि भी विद्यमान है। इस तरह अघट का अस्तित्व होने से तद्भिन्न को घट कह सकते है। यहाँ पर यह शका उद्भूत हो सकती है, यदि घट और अस्तित्व एक ही हो तो यह नियम क्यो नही बन सकता— 'जो-जो अस्ति रूप है वह सब घट ही है ?" ऐसा इसलिए नही होता कि घट का अस्तित्व घट मे ही है, पट आदि मे नही। अत घट और घट के अस्तित्व को अभिन्न मानकर भी यह नियम नही बन सकता—'जो-जो अस्ति रूप है वह सब घट ही है।[५८] केवल अस्ति (है) कहने से जितने पदार्थों मे अस्तित्व है, उन सभी का बोध होगा। इसमे घट और अघट सभी का समावेश होगा। 'घट है' इस प्रकार कहने से इतना ही परिज्ञात होगा कि केवल घट है। इसका कारण यही है कि घट का अस्तित्व घट तक ही सीमित है। जैसे वृक्ष कहने से आम, जामुन, निम्बू आदि सभी वृक्षो का बोध होता है क्योकि इन सभी मे वृक्षत्व समान रूप से है किन्तु आम कहने से केवल आम वृक्ष का ही बोध होगा क्योकि उसका वृक्षत्व उसी मे सीमित है।[५९] इसी तरह जात-अजात, दृश्य-अदृश्य आदि की भी सिद्धि की जा सकती है। इसी तरह पृथ्वी, जल, अग्नि, आदि प्रत्यक्ष दिखाई देने वाले भूतादि के विषय मे सन्देह नही होना चाहिए। वायु और आकाश प्रत्यक्ष दिखाई नही देते इसलिए उनके विषय मे सदेह हो सकता है। उस सदेह का निवारण अनुमान से हो सकता है।

वायु और आकाश का अस्तित्व

स्पर्श आदि गुणो का कोई गुणी अवश्य होना चाहिए, चूँकि वे गुण

---

५७ विशेषा० भाष्य १७१५

५८ विशेषावश्यक भाष्य १७२२-२३

५९ विशेषावश्यक भाष्य १७२४

है। जैसे रूप गुण का गुणी घट है। स्पर्श आदि गुणो का जो गुणी है वह वायु है।[६०]

पृथ्वी, जल, अग्नि वायु, इन सभी का कोई-न-कोई आधार होना चाहिए चूँकि वे सभी मूर्त ह। जो मूर्त होता है उसका आधार अवश्य होता है, जैसे पानी का आधार घट है। पृथ्वी आदि का जो आधार है वही आकाश है।

व्यक्त को भूतविषयक शका का समाधान करते हुए भगवान महावीर ने आगे कहा—"जब तक शस्त्र से उपघात न हुआ हो तब तक ये भूत सचेतन ह। शरीर के आधारभूत है, नाना प्रकार से जीवो के उपयोग मे आते ह।

भूतो की सजीवता

पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु सचेतन है चू कि उनमे जीव के लक्षण दिखलाई देते हे। आकाश अमूर्त है। वह केवल जीव का आधार ही बनता है, वह सजीव नही है। पृथ्वी सचेतन है चू कि उसमे जन्म, जरा, जीवन, मरण, क्षत-सरोहण, आहार दोहद, रोग, चिकित्सा आदि जीव के लक्षण पाये जाते हे। लाजवती क्षुद्र जीव की तरह स्पर्श से सकुचित हो जाती हे। लता अपना आश्रय प्राप्त करने की दृष्टि से मानव के समान वृक्ष की ओर बढती है। शमी आदि मे निद्रा, प्रबोध, सकोच आदि लक्षण पाये जाते है। बकुल शब्द का, अशोक रूप का, कुरुबक गध का, विरहक रस का, चपक स्पश का उपभोग करते हुए दिखलाई देते है। जल भी सचेतन है। पृथ्वी का उत्खनन करने से स्वाभाविक रूप से पानी निकलता है, वह मेढक के समान है, चू कि मेढक भी तो ऐसे ही निकलता है और मत्स्य के समान स्वाभाविक रूप से आकाश से गिरने के कारण जल को सचेतन मानना चाहिए। गाय बिना किसी की प्रेरणा के अनियमित रूप से तिर्यक् गमन करती है, वैसे ही वायु भी है, इसलिए वह सजीव है। अग्नि भी सजीव है। जैसे मनुष्य मे आहार आदि से वृद्धि और विकार दिखलाई देते है वैसे ही अग्नि मे भी काष्ठ आहार आदि से वृद्धि और विकार दिखलाई देते है।[६१]

---

६० विशेषा० भाष्य १७४९

६१ वही १७५०-५८

हिंसा-अहिंसा का विवेक

पृथ्वी आदि भूतो मे असख्यात व अनन्त जीव है तो श्रमणो के आहार आदि लेने के कारण अनन्त जीवो की हिंसा के दोष का भागी बनना पडेगा, अत श्रमणो को अहिंसक किस प्रकार माना जाय ? भूतो के सजीव होने पर भी साधु को हिंसा का दोष इसलिए नही लगता कि शस्त्रोपहत पृथ्वी आदि भूतो मे जीव नही होता। इस प्रकार के भूत निर्जीव ही होते है। यह कथन भी उचित नही है। केवल कोई व्यक्ति जीव का घातक होने से हिंसक नही है और न किसी भी जीव की हिंसा न करने से अहिंसक है। यह मानना भी तर्क-सगत नही है कि थोडे जीव हो तो हिंसा नही होती और अधिक जीव हो तो हिंसा होती है। हिंसक और अहिंसक की सही पहचान यह है कि जीव की हत्या न करने पर भी दुष्ट भावो के कारण व्यक्ति हिंसक कहलाता है और जीव का घातक होने पर भी व्यक्ति शुद्ध भावो के होने के कारण अहिंसक कहलाता है। पाँच समिति और तीन गुप्ति सम्पन्न ज्ञानी मुनि अहिंसक है। इसके विपरीत जिसका जीवन असयमी है, वह हिंसक है। सयमी किसी जीव का हनन करे या न करे वह हिंसक नही कहलाता क्योकि हिंसा और अहिंसा का आधार आत्मा का अध्यवसाय है, किन्तु क्रिया नही। वस्तुत अशुभ परि-णाम का नाम ही हिंसा है। वह अशुद्ध परिणाम बाह्य जीव के घात की अपेक्षा रखता भी है और नही भी रखता है। जो जीवहिंसा अशुभ परिणाम-जन्य है अथवा अशुभ परिणाम का जनक है वह जीववध हिंसा ही है, जो जीव-वध अशुभ परिणाम का जनक नही है, वह हिंसा की कोटि मे नही आता। जैसे शब्दादि विषयो से वीतराग को राग उत्पन्न नही होता क्योकि वे शुद्ध भाव मे होते है, वैसे ही सयमी का जीववध भी हिंसा नही, क्योकि उसका मन शुद्ध है।

इस प्रकार भगवान महावीर ने व्यक्त का सशय नष्ट कर दिया तब व्यक्त ने अपने पाच सौ शिष्यो के साथ भागवती दीक्षा ग्रहण की।[६२]

---

६२ विशेषावश्यक भाष्य १७६२ से १७६६

है। जैसे रूप गुण का गुणी घट है। स्पर्श आदि गुणो का जो गुणी है वह वायु है।[६०]

पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, इन सभी का कोई-न-कोई आधार होना चाहिए चूँकि वे सभी मूर्त है। जो मूर्त होता है उसका आधार अवश्य होता है, जैसे पानी का आधार घट है। पृथ्वी आदि का जो आधार है वही आकाश है।

व्यक्त को भूतविषयक शका का समाधान करते हुए भगवान महावीर ने आगे कहा—"जब तक शस्त्र से उपघात न हुआ हो तब तक ये भूत सचेतन है। शरीर के आधारभूत है, नाना प्रकार से जीवो के उपयोग मे आते है।

भूतो की सजीवता

पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु सचेतन है चूकि उनमे जीव के लक्षण दिखलाई देते है। आकाश अमूर्त है। वह केवल जीव का आधार ही बनता है, वह सजीव नही है। पृथ्वी सचेतन है चूकि उसमे जन्म, जरा, जीवन, मरण, क्षत-सरोहण, आहार दोहद, रोग, चिकित्सा आदि जीव के लक्षण पाये जाते है। लाजवती क्षुद्र जीव की तरह स्पर्श से सकुचित हो जाती है। लता अपना आश्रय प्राप्त करने की दृष्टि से मानव के समान वृक्ष की ओर बढती है। शमी आदि मे निद्रा, प्रबोध, सकोच आदि लक्षण पाये जाते है। बकुल शब्द का, अशोक रूप का, कुरुबक गध का, विरहक रस का, चपक स्पर्श का उपभोग करते हुए दिखलाई देते है। जल भी सचेतन है। पृथ्वी का उत्खनन करने से स्वाभाविक रूप से पानी निकलता है, वह मेढक के समान है, चूकि मेढक भी तो ऐसे ही निकलता है और मत्स्य के समान स्वाभाविक रूप से आकाश से गिरने के कारण जल को सचेतन मानना चाहिए। गाय बिना किसी की प्रेरणा के अनियमित रूप से तिर्यक् गमन करती है, वैसे ही वायु भी है, इसलिए वह सजीव है। अग्नि भी सजीव है। जैसे मनुष्य मे आहार आदि से वृद्धि और विकार दिखलाई देते है वैसे ही अग्नि मे भी काष्ठ आहार आदि से वृद्धि और विकार दिखलाई देते है।[६१]

---

६० विशेषा० भाष्य १७४९

६१ वही १७५०-५८

हिंसा-अहिंसा का विवेक

पृथ्वी आदि भूतो मे असख्यात व अनन्त जीव है तो श्रमणो के आहार आदि लेने के कारण अनन्त जीवो की हिंसा के दोष का भागी बनना पडेगा, अत श्रमणो को अहिंसक किस प्रकार माना जाय ? भूतो के सजीव होने पर भी साधु को हिंसा का दोष इसलिए नही लगता कि शस्त्रोपहत पृथ्वी आदि भूतो मे जीव नही होता। इस प्रकार के भूत निर्जीव ही होते है। यह कथन भी उचित नही है। केवल कोई व्यक्ति जीव का घातक होने से हिंसक नही है और न किसी भी जीव की हिंसा न करने से अहिंसक है। यह मानना भी तर्क-सगत नही है कि थोडे जीव हो तो हिंसा नही होती और अधिक जीव हो तो हिंसा होती है। हिंसक और अहिंसक की सही पहचान यह है कि जीव की हत्या न करने पर भी दुष्ट भावो के कारण व्यक्ति हिंसक कहलाता है और जीव का घातक होने पर भी व्यक्ति शुद्ध भावो के होने के कारण अहिंसक कहलाता है। पाँच समिति और तीन गुप्ति सम्पन्न ज्ञानी मुनि अहिंसक है। इसके विपरीत जिसका जीवन असयमी है, वह हिंसक है। सयमी किसी जीव का हनन करे या न करे वह हिंसक नही कहलाता क्योकि हिंसा और अहिंसा का आधार आत्मा का अध्यवसाय है, किन्तु क्रिया नही। वस्तुत अशुभ परि-णाम का नाम ही हिंसा है। वह अशुद्ध परिणाम बाह्य जीव के घात की अपेक्षा रखता भी है और नही भी रखता है। जो जीवहिंसा अशुभ परिणाम-जन्य है अथवा अशुभ परिणाम का जनक है वह जीववध हिंसा ही है, जो जीव-वध अशुभ परिणाम का जनक नही है, वह हिंसा की कोटि मे नही आता। जैसे शब्दादि विषयो से वीतराग को राग उत्पन्न नही होता क्योकि वे शुद्ध भाव मे होते है, वैसे ही सयमी का जीववध भी हिंसा नही, क्योकि उसका मन शुद्ध है।

इस प्रकार भगवान महावीर ने व्यक्त का सशय नष्ट कर दिया तब व्यक्त ने अपने पाच सौ शिष्यो के साथ भागवती दीक्षा ग्रहण की।[६२]

---

६२ विशेषावश्यक भाष्य १७६२ से १७६६

सुधर्मा का समाधान

[इहलोक और परलोक की विचित्रता]

व्यक्त को भी अपने शिष्यो सहित महावीर के चरणो मे दीक्षित हुए सुनकर, सुधर्मा अपने शिष्यो के साथ भगवान महावीर के पास पहुचे। महावीर ने उन्हे सम्बोधित करते हुए कहा—सुधर्मा ! तुम्हे यह सशय है कि जीव जैसा इस भव मे है वैसा ही परभव मे भी होता है या नही ? तुम्हे वेद-वाक्यो का सही अर्थ ज्ञात नही है, इसलिए तुम्हे इस प्रकार का सशय है। मैं तुम्हारे सशय का निवारण करूगा।

कार्य, कारण के समान ही होता है यह एकान्तिक नियम नही है। शृग से भी शर नामक वनस्पति उत्पन्न होती है। उसी पर यदि सरसो का लेप किया जाय तो फिर उसी मे से एक विशेप प्रकार का घास पैदा होता है। गाय और बकरी के केशो से दूब उत्पन्न होती है। इस तरह विभिन्न प्रकार के द्रव्यो के सयोग से विलक्षण वनस्पति की उत्पत्ति का वर्णन वृक्षायुर्वेद मे है। इसलिए यह मानना चाहिए कि कार्य, कारण से विलक्षण भी उत्पन्न हो सकता है।[६३]

कारणानुरूप कार्य मानने पर भी भवान्तर मे विचित्रता सभव है। कारणानुरूप कार्य स्वीकार करने पर भी यह निश्चित रूप से नही कह सकते कि मानव मरकर मानव ही बनता। यह किस प्रकार ? बीज के अनुरूप अकुर की उत्पत्ति मानने पर भी परभव मे जीव की विचित्रता माननी पडेगी, जैसे मनुष्य। भवरूपी अकुर का बीज मनुष्य स्वय न होकर उसका कर्म होता है, क्योकि कर्म विचित्र है, इसलिए उसका परभव भी विचित्र ही होगा। कम की विचित्रता का प्रमाण यह है कर्म पुद्गल का परिणाम है इसलिये उसमे बाह्य अभ्रादि विकार के सदृश वैचित्र्य होना चाहिए। कर्म की विचित्रता के राग-द्वेपादि विशेष कारण है।

कर्म के अभाव मे भी यदि भव मान लें तो क्या आपत्ति है ? इस प्रकार की स्थिति मे भव का नाश भी निष्कारण मानना होगा, और मोक्ष के लिए तपस्या आदि का अनुष्ठान भी व्यर्थ सिद्ध होगे। इसी तरह जीवो

---

६३ विशेपावश्यक भाष्य १७७० से १७७५

के वैसादृश्य को भी निष्कारण मानना होगा।[६४] इस तरह कर्म के अभाव मे भव की सत्ता मानने पर अनेक दोष उत्पन्न होगे।

कर्म के अभाव मे स्वभाव से ही परभव माना जाय तो क्या आपत्ति है? इस प्रश्न का समाधान महावीर ने इसप्रकार करते हुए कहा—स्वभाव क्या है? क्या वह कोई वस्तु है? या निष्कारणता है? या वस्तुधर्म है? वस्तु मानने पर उसकी उपलब्धि होनी चाहिए पर आकाश-कुसुम के समान उसकी उपलब्धि नही होती, वह वस्तु नही है। यदि अनुपलब्ध होने पर भी स्वभाव का अस्तित्व माना जाय तो अनुपलब्ध होने पर कर्म का अस्तित्व मानने मे क्या आपत्ति है? दूसरी बात—स्वभाव की विसदृशता आदि की सिद्धि के लिये कोई हेतु प्राप्त नही होता, जिससे जगत्-वैचित्र्य सिद्ध हो सके। स्वभाव की निष्कारणता मे भी बहुत से दोषो की सभावना है। वस्तु-धर्म मे भी स्वभाव नही माना जा सकता चूँकि उसमे भी वैसादृश्य के लिए किसी प्रकार का स्थान नही रहता। स्वभाव को पुद्गल रूप मानकर वैसादृश्य की सिद्धि की जाए तो वह कर्म रूप ही सिद्ध होगा।

भगवान महावीर ने सुधर्मा का इस प्रकार सशय दूर किया, उन्होने पाँच सौ शिष्यो के साथ भागवती दीक्षा ग्रहण की।[६५]

मंडिक का समाधान

[बध और मोक्ष]

इसके पश्चात् मण्डिक भगवान् महावीर के पास पहुँचे। भगवान ने उनके मन का सशय प्रकट करते हुए कहा—मण्डिक! तुम्हारे मन मे सशय है कि बध और मोक्ष है या नही? तुम वेद-पदो का अर्थ सम्यक् रूप से नही जानते, इसलिए ही तुम्हारे मन मे इस प्रकार का सन्देह है। मैं तुम्हारे सन्देह को पूर्ण रूप से मिटा दू गा।[६६]

---

६४ विशेषावश्यक भाष्य १७७६ से ८४

६५ विशेषावश्यक भाष्य १७८५ से १८०१

६६ विशेषा० भाष्य १८०२-१८०८

मण्डिक ! तुम इस प्रकार चिन्तन करते हो कि यदि जीव का कर्म के साथ जो सयोग है वही बध है तो बध सादि है या अनादि है। यदि उसे सादि माना जाय तो क्या प्रथम जीव और उसके बाद कर्म उत्पन्न होता है ? या प्रथम कर्म और उसके बाद जीव उत्पन्न होता है ? या दोनो साथ ही उत्पन्न होते है। इन तीनो विकल्पो मे निम्न दोष आते है—

(१) कर्म के पूर्व जीव की उत्पत्ति सभव नही, चू कि खरशृ ग के समान उसका कोई हेतु दिखलाई नही देता। यदि जीव की उत्पत्ति निर्हेतुक मानी जाए तो उसका विनाश भी निर्हेतुक मानना होगा।

(२) जीव से पूर्व कर्म की उत्पत्ति भी सभव नही, क्योकि जीव कर्म का कर्ता माना जाता है। यदि कर्ता ही न हो तो कर्म किस प्रकार उत्पन्न हो सकता है ? जीव के समान ही कर्म की निर्हेतुक उत्पत्ति भी सभव नही। कर्म की उत्पत्ति यदि बिना किसी कारण के मानी जाए तो उसका विनाश भी निर्हेतुक मानना होगा। इसलिए कर्म को जीव से पहले नही माना जा सकता।

(३) जीव और कर्म दोनो की यदि युगपत् उत्पत्ति मानी जाए तो जीव को कर्ता और कर्म को उसका कार्य नही कहा जा सकता। जैसे लोक मे एक साथ उत्पन्न होने वाले गाय के सीगो मे से एक को कर्ता और दूसरे को कार्य नही कह सकते, उसी प्रकार एक साथ उत्पन्न होने वाले जीव और कर्म मे कर्ता और कर्म का व्यवहार नही कर सकते।[६७]

जीव और कर्म का अनादि सम्बन्ध भी तर्कसगत नही है क्योकि ऐसा मानने से जीव की मुक्ति कभी नही हो सकती। जो वस्तु अनादि है वह अनन्त भी है, जिस प्रकार जीव और आकाश का सम्बन्ध। जीव और कर्म के सम्बन्ध को अनादि मानने पर अनन्त भी मानना ही होगा। ऐसी स्थिति मे जीव कभी भी मुक्त नही हो सकेगा।[६८]

उपर्युक्त सभी तर्कों का समाधान करते हुए भगवान महावीर ने कहा—शरीर और कर्म की सतति अनादि है, चू कि इन दोनो मे परस्पर कार्य-कारण भाव है जैसे बीज और अकुर। जैसे बीज से अकुर और अकुर से बीज पैदा होता है और यह क्रम अनादिकाल से चला आ रहा है, इसलिए

---

६७ विशेषावश्यक भाष्य १८०५-१८१०

६८ विशेषा० भाष्य १८११

दोनो की सन्तान अनादि है। अत तुमने जीव और कर्म सम्बन्धी जो विकल्प बताए वे निरर्थक है। जीव और कर्म की सन्तति अनादि है। जीव कर्म के द्वारा शरीर पैदा करता है, इसलिए वह शरीर का कर्ता है और शरीर द्वारा कर्म को उत्पन्न करता है, इसलिए वह कर्म का भी कर्ता है। शरीर व कर्म की सतति अनादि है, इसलिए जीव और कर्म की सतति को भी अनादि मानना चाहिए। इस तरह जीव और कर्म का बध भी अनादि है।[69]

जो अनादि है वह अनन्त भी होता है, यह कथन युक्ति-युक्त नही है। बीज और अकुर की सतति अनादि होने पर भी सान्त हो सकती है। इसी तरह अनादि कर्म-सन्तति का भी अन्त हो सकता है। बीज और अकुर मे से यदि किसी का भी अपना कार्य उत्पन्न करने से पहले नाश हो जाए तो उसकी सन्तान का भी अन्त हो जाता है। प्रस्तुत नियम मुर्गी और अडे के लिए भी है। सोने और मिट्टी का सयोग अनादि-सततिगत है तथापि उपाय-विशेष से वह सयोग भी नष्ट हो जाता है। ठीक इसीप्रकार जीव और कर्म का अनादि सयोग भी सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र के द्वारा नष्ट हो सकता है।[70] भगवान ने इसके पश्चात् मोक्ष के सम्बन्ध मे प्रकाश डालते हुए भव्य और अभव्य के स्वरूप की चर्चा की।[71]

जीव और कर्म के सयोग को उपाय से नष्ट कर सकते है। जो उपाय-जन्य होता है वह कृतक होता है और जो कृतक होता है वह अनित्य होता है, जैसे घडा। इसलिए मोक्ष भी घडे आदि के समान कृतक होने से अनित्य होना चाहिए। इस शका का समाधान करते हुए भगवान महावीर ने कहा—यह नियम व्यभिचारी है—जो कृतक है वह अनित्य ही है। घटादि का प्रध्वसाभाव कृतक होने पर भी नित्य है। यदि प्रध्वसाभाव को अनित्य माने तो प्रध्वसाभाव का अभाव हो जाने से विनष्ट घट आदि पदार्थ पुन उत्पन्न हो जाने चाहिए। किन्तु इस प्रकार नही होता। इसलिए प्रध्वसाभाव को कृतक होने पर भी नित्य मानना पडता है। इसी प्रकार कृतक होने पर भी मोक्ष नित्य है।[72]

---

६९ विशेषा० भाष्य १८१३-१८१५
७० विशेषा० भाष्य १८१७-१८१९
७१ विशेषा० भाष्य १८२१-१८३६
७२ विशेषा० भाष्य १८३७

इसके पश्चात् भगवान ने सिद्ध-मुक्त आत्माओ के स्वरूप की चर्चा की और लोकाकाश आदि को समझाया।

इस प्रकार भगवान महावीर ने मडिक के सशय का निवारण किया तब उन्होने अपने साढे तीनसौ शिष्यो के साथ भगवान के चरणो मे दीक्षा ग्रहण की।[73]

मौर्यपुत्र का समाधान

[देवो का अस्तित्व]

मडिक के दीक्षित होने के समाचारो को सुनकर मौर्यपुत्र भी अपने शिष्यो के साथ भगवान के पास पहुँचे। भगवान ने मौर्यपुत्र को सम्बोधित करते हुए कहा—तुम्हारे मन मे यह सन्देह है कि देव है या नही ? मैं तुम्हारे सन्देह को मिटाऊँगा।

मौर्यपुत्र ! तुम यह विचार करते हो कि नारकीय जीव तो परतन्त्रता की बेडियो मे जकडे हुए हे और उन्हे अत्यन्त कष्ट है, इसलिए वे हमारे सामने आने मे असमर्थ है, किन्तु देव तो सर्वतत्र-स्वतत्र विहारी है और उनका प्रभाव भी अद्भुत है, तथापि वे दिखाई नही देते, इसलिए उनके अस्तित्व के विपय मे तुम्हे सन्देह है।

उस सन्देह का निवारण भी किया जा सकता है। कम-से कम सूर्य, चन्द्र, प्रभृति ज्योतिष्क देव तो तुम्हे प्रत्यक्ष दिखाई देते है, इसलिए यह नही कह सकते कि देव कभी दृष्टिगोचर नही होते। इसके अतिरिक्त लोक मे देव द्वारा अनुग्रह और पीडा ये दोनो भी दिखलाई देते है, इसके आधार पर भी देवो का अस्तित्व मानना चाहिए।[74]

चाद, और सूर्य आदि तो शून्यनगर के समान है। उनमे रहने वाला कोई भी नही है इसलिए यह कैसे कहा जा सकता है कि चाद और सूर्य का प्रत्यक्ष होने से देवो का भी प्रत्यक्ष हो गया ? इस सन्देह को निवारण करते हुए महावीर ने कहा—चाद और सूर्य को आलय मानने पर उनमे रहने

---

७३ विशेपा० भाष्य १८६३

७४ विशेषा० भाष्य १८६४ से ७०

वाला किसी-न-किसी को अवश्य मानना चाहिए, नही तो उन्हे आलय नही कह सकते।

यह शका उद्बुद्ध हो सकती है कि जिन्हे आलय कहा गया है वे वस्तुत आलय है या नही ? जब तक-इसका निर्णय न हो तब तक यह नही कह सकते कि वह निवासस्थान ही है, उसमे रहने वाला कोई-न-कोई होना चाहिए। हो सकते है कि वे रत्नो के गोले ही हो ? इसका समाधान करते हुए कहा--वे देवो के विमान ही है चू कि वे विद्याधरो के विमान के समान रत्ननिर्मित है और आकाश मे चलते है।

सूर्य और चाद आदि के विमानो को मायिक क्यो माना जाय ? वस्तुत वे मायिक नही है। किंचित् समय के लिए उन्हे मायिक भी मान ले तो माया को बनाने वाले देव भी मानने ही होगे, क्योकि बिना मायावी के माया कहाँ सभव है। दूसरी बात माया तो कुछ समय मे नष्ट हो जाती, किन्तु ये विमान तो तीनो कालो मे रहते है, अत शाश्वत है, अत उन्हे मायिक कैसे कहा जा सकता है ?

देवो के अस्तित्व को सिद्ध करने के लिए एक हेतु यह भी दे सकते है कि जो लोग प्रकृष्ट पाप करते है, उनको फल भोगने के लिये नारको का अस्तित्व जब आप मानते है तब प्रकृष्ट पुण्य करने वालो के लिए देवो का अस्तित्व भी मानना चाहिए।[७५]

प्रश्न है कि यदि देव है और अपनी इच्छा के अनुसार परिभ्रमण करते है तो मनुष्यलोक मे क्यो नही आते ?

समाधान है--सामान्य रूप से देव इस लोक मे इसलिए नही आते कि स्वर्ग के दिव्य पदार्थों मे ही आसक्त रहते है। वहा के विषय भोगो मे ही लिप्त रहते है। उससे ही उनको वहाँ से अवकाश नही मिलता। मनुष्य-लोक की दुर्गन्ध ही उन्हे यहाँ आने मे रुकावट पैदा करती है, और यहाँ आने का विशेष प्रयोजन भी तो नही है, तथापि वे कभी कभी इस लोक मे आते है। तीर्थंकर के जन्म, दीक्षा, केवलप्राप्ति, निर्वाण आदि प्रसगो पर देव इस लोक मे आया करते है। पूर्वभव के राग और वैर के कारण भी उनका आगमन होता है।

---

७५ विशेषा० भाष्य १८७१ से ७४

भगवान् महावीर ने मौर्यपुत्र का देवविपयक सशय दूर किया और उन्होने अपने साढे तीन सौ शिष्यो के साथ भगवान् महावीर के पास दीक्षा ग्रहण की।[७६]

अकम्पित का समाधान

[नारको का अस्तित्व]

मौर्यपुत्र ने भी जब अपने शिष्यो सहित दीक्षा ग्रहण कर ली तब अकम्पित अपने शिष्यो के साथ महावीर के पास पहुँचे। महावीर ने उन्हे सम्बोधित करते हुए कहा—अकम्पित! तुम्हारे मन मे नारक है या नही? यह सशय है। इसका समाधान इस प्रकार है।

प्रकृष्ट पाप फल का उपभोग करने वाला कोई-न कोई अवश्य होना चाहिए। जघन्य, मध्यम कर्मफल के भोक्ता तिर्यंच और मनुष्य है, और प्रकृष्ट पापफल के भोक्ता नारक है।

अत्यन्त कष्ट पाते हुए तिर्यंच और मानवो को ही प्रकृष्ट पापफल का उपभोक्ता मान ले तो क्या आपत्ति है? जिस प्रकार देवो मे सुख का प्रकर्ष है वैसा सुख का प्रकर्ष तिर्यच और मनुष्यो मे नही है, इसलिए उन्हे नारक नही कह सकते। ऐसा एक भी तिर्यच और मनुष्य नही मिलेगा जो पूर्ण रूप से दु खी ही हो। इसलिए प्रकृष्ट पाप-कर्मफल के भोक्ता के रूप मे तिर्यच और मनुष्यो से पृथक् नारको का अस्तित्व मानना चाहिए।[७७]

इस प्रकार भगवान् ने अकपित के सशय को मिटा दिया तब उन्होने भी अपने साढे तीनसौ शिष्यो के साथ भागवती दीक्षा अगीकार की।

अचलभ्राता का समाधान

[पुण्य-पाप का सद्भाव]

अकम्पित को भी दीक्षित हुआ जानकर पण्डित अचलभ्राता भी अपने शिष्यो के साथ भगवान् के पास पहुँचे। महावीर ने उनको सम्बोधित

---

७६ विशेपा० भाष्य १८७५-१८७७

७७ विशेपा० भाष्य १८८५ से १९००

करते हुए कहा—अचलभ्राता ! तुम्हे पुण्य पाप का सद्भाव है या नही ? इस सम्बन्ध मे सशय है, मैं तुम्हारे सशय का निवारण करूँगा।

पुण्य-पाप के सम्बन्ध मे (१) केवल पुण्य ही है, पाप नही, (२) केवल पाप ही है, पुण्य नही, (३) पुण्य और पाप एक ही साधारण वस्तु है भिन्न-भिन्न नही, (४) पुण्य और पाप भिन्न-भिन्न है, (५) स्वभाव ही सब कुछ है, पुण्य-पाप कुछ नही। ये पाँच विकल्प हे।

(१) केवल पुण्य का ही सद्भाव है, पाप का सर्वथा अभाव है। पुण्य की ज्यो-ज्यो अभिवृद्धि होती है, वैसे-वैसे सुख की भी वृद्धि होती है। पुण्य की ज्यो-ज्यो हानि होती है त्यो-त्यो सुख की भी हानि होती है। पुण्य का सर्वथा क्षय होने पर मोक्ष होता है।

(२) केवल पाप का ही सद्भाव है। पुण्य का सर्वथा अभाव है। पाप की ज्यो-ज्यो वृद्धि होती है त्यो त्यो दु ख बढता है। पाप की क्रमश· हानि होने पर तज्जनित दु ख का भी क्रमश अभाव होता है। पाप का पूर्णरूप से क्षय होने पर मोक्ष होता है।[७८]

(३) पुण्य और पाप अलग-अलग न होकर एक ही साधारण वस्तु के दो भेद है। इस साधारण वस्तु मे जब पुण्य की मात्रा अधिक हो जाती है, तब वह पुण्य कहलाता है और पाप की मात्रा बढने पर पाप कहलाता है। दूसरे शब्दो मे इस प्रकार कहा जा सकता है पुण्याश का अपकर्ष होने पर उसे पाप कहते हे ओर पापाश का अपकर्ष होने पर उसे पुण्य कहते है।

(४) पुण्य ओर पाप दोनो स्वतत्र हे। सुख का कारण पुण्य है और दु ख का कारण पाप है।

(५) इस ससार मे पुण्य और पाप जैसी कोई वस्तु नही है। समस्त भवप्रपच स्वभाव से ही होता है।

ये जो पाँच विकल्प है उसमे चतुर्थ विकल्प ही युक्ति-सगत है। पुण्य और पाप ये दोनो स्वतत्र हे, एक दु ख का कारण है और दूसरा सुख का। स्वभाववाद आदि युक्ति से बाधित है।

दु ख की प्रकृष्टता उसके अनुरूप कर्म के प्रकर्ष से प्रकट होती है। जैसे सुख के प्रकृष्ट अनुभव का आधार पुण्य प्रकर्ष है वैसे ही दु ख के प्रकृष्ट अनु-

---

७८ विशेषा० भाष्य १९०५-१९१०

भव का आधार पाप-प्रकर्ष है। इसलिए दु खानुभव का कारण पुण्य का अपकर्ष नही अपितु पाप का प्रकर्ष हे। इस तरह केवल पापवाद का भी निरसन कर सकते हे। सकीर्ण पक्ष को निरस्त करते हुए भगवान् महावीर ने कहा—कोई भी कर्म पुण्य पाप उभयरूप नही हो सकता, चू कि ऐसा कर्म निर्हेतुक है। यह किस प्रकार ? इसके उत्तर मे भगवान् ने कहा—कर्मबधन का कारण योग है वह एक समय मे या तो शुभ होगा, या अशुभ होगा किन्तु वह शुभाशुभ उभयरूप नही हो सकता। इसलिए उसका कार्य या तो शुभ होगा, या अशुभ होगा। वह उभयरूप नही हो सकता। जो शुभ कार्य है वह पुण्य है और जो अशुभ कार्य है वह पाप है।

पुण्य और पाप का लक्षण बताते हुए महावीर ने कहा—जो स्वय शुभ वर्ण, गध, रस तथा स्पर्शयुक्त हो और जिसका विपाक भी शुभ हो वह पुण्य है, जो इसके विपरीत है वह पाप है। पुण्य और पाप ये दोनो पुद्गल है, वे पुद्गल न तो मेरु के समान स्थूल हे और न परमाणु के समान अत्यन्त सूक्ष्म है।[७९]

भगवान् महावीर ने इस प्रकार अचलभ्राता के सन्देह का निवारण किया, उन्होने भी अपने तीनसौ शिष्यो के साथ भगवान् के पास दीक्षा ग्रहण की।

मेतार्य का समाधान

[परलोक का सद्भाव]

अचलभ्राता के दीक्षित होने के समाचार सुनकर मेतार्य भी अपने तीनसौ शिष्यो के साथ महावीर के पास पहुँचे। मेतार्य को सम्बोधित कर महावीर ने कहा—मेतार्य ! तुम्हे सशय है कि परलोक है या नही ? मैं तुम्हारे सशय का निवारण करूँगा।

मेतार्य ! तुम्हारा यह मन्तव्य है कि मद्यांग और मद की तरह भूत और चैतन्य मे किसी प्रकार का भेद नही है, इसलिए परलोक मानना अनावश्यक है। जब भूतसयोग के नाश के साथ ही चैतन्य का भी नाश हो

---

७९ विशेषा० भाष्य १९११ से १९४०

जाता है तब परलोक मानने की क्या आवश्यकता है। इसी तरह सर्व-व्यापी एक ही आत्मा का अस्तित्व मानने पर भी परलोक की सिद्धि नही हो सकती।

इन दोनो हेतुओ का निवारण करते हुए महावीर ने कहा भूत-इन्द्रिय आदि से पृथक् स्वरूप आत्मा का धर्म चैतन्य है। इस बात की सिद्धि पूर्व की जा चुकी है। इसलिए आत्मा को स्वतन्त्र द्रव्य मानना चाहिए। इसी तरह अनेक आत्माओ का अस्तित्व भी पहले सिद्ध किया जा चुका है। इस लोक से अलग देव आदि परलोको का सद्भाव भी मौर्य और अकपित की चर्चा मे बता चुका हूँ,[८०] इसलिये परलोक का सद्भाव तर्कसगत है। आत्मा उत्पाद, व्यय, और ध्रौव्यस्वभावयुक्त है, इसलिये मृत्यु के बाद उसका सद्भाव सिद्ध है।

मेतार्य के सशय का निवारण करने पर उन्होने तीनसौ शिष्यो के साथ भगवान् के पास दीक्षा ग्रहण की।

प्रभास का समाधान

[निर्वाण की सिद्धि]

सभी को दीक्षित हुआ जानकर ग्यारहवे पण्डित प्रभास के मन मे भी यह विचार हुआ कि मैं भी भगवान् महावीर के पास जाऊँ। वे भी अपने शिष्यो के साथ महावीर के पास पहुँचे। भगवान् ने उनको सम्बोधित कर कहा—प्रभास! तुम्हारे मन मे निर्वाण है या नही? यह सशय है, मैं तुम्हारे सशय को नष्ट करूगा।[८१]

कितने ही कहते है कि दीप-निर्वाण के समान जीव का नाश ही निर्वाण-मोक्ष है।[८२] कितनो का यह मतव्य है कि विद्यमान जीव के राग-द्वेष

---

८० विशेषा० भाष्य १६४६-१६५८

८१ विशेषा० भाष्य १६७२-१६७५

८२ दीपो यथा निर्वृतिमभ्युपेतो नैवावनिं गच्छति नान्तरिक्षम।
दिश न काञ्चिद् विदिश न काञ्चित् स्नेहक्षयात् केवलमेति शान्तिम् ॥
जीवस्तथा निर्वृतिमभ्युपेतो नैवावनिं गच्छति नान्तरिक्षम्।
दिश न काञ्चिद् विदिश न काञ्चित् क्लेशक्षयात् केवलमेति शान्तिम् ॥
—सौदरनन्द १६, २८-

आदि दु खो का अन्त हो जाने पर जो एक विशिष्ट प्रकार की अवस्था प्राप्त होती हे, वही मोक्ष है।[८३] इन दोनो मे से कौन ठीक हे ? जीव और कम का सयोग आकाश के समान अनादि हे इसलिये उसका कभी भी नाश नही हो सकता। फिर निर्वाण किस प्रकार माने।

जैसे कनक-पाषाण और कनक का सयोग अनादि हे तथापि प्रयत्न से कनक को कनक-पाषाण से पृथक् कर सकते ह, वैसे ही सम्यगज्ञान, और क्रिया द्वारा जीव और कर्म के अनादि सयोग का अन्त होकर जीव कर्म से मुक्त हो सकता है।[८४]

जिन लोगो का यह मतव्य है कि दीप-निर्वाण के समान मोक्ष मे जीव का भी नाश हो जाता है, उनकी मान्यता दोषयुक्त है। दीप की अग्नि भी सर्वथा नष्ट नही होती। वह प्रकाश परिणाम को त्याग कर अधकार परिणाम को धारण करता है। जिस प्रकार दूध दहीरूप, और घट कपाल-रूप परिणाम को धारण करता है, इसी प्रकार दीपक के समान जीव का भी सम्पूर्ण रूप से उच्छेद नही मान सकते। यहाँ पर यह शका उद्बुद्ध हो सकती है कि यदि दीप का सर्वथा नाश नही होता तो वह बुझने के पश्चात् दृष्टिगोचर क्यो नही होता ? इसका समाधान यह है कि बुझने के पश्चात् वह अधकार मे परिणत हो जाता है, जो प्रत्यक्ष है। इसलिये यह कथन सही नही है कि वह दिखाई नही देता। दीप बुझने पर उतनी ही स्पष्टता से क्यो नही दिखलाई देता ? इसका कारण यह हे कि वह उत्तरोत्तर सूक्ष्मतर परिणाम को धारण करता जाता है, इसलिए विद्यमान होने पर भी वह स्पष्ट रूप से दिखलाई नही देता। जैसे बादल छिन्न-भिन्न होने के पश्चात् विद्यमान होने पर भी आकाश मे दिखलाई नही देते और अजन-रज विद्यमान होने पर भी आँखो मे दिखाई नही देती, उसी तरह दीपक भी बुझने पर विद्यमान होते हुए वह अपने सूक्ष्म-परिणाम के कारण स्पष्टरूप से दिखाई नही देता। इसी प्रकार निर्वाण मे भी जीव का सर्वथा नाश नही होता।

जैसे दीप जब निर्वाण प्राप्त करता है तब वह परिणामान्तर को प्राप्त होता है पर पूर्ण रूप से नष्ट नही होता। उसी तरह जीव भी जब परिनिर्वाण प्राप्त करता है तब वह निराबाध सुखरूप परिणामान्तर को प्राप्त करता है,

---

८३ केवलसविद्दर्शनरूपा सर्वार्तिदु खपरिमुक्ता।
मोद ते मुक्तिगता जीवा क्षीणान्तरारिगणा ॥

८४ विशेषा० भाष्य १९७७

पर सर्वथा नष्ट नही होता, इस प्रकार जीव की दु.ख क्षयरूप विशेष अवस्था ही निर्वाण है, मोक्ष है, मुक्ति है। जो जीव मुक्त हो चुका है उसे परम सुख की उपलब्धि होती है, जो सुख स्वाभाविक है और उसमे किसी भी प्रकार की बाधा नही होती।

यह मानना भी उचित नही है कि मुक्तावस्था मे ज्ञान का अभाव है।[८५] ज्ञान तो आत्मा का स्वरूप है। जिस प्रकार परमाणु कभी भी अमूर्त नही हो सकता वैसे आत्मा भी कभी ज्ञानरहित नही हो सकता। इसलिए यह कथन परस्पर विरुद्ध है कि आत्मा है और वह 'ज्ञान रहित' है। ज्ञान आत्मा का स्वरूप है इसका क्या प्रमाण ? यह बात तो स्वानुभव से ही सिद्ध है कि आत्मा ज्ञान स्वरूप है। इस प्रकार आत्मा की ज्ञानस्वरूपता स्वसवेदन-प्रत्यक्ष से ही सिद्ध है। दूसरे शरीर मे रही हुई आत्मा भी अनुमान के द्वारा ज्ञानस्वरूप सिद्ध हो सकती है। वह अनुमान इस तरह है— दूसरे के शरीर मे रही हुई आत्मा ज्ञानस्वरूप है चू कि उसमे प्रवृत्ति और निवृत्ति दिखलाई देती है, यदि वह ज्ञानस्वरूप न हो तो इष्ट मे प्रवृत्त और अनिष्ट से निवृत्त नही हो सकता ? हम उसमे प्रत्यक्ष इष्ट प्रवृत्ति और अनिष्ट निवृत्ति देखते है, इसलिए उसे ज्ञानस्वरूप ही मानना चाहिए। जैसे जाज्वल्यमान प्रदीप को छिद्रयुक्त आवरण से आच्छादित करने पर वह अपना प्रकाश उन छिद्रो से किञ्चिन्मात्र ही फैला सकता है। वैसे ही ज्ञान-स्वरूप आत्मा भी आवरणो का क्षयोपशम होने से इन्द्रिय रूप छिद्रो द्वारा अपना प्रकाश किञ्चिन्मात्र ही फैला सकता है। जो मुक्त आत्मा है उनमे आवरणो का पूर्ण अभाव है, इस कारण वह अपने पूर्णरूप मे प्रकाशित होती है। उसे ससार के सभी पदार्थों का परिज्ञान होता है। अत यह सिद्ध है कि मुक्त आत्मा ज्ञानी है।[८६]

मुक्तावस्था मे जो सुख है उसमे किसी प्रकार की बाधा नही है, पर यह कथन समझ मे नही आता, क्योकि पुण्य से सुख होता है और पाप से दु ख किन्तु मुक्तात्मा मे पुण्य-पापरूप किसी भी कर्म का सद्भाव नही है अत उसमे न सुख होना चाहिए और न दु ख ही होना चाहिए। दूसरी बात सुख-दु ख का मूल शरीर है। मुक्ति मे शरीर का अभाव है, इसलिए वहा पर भी

---

८५ विशेषावश्यक भाष्य १९८७ से १९९२

नैयायिको की यही मान्यता है—न सच्चिदानन्दमयी मुक्ति।

८६ विशेषावश्यक भाष्य १९९७-२००१

आकाश की भाँति सुख और दु ख दोनो ही नही होने चाहिए ? इस प्रश्न का उत्तर देते हुए भगवान् महावीर ने कहा—वस्तुत पुण्य का फल भी दु ख ही है चू कि वह कर्मजन्य है, जो कर्मजन्य होता है वह तो पापफल के समान ही दु खरूप होता है। इसका विरोधी अनुमान भी कोई उपस्थित कर सकता है "पाप का फल भी वस्तुत सुखरूप ही हे चू कि वह कर्मजन्य है। जो कर्म-जन्य होता है वह पुण्यफल के समान सुखरूप ही होता है। पाप का फल भी कर्म-जन्य है एतदर्थ वह भी सुखरूप होना चाहिए। दूसरी बात यह है कि पुण्यफल का सवेदन अनुकूल प्रतीत होने से सुखरूप है। ऐसी स्थिति मे पुण्य-फल को दु खरूप कहना प्रत्यक्षविरुद्ध है ?" इस सशय का समाधान करते हुए भगवान् ने कहा—जिसे प्रत्यक्ष-सुख कहा जाता है वह सुख नही अपितु दु ख ही है। ससार जिसको सुख मानता है वह व्याधि के प्रतीकार के समान दु ख रूप है। इसलिए वस्तुत पुण्य के फल को भी दु ख ही मानना चाहिए। इस बात के लिए अनुमान इस प्रकार दिया जा सकता है, विपयजन्य सुख दु ख ही है चू कि वह भी दु ख के प्रतीकार के रूप मे है, जो दु ख के प्रतीकार के रूप मे होता है वह कुष्ट आदि रोग के निवारण के लिए क्वाथपान आदि चिकित्सा के समान दु खरूप ही होता है, ऐसा होने पर भी उपचार को सुख मानते है। पारमार्थिक सुख के अभाव मे औपचारिक सुख सभव नही है, इसलिए मुक्त जीव के सुख को पारमार्थिक मानना चाहिए। यह सुख पूर्णरूप से दु ख के क्षय से होता है। जिसमे बाह्य वस्तु का ससर्ग किञ्चित् भी अपेक्षित नही है। इसलिए मुक्तावस्था का सुख विशुद्ध और मुख्य सुख है।

इस प्रकार भगवान महावीर ने प्रभास का सशय भी नष्ट कर दिया तब उन्होने भी तीनसौ शिष्यो के साथ दीक्षा ग्रहण की।[८७]

ये ग्यारह ही विद्वान् दीक्षित होकर भगवान महावीर के धर्म सघ के गणधर बने। इनके साथ जो-जो शिष्य थे वे उनके सान्निध्य मे रहे 'तथा उनके नौ गण बने । गणो का विस्तृत परिचय अगले प्रकरण मे देखना चाहिए।

⁂ ⁂

---

८७ विशेपावश्यक भाष्य २०२४

४ तीर्थंकर जीवन
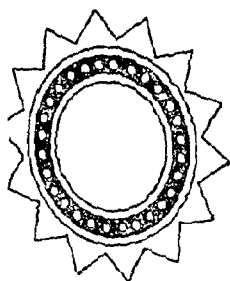
* तीथ-स्थापना
* राजगृह मे धमजागृति
* विदेह की ओर प्रस्थान
* वत्सदेश मे विहार
* पुन राजगृह मे
* सिंधु सौवीर का एतिहासिक प्रवास
* वाराणसी एव उसके परिपाश्र्व मे
* श्रेणिक की जिज्ञासाए
* आर्द्रकमुनि द्वारा आक्षेप परिहार
* पचवर्षीय प्रवास
* श्रमणोपासक कुडकौलिक
* सद्दालपुत्र का व्रतग्रहण
* अतिमुक्तक मुनि
* महाशतक का व्रतग्रहण
* आर्य स्कदक
* गोशालक का विद्रोह
* महाशिलाकटक युद्ध
* श्रमण केशीकुमार और गौतम
* तत्त्वचर्चाएँ
* सोमिल के प्रश्नोत्तर
* अम्बड परिव्राजक
* गागेय अनगार
* गौतम की जिज्ञासाए
* तत्त्वज्ञ मद्दुक
* पार्श्वापत्य उदकपेढाल
* सुदर्शन सेठ की दीक्षा
* आनद को अवधिज्ञान
* किरातराज की दीक्षा
* अन्यतीर्थिक और स्थविर
* पावा मे अतिम वर्षावास
* शिष्य परिवार
* महावीर और बुद्ध के निर्वाण— पर तुलनात्मक दृष्टि
* एतिहासिक दृष्टि से निर्वाणकाल

तीर्थ-स्थापना

भगवान् महावीर के प्रथम समवसरण मे ही पूर्वभारत के ग्यारह महापण्डित अपनी प्रच्छन्न शकाओ का सम्यक् समाधान पाकर अपनी-अपनी शिष्यमण्डली सहित दीक्षित हो गये। अर्थात् एक ही दिन मे चार हजार चारसौ शिष्य बन गये।[1]

पूर्व पृष्ठो मे विस्तार के साथ आर्या चन्दनबाला का वर्णन किया जा चुका है। वह उस समय कौशाम्बी मे थी। आकाश मार्ग से देवविमानो को जाते हुए देखकर उसने अनुमान लगाया कि भगवान् को केवलज्ञान हो गया है। उसके मन मे सयम लेने की उत्कृष्ट भावना जगी। अवधिज्ञान से देव ने उसकी भावना को जाना और उसे भी समवसरण मे ले गया। दीक्षित बनाने के लिए उसने भगवान् से नम्र प्रार्थना की। भगवान् ने उसे दीक्षित किया और साध्वी-समुदाय की उसे प्रमुखा बनाई।[2] आर्या चन्दनबाला ने उस समय किन-किन महिलाओ के साथ सयम ग्रहण किया, यद्यपि उनके नामनिर्देश के साथ सूची प्राप्त नही है, तथापि यह सत्य है कि चन्दनबाला के साथ अन्य सैकडो व सहस्रा महिलाओ ने भी सयम स्वीकार किया था, जिसके कारण ही भगवान् ने उसे साध्वी सघ की प्रमुखा बनाई। यदि वह उस समय अकेली ही होती तो साध्वीप्रमुखा किस प्रकार होती।

दीक्षा एक क्राति

आर्या चन्दना की दीक्षा उस युग मे एक सामाजिक व धार्मिक क्रान्ति थी, कारण कि अब तक चली आ रही वैदिक परम्परा मे पहले तो नारी को

---

१ (क) आवश्यक निर्युक्ति
(ख) विशेषावश्यक भाष्य
(ग) त्रिषष्टि० १०।५

२ (क) महावीर चरिय ८।२५७ (गुणचन्द्र)
(ख) त्रिषष्टि० १०।५।१६४

वेदाध्ययन एव धार्मिक क्रिया-काण्डो से दूर ही रखा गया था।[3] गृहस्थाश्रम को छोडकर सन्यास ग्रहण करना तो समाज विरोधीकार्य माना जाता था,[4] यही कारण है कि पूर्व के कितने ही वैदिक आचार्यों ने कुछ स्थितियो मे स्त्री को सन्यास ग्रहण की आज्ञा दी थी[5] पर उत्तरवर्ती आचार्यों ने इसका डटकर विरोध किया।[6] और उसे पाप कर्म की सज्ञा प्रदान की।[7]

तथागत बुद्ध ने जिस समय अपने धर्मचक्र का प्रवर्तन किया था, उस समय केवल भिक्षु सघ की ही स्थापना की थी और उसके विस्तार के लिए ही अथक परिश्रम किया था।[8] किन्तु उन्होने भिक्षुणी सघ की स्थापना भिक्षु सघ की स्थापना के पॉच वर्ष बाद अनिच्छापूर्वक की थी। भिक्षु-सघ की स्थापना के पाच वर्ष बाद बुद्ध की मौसी महाप्रजापति गौतमी उनके पास उस समय पहुँची, जब वे कपिलवस्तु के न्यग्रोधाराम मे विहार कर रहे थे,

---

३ देखिए—(क) शतपथ ब्राह्मण १३।२।२०।४

(ख) अस्वतत्रा धर्मे स्त्री—गौतम धर्मसूत्र १८।१

(ग) अस्वतत्रा स्त्री पुरुष प्रधाना—वासिष्ठ० ५।१

(घ) महाभारत, अनुशासन पर्व २०।१४

(ङ) मनुस्मृति ९।३

४ उत्तराध्ययन मे ९।४२ ब्राह्मण वेषधारी इन्द्र ने नमिराजर्षि से कहा—राजन्! गृहवास घोर आश्रम है, तुम इसे छोडकर दूसरे आश्रम मे जाना चाहते हो, यह उचित नही—

'घोरासम चइत्ताण, अन्न पत्थेसि आसम।
इहेव पोसहरओ, भवाहि मणुयाहिवा।।

प्रस्तुत सम्वाद से स्पष्ट होता है कि न केवल स्त्रियो के लिए किन्तु पुरुषो के लिए भी गृहस्थाश्रम को ही श्रेष्ठ माना जाता था। वाशिष्ठ धर्म शास्त्रकार ने तो सब आश्रमो मे गृहस्थाश्रम की ही श्रेष्ठता प्रतिपादित की है —

चतुर्णामाश्रमाणा तु गृहस्थश्च विशिष्यते।

—वाशिष्ट धर्मसूत्र ८।१४

५ महाभारत १२-२४५

६ स्मृतिचन्द्रिका व्यवहार पृ० २५४ मे उद्धृत आचार्य यम का मन्तव्य

७ अत्रिस्मृति १३६-१३७

८ महावग्ग पृ० ४१

उनसे स्त्रियो को प्रव्रज्या देने का अनुरोध किया किन्तु बुद्ध ने उस अनुरोध को स्पष्ट शब्दो मे अस्वीकार कर दिया।[९] किन्तु गौतमी निराश नही हुई। वह कुछ दिनो के पश्चात् पुन बुद्ध से मिलने वैशाली गई। इस बार उसने केशो को कटवा लिया था और शरीर पर काषायवस्त्र धारण कर लिये थे, तथा अन्य शाक्यस्त्रियो को भी साथ मे ले लिया था। वह कपिलवस्तु से वैशाली पैदल गई थी।[१०] गोतमी प्रव्रज्या पाने के पूर्व ही प्रव्रजित व्यक्ति जैसी वेषभूषा धारण कर पैदल इसलिए गई थी कि वुद्ध केवल नारी की शारीरिक दुर्बलता के कारण उसे सघ मे प्रवेश देने के अयोग्य न समझे।

गोतमी ने आनन्द को अपने हृदय की बात कही। आनन्द गौतमी की इच्छा को समझ कर, बुद्ध के पास गए और प्रव्रज्या देने का अनुरोध किया, किन्तु बुद्ध ने उस समय भी पुन अपनी असहमति प्रकट की, तब आनन्द ने बुद्ध को उनके उस सिद्धान्त का, जिसमे स्त्रियो को भी अर्हत् पद पाने का अधिकारी बताया गया था, स्मरण कराते हुए कहा कि गौतमी आपकी अभिभाविका, पोषिका, क्षीरदायिका है। जननी के मरने के पश्चात् उसने बहुत उपकार किए है, अत स्त्रियो को प्रव्रज्या की अनुमति प्रदान करे।[११]

आनन्द की अकाट्य तर्को ने बुद्ध को उलझा दिया। उन्होने अनिच्छापूर्वक सघ मे स्त्रियो के प्रवेश का विधान किया। स्त्रियो को प्रव्रज्या और उपसपदा की अनुमति देकर बुद्ध ने आनन्द से कहा कि यदि स्त्रियो को प्रव्रज्या एव उपसपदा की अनुमति न दी जाती तो ब्रह्मचर्य चिरस्थायी होता,

९ साधु भन्ते, लभेय्य मातुगामो तथागतप्पवेदित धम्मविनये अगारस्मा अनगारिय पव्वज्ज ति। 'अल गोतमि, मा ते रुच्चि मातुगामस्स पव्वज्जा ति।

—चुल्लवग्ग पृ० २७३

१० अथ खो महापजापती गोतमी केस छेदापेत्वा कासायानि वत्थानि वच्छादेत्वा सम्बहुलाहि साकियानीहि सद्धि येन वेसाली तेन पक्कामि।

—चुल्लवग्ग पृ० ३७३

११ "स चे, भन्ते, भव्वो मातुगामो तथागतप्पवेदिते धम्मविनये अगारस्मा अनगारिय पव्वजित्वा अरहत्तफल ति सच्छिकातु, वहूपकारा, भन्ते, महापजापती गोतमी साधू, भन्ते, लभेय्य मातुगामो पवज्ज।

—चुल्लवग्ग पृ० ३७४ नालन्दा-देवनागरी पाली ग्रन्थमाला विहार, १९५६

क्योकि जिस धर्म एव विनय मे स्त्रियाँ प्रव्रज्या नही पाती है, उसमे ब्रह्मचर्य चिरस्थायी होता है।[१२]

जैन परम्परा मे स्त्री की प्रव्रज्या के द्वार प्रारभ से ही उन्मुक्त थे। भगवान् ऋषभदेव की पुत्रियाँ ब्राह्मी आदि इस अवसर्पिणी कालचक्र की आदि श्रमणी बनी थी।[१३] भगवान अरिष्टनेमि के युग मे तो कर्मयोगी श्री कृष्ण की पद्मावती आदि अनेक महारानियो के प्रव्रज्या लेने का उल्लेख है।[१४] ज्ञातृधर्मकथा,[१५] निरयावलिका[१६] आदि मे भी अनेक घटनाये आई है। जैन परम्परा ने प्रारम से ही धार्मिक एव सामाजिक स्तर पर पुरुष और नारी को समान रखा। भगवान् महावीर ने भी नारी जाति की जागृति का एक नया साहसिक कदम प्रस्तुत किया, और आध्यात्मिक उत्क्रान्ति के लिए उनको आह्वान किया।

जो व्यक्ति श्रमण और श्रमणी के कठोर कटकाकीर्ण महामार्ग को ग्रहण करने मे असमर्थ थे, उन्होने श्रावक-श्राविका के व्रतो को ग्रहण किया।[१७] इस प्रकार श्रमण-श्रमणी, श्रावक और श्राविका रूप चतुर्विध तीर्थ[१८] की सस्थापना कर भगवान् तीर्थंकर कहलाए।

---

१२ स चे आनन्द नालभिस्स मातुगामो पव्वज्ज, चिरट्ठितिक, आनन्द, ब्रह्मचरिय अभविस्स यस्मि धम्मविनये लभति मातुगामो पवज्ज, न त ब्रह्मचरिय चिरट्ठितिक होति।

—चुल्लवग्ग, पृ० ३७६-३७७

१३ (क) जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति २

(ख) लेखक का 'ऋषभदेव एक परिशीलन' ग्रन्थ

१४ (क) अन्तकृतदशाग, वर्ग ६, ७, ८

(ख) लेखक का 'भगवान अरिष्टनेमि और कर्मयोगी श्री कृष्ण एक अनुचिन्तन' ग्रन्थ।

१५ नायाधम्मकहा—२११-२२२

१६ (क) निरयावलिका, वर्ग ४

(ख) आवश्यक चूर्णि २८६,२६१

१७ कल्पसूत्र, सुबोधिका वृत्ति सू० १३५, पत्र ३५६

१८ (क) तित्थ पुण चाउवन्नाइन्ने समणसघो त, समण समणीओ सावया सावियाओ।

—भगवती २०।८।६८२

उनसे स्त्रियो को प्रव्रज्या देने का अनुरोध किया किन्तु बुद्ध ने उस अनुरोध को स्पष्ट शब्दो मे अस्वीकार कर दिया।[९] किन्तु गौतमी निराश नही हुई। वह कुछ दिनो के पश्चात् पुन बुद्ध से मिलने वैशाली गई। इस वार उसने केशो को कटवा लिया था और शरीर पर कापायवस्त्र धारण कर लिये थे, तथा अन्य शाक्यस्त्रियो को भी साथ मे ले लिया था। वह कपिल-वस्तु से वैशाली पैदल गई थी।[१०] गौतमी प्रव्रज्या पाने के पूर्व ही प्रव्रजित व्यक्ति जैसी वेपभूपा धारण कर पैदल इसलिए गई थी कि बुद्ध केवल नारी की शारीरिक दुर्वलता के कारण उसे सघ मे प्रवेश देने के अयोग्य न समझे।

गोतमी ने आनन्द को अपने हृदय की बात कही। आनन्द गौतमी की इच्छा को समझ कर, बुद्ध के पास गए और प्रव्रज्या देने का अनुरोध किया, किन्तु बुद्ध ने उस समय भी पुन अपनी असहमति प्रकट की, तव आनन्द ने बुद्ध को उनके उस सिद्धान्त का, जिसमे स्त्रियो को भी अर्हत् पद पाने का अधिकारी वताया गया था, स्मरण कराते हुए कहा कि गौतमी आपकी अभि-भाविका, पोषिका, क्षीरदायिका है। जननी के मरने के पश्चात् उसने बहुत उपकार किए है, अत स्त्रियो को प्रव्रज्या की अनुमति प्रदान करे।[११]

आनन्द की अकाट्य तर्कों ने बुद्ध को उलझा दिया। उन्होने अनिच्छा-पूर्वक सघ मे स्त्रियो के प्रवेश का विधान किया। स्त्रियो को प्रव्रज्या और उपसपदा की अनुमति देकर बुद्ध ने आनन्द से कहा कि यदि स्त्रियो को प्रव्रज्या एव उपसपदा की अनुमति न दी जाती तो ब्रह्मचर्य चिरस्थायी होता,

९ साधु भन्ते, लभेय्य मातुगामो तथागतप्पवेदित धम्मविनये अगारस्मा अनगारिय पव्वज्ज ति। 'अल गोतमि, मा ते रुच्चि मातुगामस्स पव्वज्जा ति।
—चुल्लवग्ग पृ० ३७३

१० अथ खो महापजापती गोतमी केस छेदायेत्वा कासायानि वत्थानि वच्छादेत्वा सम्बहुलाहि साकियानीहि सद्धि येन वेसाली तेन पक्कामि।
—चुल्लवग्ग पृ० ३७३

११ "स चे, भन्ते, भब्बो मातुगामो तथागतप्पवेदिते धम्मविनये अगारस्मा अनगारिय पव्वजित्वा अरहत्तफल ति सच्छिकातु, बहूपकारा, भन्ते, महापजापती गोतमी
साधू, भन्ते, लभेय्य मातुगामो पवज्ज।
—चुल्लवग्ग पृ० ३७४ नालन्दा-देवनागरी पाली ग्रन्थमाला विहार, १९५६

क्योकि जिस धर्म एव विनय मे स्त्रियाँ प्रव्रज्या नही पाती है, उसमे ब्रह्मचर्य चिरस्थायी होता है।[१२]

जैन परम्परा मे स्त्री की प्रव्रज्या के द्वार प्रारंभ से ही उन्मुक्त थे। भगवान् ऋषभदेव की पुत्रियाँ ब्राह्मी आदि इस अवसर्पिणी कालचक्र की आदि श्रमणी बनी थी।[१३] भगवान अरिष्टनेमि के युग मे तो कर्मयोगी श्री कृष्ण की पद्मावती आदि अनेक महारानियो के प्रव्रज्या लेने का उल्लेख है।[१४] ज्ञातृधर्मकथा,[१५] निरयावलिका[१६] आदि मे भी अनेक घटनाये आई है। जैन परम्परा ने प्रारभ से ही धार्मिक एव सामाजिक स्तर पर पुरुष और नारी को समान रखा। भगवान् महावीर ने भी नारी जाति की जागृति का एक नया साहसिक कदम प्रस्तुत किया, और आध्यात्मिक उत्क्रान्ति के लिए उनको आह्वान किया।

जो व्यक्ति श्रमण और श्रमणी के कठोर कटकाकीर्ण महामार्ग को ग्रहण करने मे असमर्थ थे, उन्होने श्रावक-श्राविका के व्रतो को ग्रहण किया।[१७] इस प्रकार श्रमण-श्रमणी, श्रावक और श्राविका रूप चतुर्विध तीर्थ[१८] की सस्थापना कर भगवान् तीर्थंकर कहलाए।

---

१२ स चे आनन्द नालभिस्स मातुगामो पव्वज्ज, चिरट्ठितिक, आनन्द, ब्रह्मचरिय अभविस्स यस्मि धम्मविनये लभति मातुगामो पवज्ज, न त ब्रह्मचरिय चिरट्ठितिक होति।

—चुल्लवग्ग, पृ० ३७६-३७७

१३ (क) जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति ३
(ख) लेखक का 'ऋषभदेव एक परिशीलन' ग्रन्थ

१४ (क) अन्तकृतदशाग, वर्ग ६, ७, ८
(ख) लेखक का 'भगवान अरिष्टनेमि और कर्मयोगी श्री कृष्ण एक अनुचिन्तन' ग्रन्थ।

१५ नायाधम्मकहा—२।१-२२२

१६ (क) निरयावलिका, वर्ग ४
(ख) आवश्यक चूर्णि २८६,२९१

१७ कल्पसूत्र, सुबोधिका वृत्ति सू० १३५, पत्र ३५६

१८ (क) तित्थ पुण चाउवण्णाइन्ने समणसघो त, समण समणीओ सावया सावियाओ।
—भगवती २०।८।६८२

तीर्थ की सस्थापना होने के पश्चात् भगवान् के जो ग्यारह महापण्डित मूल शिष्य बने थे उन्हे 'उप्पन्ने इ वा, विगमे इ वा, धुवे इ वा'[१९] इस प्रकार त्रिपदी का ज्ञान दिया।[२०] यह त्रिपदी वामन के लघु चरण की तरह दिखलाई देने पर भी सम्पूर्ण श्रुतज्ञान को नापने वाली सिद्ध हुई। उन्होने त्रिपदी के आधार से द्वादशागी[२१] की रचना कर अपनी प्रबल प्रतिभा का परिचय दिया। भगवान् ने ग्यारह ही पण्डितो की गणधर के गौरवशाली पद पर प्रतिष्ठा की।

कल्पसूत्र के अनुसार भगवान् महावीर के नौ गण और ग्यारह गणधर थे।[२२] इसका स्पष्टीकरण कल्पसूत्र की प्राय सभी टीकाओ मे तथा आचार्य हेमचन्द्र ने इस प्रकार किया है कि सात गणधरो की सूत्र-वाचना पृथक्-पृथक् थी किन्तु अकम्पित और अचलभ्राता तथा मेतार्य और प्रभास की एक वाचना हुई, इस कारण ग्यारह गणधर और नौ गण हुए।[२३]

यह भी स्मरण रखना चाहिए कि नौ गणधर तो भगवान् महावीर

(ख) तीर्थं नाम प्रवचन तच्च निराधार न भवति, तेन साधु साध्वी, श्रावक-श्राविकारूप चतुर्वर्ण सघ.।

—सत्तरियसय ठाणा वृत्ति १०० द्वार० आ० म०

१९ उप्पन्ने विगए परिणए।

—भगवती ५।६।२२५

२० जाते सघे चतुर्धैव ध्रौव्योत्पादव्ययात्मिकाम्।
इन्द्रभूति प्रभृताना त्रिपदी व्याहरत् प्रभु ॥

—त्रिषष्टि० १०।५।१६५

२१ (क) महावीर चरिय ८।२५७—(गुण०)
(ख) त्रिषष्टि० १०।५।१६५
(ग) दर्शन-रत्न-रत्नाकर पत्र ४०३।१

२२ तेण कालेण तेण समएण समणस्स भगवओ महावीरस्स नव गणा इक्कारस गणहरा होत्था।

—कल्पसूत्र

२३ (क) कल्पसूत्र—सुबोधिकावृत्ति
(ख) महावीर चरिय, गुणचन्द्र ८।२५७
(ग) त्रिषष्टि० १०।५।१७४

के जीवनकाल मे ही मुक्त हो गए थे।[२४] इन्द्रभूति गौतम ने भी भगवान् के निर्वाण के दिन ही केवलज्ञान प्राप्त कर लिया था, अत सभी गण दीर्घजीवी सुधर्मा के सरक्षण मे ही रहे।

जैन परम्परा मे गणधरो का एक गौरवपूर्ण पद है और उनका व्यवस्थित दायित्व भी है। बौद्ध परम्परा मे गणधर जैसा सुनिश्चित पद नही रहा है किन्तु सारिपुत्र, मौद्गल्यायन, आनन्द, उपालि, महाकाश्यप, आज्ञाकौडिन्य आदि बुद्ध के प्रमुख शिष्य थे। ये सभी बहुत सूझ-बूझ के धनी, विद्वान् और व्याख्याता थे। इनका बौद्ध भिक्षु सघ मे गणधरो जैसा ही गौरव व दायित्व था।[२५] किंतु सघ-व्यवस्था की दृष्टि से जो बात निर्ग्रन्थ परम्परा मे आई गणधर, गणावच्छेदक आदि पदो की व्यवस्था की गई, वह उस युग मे भी एक पूर्ण प्रजातत्रीय धर्मसघ का सुन्दर उदाहरण था।

राजगृह में धर्मजागृति

भगवान् मध्यम पावा से क्रमश विहार करते हुए अपने धर्मसघ के साथ मगध की राजधानी राजगृह नगर मे पधारे। राजगृह नगर का सास्कृतिक, राजनैतिक, धार्मिक महत्त्व अनूठा व अपूर्व रहा है, जिसका विस्तार से परिचय परिशिष्ट विभाग मे दिया गया है। भगवान् पार्श्वनाथ की परम्परा के बहुत से श्रद्धालु श्रावक वहाँ रहते थे। भगवान गुणशिलक उद्यान मे विराजे, जिसे वर्तमान मे 'गुणावा' कहते है।[१] भगवान् के आगमन का शुभ सन्देश प्राप्त होते ही सम्राट् श्रेणिक सपरिजन वन्दन के लिए पहुँचे। महावीर चरिय, त्रिषष्टि शलाकापुरुष चरित्र[२] आदि के अनुसार भगवान् के

---

२४ (क) आवश्यक निर्युक्ति

(ख) विशेषा० भाष्य

२५ आगम और त्रिपिटक एक अनुशीलन पृ० २४३

१ रायगिहस्स नयरस्स बहिया उत्तरपुरच्छिमे दिसियाए गुणसिलए नाम चेइए होत्था।

—भगवती १।१।४

२ (क) महावीर चरिय—नेमिचन्द्र १२६४

(ख) श्रुत्वा ता देशना भर्तु सम्यक्त्व श्रेणिकोऽश्रयत्।
श्रावकधर्मं त्वभयकुमाराद्या प्रपेदिरे॥

—त्रिषष्टि० १०।६।३७६

प्रवचन को श्रवण कर श्रेणिक ने सम्यक्त्वरत्न को प्राप्त किया और अभयकुमार आदि ने श्रावक व्रत ग्रहण किये। श्रेणिक के निर्ग्रन्थ धर्म को स्वीकार करने की बात अनाथी मुनि के प्रसग मे भी आती है। हो सकता है कि उसी का विधिवत् प्रसग यहा पर रहा हो।

दिगम्बर मान्यता के अनुसार भगवान् महावीर की प्रथम देशना राजगृह के विपुलाचल पर्वत पर श्रावण कृष्णा प्रतिपदा को हुई। मगधराज श्रेणिक सपरिवार उपस्थित हुआ। वह उपासक-सघ का अग्रणी था और महारानी चेलना उपासिका-सघ की अग्रणी थी।[3] पण्डित मुनि श्री कल्याण-विजय जी[4] और पण्डित मुनि श्री इन्द्रविजय जी[5] के अभिमतानुसार इस वर्ष श्रेणिक के पुत्र मेघकुमार व नन्दिषेण ने दीक्षा ग्रहण की। ज्ञातृधर्मकथा,[6] आवश्यक चूर्णि आदि अनेक ग्रन्थो मे उनकी दीक्षा का सविस्तृत वर्णन है, पर उन्होने दीक्षा कब ली, यह स्पष्ट वर्णन नही है। उनके दीक्षा का प्रसग इस प्रकार है—

मेघकुमार

मेघकुमार राजा श्रेणिक का पुत्र था। आठ कन्याओ के साथ उसका पाणि-ग्रहण हुआ। भगवान् महावीर के त्याग वैराग्य से ओत-प्रोत प्रवचन को श्रवण कर मेघकुमार के अन्तर्मानस मे सयम ग्रहण की भावना उमडी। उसने पिता श्रेणिक व माता धारणी से प्रार्थना की—आपने मेरा दीर्घकाल तक लालन-पालन किया है। मेरे कारण आपको बहुत ही श्रम हुआ है, किन्तु मैं ससार के जन्म-जरा के दु ख से ऊब चुका हूँ, मेरी भावना भगवान् महावीर के चरणो मे सयमधर्म स्वीकार करने की है।

माता-पिता ने सयम-जीवन की दुष्करता के सम्बन्ध मे विविध दृष्टियो से समझाया। किन्तु वह अपने विचारो पर दृढ रहा। उसने विविध युक्तियो से उत्तर देकर माता-पिता को आश्वस्त कर दिया कि वह भावुकता व आवेश से साधु नही बन रहा है।

---

३ भारतीय इतिहास एक दृष्टि डा० ज्योतिप्रसाद जैन, भारतीय ज्ञानपीठ बनारस, पृ० ६५

४ श्रमण भगवान् महावीर, पृ० ७८

५ तीर्थंकर महावीर, भाग २, पृ० १२

६ ज्ञाताधर्मकथा १।१

राजा श्रेणिक ने अन्त मे प्रस्ताव रखते हुए कहा कि पुत्र ! मुझे मालूम है कि तू ससार से उद्विग्न हो चुका है। कोई भी ससार का आकर्षण तुझे लुभा नही सकता, पर एक मेरी हार्दिक अभिलाषा है, वह तुझे पूर्ण करनी होगी। मेरी हार्दिक इच्छा यह है कि कम-से कम एक दिन के लिए भी मगध का राज्य भार तू सभाल ले। यदि तू मेरी बात स्वीकार करेगा तो मुझे अपार शान्ति प्राप्त होगी।

श्रेणिक के प्रस्ताव को मेघकुमार ने स्वीकार कर लिया। प्रसन्नता के क्षणो मे राज्याभिषेक किया गया। सर्वत्र आनन्द का पयोधि उछाले मारने लगा। राजा श्रेणिक प्रसन्न था। उन्होने सस्नेह पुत्र की ओर देखकर कहा —वत्स ! मैं अब तुम्हारे लिए क्या कर सकता हूँ।

मेघकुमार ने सविनय निवेदन किया—"पूज्य पिताश्री ! यदि आप मेरे पर प्रसन्न है तो कुत्रिकापण से मुझे रजोहरण, पात्र आदि मगवा दीजिए। मैं अब श्रमण बनना चाहता हूँ।" श्रेणिक ने देखा, वस्तुत इसका वैराग्य-रग पक्का है, वह कभी भी मिटने वाला नही है। उन्होने उसी समय राजकोष से एक लाख स्वर्ण-मुद्रा देकर रजोहरण मगाया और एक लाख स्वर्ण-मुद्रा से पात्र मगवाये। राज्याभिषेक महोत्सव की भाति दीक्षा-महोत्सव भी उत्सव के साथ मनाया गया।

दीक्षा की प्रथम रात

दीक्षा की प्रथम रात मे रात भर उसे नीद नही आई। मुनि का जीवन समता और समानता का जीवन है। राजकुमार और दरिद्रकुमार का वहाँ भेद कहाँ ? सबसे लघु होने के कारण मेघ को सब के अन्त मे द्वार के सन्निकट स्थान मिला। रास्ता ही तो था। सभी साधुओ के आने-जाने का वही एक मार्ग था। किसी के पैर मेघ के शरीर से टकरा जाते, और उसकी झपकती हुई पलके खुल पडती। फिर कुछ नीद आँखो में छाने लगती कि किसी का पैर हाथ की उँगलियो पर टिक जाता, मेघ धीरे से 'सी' कर उठता। बार-बार पैरो के लगने से उसके वस्त्र भी मिट्टी और धूल से भर गये थे। फूलो की सुकोमल शय्या पर सोने वाला राजकुमार आज धूल से भरी शय्या पर सो रहा था। बार बार पैरो की ठोकरे लगने से उसे एक क्षण भी शान्ति से नीद न आ सकी। नीद न आने से उसका सिर भन्ना गया। आँखें लाल सुर्ख हो गई। सम्पूर्ण शरीर शिथिल पड गया। अन्त मे

प्रवचन को श्रवण कर श्रेणिक ने सम्यक्त्वरत्न को प्राप्त किया और अभयकुमार आदि ने श्रावक व्रत ग्रहण किये। श्रेणिक के निर्ग्रन्थ धर्म को स्वीकार करने की बात अनाथी मुनि के प्रसग मे भी आती है। हो सकता है कि उसी का विधिवत् प्रसग यहा पर रहा हो।

दिगम्बर मान्यता के अनुसार भगवान् महावीर की प्रथम देशना राजगृह के विपुलाचल पर्वत पर श्रावण कृष्णा प्रतिपदा को हुई। मगधराज श्रेणिक सपरिवार उपस्थित हुआ। वह उपासक-सघ का अग्रणी था और महारानी चेलना उपासिका-सघ की अग्रणी थी।[3] पण्डित मुनि श्री कल्याण-विजय जी[4] और पण्डित मुनि श्री इन्द्रविजय जी[5] के अभिमतानुसार इस वर्ष श्रेणिक के पुत्र मेघकुमार व नन्दिषेण ने दीक्षा ग्रहण की। ज्ञातृधर्मकथा,[6] आवश्यक चूर्णि आदि अनेक ग्रन्थो मे उनकी दीक्षा का सविस्तृत वर्णन है, पर उन्होने दीक्षा कब ली, यह स्पष्ट वर्णन नही है। उनके दीक्षा का प्रसग इस प्रकार है—

मेघकुमार

मेघकुमार राजा श्रेणिक का पुत्र था। आठ कन्याओ के साथ उसका पाणि-ग्रहण हुआ। भगवान् महावीर के त्याग वैराग्य से ओत-प्रोत प्रवचन को श्रवण कर मेघकुमार के अन्तर्मानस मे सयम ग्रहण की भावना उमडी। उसने पिता श्रेणिक व माता धारणी से प्रार्थना की—आपने मेरा दीर्घकाल तक लालन-पालन किया है। मेरे कारण आपको बहुत ही श्रम हुआ है, किन्तु मैं ससार के जन्म-जरा के दु ख से ऊब चुका हू, मेरी भावना भगवान् महावीर के चरणो मे सयमधर्म स्वीकार करने की है।

माता-पिता ने सयम-जीवन की दुष्करता के सम्बन्ध मे विविध दृष्टियो से समझाया। किन्तु वह अपने विचारो पर दृढ रहा। उसने विविध युक्तियो से उत्तर देकर माता-पिता को आश्वस्त कर दिया कि वह भावुकता व आवेश से साधु नही बन रहा है।

---

३ भारतीय इतिहास एक दृष्टि डा० ज्योतिप्रसाद जैन, भारतीय ज्ञानपीठ बनारस, पृ० ६५

४ श्रमण भगवान् महावीर, पृ० ७८

५ तीर्थंकर महावीर, भाग २, पृ० १२

६ ज्ञाताधर्मकथा १।१

राजा श्रेणिक ने अन्त मे प्रस्ताव रखते हुए कहा कि पुत्र ! मुझे मालूम है कि तू ससार से उद्विग्न हो चुका है। कोई भी ससार का आकर्षण तुझे लुभा नही सकता, पर एक मेरी हार्दिक अभिलाषा है, वह तुझे पूर्ण करनी होगी। मेरी हार्दिक इच्छा यह है कि कम-से-कम एक दिन के लिए भी मगध का राज्य भार तू सभाल ले। यदि तू मेरी बात स्वीकार करेगा तो मुझे अपार शान्ति प्राप्त होगी।

श्रेणिक के प्रस्ताव को मेघकुमार ने स्वीकार कर लिया। प्रसन्नता के क्षणो मे राज्याभिषेक किया गया। सर्वत्र आनन्द का पयोधि उछाले मारने लगा। राजा श्रेणिक प्रसन्न था। उन्होने सस्नेह पुत्र की ओर देखकर कहा —वत्स ! मै अब तुम्हारे लिए क्या कर सकता हूँ।

मेघकुमार ने सविनय निवेदन किया—"पूज्य पिताश्री ! यदि आप मेरे पर प्रसन्न है तो कुत्रिकापण से मुझे रजोहरण, पात्र आदि मगवा दीजिए। मैं अब श्रमण बनना चाहता हूँ।" श्रेणिक ने देखा, वस्तुत इसका वैराग्य-रग पक्का है, वह कभी भी मिटने वाला नही है। उन्होने उसी समय राजकोष से एक लाख स्वर्ण-मुद्रा देकर रजोहरण मगाया और एक लाख स्वर्ण-मुद्रा से पात्र मगवाये। राज्याभिषेक महोत्सव की भाति दीक्षा-महोत्सव भी उत्सव के साथ मनाया गया।

दीक्षा की प्रथम रात

दीक्षा की प्रथम रात मे रात भर उसे नीद नही आई। मुनि का जीवन समता और समानता का जीवन है। राजकुमार और दरिद्रकुमार का वहाँ भेद कहाँ ? सबसे लघु होने के कारण मेघ को सब के अन्त मे द्वार के सन्निकट स्थान मिला। रास्ता ही तो था। सभी साधुओ के आने-जाने का वही एक मार्ग था। किसी के पैर मेघ के शरीर से टकरा जाते, और उसकी झपकती हुई पलके खुल पडती। फिर कुछ नीद आँखो मे छाने लगती कि किसी का पैर हाथ की उँगलियो पर टिक जाता, मेघ धीरे से 'सी' कर उठता। बार-बार पैरो के लगने से उसके वस्त्र भी मिट्टी और धूल से भर गये थे। फूलो की सुकोमल शय्या पर सोने वाला राजकुमार आज धूल से भरी शय्या पर सो रहा था। बार बार पैरो की ठोकरे लगने से उसे एक क्षण भी शान्ति से नीद न आ सकी। नीद न आने से उसका सिर भन्ना गया। आँखें लाल सुर्ख हो गई। सम्पूर्ण शरीर शिथिल पड गया। अन्त मे

मेघ का धैर्य कॉच के बर्तन की तरह टूटकर बिखरने लगा। कितना कष्ट है श्रमण-जीवन मे। जीवन भर यहा तो इसी तरह क्रम चलेगा। इसी तरह प्रतिदिन पलके मसलते-मसलते उनीदी राते बितानी पडेगी। मै ऐसे जीवन को कैसे जी सकूँगा, जिस जीवन मे आराम से सोना भी बदा नही, मैं इस प्रकार का कष्ट जीवन भर नही सह सकता। मेघ इन्ही विचारो मे डूबा हुआ रात भर जागता रहा।

प्रात होते ही चचलचित्त मेघकुमार भगवान के चरणो मे वेष सौपकर घर जाने की अनुमति लेने के लिए उपस्थित हुआ। भगवान् ने उद्‌बोधित किया, मेघ! क्या तुम साधना के पथ से पीछे हटने का विचार कर रहे हो! युद्ध के मैदान मे पहुँचकर वीर निरन्तर आगे कदम बढाता है, तुम वीर हो, तथापि कायर की तरह पीछे हटना चाहते हो। थोडे से कष्ट मे धैर्य खो बैठे हो। पशु-जीवन मे तुमने अपने जीवन पर विजय प्राप्त की, और आज मानव-जीवन को हार रहे हो। लो सुनो, मैं तुम्हे तुम्हारे पूर्व जीवन की एक घटना सुनाता हूँ।

मुनि मेघ भगवान् के चरणो मे बैठ गया। भगवान् ने कहा—विन्ध्याचल के सघन जगलो मे सुमेरुप्रभ नाम का एक श्वेत हाथी रहता था। वह राजा के समान था। उसके आश्रित पाचसौ हाथी-हथिनियॉ थी। इस विशाल हस्तिकुल का वह प्रिय नायक और अभिभावक था।

एक बार जगल मे भयकर आग लगी। हरे-भरे विशाल वृक्ष भी मोमबत्ती की तरह धाय-धाय जल उठे, अग्नि की लपलपाती ज्वालाए आकाश को चूमने लगी। आकाश मे पक्षी-गण उड रहे थे, वे भी उन उठती हुई लपटो व उछलते हुए स्फुलिगो से झुलस कर भस्म होने लगे। पशुओ की दशा बडी दयनीय थी। वे दहकती ज्वालाएँ चारो ओर इस प्रकार फैल रही थी कि मानो साक्षात् यमराज हजारो हाथ फैलाकर ससार को निगलने के लिए मचल रहा हो। सुमेरुप्रभ के यूथ के अनेक हाथी उस दावानल मे झुलस गये थे।

दावाग्नि शान्त हुई। इस विनाश-लीला को निहार कर सुमेरुप्रभ हाथी का मन चिन्तित हो उठा। उसे अपने पूर्व-भव की स्मृति उद्‌बुद्ध हुई। वह उसके पूर्व-भव मे हाथी था, पुन-पुन: अपने परिवार व अपने जीवन को जलते हुए देखकर वह दावाग्नि से उसकी रक्षा का उपाय सोचने लगा। ऐसा

कौन-सा उपाय हो सकता है, जिससे दावानल की भयकर लपटे उसका बाल-बाका न कर सके।

सुमेरुप्रभ ने नदी के किनारे एक विशाल मडल बनाया। लम्बी दूर तक उसने पेड, पौधे, झाड-झखाड उखाड-उखाड कर जगल को बिल्कुल साफ कर लिया। कही घास का एक तिनका भी नही छोडा। इस प्रकार विराट् मडल का निर्माण कर सुमेरुप्रभ आनन्द से रहने लगा।

पुन एक बार जगल मे भयकर दावानल सुलग उठा। जगल के अन्य प्राणी भी आग से बचने के लिए इधर से उधर दौडते हुए उस मडल मे आकर एकत्रित होने लगे। हाथी, सिह, मृग, खरगोश, लोमडी वैर-भाव को भूलकर अपनी-अपनी जान बचाकर खडे हो गए। सुमेरुप्रभ भी वहाँ दौडा-दौडा आया। उसने देखा सपूर्ण मडल प्राणियो से खचाखच भर गया। वह मडल के किनारे शान्त भाव से खडा हो गया।

उसने स्थान प्राप्त करने के लिए न किसी प्राणी को धकेला और न सताया ही।

दावानल जलता रहा, हरा-भरा वन भस्म होता रहा। एक तरह से प्रलयकाल-सा दृश्य उपस्थित हो रहा था। किन्तु सुमेरुप्रभ के द्वारा बनाया गया वह मडल पूर्ण सुरक्षित था। दावानल तो क्या, उसकी एक ज्वाला भी उसे स्पर्श नही कर सकी। एकाएक सुमेरुप्रभ के शरीर मे कही खुजली उभरी। उसने अपना आगे का पाँव खुजलाने के लिए ऊपर उठाया, ज्यो ही खुजला कर पैर को पुन नीचे रखने लगा तो उसने नीचे देखा एक नन्हा-सा खरगोश मृत्यु के भय से थर-थर काप रहा है। कापते हुए खरगोश को देखकर हाथी का हृदय पसीज गया। मन मे करुणा का अनन्त सागर उछालें मारने लगा। उसने अपना पैर नीचे नहीं रखा। अधर मे ही उठाए रहा।

दो दिन और तीन रात दावानल धाय धाय कर जलता रहा। तीसरे दिन दावानल शान्त हुआ। पशु पक्षी सभी अपने आश्रय की ओर लौटने लगे। प्रसन्नमुद्रा मे वह खरगोश भी इधर-उधर कुलाचे मार गया।

सुमेरुप्रभ ने भी चलने का विचार किया। उसने नीचे देखा तो स्थान खाली था। पाँव को नीचे रखने के लिए पाँव को सीधा करना चाहा पर वह अधर मे टिकाये रखने से अकड गया था। जोर देकर नीचे रखना चाहा, पर अपने को वह न सभाल सका, धडाम से नीचे गिर पडा। तीन दिन का

भूखा-प्यासा होने से वह पुन न उठ सका, पर उसके मन मे अपूर्व शान्ति थी, क्योकि उसने एक क्षुद्र जीव पर दया की थी।

भगवान् महावीर ने मेघमुनि को सम्बोधित कर कहा—मेघ! वह सुमेरुप्रभ हाथी मरकर तू राजकुमार मेघ हुआ है। पशु के जीवन मे तूने अपार कष्ट सहनकर हृदय की करुणा को उज्जीवित किया था, अब मानव-जीवन मे आकर किञ्चित् कष्ट से तू घबरा रहा है?[७] विराट् महासागर को तूने भुजाओ से तैर लिया, अब किनारे पर आकर थोडे-से पानी मे डूब रहा है? प्राणी, अज्ञानवश कितनी दारुण वेदना भोगता है। स्वार्थ और लोभ के वशीभूत होकर प्राणो को भी न्योछावर कर देता है। परन्तु उस कष्ट और सहनशीलता का आध्यात्मिक दृष्टि से क्या महत्त्व है। तुम्हे सत्य दृष्टि मिली है, आत्म-बोध भी हुआ है। आध्यात्मिक दृष्टि से समभावपूर्वक सहन किये गये कष्टो का बहुत मूल्य है। ये कष्ट जीवन को पवित्र व निर्मल बनाने वाले है, अत मन को स्थिर करो, और पूर्ण निष्ठा के साथ साधना मे लग जाओ।

भगवान की प्रेरणा-प्रद वाणी को श्रवण कर मेघकुमार का हृदय प्रबुद्ध हो उठा। वह साधकजीवन मे आने वाले कष्टो से जूझने के लिए तैयार हो गया। विविध प्रकार के तप कर अन्त मे विजय नामक अनुत्तर विमान मे उत्पन्न हुआ।[८]

नन्द के साथ तुलना

बौद्ध साहित्य मे सद्य दीक्षित नन्द का भी मेघकुमार के समान वर्णन मिलता है। दीक्षा लेने के पश्चात् वह अपनी नवविवाहिता पत्नी जनपद-कल्याणी नन्दा का स्मरण कर विचलित हो जाता है। तथागत बुद्ध उसके हृदय की बात को जानते है और उसे प्रतिबुद्ध करने के लिए अपने साथ मे ले जाते है। मार्ग मे एक बन्दरी दिखलाई देती है, जिसके कान, नाक और

---

७ तुमे मेहा! तिरिक्ख जोणियभाव मुवागएण अप्पडिलद्ध सम्मत्त रयग लभेण।
—ज्ञाताधमकथा १।१

८ (क) ज्ञाताधर्मकथा १।१
(ख) त्रिषष्टि० १०।६।३६२-४०६
(ग) महावीर चरिय (गुणचन्द्र), प्रस्ताव ८

पूछ कटी हुई थी, जिसके बाल जल गये थे, जिसकी खाल फट गई थी, जिसकी केवल चमडी शेष थी और उसमे से रक्त बह रहा था। बुद्ध ने उससे पूछा—क्या तुम्हारी पत्नी, इस बन्दरी से अधिक सुन्दर है? उसने कहा—हाँ भगवन्! वह बहुत सुन्दर है।

उसके पश्चात् बुद्ध उसे त्रायस्त्रिंश स्वर्ग मे ले गये। इन्द्र ने अप्सराओ के साथ बुद्ध को नमन किया। अप्सराओं की ओर सकेत कर बुद्ध ने पूछा—क्या इन अप्सराओ से भी जनपदकल्याणी नन्दा अधिक सुन्दर है।

नही भगवन्! इन अप्सराओ के दिव्य रूप के सामने तो जनपद-कल्याणी नन्दा उस लुज बन्दरी के समान ज्ञात होती है।

तथागत ने कहा—नन्द! फिर तुम क्यो विक्षिप्त हो रहे हो? भिक्षु-धर्म का पालन करो, तुम्हे भी इसी प्रकार की सुन्दर अप्सराए मिलेगी। नन्द फिर से श्रमण-धर्म मे आरूढ हुआ, किन्तु उसका वैषयिक लक्ष्य मिटा नही। जब सारिपुत्र आदि अस्सी महाश्रावको (भिक्षुओ) ने उसका उपहास किया कि यह तो अप्सराओ के लिए भिक्षुधर्म का पालन कर रहा है। इस प्रकार सुनकर वह लज्जित हुआ, विषयमुक्त होकर साधना करने लगा और अर्हत् हुआ।[९]

समीक्षा

मेघकुमार और नन्द के साधना से विचलित होने के निमित्त सर्वथा पृथक् है, पर घटनाक्रम दोनो मे काफी समान है। भगवान् महावीर मेघ-कुमार को पूर्वभव की वेदना और मानवजीवन का महत्त्व बताकर उसे सयम मे स्थिर करते है और तथागत बुद्ध नन्द को आगामी भव के सुख दिखाकर सयम मे स्थिर करते है। जातकसाहित्य मे वर्णन है कि नन्द भी प्राक्तन भवो मे हाथी था।[१०]

---

९ (क) सुत्तनिपात—अट्ठकथा, पृ० २७२

(ख) धम्मपद-अट्ठकथा, खण्ड १, पृ० ९६-१०५

(ग) जातक स० १८२

(घ) थेरगाथा १५७

१० सङ्गामावतार जातक स० १८२ (हिन्दी अनुवाद) खण्ड २, पृ० २४८-२५४

नन्दिषेण

नन्दिषेण भी सम्राट् श्रेणिक का पुत्र था। भगवान् महावीर के उपदेश को सुनकर उसके मन मे वैराग्य भावना जगी। उसके प्रशस्त सकल्प का सर्वत्र स्वागत किया गया। सम्राट श्रेणिक ने भी सहर्ष अनुमति प्रदान की, किन्तु सहसा आकाशवाणी हुई—नन्दिषेण! अपने निर्णय पर पुन चिन्तन करो। अभी तक तुम्हारे भोगावली कर्म अवशिष्ट है और वे निकाचित है। वे तुम्हे भोगने पडेगे। तुम्हारा सकल्प श्रेष्ठ है किन्तु स्मरण रहे कि तुम उन भोग्य कर्मो का कभी भी उपेक्षा नही कर सकोगे।

नन्दिषेण भावना के प्रवाह मे बह रहा था। देववाणी सुनकर वह मन-ही-मन हँसा। उसने ललकारा, कौन मुझे रोक सकता है। यदि मेरी भावना दृढ है तो किसी मे साहस नही कि वह मुझे विचलित कर सके। चाहे कितना भी गहरा अधकार क्यो न हो, क्या वह जगमगाती ज्योति के सामने टिक सकता है? मैं साधु बनते ही घोर तपश्चर्या करूगा, देखूगा कौन-से कर्म कितने दिन रह पायेगे, भविष्य वर्तमान पर आधारित है। मैं सावधानी के साथ अपने जीवन की अनमोल घडियो को तपश्चर्या के साथ स्वाध्याय, ध्यान और कायोत्सर्ग मे नियोजित करूँगा, फिर किसी भी अनिष्ट की आशका ही नही रह सकती।

पुन: आवाज हुई, नन्दिषेण! अभी तुम मेरी बात को हवा मे उडा रहे हो, किन्तु मेरी भविष्यवाणी कभी भी मिथ्या नही हो सकती। चाहे तुम कितना भी प्रयत्न कर लो।

दृढप्रतिज्ञ नन्दिषेण ने उधर ध्यान नही दिया। वह भगवान् महावीर के चरण-कमलो मे पहुँचकर श्रमण बन गया।[११] अनिष्ट की सभावना व्यक्ति को प्रतिक्षण जागरूक रखती है। देव-वाणी को अन्यथा प्रमाणित करने के लिए नन्दिषेण तपस्या मे लीन हो गया। उसने अपने दिव्य और भव्य शरीर को तपस्या से अत्यन्त कृश और कान्तिरहित बना दिया। वह केवल अस्थियो का ढाँचा ही रह गया। वह प्रतिपल-प्रतिक्षण एकान्त और शान्त स्थान मे बैठकर आत्म स्वरूप का चिन्तन करता। दीर्घ-तपस्या के बाद वह बस्ती मे गोचरी के लिए जाता और पुन शीघ्र आकर आत्म-चिन्तन मे

---

११ (क) आवश्यक चूर्णि पूर्वार्द्ध पत्र ५५९
(ख) आवश्यक हारिभद्रीय वृत्ति पत्र ४३०-४३१

तल्लीन हो जाता। उग्र तप-जप की साधना करने से उसे अनेक चामत्कारिक लब्धियाँ उपलब्ध हुई।

भावी की प्रबलता से कभी कभी व्यक्ति अनालोचित चक्र मे फँस जाता है। एक दिन नन्दिषेण गोचरी के लिए बस्ती मे आये। सयोगवश एक गणिका के भव्य-भवन मे पहुँच गये। ज्यो ही मुनि ने धर्मलाभ की बात कही, त्यो ही गणिका ने मुस्कराते हुए कहा, यहा तो अर्थलाभ की बात है। जिसके पास सपत्ति है, उसे यहा पर सब कुछ मिल सकता है और जो दरिद्र और दीन है उसके लिए यहाँ स्थान नही है और वह मुनि की कृशकाया तथा दीन अवस्था को देखकर खिल-खिलाकर हस पडी।

नन्दिषेण मुनि को उसका हसना अच्छा नही लगा, उनका अह जागृत हो गया, सोचा - इसने मुझे अभी तक पहचाना नही है। मेरे तप के दिव्य प्रभाव से यह अनभिज्ञ है। समय आ गया है, कुछ मुझे अपना परिचय देना चाहिए। नन्दिषेण मुनि ने भूमि पर पडे हुए एक तिनके को उठाया। उसे तोडा। उसी क्षण स्वर्ण-मुद्राये बरस पडी। बहुमूल्य रत्नो का ढेर हो गया। "लो यह अर्थलाभ" कहकर वे उसी क्षण वेश्यागृह से बाहर निकल गये। वेश्या उस चमत्कारी सन्त को देखकर चकित थी, वह यह समझ ही नही पा रही थी कि यह स्वप्न है या वास्तविकता है। वह शीघ्र ही सभली और मुनि के पीछे-पीछे दौडी। नाथ! कहाँ जा रहे हो मुझ अबला को छोडकर यदि आपने मुझे त्याग दिया तो मैं मर जाऊगी। वह विविध प्रकार के हाव-भाव और कटाक्ष करने लगी। यह राग और विराग का स्पष्ट सघर्ष था। एक ओर वर्षों की कठोर साधना थी, और दूसरी ओर कुछ ही क्षणो का स्नेहपूर्ण मधुर व्यवहार था। नन्दिषेण ने अपनी साधना को विस्मृत कर वेश्या द्वारा रखे गये सहवास के प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया। वे उलटे पैरो वेश्या के साथ उसके भवन मे लौट आये। आकर्षण और विकर्षण के झूले मे झूलते हुए उसने उसी समय प्रतिज्ञा की 'प्रतिदिन दस व्यक्तियो को प्रतिबोध देकर प्रव्रज्या के लिए भगवान महावीर के समवसरण मे भेजू गा। जब यह कार्य सम्पन्न न होगा, तब मैं स्वय पुन दीक्षा ग्रहण करू गा।[12]

---

१२ दशाविकान् वानुदिन बोधयिष्यामि नो यदि।
तदादास्ये पुनर्दीक्षा प्रतिज्ञामिति चाकृत ॥

—त्रिषष्टि० १०।६।४३०

नन्दिषेण अपनी प्रतिज्ञा पर दृढ था, वह प्रतिदिन दस-दस व्यक्तियो को प्रतिबोध देकर भगवान् महावीर के समवसरण मे पहुँचाता, और प्रतिज्ञा पूर्ण होने पर भोजन करता ।

एक दिन नन्दिषेण ने प्रतिबोध देकर नौ व्यक्तियो को तैयार किया, पर दसवाँ व्यक्ति अत्यधिक प्रतिबोध देने पर भी दीक्षा के लिए तैयार नही हुआ । भोजन का समय हो गया था । वेश्या भोजन के लिए पुन -पुन बुलावा भेज रही थी । पर प्रतिज्ञा पूर्ण न होने से वह न उठा । प्रतीक्षा करते-करते वेश्या व्यग्र हो उठी, उसने स्वय आकर कहा—भोजन ठडा हो रहा है, आप इतना विलम्ब क्यो कर रहे है । नन्दिषेण ने कहा—दसवे व्यक्ति को बिना समझाये मैं भोजन कैसे कर सकता हूँ । झु झलाकर वेश्या के मुँह से सहसा ये शब्द निकल पडे — ऐसी बात है तो स्वय ही दसवे क्यो नही बन जाते ।' नन्दिषेण को वेश्या की बात चुभ गई, 'लो यह मैं चला,' वेश्या देखती ही रह गई । महावीर के पास आकर पुन दीक्षा ग्रहण की, कृत-दोषो की आलोचना कर, उग्र तप-जप की साधना करते हुए वे आयु पूर्ण कर देव बने ।[13]

भगवान महावीर ने अपना तेरहवा वर्षावास राजगृह मे व्यतीत किया, और अनेक जीवो को प्रतिबोध देकर धर्मपथ पर अग्रसर किया ।

विदेह की ओर प्रस्थान

तेरहवा वर्षावास पूर्ण होने पर भगवान् ने अपनी शिष्यमण्डली सहित राजगृह से विदेह की ओर विहार किया अनेक गाम व नगरो मे धर्म की दिव्य ज्योति जगाते हुए ब्राह्मणकुण्ड गाँव मे पहुँचे और बहुसाल चैत्य मे विराजे । बहुसाल चैत्य ब्राह्मणकुण्ड और क्षत्रियकुण्ड के बीच मे था । भगवान् के बहुसाल चैत्य मे पधारने के समाचार पवनवेग की तरह दोनो कुण्डपुरो मे पहुँचे । हजारो भावुक-भक्त भगवान् के प्रवचन को सुनने के लिए उपस्थित हुए ।

---

१३ (क) त्रिषष्टि० १०।६।४३८-४३९

(ख) महावीर चरिय (गुणचन्द्र), प्रस्ताव ८

भगवान् के तात्त्विक व मार्मिक प्रवचन को सुनकर श्रोता आनन्द मे झूम उठे। बहुत से श्रोताओ ने श्रमणधर्म स्वीकार किया, बहुतो ने गृहस्थधर्म के नियम ग्रहण किये और बहुत से निर्ग्रन्थ-प्रवचन पर श्रद्धालु हुए।

ऋषभदत्त और देवानन्दा की दीक्षा

ब्राह्मण कुण्डग्राम मे ऋषभदत्त ब्राह्मण रहता था, आचाराग[1] कल्पसूत्र[2] और आवश्यक चूर्णि[3] मे उसे केवल ब्राह्मण लिखा है परन्तु भगवतीसूत्र[4] मे उसे चार वेदो के ज्ञाता के साथ श्रमणोपासक भी लिखा है।

भगवान महावीर के आगमन की सूचना मिलते ही ऋषभदत्त अपनी पत्नी देवानन्दा के साथ भगवान् को वन्दन के लिए चला, भगवान् को वन्दन कर वह अपने स्थान पर बैठ गया। भगवान् को देखकर देवानन्दा को अपार प्रसन्नता हुई। उसका सारा शरीर रोमाञ्चित हो उठा। उसके स्तनो से दूध की धारायें छूटने लगी। उसके आँखो से आनन्दाश्रु बहने लगे।

देवानन्दा के शरीर मे इस प्रकार परिवर्तन को देखकर गौतम ने भगवान् को नमस्कार कर पूछा—"भगवन्! देवानन्दा आपको देखकर रोमाञ्चित क्यो हो गई है। उसके स्तनो से दूध की धारा क्यो बह निकली?"

भगवान् ने स्पष्टीकरण करते हुए कहा—"देवानन्दा ब्राह्मणी मेरी माता है। मैं इस देवानन्दा ब्राह्मणी का पुत्र हूँ।"[5] भगवान् महावीर ने गर्भ-परिवर्तन की सारी घटना सुनाई।

---

१ आचाराग २। पृ० २४३, बाबू धनपतसिंह

२ कल्पसूत्र, सूत्र ७, पृ० ४३, देवेन्द्रमुनि सम्पादित

३ आवश्यक चूर्णि पूर्वार्द्ध पत्र २३६

४ भगवती ६।६।३८०, पत्र० ८३७

५ (क) गोयमा! देवाणदा माहणी मम अम्मगा, अह ण देवाणदाए माहणीए अत्तए, तए ण सा देवाणदा माहणी तेण पुव्व पुत्तसिणेहरागेण आनयपण्हया जाव समुसवियरोमकूवा।

—भगवती ६।६।३८१

(ख) त्रिषष्टि० १०।८।१०-११

इतने समय तक भगवान् के गर्भ परिवर्तन की बात किसी को ज्ञात नही थी। देवानन्दा और ऋषभदत्त के साथ सारी परिषदा आश्चर्यचकित हो गई।[६]

उसके पश्चात् भगवान् ने धर्मोपदेश दिया। ऋषभदत्त को ससार से विरक्ति हुई, उन्होने भगवान से दीक्षा लेने की अनुमति मागी। भगवान् के द्वारा स्वीकृति प्रदान करने पर वह ईशान कोण मे गया, और आभरण, माला, अलकार सभी उतार कर पचमुष्टि लोच किया। भगवान् के सन्निकट आकर वन्दन कर बोले—भगवन्! यह ससार जल रहा है। जरा-मरण-रोगादि आपदाओ की भयकर आग से चारो ओर प्रज्वलित हो रहा है। प्रभो! मुझे इस आग से बचाइए।

भगवान ने दीक्षा देकर ऋषभदत्त को अपने श्रमणसघ मे मिला दिया। दीक्षा के बाद ऋषभदत्त ने ग्यारह अगो का अच्छी तरह से अध्ययन किया। छट्ठ, अट्ठम, दशम, आदि अनेक विध तप का अनुष्ठान किया, बहुत वर्षो तक आत्मा को भावित करता हुआ साधु-पर्याय मे रमण करता रहा। अन्तिम समय मे एक मास की सलेखना और अनशन कर मोक्ष-पद प्राप्त किया।

देवानन्दा भी ऋषभदत्त के साथ ही प्रव्रजित हुई और चन्दनबाला के नेतृत्व मे रहकर ग्यारह अगो का अध्ययन किया। नाना तपस्याओ से अपनी आत्मा को भावित करती हुई सब कर्मो को क्षय कर मुक्त हुई।[७]

जमाली-प्रियदर्शना की दीक्षा

क्षत्रिय-कुण्डग्राम मे जमाली नामक क्षत्रिय कुमार रहता था। वह अत्यन्त ऐश्वर्यशाली था। वह महावीर की बडी बहिन सुदर्शना का पुत्र था।

---

६ (क) अस्सुयपुव्वे सुणिए को वा नो विम्हय वहइ।

—महावीर चरिय (गुणचन्द्र) २५६

(ख) त्रिपष्टि० १०।८।२

७ (क) भगवती ९।६

(ख) महावीर चरिय (गुणचन्द्र), प्रस्ताव ८, पत्र २५५-२६०

(ग) त्रिपष्टि० १०।८।१-२७

इस कारण वह भगवान् का भानजा था।[8] महावीर की पुत्री प्रियदर्शना का पति था, इस कारण उनका जामाता था।[9]

महावीर चरिय[10] और त्रिषष्टि शलाकापुरुष चरित्र[11] आदि मे भगवान् का क्षत्रियकुड मे आने का वर्णन है जबकि भगवती[12] मे ब्राह्मण-कुण्ड मे पधारने का उल्लेख है। हमारी दृष्टि से इसमे विरोध नही है, क्योकि बहुसाल चैत्य दोनो कुण्डो के बीच मे था।

भगवान् के आगमन के समाचार प्राप्त होते ही क्षत्रिय कुमार जमाली भी वन्दनार्थ पहुँचा। महावीर के उपदेश को सुनकर जमाली प्रतिबुद्ध हुआ। उसने महावीर से निवेदन किया—'भगवन्! मुझे निर्ग्रन्थ प्रवचन रुचिकर, प्रीतिकर हुआ है, सत्य प्रतीत हुआ है। मैं आगारधर्म से अनगारधर्म मे प्रविष्ट होना चाहता हूँ। महावीर ने कहा—'**जहा सुह देवाणुप्पिया! मा पडिबध करेह**' जैसा सुख हो वैसा करो, विलम्ब मत करो। जमाली अपने राजप्रासाद मे आया। अपने मन की बात उसने माता-पिता से निवेदन की। स्नेहाधिक्य के कारण उनके आँखो मे से आँसू आ गये। पुत्र को अनेक प्रकार से समझाया किन्तु वह तनिक मात्र भी विचलित नही हुआ। अन्त मे माता-पिता की आज्ञा लेकर पाँचसौ अन्य क्षत्रिय कुमारो के साथ उसने दीक्षा

---

८ (क) इहैव भरतक्षेत्रे कुण्डपुर नाम नगरम्। तत्र भगवत श्री महावीरस्य भागिनेयो जामालिनाम राजपुत्र आसीत्।

—विशेषा० भाष्य, पत्र ६३५

(ख) कुण्डपुर नगर, तत्थ जमाली सामिस्स भाइणिज्जो।

—आवश्यक हारिभद्रीय वृत्ति ३१२

(ग) महावीरस्य भगिनेयो।

—ठाणाग, उत्तरार्द्ध पत्र ४१०

(घ) उत्तराध्ययन—नेमिचन्द्र वृत्ति ६६

(ङ) उत्तराध्ययन—शान्त्याचार्य वृत्ति १५३

९ (क) तस्य भार्या श्रीमन्महावीरस्य दुहिता।

—विशेषा० भाष्य सटीक, प० ६३५

(ख) तस्स भज्जा सामिणो धूया।

—उत्तरा० नेमिचन्द्र वृत्ति ६६

१० महावीर चरिय ८।२६०

११ त्रिषष्टि० १०।८।२८-२६

१२ भगवती श० ६। उ० ३३

ग्रहण की[१३]। साथ ही उसकी पत्नी और महावीर की पुत्री प्रियदर्शना ने भी एक हजार अन्य क्षत्रिय महिलाओ के साथ दीक्षा ली।[१४]

आगे चलकर जमाली निह्नव हुआ, जिसका वर्णन हम यथाप्रसग करेंगे।

महावीर चरिय[१५] और त्रिषष्टि शलाकापुरुष[१६] के अनुसार उस समय क्षत्रियकुण्ड के राजा, भगवान् महावीर के ज्येष्ठ भ्राता नन्दिवर्धन ने भी समवसरण मे उपस्थित होकर भगवान् को वन्दन किया।

यह वर्षावास भगवान् ने वैशाली मे बिताया।

वत्सदेश में विहार

राजा उदयन

वैशाली का शानदार वर्षावास पूर्ण कर भगवान् महावीर ने वैशाली से वत्सदेश की ओर विहार किया। वत्सदेश की राजधानी कौशाम्बी थी। भगवान् वहाँ चन्द्रावतरण चैत्य मे पधारे। उस समय वहाँ पर राजा सहस्रानीक का पौत्र, शतानीक का पुत्र, वैशाली के राजा चेटक की पुत्री मृगावती का आत्मज राजा उदयन शासक था।

राजा उदयन एक ऐतिहासिक व्यक्ति रहा है। जैन, बौद्ध और वैदिक इन तीनो ही परम्पराओ मे उसका जीवनवृत्त कुछ परिवर्तन के साथ मिलता है। उसके पास हाथियो की विराट् सेना थी। वह वीणा बजाकर हाथियो को पकडा करता था। विपाकसूत्र[१] मे उदयन राजा को हिमालय

---

१३ भगवती शतक ९, उद्दे० ३३

१४ (क) त्रिषष्टि० १०।८।३९

(ख) महावीर चरिय (गुणचन्द्र) ८।२६५

१५ महावीर चरिय (गुणचन्द्र) ८।२६१

१६ स्वामिन समवसृत नृपतिर्नन्दिवर्द्धन।
ऋद्ध्या महत्या भक्त्या च तत्रोपेयाय वन्दितुम्॥

—त्रिषष्टि० १०।८।३०

१ विपाक० श्रुतस्कध १, अ० ५

की तरह महान् और प्रतापी बताया है। जैन कथासाहित्य मे चण्डप्रद्योत से होने वाले युद्ध का वर्णन विस्तार से आया है।

भगवती[2] मे बताया है—भगवान् के कौशाम्बी मे पधारने का सम्वाद पाकर राजा उदयन हृष्ट-तुष्ट हुआ। वह कूणिक की तरह साज-सज्जा कर भगवान् के समवसरण मे गया। उसके साथ उसकी माता मृगावती और उसकी बुआ श्रमणोपासिका जयन्ती भी थी, और उसका पुत्र भी।

जयन्ती के प्रश्न

जयन्ती साधुओ के लिए प्रथम शय्यातर के रूप मे विश्रुत थी।[3] कौशाम्बी मे जो नवीन साधु आते, वे सर्वप्रथम जयन्ती के यहाँ पर वसति की याचना करते थे। भगवान् महावीर के धर्मोपदेश को सुनने के पश्चात् श्रमणोपासिका जयन्ती ने भगवान् से प्रश्न पूछे। उसका प्रथम प्रश्न था—

भते! जीव शीघ्र ही गुरुत्व को कैसे प्राप्त होता है?

महावीर—जयन्ती! प्राणातिपात, मृषावाद, अदत्तादान, मैथुन, परिग्रह, क्रोध, मान, माया, लोभ, राग, द्वेष, कलह, अभ्याख्यान, पैशुन्य, पर-परिवाद, रति-अरति, मायामृषा और मिथ्यादर्शन—ये अठारह दोष है, जिनके आसेवन से जीव गुरुत्व को प्राप्त होता है।

जयन्ती—भगवन्! आत्मा लघुत्व को कैसे प्राप्त होता है?

महावीर—प्राणातिपात आदि के अनासेवन से आत्मा लघुत्व को प्राप्त होता है। प्राणातिपात आदि की प्रवृत्ति से आत्मा जिस प्रकार ससार को बढाता है, प्रलम्ब करता है, ससार मे भ्रमण करता है, उसी प्रकार उसकी निवृत्ति से ससार को घटाता है, ह्रस्व करता है और उसका उल्लघन भी कर देता है।

जयन्ती—भगवन्! मोक्ष प्राप्त करने की योग्यता जीव को स्वभाव से प्राप्त होती है या परिणाम से?

महावीर—मोक्ष प्राप्त करने की योग्यता जीव मे स्वभाव से होती है, परिणाम से नही।

---

२ भगवती० शतक १२ उ० २

३ वेसालीसावयाण अरहताण पुव्वसिज्जायरी जयती णाम समणोवासिया होत्था।
—भगवती० १२, उद्दे० २

जयन्ती—भन्ते ! क्या सभी भवसिद्धिक आत्माएं मोक्षगामिनी हैं ?

महावीर—हाँ, जो भव-सिद्धिक है, वे सभी आत्माएं मोक्षगामिनी है।

जयन्ती—भगवन् ! यदि सभी भव-सिद्धिक जीव मुक्त हो जायेंगे तो फिर क्या ससार उनसे रहित नही हो जायेगा ?

महावीर—इस प्रकार नही है। सादि तथा अनन्त व दोनो ओर से परिमित तथा दूसरी श्रेणियो से परिवृत्त सर्वाकाश की श्रेणी मे से एक-एक परमाणु पुद्‌गल प्रतिसमय निकालने पर अनन्त उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी व्यतीत हो जाये तथापि वह श्रेणी रिक्त नही होती। इसी प्रकार भव-सिद्धिक जीवो के मुक्त होने पर भी यह ससार उनसे रिक्त नही होगा।

जयन्ती—भन्ते ! जीव सोता हुआ अच्छा है या जागता हुआ ?

महावीर—कितनेक जीवो का सोना अच्छा है और कितनेक जीवो का जागना अच्छा है।

जयन्ती—भगवन् ! यह कैसे ?

महावीर—जयन्ती ! जो जीव अधार्मिक है, अधर्म का अनुसरण करते है, जिनको अधर्म ही प्रिय है, जो अधर्म की ही व्याख्या करते हैं, जो अधर्म के ही प्रेक्षक है, अधर्म मे ही आसक्त है, अधर्म में ही हर्षित है और जो अधर्म से ही अपनी जीविका चलाते है उनका सोना ही अच्छा है। ऐसे जीव जहा तक सोते रहते है तो प्राण-भूत-जीव-सत्त्व समुदाय के शोक और परिताप का कारण नही बनते है। ऐसे जीव सोते रहते है तो उनकी अपनी और दूसरो की बहुत-सी अधार्मिक सयोजना नही होती, अत ऐसे जीवो का सोना ही अच्छा है।

और हे जयन्ती ! जो जीव धार्मिक धर्मानुरागी, धर्मप्रिय, धर्म-व्याख्याता, धर्म प्रेक्षक, धर्म मे हर्षित, और धर्मजीवी है उनका जागना ही अच्छा है। ऐसे जीव जब तक जागते रहते है, तब तक बहुत सारे प्राणियो के अदु ख और अपरिताप के लिए कार्य करते है। ऐसे जीव जागृत हो तो अपने और दूसरो के लिए धार्मिक सयोजना मे निमित्त बनते है, अत उनका जागते रहना श्रेष्ठ है।

इस दृष्टि से कितने ही जीवो का सोते रहना अच्छा है तो कितने ही जीवो का जागते रहना अच्छा है।

जयन्ती—जीवो की दुर्बलता अच्छी है या सबलता अच्छी है।

महावीर कितने ही जीवो की सबलता अच्छी है और कितने ही जीवो की दुर्बलता अच्छी है।

जयन्ती - भन्ते ! यह कैसे ?

महावीर—जो जीव अधार्मिक है और अधर्म से ही जीविकोपार्जन करते है, उनकी दुर्बलता अच्छी है। क्योकि उनकी वह दुर्बलता अन्य प्राणियो के लिए दु ख का निमित्त नही बनती है। जो जीव धार्मिक है उनका सबल होना अच्छा है।

जयन्ती—क्षमाश्रमण ! जीवो का दक्ष होना अच्छा है या आलसी होना ?

महावीर—कितने ही जीवो का उद्यमी होना अच्छा है और कितने ही जीवो का आलसी होना अच्छा है।

जयन्ती—क्षमाश्रमण ! यह कैसे ?

महावीर—जो जीव अधार्मिक है और अधर्मानुसार ही विचरण करते है, उनका आलसी होना ही अच्छा है। जो जीव धर्माचरण करते है उनका उद्यमी होना अच्छा है, क्योकि धर्मपरायण जीव सावधान ही होता है और वह आचार्य, उपाध्याय, स्थविर, तपस्वी, ग्लान, शैक्ष, गण, सघ और साधार्मिक की वैयावृत्त्य करता है।

जयन्ती—श्रोत्रेन्द्रिय के वशीभूत जीव क्या कर्म बाधता है ?

महावीर—केवल श्रोत्रेन्द्रिय के नही, अपितु पाचो ही इन्द्रियो के वशीभूत होकर जीव ससार मे भ्रमण करता है।

श्रमणोपासिका जयन्ती महावीर से अपने प्रश्नो का समाधान पाकर बहुत हर्षित हुई। जीवाजीव की विभक्ति को जानकर उसने महावीर के चरणो मे प्रव्रज्या ग्रहण की।[४]

सुमनोभद्र व सुप्रतिष्ठ की दीक्षा

कौशाम्बी से विहार कर भगवान् श्रावस्ती पधारे। उस समय सुमनोभद्र और सुप्रतिष्ठित ने दीक्षा ली। दीर्घकाल तक सयम पालन कर अन्त-समय मे सुमनोभद्र ने 'राजगृह के विपुलाचल पर अनशनपूर्वक मुक्ति प्राप्त की। सुप्रतिष्ठित मुनि ने भी सत्ताईस वर्ष तक सयम पालन कर विपुलगिरि पर सिद्धि प्राप्त की।[५]

---

४ भगवती सूत्र० श, १२ उद्दे० २

५ अन्तगड अणुत्तरोववाइयदसाओ, पृ० ३४ (एन० पी० वैद्य सम्पादित)

गृहपति आनन्द

ग्रामानुग्राम विहार करते हुए भगवान् वाणिज्यग्राम पधारे। समवसरण लगा। राजा जितशत्रु और हजारो की सख्या मे जनता दर्शनार्थ व उपदेश श्रवणार्थ आई। नगर मे अद्भुत चहल-पहल थी। गृहपति आनन्द ने भी महावीर के शुभागमन का सवाद सुना। वह बहुत ही प्रसन्न हुआ। उसने स्नान किया, शुद्ध वस्त्र पहने और आभूपणो से सुसज्जित हो, वाणिज्यग्राम के मध्य से पैदल चला। उसके छत्र पर कोरट की माला लगी हुई थी। वह द्यु तिपलाश चैत्य मे पहुँचा, जहा पर भगवान् महावीर ठहरे हुए थे। तीन बार आदक्षिणा-प्रदक्षिणापूर्वक उसने वन्दना की, परिपद् के साथ वह भी उपदेश श्रवण मे लीन हो गया। उपदेश श्रवण कर जनता अपने स्थान पर चली गई। आनन्द बहुत ही प्रसन्न हुआ, उसने कहा—भगवन्! मैं निर्ग्रन्थ-प्रवचन मे श्रद्धाशील हूँ। निर्ग्रन्थ-प्रवचन मे मेरी श्रद्धा और रुचि है। जैसा आपने कहा—वह पूर्ण सत्य है। आपके पास बहुत से राजा, युवराज, सेनापति, नगर-रक्षक, माण्डलिक कौटुम्बिक, श्रेष्ठी, सार्थवाह, मुण्डित होकर आगार धर्म से अनगार धर्म को ग्रहण करते है। मैं श्रमण जीवन की कठोर चर्या का पालन करने मे असमर्थ हूँ, इसलिए गृहस्थ-धर्म के द्वादश व्रत ग्रहण करना चाहता हूँ।

महावीर ने कहा— जैसा सुख हो, वैसा करो, किन्तु श्रेय मे विलम्ब न करो।

आनन्द का व्रतग्रहण

आनन्द गाथापति ने बारह व्रत ग्रहण करते हुए निवेदन किया—भगवन् मैं दो करण और तीन योग से स्थूल प्राणातिपात, स्थूल मृषावाद व स्थूल अदत्तादान का प्रत्याख्यान करता हूँ। शिवानन्दा के अतिरिक्त सभी महिलाओ मे मेरी मातृ-दृष्टि होगी। इच्छा-परिमाण व्रत के अन्तर्गत निधान मे चार हिरण्यकोटि, वृद्धि (ब्याज) मे प्रयोजित, चार हिरण्यकोटि और धन-धान्य आदि के प्रविस्तार मे प्रयोजित चार हिरण्यकोटि के अतिरिक्त धनसग्रह का त्याग करता हूँ। चार व्रज से अधिक नही रखूँगा। क्षेत्र-भूमि मे पाँचसौ हल से अधिक नही रखूँगा। पाँचसौ शकट प्रदेशान्तर मे जाने हेतु और पाँचसौ शकट घर कार्य के लिए, इस प्रकार एक हजार से अधिक शकट नही रखूँगा। चार वाहन (जहाज) प्रदेशान्तर मे जाने के लिए और चार वाहन गृहकार्य के

लिए, इस प्रकार आठ से अधिक वाहन नही रखूंगा। स्नान करने के पश्चात् शरीर पोछने के लिए गध-काषायित वस्त्र का त्याग करता हूं। मधु-यष्टि के अतिरिक्त दातुन का त्याग करता हूं। क्षीरामलक के अतिरिक्त सभी फलो का त्याग करता हूं। शतपाक और सहस्रपाक तैल को छोडकर शेष अभ्यगविधि का प्रत्याख्यान करता हूं। सुगधि-गध के अतिरिक्त अन्य उद्-वर्तन (उबटन) विधि का त्याग करता हूं। आठ औष्ट्रिक (घडा) पानी के अतिरिक्त अधिक पानी से स्नान का प्रत्याख्यान करता हूँ। एक क्षौम युगल को छोडकर शेष सभी वस्त्रो का प्रत्याख्यान करता हूँ। अगर, कुंकुम, चदन, आदि के अतिरिक्त मैं सभी विलेपन विधि का प्रत्याख्यान करता हूं। एक शुद्ध पद्म और मालती की माला के अतिरिक्त शेप पुष्पविधि का प्रत्याख्यान करता हू। एक कार्णयक (कान का आभूपण) और नाम-मुद्रिका के अतिरिक्त अन्य आभूषणो का त्याग करता हू। अगर, तुरुक्क धूपादि को छोडकर शेष सभी धूमविधि का त्याग करता हूं। काष्ठपेया के अतिरिक्त शेष सभी पेय-विधि का त्याग करता हूं। घयपुण्ण और खण्डखज्ज को छोडकर अन्य भक्ष्य-विधि का त्याग करता हूं। कलम शालि को छोडकर अन्य सभी ओदनविधि का परित्याग करता हूं। कलाय सूप और मूग-माप के सूप के अतिरिक्त शेप सभी सूपो का त्याग करता हूं। शरदऋतु के घी के अतिरिक्त शेष सभी घृतो का त्याग करता हूं। 'चच्चू, सुत्थिय तथा मडुक्किय के अतिरिक्त सभी शाको का प्रत्याख्यान करता हूं। सेधाम्ल और दालिकाम्ल के अतिरिक्त सभी भोजनविधि का प्रत्याख्यान करता हूं। एक अन्तरिक्षोदक पानी के अतिरिक्त शेप सभी पानी का त्याग करता हू। पञ्च सौगन्धिक ताम्बूल के अतिरिक्त शेप सभी मुखवास विधि का प्रत्याख्यान करता हूं। अपध्याना-चरित, प्रमादाचरित, हिंस्रप्रदान, पापकर्म का उपदेश, इस प्रकार चार प्रकार के अनर्थदण्ड का प्रत्याख्यान करता हूं।

भगवान् महावीर ने कहा—आनन्द! जीवाजीव की विभक्ति के ज्ञाता व अपनी मर्यादा मे विहरण करने वाले श्रमणोपासक को व्रतो के अति-चार भी जानना चाहिए और उनका परिहार करते हुए ही आचरण करना चाहिए।

अभिग्रह

भगवान् महावीर ने आनन्द की जिज्ञासा पर अतिचारो का विस्तार से निरूपण किया। आनन्द ने पञ्च अणुव्रत और सप्त शिक्षाव्रत ग्रहण किये। आनन्द ने एक अभिग्रह ग्रहण करते हुए सनम्र निवेदन किया—भगवन्!

आज से मै इतर तैर्थिको को, इतर तैर्थिको के देवताओ व इतर तैर्थिको द्वारा स्वीकृत अरिहत चैत्यो को नमस्कार नही करूगा। उनके द्वारा वार्ता का आरभ न होने पर उनसे वार्तालाप करना, पुन पुन वार्तालाप करना, गुरु-बुद्धि से उन्हे अशन, पान, खादिम, स्वादिम आदि प्रदान करना मुझे नही कल्पता है। भगवन्। प्रस्तुत अभिग्रह मे मेरे छह अपवाद होगे—(१) राजा, (२) गण, (३) बलवान्, (४) देवताओ के अभियोग से (५) गुरु आदि के निग्रह से और (६) अरण्य आदि का प्रसग उपस्थित होने पर मुझे दान देना कल्पता है।

अपनी भव्य-भावना व्यक्त करते हुए आनन्द ने कहा—'भगवन्! निर्ग्रन्थो को प्रासुक व एपणीय, अशन, पान, खादिम, स्वादिम, वस्त्र, कम्बल, प्रतिग्रह (पात्र), पादप्रोञ्छन, पीठ, फलक, शय्या, सस्तारक, औषध, भैपज का प्रतिलाभ करना मुझे कल्पता है।

अभिग्रह ग्रहण करने के पश्चात् आनन्द ने बहुत सी जिज्ञासाये प्रस्तुत की और तत्त्व को हृदयगम कर और भगवान को वन्दन कर अपने घर पर आया। अत्यन्त प्रसन्न होकर अपनी धर्मपत्नी शिवानन्दा से कहने लगा—श्रमण भगवान् महावीर के समीप मैंने धर्म को सुना है, वह धर्म मुझे बहुत ही इष्ट है। वह मुझे बहुत ही रुचिकर प्रतीत हुआ। सुभगे! तुम भी जाओ, भगवान को वन्दन-नमस्कार करो और उनसे पाँच अणुव्रत, और सात शिक्षा व्रत रूप गृहस्थ धर्म स्वीकार करो।

पति के आदेश को पाकर शिवानन्दा बहुत ही प्रसन्न हुई। उसने स्नान कर अल्प भार व बहुमूल्य वस्त्राभरण पहने और दासियो के परिकर से घिरी, द्रुतगामी सुन्दर श्रेष्ठ धार्मिक यान पर आरूढ होकर द्युतिपलाश चैत्य मे भगवान् महावीर के समवसरण मे पहुँची, भगवान् के उपदेश को सुनकर आनन्दित हुई। भगवान् से द्वादश व्रत रूप गृहस्थधर्म स्वीकर कर वह अपने आवास लौट आई।

इन्द्रभूति गौतम ने भगवान से प्रश्न किया – भगवन! क्या श्रमणोपासक आनन्द आपके समीप प्रव्रजित होने मे समर्थ है।

भगवान् ने उत्तर मे कहा—गौतम! ऐसा नही है। श्रमणोपासक आनन्द बहुत वर्षों तक श्रावक पर्याय का पालन करेगा और अनशनपूर्वक शरीर त्यागकर सौधर्मकल्प मे अरुणाभ विमान मे चार पल्योपम की स्थिति से उत्पन्न होगा।

भगवान् ने अपना पन्दरहवा वर्षावास वाणिज्यगाँव मे व्यतीत किया।

पुनः राजगृह में

काल के सम्बन्ध मे प्रश्न

वाणिज्यगॉव का वर्षावास पूर्ण होने के पश्चात् भगवान ने मगधदेश की ओर विहार किया। ग्रामानुग्राम होते हुए राजगृह के गुणशिलक चैत्य मे पधारे। सभी धर्मोपदेश सुनने के लिए पहुचे।

उस समय इन्द्रभूति गौतम ने काल के सम्बन्ध मे जिज्ञासा प्रस्तुत की —भगवन्! एक मुहूर्त मे कितने उच्छ्वास होते ह ?

महावीर—असख्यात समयो का समुदाय एक आवलिका है। सख्यात आवलिकाओ का उच्छ्वास और नि श्वास होता है। पूर्ण स्वस्थ व्यक्ति के श्वासोच्छ्वास को 'प्राण' कहते है। सात प्राणो का एक स्तोक होता है, सात स्तोको का एक लव होता है और ७७ लव का एक मुहूर्त होता है। इस प्रकार एक मुहूर्त के ३७७३ श्वासोच्छ्वास होते है।

तीस मुहूर्तों का एक अहोरात्र होता है।
पन्द्रह अहोरात्र का एक पक्ष होता है।
दो पक्ष का एक मास है।
दो मास की एक ऋतु होती है।
तीन ऋतुओ का एक अयन होता है।
दो अयन का एक सवत्सर (वर्ष) होता है।
पॉच सवत्सर का एक युग होता है।
बीस युग का सौ वर्ष होता है।
दस सौ वर्ष का एक हजार वर्ष होता है।
सौ हजार वर्ष का एक लाख वर्ष होता है।
चौरासी लाख वर्ष का एक पूर्वा ग होता है।
चौरासी लाख पूर्वा ग का एक पूर्व है।
चौरासी लाख पूर्व का एक त्रुटिताग होता है।
चौरासी लाख त्रुटिताग का एक त्रुटित होता है।
चौरासी लाख त्रुटित का एक अडडाग है।
चौरासी लाख अडडाग का एक अडड होता है।
चौरासी लाख अडड का एक अववाग होता है।
चौरासी लाख अववाग का एक अवव होता है।
चौरासी लाख अवव का एक हूहूकाग होता है।

आज से मै इतर तैर्थिको को, इतर तैर्थिको के देवताओ व इतर तैर्थिको द्वारा स्वीकृत अरिहत चैत्यो को नमस्कार नही करूगा। उनके द्वारा वार्ता का आरभ न होने पर उनसे वार्तालाप करना, पुन पुन वार्तालाप करना, गुरु-बुद्धि से उन्हे अशन, पान, खादिम, स्वादिम आदि प्रदान करना मुझे नही कल्पता है। भगवन्। प्रस्तुत अभिग्रह मे मेरे छह अपवाद होगे—(१) राजा, (२) गण, (३) बलवान्, (४) देवताओ के अभियोग से (५) गुरु आदि के निग्रह से और (६) अरण्य आदि का प्रसग उपस्थित होने पर मुझे दान देना कल्पता है।

अपनी भव्य-भावना व्यक्त करते हुए आनन्द ने कहा—'भगवन्। निर्ग्रन्थो को प्रासुक व एषणीय, अशन, पान, खादिम, स्वादिम, वस्त्र, कम्बल, प्रतिग्रह (पात्र), पादप्रोञ्छन, पीठ, फलक, शय्या, सस्तारक, औषध, भैषज का प्रतिलाभ करना मुझे कल्पता है।

अभिग्रह ग्रहण करने के पश्चात् आनन्द ने बहुत-सी जिज्ञासाये प्रस्तुत की और तत्त्व को हृदयगम कर और भगवान को वन्दन कर अपने घर पर आया। अत्यन्त प्रसन्न होकर अपनी धर्मपत्नी शिवानन्दा से कहने लगा—श्रमण भगवान् महावीर के समीप मैने धर्म को सुना है, वह धर्म मुझे बहुत ही इष्ट है। वह मुझे बहुत ही रुचिकर प्रतीत हुआ। सुभगे। तुम भी जाओ, भगवान को वन्दन-नमस्कार करो और उनसे पॉच अणुव्रत, और सात शिक्षा व्रत रूप गृहस्थ धर्म स्वीकार करो।

पति के आदेश को पाकर शिवानन्दा बहुत ही प्रसन्न हुई। उसने स्नान कर अल्प भार व बहुमूल्य वस्त्राभरण पहने और दासियो के परिकर से घिरी, द्रुतगामी सुन्दर श्रेष्ठ धार्मिक यान पर आरूढ होकर द्युतिपलाश चैत्य मे भगवान् महावीर के समवसरण मे पहुँची, भगवान् के उपदेश को सुनकर आनन्दित हुई। भगवान् से द्वादश व्रत रूप गृहस्थधर्म स्वीकर कर वह अपने आवास लौट आई।

इन्द्रभूति गौतम ने भगवान से प्रश्न किया – भगवन। क्या श्रमणोपासक आनन्द आपके समीप प्रव्रजित होने मे समर्थ है।

भगवान् ने उत्तर मे कहा—गौतम। ऐसा नही है। श्रमणोपासक आनन्द बहुत वर्षो तक श्रावक-पर्याय का पालन करेगा और अनशनपूर्वक शरीर त्यागकर सौधर्मकल्प मे अरुणाभ विमान मे चार पल्योपम की स्थिति से उत्पन्न होगा।

भगवान् ने अपना पन्द्रहवा वर्षावास वाणिज्यगॉव मे व्यतीत किया।

पुनः राजगृह में

काल के सम्बन्ध मे प्रश्न

वाणिज्यगाँव का वर्षावास पूर्ण होने के पश्चात् भगवान ने मगधदेश की ओर विहार किया। ग्रामानुग्राम होते हुए राजगृह के गुणशिलक चैत्य मे पधारे। सभी धर्मोपदेश सुनने के लिए पहुचे।

उस समय इन्द्रभूति गौतम ने काल के सम्बन्ध मे जिज्ञासा प्रस्तुत की —भगवन्! एक मुहूर्त मे कितने उच्छ्वास होते है?

महावीर—असख्यात समयो का समुदाय एक आवलिका है। सख्यात आवलिकाओ का उच्छ्वास और नि श्वास होता है। पूर्ण स्वस्थ व्यक्ति के श्वासोच्छ्वास को 'प्राण' कहते है। सात प्राणो का एक स्तोक होता है, सात स्तोको का एक लव होता है और ७७ लव का एक मुहूर्त होता है। इस प्रकार एक मुहूर्त के ३७७३ श्वासोच्छ्वास होते है।

तीस मुहूर्तों का एक अहोरात्र होता है।
पन्द्रह अहोरात्र का एक पक्ष होता है।
दो पक्ष का एक मास है।
दो मास की एक ऋतु होती है।
तीन ऋतुओ का एक अयन होता है।
दो अयन का एक सवत्सर (वर्ष) होता है।
पाँच सवत्सर का एक युग होता है।
बीस युग का सौ वर्ष होता है।
दस सौ वर्ष का एक हजार वर्ष होता है।
सौ हजार वर्ष का एक लाख वर्ष होता है।
चौरासी लाख वर्ष का एक पूर्वा ग होता है।
चौरासी लाख पूर्वा ग का एक पूर्व है।
चौरासी लाख पूर्व का एक त्रुटिताग होता है।
चौरासी लाख त्रुटिताग का एक त्रुटित होता है।
चौरासी लाख त्रुटित का एक अडडाग है।
चौरासी लाख अडडाग का एक अडड होता है।
चौरासी लाख अडड का एक अववाग होता है।
चौरासी लाख अववाग का एक अवव होता है।
चौरासी लाख अवव का एक हूहूकाग होता है।

आज से मै इतर तैर्थिको को, इतर तैर्थिको के देवताओ व इतर तैर्थिको द्वारा स्वीकृत अरिहत चैत्यो को नमस्कार नही करू गा। उनके द्वारा वार्ता का आरभ न होने पर उनसे वार्तालाप करना, पुन पुन वार्तालाप करना, गुरु-बुद्धि से उन्हे अशन, पान, खादिम, स्वादिम आदि प्रदान करना मुझे नही कल्पता है ! भगवन् । प्रस्तुत अभिग्रह मे मेरे छह अपवाद होगे—(१) राजा, (२) गण, (३) बलवान्, (४) देवताओ के अभियोग से (५) गुरु आदि के निग्रह से और (६) अरण्य आदि का प्रसग उपस्थित होने पर मुझे दान देना कल्पता है।

अपनी भव्य-भावना व्यक्त करते हुए आनन्द ने कहा—'भगवन् ! निर्ग्रन्थो को प्रासुक व एषणीय, अशन, पान, खादिम, स्वादिम, वस्त्र, कम्बल, प्रतिग्रह (पात्र), पादप्रोञ्छन, पीठ, फलक, शय्या, सस्तारक, औषध, भैषज का प्रतिलाभ करना मुझे कल्पता है।

अभिग्रह ग्रहण करने के पश्चात् आनन्द ने बहुत-सी जिज्ञासाये प्रस्तुत की और तत्त्व को हृदयगम कर और भगवान को वन्दन कर अपने घर पर आया। अत्यन्त प्रसन्न होकर अपनी धर्मपत्नी शिवानन्दा से कहने लगा—श्रमण भगवान् महावीर के समीप मैने धर्म को सुना है, वह धर्म मुझे बहुत ही इष्ट है। वह मुझे बहुत ही रुचिकर प्रतीत हुआ। सुभगे ! तुम भी जाओ, भगवान को वन्दन-नमस्कार करो और उनसे पाँच अणुव्रत, और सात शिक्षा व्रत रूप गृहस्थ धर्म स्वीकार करो।

पति के आदेश को पाकर शिवानन्दा बहुत ही प्रसन्न हुई। उसने स्नान कर अल्प भार व बहुमूल्य वस्त्राभरण पहने और दासियो के परिकर से घिरी, द्रुतगामी सुन्दर श्रेष्ठ धार्मिक यान पर आरूढ होकर द्युतिपलाश चैत्य मे भगवान् महावीर के समवसरण मे पहुँची, भगवान् के उपदेश को सुनकर आनन्दित हुई। भगवान् से द्वादश व्रत रूप गृहस्थधर्म स्वीकर कर वह अपने आवास लौट आई।

इन्द्रभूति गौतम ने भगवान से प्रश्न किया – भगवन ! क्या श्रमणोपासक आनन्द आपके समीप प्रव्रजित होने मे समर्थ है।

भगवान् ने उत्तर मे कहा—गौतम ! ऐसा नही है। श्रमणोपासक आनन्द बहुत वर्षो तक श्रावक-पर्याय का पालन करेगा और अनशनपूर्वक शरीर त्यागकर सौधर्मकल्प मे अरुणाभ विमान मे चार पल्योपम की स्थिति से उत्पन्न होगा।

भगवान् ने अपना पन्द्रहवा वर्षावास वाणिज्यगाँव मे व्यतीत किया।

पुनः राजगृह में

काल के सम्बन्ध मे प्रश्न

वाणिज्यगाँव का वर्षावास पूर्ण होने के पश्चात् भगवान ने मगधदेश की ओर विहार किया। ग्रामानुग्राम होते हुए राजगृह के गुणशिलक चैत्य मे पधारे। सभी धर्मोपदेश सुनने के लिए पहुचे।

उस समय इन्द्रभूति गौतम ने काल के सम्बन्ध मे जिज्ञासा प्रस्तुत की—भगवन्। एक मुहूर्त मे कितने उच्छ्वास होते है ?

महावीर—असख्यात समयो का समुदाय एक आवलिका है। सख्यात आवलिकाओ का उच्छ्वास और नि श्वास होता है। पूर्ण स्वस्थ व्यक्ति के श्वासोच्छ्वास को 'प्राण' कहते है। सात प्राणो का एक स्तोक होता है, सात स्तोको का एक लव होता है और ७७ लव का एक मुहूर्त होता है। इस प्रकार एक मुहूर्त के ३७७३ श्वासोच्छ्वास होते है।

तीस मुहूर्तों का एक अहोरात्र होता है।
पन्द्रह अहोरात्र का एक पक्ष होता है।
दो पक्ष का एक मास है।
दो मास की एक ऋतु होती है।
तीन ऋतुओ का एक अयन होता है।
दो अयन का एक सवत्सर (वर्ष) होता है।
पाँच सवत्सर का एक युग होता है।
बीस युग का सौ वर्ष होता है।
दस सौ वर्ष का एक हजार वर्ष होता है।
सौ हजार वर्ष का एक लाख वर्ष होता है।
चौरासी लाख वर्ष का एक पूर्वा ग होता है।
चौरासी लाख पूर्वा ग का एक पूर्व है।
चौरासी लाख पूर्व का एक त्रुटिताग होता है।
चौरासी लाख त्रुटिताग का एक त्रुटित होता है।
चौरासी लाख त्रुटित का एक अडडाग है।
चौरासी लाख अडडाग का एक अडड होता है।
चौरासी लाख अडड का एक अववाग होता है।
चौरासी लाख अववाग का एक अवव होता है।
चौरासी लाख अवव का एक हूहूकाग होता है।

आज से मै इतर तैर्थिको को, इतर तैर्थिको के देवताओ व इतर तैर्थिको द्वारा स्वीकृत अरिहत चैत्यो को नमस्कार नही करू गा। उनके द्वारा वार्ता का आरभ न होने पर उनसे वार्तालाप करना, पुन पुन वार्तालाप करना, गुरु-बुद्धि से उन्हे अशन, पान, खादिम, स्वादिम आदि प्रदान करना मुझे नही कल्पता है! भगवन्। प्रस्तुत अभिग्रह मे मेरे छह अपवाद होगे—(१) राजा, (२) गण, (३) बलवान्, (४) देवताओ के अभियोग से (५) गुरु आदि के निग्रह से और (६) अरण्य आदि का प्रसग उपस्थित होने पर मुझे दान देना कल्पता है।

अपनी भव्य-भावना व्यक्त करते हुए आनन्द ने कहा—'भगवन्! निर्ग्रन्थो को प्रासुक व एषणीय, अशन, पान, खादिम, स्वादिम, वस्त्र, कम्बल, प्रतिग्रह (पात्र), पादप्रोञ्छन, पीठ, फलक, शय्या, सस्तारक, औषध, भैषज का प्रतिलाभ करना मुझे कल्पता है।

अभिग्रह ग्रहण करने के पश्चात् आनन्द ने बहुत सी जिज्ञासाये प्रस्तुत की और तत्त्व को हृदयगम कर और भगवान को वन्दन कर अपने घर पर आया। अत्यन्त प्रसन्न होकर अपनी धर्मपत्नी शिवानन्दा से कहने लगा—श्रमण भगवान् महावीर के समीप मैने धर्म को सुना है, वह धर्म मुझे बहुत ही इष्ट है। वह मुझे बहुत ही रुचिकर प्रतीत हुआ। सुभगे! तुम भी जाओ, भगवान को वन्दन-नमस्कार करो और उनसे पाँच अणुव्रत, और सात शिक्षा व्रत रूप गृहस्थ धर्म स्वीकार करो।

पति के आदेश को पाकर शिवानन्दा बहुत ही प्रसन्न हुई। उसने स्नान कर अल्प भार व बहुमूल्य वस्त्राभरण पहने और दासियो के परिकर से घिरी, द्रुतगामी सुन्दर श्रेष्ठ धार्मिक यान पर आरूढ होकर द्युतिपलाश चैत्य मे भगवान् महावीर के समवसरण मे पहुँची, भगवान् के उपदेश को सुनकर आनन्दित हुई। भगवान् से द्वादश व्रत रूप गृहस्थधर्म स्वीकर कर वह अपने आवास लौट आई।

इन्द्रभूति गौतम ने भगवान से प्रश्न किया—भगवन! क्या श्रमणोपासक आनन्द आपके समीप प्रव्रजित होने मे समर्थ है।

भगवान् ने उत्तर मे कहा—गौतम! ऐसा नही है। श्रमणोपासक आनन्द बहुत वर्षों तक श्रावक-पर्याय का पालन करेगा और अनशनपूर्वक शरीर त्यागकर सौधर्मकल्प मे अरुणाभ विमान मे चार पल्योपम की स्थिति से उत्पन्न होगा।

भगवान् ने अपना पन्दरहवा वर्षावास वाणिज्यगाँव मे व्यतीत किया।

पुनः राजगृह में

काल के सम्बन्ध मे प्रश्न

वाणिज्यगॉव का वर्षावास पूर्ण होने के पश्चात् भगवान ने मगधदेश की ओर विहार किया। ग्रामानुग्राम होते हुए राजगृह के गुणशिलक चैत्य मे पधारे। सभी धर्मोपदेश सुनने के लिए पहुचे।

उस समय इन्द्रभूति गौतम ने काल के सम्बन्ध मे जिज्ञासा प्रस्तुत की —भगवन्! एक मुहूर्त मे कितने उच्छ्वास होते है ?

महावीर—असख्यात समयो का समुदाय एक आवलिका है। सख्यात आवलिकाओ का उच्छ्वास और नि श्वास होता है। पूर्ण स्वस्थ व्यक्ति के श्वासोच्छ्वास को 'प्राण' कहते है। सात प्राणो का एक स्तोक होता है, सात स्तोको का एक लव होता है और ७७ लव का एक मुहूर्त होता है। इस प्रकार एक मुहूर्त के ३७७३ श्वासोच्छ्वास होते है।

तीस मुहूर्तों का एक अहोरात्र होता है।
पन्द्रह अहोरात्र का एक पक्ष होता है।
दो पक्ष का एक मास है।
दो मास की एक ऋतु होती है।
तीन ऋतुओ का एक अयन होता है।
दो अयन का एक सवत्सर (वर्ष) होता है।
पॉच सवत्सर का एक युग होता है।
बीस युग का सौ वर्ष होता है।
दस सौ वर्ष का एक हजार वर्ष होता है।
सौ हजार वर्ष का एक लाख वर्ष होता है।
चौरासी लाख वर्ष का एक पूर्वा ग होता है।
चौरासी लाख पूर्वा ग का एक पूर्व है।
चौरासी लाख पूर्व का एक त्रुटिताग होता है।
चौरासी लाख त्रुटिताग का एक त्रुटित होता है।
चौरासी लाख त्रुटित का एक अडडाग है।
चौरासी लाख अडडाग का एक अडड होता है।
चौरासी लाख अडड का एक अववाग होता है।
चौरासी लाख अववाग का एक अवव होता है।
चौरासी लाख अवव का एक हूहूकाग होता है।

चौरासी लाख हूहूकाग का एक हूहूक होता है।
चौरासी लाख हूहूक का एक उत्पलाग होता है।
चौरासी लाख उत्पलाग का एक उत्पल होता है।
चौरासी लाख उत्पल का एक नलिनाग होता है।
चौरासी लाख नलिनाग का एक नलिन होता है।
चौरासी लाख नलिन का एक अच्छनिकुराग होता है।
चौरासी लाख अच्छनिकुराग का एक अच्छनिकुर होता है।
चौरासी लाख अच्छनिकुर का एक अयुताग होता है।
चौरासी लाख अयुताग का एक अयुत होता है।
चौरासी लाख अयुत का एक प्रयुताग होता है।
चौरासी लाख प्रयुताग का एक प्रयुत होता है।
चौरासी लाख प्रयुत का एक नयुताग होता है।
चौरासी लाख नयुताग का एक नयुत होता है।
चौरासी लाख नयुत का एक चूलिकाग होता है।
चौरासी लाख चूलिकाग का एक चूलिका होता है।
चौरासी लाख चूलिका की एक शीर्पप्रहेलिकाग होता है।
चौरासी लाख शीर्षप्रहेलिकाग की एक शीर्ष प्रहेलिका होती है।

हे गौतम ! गणित का विषय इतना ही है, इसके बाद के काल को उपमा के द्वारा जाना जाता है। इसलिए उसे औपमिक कहते हैं।

गौतम--भगवन् ! औपमिक काल किसे कहते है ?

महावीर--औपमिक काल पल्योपम और सागरोपम के रूप मे दो प्रकार का है।

गौतम--भगवन् ! पल्योपम और सागरोपम का स्वरूप समझाइए।

महावीर--जिसका सुतीक्ष्ण शस्त्र से छेदन-भेदन नही किया जा सके, ऐसे परमाणु को 'आदि प्रमाण' कहते है।

अनन्त परमाणुओ का समुदाय एक उत्स्श्लक्ष्णश्लक्ष्मिका है।
आठ उत्स्श्लक्ष्णश्लक्ष्मिका की एक श्लक्ष्णश्लक्ष्मिका होती है।
आठ श्लक्ष्णश्लक्ष्मिका का एक ऊर्ध्वरेणु होता है।
आठ ऊर्ध्वरेणु का एक त्रसरेणु होता है।
आठ त्रसरेणु का एक रथरेणु होता है।
आठ रथरेणु का एक बालाग्र होता है।

आठ बालाग्र की एक लिक्षा होती है।
आठ लिक्षा की एक यूका होती है।
आठ यूका का एक यवमध्य होता है।
आठ यवमध्य की एक अगुल होती है।
छ अगुल का एक पाद होता है।
बारह अगुल की एक बितस्ति (बीस्ता) होता है।
चौरासी अगुल की एक रत्नी (हाथ) होती है।
अडतालीस अगुल की एक कुक्षि होती है।
छियानवे अगुल का एक दण्ड होता है। धनु, यूप, नालिका, अक्ष अथवा मूसल होता है।
दो हजार धनुष्य का एक गव्यूत (कोस) होता है।
चार कोस का एक योजना होता है।

इस प्रकार एक योजन प्रमाण वाला लम्बा, चौडा और गहरा गोल प्याले के आकार सदृश एक पल्य (गड्डा) इस प्रकार ठूँस ठूँस कर बालाग्रो से भरा जाय कि उसमे अग्नि, जल और वायु तक का भी प्रवेश न हो सके। उस पल्य मे से एकसौ वर्ष मे एक बालाग्र निकाला जाय और सौ-सौ वर्ष मे एक एक बालाग को निकालते पर जितने काल मे वह पल्य खाली हो, उतने काल को एक पल्योपम कहते है।

ऐसे दस कोटाकोटि पल्योपमो का एक सागरोपम होता है।

चार कोटाकोटि सागरोपम का सुषमासुषम नामक पहला आरक होता है।

तीन कोटाकोटि सागरोपम का सुषमा नामक दूसरा आरक होता है।

दो कोटाकोटि सागरोपम का सुषम-दुषमा नामक तीसरा आरक होता है।

बयालीस हजार वर्ष कम एक कोटाकोटि सागरोपम का दुषम सुषमा नामक चौथा आरक होता है।

इक्कीस हजार वर्ष का दु षमा नामक पाँचवा आरक होता है।

इक्कीस हजार वर्ष का दु षमदुषमा नामक छठा आरक होता है। इन छह आरो के समुदाय को अवसर्पिणी कहते है।

पुन इक्कीस हजार वर्ष का दु षम दुषमा।
इक्कीस हजार वर्ष का दु षमा।

चौरासी लाख हूहूकाग का एक हूहूक होता है।
चौरासी लाख हूहूक का एक उत्पलाग होता है।
चौरासी लाख उत्पलाग का एक उत्पल होता है।
चौरासी लाख उत्पल का एक नलिनाग होता है।
चौरासी लाख नलिनाग का एक नलिन होता है।
चौरासी लाख नलिन का एक अच्छनिकुराग होता है।
चौरासी लाख अच्छनिकुराग का एक अच्छनिकुर होता है।
चौरासी लाख अच्छनिकुर का एक अयुताग होता है।
चौरासी लाख अयुताग का एक अयुत होता है।
चौरासी लाख अयुत का एक प्रयुताग होता है।
चौरासी लाख प्रयुताग का एक प्रयुत होता है।
चौरासी लाख प्रयुत का एक नयुताग होता है।
चौरासी लाख नयुताग का एक नयुत होता है।
चौरासी लाख नयुत का एक चूलिकाग होता है।
चौरासी लाख चूलिकाग का एक चूलिका होता है।
चौरासी लाख चूलिका की एक शीर्षप्रहेलिकाग होता है।
चौरासी लाख शीर्षप्रहेलिकाग की एक शीर्ष प्रहेलिका होती है।

हे गौतम! गणित का विषय इतना ही है, इसके बाद के काल को उपमा के द्वारा जाना जाता है। इसलिए उसे औपमिक कहते है।

गौतम--भगवन्! औपमिक काल किसे कहते है?

महावीर–औपमिक काल पल्योपम और सागरोपम के रूप मे दो प्रकार का है।

गौतम—भगवन्! पल्योपम और सागरोपम का स्वरूप समझाइए।

महावीर—जिसका सुतीक्ष्ण शस्त्र से छेदन-भेदन नही किया जा सके, ऐसे परमाणु को 'आदि प्रमाण' कहते है।

अनन्त परमाणुओ का समुदाय एक उत्स्श्लक्ष्णश्लक्ष्मिका है।
आठ उत्स्श्लक्ष्णश्लक्ष्मिका की एक श्लक्ष्णश्लक्ष्मिका होती है।
आठ श्लक्ष्णश्लक्ष्मिका का एक ऊर्ध्वरेणु होता है।
आठ ऊर्ध्वरेणु का एक त्रसरेणु होता है।
आठ त्रसरेणु का एक रथरेणु होता है।
आठ रथरेणु का एक बालाग्र होता है।

आठ बालाग्र की एक लिक्षा होती है।
आठ लिक्षा की एक यूका होती है।
आठ यूका का एक यवमध्य होता है।
आठ यवमध्य की एक अंगुल होती है।
छः अगुल का एक पाद होता है।
बारह अगुल की एक बितस्ति (बीस्ता) होता है।
चौरासी अगुल की एक रत्नी (हाथ) होती है।
अडतालीस अगुल की एक कुक्षि होती है।
छियानवे अगुल का एक दण्ड होता है। धनु, यूप, नालिका, अक्ष अथवा मूसल होता है।
दो हजार धनुष्य का एक गव्यूत (कोस) होता है।
चार कोस का एक योजना होता है।

इस प्रकार एक योजन प्रमाण वाला लम्बा, चौडा और गहरा गोल प्याले के आकार सदृश एक पल्य (गड्डा) इस प्रकार ठूँस ठूँस कर बालाग्रो से भरा जाय कि उसमे अग्नि, जल और वायु तक का भी प्रवेश न हो सके। उस पल्य मे से एकसौ वर्ष मे एक बालाग्र निकाला जाय और सौ-सौ वर्ष मे एक एक बालाग्र को निकालने पर जितने काल मे वह पल्य खाली हो, उतने काल को एक पल्योपम कहते है।

ऐसे दस कोटाकोटि पल्योपमो का एक सागरोपम होता है।

चार कोटाकोटि सागरोपम का सुषमासुषम नामक पहला आरक होता है।

तीन कोटाकोटि सागरोपम का सुषमा नामक दूसरा आरक होता है।

दो कोटाकोटि सागरोपम का सुषम-दुषमा नामक तीसरा आरक होता है।

बयालीस हजार वर्ष कम एक कोटाकोटि सागरोपम का दुषम सुषमा नामक चौथा आरक होता है।

इक्कीस हजार वर्ष का दु षमा नामक पाँचवा आरक होता है।

इक्कीस हजार वर्ष का दु षमदुषमा नामक छठा आरक होता है। इन छह आरो के समुदाय को अवसर्पिणी कहते है।

पुन इक्कीस हजार वर्ष का दु षम दुषमा।
इक्कीस हजार वर्ष का दु षमा।

बयालीस हजार वर्ष कम एक कोटाकोटि सागरोपम का दुःषम-सुषमा।

दो कोटाकोटि सागरोपम का सुषमा और चार कोटाकोटि सागरोपम का सुषमा-सुषमा।

इस प्रकार दस कोटाकोटि सागरोपम प्रमाण छ आरो के समुदाय को उत्सर्पिणी काल कहते है।

इस प्रकार बीस कोटाकोटि सागरोपम का उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी काल होता है।[1]

गौतम के पूछने पर शालि आदि धान्यो की योनि और उनकी स्थिति, अवधि का भी परिचय दिया।[2]

शालिभद्र और धन्ना की दीक्षा

शालिभद्र राजगृह के धनाढ्य गृहपति गोभद्र का पुत्र था। उसकी माता का नाम भद्रा था और बहिन का नाम सुभद्रा था। धन्ना शालिभद्र के बहनोई थे। जब शालिभद्र छोटा था तब उसके पिता गोभद्र ने भ० महावीर के पास दीक्षा ली और विधिपूर्वक अनशन कर देवलोक गया था।[3] शालिभद्र अपार मातृ-वात्सल्य मे पला-पुसा और युवा हुआ। गोभद्र जो देव बना था, वह अपने पुत्र और पुत्रवधुओ के सुख-भोग के लिए वस्त्र और आभूषणो से भरी ३३ पेटियाँ प्रतिदिन उन्हे प्रदान करता था। भद्रा सम्पूर्ण गृहभार सभालती थी। शालिभद्र सातवी मजिल मे रात-दिन सुख-भोग मे तल्लीन रहता था।

---

१ भगवती०, शतक ६, उद्दे० ७, पृ० २७४

२ (क) भगवती०, श० ६, उ० ७

(ख) प्रवचनसारोद्धार सटीक उत्तराद्धं, द्वार १५४, गा० ९९५-१००० पत्र २९६-२८७

३ (क) श्रीवीरपादमूलेऽथ गोभद्रो व्रतमग्रहीत्।
विधिनानशन कृत्वा देवलोक जगाम च ॥

—त्रिषष्टि० १०।१०।८४

(ख) उपदेशमाला सटीक गाथा २०, पत्र २५६

(ग) भरतेश्वर बाहुबली वृत्ति भा० १, पत्र १०७

एक दिन राजगृह मे रत्न-कम्बल बेचने वाले व्यापारी आये। उनके पास सोलह रत्न कम्बल थे। प्रत्येक का मूल्य सवालाख स्वर्णमुद्राएँ था। राजगृह का कोई भी व्यापारी उन्हे खरीद न सका। अन्त मे वे राजा श्रेणिक के पास गये। रानियो ने रत्नकम्बल देखा, बहुत ही पसन्द आया। पर मूल्य सुनकर राजा और रानियाँ चौक गई। कम्बल न खरीद सके।

व्यापारी अपने निवासस्थान के बाहर वृक्ष की छाया मे बैठे हुए आपस मे एक दूसरे से कह रहे थे कि राजगृह नगर मे भी हमे कम्बलो का लेने वाला नही मिला, अब यहाँ से कहाँ जायें। शालिभद्र की दासियाँ उसी मार्ग से पनघट की ओर पानी भरने के लिए जा रही थी। व्यापारियो का वार्तालाप उन्होने सुना। पानी लेकर पुन आती हुई दासियो ने पूछा—ज्ञात होता है कि आप किसी गहरी चिन्ता से चिन्तित है यदि गोपनीय न हो तो हमे बताइए, हम उसको मिटाने का प्रयत्न करेगे। व्यापारियो ने कहा—जिस चिन्ता का निवारण राजा श्रेणिक भी न कर सका, उसका निवारण आप किस प्रकार कर सकेगी। दासियो ने कहा - जो कार्य बडा नही कर सकता है, वह कार्य कभी छोटा व्यक्ति कर देता है। व्यापारियो ने अपना पिण्ड छुडाने के लिए अन्यमनस्कता से अपनी बात सक्षेप मे उन्हे कह दी। दासियो ने मुस्कराते हुए कहा—क्या इतनी-सी बात है ? हमारे साथ चलो। हम एक ही सौदे मे आपकी सारी कम्बले बिकवा देगी। हमारे स्वामी शालिभद्र के पास विराट् वैभव है। व्यापारी उत्सुक होकर दासियो के साथ हो गये। शालिभद्र के भव्य भवन को देखकर उन्हे लगा ये तो राजप्रसाद की तरह रमणीय है। व्यापारियो ने प्रथम मजिल मे प्रवेश किया, वहाँ की सजावट देखकर वे विस्मित हो गये। दासियो ने बताया, यह तो हम लोगो के रहने का मजिल है। दूसरी मजिल की रमणीयता पहली मजिल से भी अधिक थी, दासियो ने कहा—यहाँ पर मुनीम लोग रहते है, जो बही-खातो का कार्य करते है। तीसरी मजिल पर पहुचे, वह और भी अधिक सुन्दर साज सज्जा से युक्त था, वहाँ पर भद्रा सेठानी थी। दासियो ने भद्रा से व्यापारियो का परिचय कराया। व्यापारियो ने कहा हमे शालिभद्र से मिलना है और उन्हे रत्न-कम्बल दिखलाने है।

भद्रा—आप शालिभद्र से नही मिल सकेगे। रत्नकम्बल मुझे ही दिखा दीजिए। आश्चर्यचकित व्यापारी भद्रा के सामने आसन पर बैठ गये और एक रत्नकम्बल निकालकर भद्रा के हाथ मे दिया। भद्रा ने पूछा—आपके पास कितने कम्बल है ?

व्यापारी—सोलह है।

भद्रा—मुझे बत्तीस चाहिए, क्योकि मेरी बत्तीस बहुए है, कम होने पर किसे दिया जाय और किसे न दिया जाय यह एक समस्या है।

व्यापारी—आपको मालूम होना चाहिए कि एक कम्बल का मूल्य सवा लाख रुपये है।

भद्रा - आप मूल्य की तनिक मात्र भी चिन्ता न करे, जो भी मूल्य होगा, वह दिया जायेगा।

व्यापारी विचारने लगे, क्या हम स्वप्नलोक मे तो नही विचरण कर रहे है।

भद्रा—अच्छा, तो आपके पास जितनी भी कम्बले है, वे यहाँ पर रख दीजिए। व्यापारियो ने वैसे ही किया। भद्रा ने मुख्य मुनीम को बुलाकर कहा—इन कम्बलो का जो भी मूल्य हो, वह इन्हे चुका दिया जाय। भद्रा अपने अन्य कार्य मे लग गई। मुनीम ने भण्डारी को आदेश देते हुए कहा—'सोलह कम्बलो का मूल्य सवा लाख प्रति कम्बल के हिसाब से इन्हे चुका दिया जाय, भण्डारी ने उसी समय मुनीम के आदेश का पालन किया। व्यापारियो के हर्ष और विस्मय का पार न रहा, वे हर्ष से बाहर निकलते हुए कहने लगे, भला हो उन दासियो का जो हमे यहाँ पर ले आई।

दूसरे दिन महारानी चेलना ने महाराज श्रेणिक से साग्रह प्रार्थना की कि एक कम्बल तो मेरे लिए खरीदना ही होगा। महारानी के आग्रह के कारण राजा श्रेणिक ने पुन व्यापारियो को बुलाया। व्यापारियो ने कहा —राजन्! हमारी सोलह ही कम्बले बिक चुकी है। श्रेणिक को जब सारी वस्तुस्थिति ज्ञात हुई तो वह भी विस्मित था। राजा ने अभयकुमार को भद्रा के पास भेजा। अभयकुमार ने भद्रा को जाकर कहा आपके पास सोलह कम्बले है, मूल्य लेकर भी एक रत्नकम्बल राजा को भेट करे। भद्रा ने कहा—मैने एक-एक कम्बल के दो-दो टुकडे कर बत्तीस बहुओ को बाँट दिये है। अभयकुमार ने कहा—अच्छा तो दो टुकडे मगवा दीजिए। महारानी जी की हठ को भी किसी तरह पूर्ण करना होगा। भद्रा ने दासियो से पुछवाया तो ज्ञात हुआ कि सभी बहुओ ने अपने-अपने पैर पोछने के अगोछे बनवा लिये है। अभयकुमार के साथ भद्रा भी राजा के योग्य बहुमूल्य उपहार लेकर सभा मे आई। भद्रा ने भेट करते हुए कहा—राजन्! आप मन मे बुरा न माने। शालिभद्र और उसकी पत्नियाँ देवदूष्य वस्त्र ही पहनती है। मेरे पति

देवगति मे है, वे प्रतिदिन उन्हे वस्त्र, आभूषण, अग-राग आदि प्रदान करते है। रत्नकम्बल का स्पर्श मेरी वहुरानियो को कठोर प्रतीत हुआ और उन्होने उसका उपयोग पैर पोछने के वस्त्र के रूप मे किया है। यह बात सुनकर राजा और सभासद सभी आश्चर्यचकित थे।

भद्रा ने राजा को अपने भवन पर आने का आमत्रण दिया। राजा श्रेणिक के मन मे पहले से उत्सुकता थी। उसने सहर्ष उसके निमत्रण को स्वीकार कर लिया। भद्रा ने घर पर आकर राजा के स्वागत की तैयारियाँ की। राजकीय साज-सज्जा के साथ राजा उसके घर पर आया। शालिभद्र अभी तक ऊपर के महलो मे ही था। चतुर्थ मजिल पर राजा को बिठाया गया। दिव्य ऋद्धि और समृद्धि को देखकर राजा चकित था। विचारने लगा इस दिव्य ऋद्धि को भोगने वाला शालिभद्र कैसा होगा। सातवी मजिल पर जाकर भद्रा ने शालिभद्र से कहा—पुत्र! श्रेणिक अपने घर पर आया है, नीचे चलो, और नमस्कार करो।

माँ, आप घर की मालकिन हे, जो भी श्रेणिक का मूल्य हो, वह दे दो, और उसे खरीद लो, मुझे नीचे चलने की क्या आवश्यकता है।

पुत्र! तुम नही समझे, श्रेणिक खरीदने की वस्तु नही है, श्रेणिक हमारा राजा है, हमारा नाथ है, वह हमारे ऊपर अत्यधिक अनुग्रह करके घर पर आया है, तुम नीचे चलकर उसे नमस्कार करो।

'नाथ' शब्द सुनते ही शालिभद्र के मन मे चोट-सी लगी, क्या मैं स्वय अपना नाथ नही हूँ, मेरे पर भी नाथ है, मैं ऐसा मार्ग अपनाऊँगा, जिससे मेरे पर अन्य कोई नाथ न रहे।

माता की आज्ञा का पालन करने के लिए शालिभद्र ने श्रेणिक के पास आकर नमस्कार किया। श्रेणिक उसके सुन्दर सुडौल शरीर, गौरवर्ण और असीम सौकुमार्य को देखकर अवाक् था। ज्यो ही नमस्कार करने के लिए वह निकट आया, त्यो ही स्नेह से श्रेणिक ने उसे गोद मे भर लिया, पर शालिभद्र गुलाब के फूल की तरह सुकुमार था, राजा के शरीर की उष्मा से उसके सम्पूर्ण शरीर से पसीना वहने लगा, उसे आकुलता का अनुभव होने लगा। राजा समझ गया। उसे निकट के आसन पर बिठाया और उससे बात की।

राजा पुलकित होता हुआ अपने राजमहल गया और शालिभद्र अपने

सातवे मजिल पर पहुँचा, पर उसके मन मे एक विचित्र उथल-पुथल मची हुई थी, क्या मैं अपना स्वामी नही हूँ ? उस समय नगर के बाहर धर्मघोप मुनि पधारे. हजारो नागरिक मुनि के दर्शनार्थ जा रहे थे। शालिभद्र ने सातवे मजिल के गवाक्ष मे बैठे यह सब देखा, अनुचरो से पता लगाया, क्योकि उसके मन मे स्वामित्व का प्रश्न घुट रहा था। समाधान की उत्सुकता मे वह भी अनुपम साज सज्जा के साथ मुनि के प्रवचन को सुनने के लिए चल पडा।[४] धर्मघोप मुनि की देशना से उसे भोगो से विरक्ति हुई। नाथ-अनाथ का मर्म समझा। मुनि बनने की विचारधारा मन मे उत्पन्न हुई।

आकर माता भद्रा से उसने बात कही। उसे वज्राघात-सा लगा। अन्त मे माता भद्रा ने सलाह दी कि यदि साधु बनना है तो धीरे-धीरे त्याग करने का अभ्यास करो। पत्निया भी पति के प्रस्तुत सकल्प को सुनकर आकुल-व्याकुल हुईं। उन्होने पति के मन को मोडने का हर प्रकार से प्रयत्न किया किन्तु शालिभद्र का पत्नी-परित्याग का अनुष्ठान चलता ही रहा। वह प्रतिदिन एक-एक पत्नी का परित्याग कर रहा था।

शालिभद्र की सगी बहिन सुभद्रा का पाणिग्रहण राजगृह के प्रसिद्ध धनवान धन्ना के साथ हुआ था। धन्ना के सुभद्रा के अतिरिक्त सात पत्नियाँ और भी थी। एक दिन वे स्नान करा रही थी। सुभद्रा को अपने भाई का स्मृति हो आई और आँखो से आँसू छलक पडे। धन्ना की पीठ पर गर्म-गर्म आँसुओ की बूदे गिरी, उसने ऊपर देखा, सुभद्रा की आँखो से आँसू बरस रहे थे। धन्ना ने कहा—इस आमोद-प्रमोद की वेला मे आँसू कैसे ? सुभद्रा ने निवेदन किया—पतिदेव ! मेरा भाई शालिभद्र दीक्षा ग्रहण करने जा रहा है और प्रतिदिन एक-एक पत्नी और शय्या का त्याग कर रहा है।[५]

---

४ शालिभद्रस्ततो हर्पादाधिरुह्य रथ ययौ।
आचार्यपादान् वन्दित्वा साधूँश्चोपाविशत्पुर ॥

—त्रिपष्टि० १०।१०।१२३

५ शालिभद्रस्वसा साश्रु स्नपयन्ती च त तदा।
किं रोदिषीति तेनोक्ता जगादेति सगद्गदम् ॥
व्रत गृहीतु मे भ्राता त्यजत्येका दिने दिने।
भार्या च तुलिका चाह हेतुना तेन रोदिमि ॥

—त्रिपष्टि० १०।१०।१३७-१३८

धन्ना ने कहा—तुम्हारा भाई बहुत ही कायर है। यदि दीक्षा ही लेनी है, फिर एक-एक पत्नी का त्याग कैसे ? यह सुनते ही सुभद्रा का स्वाभिमान जाग उठा, उसे लगा ये मेरे भाई के त्याग की प्रशसा न करके उल्टा उस पर व्यग कस रहे है, उसने उसी क्षण कहा—पतिदेव, कहना बहुत सरल होता है, पर करना बहुत ही कठिन होता है, आप भी ऐसा करें तो पता चले।[६]

पत्नी का शब्दबाण धन्ना के कलेजे मे लग गया वह स्नानपीठ से सहसा उठ खडा हुआ। लो, यह मैं चला, तुम सभी दूर हट जाओ, मैं तुम्हारा त्याग कर चुका हूँ। पत्नियाँ देखती ही रह गईं, उन्होने अनेक प्रकार से समझाने का प्रयास किया। अन्य पारिवारिक जनो ने भी बहुत प्रयत्न किया, पर सभी असफल रहे। धन्ना शालिभद्र के घर पहुँचा, उससे मिलकर कहा—यह क्या कायरता है, चलो, हम दोनो साला-बहनोई अभी-अभी भगवान् महावीर के पास जाकर दीक्षित होगे। भगवान् महावीर राजगृह नगर के बाहर पधार गये है। शालिभद्र भी धन्ना की बात सुनकर तैयार हो गया। उसने शेष पत्नियो का एक साथ त्याग कर दिया। माता की अनुमति तो उसने पहले ही प्राप्त कर ली थी। दोनो ही भगवान् के समवसरण मे पहुँचे और भागवती दीक्षा ग्रहण की।

धन्ना और शालिभद्र भिक्षु-जीवन मे आकर उत्कृष्ट तपस्वी बने। उनका निरन्तर मासिक, द्विमासिक और त्रैमासिक तप चलता रहा। एक बार पुन महावीर अपने साधुसघ के साथ राजगृह आये। शालिभद्र भी साथ ही थे। उनके एक महीने की तपस्या का पारणा था। उन्होने भगवान् को नमस्कार किया और भिक्षा के लिए नगर मे जाने की अनुमति मागी महावीर ने कहा—जाओ, अपनी माता के हाथ से पारणा पाओ।[७] मुनि शालिभद्र धन्ना के साथ अपनी माता भद्रा के घर पर आये। माता भद्रा महावीर और अपने लाडले बेटे शालिभद्र के दर्शन की तैयारी कर रही थी। उस उत्सुकता मे घर पर आये हुए मुनि की ओर ध्यान ही नही दिया।

---

६ सुकर चेद् व्रता नाथ क्रियते किं न हि स्वयम्।
एव सहासमन्याभिर्भार्याभिर्जगदेऽथ स ॥

—त्रिषष्टि० १०।१०।१४०

७ मातृपार्श्वात्पारण तेऽद्येत्युक्त स्वामिना तत ।
इच्छामीति भणञ्छालिभद्रो धन्ययुतो ययौ ॥

—त्रिषष्टि० १०।१०।१५६

सातवे मजिल पर पहुँचा, पर उसके मन मे एक विचित्र उथल-पुथल मची हुई थी, क्या मैं अपना स्वामी नही हूँ ? उस समय नगर के बाहर धर्मघोष मुनि पधारे. हजारो नागरिक मुनि के दर्शनार्थ जा रहे थे। शालिभद्र ने सातवे मजिल के गवाक्ष मे बैठे यह सब देखा, अनुचरो से पता लगाया, क्योंकि उसके मन मे स्वामित्व का प्रश्न घुट रहा था। समाधान की उत्सुकता मे वह भी अनुपम साज सज्जा के साथ मुनि के प्रवचन को सुनने के लिए चल पडा।[४] धर्मघोष मुनि की देशना से उसे भोगो से विरक्ति हुई। नाथ अनाथ का मर्म समझा। मुनि बनने की विचारधारा मन मे उत्पन्न हुई।

आकर माता भद्रा से उसने बात कही। उसे वज्राघात-सा लगा। अन्त मे माता भद्रा ने सलाह दी कि यदि साधु बनना है तो धीरे-धीरे त्याग करने का अभ्यास करो। पत्निया भी पति के प्रस्तुत सकल्प को सुनकर आकुल-व्याकुल हुईं। उन्होने पति के मन को मोडने का हर प्रकार से प्रयत्न किया किन्तु शालिभद्र का पत्नी-परित्याग का अनुष्ठान चलता ही रहा। वह प्रतिदिन एक-एक पत्नी का परित्याग कर रहा था।

शालिभद्र की सगी बहिन सुभद्रा का पाणिग्रहण राजगृह के प्रसिद्ध धनवान धन्ना के साथ हुआ था। धन्ना के सुभद्रा के अतिरिक्त सात पत्नियाँ और भी थी। एक दिन वे स्नान करा रही थी। सुभद्रा को अपने भाई की स्मृति हो आई और आँखो से आँसू छलक पडे। धन्ना की पीठ पर गर्म-गर्म आँसुओ की बूँदे गिरी, उसने ऊपर देखा, सुभद्रा की आँखो से आँसू बरस रहे थे। धन्ना ने कहा—इस आमोद-प्रमोद की वेला मे आँसू कैसे ? सुभद्रा ने निवेदन किया—पतिदेव ! मेरा भाई शालिभद्र दीक्षा ग्रहण करने जा रहा है और प्रतिदिन एक-एक पत्नी और शय्या का त्याग कर रहा है।[५]

---

४ शालिभद्रस्ततो हर्षादाधिरुह्य रथ ययौ।
आचार्यपादान् वन्दित्वा साधूँश्चोपाविशत्पुर ॥

—त्रिषष्टि० १०।१०।१२३

५ शालिभद्रस्वसा साश्रु स्नपयन्ती च त तदा।
किं रोदिपीति तेनोक्ता जगादेति सगद्गदम् ॥
व्रत गृहीतु मे भ्राता त्यजत्येका दिने दिने।
भार्या च तुलिका चाह हेतुना तेन रोदिमि ॥

—त्रिषष्टि० १०।१०।१३७-१३८

धन्ना ने कहा—तुम्हारा भाई बहुत ही कायर है। यदि दीक्षा ही लेनी है, फिर एक-एक पत्नी का त्याग कैसे ? यह सुनते ही सुभद्रा का स्वाभिमान जाग उठा, उसे लगा ये मेरे भाई के त्याग की प्रशसा न करके उल्टा उस पर व्यग कस रहे है, उसने उसी क्षण कहा—पतिदेव, कहना बहुत सरल होता है, पर करना बहुत ही कठिन होता है, आप भी ऐसा करे तो पता चले।[6]

पत्नी का शब्दबाण धन्ना के कलेजे मे लग गया वह स्नानपीठ से सहसा उठ खडा हुआ। लो, यह मैं चला, तुम सभी दूर हट जाओ, मैं तुम्हारा त्याग कर चुका हूँ। पत्नियाँ देखती ही रह गईं, उन्होने अनेक प्रकार से समझाने का प्रयास किया। अन्य पारिवारिक जनो ने भी बहुत प्रयत्न किया, पर सभी असफल रहे। धन्ना शालिभद्र के घर पहुँचा, उससे मिलकर कहा—यह क्या कायरता है, चलो, हम दोनो साला-बहनोई अभी-अभी भगवान् महावीर के पास जाकर दीक्षित होगे। भगवान् महावीर राजगृह नगर के बाहर पधार गये है। शालिभद्र भी धन्ना की बात सुनकर तैयार हो गया। उसने शेष पत्नियो का एक साथ त्याग कर दिया। माता की अनुमति तो उसने पहले ही प्राप्त कर ली थी। दोनो ही भगवान् के समवसरण मे पहुँचे और भागवती दीक्षा ग्रहण की।

धन्ना और शालिभद्र भिक्षु-जीवन मे आकर उत्कृष्ट तपस्वी बने। उनका निरन्तर मासिक, द्विमासिक और त्रैमासिक तप चलता रहा। एक बार पुन महावीर अपने साधुसघ के साथ राजगृह आये। शालिभद्र भी साथ ही थे। उनके एक महीने की तपस्या का पारणा था। उन्होने भगवान् को नमस्कार किया और भिक्षा के लिए नगर मे जाने की अनुमति मागी महावीर ने कहा—जाओ, अपनी माता के हाथ से पारणा पाओ।[7] मुनि शालिभद्र धन्ना के साथ अपनी माता भद्रा के घर पर आये। माता भद्रा महावीर और अपने लाडले बेटे शालिभद्र के दर्शन की तैयारी कर रही थी। उस उत्सुकता मे घर पर आये हुए मुनि की ओर ध्यान ही नही दिया।

---

६ सुकर चेद् व्रता नाथ क्रियते किं न हि स्वयम्।
एव सहासमन्याभिर्भार्याभिर्जगदेऽथ स ॥

—त्रिषष्टि० १०।१०।१४०

७ मातृपार्श्वात्पारण तेऽद्येत्युक्त स्वामिना तत।
इच्छामीति भणञ्छालिभद्रो धन्ययुतो ययौ ॥

—त्रिषष्टि० १०।१०।१५६

शालिभद्र का शरीर तप से इतना कृश हो चुका और बदल गया था कि सेवको ने भी अपने स्वामी को नही पहचाना। शालिभद्र बिना भिक्षा पाये ही लौट गये।[८] रास्ते मे एक अहीरिन मिली। वह अपने सिर पर दही व घी की मटकी लिये जा रही थी। मुनि को निहारते ही स्नेह उमड पडा, वह रोमाञ्चित हो गई। स्तनो से दूध की धारा छूटने लगी। उसने मुनि को दही लेने का प्रेम पूर्वक आग्रह किया। मुनि दही लेकर भगवान् महावीर के पास आए। पारणा करके भगवान् से पूछा—भगवन ! आपने फरमाया था कि माता के हाथ से पारणा करोगे, पर वह क्यो नही हुआ ? महावीर—शालिभद्र ! मेरा कथन सत्य है। आज का पारणा तुम्हारी माँ के हाथ से ही हुआ है। वह अहीरिन तुम्हारे पूर्वजन्म की माँ थी, जिसके कारण तुम्हे निहार कर उसके मानस मे स्नेह उमड पडा था।[९]

शालिभद्र को समाधान मिला

महावीर की आज्ञा लेकर शालिभद्र ने उसी दिन वैभारगिरि पर जाकर अनशन कर दिया। भद्रा समवशरण मे आई। महावीर के मुखारविंद से शालिभद्र का भिक्षाचरी से लेकर अनशन तक सम्पूर्ण वृत्तान्त सुना। माता को अपार वेदना हुई, वह उसी समय पर्वत पर पहुँची। पुत्र की तप से अत्यन्त कृश बनी हुई काया को देखकर और मरणाभिमुख स्थिति को निहार कर उसका हृदय हिल उठा। वह दहाड मारकर रोने लगी। राजा श्रेणिक ने उसे बहुत सात्वना दी। शालिभद्र आयु पूर्ण कर सर्वार्थसिद्ध मे उत्पन्न हुए। उसी तरह धन्ना भी।[१०]

दोनो का गृहस्थजीवन भोग प्रधान था तो साधक-जीवन उतना ही त्यागप्रधान रहा।

इस प्रकार हजारो नर-नारियो को चारित्र धर्म की शिक्षा-दीक्षा देते हुए भगवान् ने यह वर्षावास राजगृह मे व्यतीत किया।

---

८ त्रिषष्टि० १०।१०।१५७-१५८

९ त्रिषष्टि १०।१०।१६५

१० वही० १०।१०।१६५-१८१

सिंधु-सौवीर का ऐतिहासिक प्रवास

महाचन्द्र की दीक्षा

राजगृह का वर्षावास समाप्त कर भगवान् ने चम्पा की ओर विहार किया। चम्पा के बाहर पूर्णभद्र नामक यक्ष का यक्षायतन था, भगवान् वहाँ पधारे।

उस समय चम्पा मे दत्त नामक राजा था। रक्तवती उसकी रानी थी और महाचन्द्र नामक पुत्र था, वह युवराज भी था। भगवान् के आगमन के समाचार सुनकर राजा सपरिवार वन्दन के लिए पहुँचा। धर्मदेशना सुनकर महाचन्द्र बडा प्रभावित हुआ और श्रावक के व्रत ग्रहण किये।

कुछ समय के पश्चात् भगवान् पुन: चम्पा पधारे। महाचन्द्र माता-पिता की अनुमति लेकर भगवान् के पास दीक्षित हुआ, सामायिक से लेकर ग्यारह अगो का अध्ययन किया, अन्त मे एक मास का अनशन करके वह मृत्यु को प्राप्त होकर सौधर्मकल्प मे देव रूप मे उत्पन्न हुआ।[1]

राजर्षि उदायन की दीक्षा

उस समय सिंधु-सौवीर देश की परिगणना भारत के विशाल राज्यो मे की जाती थी। वीतभय उसकी राजधानी थी।[2] सोलह वृहद् देश, तीन सौ तिरेसठ नगर और आगर उसके अधीन थे। उदायन वहाँ का राजा था। चण्डप्रद्योतन आदि दस मुकुटधारी महापराक्रमी राजा उसके आधीन थे।[3] वैशाली के राजा चेटक की पुत्री प्रभावती उसकी रानी थी, अभीचिकुमार उसका पुत्र था और केशी उसका भानेज था।[4] प्रभावती निग्रन्थ धर्म को

---

१ विपाकसूत्र, द्वितीय श्रुतस्कध, नौवा अध्ययन

२ (क) त्रिषष्टि० १०।११

(ख) बौद्ध साहित्य आदित्त जातक (जातक हिन्दी अनुवाद भा० ४, पृ० १३६, दिव्यावदान पृ० ५४४, महावस्तु (जोस अनुदित) भाग ३, पृ० २०४ मे सिन्धु-सौवीर की राजधानी 'रोरुवा' (रुख) बताई गई है।

३ भगवती० श० १३, उ० ६,

४ (क) उत्तराध्ययन, भावविजय गणी की टीका, अ० १८।५ पत्र ३८०

(ख) आवश्यक चूर्णि, उत्तरार्द्ध, पत्र० १६४

मानने वाली श्राविका थी,[५] किन्तु राजा उद्रायन तापसो का भक्त था।[६] प्रभावती मृत्यु प्राप्त कर देव बनी उसने राजा उदायन को प्रतिबोध देकर श्रावक बनाया।[७]

एक समय राजा उदायन पौषधशाला मे पौषध कर रहा था। धर्म-जागरण करते हुए उसके अन्तर्मानस मे ये विचार उठे कि वे ग्राम, नगर धन्य है जहाँ पर श्रमण भगवान् महावीर विचरण करते है, यदि किसी समय यह महान् लाभ वीतभय को प्राप्त हो तो मैं गृहस्थाश्रम को छोडकर साधु बन जाऊँगा।

सर्वज्ञ सर्वदर्शी भगवान् महावीर ने राजा उदायन के मनोगत विचारो को जाना। उदायन का कल्याणपथ निकट देखकर भगवान ने चम्पा से वीतभय की ओर प्रस्थान किया। सात सौ कोस का उग्र विहार था। भीष्म ग्रीष्म की भयकर गर्मी पड रही थी। योजनो तक रास्ते मे गावो का अभाव था। भगवान विहार कर रहे थे। शिष्यो को भूख और प्यास सता रही थी। उस समय मार्ग मे तिलो से भरी हुई गाडिया जा रही थी। गाडी वालो ने कहा—आप इन तिलो को खाकर क्षुधा को शान्त कीजिए। भगवान् जानते थे कि तिल अचित्त हो चुके है तथापि उन्होने अपने शिष्यो को तिल लेने की अनुमति नही दी क्योकि अन्य सभी तिल अचित्त नही होते है। पास मे ही एक ह्रद था, उसमे अचित्त पानी था। भगवान् जानते थे कि यह अचित्त जल है। साधु इसे काम मे ले सकते है, पर सभी ह्रदो का पानी अचित्त नही होता। यदि आज इस ह्रद के पानी का उपयोग साधुओ को करने दिया जाय तो भविष्य मे भी अन्य सचित्त जल-ह्रदो के पानी का उपयोग भी प्रारम्भ हो जायेगा। इस दृष्टि से उस ह्रद के पानी पीने की आज्ञा प्रदान नही की।[८]

---

५ (क) प्रभावती देवी समणोवासया

—आव० चूर्णि ३९९

(ख) उत्तरा० नेमिचन्द्रवृत्ति, पत्र २५३

(ग) उत्तरा० भावविजयवृत्ति १८।५।३८०

६ उद्दायण राया तावस भत्तो।

—आव० चूर्णि ३९९

७ उत्तराध्ययन, भावविजय की वृत्ति १८।८४।३८३

८ बृहत्कल्प भाष्य वृत्ति सहित, विभाग २, गा० ९९७-९९९, पृ० ३१४, ३१५

निश्चय धर्म से भी बढकर व्यवहार धर्म की परिपालना का यह एक सकेत था।

मार्ग की विकटता और परीषहो की अधिकता से बहुत से मुनि मार्ग मे ही काल धर्म को प्राप्त हो गये।[६]

किसान को प्रतिबोध

वीतभय की ओर भगवान् अपने शिष्यो के साथ बढ रहे थे, रास्ते मे एक किसान खेत को जोत रहा था। उसके बैल जरा जर्जर क्षीणकाय हो चुके थे। वह उन बूढे बैलो को निर्दयतापूर्वक पीट रहा था। भगवान् ने गणधर गौतम को कहा—गौतम! देखो वह सामने अबोध किसान बैलो को किस प्रकार निर्दयतापूर्वक कष्ट दे रहा है। पुन पुन पीट कर उनकी चमडी उधेड रहा है। जाकर उसे प्रतिबोध दो।

प्रभु का आदेश पाते ही गौतम किसान के पास पहुंचे और मधुर वाणी मे बोले—भद्र! तू बैलो को कितनी निर्दयता से पीट रहा है, क्या इन्हे कष्ट नही होता?

बाबा! कष्ट तो हो रहा है। मै जानता हू कि इनके भी जान है, परन्तु क्या करू, ये चलते नही है। बेचारे बूढे हो गए है। मेरे पास इतना धन भी कहा है, जिससे मैं दूसरी जोडी खरीद सकू। यदि इन्हे यो ही छोड दूँ तो मेरा परिवार ही भूखा मर जाय, अब तुम्ही बताओ मैं क्या करूँ? गौतमस्वामी के सामने किसान अपनी दीनता पर रुआसा हो गया। वह प्रेम भरी दृष्टि से पुन-पुन गौतम को निहारने लगा, जैसे वे कोई पूर्वपरिचित स्नेही मित्र हो।

गौतम ने उसे दया के महत्त्व को समझाया। किसान इतना प्रभावित हुआ कि उसने गौतम के चरणो मे गिरकर कहा—भगवन्! मुझे आप अपना शिष्य बना लो। मैं अब किसी भी प्राणी को कष्ट नही दूँगा। तुम्हारे समान ही अहिंसा और सत्य का पालन करूगा।

गौतम ने उस भद्र किसान को उसी समय आर्हती-दीक्षा प्रदान की और कहा—अब चलो मेरे धर्म-गुरु धर्माचार्य के पास। किसान ने कहा—मेरे धर्मगुरु आप ही है।

---

६ आगम और त्रिपिटक एक अनुशीलन पृ० २२१

गौतम ने कहा—मेरे और तुम्हारे सभी साधको के धर्माचार्य महावीर प्रभु ह। वे तीर्थंकर हे, अनन्त ज्ञानी है। विश्व का ऐसा कोई भी रहस्य नही है जो उनसे छिपा हो। वडे वडे सम्राट, धनकुवेर श्रेष्ठी व देवता भी उनके चरणो मे नमस्कार करते हैं। महान् तपस्वी है। इस प्रकार भगवान् के दिव्य अतिशयो का वणन कर उस नव प्रव्रजित शिष्य को भगवान् के सन्निकट लेकर आए। नव प्रव्रजित किसान ने ज्यो ही भगवान् को देखा तो पसीना-पसीना हो गया। उसका रोम-रोम काप उठा, जैसे वर्फीले तूफान से पोधे काप उठते हे। उसकी आँखें चु घिया गइ।

उसने कहा—मैं इनके पास नही जाऊ गा।

गोतम—ये ही तो अपने धर्माचार्य ह।

किसान—यदि ये ही तुम्हारे गुरु हैं तो तुम्ही रखो, मुझे नही चाहिए। अव मेरा तुमसे भी कोई वास्ता नहीं है।[10] यह कहकर वह भयभ्रान्त होकर पीछे से खिसक गया। गौतम ने जब नव-शिष्य को भगवान् के समक्ष उपस्थित करने की भावना से पीछे देखा, तो वह जगल की ओर उल्टे पावो दौड रहा था, जैसे कोई हरिण वधन से छूटकर दौड रहा हो। आश्चर्यचकित गौतम ने भगवान् से पूछा - भन्ते! उस अबोध किसान के मन मे मुझे देख कर स्नेह और प्रीति जगी थी, पर आप जैसे करुणासागर और अभय के देवता को देखकर भयभीत क्यो हो गया। आपके दर्शनो से हिसक हृदय भी अहिंसक हो जाते है। रौद्र हृदय भी शान्त हो जाते हैं। जन्मगत वैर को विस्मृत हो जाते है, वहाँ यह भोला किसान भाग क्यो छूटा? कौशिक शिशु (उल्लू का वच्चा) की भाँति आपके मुखसूर्य को देखते ही घबरा क्यो उठा।[11]

भगवान् ने समाधान किया—गौतम! यह पूर्ववद्ध प्रीति एव वैर का खेल है। इस किसान के जीव के साथ तुम्हारी पूर्व प्रीति है, अनुराग है, इस लिए तुम्हे देखकर इसके मन मे अनुराग पैदा हुआ और तुम्हारे उपदेश को

---

१० तेण भणिय—जइ तुह एस घम्म गुरु, ता मम तुमएवि न कज्ज।

—महावीरचरिय (गुणभद्र) २६१

११ ज सोक्खकरेवि हु तुज्झ दसणे, दूरओ वि सो हलिओ।
सूरस्स कोसिओ इव, सोढु तेय अचाहेतो॥

—महावीरचरिय (गुणभद्र) २६१

सुनकर इसे सुलभबोधित्व की प्राप्ति हुई। मेरे प्रति अभी इसके सस्कारो मे वैर और भय की स्मृतियाँ शेष है। इसलिए मुझे देखते ही पूर्व वैर स्मरण हो आया और भयभीत होकर भाग गया।

गौतम के आग्रह पर भगवान् ने अपने त्रिपृष्ठ वासुदेव के भव की घटना सुनाते हुए कहा—उस जन्म मे मैं त्रिपृष्ठ नाम का राजकुमार था। तुम मेरे प्रिय सारथी थे। जब मैंने सिंह को पकड कर चीर डाला, उस समय सिंह की अन्तिम साँस छूट रही थी तब तुमने उसे प्रिय वचनो से सन्तुष्ट किया कि—वनराज! मन मे ग्लानि और खेद न करो। तुम्हे मारने वाला साधारण मनुष्य नही है, यह राजकुमार त्रिपृष्ठ भी नरसिंह है, अत सिंह की वीर मृत्यु एक नरसिंह के हाथ से हुई है, तुम शोक मत करो।[१२]

तुम्हारे प्रीति वचनो से सिंह को बडी शान्ति मिली। आहत सिंह ने अहमूलक प्रसन्नता से प्राणत्याग किया।

उन अन्तिम समय के अनुरागमय वचनो की स्मृति के कारण तुम्हारे प्रति इसके मन मे अनुराग के सस्कार जमे और मेरे हाथ से मृत्यु होने के कारण मेरे प्रति इसके मन मे वैर एव भय की भावना का सचार हुआ।[१३]

तुम्हारे सत्सग से उसके अन्तर् आत्मा मे एक बार सम्यक्त्व का स्पर्श हो गया है, भले ही वह ज्योति पुन बुझ गई हो, पर वह एक-न एक दिन अवश्य ही पुन प्रदीप्त होगी और वह किसान वीतरागभाव की साधना कर अवश्य ही मोक्षलाभ करेगा। अन्तर्मुहूर्त के लिए भी जिस आत्मा को सम्यग्दर्शन की प्राप्ति हो जाती है वह एक-न-एक दिन मोक्ष का अधिकारी होता ही है। इसलिए मैंने तुम्हे वहा भेजा था। मेरी योजना पूर्णरूप से सफल हुई, वह तुम्हारे से ही सम्यग्दर्शन पा सकता था, मेरे से नही।

भगवान वीतभय मे

भगवान् महावीर दीर्घ व उग्र विहार करते हुए वीतभय मे पधारे। इस सवाद को सुनकर राजा उदायन अत्यन्त प्रमुदित हुआ। वह भगवान् के

---

१२ (क) आवश्यक चूर्णि, पृ० २३४

(ख) त्रिषष्टिशलाका पुरुष० १०।११

१३ त्रिषष्टि० १०।११

समवसरण मे पहुँचा। श्रमण बनने की अपनी दीर्घकालीन भावना व्यक्त की। उसने भगवान् से प्रार्थना की—भगवन्! जब तक मैं पुत्र को राज्य सौपकर दीक्षित होने के लिए श्रीचरणो मे उपस्थित न हो जाऊ, विहार के लिए शीघ्रता न करे।

महावीर ने कहा– इस ओर प्रमाद न करना।

राजा उदायन राजमहलो मे लौट आया। मार्ग मे वह राज्यव्यवस्था का चिन्तन करता रहा। उसके हृदय मे ये विचार जगे, यदि मैं पुत्र को राज्य दू गा तो वह राज्य मे आसक्त हो जायेगा और लम्बे समय तक ससार मे परिभ्रमण करेगा, मै इसका निमित्त बन जाऊ गा, इसलिए श्रेयस्कर यही है कि पुत्र को राज्य न देकर अपने भानजे केशी को दू। कुमार भी पूर्ण सुरक्षित रहेगा। राजा ने अपने विचार को व्यवहार के रूप मे परिणत किया। उदायन बडे समारोह के साथ अभिनिष्क्रमित हुआ। महावीर के चरणो मे दीक्षा ग्रहण की।[१४]

राजर्षि ने दीक्षा के पश्चात दुष्कर तप का अनुष्ठान प्रारम्भ किया। उपवास से लेकर मासावधि तप तथा अरस-नीरस आहार और लम्बी-लम्बी तपस्याओ से वे अत्यन्त कृश हो गये।[१५] शारीरिक शक्ति क्षीण होने से वे बीमार रहने लगे। जब रोग ने उग्र रूप धारण किया तब ध्यान, स्वाध्याय आदि मे विघ्न उपस्थित होने लगा। वैद्य ने परामर्श दिया कि दही का सेवन अधिक मात्रा मे किया जाय। गोकुल मे वह सहज रूप मे उपलब्ध हो सकता था, अत राजर्षि ने उस ओर विहार किया।

किसी समय राजर्षि उदायन विहार करते हुए वीतभय पधारे। राजा केशी को मन्त्रियो ने कहा कि राजर्षि पुन आपका राज्य छीनने के लिए आये है, अत आपको सावधानी रखनी चाहिए। राजा केशी ने नगर मे कोई भी ठहरने का स्थान राजर्षि को न दे यह उद्घोषणा कर दी। राजर्षि को नगर मे कहीं भी स्थान प्राप्त नही हुआ, अन्त मे एक कुम्भकार के वहा पर उन्होने विश्राम लिया। राजा केशी ने उन्हे मरवाने के लिए अनेक बार राजर्षि को भोजन मे जहर दिया, पर महारानी प्रभावती जो देवी बनी थी, उसने

---

१४ त्रिषष्टि० १०।११

१५ चउत्थ, छट्ठ, अट्ठम, दसम, दुवालस, मासद्ध मासाईणि तवोकम्माणि कुव्वमाणे विहरइ।

—उत्तरा० नेमिचन्द्र टीका २५५-१

उनको उबार लिया। एक बार देवी की अनुपस्थिति में विषमिश्रित आहार राजर्षि के पात्र में आ गया। राजर्षि ने अनासक्त भाव से उसे खा लिया। शरीर में विष फैल गया। राजर्षि ने अनशन किया, केवलज्ञान प्राप्त हुआ, और मोक्ष प्राप्त किया।

राजर्षि के मोक्षगमन से, देवी नागरिकों व राजा पर क्रुद्ध हुई। उसने धूल की वर्षा की, और वीतभय नगर को धूलि में मिला दिया। केवल एक कुम्भकार बचा जो राजर्षि का शैयातर था। देवी उसे सिनपल्ली में ले गई, इसलिए उसके ही नाम पर उस स्थान का नाम कुम्भकार पक्खेव पड़ा।[१६]

बौद्धसाहित्य में उदायण

बौद्धसाहित्य अवदान कल्पलता[१७] व दिव्यावदान[१८] में भी राजा उद्रायन का वर्णन है। उत्तरवर्ती जैनसाहित्य में जिस प्रकार उदायन का नाम उदायण[१९] मिलता है वैसे ही अवदान कल्पलता में उद्रायण और दिव्यावदान में रुद्रायण मिलता है। दोनों ही परम्परा के ग्रन्थ उसे सिन्धु-सौवीर देश का राजा मानते है, पर राजधानी के नाम में अन्तर है। जैन-साहित्य में वीतभय और बौद्धसाहित्य में रोरुक राजधानी का नाम आया

---

१६ (क) सिणवल्लीए कुंभारपक्खेव नाम पट्टण तस्स नामेण जात।

—आव० चूर्णि

(ख) सो य अवहरिलो अणवराहि त्ति काउ सिणवल्लीए।
कुंभकारपक्खेवो नाम पट्टण तस्स नामेण कय॥

—उत्तरा० अ० १८

(ग) शय्यातर मुनेस्तस्य कुम्भकार निरागसम्।
सा सुरी सिनपल्या प्राग् निन्ये हृत्वा तत पुरम्॥
तस्य नाम्ना कुम्भकार कृतमित्याह्वय पुरम्।
तत्र सा विदधे किं वा दिव्य शक्तेर्न गोचर॥

— उत्तरा० भावविजय की टीका, पत्र ३८७-२

१७ अवदान ४०

१८ दिव्यावदान ३७

१९ उद्दायण राया, तावसो भत्तो।

—आव० चूर्णि, पूर्वार्ध पत्र ३९९

है। दोनो ही परम्परा के अनुसार उनकी पत्नी स्वर्ग से आकर उन्हे प्रतिबुद्ध करती है।

राजा उद्रायन का महावीर और बुद्ध के सपर्क मे आने का वर्णन पृथक्-पृथक रूप से मिलता है। महावीर उसे सिंधु-सौवीर जाकर दीक्षित करते है पर बुद्ध राजा के सिंधु सौवीर से मगध आने पर दीक्षित करते है। दोनो ही परपरा के अनुसार मुनि उदायन अपनी राजधानी मे जाते है, वहाँ पर दुष्ट अमात्य राजा को भ्रमित कर देते है और उनका वध कर देते है। दीक्षित होने से पूर्व जैनपरपरा की दृष्टि से राजा उद्रायन भानेज केशी को राज्य देता है और बौद्धदृष्टि से अपना राज्य अपने पुत्र शिखण्डी को देता है। दोनो ही परपराओ की दृष्टि से वे अर्हत बनकर निर्वाण प्राप्त करते है और दैवी प्रकोप से नगर धूलिसात् हो जाता है।[२०]

उदायन की कथा जैन आगम भगवती मे[२१] विस्तार से मिलती है उत्तराध्ययन[२२] मे उसका सक्षेप मे उल्लेख है। चूर्णि[२३] व अन्य टीकाओ मे भी उसका निरूपण हुआ है। भगवती[२४] के अनुसार उदायन का पुत्र अभीचि-कुमार निर्ग्रन्थ धर्म का उपासक था, पिता के द्वारा राज्य न मिलने से पिता के प्रति उसके मन मे विद्रोह की भावना रही और असुर योनि मे उत्पन्न हुआ।

बौद्ध साहित्य मे यह कथानक बाद मे आया है क्योकि 'रुद्रायणावदान' प्रकरण पालिसाहित्य मे नही है ओर न हीनयान परपरा के अन्य कथा-साहित्य मे ही है। अवदानकल्पलता और दिव्यावदान ये दोनो महायान-परम्परा के ग्रन्थ है। सस्कृत मे हे और उत्तरकालीन है।[२५] एक ही व्यक्ति दोनो परपरा मे दीक्षा लेकर मोक्ष प्राप्त करे, यह कैसे सभव हो सकता है?

---

२० बौद्ध साहित्य दिव्यावदान, रुद्रायणावदान ३७

२१ भगवती शतक १३, उद्दे० ६

२२ सोवीररायवसभो चइत्ताण मुणी चरे।
उदायणो पव्वइओ, पत्तो गइमणुत्तर॥

—उत्तरा० १८।४८

२३ आवश्यक चूर्णि पूर्वार्ध

२४ भगवती शतक १३, उद्दे० ६

२५ दिव्यावदान, सम्पादक पी० एल० वैद्य, प्रस्तावना

सभव है यह कथानक जैनसाहित्य से बौद्धसाहित्य मे गया है, क्योकि राजा बिंबिसार और उदायन का मैत्री-सबन्ध भी उसी प्रकार कराया जाता है जैसा जैनपरपरा मे अभयकुमार और आर्द्रकुमार का।[२६]

भगवान् महावीर राजर्षि उदायन को दीक्षा देकर और अनेकों को त्याग मार्ग ग्रहण करा करके, पुन वहाँ से विहार कर वाणिज्यगाव पधारे और वहाँ पर उन्होने अपना सत्तरहवा वर्षावास व्यतीत किया।

वाराणसी एवं उसके परिपार्श्व में

भगवान वाराणसी मे

भगवान् महावीर वाणिज्यगाँव का वर्षावास पूर्ण कर वाराणसी की ओर पधारे। वाराणसी के बाहर कोष्ठक चैत्य था, भगवान् वहाँ पर विराजे। भगवान् के पधारने के समाचार सुनकर वहाँ का जितशत्रु राजा वन्दना करने गया।[१]

चुलनीपिता

उस नगर मे चुलनीपिता नामक श्रेष्ठी था। श्यामा उसकी पत्नी थी। चुलनीपिता के पास चौबीस करोड की सुवर्णराशि थी और आठ गोकुल थे। एक-एक गोकुल मे दस दस हजार गायें थी। भगवान् महावीर के उपदेश सुनकर उसने सपत्नीक श्रावक धर्म स्वीकार किया। अन्त मे उसने अपने पुत्र को घर का भार देकर पौषधशाला मे जाकर धर्मप्रज्ञप्ति स्वीकार कर विचरने लगा।

एक रात्रि को वह धर्मचिन्तन कर रहा था, उस समय एक देव प्रगट हुआ, उसके हाथ मे चमचमाती तलवार थी, उसने कहा – यदि तुम शील भग न करोगे तो तुम्हारे सामने तुम्हारे तीनो लडको को मारकर, उस कडाही मे गर्म करूगा और उनके रक्त और मास से तुम्हारे शरीर का सिचन करूगा। अनेक बार धमकी देने पर भी चुलनीपिता विचलित नही हुए। तीनो पुत्रो को उसने जैसा कहा, वैसा ही किया। चौथी बार उसने कहा— यदि अब भी तू अपना व्रत भग नही करता है तो तुम्हारी माता भद्रा को

---

२६ देखिए आर्द्रकुमार का प्रसग

१ वाराणसी नाम नगरी जियसत्तू राया।

—उपासकदशाग (पी० एल० वैद्य) पृ० ३२

है। दोनो ही परम्परा के अनुसार उनकी पत्नी स्वर्ग से आकर उन्हे प्रतिबुद्ध करती है।

राजा उद्रायन का महावीर और बुद्ध के सपर्क मे आने का वर्णन पृथक्-पृथक रूप से मिलता है। महावीर उसे सिंधु-सौवीर जाकर दीक्षित करते है पर बुद्ध राजा के सिधु-सौवीर से मगध आने पर दीक्षित करते है। दोनो ही परपरा के अनुसार मुनि उदायन अपनी राजधानी मे जाते है, वहाँ पर दुष्ट अमात्य राजा को भ्रमित कर देते है और उनका वध कर देते है। दीक्षित होने से पूर्व जैनपरपरा की दृष्टि से राजा उद्रायन भानेज केशी को राज्य देता है और बौद्धदृष्टि से अपना राज्य अपने पुत्र शिखण्डी को देता है। दोनो ही परपराओ की दृष्टि से वे अर्हत बनकर निर्वाण प्राप्त करते है और दैवी प्रकोप से नगर धूलिसात् हो जाता है।[२०]

उदायन की कथा जैन आगम भगवती मे[२१] विस्तार से मिलती है, उत्तराध्ययन[२२] मे उसका सक्षेप मे उल्लेख है। चूर्णि[२३] व अन्य टीकाओ मे भी उसका निरूपण हुआ है। भगवती[२४] के अनुसार उदायन का पुत्र अभीचि: कुमार निग्रन्थ धर्म का उपासक था, पिता के द्वारा राज्य न मिलने से पिता के प्रति उसके मन मे विद्रोह की भावना रही और असुर योनि मे उत्पन्न हुआ।

बौद्ध साहित्य मे यह कथानक बाद मे आया है क्योकि 'रुद्रायणावदान' प्रकरण पालिसाहित्य मे नही है और न हीनयान परपरा के अन्य कथा-साहित्य मे ही है। अवदानकल्पलता और दिव्यावदान ये दोनो महायान-परम्परा के ग्रन्थ है। सस्कृत मे है और उत्तरकालीन है।[२५] एक ही व्यक्ति दोनो परपरा मे दीक्षा लेकर मोक्ष प्राप्त करे, यह कैसे सभव हो सकता है?

---

२० बौद्ध साहित्य दिव्यावदान, रुद्रायणावदान ३७

२१ भगवती शतक १३, उद्दे० ६

२२ सोवीररायवसभो चइत्ताण मुणी चरे।
उदायणो पव्वइओ, पत्तो गइमणुत्तर ॥

—उत्तरा० १८।४८

२३ आवश्यक चूर्णि पूर्वार्ध

२४ भगवती शतक १३ उद्दे० ६

२५ दिव्यावदान, सम्पादक पी० एल० वैद्य, प्रस्तावना

सभव है यह कथानक जैनसाहित्य से बौद्धसाहित्य मे गया है, क्योंकि राजा बिंबिसार और उदायन का मैत्री-सबन्ध भी उसी प्रकार कराया जाता है जैसा जैनपरपरा मे अभयकुमार और आर्द्रकुमार का।[२६]

भगवान् महावीर राजर्षि उदायन को दीक्षा देकर और अनेकों को त्याग मार्ग ग्रहण करा करके, पुन वहाँ से विहार कर वाणिज्यगाव पधारे और वहाँ पर उन्होंने अपना सत्तरहवा वर्षावास व्यतीत किया।

वाराणसी एवं उसके परिपार्श्व में

भगवान वाराणसी मे

भगवान् महावीर वाणिज्यगाँव का वर्षावास पूर्ण कर वाराणसी की ओर पधारे। वाराणसी के बाहर कोष्ठक चैत्य था, भगवान् वहाँ पर विराजे। भगवान् के पधारने के समाचार सुनकर वहाँ का जितशत्रु राजा वन्दना करने गया।[१]

चुलनीपिता

उस नगर मे चुलनीपिता नामक श्रेष्ठी था। श्यामा उसकी पत्नी थी। चुलनीपिता के पास चौबीस करोड की सुवर्णराशि थी और आठ गोकुल थे। एक-एक गोकुल मे दस-दस हजार गाये थी। भगवान् महावीर के उपदेश सुनकर उसने सपत्नीक श्रावक धर्म स्वीकार किया। अन्त मे उसने अपने पुत्र को घर का भार देकर पौषधशाला मे जाकर धर्मप्रज्ञप्ति स्वीकार कर विचरने लगा।

एक रात्रि को वह धर्मचिन्तन कर रहा था, उस समय एक देव प्रगट हुआ, उसके हाथ मे चमचमाती तलवार थी, उसने कहा—यदि तुम शील भग न करोगे तो तुम्हारे सामने तुम्हारे तीनो लडको को मारकर, उस कडाही मे गर्म करूगा और उनके रक्त और मास से तुम्हारे शरीर का सिंचन करूगा। अनेक बार धमकी देने पर भी चुलनीपिता विचलित नही हुए। तीनो पुत्रो को उसने जैसा कहा, वैसा ही किया। चौथी बार उसने कहा—यदि अब भी तू अपना व्रत भग नही करता है तो तुम्हारी माता भद्रा को

---

२६ देखिए आर्द्रकुमार का प्रसग

१ वाराणसी नाम नगरी जियसत्तू राया।

—उपासकदशाग (पी० एल० वैद्य) पृ० ३२

तुम्हारे सामने लाकर उसके टुकडे कर डालूंगा, उसके उकलते हुए रक्त-मास से तुम्हारे शरीर को सीचूंगा। तीसरी बार उसके कहने पर चुलनीपिता ने सोचा—यह पुरुष अनार्य है, इसने मेरे सामने तीन पुत्रो का हनन किया है और अब मेरी माता का वध करना चाहता है। वह उठा, और देव को पकडने लगा। देवता अन्तर्ध्यान हो गया। चुलनीपिता के हाथ मे एक खभा आया और वह उसे पकड कर जोर-जोर से चिल्लाने लगा।

पुत्र की चीत्कार सुनकर माता आई, चिल्लाने का कारण पूछा। माता को सारी बात बताई। माता ने कहा—पुत्र ! किसी ने भी तुम्हारे पुत्रो का वध नही किया है। यह तो उपसर्ग है। कषाय के कारण तुम उसे मारने के लिए प्रेरित हुए। इस प्रवृत्ति से स्थूलप्राणातिपात-विरमणव्रत और पौषधव्रत का भग हुआ, क्योकि पौषध मे तो सापराध और निरपराध दोनो को मारने का त्याग होता है, एतदर्थ तुम आलोचना प्रतिक्रमण कर प्रायश्चित्त लेकर अपनी शुद्धि करो।

चुलनीपिता ने माता की बात स्वीकार की। उसने ग्यारह प्रतिमाओ का पालन किया और अन्त मे सौधर्मकल्प मे देव हुआ।[२]

सुरादेव का श्रावक व्रत

भगवान महावीर की उस परिषद् मे (जिसमे चुलनीपिता आया था) वाराणसी का प्रसिद्ध धनी सुरादेव भी अपनी पत्नी धन्या के साथ उपस्थित हुआ। उसके पास अठारह करोड सुवर्ण मुद्राये थी और छह गोकुल थे। उसने भगवान् के उपदेश को सुनकर श्रावक व्रत ग्रहण किये। चुलनीपिता की तरह धर्मप्रज्ञप्ति को ग्रहण कर रहने लगा।

चुलनीपिता की तरह उसके पास भी रात्रि मे देव आया और उसी तरह शीलव्रत खण्डित करने के लिए कहा और तीनो पुत्रो के टुकडे-टुकडे कर सुरादेव के शरीर को सीचा तो भी वह विचलित नही हुआ, अन्त मे उसने तीन बार यह धमकी दी कि मैं तुम्हारे शरीर मे श्वास, कुष्ठ आदि रोग पैदा करूंगा, जिससे तू तडफ-तडफ कर मर जायेगा। तीसरी बार सुरादेव उसे पकडने के लिए उठा, पर देव चला गया और उसके हाथ खम्भा लगा। चिल्लाने पर उसकी पत्नी वहाँ आई और उसे आश्वस्त किया, अन्त मे

२ उपासकदशाग अ० ३

आलोचना, प्रायश्चित्त लेकर शुद्धि की, और आयुपूर्ण होने पर सौधर्म देव-लोक मे गया ।[3]

पुद्गल परिव्राजक को दीक्षा

वाराणसी से भगवान् आलभिया पधारे, और शखवन उद्यान मे विराजे । वाराणसी के राजा की तरह आलभिया के राजा का नाम जितशत्रु आया है। भगवान् के आगमन के समाचार सुनकर वह वन्दन के लिए पहुँचा ।

शखवन के सन्निकट ही पुद्गल परिव्राजक रहता था । जो चारो वेदो व ब्राह्मण ग्रन्थो का गभीर ज्ञाता था। वह निरन्तर षष्ठ तप के साथ सूर्य के सम्मुख ऊर्ध्वबाहु खडा होकर आतापना लेता था। उग्रतप व तीव्र आतापना तथा स्वभाव की भद्रता के कारण पुद्गल परिव्राजक को विभग-ज्ञान उत्पन्न हुआ, जिससे वह ब्रह्म देवलोक तक के देवो की गति-स्थिति को प्रत्यक्ष निहारने लगा ।[४]

इस ज्ञान की उपलब्धि से पुद्गल चिन्तन करने लगा कि मुझे विशिष्ट आत्मज्ञान हुआ है । मैं प्रत्यक्ष ज्ञान से देख रहा हूं कि देवो का कम-से-कम दस हजार वर्ष का आयुष्य होता है और अधिक से-अधिक दस सागरोपम का। इसके आगे न देव है और न देवलोक ही है। पोग्गल तपोभूमि से आश्रम की ओर चला, और वहाँ से त्रिदण्ड, कुण्डिका और धातुरक्त वस्त्र लेकर आलभिया के परिव्राजकाश्रम मे पहुँचा, त्रिदण्ड, कु डिकादि वहाँ पर रखकर आलभिया के चौक बाजारो मे अपने ज्ञान का प्रचार करने लगा । बाजारो मे पुद्गल के विचारो की चर्चा होने लगी, कितने ही उसके ज्ञान के प्रशसक थे और कितने ही विविध प्रकार की शकाएँ उठाते थे ।

भगवान् महावीर के प्रधानशिष्य इन्द्रभूति गौतम भिक्षा के लिए आलभिया नगर मे गये । पुद्गल के ज्ञान और सिद्धान्त के सम्बन्ध मे जनता मे चर्चा चल रही थी, उसे सुना । भिक्षा लेकर गौतम लौटे, उन्होने भगवान् से निवेदन करते हुए कहा- भगवन ! नगर मे पुद्गल परिव्राजक के ज्ञान और सिद्धान्त की चर्चा बडी तेजी से चल रही है। पुद्गल कहता है—ब्रह्म-

---

३ उपासक दशाग, अ० ४

४ भगवती०, श० ११, उद्दे० १२, सूत्र, ६

देवलोक तक ही देव और देवलोक है। दस हजार से लेकर दस सागरोपम तक ही देवो का आयुष्य है। भगवन्! आपका इस सम्बन्ध मे क्या मन्तव्य है।[५]

भगवान् ने कहा—पुद्गल का कथन उचित नही है। देवो को आयु-स्थिति कम-से-कम दस हजार वर्ष की और अधिक-से-अधिक तेतीस साग-रोपम की है। उसके बाद देव और देवलोको का अभाव है।

महावीर के प्रस्तुत स्पष्टीकरण को उपस्थित सभी सभासदो ने सुना। सभा विसर्जित होने पर भगवान् की सर्वज्ञता की प्रशसा करते हुए सभी नागरिक अपने-अपने स्थानो पर चले गये।

भगवान् महावीर का कथन पुद्गल ने भी सुना। उसके मन मे अपने ज्ञान के सम्बन्ध मे शका हुई। वह पहले से ही यह जानता था कि महावीर सर्वज्ञ है, तीर्थंकर है, महान् तपस्वी है। उसे अपने ज्ञान पर विश्वास नही रहा, वह उस पर ज्यो-ज्यो चिन्तन करता गया उसका विभगज्ञान लुप्त होता गया। उसे यह अनुभव होने लगा कि उसका ज्ञान भ्रान्तिपूर्ण है। वह भगवान् महावीर के समवसरण मे पहुँचा। भगवान् को विधियुक्त वन्दन कर उचित स्थान पर बैठ गया।

भगवान् के प्रवचन को सुनकर पुद्गल निर्ग्रन्थ प्रवचन पर श्रद्धा करने लगा। उसने उसी समय श्रमणधर्म स्वीकार किया और स्थविरो के पास एकादश अगो का अध्ययन कर, विविध तपो का अनुष्ठान कर कर्ममुक्त हो निर्वाण प्राप्त किया।[६]

चुल्लशतक का श्रावकव्रत

उस समय आलभिया का निवासी चुल्लशतक और उसकी धर्मपत्नी बहुला भी भगवान् महावीर के समवसरण मे पहुचे। चुल्लशतक के पास अठारह करोड की सुवर्णराशि थी, छह व्रज थे, जिसमे साठ हजार गायें थी। भगवान् का उपदेश सुन श्रावकधर्म स्वीकार किया। चुल्लनी पिता की तरह धर्म-प्रज्ञप्ति स्वीकार की। देव आया, पूर्ववत् पुत्रो का वध कर उसे शीलव्रत से डिगाने का प्रयास किया, पर वह डिगा नही।

---

५ भगवती ११।१२

६ भगवती ११।१२।८

बाद मे उसने कहा—तुम्हारे पास जितना भी धन है, उसे मै चौराहे पर फेंक दूँगा जिससे तू धन भिखारी जायेगा। तीसरी बार इस प्रकार कहने पर चुल्लशतक ने सोचा—यह अनार्य पुरुष है। इसने पूर्व मेरे पुत्रो को नष्ट किया है, अब मेरी सम्पत्ति भी नष्ट करना चाहता है। ऐसा सोचकर वह उसे पकडने के लिए उठा। पर देव आकाश मे उछल गया। चुल्लशतक के चिल्लाने की आवाज को सुनकर उसकी पत्नी ने आकर आश्वस्त किया और कृत दोषो की आलोचना कर प्रायश्चित्त ले शुद्धि की। अन्त मे आयु पूर्णकर सौधर्म देवलोक मे उत्पन्न हुआ।[७]

चुल्लशतक के साथ ही अन्य बहुत से व्यक्तियो ने श्रावक व्रत ग्रहण किये।

भगवान राजगृह मे

आलभिया से विहार कर भगवान् राजगृह पधारे। उस समय भगवान् के उपदेश को सुनकर मकाती, किंक्रम, अर्जुन और काश्यप ने दीक्षा ग्रहण की। जिसका वर्णन अन्तकृतदशाग मे इस प्रकार है—

मकाती की दीक्षा

गाथापति मकाती राजगृह नगर का निवासी था। भगवान् के उपदेश को सुनकर इसने अपने पुत्र को घर का भार सभलाकर भगवान के पास साधु बना। ग्यारह अगो का अध्ययन किया। गुणरत्न-सवत्सर तप किया, केवलज्ञान प्राप्त हुआ, सोलह वर्ष तक सयम पालन कर विपुलपर्वत पर पादपोपगमन कर सिद्ध हुआ।[८]

किंक्रम की दीक्षा

किंक्रम भी राजगृह नगर का ही निवासी था। भगवान के प्रवचन को सुनकर दीक्षा ली, ग्यारह अगो का अध्ययन किया और नाना प्रकार के तप तपे। केवलज्ञान प्राप्त कर विपुलपर्वत पर पादपोपगमन सथारा कर के सिद्ध हुआ।[९]

---

७ उपासकदशाग, अ० ५

८ अन्तकृतदशाग, वर्ग ६, अ० २

९ अन्तकृद्दशाग, वर्ग ६, अ० २

देवलोक तक ही देव और देवलोक है। दस हजार से लेकर दस सागरोपम तक ही देवो का आयुष्य है। भगवन्! आपका इस सम्बन्ध मे क्या मन्तव्य है।[५]

भगवान् ने कहा—पुद्गल का कथन उचित नही है। देवो की आयु-स्थिति कम-से-कम दस हजार वर्ष की और अधिक-से-अधिक तेतीस साग-रोपम की है। उसके बाद देव और देवलोको का अभाव है।

महावीर के प्रस्तुत स्पष्टीकरण को उपस्थित सभी सभासदो ने सुना। सभा विसर्जित होने पर भगवान् की सर्वज्ञता की प्रशसा करते हुए सभी नागरिक अपने-अपने स्थानो पर चले गये।

भगवान् महावीर का कथन पुद्गल ने भी सुना। उसके मन मे अपने ज्ञान के सम्बन्ध मे शका हुई। वह पहले से ही यह जानता था कि महावीर सर्वज्ञ है, तीर्थकर है, महान् तपस्वी है। उसे अपने ज्ञान पर विश्वास नही रहा, वह उस पर ज्यो-ज्यो चिन्तन करता गया उसका विभगज्ञान लुप्त होता गया। उसे यह अनुभव होने लगा कि उसका ज्ञान भ्रान्तिपूर्ण है। वह भगवान् महावीर के समवसरण मे पहुँचा। भगवान् को विधियुक्त वन्दन कर उचित स्थान पर बैठ गया।

भगवान् के प्रवचन को सुनकर पुद्गल निर्ग्रन्थ प्रवचन पर श्रद्धा करने लगा। उसने उसी समय श्रमणधर्म स्वीकार किया और स्थविरो के पास एकादश अगो का अध्ययन कर, विविध तपो का अनुष्ठान कर कर्ममुक्त हो निर्वाण प्राप्त किया।[६]

चुल्लशतक का श्रावकव्रत

उस समय आलभिया का निवासी चुल्लशतक और उसकी धर्मपत्नी बहुला भी भगवान् महावीर के समवसरण मे पहुचे। चुल्लशतक के पास अठारह करोड की सुवर्णराशि थी, छह व्रज थे, जिसमे साठ हजार गायें थी। भगवान् का उपदेश सुन श्रावकधर्म स्वीकार किया। चुल्लनी पिता की तरह धर्म-प्रज्ञप्ति स्वीकार की। देव आया, पूर्ववत् पुत्रो का वध कर उसे शीलव्रत से डिगाने का प्रयास किया, पर वह डिगा नही।

---

५ भगवती ११।१२

६ भगवती ११।१२।८

बाद मे उसने कहा—तुम्हारे पास जितना भी धन है, उसे मैं चौराहे पर फेंक दूँगा जिससे तू बन भिखारी जायेगा। तीसरी बार इस प्रकार कहने पर चुल्लशतक ने सोचा—यह अनार्य पुरुष है। इसने पूर्व मेरे पुत्रो को नष्ट किया है, अब मेरी सम्पत्ति भी नष्ट करना चाहता है। ऐसा सोचकर वह उसे पकडने के लिए उठा। पर देव आकाश मे उछल गया। चुल्लशतक के चिल्लाने की आवाज को सुनकर उसकी पत्नी ने आकर आश्वस्त किया और कृत दोषो की आलोचना कर प्रायश्चित्त ले शुद्धि की। अन्त मे आयु पूर्णकर सौधर्म देवलोक मे उत्पन्न हुआ।[७]

चुल्लशतक के साथ ही अन्य बहुत से व्यक्तियो ने श्रावक व्रत ग्रहण किये।

भगवान राजगृह मे

आलभिया से विहार कर भगवान् राजगृह पधारे। उस समय भगवान् के उपदेश को सुनकर मकाती, किंक्रम, अर्जुन और काश्यप ने दीक्षा ग्रहण की। जिसका वर्णन अन्तकृतदशाग मे इस प्रकार है—

मकाती की दीक्षा

गाथापति मकाती राजगृह नगर का निवासी था। भगवान् के उपदेश को सुनकर इसने अपने पुत्र को घर का भार सभलाकर भगवान के पास साधु बना। ग्यारह अगो का अध्ययन किया। गुणरत्न-सवत्सर तप किया, केवलज्ञान प्राप्त हुआ, सोलह वर्ष तक सयम पालन कर विपुलपर्वत पर पादपोपगमन कर सिद्ध हुआ।[८]

किंक्रम की दीक्षा

किंक्रम भी राजगृह नगर का ही निवासी था। भगवान के प्रवचन को सुनकर दीक्षा ली, ग्यारह अगो का अध्ययन किया और नाना प्रकार के तप तपे। केवलज्ञान प्राप्त कर विपुलपर्वत पर पादपोपगमन सथारा कर के सिद्ध हुआ।[९]

---

७ उपासकदशाग, अ० ५

८ अन्तकृतदशाग, वर्ग ६, अ० २

९ अन्तकृद्दशाग, वर्ग ६, अ० २

अर्जुनमाली की दीक्षा

राजगृह मे अर्जुन नामक एक मालाकार था। बन्धुमती उसकी पत्नी थी। वह सुन्दर और रूपवती थी। राजगृह के बाहर अर्जुनमाली का एक फलो का बगीचा था। बगीचे के मध्य मे मुद्गरपाणि यक्ष का यक्षायतन था। अर्जुन उस यक्ष का उपासक था और प्रतिदिन उसकी अर्चना किया करता था।[१०]

राजगृह मे ललिता नाम की एक गोष्ठी थी जिसमे स्वच्छन्द, आवारा, क्रूर और व्यभिचारी लोग मिले हुए थे। एक दिन अर्जुन माली फलो को तोडने के लिए पुष्पवाटिका मे पहुँचा, उस दिन उस गोष्ठी के छ व्यक्ति पूर्व से ही मन्दिर मे छिपकर बैठे थे। उन्होने अर्जुन को बधनो मे जकड दिया और स्वय बन्धुमती के साथ स्वेच्छापूर्वक क्रीडा करने लगे। अपनी आखो के सामने अपनी पत्नी की लज्जा लुटते हुए देखकर अर्जुन के हृदय को बडा ही आघात लगा। उसके मन मे विचार आया कि दीर्घकाल से मैं मुद्गरपाणि की अर्चना करता रहा हूँ पर कोई भी लाभ न हुआ। यक्ष की भर्त्सना करने पर यक्ष अर्जुन के शरीर मे प्रविष्ट हुआ, उसी क्षण बन्धन टूट गये। अर्जुन ने उन छहो पुरुषो को और अपनी पत्नी को वही पर मार दिया। फिर वह प्रतिदिन छह पुरुषो को और एक नारी की हत्या करने लगा।[११]

अर्जुन के भयकर उपद्रव से सभी तग आ गये। सारे नगर मे एक भयकर आतक छा गया। अनेक उपचार करने पर भी सफलता न मिली। ५ महीने और १३ दिनो मे उसने ११४१ मनुष्यो का घात किया, वह अपने आप मे बेभान था।

राजा श्रेणिक के आदेश से नगरी के द्वार बन्द हो गए, आघोषणा कर दी गई कि जिसे अपना जीवन प्रिय हो वह नगरी के बाहर न निकले।

राजगृह मे सुदर्शन नामक श्रेष्ठी था। उसने भगवान् महावीर के नगर के बाहर पधारने के समाचार सुने। वह भगवान् को वन्दन के लिए जाने को प्रस्तुत हुआ। परिवार वालो ने इन्कार किया। अर्जुन का भयकर

---

१० अन्तकृद्दशाग वर्ग, ६, अ० ३

११ तएण से अज्जुणए मालागारे मोग्गरपाणिणा जक्खेण अणाइट्ठे समाणे रायगिहस्स णयरस्स परिपेरतेण कल्लाकालिम इत्थिसत्तमे छपुरिसे घायमाणे विहरइ।

—अन्तकृद्दशाग वर्ग ६, अ० ३, सू ६

भय बताया पर वह तनिक मात्र भी विचलित नही हुआ। नगर के द्वार खुलवाकर वह बाहर निकला। जीवन की अपेक्षा सुदर्शन को प्रभु के दर्शन अधिक प्रिय थे। अर्जुन का उसे जरा भी भय नही था। अभय होकर वह धीर मन्द गति से बढ रहा था। दूर से अर्जुन ने सुदर्शन को इस प्रकार आता हुआ देखा तो उस ओर लपका। सुदर्शन ने अपनी ओर अर्जुन को आते हुए देखकर, सागारी सथारा कर ध्यान मुद्रा मे खडे हो गए। अर्जुन ने मुद्गर घुमाकर सेठ को ललकारा किन्तु सुदर्शन ध्यानस्थ थे।

एक ओर हिसा की आसुरी-शक्ति थी, दूसरी ओर अहिसा की दैवी-शक्ति थी। कुछ क्षणो तक दोनो मे सघर्ष चला, अन्त मे दैवी शक्ति के सामने आसुरी शक्ति पराम्त हो गई। यक्ष सुदर्शन के आध्यात्मिक तेज को सहन न कर सका, वह अर्जुन के शरीर मे से निकल गया। वह धडाम से मूर्च्छित हो, नीचे गिर पडा। ध्यान से निवृत्त हो सुदर्शन ने उसे प्रतिबोध दिया। आप भगवान् के दर्शन के लिए जा रहे है, तो क्या मैं नही चल सकता, क्या मुझे दर्शन का अधिकार नही है? अर्जुन ने आशा भरी आँखो से सुदर्शन की ओर देखा।

क्यो नही, अवश्य चल सकते हो, वहा पर किसी का प्रवेश निषिद्ध नही है। अपावन भी वहाँ पावन हो जाता है। अर्जुन का मन वल्लियो उछल पडा, अपावन से पावन बनने अवश्य चलूगा। सुदर्शन उसे अपने साथ भगवान् महावीर की सेवा मे ले गए। भगवान् के उपदेश को सुनकर अर्जुन साधु बन गया। बेले-बेले का तपश्चरण करने लगा। पारणा के दिन जब अर्जुन अनगार राजगृह मे भिक्षा के लिए आते, लोग उन्हे उलाहना देते। भर्त्सना करते, उन पर गालियो की बौछार करते। ताडना, तर्जना और प्रहार करते, किन्तु अर्जुन अनगार सभी को शान्त भाव से सहन करते, छ महीने तक सयम पालन कर अन्तकृत्‌केवली हुए।[१२]

काश्यप की दीक्षा

राजगृह मे काश्यप नामक गाथापति था। उसने भी भगवान् के पास दीक्षा ग्रहण की। ग्यारह अगो का अध्ययन किया, उत्कृष्ट तप तपा, सोलह वर्षों तक साधुधर्म का पालन कर अन्त मे विपुलपर्वत पर मोक्ष गये।[१३]

---

१२ अतकृद्दशाग वर्ग ६, अ० ३

१३ अन्तकृद्दशाग वर्ग ६, अ० ४

वारत्त की दीक्षा

वारत्त नामक गाथापति ने भी दीक्षा ली, अध्ययन व तप कर, बारह वर्षो तक श्रमणपर्याय पाल कर मोक्ष गया।[१४]

नन्द मणिकार का श्रावक व्रत

भगवान् ने वह वर्षावास राजगृह नगर मे व्यतीत किया।

नन्द मणिकार (जौहरी) ने भगवान के उपदेश को सुनकर श्रावक व्रत ग्रहण किये।[१५]

श्रेणिक की जिज्ञासा

नरकगमन और तीर्थंकरपद

वर्षावास पूर्ण होने पर भी भगवान् धर्मप्रचार के लिए राजगृह मे ही विराजमान रहे। समवसरण लगा हुआ था। समवसरण मे जहाँ सम्राट श्रेणिक, महामन्त्री अभयकुमार आदि आभिजात्य वर्ग के यशस्वी और वर्चस्वी व्यक्ति धर्म का उपदेश श्रवण कर रहे थे, वहा पर काल शौकरिक कसाई भी मन मे विचित्र प्रकार का कुतूहल लिए बैठा था। कितने ही कथाकारो का यह मन्तव्य है कि वह समवसरण के निकट कही बाहर बैठा था। भगवान् की पीयूषवर्षी प्रवचनगगा बह रही थी कि अचानक एक वृद्ध पुरुष जिसका शरीर जर्जरित था, कुष्ठ के रोग से पीडित था, फटे-पुराने चिथडे शरीर पर लपेटे हुए, लकडी के सहारे सभा को चीरता हुआ आगे आया। सम्राट की ओर मुँह कर अभिवादन किया।[१] सम्राट! चिरकाल तक जीते रहो।

---

१४ अन्तकृद्दशाग वर्ग, ३, अ० ६

१५ ज्ञाताधर्मकथा, श्रुत १, अ० १३

१ त्रिषष्टिशालाका पुरुष चरित्र मे भगवान, श्रेणिक, अभय व कालशौकरिक को छीक आने की बात लिखी है—

अत्रान्तरे जिनेन्द्रेण क्षुते प्रोवाच कुष्ठिक ।
निम्नस्वेत्यथ जीवेति श्रेणिकेन क्षुते सति ॥
क्षुतेऽभयकुमारेण जीव वा त्व म्रियस्व वा ।
कालसौकरिकेणापि क्षुते मा जीव, मा मृथा ॥

—त्रिषष्टि० १०।६।६३-६४

इस विचित्र बूढे की ओर सभी की आँखें गड गई। कितना असभ्य है? भगवान् की ओर पीठकर राजा को नमस्कार कर रहा है?

उसी क्षण वृद्ध ने भगवान् की ओर अभिमुख होकर नमस्कार करते हुए कहा—तुम शीघ्र मर क्यो नही जाते?

वृद्ध के मुँह से ये शब्द सुनते ही सारी परिषद मे एक तहलका मच गया। राजा श्रेणिक की भोहे भी तन गईं। किन्तु यह तो भगवान् की धर्म-सभा थी, राजा को भी रोकने का कोई अधिकार नही था। यहाँ तो धनिक और गरीब सभी समान थे।

वृद्ध ने राजा श्रेणिक की बगल मे बैठे हुए महामन्त्री अभयकुमार से कहा अभय! तुम चाहे जीओ, चाहे मरो?

जनता का क्रोध कुतूहल के रूप मे परिवर्तित हो गया। वह क्रोध-मिश्रित आश्चर्य-मुद्रा मे उसे देखने लगी। इतने मे वृद्ध ने कालशौकरिक कसाई को सम्बोधित कर कहा—तुम न तो मरो और न जीओ।

सारी सभा स्तब्ध थी। यह कौन मूर्ख है? किन अबूझ पहेलियो को बुझा रहा है? क्या तात्पर्य है इस बकवास का? सभी लोग परस्पर घुसुर-पुसुर कर ही रहे थे कि आँख झपकते ही वह बूढा गायब हो गया।

राजा श्रेणिक ने भगवान् से पूछा—भगवन्! यह निराला व्यक्ति कौन आया था? इसने आपका कितना अविनय किया। पागल की तरह बकवास किया। क्या इसका भी कोई रहस्य है?

प्रभु की गम्भीर वाणी मुखरित हुई—राजन! यह मनुष्य नही, देव था। उसने जो कहा, उसे तुम पागल का प्रलाप न समझो, उसके कथन मे जीवन का अमर सत्य छिपा हुआ है।

भगवन्! वह अमर सत्य क्या है, कृपया बताइए?

राजन्! वृद्ध ने तुम से कहा—जीते रहो। इसका रहस्य है कि तुम्हारे सामने इस समय भौतिक वैभव का अम्बार लगा हुआ है। तुम्हे यहाँ पर सभी भौतिक सुख उपलब्ध है। तुम यहाँ पर जितने दिन जीवित रहोगे, उतने दिन यहाँ पर कोई कष्ट नही है, पर आगे नरक तैयार है, वहाँ भयकर कष्ट है, दारुण वेदना है। यहा फूल है तो वहा शूल है, इसलिए जब तक जीवित हो तभी तक तुम्हारे लिए अच्छा है, पर मरण अच्छा नही है।

इस कटु सत्य को सुनकर सम्राट का हृदय धडकने लगा, किन्तु अगले प्रश्न को जानने की उत्सुकता थी। उसने दो क्षण रुक कर फिर प्रभु से पूछा — भगवन् ! आप जैसे महापुरुष को उसने मरने के लिए क्यो कहा ?

राजन् ! चार घनघाती कर्मों को नष्ट करने के पश्चात् अर्हन्त होता है, किन्तु जीवनशुद्धि की अन्तिम भूमिका अर्हन्त अवस्था नही है। मुक्त अवस्था ही आध्यात्मिक विकास का सर्वोत्कृष्ट रूप है। उसने मेरे देह को बन्धन माना और मरण को मुक्ति। मेरा मरण मेरी पूर्णता है, इसलिए उसने मुझे मरने के लिए कहा है।

राजा की जिज्ञासा तीसरे प्रश्न की ओर बढी। भगवान ने कहा— अभयकुमार के जीवन मे भोग के साथ त्याग भी है। इसका जीवन भ्रमर के समान है, जो रस लेते हुए भी उसमे डूबता नही है। वह निष्काम-भाव से अपना कर्तव्य अदा कर रहा है। इसलिए इसका जीवन यहा भी सुखी है। भय और शोक से मुक्त है। अगला जीवन भी भव्य है। यह यहाँ से मर कर देव बनेगा। यहा भी सुखी और वहा भी सुखी, इसलिए देव ने कहा— चाहे जीओ, चाहे मरो।

सम्राट के मन मे अपने प्रति ग्लानि होने लगी, किन्तु अन्तिम प्रश्न अवशेष था। सम्राट ने उस पहेली को भी सुलझाने की दृष्टि से पूछा— भगवन् ! कालशौकरिक के लिए उसने कहा—न मरो और न जीओ ? इसका क्या तात्पर्य है ? भगवान ने कहा—यह तो बहुत ही स्पष्ट है। काल का जीवन दुःख, दारिद्र्य और अन्धकार से व्याप्त है। वह हिंसा और क्रूरता की ज्वलत मूर्ति है, ऐसी परिस्थिति मे उसके अगले जीवन मे सुख किस प्रकार आ सकता है ? वह जब तक जीता रहेगा तब तक हिंसा कर पाप करता रहेगा और मर कर नरक मे जायेगा। यहा भी अशान्ति है और आगे भी। इसका न मरना अच्छा है और न जीना ही।[२]

---

२ अथाचचक्षे भगवान् किं भवेऽद्यापि तिष्ठसि।
शीघ्र मोक्ष प्रयाहीति मा म्रियस्वेति सोऽवदत ॥
स त्वामवोच वेति जीवतस्ते यत सुखम्।
नरके नरशार्दूल मृतस्य हि गतिस्तव ॥
जीवन् धर्म विधत्से स्याद्विमानेऽनुत्तरे मृत।
जीव म्रियस्व वेत्येव तेनाभयमभाषत ॥

राजा श्रेणिक और राजगृह के नगर-जन श्रद्धा से नत हो गए। भगवान के द्वारा बताई जीवनदृष्टि को पाकर कृतकृत्य हो गए।

सम्राट श्रेणिक ने जब भगवान के मुख से यह सुना कि तुम्हें नरक जाना पड़ेगा, तब से उनका भक्त हृदय काँप रहा था। उसने कहा—भगवन्! आपकी उपासना का क्या यही फल मुझे मिलेगा?

महावीर- नहीं राजन्! ऐसा नहीं है। तुमने मृगया-गृद्धि के कारण पहले से ही नरक का आयुष्य बाँध रखा था। मेरी उपासना का फल तो यह है कि जैसे मैं इस चौबीसी का अन्तिम तीर्थंकर हूँ, वैसे ही तुम नरक से निकलकर आगामी चौबीसी के प्रथम तीर्थंकर पद्मनाभ होगे। श्रेणिक भगवान् की भविष्यवाणी को सुनकर अत्यन्त आनन्दित और प्रफुल्लित हुआ।[3]

श्रेणिक ने भगवान् से अपने नरकगमन को टाल सकने का उपाय पूछा। महावीर ने कहा—कपिला ब्राह्मणी दान दे तथा कालशौकरिक जीव-वध त्याग दे तो तुम्हारा नरक टल सकता है।[4] किन्तु श्रेणिक की बात न कपिला ने स्वीकार की और न कसाई ने ही। जब श्रेणिक ने बलात् दान दिलवाना प्रारंभ किया तो कपिला ने कहा—दान मैं नहीं दे रही हूँ, दान तो राजा का चाटू दे रहा है। कालशौकरिक को कुएँ में डाल दिया तो वहाँ भी वह पाँचसौ मिट्टी के भैंसे बनाकर उन्हें मारने लगा।

जीवन् पापपरो मृत्वा सप्तम नरकं व्रजेत्।
कालसौकरिकस्तेन प्रोक्तो मा जीव मा मृथा॥

—त्रिषष्टि० १०।६।१३५ से १३८

३ भो देवाणुप्पिय! कीस सतावमुव्वहसि? जइवि य सम्मत्तलाभाओ पुव्वमेव निबद्धाऊत्ति नरए निवडिस्ससि तहावि लद्ध तुमए लहिअव्व, जओ खाइग-सम्मदिट्ठी तुम आगमिस्साए य उस्सप्पिणीए तत्तो उव्वट्टित्ता पउमनाभनामो पढमतित्थयरो भविस्ससि।

—महावीरचरिय

४ भगवान् व्याजहारेद साधुभ्यो भक्तिपूर्वकम्।
ब्राह्मण्या चेत् कपिलया भिक्षा दापयसे मुदा॥
कालसौकरिकेणाथ सूना मोचयसे यदि।
तदा ते नरकान्मोक्षो राजञ्जायेत् नान्यथा॥

—त्रिषष्टि० १०।६।१४४-१४५

दो उपाय और

इन दो उपायो के अतिरिक्त उत्त॰वर्ती काल के ग्रन्थो मे अन्य दो उपाय और बताये हे। वे ये हे—

"तुम्हारी दादी मुनियो के दर्शन करे।" राजा श्रेणिक ने सोचा, यह उपाय तो बहुत ही सरल है। उसने दादी से भगवान् के दशन करने के लिए प्रार्थना की, किन्तु दादी ने स्पष्ट शब्दो मे इन्कार करते हुए कहा—मैं भगवान् महावीर या उनके सन्तो के दर्शन नही करू गी। राजा श्रेणिक ने उसकी विना इच्छा के भी उसे पालखी मे बिठाई और अनुचरो को आदेश दिया कि भगवान के दर्शन के लिए समवसरण मे ले चले। पर दादी ने तो यह दृढ निश्चय कर रखा था कि वह दशन नही करेगी, इसलिए उसने रास्ते मे ही अपनी आखो मे शलाकाये डालली और फोड दी।

राजा श्रेणिक का मनोरथ पूर्ण न हो सका।

राजा श्रेणिक के मन मे उथल-पुथल मची हुई थी। नरक की कल्पना उनके लिए असह्य हो रही थी। नरक से त्राण पाने के लिए वे सब कुछ न्योछावर करने को तैयार थे। सर्वदर्शी भगवान् महावीर ने देखा—सम्राट् के मन मे साम्राज्य और कोप का गव है। जहाँ गर्व है, वहा मुक्ति कहाँ है?

श्रेणिक का धैर्य सीमा का उल्लघन कर रहा था, प्रभु! कुछ और उपाय बता दीजिए नरक से बचने का।

प्रभु की धीर-गभीर वाणी मुखरित हुई—तुम्हारे उद्धार का एक उपाय यह और हो सकता है, यदि पूणिया श्रावक को एक सामायिक का फल तुम्हे प्राप्त हो जाय, तो तुम्हारी नरक टल सकती है।

यह सुनते ही श्रेणिक का हृदय बासो उछलने लगा। एक सामायिक का क्या मूल्य हो सकता है? अधिक-से-अधिक करोड स्वर्णमुद्रा से तो अधिक नही हो सकता है? यह तो सहज उपाय है।

वे सीधे ही पूणिया श्रावक के घर पहुचे और अत्यन्त दीन स्वर मे कहने लगे—श्रावकश्रेष्ठ! तुम्हारे से एक याचना करने आया हूँ। जो माँगोगे, वही मूल्य सहर्ष दू गा।

राजन्! कहिए न, मुझ साधारण गृहस्थ के पास ऐसी कौन सी वस्तु है, जिसकी आपको आवश्यकता पडी है और जिसके लिए आपको स्वय यहाँ पर आना पडा है।

श्रावकप्रवर ! वस्तु नही, तुम्हारी सामायिक चाहिए, केवल एक सामायिक, बोलो किस मूल्य पर उसे दे सकोगे ?

पूणिया आश्चर्यचकित होकर सम्राट को देखने लगा—राजन् ! क्या आपको सामायिक चाहिए ?

श्रेणिक—हा, मुझे सामायिक चाहिए। तुम्हारी एक सामायिक से मेरी नरक टल जायेगी, तुम मूल्य बताने मे सकोच न करो, मै मुफ्त मे नही, किन्तु मूल्य चुका कर लू गा।

पूणिया श्रावक ने कहा राजन् ! यह मेरे लिए बिलकुल नई बात है, मैं सामायिक का मूल्य आपको क्या बताऊँ, जिसने लेने के लिए कहा हो, वही उसका सही मूल्य बता सकता है, आप उन्ही से पूछिये कि एक सामायिक का क्या मूल्य है ?

राजा श्रेणिक ने भगवान् से जाकर निवेदन किया—भगवन् ! पूणिया श्रावक सामायिक देने को तैयार है, वह एक सामायिक का मूल्य जानता नही है, कृपया आप ही बताइये कि एक सामायिक का क्या मूल्य है। मैं अपने समस्त राज्य कोष को देकर के भी सामायिक को लूँगा।

भगवान् ने देखा—सम्राट का अहकार पहले से भी अधिक उद्दीप्त है। वह भौतिक वैभव से आध्यात्मिक साधना का मूल्य आकना चाहता है।

भगवान् ने कहा—राजन् ! तुम भौतिक वैभव की तुलना सामायिक से करना चाहते हो ? यदि सुमेरु को तरह स्वर्ण, चाँदी, हीरे, पन्ने, माणक और मोतियो के अम्बार भी लगा दो, तो भी सामायिक का मूल्य तो क्या, सामायिक को दलाली भी नही हो सकती है।

भगवान् ने अपनी बात का स्पष्टीकरण करते हुए कहा—एक व्यक्ति अन्तिम सास ले रहा है, उसे क्या कोई करोडो ओर अरबो का धन देकर के भी बचा सकता है ?

राजा—यह तो बिलकुल ही असभव है।

राजन् ! मणि-मुक्ताओ से भी जीवन का मूल्य बढकर है। एक क्षण का जीवन भी मणि-मुक्ताओ से नही खरीद सकते। सामायिक तो आत्म-भाव की साधना है, समता की साधना है। राग-द्वेष की विषमता मे चित्त को दूर कर जन से जिन बनना, यही सामायिक का आध्यात्मिक मूल्य है। उसे प्राप्त करने के लिए मन को स्फटिक की भाति निर्मल बनाना होता है, समत्व मे स्थिर करना होता है।

राजा श्रेणिक को आज ज्ञात हुआ कि सामायिक क्या है ? धन से सामायिक खरीदने का उसका अहकार नष्ट हो गया।[५]

साराश यह है कि ये बाते नही होने वाली थी और न नरक ही टलने वाला था। राजा श्रेणिक को प्रतिबोध देने हेतु ही महावीर ने ये उपाय बताये थे।

राजर्षि प्रसन्नचन्द्र

एक बार राजा श्रेणिक भगवान् महावीर के दर्शनो के लिए आया। वदना कर उसने पूछा -भगवन् ! मैं आज दशन के लिए आ रहा था, माग मे एक महान तपस्वी के दशन हुए। वे बडी उग्र साधना कर रहे थे। सूर्य की ओर ऊँची भुजाये फैली हुई थी। मेरु की तरह अडोल थे। ध्यान मे तल्लीन थे। नासाग्र पर दृष्टि केन्द्रित थी, मुख पर अद्भुत समता व शान्ति झलक रही थी। वह कितना उग्र तपस्वी है।[६] भगवन् ! वह किस उत्तम गति को प्राप्त होगा ?

राजन् ! तुमने जिस महान् तपस्वी के दर्शन किये है, वह यदि इमी समय काल प्राप्त करे तो सातवी नरकभूमि को प्राप्त कर सकता है।

इतनी महान् साधना, और फिर सातवी नरक ? जिसके अणु-अणु मे अपार शान्ति हो, साधना का सौन्दर्य स्पष्ट रूप से झलक रहा हो, वह मर कर नरक मे जायेगा ? श्रेणिक को अपने कानो पर भी विश्वास नही हो रहा था कि मैं क्या सुन रहा हूँ।

राजन् ! तुम गलत नही, ठीक ही सुन रहे हो। यदि वह इस समय कालधम को प्राप्त करे तो छठी नरकभूमि मे जा सकता है।

सातवी से छठी नरक, यह कैसे ?

हाँ, राजन् ! अभी उसके पाँचवी नरक के योग्य कमबन्धन चल रहे है।

श्रेणिक इस अनबूझ पहेली को समझ ही न सका। उसके मन मे विचित्र प्रकार का कुतूहल हो रहा था। उसने पूछा—प्रभु ! अब ?

५ श्रेणिकचरित्र (श्री त्रिलोकऋषि जी कृत)

६ मार्गे प्रसन्नचन्द्र तमेकपादप्रतिष्ठितम्।
आतापना प्रकुर्वाणमूर्ध्ववाहुमपश्यताम्॥
— त्रिषष्टि० १०।६।२८

अब उसके कर्म चौथी नरक के योग्य है।

प्रश्नोत्तर आगे बढते रहे और कुछ ही क्षणो मे तीसरी, दूसरी और प्रथम। अब गति का क्रम ऊपर की ओर बढ रहा था। श्रेणिक के मन मे इस उतार-चढाव को जानने के लिए तीव्र जिज्ञासा हो रही थी। उसने पूछा —भगवन्! अब? भगवान् की दिव्यदृष्टि से कुछ भी छिपा नही था। भगवान ने कहा– श्रेणिक! अब वह साधक देवभूमि की ओर प्रयाण कर रहा है, यदि इसी क्षण उसकी मृत्यु हो जाय तो वह सौधर्मकल्प मे ऋद्धिशाली देव बन सकता है। उसका अभियान द्रुतगति से आगे बढ रहा है। क्षण क्षण मे उसकी भूमिका बदल रही है, ब्रह्मकल्प से भी आगे बढ गया। एक ओर साधक का आरोहणक्रम चालू था तो दूसरी ओर राजा श्रेणिक के प्रश्नो का क्रम भी चालू था, प्रभु का उत्तर भी।

श्रेणिक—भगवन्! अब उस साधक की क्या स्थिति है?

वह कल्प और ग्रैवेयक की भूमि को भी पार कर गया है, आर सर्वार्थसिद्धि की भूमि पर पहुँच गया है। प्रभु का उत्तर पूर्ण होते-होते तो आकाश मे देवदुन्दुभि बज उठी। देव-देवियो के समूह पुष्पवर्षा करते हुए पृथ्वी पर उतर रहे थे। प्रसन्नचन्द्र केवली की जय जयकार बोल रहे थे। श्रेणिक यह देखकर चकित और भ्रमित था, भगवन्! यह क्या है?

भगवान् राजन्! वह मन के सकल्प-विकल्पो पर विजय प्राप्त कर चुका है। उसे अब केवलज्ञान प्राप्त हो चुका है। और यह कैवल्य-महोत्सव किया जा रहा है।[७]

भगवन्! मैं इस रहस्य को समझ नही पाया। कुछ क्षणो के पूर्व जो सातवी नरकभूमि के योग्य कर्म कर रहा था और कुछ क्षणो के पश्चात् उत्थान की ओर बढा और अभी वह सर्वज्ञ बन गया। भगवन्! यह सब कैसे हुआ? मैं और सम्पूर्ण यह धर्मसभा उसे जानने के लिए उत्सुक है, कृपया स्पष्ट करे?

राजन्! उस साधक का नाम प्रसन्नचन्द्र राजर्षि है। वह ध्यानावस्था मे स्थित था, तुम जब वन्दन कर आगे बढे तो तुम्हारे पीछे सैनिक चल रहे थे, उनमे दो सैनिक परस्पर वार्तालाप कर रहे थे। वे शब्द राजर्षि के कानो मे गिरे। सनिक कह रहे थे – देखो! इस प्रसन्नचन्द्र राजा ने अपने नन्हे पुत्र

---

७ त्रिषष्टि० १०।९।४८-५०

के कधो पर राज्य का भार डालकर सयम ग्रहण किया। अब शत्रु राजा ने उसे दुर्बल, असमर्थ समझ कर राज्य पर आक्रमण कर दिया। युद्ध हो रहा है, सेनाये आगे बढ रही है, कुछ ही क्षणो मे प्रसन्नचन्द्र राजा का वह पुत्र या तो रण मैदान को छोडकर भाग खडा होगा या युद्ध के मैदान मे ही समाप्त हो जायेगा। अब तो राजा का कुल-सहार हो जायेगा। यह बात सुनते ही ध्यानावस्थित मुनि का मन विचलित हो उठा। उसका मन वीतराग-भाव की भूमिका से हटकर राग द्वेष की गर्त की ओर बह गया। मन मे भयकर सघर्ष छिड गया। देह स्थिर थी, पर मन मे उथल-पुथल मची हुई थी। मन मे कल्पित शत्रुओ के साथ द्वन्द्वयुद्ध चल रहा था। वह शत्रुओ के साथ द्वद्वयुद्ध मे सलग्न था। उनके रक्त से स्नान कर रहा था। युद्ध के इतने उग्र भाव बढ रहे थे, जब तुमने मुझ से प्रश्न किया तब वह साधक नही किन्तु भयकर योद्धा के रूप मे नरसहार कर रहा था। विचारो की दृष्टि से वह शत्रुओ के लिए महाकाल बन रहा था। क्रूरता की पराकाष्ठा हो रही थी और वह सर्वोत्कृष्ट स्थिति उस समय सातवी नरक के योग्य कर्म-दलिक का बध कर रही थी। यदि उस समय उसकी मृत्यु हो जाती तो वह सातवी नरक मे जाता।

भगवान् ने मनोभावो का गभीर विश्लेषण करते हुए आगे कहा –

अपने मनोकल्पित शत्रु को परास्त करने के लिए उसने अपने सभी शस्त्र प्रयोग कर लिए। जब शस्त्र समाप्त हो गए तो सिर के मुकुट से ही प्रहार करने का विचार किया। पर ज्यो ही हाथ सिर पर गया, वहाँ मुकुट कहाँ था ? वहाँ तो सफाचट मैदान था। मन मे उसी क्षण विचार आया, मैं मुकुटधारी राजा नही, किन्तु नग्न सिर वाला मुण्डित साधु हूँ। मैं कहाँ भटक गया ? मेरा कौन शत्रु है ? और मै किससे युद्ध कर रहा हूँ ? मन का कुरुक्षेत्र धर्मक्षेत्र मे परिवर्तित हो गया। मन की धारा का प्रवाह बदल गया। युद्ध तब भी चल रहा था, पर शत्रु बदल गये थे। अब दूसरो से नही, अपने से युद्ध चल रहा था। विकार और वासनाओ का सहार कर रहा था। ज्यो-ज्यो तुम्हारे प्रश्न चल रहे थे, त्यो-त्यो वह आध्यात्मिक उत्क्रान्ति की ओर कदम बढा रहा था। नरको से छलाग लगाता-लगाता वह स्वर्ग की सीढियो को भी पार कर आत्मा की निर्मलता इतनी हुई कि भूला-भटका साधक सिद्धि के द्वार पर पहुँचा और केवली बन गया।

राजा श्रेणिक चिन्तन करता रहा मन की विचित्र स्थिति पर। मन

जब अधोमुखी हुआ तो सातवीं नरक तक पहुँच गया और ऊर्ध्वमुखी बना तो सिद्धि और मुक्ति का द्वार खुल गया। श्रेणिक ने श्रद्धा से गद्गद होकर प्रभु को नमस्कार किया और अपने राजप्रासाद की ओर चल पड़ा।[८]

श्रेणिक के पुत्र और रानियों की दीक्षाएं

महाराजा श्रेणिक के मन मे निर्ग्रन्थ धर्म के प्रति अपार श्रद्धा थी। उसी श्रद्धा से उत्प्रेरित होकर उसने एक बार राजपरिवार, सामन्तों और मन्त्रियों के बीच और राजगृह मे यह उद्घोषणा की—कोई भी महावीर के पास दीक्षा ग्रहण करे, मैं उसे रोकूंगा नहीं,[९] वह सहर्ष भगवान् के पास दीक्षा ग्रहण करे। यदि उसके पीछे कोई पालन-पोषणयोग्य कुटुम्ब-परिवार होगा तो उसके पालन पोषण की चिन्ता न करे, उसकी चिन्ता राजा श्रेणिक करेगा। प्रस्तुत उद्घोषणा से प्रेरित होकर बहुत से नागरिकों के अतिरिक्त (१) जालि, (२) मयालि, (३) उपालि, (४) पुरुषसेन, (५) वारिषेण, (६) दीर्घदन्त, (७) लष्टदंत, (८) वेहल्ल, (९) वेहास, (१०) अभय,[१०] (११) दीर्घसेन, (१२) महासेन, (१३) लष्टदंत, (१४) गूढदन्त, (१५) शुद्धदन्त, (१६) हल्ल, (१७) द्रुम, (१८) द्रुमसेन, (१९) महाद्रुमसेन, (२०) सिंह, (२१) सिंहसेन, (२२) महासिंहसेन, (२३) पूर्णभद्र[११] इन तेवीस राजकुमारों ने तथा (१) नन्दा, (२) नंदमती, (३) नन्दोत्तरा, (४) नन्दिसेणिया, (५) मरुया, (६) सुमरिया, (७) महामरुता, (८) मरुदेवा (९) भद्रा, (१०) सुभद्रा, (११) सुजाता, (१२) सुमना और (१३) भूतदत्ता, इन तेरह रानियों ने दीक्षा लेकर भगवान् के संघ मे प्रवेश किया।[१२]

---

८ त्रिषष्टि० १०।९

९ एवं सुचिरं जयगुरु अभिनंदिऊण नयरं पविट्ठेण सेणिएण वाहरियो मंतिसामंत-अंतेउरपमुहो जणो, भणिओ य—जो जयगुरुणो समीवे पव्वज्जं पडिवज्जइ तमहं न वारेमि।

—महावीरचरियं, ८ वां प्रस्ताव, पृ० ३३४।१

१० अनुत्तरोपपातिक, प्रथम वर्ग, प्रथम अध्ययन

११ अनुत्तरोपपातिक, वर्ग २, अध्ययन १ से लेकर १३ तक

१२ नन्दा तह नंदवई, नंदोत्तर नंदसेणिया चेव।
मरुया सुमरुया महमरुया, मरुद्देवा य अट्ठमा।
भद्दा य सुभद्दा य, सुजाता सुमणाइया।
भूयदिण्णा य बोद्धव्वा, सेणियभज्जाण णामाइं॥

—अन्तकृद्दशांग, वर्ग ७, अ० १ से १३

सभी राजकुमारो ने अध्ययन कर सयम की उत्कृष्ट साधना की और अनुत्तर विमान मे गये।[१३] और महारानिया तेरह ही साधना कर मुक्त हुई।[१४]

आर्द्रक मुनि द्वारा आक्षेप-परिहार

आर्द्रककुमार आर्द्रकपुर के राजकुमार थे।[१] एक बार उनके पिता ने राजा श्रेणिक के लिए बहुमूल्य उपहार भेजे। उस समय आर्द्रककुमार ने भी अभयकुमार के लिए उपहार भेजे। पुन राजगृह से भी उसके बदले मे उपहार आये। अभयकुमार की ओर से आर्द्रककुमार के लिए धर्मोपकरण के रूप मे उपहार आया। उसे प्राप्त कर आर्द्रककुमार प्रतिबुद्ध हुए। जाति-स्मरण ज्ञान हुआ, जिससे उन्होने दीक्षा ग्रहण की और वहा से भगवान् महावीर के दर्शन के लिए राजगृह की ओर विहार किया। उन्हे मार्ग मे विभिन्न मतो के अनुयायी मिले। उन्होने आर्द्रककुमार से धर्म-चर्चाएँ की। आर्द्रककुमार मुनि ने सभी मतो का खण्डन कर भगवान् महावीर के मत का समर्थन किया। वह विचार चर्चा का प्रसग इस प्रकार है।

सर्वप्रथम आर्द्रककुमार मुनि को गोशालक मिलते है, वे उन्हे मार्ग मे ही रोक कर कहते है - आर्द्रक! मैं तुम्हे महावीर के विगत जीवन की कथा सुनाता हूँ। वह पूर्व एकान्तविहारी श्रमण था। अब वह भिक्षुसघ के साथ धर्मोपदेश करने चला है। इस प्रकार स्पष्ट है कि उस अस्थिरात्मा ने अपनी आजीविका चलाने का यह उपक्रम किया है। उसके वर्तमान के आचरण मे और विगत के आचरण मे स्पष्ट विरोध है।

---

१३ अनुत्तरोपपातिक, वर्ग–१-२

१४ अन्तकृद्दशाग, वर्ग ७, अ० १ से १३

१ (क) सूत्रकृताग निर्युक्ति, टीका सहित, श्रु० २, अ० ६, प० १३६

(ख) त्रिषष्टि० १०।७।१७७-१७६

(ग) पर्यूषणाऽष्टाह्निका व्याख्यान, श्लो० ५, प० ६

(घ) डा० ज्योतिप्रसाद जैन ने आर्द्रककुमार को ईरान के ऐतिहासिक सम्राट कुरुष्प (ई० पू० ५५८-५३०) का पुत्र माना है।

—भारतीय इतिहास एक दृष्टि, पृ० ६७-६८

आर्द्रक मुनि—आपका कथन उचित नही है। आपने महावीर के जीवन रहस्य को नही समझा है, एतदर्थ ही आपको जीवन मे विरोध अनुभव हो रहा है। भगवान् महावीर का एकान्त-भाव अतीत, वर्तमान और भविष्य इन तीनो कालो मे स्थिर रहने वाला है। वे राग-द्वेष से रहित है, इसलिए हजारो के बीच मे रहकर भी एकान्त-साधना कर रहे है। जितेन्द्रिय श्रमण वाणी के गुण-दोषो को समझता हुआ उपदेश देता है, उसमे तनिक मात्र भी दोष नही है। जो पाच महाव्रतो का उपदेश करता है, जो पांच अणुव्रतो की उपयोगिता समझता है, जो पाच आश्रव, पाच सवर को हेय, उपादेय बतलाता है, और जो अकर्तव्य कर्म से निवृत्त होने का उपदेश करता है, वही विज्ञ है और वही कर्ममुक्त होने वाला सच्चा श्रमण है।

गोशालक—हमारे सिद्धान्त के अनुसार सचित्त जल पीने मे, बीजादि धान्य के खाने मे, उद्दिष्ट आहार के खाने मे, तथा स्त्री-सभोग मे एकान्त [illegible]री तपस्वी को किञ्चित् मात्र भी पाप नही लगता।

आर्द्रक मुनि—यदि ऐसा है तो गृहस्थ और श्रमण मे क्या अन्तर है? [illegible]ो गृहस्थ श्रमण हो जायेगे, जो आपने कहा वे सभी कार्य वे करते ही है। कच्चा पानी पीते है, बीज, धान्य आदि खाते है, स्त्रीसेवी है वे भिक्षु केवल पेटभराई के लिए ही भिक्षु बने है। इस प्रकार ससार का त्याग [illegible]रके भी मोक्ष नही पा सकेंगे। यह मेरा दृढ मन्तव्य है।

गोशालक—ऐसा कह कर तुम सभी मतो का तिरस्कार कर रहे हो। [illegible]न बीज फलभोजी तपस्वी महात्माओ को तू कुयोगी और उदरार्थी भिक्षु [illegible]हता है।

आर्द्रक मुनि मै किसी मत की निन्दा नही करता, किन्तु सत्य-तथ्य का उद्घाटन कर रहा हूँ। अन्य दर्शन वाले अपने मत की प्रशसा करते है और दूसरे की निन्दा करते हुए कहते है— तत्व हमे ही प्राप्त हुआ है, दूसरो को नही। मैं किसी व्यक्तिविशेष का नही, किन्तु मिथ्या-मान्यताओ का तिरस्कार करता हू। जो सयमी साधक किसी स्थावर प्राणी को भी कष्ट नही देता, वह किसी का तिरस्कार किस प्रकार कर सकता है?

गोशालक तुम्हारा धर्माचार्य कायर है, क्योकि वह उद्यान-शालाओ मे, धर्मशालाओ मे इसलिए नही ठहरता है कि वहा अनेक दर्शनो के प्रकाण्ड पण्डित, अनेक प्रतिभासम्पन्न भिक्षु ठहरते है, उसे भय है कि वे मुझसे कुछ पूछ न बैठे। जिसका मैं उत्तर न दे सकू।

प्राणिमात्र के प्रति जिनके अन्तर्मानस मे दया की भावनाएँ अगडाइयाँ ले रही है, जो सावद्य दोपो का वर्जन करते है, ऐसे भगवान् महावीर के भिक्षु दोप की आशका मे उद्दिष्ट-भोजन ग्रहण नही करते है। जिससे स्थावर और जगम प्राणियो को कष्ट हो, ऐसी प्रवृत्ति नही करते है। सयमी पुरुप का धर्म पालन करना कितना सूक्ष्म है।

रक्तरजित हाथ वाला व्यक्ति जो प्रतिदिन दो हजार स्नातक भिक्षुओ को भोजन खिलाता है, वह पूर्ण असयमी है। खूनी व्यक्ति इस लोक मे भी तिरस्कार का पात्र होता है, उसे परलोक मे भी श्रेष्ठ गति नही मिल सकती।

जिस वचन से पाप को उत्तेजना मिलती हो, वह वचन कभी नही बोलना चाहिए। इस प्रकार तत्त्वशून्य वाणी गुणो से रहित है। भिक्षुओ को तो इस प्रकार की वाणी कभी नही बोलनी चाहिए।

आर्द्रक मुनि की तर्कयुक्त बात को सुनकर बौद्ध भिक्षु निरुत्तर हो गया। वेदवादी ब्राह्मण आगे बढा। उसने कहा—

वेदवादी ब्राह्मण

वेदवादी—जो प्रतिदिन दो हजार स्नातक ब्राह्मणो को भोजन खिलाता है, वह पुण्य की राशि एकत्रित कर देव गति मे उत्पन्न होता है—ऐसा हमारा वेदवाक्य है।

आर्द्रक मुनि मार्जार की तरह घर-घर भटकने वाले, दो हजार स्नातको को जो खिलाता है, वह मासाहारी पक्षियो से परिपूर्ण, तीव्र वेदनामय नरक मे जाता है। दया धर्म को त्याग कर, हिसा-प्रधान धर्म को स्वीकार करने वाला, शीलरहित ब्राह्मण को जो खिलाता है, वह अधकारयुक्त नरक मे भटकता है। चाहे राजा भी क्यो न हो, वह स्वर्ग मे नही जा सकता।

आर्द्रक मुनि के कठोर व स्पष्ट उत्तर को सुनकर वेदवादी ब्राह्मण बोल नही सके। आत्माद्वैतवादी ने आर्द्रक मुनि से कहा—

आत्माद्वैतवादी

आत्माद्वैतवादी[४]—आर्द्रक मुनि! आपका और हमारा धर्म समान है। वह भूत मे भी था और भविष्य मे भी रहेगा। आपके और हमारे धर्म

मे आचार-प्रधान शील तथा ज्ञान को महत्व दिया है, पुनर्जन्म की मान्यता मे भी किसी भी प्रकार की मान्यता मे भेद नही है, किन्तु हम एक अव्यक्त, लोकव्यापी, सनातन, अक्षय और अव्यय आत्मा को मानते है, न उसका कभी क्षय होता है और न ह्रास ही होता है। तारागण मे चन्द्र की भांति सब भूतगण मे वह आत्मा एक ही है।

आर्द्रक मुनि— यदि इसी प्रकार है तो फिर ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और दास तथा कीडे, पक्षी, सर्प, मनुष्य आदि मे भेद ही नही रहेगे और वे पृथक् पृथक् सुख-दुःख भोगते हुए इस ससार मे भटकते भी क्यो है ?

परिपूर्ण कैवल्य से लोक को समझे बिना, जो दूसरो को धर्मोपदेश करते है वे अपना और दूसरो का अहित करते है। परिपूर्ण कैवल्य से लोक-स्वरूप को समझकर तथा पूर्ण ज्ञान से समाधियुक्त बनकर जो धर्मोपदेश करते है वे स्वय का भी हित करते है और दूसरो का भी।

हे आयुष्मन्! वह तुम्हारा बुद्धिविपर्यास है जिसके कारण तिरस्कार-योग्य ज्ञान वाले आत्माद्वैतवादियो को और सम्पूर्ण ज्ञान-दर्शन-चारित्रयुक्त जिनो को एक बतला रहे हो, यह अनुचित है।

आत्माद्वैतवादियो को परास्त कर आर्द्रक मुनि आगे बढने लगे। तब हस्तीतापसो ने उनको कहा—

हस्तीतापस

हस्तीतापस—हम वर्ष मे सिर्फ एक ही हाथी को बाण से मारते है और उससे अपनी आजीविका चलाते है, ऐसा हम इसलिए करते है कि अन्य अनेक जीवो की रक्षा हो जाती है।

आर्द्रक मुनि—वर्ष भर मे एक ही प्राणी की हिसा करने वाले भी साधु अहिसक नही हो सकते, क्योकि प्राणि-वध से सर्वथा मुक्त नही हुए है। हिसा करते हुए भी उन्हे अहिसक माना जाय तो फिर गृहस्थो को भी अहिसक

---

५ टीकाकार आचार्य शीलाक ने (२।६।४६) मे इसे एकदण्डी कहा है। डा० हरमन जेकोबी ने अपने अग्रेजी अनुवाद (S. B E Vol XIV P 417 h) मे इसे वेदान्ती कहा है। प्रस्तुत मान्यता को देखते हुए डा० जेकोबी का अर्थ सगत प्रतीत होता है। टीकाकार ने भी अगली गाथा मे यही अर्थ स्वीकार किया है।

मानना होगा, क्यो कि वे भी अपने कार्यक्षेत्र के बाहर के जीवो की हिंसा नही करते। साधु कहलाते हुए भी जो वर्ष मे एक भी जीव की हिंसा करते है, या उस हिंसा का समर्थन करते है, वे अनार्य है, वे अपना हित नही कर सकते और न केवलज्ञान ही पा सकते ह।

तथारूप स्वकल्पित धारणाओ का अनुसरण करने की अपेक्षा जिस मानव ने ज्ञानी के आज्ञा-अनुसार मोक्षमार्ग म मन-वचन-काया से अपने आपको स्थित किया है तथा जिसने दोपो से अपनी आत्मा का सरक्षण किया है और जिन्होने ससार-समुद्र को तैरने के साधन प्राप्त किये है, वही मानव दूसरो को धर्मोपदेश दे।

हस्ती को वश मे करना

हस्तीतापसो को निरुत्तर करके, स्वप्रतिबोधित पाँचसौ चोरो के साथ, वाद-विवाद मे परास्त हुए और प्रतिबोध पाये हुए हस्तीतापसादि के साथ आर्द्रक मुनि आगे बढ रहे थे कि एक वन-हाथी जो नया ही पकडा हुआ था, वह बन्धन तोड कर उनकी ओर झपटा। उन्हे देखकर लोगो ने हो-हल्ला मचाया कि हाथी मुनियो को मारने के लिए लपक रहा है। पर लोग आश्चर्य-चकित हो गए कि जो हाथी मारने के लिए दोड रहा था, वही आर्द्रक मुनि को देखकर उनके चरणो मे विनीत शिष्य की भाति झुक गया। आर्द्रक मुनि को नमस्कार कर हाथी अरण्य की ओर भाग गया।

राजा श्रेणिक ने अपने अनुचरो से यह बात सुनी तो वे भी आश्चर्य-चकित हो गए। वे आर्द्रक मुनि के पास गये और हाथी के बन्धन तोडने का कारण पूछा तब मुनि ने कहा—हे राजन् ! वन-हस्ती का लोह की शृ खलाओ को ताडकर मुक्त होना उतना कठिन नही है, जितना कि स्नेह से बाँधे हुए कच्चे सूत के धागो को तोडना कठिन है।

श्रेणिक के द्वारा जिज्ञासा प्रस्तुत करने पर आर्द्रक मुनि ने कहा — राजन् ! मैं घर से चला। वसन्तपुर के बाहर मन्दिर मे श्रमण वेष मे ध्यान-मुद्रा मे खडा हो गया। सध्या का झुरमुट अधेरा था। धनश्री अपनी हमजोली सहेलियो के साथ खेलने के लिए वहाँ आई। स्तम्भ को पकड कर कहती है कि देखो यह मेरा पति है। अधकार के कारण धनश्री ने स्तम्भ के बदले मे मुझे पकड कर कहा कि यह मेरा पति है। इच्छा न होते हुए भी भावी की प्रबलता से मुझे उसके साथ विवाह करना पडा और एक पुत्र हुआ। वह

जब पाँच वर्ष का हुआ तब मैंने दीक्षा के लिए धनश्री से कहा। वह चर्खा लेकर सूत कातने लगी। पुत्र ने पूछा—माँ, आज यह क्या कर रही हो? उत्तर मे उसने कहा—पुत्र! तुम्हारे पिता हमे छोड कर साधु होने जा रहे है, फिर मुझे सूत कातना ही पडेगा। पलग पर लेटा हुआ मैं पत्नी और पुत्र की बात सुन रहा था, पुत्र ने कच्चा सूत लिया और मेरे पैरो को बाँध दिया और किलकारियाँ मारता हुआ कहने लगा कि देखता हू कि अब कैसे जाते है। मैंने वह धागे गिने तो बारह थे, पुत्र स्नेह के कारण बारह वर्ष फिर ससार-मे रहना पडा, मै उन कच्चे सूत के धागो को न तोड सका। इसलिए मैने कहा—लोह की शृखलाओ को तोडना सरल है पर कच्चे सूत के धागो को तोडना कठिन है।

उसके पश्चात् आर्द्रक मुनि भगवान महावीर के पास गये। भगवान् को विधिपूर्वक वन्दन-नमस्कार किया। आर्द्रक मुनि द्वारा प्रतिबोधित पाँच सौ तस्करो व तापसादि को दीक्षा देकर उन्ही के सुपुर्द किया।[६]

भगवान् ने अपना उन्नीसवा वर्षावास राजगृह मे ही किया।

पंचवर्षीय-प्रवास

(वि० पू० ४९३ से ४८९)

आलभिया मे

भगवान् ने राजगृह का उन्नीसवा वर्षावास पूर्ण कर कौशाम्बी की ओर विहार किया।

कौशाम्बी और राजगृह के मध्य मे काशीराष्ट्र की प्रसिद्ध नगरी आलभिया थी। भगवान् वहाँ पधारे। वहाँ पर ऋषिभद्रपुत्र प्रमुख श्रमणो-

---

६ आर्द्रक मुनि के समक्ष गौशालक आदि विरोधी पक्षो ने भगवान् महावीर के जीवन एव सिद्धान्त पर जो आक्षेप पूर्ण प्रहार किये है—उनसे पता चलता है कि भगवान की विद्यमानता मे ही उनके प्रति कितनी भ्रान्तिया फैलाई गई थी। और विरोधी कितने आक्षेप उन पर करते थे। आर्द्रक मुनि ने सभी का तर्क-सगत समाधान देकर विरोधो का परिहार किया।

पासक था। उसने एक बार विचारगोष्ठी मे देवो की जघन्य और उत्कृष्ट स्थिति के सम्बन्ध मे कहा था। पर अन्य श्रमणोपासको को उसकी बात पर विश्वास नही हुआ, उन्होने उसके सम्बन्ध मे भगवान् से पूछा, भगवान ने कहा– ऋपिभद्रपुत्र ने जो देवो की स्थिति बताई है, वह यथार्थ है।

अन्य सभी श्रमणोपासको ने ऋपिभद्रपुत्र से सविनय क्षमायाचना की। ऋपिभद्रपुत्र आदि आलभिया के श्रमणोपासक लम्बे समय तक भगवान् से धर्म चर्चा करते रहे।[१]

मृगावती की दीक्षा

आलभिया से विहार कर भगवान कौशाम्बी पधारे। उस समय राजा उदयन की उम्र छोटी थी। महारानी मृगावती पर एक धर्मसकट आया हुआ था। राजा चण्डप्रद्योत महारानी के रूप पर मुग्ध था, वह उसे रानी बनाने के लिए आतुर था, इसलिए कौशाम्बी के बाहर उसने घेरा डाल रखा था। चण्डप्रद्योत को वाक्चातुर्य से आश्वस्त कर, महारानी मृगावती उस समय राज्य का सचालन कर रही थी। भगवान् के पधारने के समाचार सुनकर चण्डप्रद्योत अपनी रानियाँ अगारवती आदि के साथ तथा उदयन राजमाता मृगावती आदि सभी भगवान के समवसरण मे उपस्थित हुए। भगवान् के वैराग्ययुक्त प्रवचन को सुनकर अनेक साधक श्रद्धालु हुए। राजमाता मृगावती ने कहा—भगवन्! मैं राजा चण्डप्रद्योत की आज्ञा लेकर दीक्षा ग्रहण करना चाहती हू। उसने समवसरण मे ही चण्डप्रद्योत से आज्ञा मागी। प्रद्योत की इच्छा यद्यपि मृगावती को आज्ञा देने की नही थी, किन्तु समवसरण मे लज्जावश मना न कर सका। उसने मृगावती को आज्ञा प्रदान की। अपने पुत्र उदयन को प्रद्योत के सरक्षण मे छोडकर वह दीक्षा के लिए प्रस्तुत हुई। उस समय चण्डप्रद्योत की अगारवती आदि आठ रानियो ने भी राजा से दीक्षा की आज्ञा मॉगी। प्रद्योत ने आज्ञा प्रदान की। मृगावती के साथ उन्होने दीक्षा ली।[२] दीक्षा लेने से मृगावती के जो शील पर सकट आया था, वह सदा के लिए टल गया।

कुछ समय तक भगवान् कौशाम्बी और उसके सन्निकटवर्ती ग्राम-नगरो मे विचरते रहे, फिर विदेह-भूमि की ओर प्रस्थान किया। भगवान् वहा से वैशाली पधारे और अपना बीसवा वर्षावास वहाँ सम्पन्न किया।

---

१ भगवती शतक १२, उद्दे० १२, सूत्र ४३३-४३५

२ आवश्यक चूर्णि पृ० ९१

धन्य अनगार

वशाली का बीसवा वर्षावास पूर्ण कर भगवान मिथिला होते हुए काकदी पधारे। काकदी एक सुन्दर नगरी थी। वहाँ का शासक जितशत्रु था, जो बहुत ही प्रजाप्रिय था। सार्थवाही भद्रा वहाँ की रहने वाली थी जो बडी बुद्धिमती और व्यवहारदक्षा थी। उसके पास अपार धन-ऐश्वर्य था।

भद्रा के एक पुत्र था, जिसका नाम धन्यकुमार था, वही उसका प्राण और जीवनधन था। उसका पालन-पोषण और शिक्षण-यही भद्रा की साधना थी। माँ के हृदय की यह सहज कामना होती है कि अपने जीवन के शान्त व मधुर क्षणो मे अपनी पुत्रवधू का मुँह देखना।

सार्थवाही भद्रा भाग्यशालिनी थी, उसने एक साथ बत्तीस-बत्तीस पुत्र-वधुओ का मुह देखा था। धन्य और उसकी पत्नियाँ तो उसका सत्कार करती ही थी, पर नगरनिवासी भी उसे 'माता' के स्नेह-निमज्जित शब्द से सम्बोधित करते थे।

भगवान् महावीर के सहस्राम्र उद्यान मे पधारने के समाचार श्रवण-कर जितशत्रु राजा वन्दन के लिए पहुँचा, और धन्यकुमार भी। भगवान् ने उपदेश प्रदान किया। भगवान की वाणी मे अद्भुत प्रभाव था। प्रथम उपदेश से ही धन्यकुमार के हृदय की अनुरक्ति विरक्ति मे परिणत हो गई। ससार, जो अभी तक अतिप्रिय लग रहा था, वह अब अप्रिय और कटु लगने लगा। भोग की तन्द्रा से जागकर वह योग के महामार्ग पर बढने के लिए तैयार हो गया। विराट् वैभव का प्रलोभन, बत्तीस पत्नियो का स्नेहबधन और माता की सहज ममता भी धन्यकुमार को अपने विचारो से पीछे न हटा सकी।

धन्यकुमार ने जिस दिन प्रव्रज्या ग्रहण की, उसी दिन से उसने बेले-बेले पारणा करने का अभिग्रह ग्रहण किया। पारणा मे भी सरस आहार नही, किन्तु नीरस आहार लेने की कठोर प्रतिज्ञा ग्रहण की। जिस भोजन को एक कगाल भिखारी भी लेना पसन्द न करे, ऐसे तुच्छ भोजन को धन्य अनगार ग्रहण करता था। कभी आहार मिला तो पानी नही और कभी पानी मिला तो भोजन नही, तथापि धन्य अनगार अपनी मस्ती मे मस्त, साधना मे शान्त, तपस्या मे स्थिर और अपने कर्म मे सदा सजग थे। आत्म-साधना मे शरीर सहयोगी रह सके, इसलिए भोजन देना धन्य अनगार ने स्वीकार किया था। जैसे सर्प बिना रगड के बिल मे जाता है, वैसे ही धन्य

अनगार बिना स्वाद के भोजन निगलता था। स्वादविजय का यह महान् व्रत था। धन्य अनगार साधना की इतनी ऊँची भूमिका पर पहुँच चुका था कि जहाँ पर फूल और शूल मे भेदरेखा नही थी। अनुकूलता और प्रतिकूलता मे भेदबुद्धि नही थी।

उग्र तप की साधना से धन्य अनगार का शरीर अत्यन्त क्षीण बन चुका था। रक्त, मांस, और मज्जा शरीर मे किञ्चित् मात्र थी। चर्म से आवृत्त केवल अस्थिपजर ही अवशेष था। उठते बैठते, चलते-फिरते हड्डियो की कडकडाहट होती थी। वह जीवित था शरीर से नही, किन्तु आत्मबल से। वह खडा होता था, शरीरबल से नही मनोबल से। उसे बोलने मे अत्यधिक कठिनता होती थी, उसका जीवन साधको के लिए प्रकाशस्तभ के समान था।

श्रमण भगवान् महावीर अनुक्रम से विहार करते हुए राजगृह मे पधारे। श्रेणिक सम्राट् दर्शनो के लिए उपस्थित हुआ। उसने भगवान से पूछा—

भते! आपके चौदह हजार साधक शिष्यो मे सब से ऊँचा साधक कौन है? कौन महादुष्कर क्रिया और महानिर्जरा करने वाला है?

भगवान् ने कहा—श्रेणिक! साधको मे सबसे श्रेष्ठ साधक, अनगारो मे सबसे ऊँचा अनगार और तपस्वियो मे सबसे महान् तपस्वी धन्य अनगार है। वह महादुष्कर क्रिया करने वाला है, महानिर्जरा करने वाला है।

राजा श्रेणिक धन्य अनगार को वन्दन के लिए गया। श्रेणिक सम्राट् ने धन्य अनगार को भगवान् की बात कही, तथापि उनके मन को कोई अधिक प्रसन्नता नही हुई। प्रशसा और निन्दा, मान और अपमान, सत्कार और दुत्कार से धन्य अनगार का मन अप्रभावित था। धन्य अनगार स्थितप्रज्ञ हो गये थे, मान-अपमान, पूजा-प्रशसा मे समभाव रखते हुए वे अपने आत्म-चितन मे लीन रहे। श्रेणिक अत्यन्त प्रसन्न होकर चला गया।

नौ महिने की श्रमण पर्याय को पालकर मारणान्तिक सलेखना कर धन्य अनगार सर्वार्थसिद्ध विमान मे देवरूप मे उत्पन्न हुए।[3]

सुनक्षत्र अनगार

काकदी मे ही सुनक्षत्र अनगार ने भी भगवान् के पास दीक्षा ली, ग्यारह अगो का अध्ययन किया और वे भी सर्वार्थसिद्ध मे उत्पन्न हुए।[4]

---

३ अनुत्तरोपपातिक १   ४ अनुत्तरोपपातिक

श्रमणोपासक कुण्डकोलिक

काकदी से विहार करते हुए भगवान् कम्पिलपुर पधारे। वहाँ का जितशत्रु राजा भगवान् को वन्दन के लिए गया। कुण्डकोलिक वहाँ का प्रसिद्ध धनपति था, जिसके पास अठारह करोड सुवर्ण मुद्राये थी। और छह व्रज थे। प्रत्येक व्रज मे दस-दस हजार गाये थी।

भगवान् के उपदेश को सुनकर उसने श्रावक व्रत ग्रहण किये। एक दिन कुण्डकोलिक मध्याह्न के समय अशोक वाटिका मे पहुँचा, और वहाँ पृथ्वीशिलापट्टक पर अपनी नाम मुद्रिका और उत्तरीय वस्त्र रखकर धर्म-प्रज्ञप्ति स्वीकार कर विचरने लगा। उस समय एक देव वहाँ प्रकट हुआ और उसने कहा—मखलीपुत्र गोशालक की धर्मप्रज्ञप्ति अत्यन्त सुन्दर है, उसमे उत्थान, बल, वीर्य और पुरुषाकार-पराक्रम का अभाव है, सभी बाते नियति पर अवलम्बित है अत उसे तुम ग्रहण करो तो अच्छा है।

कुण्डकोलिक—देवराज! आपका कथन युक्तिसगत नही है, क्योकि आपको ये दिव्य देवऋद्धि, द्युति, आदि की प्राप्ति हुई है, वह पुरुषार्थ या पराक्रम से मिला है या पुरुषार्थ के अभाव मे?

देव—ये सारी बाते पुरुषार्थ के अभाव मे मिली है।

कुण्डकोलिक—आपने सारी बाते पुरुषार्थ के अभाव मे मानी है तो जिनमे उत्थान, पराक्रम का अभाव है, वे देव क्यो नही बने? तुम्हारा गोशालक की धर्मप्रज्ञप्ति के सम्बन्ध मे जो तर्क है, वह वजनदार नही है।

देव निरुत्तर हो गया, वह जिधर से आया था, उधर चला गया। कुण्डकोलिक भगवान् को वन्दन करने गया। सर्वज्ञ सर्वदर्शी भगवान् ने सारी बातें उसे बता दी।

भगवान् ने कहा—हे आर्यो! जो गृहस्थाश्रम मे रहकर भी अर्थ, हेतु, प्रश्न, कारण, व्याकरण और उत्तर के सम्बन्ध मे अन्यतीर्थिको को निरुत्तर करता है तो हे आर्यो! द्वादशाग गणिपिटक का अध्ययनकर्ता श्रमण निर्ग्रन्थ अन्यतीर्थिको को निरुत्तर करने मे शक्य है।

अन्त मे कुण्डकोलिक ग्यारह प्रतिमाओ का पालन कर, आयु पूर्ण होने पर सुधर्म देवलोक मे उत्पन्न हुआ।

सद्दालपुत्र का व्रत ग्रहण

कम्पिलपुर से विहार कर भगवान पोलासपुर पधारे। पोलासपुर मे आजीविकोपासक सद्दालपुत्र नामक कुम्भकार रहता था। नगर के बाहर उसके पाचसौ आपण थे, जिनमे नाना प्रकार की सुन्दर आकृतियो वाले मिट्टी के बर्तन बनते थे और बेचे जाते थे। उसके पास तीन करोड की स्वर्ण राशि थी, और दस हजार गायो का एक व्रज था। उसकी पत्नी का नाम अग्नि-मित्रा था। वह भी आजीविकोपासिका थी।

एक बार सद्दालपुत्र मध्याह्न मे अपनी अशोकवाटिका से गोशालक के पास स्वीकार की हुई धर्मप्रज्ञप्ति को ग्रहण कर बैठा था, तब किसी देव ने प्रकट होकर कहा—सद्दालपुत्र ! कल प्रात सर्वज्ञ सर्वदर्शी महाब्राह्मण पधारेंगे। उनके पास जाकर प्रतिहारक, शय्या, पीठ, फलकादि के लिए उन्हे निमत्रित करना। यह सुनते ही सद्दालपुत्र सावधान हो गया। उसने विचारा प्रात मेरे धर्माचार्य भगवान् मखलीपुत्र पधारेंगे, क्योकि वे ही वर्तमान में सर्वज्ञ है और महाब्राह्मण हे।

वह प्रात शीघ्र उठा, और आवश्यक कार्यो से निवृत्त होकर, अपने धर्माचार्य के सन्निकट जाने के लिए तैयारी करने लगा, तभी उसने सुना 'पोलासपुर के बाहर श्रमण भगवान् महावीर पधारे है।' उसके मन का जोश शान्त हो गया। पर दूसरे ही क्षण देव वाणी स्मरण हो आई। वह शीघ्र ही जहा पर भगवान महावीर ठहरे हुए थे, वहाँ पहुँचा, धर्म-देशना पूर्ण होने के पश्चात् भगवान् महावीर ने कहा—भद्र ! कल मध्याह्न मे अशोकवाटिका मे चक्रमण करते हुए तुम्हे किसी देव ने महामाहन के दर्शन आदि की प्रेरणा दी थी, तुम उसी प्रेरणा से प्रेरित होकर यहाँ आए हो ? वह अपने मनोगत भावो की अभिव्यक्ति को सुनकर चकित हुआ, उसने विनयपूर्वक निवेदन किया भगवन् ! शय्या, फलकादि प्रस्तुत है, ग्रहण करने का अनुग्रह करे। पोलासपुर के बाहर मेरी पाँचसौ दुकाने हे, आप वहाँ पधारे, भगवान् उसकी प्रार्थना स्वीकार कर वहा पधारे।

भगवान् को अपनी भाण्डशाला मे ठहरा कर पीठ फलकादि प्रातिहारिक अपण कर वह अपने कार्य मे लगा। वह भाण्डशाला के कुछ सूखे बर्तनो को धूप से छाया मे और छाया से धूप मे रख रहा था, अपने कार्य मे तल्लीन

था। उस समय उसे प्रतिबोध देने के लिए भगवान् ने पूछा—सद्दालपुत्र ! ये बर्तन कैसे बने ? कहा से आये ?

सद्दालपुत्र—यह पहले मिट्टी थी। इसे पानी मे भिगोया गया। फिर राख, गोबर आदि मिलाया गया, उसे गोठा और फिर पिण्ड बनाकर चाक पर चढाकर हॉडी, मटकी आदि विविध प्रकार के बर्तन बनाए जाते है।

महावीर—ये बर्तन पुरुषार्थ और पराक्रम से बने है, या उनके बिना ही निर्मित हुए है ?

सद्दालपुत्र इस प्रश्न पर अचकचा गया। पुरुषार्थ को स्वीकार कर लेने पर उसको अपना नियतिवाद खण्डित होता-सा लगा, कुछ क्षण रुककर उसने कहा—ये बर्तन नियतिबल से बने है, पुरुपार्थ-पराक्रम से नही। ये सभी पदार्थ नियतिवश है, जो जैसा होने वाला है, वैसा ही होता है, उसमे पुरुपार्थ कुछ भी परिवर्तन नही कर सकता।

महावीर—सद्दालपुत्र ! तुम्हारे इन घडो को कोई चुरा ले, इनको फोड कर नष्ट कर दे या तुम्हारी पत्नी अग्निमित्रा के साथ कोई अनार्य पुरुप अनुचित व्यवहार करे, तो क्या तुम उसे दण्ड दोगे ?

सद्दालपुत्र—हॉ, मैं उस पुरुप पर आक्रोश करूगा, उसे हनन करूगा, बाधूगा, तर्जना करूगा, ताडना करूगा और मार डालूगा।

महावीर—तुम्हारे मत से कोई भी पुरुष न तुम्हारे बर्तन तोड सकता है और न चुरा सकता है और न तुम्हारी स्त्री के साथ अनुचित व्यवहार कर सकता है और न तुम उसे किसी भी प्रकार का दण्ड दे सकते हो, सभी भाव नियत है। कोई कुछ भी नही कर सकता है। यदि तुम्हारे बर्तन कोई तोड सकता है, चुरा सकता है और तुम्हारी पत्नी के साथ अनुचित व्यवहार कर सकता है और तुम उसे दण्ड दे सकते हो तो फिर पुरुपार्थ नही, पराक्रम नही, सर्वभाव नियत है। यह प्रस्तुत कथन असत्य सिद्ध होगा।

सद्दालपुत्र का हृदय विचारमग्न हो गया। भगवान के यथार्थ तर्क के समक्ष उसकी नियतिवादी आस्था हिल उठी। वह प्रतिबुद्ध हुआ, उसे ज्ञात हुआ कि नियतिवाद का सिद्धान्त कितना अव्यावहारिक है। उसने भगवान को नमस्कार कर कहा—मैं निर्ग्रन्थ-प्रवचन सुनना चाहता हूँ।

भगवान ने सद्दालपुत्र को तत्त्व का उपदेश दिया। उसे जिन-धर्म पर श्रद्धा हुई और श्रावक के द्वादश व्रत ग्रहण किये। इस प्रकार वह एकान्त

नियतिवाद का परित्याग कर पुरुषार्थप्रधान जैन साधनापथ पर अग्रसर हो गया।

घर आकर सद्दालपुत्र ने भगवान् महावीर से ग्रहण किये हुए व्रतो की जानकारी अग्निमित्रा को दी, और उसे भगवान् महावीर के प्रवचन को सुनने के लिए कहा। अग्निमित्रा अपना रथ सजाकर भगवान् के पास गई और उनका दिव्य उपदेश सुनकर उसके हृदय मे यथार्थ श्रद्धा उत्पन्न हुई, द्वादश-व्रतात्मक गृहस्थ-धर्म स्वीकार कर अपने स्थान गई।

सद्दालपुत्र के धर्मपरिवर्तन की बात आजीवक सघ के नेता मखलीपुत्र गोशालक को ज्ञात हुई। उसे बहुत ही दुख हुआ। वह पोलासपुर मे आया और आजीवक सभा मे ठहरा और सद्दालपुत्र के वहाँ आया। सद्दालपुत्र ने गोशालक को अपने पास आते हुए देखकर भी किसी प्रकार से उसका सत्कार, सम्मान नही किया। जिससे गोशालक की सभी आशाओ पर पानी फिर गया, उसने सोचा यदि मैं प्रतिकूल व्यवहार करूगा तो सद्दालपुत्र मेरे अनुकूल नही हो सकेगा, इसलिए उसने पूछा देवानुप्रिय! यहाँ महामाहण आये थे न!

सद्दालपुत्र—देवानुप्रिय! महामाहण कौन है?

गोशालक— श्रमण भगवान् महावीर महामाहण है।

सद्दालपुत्र—भगवान् महावीर महामाहण कैसे है? किस कारण आप श्रमण भगवान् महावीर को महामाहण (महाब्राह्मण) कहते है?

गोशालक— भगवान् महावीर ज्ञान-दर्शन के धारक है, जगत्पूजित है और सच्चे कर्मयोगी है, इसलिए भगवान् महावीर महामाहण है। क्या महा-गोप आये थे?

सद्दालपुत्र—हे देवानुप्रिय! महागोप कौन है?

गोशालक—श्रमण भगवान् महावीर महागोप है।

सद्दालपुत्र—श्रमण भगवान् महावीर को आप महागोप किसलिए कहते हैं?

गोशालक— इस ससाररूपी भयकर अटवी मे भटकते हुए, टकराते हुए, नष्ट होते हुए ससारी प्राणियो को वे धर्मदण्ड से गोपन करते है, मोक्ष रूपी वाडे मे सकुशल पहुँचाते है, इस कारण भगवान् महावीर महागोप है। क्या सद्दालपुत्र! महासार्थवाह यहाँ आये थे।

सद्दालपुत्र—महासार्थवाह कौन है।

गोशालक—सद्दालपुत्र ! श्रमण भगवान् महासार्थवाह है।

सद्दालपुत्र—आप ऐसा किसलिए कहते है ?

गोशालक—ससाररूपी घटादार अटवी मे नाश को प्राप्त होते हुए, बहुत से जीवो को धर्म मे स्थिर करते है और निर्वाणरूपी महानगर मे पहुचाते है, इसलिए महासार्थवाह है ? क्या यहा महाधर्मकथी आये थे ?

सद्दाल०—महाधर्मकथी कौन है ?

गोशालक—श्रमण भगवान् महाधर्मकथी है।

सद्दाल०—आप किस कारण भगवान् महावीर को महाधर्मकथी कहते है।

गोशालक—इस विराट् विश्व मे विनष्ट होते हुए, उन्मार्ग को प्राप्त होते हुए, सन्मार्ग से विमुख व्यक्तियो को धर्मतत्त्व का रहस्य बताकर सन्मार्ग पर चलाते है, इसलिए महावीर महाधर्मकथी है। क्या महानिर्यामक यहा आये थे ?

सद्दाल०—महानिर्यामक कौन है ?

गोशालक—श्रमण भगवान् महावीर महानिर्यामक है।

सद्दाल०—ऐसा आप किस कारण से कहते है ?

गोशालक—इस ससार रूपी अपार समुद्र मे डूबते हुए प्राणियो को धर्म स्वरूप नाव मे बिठाकर अपने हाथो से जो पार लगाते है, इसलिए श्रमण भगवान् महावीर महानिर्यामक है।

सद्दालपुत्र—देवानुप्रिय ! तुम ऐसे चतुर, नयवादी उपदेशक और ऐसे विज्ञान के ज्ञाता हो तो क्या मेरे धर्माचार्य, धर्मोपदेशक, श्रमण भगवान् महावीर के साथ विवाद कर सकते हो ?

गोशालक—मैं इस प्रकार करने मे समर्थ नही हूँ।

सद्दालपुत्र—आप क्यो समर्थ नही है ?

गोशालक—जैसे कोई युवक मल्ल पुरुष, बकरे, मेढे, सूअर आदि पशु या मुर्गे, तीतर, बतक आदि पक्षी को पाँव, पूछ, पख आदि कही से पकडता है, मजबूती से पकडता है, वैसे ही श्रमण भगवान् महावीर भी हेतु, युक्ति, प्रश्न और उत्तर मे जहाँ जहाँ मुझे पकडते है, वहा वहा निरुत्तर करके ही

छोडते है, इसलिए मैं तुम्हारे धर्माचार्य के साथ वाद-विवाद करने मे समर्थ नही हूं।

सद्दालपुत्र—देवानुप्रिय ! तुम मेरे धर्माचार्य, धर्मोपदेशक, श्रमण भगवान् महावीर के सद्गुणो की वास्तविक प्रशसा करते हो, एतदर्थ मैं तुम्हे पीठ-फलक आदि के लिए निमन्त्रण देता हूं आप मेरी भाण्डशाला मे आइए और उपकरणो को ग्रहण कीजिए।

यह सुनकर गोशालक सद्दालपुत्र की भाण्डशाला मे आकर ठहरा, और उसने वहाॅ रहकर सद्दालपुत्र को बहुत समझाया, उसे विचलित करने का बहुत ही प्रयत्न किया, पर वह सफल न हो सका। अपने धर्मसघ मे से सद्दालपुत्र के निकल जाने से उसे बहुत ही कष्ट हुआ। फिर वह अन्यत्र चला गया।

अतिमुक्तक मुनि

अन्तकृद्दशाग मे भी भगवान महावीर का पोलसपुर मे पधारने का उल्लेख है। पर स्मरण रखना चाहिए कि उपासकदशाग मे पोलासपुर के राजा का नाम जितशत्रु और उपवन का नाम सहस्राम्र वन लिखा है जब कि अन्तकृददशाग मे राजा का नाम विजय लिखा है, रानी का नाम श्रीदेवी, और उद्यान का नाम श्रीवन लिखा है।[1] हमारी दृष्टि से जितशत्रु यह राजा का नाम न होकर विशेषण होना चाहिए। अनेक स्थलो पर जितशत्रु इस नाम का उल्लेख हुआ है। अनेको राजा का एक ही नाम हो, यह कम सभव लगता है। शत्रुओ पर विजय वैजयन्ती फहराने के कारण ही उन्हे जितशत्रु इस नाम से सम्बोधित करते रहे हो। अस्तु।

भगवान् महावीर पोलासपुर मे पधारे। गणधर गौतम भगवान की अनुमति लेकर भिक्षा के लिए प्रस्थित हुए। वे परिभ्रमण करते हुए उधर पहुँच गये, जहाॅ पर राजकुमार अतिमुक्तक अपने बाल-साथियो के साथ खेल रहा था। बच्चो के खेलने के लिए एक मैदान था जिसे 'ईन्द्रस्थान' कहा जाता था। गौतम जब उस इन्द्रस्थान के निकट से जा रहे थे, तो कुमार

---

१ अन्तकृत्दशाग वर्ग ६, अ० १५

अतिमुक्त ने उनको देखा। शान्त, दान्त, और मन्द मुस्कान से भरा मुख, विशाल भाल, उन्नत मस्तक, चमकते नेत्र, अभय की मजुलमूर्ति, विशिष्ट श्वेत वेष-भूषा को देखकर कुमार के मन मे उनके प्रति कौतूहल जगा। वह कुछ देर टकटकी लगाकर उनकी ओर देखता रहा, फिर निकट आया तो उनकी अद्भुत सौम्यता से निभय होकर पूछने लगा भदन्त! आप कौन है और किस कारण से यो घर-घर मे घूम रहे ह ?

गौतम ने मन्दस्मित के साथ बालक की ओर देखा, सहज निश्छ-लता एव गुलाबी सुकुमारता उसके मुख पर बिखर रही थी। मधुर स्वर से गौतम ने कहा— देवानुप्रिय! हम श्रमण निर्ग्रन्थ है, भिक्षा के लिए हम इस प्रकार उच्च-नीच-मध्यप कुलो मे भ्रमण कर रहे है।

अतिमुक्तक—'भन्ते! आप मेरे घर से भी भिक्षा लेगे ?

गौतम—हाँ, क्यो नही।

अतिमुक्तक—तो फिर आप मेरे साथ चलिए, मेरी माता आपको बहुत-सा भोजन देगी, यो कहकर अतिमुक्तक ने गौतम की अगुली पकड ली।[2] जिस प्रकार कोई मित्र अपने मित्र की अगुली पकडकर अपने घर चलने का आग्रह करता हो, और गणधर गौतम भी बालक अतिमुक्तक के साथ राज महलो की ओर चल पडे। जब श्रीदेवी ने गौतम स्वामी की अगुली पकडे राजकुमार को महलो की ओर आते देखा तो वह हर्ष से गद्गद हो उठी। श्रमण सघ का एक महान् सन्त, नन्हे बालक के साथ अगुली पकड कितने प्रेम व सरलभाव के साथ भिक्षा के लिये आ रहे है। महारानी का अग-अग प्रसन्नता से नाच उठा।

माता मे अतिमुक्तक ने कहा—'माता, इन्हे भिक्षा दीजिए, खूब दीजिए, इतना भोजन दीजिए कि दूसरे घर इन्हे जाना ही न पडे।' महारानी ने अत्यन्त भावप्रवणता से भिक्षा प्रदान की।

जब भिक्षा लेकर गौतम चलने लगे तब कुमार अतिमुक्तक ने पूछा—भन्ते! अब आप कहाँ जा रहे है ? आपका निवास कहाँ है ?

गौतम ने बडे ही स्नेह और सरलता से उत्तर देते हुए कहा—कुमार!

---

२ अह तुब्भ भिक्ख दवावेमित्ति भगव गोयम अगुलीए गेण्हइ।

—अतकृत दशा० ६

हमारे धर्मगुरु भगवान महावीर स्वामी है, जो तुम्हारे नगर के बाहर श्रीवन उद्यान मे पधारे है, हम लोग वही ठहरे है।

गौतम के स्नेहमय व्यवहार से कुमार का मन आकृष्ट हो गया। कहा–चलिए मै भी आपके गुरु के दर्शन करु गा। अतिमुक्तक पूर्व परिचित की तरह साथ मे चल रहा था। गौतम ने जैसे वन्दन किया, वैसे ही अतिमुक्तक ने भी प्रभु को सभक्ति वन्दन किया। जगमगाती इस बाल-जीवन-ज्योति को भगवान् ने मधुर शब्दो मे उपदेश दिया।

उपदेश सुनने के बाद अतिमुक्तक ने कहा—भते ! मैं भी आपके समान श्रमण बनना चाहता हूँ।

अतिमुक्तक अपने घर लौटा, माता पिता से अपने हृदय की बात स्पष्ट शब्दो मे कह दी। माता-पिता मुस्कराये, पुत्र ! साधु बनना हसी-खेल नही है। यह काय तो असिधारा पर चलने के समान कठिन है। वत्स ! जलते हुए अगारो पर चलना सरल पर श्रमण-जीवन की साधना करना कठिन है।

पूज्यवर ! मैंने अपनी शक्ति को नाप लिया है। मैं अगारो पर मुस्कराता हुआ चल सकता हूँ। शूलो पर बढ सकता हूँ। मेरा सकल्प दृढ है। जो जन्मा है वह अवश्य ही मरेगा, पर कब और किस प्रकार, यह मैं नही जानता।

जीव कर्म के कारण ससार मे परिभ्रमण करता है, यह मैं जानता हूँ।

अन्त मे माता-पिता की इच्छा से राज्य-सिहासन पर आसीन हुआ, पर अन्तर् मे दूसरे विचार थे, इसलिए उसने एक दिन राज्य करके दूसरे दिन अपूर्व उत्साह के साथ भगवान के पास दीक्षा ग्रहण की।

जिस समय अतिमुक्तक ने दीक्षा ग्रहण की, उस समय उसकी उम्र सिर्फ छह वर्ष की थी। यो आठ वर्ष से न्यून उम्र वाले को दीक्षा नही देते हे पर भगवान सर्वज्ञ थे, अत उन्होने दीक्षा दी।[3]

---

३ (क) 'कुमार समणे' त्ति षड्वर्पजातस्य तस्य प्रव्रजितत्वात् आह च—'छव्वरिसो पव्वइओ निग्गथ रोइऊण पावयण" ति, एतदेव चाश्चयमिह अन्यथा वर्पाष्टकादारान्न प्रव्रज्या स्यादिति।

—भगवती सटीक प्र० भाग [illegible] ४ [illegible] १८८, पत्र २१९-२

भगवती सूत्र[४] मे अतिमुत्तक मुनि के श्रमण जीवन की एक घटना इस प्रकार आई है—

आकाश मेघाच्छन्न था। वर्षा हो चुकी थी। स्थविरो के साथ अति-मुक्तक श्रमण भी विहार भूमि को निकला। स्थविर इधर-उधर बिखर गए। अतिमुक्तक मुनि ने देखा कल-कल, छल-छल करता हुआ वर्षा का पानी तेज गति से बहता चला आ रहा है। उसे देखकर बचपन के सस्कार उभर आए। मिट्टी से पाल को बाँधकर जल के प्रवाह को रोका और अपना पात्र उसमे छोड दिया। आनन्दविभोर होकर वह बोल उठा—'तिर मेरी नया तिर' शीतल-मन्द पवन चल रहा था, अतिमुक्तक की नैया थिरक रही थी। प्रकृति मुस्करा रही थी, किन्तु स्थविरो को इस प्रकार श्रमण मर्यादा से विपरीत कार्य किस प्रकार सहन हो सकता था। अन्तर् का रोष मुख पर झलक मार रहा था। वह एकदम सभल गया। वह अपनी भूल पर अन्दर-ही-अन्दर पश्चात्ताप कर रहा था। उसे अपनी मर्यादा का भान हो गया। उसने पश्चात्ताप से अपने को पावन बना दिया था।

भगवान की सेवा मे पहुँचकर स्थविरो ने सविनय प्रश्न किया—

'भगवन्! आपका यह लघुशिष्य अति मुक्तक कितने भवो मे मुक्त होगा?

इसी भव मे वह मुक्त होगा। भगवान ने कहा—

भगवान ने शान्त स्वर मे स्थविरो से कहा—'स्थविरो! तुम इसकी हीलना, निन्दना और गर्हणा मत करो। जहा तक हो सके, इसकी सेवा करो, भक्ति करो, यह निर्मल आत्मा है, इस पर क्रोध व रोष मत करो।

स्थविर अपनी-अपनी स्वाध्यायभूमि मे लौट गये। भगवान की वाणी पर उन्हे दृढ विश्वास था। अतिमुक्तक के उज्ज्वल भविष्य के प्रति उनके मन मे आदर बढने लगा। वे परस्पर कहने लगे—यह देह से लघु है, पर आत्मा की दृष्टि से महान है। यह सागर से भी अधिक गभीर है और हिमगिरि से भी अधिक उन्नत है, जिसकी आत्मा विशुद्ध है वही पूज्य है,

---

(ख) षड्वर्षजातस्य तस्य प्रव्रजितत्वाद् आह—छव्वरिसो पव्वइयो निग्गथ रोइऊण पावयण त्ति एतदेवाश्चर्य अन्यथा वर्षाष्टकादारान्न दीक्षा स्यात्।

—दानशेखर की टीका, पत्र ७३-१

४ भगवती शतक ५, उद्दे० ४

आदरणीय है, साधना के क्षेत्र मे देह की पूजा नही, किन्तु गुणो की पूजा की जाती है । स्थविर अतिमुक्तक की सेवा करने लगे ।[५]

अतिमुक्तक मुनि ने एकाग्र और एकनिष्ठ होकर स्थविरो के पास विनय और भक्ति के साथ ग्यारह अगो का अध्ययन किया । सयम और तप की कठोर साधना से कमल-सा कोमल शरीर कुम्हलाने लगा । उनकी गुलाबी आभा और तेज मे परिणत हो गई । गुण सवत्सर तप को सुदीर्घ आराधना से देह बल क्षीण होने लगा किन्तु मनोबल के साथ वह लघु साधक तपोमार्ग पर निरन्तर बढता ही रहा । अन्त मे विपुलगिरि पर सलेखना कर अजर-अमर पद को प्राप्त किया ।[६]

वाणिज्यगाव मे

पोलासपुर से विहार कर भगवान अनेक ग्राम व नगरो मे धर्मप्रचार करते हुए वाणिज्यगाव पधारे और वहा पर वर्षावास व्यतीत किया ।

महाशतक का व्रतग्रहण

वाणिज्यगाव का वर्षावास पूर्ण कर भगवान् ने मगधभूमि की ओर प्रस्थान किया । विहार करते हुए राजगृह नगर मे पधारे । राजगृह मे महाशतक गाथापति था, जिसके पास अठारह करोड स्वर्णमुद्रायें थी । रेवती आदि तेरह पत्नियाँ थी । रेवती अपने पितृगृह से आठ कोटि हिरण्य लाई थी और एक व्रज लाई थी, शेष बारह पत्नियाँ भी एक-एक कोटि हिरण्य लाई थी और एक-एक व्रज ।

भगवान् महावीर का राजगृह नगर मे पदार्पण सुनकर महाशतक भगवान् को वन्दना करने के लिये गया और श्रावक व्रत ग्रहण किये । रेवती नाम की उसकी पत्नी, जो बडी क्रूर और विशेष कामासक्त थी, उसने एक दिन अपनी छह सौतो को शस्त्र प्रयोग से और छह सौतो को विषप्रयोग से यो बारह ही सौतो को मार दिया और उनकी सम्पत्ति पर अपना अधिकार कर लिया । वह मास और विविध प्रकार की मदिरा का उपभोग करती थी । जब सम्राट् श्रेणिक ने राजगृह मे हिसा का निषेध किया तब रेवती

५ भगवती सूत्र शतक ५ उद्दे० ४, पत्र २१६-१-२

६ अन्तकृतदशाग

अपने पिता द्वारा प्रदत्त व्रज मे से दो बछडे मरवाकर मगवाती थी, और उस मांस का उपभोग करती थी। रेवती के स्वभाव से महाशतक को घृणा हो गई। वह उससे विरक्त होकर आत्म साधना मे प्रवृत्त हो गया।

महाशतक को साधना करते हुए चौदह वर्ष व्यतीत हुए, तब वह ज्येष्ठ पुत्र को गृहभार सभला कर पोषधशाला मे धर्मप्रज्ञप्ति स्वीकार कर रहने लगा। एक दिन रेवती मद्य के नशे मे चूर हुई अत्यन्त कामातुर एव निर्लज्ज होकर महाशतक के पास आई। उसे अपने कामपाश मे बाधने के प्रयत्न करने पर भी जब महाशतक उससे सर्वथा विरक्त रहा तो वह कहने लगी - 'मुझे ज्ञात है तुम्हारे सिर पर धर्म का नशा चढा है, तुम मुक्ति के लालच मे फँसकर यह विरक्ति का ढोग रच रहे हो, पर तुम नही जानते कि यदि मेरी इच्छा को तृप्त कर मेरे साथ काम-भोगसेवन करते हो तो वह मुक्ति के सुख से भी अधिक आनन्दप्रद है, आओ मेरी इच्छा को तृप्त करो।"

रेवती ने दो-तीन बार इस प्रकार महाशतक को निर्लज्जता पूर्ण आग्रह किया, अनेक प्रकार के कामोद्दीपक हाव, भाव, और कटाक्ष से विचलित करने का प्रयास किया किन्तु वह साधना से विचलित नही हुआ। उसने ग्यारह श्रमणोपासक की प्रतिमाये पूर्ण की। घोर तप की साधना से उसका शरीर अत्यन्त कृश हो गया, अत वह मारणान्तिक सलेखना से झोपित होकर अशन, पान का त्याग कर रहने लगा। शुभ अध्यवसाय से उसे अवधिज्ञान हुआ और पूर्व, पश्चिम और दक्षिण दिशा मे एक हजार योजन तक, और उत्तर दिशा मे चुल्लहिमवत वर्षधर पर्वत तक जानने और देखने लगा। नीचे वह रत्नप्रभा पृथ्वी के चौरासी हजार वर्ष की स्थिति वाला लोलुप-अच्युत नाम के नरकावास तक जानने देखने लगा। और एक दिन जब कि महाशतक अनशन मे धर्मजागरणा कर रहा था, रेवती पुन मद्य के नशे मे छकी हुई उसके निकट आई और विह्वलतापूर्वक कामप्रार्थना करने लगी। महाशतक मौन रहा। रेवती ने दूसरी बार भी उससे आग्रह किया, महाशतक मौन था। अब तीसरी बार रेवती कामान्ध होकर उसे धिक्कारने लगी। उसके व्रतो एव आचार पर तिरस्कारपूर्वक आक्षेप करने लगी और अन्त मे जब अत्यन्त कामविह्वल हो गर्हित आचरण करने पर उतारु हुई, तब महाशतक को क्रोध आ गया, उसने रेवती को अभद्र व्यवहार के लिए फटकारा, अवधिज्ञान से उसका अधकारपूर्ण भविष्य बताते हुए कहा—

रेवती ! तुम सात दिन मे अलसक (विपूचिका) रोग से पीडित होकर रत्नप्रभा पृथ्वी मे अच्युत नरक मे चौरासी हजार वर्षो को स्थिति वाली नैरयिक रूप मे उत्पन्न होगी। वहा अत्यन्त उग्र कष्ट पायेगी।

महाशतक की आक्रोश पूर्ण बात सुन कर रेवती अत्यन्त घबरा उठी। उसे लगा, पति ने मुझे शाप दे दिया है। वह रोती-पीटती घर आई। भयानक रोग से पीडित होकर अन्त मे सातवे दिन असमाधि पूर्वक जीवन की अन्तिम सास छोड दी।[1]

भगवान महावीर इन्ही दिनो राजगृह मे विचर रहे थे। उन्होने गौतम से महाशतक श्रावक के इस आक्रोश पूर्ण कथन को चर्चा करते हुए कहा—गौतम ! श्रावक को इस प्रकार की, सत्य होते हुए भी अनिष्ट, अप्रिय, जिसे सुनने पर दु ख होता हो, विचार करने पर मन मे चुभती हो, ऐसी वाणी बोलना नही चाहिए।[2] महाशतक श्रावक ने रेवती को इस प्रकार के आक्रोश पूर्ण वचन कह कर अपने व्रत को दूषित किया है, अत तुम जाकर उसे कहो, वह अपने इस अविचार की आलोचना, आत्मनिन्दा करके आत्मा को विशुद्ध बनाए।

भगवान् का सन्देश लेकर गौतम राजगृह मे महाशतक श्रावक के पास आए। महाशतक गौतम स्वामी को आते देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुआ। विनयपूर्वक वन्दना की। महाशतक को भगवान् का सन्देश सुनाते हुए गौतम ने कहा—देवानुप्रिय ! तुमने जो इस प्रकार के आक्रोश पूर्ण कटुवचन कह कर रेवती की आत्मा को सतप्त किया भयभीत किया, वह उचित नही था। तुम्हारे लिए उस समय मौन रहना उचित था। तुम अपनी भूल का प्रायश्चित्त करो, आलोचना कर आत्मा को निर्दोष बनाओ।

गौतम के कहने से उन्होने अपनी भूल की शुद्धि की और साठ भक्त का अनशन पूर्ण कर सौधर्म देवलोक मे उत्पन्न हुए।

पार्श्वापत्यो के प्रश्नोत्तर

इस समय अनेक पार्श्वापत्य स्थविर भगवान् के सन्निकट आये, और

१ उपासकदशा ८

२ नो खलु कप्पई गोयमा ! सतेहि तच्चेहिं तहिएहिं, सब्भूएहिं अणिट्ठेहिं अकतेहि अप्पिएहि अमणुण्णेहिं वागरणेहि वागरित्तए।

—उपासक दशा ८

कुछ दूर खडे रहकर उन्होने भगवान महावीर से जिज्ञासा प्रस्तुत की—भगवन्! प्रस्तुत असख्येय लोक मे अनन्त रात्रि-दिन उत्पन्न हुए, होते हैं और होगे। नष्ट हुए है, नष्ट होते है और नष्ट होगे। अथवा नियत परिणाम वाले रात्रि-दिवस उत्पन्न हुए हे उत्पन्न होते हे और उत्पन्न होगे अथवा नष्ट हुए, नष्ट होते हे या नष्ट होगे ?

महावीर—प्रस्तुत असख्येय लोक मे अनन्त और परीत्त रात्रि दिन उत्पन्न हुए हे, होते है, और होगे और अनन्त व परीत्त व्यतीत हुए ह, होते है और होगे।

स्थविर—वे किस कारण उत्पन्न हुए और नष्ट हुए ?

महावीर—पुरुषादानीय पार्श्वनाथ अर्हन्त ने कहा है कि लोक शाश्वत-अनादि-अनन्त है। वह असख्येय प्रदेशात्मक है और अलोकाकाश से व्याप्त है। लोक नीचे की ओर विस्तृत, मध्य मे सक्षिप्त, और ऊपर के भाग मे विशाल है। आकाश की दृष्टि से वह अधोभाग मे पलग के समान है, मध्य मे वज्र जैसा है और ऊपरी भाग मे ऊर्ध्वमृदग जैसा हे। अनादि अनन्त शाश्वत लोक मे अनन्त जीवपिण्ड उत्पन्न होकर नष्ट होते ह, परिणाम वाले जीवपिड भी उत्पन्न होकर नष्ट होते है, इसीलिए लोक उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यात्मक है। लोक का दूसरा विभाग अजीवकाय प्रत्यक्ष होने से लोक प्रत्यक्ष है। लोकवर्ती अजीव द्रव्य प्रत्यक्ष देखा जाता है, इसीलिए इसे लोक कहा जाता है।[3]

भगवान् महावीर के स्पष्टीकरण से पार्श्वापत्य स्थविरो का समाधान हो गया और उन्हे यह दृढ निश्चय हो गया कि भगवान सर्वज्ञ सर्वदर्शी है। उन्होने भगवान् को नमस्कार किया और पचमहाव्रतात्मक सप्रतिक्रमण धर्म को स्वीकार कर महावीर के सघ मे मिल गये। दीर्घकाल तक श्रमणधर्म का पालन कर निर्वाण प्राप्त किया।[4] इन पार्श्वापत्य स्थविरो का नामोल्लेख नही हुआ है।

---

३ (क) जे लोक्कइ से लोके।

—भगवती सटीक, शतक ५, उद्दे० ६, सू० २२६ पृ० ४४६

(ख) यत्र जीवघना उत्पद्य-उत्पद्य विलीयन्ते स लोकोभूत।

—भगवती ५।६।२२६, पत्र ४५१

४ भगवती ५।६। पत्र ४४८-४५०

रोह के प्रश्नोत्तर

उस समय भगवान् महावीर से कुछ दूर बैठे हुए रोह अनगार तत्व-चिन्तन कर रहे थे। लोक के सम्बन्ध मे चिन्तन करते हुए उनके अन्तर्मानस मे कुछ शकाएँ उठी। उन्होने भगवान् से जिज्ञासाएँ प्रस्तुत करते हुए कहा—भगवन्! पूर्व लोक है? या पीछे अलोक है? या पूर्व अलोक है, या पीछे लोक है?

महावीर—लोक या अलोक पूर्व भी कहे जा सकते है और बाद मे भी। ये शाश्वत भाव है, इनमे पहले और पीछे का क्रम नही है।

रोह—पहले जीव है या अजीव है, या अजीव पहले या जीव पहले है?

महावीर—जीव और अजीव ये दोनो शाश्वत भाव है, इनमे पहले और पीछे का क्रम नही है।

रोह—पूर्व भवसिद्धिक है या पश्चात् अभवसिद्धिक है, या पूर्व अभवसिद्धिक है या पश्चात् भवसिद्धिक है?

महावीर—भवसिद्धिक और अभवसिद्धिक ये दोनो भी शाश्वत भाव है, इनमे पहले या पीछे का क्रम नही है।

रोह—पहले सिद्ध है या असिद्ध है, या पहले असिद्ध है या सिद्ध है?

महावीर—ये भी शाश्वत भाव है, इसमे पहले पीछे का क्रम नही है।

रोह—पहले अण्डा है, या मुर्गी है, पहले मुर्गी है या अण्डा?

महावीर—अण्डा कहा से हुआ?

रोह—मुर्गी से।

महावीर—मुर्गी कहा से हुई?

रोह—अण्डे से।

महावीर—इसी प्रकार अडा और मुर्गी, ये पहले भी है, और बाद मे भी है। पूव की तरह शाश्वत भाव है। पूर्व और पश्चात् का क्रम नही है।

रोह—लोकान्त या अलोकान्त मे पहले और पीछे दोनो मे कौन?

महावीर—लोकान्त या अलोकान्त दोनो पहले भी कहे जा सकते है, पीछे भी। इनमे पहले पीछे भी कोई अनुक्रम नही।

रोह—भगवन्! लोक पीछे सप्तम अवकाशान्तर या पहले सप्तम अवकाशान्तर और पीछे लोक ?

महावीर—रोह! दोनो शाश्वतभाव है, इनमे पहले-पीछे का क्रम नही है।

रोह—पहले लोकान्त, पीछे सप्तम तनुवात या पहले सप्तम तनुवात और पीछे लोकान्त ?

महावीर—ये दोनो शाश्वत भाव है, इन्हे पहले और पीछे दोनो कह सकते, इनमे कोई अनुक्रम नही है।

रोह—पहले लोकान्त, पीछे सप्तम पृथ्वी, पहले सप्तम पृथ्वी, पीछे लोकान्त ?

महावीर—ये दोनो शाश्वतभाव है, इसमे पहले और पीछे का क्रम नही है।

इसी प्रकार रोह अनगार ने उक्त सभी प्रश्न अलोकान्त के साथ भी किये, भगवान् ने सभी के उत्तर दिये।

रोह—प्रथम सप्तम अवकाशान्तर, पीछे सप्तम तनुवात या प्रथम सप्तम तनुवात और पीछे सप्तम अवकाशान्तर ?

भगवान्—दोनो शाश्वतभाव है, इसमे भी पूर्व और पश्चात् का क्रम नही है।

इसी तरह रोह ने पूर्व-पूर्व पद त्याग कर उत्तर-उत्तर पद के साथ प्रथम और पीछे का क्रम पूछा, भगवान् ने उनका उत्तर दिया।

भगवान् के उत्तरो को सुनकर रोह अनगार अत्यधिक सन्तुष्ट हुआ।[५]

गौतम के प्रश्न

गणधर गौतम भगवान् महावीर के सामने उपस्थित हुए, उन्होने लोकस्थिति के सम्बन्ध मे भगवान से पूछा—भगवन्! लोकस्थिति कितने प्रकार की कही है ?

महावीर—लोक की स्थिति आठ प्रकार की कही है—

१ वायु आकाश के आधार पर है।

---

५ भगवती १।६

२ पानी वायु के आधार पर है ।
३ पृथ्वी जल के आधार पर है ।
४ त्रस और स्थावर जीव पृथ्वी के आधार पर है ।
५ अजीव जीव के आधार पर है ।
६ जीव कर्म के आधार पर है ।
७ जीव अजीव-सगृहीत है ।
८ जीव कर्म-सग्रहीत है ।

गौतम—भगवन् ! किस कारण लोक की स्थिति आठ प्रकार की कही है । आकाश पर हवा और हवा पर पृथ्वी आदि कैसे प्रतिष्ठित हो सकती है ?

महावीर—जैसे कोई व्यक्ति मशक को हवा से पूर्ण भर कर उसका मुँह बद कर दे, फिर उसको बीच मे से मजबूत बाँधकर मुँह पर की गाँठ खोलकर हवा निकाल दे और उसमे पानी भरदे और फिर तानकर मुँह पर गाठ दे दे, फिर बीच की गाठ खोल दे तो वह पानी नीचे की हवा पर ठहरेगा ।

गौतम—हा भगवन् ! पानी हवा के ऊपर ठहरेगा ।

महावीर—आकाश के ऊपर हवा, हवा पर पानी आदि इसी क्रम से रहते है । हे गौतम ! कोई व्यक्ति मशक को हवा से भरकर उसे अपनी कमर मे बाधे और जल मे अवगाहन करे तो वह ऊपर ही रहेगा या पानी मे डूब जायेगा ?

गौतम—हाँ भगवन् ! वह ऊपर ठहरेगा ।

महावीर—इसी तरह आकाश पर हवा और हवा पर पानी प्रतिष्ठित है ।[६] इस प्रकार ज्ञान की गगा बहाते हुए भगवान् ने प्रस्तुत वर्षावास राजगृह मे व्यतीत किया ।

---

६ भगवती १।६।

आर्य स्कन्दक

वर्षाकाल पूर्ण होने पर भगवान् ने राजगृह से पश्चिमोत्तर प्रदेश की ओर प्रस्थान किया, अनेक गाँवो मे धर्म प्रचार करते हुए कृतगला नामक नगरी मे पधारे और छत्रपलास चैत्य मे विराजे। भगवान् का प्रवचन सुनने के लिए जन-समूह उमड पडा।

कृतगला के सन्निकट ही श्रावस्ती नामक नगर था। वहा कात्यायन नामक परिव्राजक का शिष्य स्कदक नामक परिव्राजक रहता था।[१] वह चारो वेद, इतिहास, निघटु और षष्टितत्र-(कापिलीय शास्त्र) मे निष्णात था। साथ ही गणितशास्त्र, शिक्षाशास्त्र, आचारशास्त्र, व्याकरणशास्त्र, छदशास्त्र, व्युत्पत्तिशास्त्र, ज्योतिषशास्त्र, ब्राह्मण, नीति व अन्य दर्शनो मे पारगत था। वहा पिंगल नामक निर्ग्रन्थ वेसालीय श्रावक रहता था।[२] जो निर्ग्रन्थ प्रवचन के रहस्य का ज्ञाता था।

---

१ परिव्राजक भिक्षा से आजीविका करने वाला साधु—निरुक्त १।१४ वंदिक कोश। जैन आगमो मे व उत्तरवर्त्ती साहित्य मे तापस, परिव्राजक, सन्यासी आदि अनेक प्रकार के साधको का विस्तृत वर्णन आता है। इसके लिए औपपातिक सूत्र, सूत्र-कृताग निर्युक्ति, पिडनिर्युक्ति, गा० ३१४, बृहत्कल्प भाष्य भाग ४ पृ० ११७०, निशीथ सूत्र सभाष्य चूर्णि भाग-२, व भगवती सूत्र ११।६, आवश्यक चूर्णि पृ० २७८, धम्मपद अट्ठकथा २, पृ० २०६, दीघनिकाय अट्ठकथा १ पृ० २७०, ललित विस्तर पृ० २४८ और जैन आगम साहित्य मे भारतीय समाज पृ० ४१२-४१६ तक मे देख सकते है।

गेरुआ वस्त्र धारण करने से ये गेरुअ या गेरिक भी कहे जाते है। (निशीथ चूर्णि १३-४४२०)। परिव्राजक श्रमण, ब्राह्मण धम के प्रतिष्ठित पण्डित होते थे। वशिष्ट धर्मसूत्र के उल्लेखानुसार परिव्राजक को अपना सिर मुण्डित रखना, एक वस्त्र व चमखण्ड धारण करना, गायो द्वारा उखाडी हुई घास से अपने शरीर को आच्छादित और जमीन पर उसे सोना चाहिए (१०३-११, मलालसेकर, डिक्सनरी आव पाली प्रोपर नेम्स जिल्द २, पृ० १५६ आदि, महाभारत १२, १६०, ३)

२ विशाला—महावीर जननी तस्या अपत्यमिति वैशालिक—भगवास्तस्य वचन शृणोति तद्रसिकत्वादिति वैशालिक श्रावक तद्वचनामृतपाननिरत इत्यर्थ 'निर्ग्रन्थ श्रमण इत्यर्थ। —भगवती टीका, पत्र २०१

एक बार पिंगल नामक निर्ग्रन्थ ने स्कदक परिव्राजक से आक्षेपात्मक भाषा मे पूछा[3]—

मागध ! यह लोक सान्त है या अनन्त है ?

जीव सान्त है या अनन्त है ?

सिद्धि सान्त है या अनन्त है ?

सिद्ध सान्त है या अनन्त है ?

किस प्रकार का मरण पाकर जीव ससार को घटाता और बढाता है ? क्या तुम मेरे प्रश्नो का समाधान कर सकोगे ?

प्रश्न सुनते ही स्कन्दक शकाशील हो गया । वह असमजस मे पड गया । वह उत्तर देना चाहता था, पर क्या उत्तर दूँ ? यह उसे समझ मे ही नही आ रहा था । विचारमग्न स्कन्दक उत्तर प्रदान न कर सका । वह मौन रहा । पिंगल ने साक्षेप अपने प्रश्न पुन-पुन दुहराये । शकित और काक्षित स्कदक कुछ भी न बोल सका । उसे अपने उत्तर पर अविश्वास था, अत उसकी बुद्धि स्खलित हो गई । उसकी स्व-आगम श्रद्धा विचलित हो गई और वह इनका समाधान पाने को आतुर हो उठा ।

उस समय जन-समूह भगवान् महावीर के दर्शन के लिए उमडा जा रहा था । जनता के मुँह से स्कन्दक ने भी छत्रपलाशक मे महावीर के आगमन के समाचार सुने । मन मे विचार उद्बुद्ध हुए, कितना सुन्दर हो यदि मैं महावीर के पास जाऊँ, और इन प्रश्नो का समाधान करूँ । दृढ सकल्प कर वह परिव्राजकाश्रम मे गया । त्रिदण्ड, कुण्डी, रुद्राक्षमाला, मृत्पात्र, आसन, पात्र-प्रमार्जन का वस्त्र-खण्ड, त्रिकाष्टिका, अकुश, कुश की मुद्रिका सदृश वस्तु, कलई का एक प्रकार का आभूषण, छत्र, उपानह, पादुका, गैरिक वस्त्र आदि यथास्थान धारण कर कयगला की ओर प्रस्थान किया ।

---

३ मागहा ! किं स अते लोए, अणते लोए ?
सअते जीवे, अणते जीवे ?
सअता सिद्धि अणता सिद्धि ?
स अते सिद्धे, अणते सिद्धे ?
केण वा मरणेण मग्माणे जीवे वड्ढति वा हायति वा ?

—भगवती २।१

उस समय भगवान महावीर ने गणधर गोतम को कहा—गौतम ! तुम आज अपने पूर्व परिचित को देखोगे।

गौतम भन्ते ! मै किस पूर्व परिचित को देखूंगा ?

महावीर—कात्यायन गोत्रीय स्कदक परिव्राजक को।[४]

गोतम ने पुन जिज्ञासा प्रस्तुत की—भन्ते ! वह परिव्राजक मुझे कब व कैसे मिलेगा ?

महावीर ने समाधान दिया—श्रावस्ती मे पिगल निर्ग्रन्थ ने उससे प्रश्न पूछे वह उत्तर न दे सका, अत अपने तापसीय उपकरणो को धारणकर यहाँ आने के लिए प्रस्थान कर चुका है। उसने बहुत सारा मार्ग तय कर लिया है। वह मार्ग के मध्य मे है। वह शीघ्र ही यहाँ पहुच जायेगा, और तू आज ही उससे मिलेगा।

गौतम—क्या उसमे आपके शिष्य होने की योग्यता है ?

महावीर—हा उसमे योग्यता है और निश्चय ही मेरा शिष्य हो जायेगा।

महावीर और गौतम का वार्तालाप चल ही रहा था, उसी समय स्कदक परिव्राजक दूर से आते हुए दिखलाई दिये। गौतम अपने स्थान से उठकर उनके सामने गये। स्नेह और छलछलाई आखो से हर्ष व्यक्त करते हुए सभ्य शिष्ट एव मधुरवाणी से बोले—हे स्कन्दक ! तुम्हारा स्वागत है, सुस्वागत है, अन्वागत है।[५] मागध ! यह सत्य है न, पिगल निर्ग्रन्थ ने आपसे प्रश्न पूछे आप उनका उत्तर न दे सके, और उन्हो प्रश्नो के समाधान के लिए यहा आ रहे है ?

गौतम द्वारा मन की गुप्त बात का उद्घाटन सुनकर स्कन्दक परिव्राजक अत्यन्त विस्मित हुआ। उसने कहा—गौतम वह कौन ज्ञानी और तपस्वी है, जिसने मेरे मन की बात बता दी ?

---

४ दच्छसिण गोयमा ! पुव्व सगय।
क ण भते ?
खदय नाम। —भगवती २।१

५ हे खदया ! सागय, खदया ! सुसागय !
अणुरागय खदया ! सागय मणुरागय खदया ! —भगवती २।१

गौतम ने कहा—स्कन्दक ! मेरे धर्मगुरु, धर्मोपदेशक, श्रमण भगवान् महावीर अनुत्तर ज्ञान और दर्शन के धारक है। वे अरिहंत हे, सर्वज्ञ, सर्व-दर्शी हे। उन्हे आपका मानसिक अभिप्राय किञ्चित् मात्र भी अज्ञात नही रह सकता।

स्कन्दक ने कहा—चलिए ! पहले उन्हे ही नमस्कार करे। गौतम के साथ वे भगवान महावीर के समीप आये। भगवान् के दिव्य और भव्य रूप को देखकर वह अत्यन्त आह्लादित हुआ। उसने श्रद्धास्निग्ध हृदय से तीन प्रदक्षिणा की, और वन्दना की। महावीर ने स्कन्दक को सम्बोधित करते हुए कहा—मागध ! श्रावस्ती मे रहने वाले पिंगल निर्ग्रन्थ ने तुम्हारे से लोक, जीव, मोक्ष, सिद्ध आदि सान्त है या अनन्त आदि प्रश्न पूछे थे न ?

स्कन्दक—हॉ, पूछे थे भगवन् !

महावीर—द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव से यह लोक चार प्रकार का है। द्रव्य की अपेक्षा से यह एक है और सान्त है। क्षेत्र की अपेक्षा से यह असख्य कोटाकोटि योजन आयाम-विष्कभ वाला है। इसकी परिधि असख्य कोटाकोटि योजन है। इसका अन्त है। काल की अपेक्षा से यह किसी दिन न होता है, ऐसा नही है, किसी दिन नही था, ऐसा भी नहीं है, किसी दिन नही रहेगा, ऐसा भी नही है। वह तीनो कालो मे रहेगा। वह ध्रुव, नियत, शाश्वत, अक्षत, अव्यय, अवस्थित और नित्य है। इसका अन्त नही। भाव की अपेक्षा से यह अनन्त वर्ण, गध, रस, स्पर्श, पर्यवरूप है। अनन्त सस्थान पर्यव, अनन्त गुरुलघुपर्यव, और अनन्त अगुरुलघु पर्यवरूप है।

स्कन्दक ! द्रव्य और क्षेत्र की अपेक्षा से यह लोक सान्त है तथा काल और भाव की अपेक्षा से अनन्त है। इसलिए लोक सान्त भी है और अनन्त भी है।

जीव के सम्बन्ध मे भी द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव की अपेक्षा से ही चिन्तन किया जाय। द्रव्य की अपेक्षा से जीव एक और सान्त है। क्षेत्र की अपेक्षा से वह असख्यात प्रदेशी है और सान्त है। काल की अपेक्षा से वह अतीत मे था, वर्तमान मे है और भविष्य मे रहेगा, अत नित्य है, उसका कभी भी अन्त नही है। भाव की अपेक्षा से वह अनन्त ज्ञानपर्यव रूप है, अनन्त दर्शनपर्यव रूप है और अनन्त गुरु-लघु पर्यवरूप है, इसका अन्त नहीं

है। इस प्रकार स्कन्दक! द्रव्य व क्षेत्र की अपेक्षा से जीव अन्त युक्त है और काल व भाव की अपेक्षा से अन्त-रहित है।

मोक्ष सान्त है या अनन्त? इसे भी द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव की अपेक्षा से जानना होगा। द्रव्य की अपेक्षा से मोक्ष एक है, सान्त है। क्षेत्र की अपेक्षा से ४५ लाख योजन आयाम विष्कभ है और इसकी परिधि एक करोड, बयालीस लाख, तीस हजार दो सौ उनपचास योजन से कुछ अधिक है। इसका अन्त है। काल की अपेक्षा से यह नही कहा जा सकता है, कि किसी दिन मोक्ष नही था, नही है और नही रहेगा। भाव की अपेक्षा से भी यह अन्त रहित है। साराश यह है कि द्रव्य और क्षेत्र की अपेक्षा से मोक्ष अन्तयुक्त है और काल व भाव की अपेक्षा से अन्त-रहित है।

स्कन्दक! तुम्हे यह भी विचार हुआ था कि सिद्ध अन्त-युक्त है या अन्तरहित है। इस सम्बन्ध मे भी तुम्हे द्रव्य, क्षेत्र, काल व भाव की दृष्टि से सोचना होगा। द्रव्य की अपेक्षा से सिद्ध एक है और अन्त युक्त है। क्षेत्र की अपेक्षा से सिद्ध असख्य प्रदेश अवगाढ होने पर भी अन्तयुक्त है। काल की अपेक्षा से सिद्ध की आदि तो है परन्तु अन्त नही है। भाव की अपेक्षा से सिद्ध ज्ञान-दर्शन-पर्यवरूप है और उसका अन्त नही है।

मरण के सम्बन्ध मे भी तुम्हारे मन मे विकल्प है, किस मरण से ससार बढता और किस प्रकार घटता है। मरण दो प्रकार का है। १ बाल-मरण और २ पण्डितमरण।

स्कन्दक—भगवन्! बालमरण किस प्रकार होता है।

महावीर—स्कन्दक! बालमरण बारह प्रकार का होता है।

१ क्षुधा से छटपटाते हुए मरना।
२ इन्द्रियादिक की पराधीनतापूर्वक मरना।
३ शरीर मे शस्त्रादिक के प्रवेश से या सन्मार्ग से भ्रष्ट होकर मरना।
४ जिस गति से मरे उसी का आयुष्य बाधना।
५ पर्वत से गिरकर मरना।
६ वृक्ष से गिरकर मरना।
७ पानी मे डूबकर मरना।
८ अग्नि मे जलकर मरना।

गौतम ने कहा—स्कन्दक ! मेरे धर्मगुरु, धर्मोपदेशक, श्रमण भगवान् महावीर अनुत्तर ज्ञान और दर्शन के धारक है। वे अरिहन्त है, सर्वज्ञ, सर्वदर्शी है। उन्हे आपका मानसिक अभिप्राय किञ्चित् मात्र भी अज्ञात नही रह सकता।

स्कन्दक ने कहा—चलिए ! पहले उन्हे ही नमस्कार करें। गौतम के साथ वे भगवान महावीर के समीप आये। भगवान् के दिव्य और भव्य रूप को देखकर वह अत्यन्त आह्लादित हुआ। उसने श्रद्धास्निग्ध हृदय से तीन प्रदक्षिणा की, और वन्दना की। महावीर ने स्कन्दक को सम्बोधित करते हुए कहा—मागध ! श्रावस्ती मे रहने वाले पिंगल निर्ग्रन्थ ने तुम्हारे से लोक, जीव, मोक्ष, सिद्ध आदि सान्त है या अनन्त आदि प्रश्न पूछे थे न ?

स्कन्दक—हाँ, पूछे थे भगवन् !

महावीर—द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव से यह लोक चार प्रकार का है। द्रव्य की अपेक्षा से यह एक है और सान्त है। क्षेत्र को अपेक्षा से यह असख्य कोटाकोटि योजन आयाम-विष्कभ वाला है। इसकी परिधि असख्य कोटाकोटि योजन है। इसका अन्त है। काल की अपेक्षा से यह किसी दिन न होता है, ऐसा नही है, किसी दिन नही था, ऐसा भी नही है, किसी दिन नही रहेगा, ऐसा भी नही है। वह तीनो कालो मे रहेगा। वह ध्रुव, नियत, शाश्वत, अक्षत, अव्यय, अवस्थित और नित्य है। इसका अन्त नही। भाव की अपेक्षा से यह अनन्त वर्ण, गध, रस, स्पर्श, पर्यवरूप है। अनन्त सस्थान पर्यव, अनन्त गुरुलघुपर्यव, और अनन्त अगुरुलघु पर्यवरूप है।

स्कन्दक ! द्रव्य और क्षेत्र की अपेक्षा से यह लोक सान्त है तथा काल और भाव की अपेक्षा से अनन्त है। इसलिए लोक सान्त भी है और अनन्त भी है।

जीव के सम्बन्ध मे भी द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव की अपेक्षा से ही चिन्तन किया जाय। द्रव्य की अपेक्षा से जीव एक और सान्त है। क्षत्र की अपेक्षा से वह असख्यात प्रदेशी है और सान्त है। काल की अपेक्षा से वह अतीत मे था, वर्तमान मे है और भविष्य मे रहेगा, अत नित्य है, उसका कभी भी अन्त नही है। भाव की अपेक्षा से वह अनन्त ज्ञानपर्यव रूप है, अनन्त दर्शनपर्यव रूप है और अनन्त गुरु-लघु-पर्यवरूप है, इसका अन्त नही

है। इस प्रकार स्कन्दक ! द्रव्य व क्षेत्र की अपेक्षा से जीव अन्त युक्त है और काल व भाव की अपेक्षा से अन्त-रहित है।

मोक्ष सान्त है या अनन्त ? इसे भी द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव की अपेक्षा से जानना होगा। द्रव्य की अपेक्षा से मोक्ष एक है, सान्त है। क्षेत्र की अपेक्षा से ४५ लाख योजन आयाम-विष्कम्भ है और इसकी परिधि एक करोड, बयालीस लाख, तीस हजार दो सौ उनपचास योजन से कुछ अधिक है। इसका अन्त है। काल की अपेक्षा से यह नही कहा जा सकता है, कि किसी दिन मोक्ष नही था, नही है और नही रहेगा। भाव की अपेक्षा से भी यह अन्त रहित है। साराश यह है कि द्रव्य और क्षेत्र की अपेक्षा से मोक्ष अन्तयुक्त है और काल व भाव की अपेक्षा से अन्त-रहित है।

स्कन्दक ! तुम्हे यह भी विचार हुआ था कि सिद्ध अन्त-युक्त है या अन्तरहित है। इस सम्बन्ध मे भी तुम्हे द्रव्य, क्षेत्र, काल व भाव की दृष्टि से सोचना होगा। द्रव्य की अपेक्षा से सिद्ध एक है और अन्त युक्त है। क्षेत्र की अपेक्षा से सिद्ध असख्य प्रदेश अवगाढ होने पर भी अन्तयुक्त है। काल की अपेक्षा से सिद्ध की आदि तो है परन्तु अन्त नही है। भाव की अपेक्षा से सिद्ध ज्ञान-दर्शन-पर्यवरूप है और उसका अन्त नही है।

मरण के सम्बन्ध मे भी तुम्हारे मन मे विकल्प है, किस मरण से ससार बढता और किस प्रकार घटता है। मरण दो प्रकार का है। १ बाल-मरण और २ पण्डितमरण।

स्कन्दक—भगवन् ! बालमरण किस प्रकार होता है।

महावीर—स्कन्दक ! बालमरण बारह प्रकार का होता है।

१ क्षुधा से छटपटाते हुए मरना।
२ इन्द्रियादिक की पराधीनतापूर्वक मरना।
३ शरीर मे शस्त्रादिक के प्रवेश से या सन्मार्ग से भ्रष्ट होकर मरना।
४ जिस गति से मरे उसी का आयुष्य बाधना।
५ पर्वत से गिरकर मरना।
६ वृक्ष से गिरकर मरना।
७ पानी मे डूबकर मरना।
८ अग्नि मे जलकर मरना।

गौतम ने कहा—स्कन्दक ! मेरे धर्मगुरु, धर्मोपदेशक, श्रमण भगवान् महावीर अनुत्तर ज्ञान और दर्शन के धारक है। वे अरिहन्त है, सर्वज्ञ, सर्वदर्शी है। उन्हे आपका मानसिक अभिप्राय किञ्चित् मात्र भी अज्ञात नही रह सकता।

स्कन्दक ने कहा—चलिए ! पहले उन्हे ही नमस्कार करे। गौतम के साथ वे भगवान महावीर के समीप आये। भगवान् के दिव्य और भव्य रूप को देखकर वह अत्यन्त आह्लादित हुआ। उसने श्रद्धास्निग्ध हृदय से तीन प्रदक्षिणा की, और वन्दना की। महावीर ने स्कन्दक को सम्बोधित करते हुए कहा—मागध ! श्रावस्ती मे रहने वाले पिंगल निर्ग्रन्थ ने तुम्हारे से लोक, जीव, मोक्ष, सिद्ध आदि सान्त है या अनन्त आदि प्रश्न पूछे थे न ?

स्कन्दक—हाँ, पूछे थे भगवन् !

महावीर—द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव से यह लोक चार प्रकार का है। द्रव्य की अपेक्षा से यह एक है और सान्त है। क्षेत्र की अपेक्षा से यह असख्य कोटाकोटि योजन आयाम-विष्कभ वाला है। इसकी परिधि असख्य कोटाकोटि योजन है। इसका अन्त है। काल की अपेक्षा से यह किसी दिन न होता है, ऐसा नही है, किसी दिन नही था, ऐसा भी नही है, किसी दिन नही रहेगा, ऐसा भी नही है। वह तीनो कालो मे रहेगा। वह ध्रुव, नियत, शाश्वत, अक्षत, अव्यय, अवस्थित और नित्य है। इसका अन्त नही। भाव की अपेक्षा से यह अनन्त वर्ण, गध, रस, स्पर्श, पर्यवरूप है। अनन्त सस्थान पर्यव, अनन्त गुरुलघुपर्यव, और अनन्त अगुरुलघु पर्यवरूप है।

स्कन्दक ! द्रव्य और क्षेत्र की अपेक्षा से यह लोक सान्त है तथा काल और भाव की अपेक्षा से अनन्त है। इसलिए लोक सान्त भी है और अनन्त भी है।

जीव के सम्बन्ध मे भी द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव की अपेक्षा से ही चिन्तन किया जाय। द्रव्य की अपेक्षा से जीव एक और सान्त है। क्षेत्र की अपेक्षा से वह असख्यात प्रदेशी है और सान्त है। काल की अपेक्षा से वह अतीत मे था, वर्तमान मे है और भविष्य मे रहेगा, अत नित्य है, उसका कभी भी अन्त नही है। भाव की अपेक्षा से वह अनन्त ज्ञानपर्यव रूप है, अनन्त दर्शनपर्यव रूप है और अनन्त गुरु-लघु-पर्यवरूप है, इसका अन्त नही

९ विप खाकर मरना ।

१० शस्त्र-प्रयोग से मरना ।

११ फाँसी लगाकर मरना ।

१२ गृद्ध आदि पक्षियो से नुचवाकर मरना ।

इन बारह प्रकार से मरकर जीव अनन्त बार नैरयिक गति का अधिकारी होता है। तिर्यंच गति को प्राप्त होता है, और चतुर्गत्यात्मक ससार की अभिवृद्धि करता है। इसे कहते हे मरण से ससार बढना।

स्कन्दक—भगवन् ! पण्डितमरण किसे कहते है और वह कितने प्रकार का है ?

महावीर— स्कन्दक ! पण्डितमरण दो प्रकार है १ पादोपगमन, २ भक्तप्रत्याख्यान। पादोपगमन दो प्रकार का है १ निर्हारिम, २ अनिर्हारिम। भक्तप्रत्याख्यान भी दो प्रकार का है १ निर्हारिम, २ और अनिर्हारिम। जो श्रमण उपाश्रय मे पादोपगमन या भक्तप्रत्याख्यान प्रारभ करते है, पण्डितमरण के पश्चात् उनका शव उपाश्रय व नगर से बाहर ले जाकर सस्कारित किया जाता है, एतदर्थ वह मरण निर्हारिम कहलाता है। जो श्रमण अरण्य मे पादोपगमन या भक्तप्रत्याख्यान द्वारा देह त्याग करते है, उनका शव सस्कार के लिए कही बाहर नही ले जाया जाता, इसलिए वह मरण निर्हारिम कहलाता है। पादोपगम चाहे निर्हारिम हो चाहे अनिर्हारिम, अप्रतिकर्म होता है, क्योकि उस मरण मे वैयावृत्य नही होता। भक्तप्रत्याख्यान निर्हारिम हो या अनिर्हारिम, सप्रतिकर्म होता है, क्योकि वहा पर वैयावृत्य निपिद्ध नही है। इस प्रकार पण्डितमरण से जो जीव मरते है, वे नैरयिक नही होते है और न अनन्त भवो को ही प्राप्त होते है। वे दीर्घ ससार को छोटा करते है।

अपने सभी प्रश्नो के सविस्तार उत्तर सुनकर स्कन्दक अत्यन्त आह्लादित हुआ। उसने भगवान् महावीर के वचनो पर अपनी आस्था प्रकट की, और प्रव्रजित होने के लिए हार्दिक भावना व्यक्त की। महावीर ने उसे प्रव्रजित किया। और आगम साहित्य का गभीर अध्ययन किया। और जैन-दृष्टि का परम रहस्यवेत्ता बना।

भगवती सूत्र के प्रस्तुत वर्णन से ज्ञात होता है कि स्कन्दक ने भगवान से जिन प्रश्नो का समाधान पाया, तथाप्रकार के प्रश्न उस युग के दार्शनिक मस्तिष्क मे चारो ओर चक्कर काट रहे थे। अनेक परिव्राजक, सन्यासी और

श्रमण उन प्रश्नो पर चिन्तन-मनन करते रहते थे, और यथार्थ समाधान के अभाव मे इधर-उधर विज्ञो से व धर्मप्रवर्तको से समाधान पाने के लिए घूमते रहते थे। तथागत बुद्ध के पास भी इसी प्रकार के प्रश्न लेकर अनेक जिज्ञासु आते थे, पर बुद्ध उसे अव्याकृत कहकर उनसे छुटकारा पाने का प्रयत्न करते थे।[6] जबकि महावीर इस प्रकार के प्रश्नो का समाधान करके जिज्ञासुओ को आत्मसाधना की ओर मोडने का उपक्रम रचते थे।

आर्य स्कन्दक पहले से ही तपस्वी थे, किन्तु श्रमण बनने के पश्चात वे एक विशिष्ट तपस्वी हो गए। भिक्षु प्रतिमा, गुणरत्न-संवत्सर तप, नाना प्रकार के तप और विशिष्ट साधनाओ से कर्म नष्ट करने का प्रबल प्रयत्न किया, बारह वर्ष तक निरन्तर साधना करने के पश्चात् विपुलाचल पर्वत पर अनशन कर आयु पूर्ण किया और अच्युत कल्प मे देव बने।[7]

नन्दिनीपिता

छत्रपलास चैत्य से विहार कर भगवान् श्रावस्ती के कोष्ठक चैत्य मे पधारे। भगवान् के आगमन के समाचार सुनकर भावुक जनता उमड पडी। भगवान् के उपदेश को सुनकर अनेको व्यक्ति धर्मसाधना मे प्रवृत्त हुए।

गाथापति नन्दिनीपिता जो श्रावस्ती का ही निवासी था, जिसके पास बारह करोड स्वर्ण मुद्रायें थी और चालीस हजार गायें थी, उसने भगवान्

---

६ बुद्ध ने जिन प्रश्नो को अव्याकृत कहा, वे ये है—

१ क्या लोक शाश्वत है ?

२ क्या लोक अशाश्वत है ?

३ क्या लोक अन्तमान है ?

४ क्या लोक अनन्त है ?

५ क्या जीव और शरीर एक है ?

६ क्या जीव और शरीर भिन्न है ?

७ क्या मरने के बाद तथागत नही होते ?

८ क्या मरने के बाद तथागत होते भी है और नही भी होते ?

९ क्या मरने के बाद तथागत न होते है और न नही होते है ?

—मज्झिम निकाय, चूलमालुक्य सुत्त ६३, दीघ निकाय, पोट्ठपाद सुत्त १।९

७ भगवती सूत्र २।१

९ विप खाकर मरना ।

१० शस्त्र-प्रयोग से मरना ।

११ फाँसी लगाकर मरना ।

१२ गृद्ध आदि पक्षियो से नुचवाकर मरना ।

इन बारह प्रकार से मरकर जीव अनन्त बार नैरयिक गति का अधिकारी होता है । तिर्यंच गति को प्राप्त होता है, और चतुर्गत्यात्मक ससार की अभिवृद्धि करता है । इसे कहते हे मरण से ससार बढना ।

स्कन्दक—भगवन् ! पण्डितमरण किसे कहते हे और वह कितने प्रकार का है ?

महावीर– स्कन्दक ! पण्डितमरण दो प्रकार हे १ पादोपगमन, २ भक्तप्रत्याख्यान । पादोपगमन दो प्रकार का है १ निर्हारिम, २ अनिर्हारिम । भक्तप्रत्याख्यान भी दो प्रकार का है १ निर्हारिम, २ और अनिर्हारिम । जो श्रमण उपाश्रय मे पादोपगमन या भक्तप्रत्याख्यान प्रारभ करते है, पण्डितमरण के पश्चात् उनका शव उपाश्रय व नगर से बाहर ले जाकर सस्कारित किया जाता है, एतदर्थ वह मरण निर्हारिम कहलाता है । जो श्रमण अरण्य मे पादोपगमन या भक्तप्रत्याख्यान द्वारा देह त्याग करते हे, उनका शव सस्कार के लिए कही बाहर नही ले जाया जाता, इसलिए वह मरण निर्हारिम कहलाता हे । पादोपगम चाहे निर्हारिम हो चाहे अनिर्हारिम, अप्रतिकर्म होता है, क्योकि उस मरण मे वैयावृत्य नही होता । भक्तप्रत्याख्यान निर्हारिम हो या अनिर्हारिम, सप्रतिकर्म होता है, क्योकि वहाँ पर वैयावृत्य निपिद्ध नही है । इस प्रकार पण्डितमरण से जो जीव मरते है, वे नैरयिक नही होते है और न अनन्त भवो को ही प्राप्त होते है । वे दीघ ससार को छोटा करते है ।

अपने सभी प्रश्नो के सविस्तार उत्तर सुनकर स्कन्दक अत्यन्त आह्लादित हुआ । उसने भगवान् महावीर के वचनो पर अपनी आस्था प्रकट की, और प्रव्रजित होने के लिए हार्दिक भावना व्यक्त की । महावीर ने उसे प्रव्रजित किया । और आगम साहित्य का गभीर अध्ययन किया । और जैन-दृष्टि का परम रहस्यवेत्ता बना ।

भगवती सूत्र के प्रस्तुत वर्णन से ज्ञात होता हे कि स्कन्दक ने भगवान से जिन प्रश्नो का समाधान पाया, तथाप्रकार के प्रश्न उस युग के दार्शनिक मस्तिष्क मे चारो ओर चक्कर काट रहे थे । अनेक परिव्राजक, सन्यासी और

श्रमण उन प्रश्नो पर चिन्तन-मनन करते रहते थे, और यथार्थ समाधान के अभाव मे इधर-उधर विज्ञो से व धर्मप्रवर्तको से समाधान पाने के लिए घूमते रहते थे। तथागत बुद्ध के पास भी इसी प्रकार के प्रश्न लेकर अनेक जिज्ञासु आते थे, पर बुद्ध उसे अव्याकृत कहकर उनसे छुटकारा पाने का प्रयत्न करते थे।[६] जबकि महावीर इस प्रकार के प्रश्नो का समाधान करके जिज्ञासुओ को आत्मसाधना की ओर मोडने का उपक्रम रखते थे।

आर्य स्कन्दक पहले से ही तपस्वी थे, किन्तु श्रमण बनने के पश्चात वे एक विशिष्ट तपस्वी हो गए। भिक्षु प्रतिमा, गुणरत्न-सवत्सर तप, नाना प्रकार के तप और विशिष्ट साधनाओ से कर्म नष्ट करने का प्रबल प्रयत्न किया, बारह वर्ष तक निरन्तर साधना करने के पश्चात् विपुलाचल पर्वत पर अनशन कर आयु पूर्ण किया और अच्युत कल्प मे देव बने।[७]

नन्दिनीपिता

छत्रपलास चैत्य से विहार कर भगवान् श्रावस्ती के कोष्ठक चैत्य मे पधारे। भगवान् के आगमन के समाचार सुनकर भावुक जनता उमड पडी। भगवान् के उपदेश को सुनकर अनेको व्यक्ति धर्मसाधना मे प्रवृत्त हुए।

गाथापति नन्दिनीपिता जो श्रावस्ती का ही निवासी था, जिसके पास बारह करोड स्वर्ण मुद्रायें थी और चालीस हजार गायें थी, उसने भगवान्

---

६ बुद्ध ने जिन प्रश्नो को अव्याकृत कहा, वे ये है—

१ क्या लोक शाश्वत है ?

२ क्या लोक अशाश्वत है ?

३ क्या लोक अन्तमान है ?

४ क्या लोक अनन्त है ?

५ क्या जीव और शरीर एक है ?

६ क्या जीव और शरीर भिन्न है ?

७ क्या मरने के बाद तथागत नही होते ?

८ क्या मरने के बाद तथागत होते भी है और नही भी होते ?

९ क्या मरने के बाद तथागत न होते है और न नही होते हैं ?

—मज्झिम निकाय, चूलमालुक्य सुत्त ६३, दीघ निकाय, पोट्ठपाद सुत्त १।९

७ भगवती सूत्र २।१

के उपदेश को सुनकर अपनी पत्नी अश्विनी के साथ श्रावक के द्वादशव्रत ग्रहण किये। पन्द्रहवे वर्ष उसने अपने पुत्र को गृहभार सौपकर धर्मप्रज्ञप्ति को स्वीकार कर विचरने लगा।[८]

सालिहीपिता

सालिहीपिता भी श्रावस्ती का ही रहने वाला था, उसके पास भी बारह करोड स्वर्णमुद्राये थी और चालीस हजार गाये थी, उसने भी भगवान के उपदेश को सुनकर अपनी पत्नी फाल्गुनी के साथ श्रावकव्रत ग्रहण किये, फिर पुत्र को गृहभार सोपकर धर्मप्रज्ञप्ति स्वीकार की और ग्यारह प्रतिमाए उपसर्ग रहित पूर्ण की।[९]

इस प्रकार अनेको गृहस्थो ने भगवान् के उपदेश को सुनकर गृहस्थ-धर्म स्वीकार किया।

श्रावस्ती से भगवान ने विदेहभूमि की ओर विहार किया और वाणिज्यगाँव मे अपना तेवीसवा वर्षावास किया।

जमालि और गोशालक का विद्रोह

जमालि का पृथक् विचरण

वाणिज्यगाँव मे तेवीसवा वर्षावास पूर्ण कर भगवान् ब्राह्मणकुड के बहुसाल चैत्य मे पधारे। हम पूर्व ही बता चुके है, जमालि जो महावीर का भानजा तथा जामाता भी था, वह पाँचसौ क्षत्रिय राजकुमारो के साथ दीक्षित हुआ था। एक दिन जमालि अनगार भगवान् महावीर के पास आये। उन्होने निवेदन किया—'भन्ते! आपकी आज्ञा हो, तो मैं पाँचसौ साधुओ के साथ अन्य प्रदेश मे विचरण करना चाहता हूँ।' महावीर ने जमालि का निवेदन सुना, पर मौन रहे। जमालि ने अपने कथन को तीन बार दुहराया, फिर भी महावीर मौन रहे। जमालि ने पाँचसौ साधुओ के साथ अन्य प्रदेश मे विचरने के लिए प्रस्थान कर दिया।[१]

---

८ उपासक दशा ६

९ उपासक दशा १०

१ भगवती सूत्र सटीक श० ६, उद्दे० ६, सू० ३८६-८६

चन्द्र-सूर्य का आगमन

भगवान् ने ब्राह्मणकुण्ड से वत्स देश की ओर विहार किया और कौशाम्बी पधारे। भगवान को वन्दना करने के लिये समय समय पर चन्द्र और सूर्य के इन्द्र आते है, पर इस समय उनके इन्द्र मूल विमानो के साथ वन्दन के लिए[2] आये जिन्हे जैनागमो मे एक आश्चर्य माना है।[3]

पार्श्वापत्यो के कथन का समर्थन

कौशाम्बी से काशी राष्ट्र मे से होकर भगवान राजगृह के गुणशील चैत्य मे पधारे। उस समय पार्श्वापत्य स्थविर पंचसौ अनगारो के साथ परिभ्रमण करते हुए राजगृह के सन्निकटवर्ती तुगीया नगरी के पुष्पवतीक चैत्य मे अवस्थित थे। तुगीया के श्रमणोपासको ने स्थविरो के आगमन को सुना। वे धर्मोपदेश को सुनने के लिए उद्यान मे पहुचे। स्थविरो ने चातुर्याम धर्म का उपदेश दिया। जिसे सुनकर श्रमणोपासक अत्यन्त प्रसन्न हुए। फिर उन्होने स्थविरो से प्रश्न किये।

भगवान! सयम का फल क्या है और तप का फल क्या है?

स्थविर—आर्यो! सयम का फल अनाश्रव है और तप का फल निर्जरा है।

श्रमणोपासक—भगवन्! यदि सयम का फल अनाश्रव और तप का फल निजरा है तो देवलोक मे देव किस कारण से उत्पन्न होते है?[4]

स्थविर कालियपुत्र—आर्यो! प्राथमिक तप से देवलोक मे देव उत्पन्न होते है।

स्थविर मेहिल - आर्यो! प्राथमिक सयम से देवलोक मे देव उत्पन्न होते है।

स्थविर आनन्दरक्षित—आर्यो! कार्मिकता से देवलोक मे देव उत्पन्न होते है।

---

२ त्रिषष्टि० १०।८। ३३७-३८३

३ (क) स्थानाङ्ग १०।३।७७७, पत्र ५२३-२

(ख) कल्पसूत्र सुबोधिका टीका ६७

(ग) प्रवचनसारोद्धार सटीक, गा० ८८५, पत्र २५६-२५८

४ भगवती श० २। उद्दे० ५

स्थविर काश्यप—आर्यो ! सगिकता (आसक्ति) से देवलोक मे देव उत्पन्न होते है। पूर्वतप, पूर्वसयम, कार्मिकता, और सगिकता से देवलोक मे देव उत्पन्न होते है।[५]

स्थविरो के उत्तर सुनकर श्रमणोपासक अत्यन्त प्रसन्न हुए, और वे स्थविरो को नमस्कार कर अपने-अपने स्थान को चले गये। स्थविरो ने भी वहा से अन्यत्र विहार कर दिया।

इन्द्रभूति गौतम भगवान् की आज्ञा लेकर राजगृह मे भिक्षा के लिए गये। ऊँच-नीच और मध्यम-कुलो मे भिक्षा के लिए परिभ्रमण करते हुए उन्होने बहुत से व्यक्तियो से सुना कि तु गियानगरी के श्रमणोपासको ने पार्श्वापत्य स्थविरो से सयम और तप के सम्बन्ध मे प्रश्न पूछे और उन्होने उत्तर दिया। गौतम के मन मे शका हुई कि क्या स्थविरो ने जो उत्तर दिये है, वे सत्य है या नही ? क्या वे इस प्रकार उत्तर देने मे समर्थ है, या नही ? इसका निर्णय करने के लिए वे भगवान् के पास आये। भिक्षाचर्या की आलोचना करने के पश्चात् उन्होने भगवान् से पूछा—भगवन् ! मैंने राजगृह मे स्थविरो के प्रश्नोत्तर-सम्बन्धी चर्चा सुनी है, क्या यह ठीक है, जो स्थविरो ने उत्तर दिये है वे सही हे ? क्या वे इस प्रकार उत्तर देने मे समर्थ है !

महावीर—गौतम ! पार्श्वापत्य स्थविरो ने जो उत्तर दिये है, वे यथार्थ है। मेरा भी यही मन्तव्य है कि पूर्व तप और सयम के कारण और कर्म के शेष रहने से मानव देवलोक मे जन्म लेता है।

उपासना का फल

इसी प्रसग के पश्चात् गौतम ने भगवान से निम्न प्रश्न पूछे—

भगवन् ! श्रमण ब्राह्मण की पर्यु पासना करने वाले को उसका क्या फल मिलता है ?

महावीर—उसकी पर्यु पासना से सत्‌शास्त्र ‚श्रवण करने को मिलता है।

गौतम—श्रवण का क्या फल है ?

महावीर—सुनने से ज्ञान होता है।

गौतम—जानने का क्या फल हे ?

---

५ भगवती २।५।११०

महावीर—जानने का फल विज्ञान है।

गौतम—विज्ञान का क्या फल है?

महावीर—गौतम! प्रत्याख्यान है।

गौतम—प्रत्याख्यान का क्या फल है?

महावीर—प्रत्याख्यान का फल सयम है। प्रत्याख्यान होने के पश्चात् सर्वस्व त्याग रूप सयम होता है।

गौतम—सयम का फल क्या है?

महावीर—सयम का फल आश्रव-रहितपना है। आत्म-भाव मे रमण करना है।

गौतम—आश्रव-निरुधन का क्या फल है?

महावीर—उसका फल तप है।

गौतम—तप का क्या फल है?

महावीर—कर्म रूपी मैल को नष्ट करना है।

गौतम—कर्मरूपी मैल नष्ट होने से किस फल की प्राप्ति होती है?

महावीर—उससे अक्रियपना प्राप्त होता है।

गौतम—अक्रियपन से क्या लाभ होता है?

महावीर—अक्रियपन प्राप्ति के पश्चात सिद्धि होती है।[६]

इस वर्ष भगवान के शिष्य बेहास और अभय आदि श्रमणो ने राजगृह के निकटवर्ती विपुल पर्वत पर अनशन कर देवपद प्राप्त किया।

भगवान् ने अपना चौबीसवा वर्षावास राजगृह मे व्यतीत किया।

राजा कूणिक की अपूर्व भक्ति

भगवान् ने राजगृह का वर्षावास पूर्ण कर चम्पा की ओर प्रस्थान किया। मगधपति श्रेणिक के देहावसान के पश्चात् कूणिक ने चम्पा को अपनी राजधानी बनाया था, जिसके कारण मगध का राजकुटुम्ब चम्पा मे ही रहता था। भगवान महावीर के चम्पा आगमन और कूणिक के भक्ति-निदर्शन

---

६ सवणे णाणे य विन्नाणे पच्चक्खाणे य सजमे।
अणण्हवे तवे चेव वोदाणे अकिरिया सिद्धि ॥

—भगवती २।५

का विवरण औपपातिक सूत्र मे बहुत ही विराट् रूप से किया गया है। उसका साराश इस प्रकार है—

भगवान् महावीर विहार करते हुए चम्पानगरी के उपनगर मे आये। प्रवृत्ति-वादुक पुरुष यह सम्वाद पाकर आनन्दित व प्रफुल्लित हुआ। स्नान कर मगल वस्त्र पहने, बहुमूल्य आभूषण पहने। घर से निकल चम्पानगरी के मध्य होता हुआ भभसार पुत्र कूणिक की राजसभा मे आया। जय-विजय शब्द से वर्धापना की और बोला– देवानुप्रिय ! आप जिनके दर्शन चाहते है, जिनके नाम, गोत्र आदि के श्रवण से ही आप हृष्ट-तुष्ट होते है, वे श्रमण भगवान् महावीर ग्रामानुग्राम विचरते हुए क्रमश: चम्पानगरी के उपनगर मे आये है, चम्पानगरी के पूर्णभद्र चैत्य मे आने वाले ह। यह सम्वाद आपके लिए प्रिय हो।

कूणिक उस प्रवृत्ति-निवेदक से यह सवाद सुनकर अत्यन्त हर्षित हुआ। उसके नेत्र और मुख विकसित हो गए। वह शीघ्रता से राजसिंहासन को छोडकर उठा, पादुकाएं खोली, पाँचो राज्यचिह्न दूर किये,[७] एक साटिक उत्तरासग किया। अजलिबद्ध होकर सात आठ कदम महावीर की दिशा की ओर बढा। बाये पैर को सकुचित किया। दॉये पैर को सकोच कर धरती पर रखा। मस्तक को तीन बार धरणीतल पर लगाया। फिर किञ्चित् ऊपर उठकर हाथ जोडे। अजलि को मस्तक पर लगा कर "**णमोत्थुण**" से अभिवादन कर बोला—'श्रमण भगवान् महावीर जो आदिकर है, तीर्थंकर है—यावत सिद्धगति के अभिलाषुक है, मेरे धर्मोपदेशक और धर्माचार्य हे, उन्हे मेरा नमस्कार हो। यहा से मैं तत्रस्थ भगवान् का वन्दन करता हूँ। भगवान् वही से मुझे देखते हे।[८]

भगवान् को वन्दन कर राजा पुन सिहासन पर आसीन हुआ। उसने प्रवृत्ति वादुक व्यक्ति को एकलक्ष अष्टसहस्र रजत मुद्राओ का प्रीतिदान प्रदान किया, और कहा—जब भगवान् महावीर चम्पा के पूर्णभद्र चैत्य मे पधारे, तब मुझे पुन सूचित करना।

भगवान् चम्पानगरी के पूर्णभद्र चैत्य मे पधारे। चम्पा के शृङ्गाटको और चतुष्को पर सर्वत्र यही चर्चा थी—श्रमण भगवान् महावीर यहाँ आये

---

७ खड्ग, छत्र, मुकुट, उपानत और चामर।

८ औपपातिक सूत्र १२

है, पूर्णभद्र चैत्य मे ठहरे है, उनके नाम-गोत्र के श्रवण से ही महाफल होता है। उनके साक्षात् दर्शन की तो बात ही क्या ? देवानुप्रियो ! चलो हम सभी भगवान् महावीर को वन्दन नमस्कार करे। वह हमारे इस लोक और आगामी लोक के लिए हितकर और सुखकर होगा।

जिस प्रवृत्तिवादुक पुरुष ने राजा कूणिक को यह हर्ष-सवाद सुनाया उसे राजा ने साढे बारह लाख रजत-मुद्राओ का प्रीतिदान[९] दिया, और सेनाधिकारी को बुलाकर आदेश दिया कि हस्ती-रत्न को सजाकर तैयार करो, सर्वत्र नगर को सजाओ, मैं भगवान् महावीर की अभिवन्दना के लिए जाऊँगा।

राजा के आदेश से चम्पानगरी सजाई गई। राजा हस्ती रत्न पर बैठा। सुभद्रा आदि रानिया रथो पर सवार हुईं। चतुरगिनी सेना के विराट् वैभव के साथ वह महावीर के दर्शन के लिए चल पडा। चम्पानगरी के मध्य मे होता हुआ पूर्णभद्र चैत्य के सन्निकट आया। भगवान् महावीर के छत्र आदि तीर्थंकर अतिशय दूर से देखे, वही उन्होने हस्तीरत्न छोड दिया। पाचो राजचिह्न छोड दिये। भगवान् के सम्मुख आया। पच अभिगम कर वन्दन-नमस्कार किया। वन्दन-नमस्कार कर मानसिकी वाचिकी और कायिक उपासना करने लगा।[१०]

भगवान महावीर ने उपदेश दिया। उपदेश सुनकर भभासार पुत्र कूणिक ने वन्दन नमस्कार कर कहा—भन्ते ! आपका निर्ग्रन्थ प्रवचन सु-आख्यात है, सुप्रज्ञप्त है, सुभाषित है, सुविनीत है सुभावित है, अनुत्तर है। आपने धर्म को कहते हुए उपशम को कहा, उपशम को कहते हुए विवेक को कहा, विवेक को कहते हुए विरमण को कहा, विरमण को कहते हुए पाप कर्मो

---

९ मूल पाठ मे 'रजत' शब्द नही है किन्तु परम्परा से यह माना जाता है कि चक्रवर्ती का प्रीतिदान साढे बारह करोड स्वर्ण-मुद्राओ का होता है। वासुदेव व माण्डलिक राजाओ का प्रीतिदान साढे बारह लक्ष रजत-मुद्राओ का होता है।

—उववाई (सैलाना सस्करण) पृ० १३३

१० वन्दनार्थ जाने का इस प्रकार का वर्णन बौद्ध ग्र थो मे भी है। महायानी परपरा के महावस्तु ग्र थ मे बुद्ध के वन्दन के लिए जाते समय राजा बिम्बिसार का ऐसा ही वर्णन मिलता है।

के अकरण को कहा। अन्य कोई श्रमण या ब्राह्मण नही जो ऐसा धर्म कह सके। इससे अधिक की तो बात ही क्या है।[११]

इस प्रकार कहकर राजा जिस दिशा से आया था, उस दिशा से वापिस गया।

राजा कूणिक जैन या बौद्ध ?

अजातशत्रु कूणिक का वर्णन जैन परम्परा की तरह बौद्ध-परम्परा मे भी हुआ है। सामञ्जफल सुत्त के अनुसार बुद्ध के प्रथम दर्शन मे ही वह बुद्ध धर्म को स्वीकार करता है।[१३] बुद्ध की अस्थियो पर स्तूप बनाने के लिए, जब बुद्ध के भस्मावशेष बाटे जाने लगे उस समय अजातशत्रु ने कुशीनारा के मल्लो से कहलाया "बुद्ध भी क्षत्रिय थे, मैं भी क्षत्रिय हूँ। अवशेषो का एक भाग मुझे अवश्य मिलना चाहिए।" द्रोण विप्र की सलाह से उसे एक अस्थिभाग मिला और उस पर उसने स्तूप बनाया।[१४]

प्रश्न यह है कि अजातशत्रु कूणिक जैन था या बौद्ध था ?

औपपातिक का जो वर्णन है, उसके सामने सामञ्जफल सुत्त का वर्णन महत्वपूर्ण नही लगता है, क्योकि सामञ्जफल सुत्त मे केवल इतना ही वर्णन है कि 'आज से भगवान मुझे अजलिबद्ध शरणागत उपासक समझे।' किन्तु औपपातिक मे कूणिक की महावीर के प्रति अनन्य भक्ति प्रदर्शित की गई है। उसने एक प्रवृत्ति-वादुक व्यक्ति की नियुक्ति की थी। उसका कार्य था महावीर की प्रतिदिन की प्रवृत्ति से उसे अवगत करते रहना। उसके नीचे अनेक कर्मकर रहते थे। वे भी आजीविका पाते थे। उनके माध्यम से महावीर के प्रति-दिन के समाचार उस प्रवृत्ति-वादुक पुरुष को मिलते थे और वह उन्हे कूणिक को बताता था।[१५] उसे विपुल अर्थदान दिया जाता था।

---

११ णत्थि ण अण्णे केइ समणे वा माहणे वा जे एरिस धम्म-माइक्खेत्तए। किमग पुण एत्तो उत्तरतर।

—औपपातिक सूत्र २५

१२ औपपातिक सूत्र सूत्र, ३६-३७ के आधार से।

१३ एसाह, भन्ते, भगवन्त-सरण गच्छामि धम्म च भिक्खु सङ्घ च। उपासक म भगवा धारेतु अज्जतग्गे पाणुपेत सरण गत।

—सामञ्जफल सुत्त

१४ बुद्धचर्या पृ० ५०६

१५ ओपपातिक सूत्र, सू० ८

प्रवृत्ति-वादुक द्वारा समाचार सुनने पर भक्ति-भावना से अभिवन्दन करना उपदेश सुनने के लिए जाना और निर्ग्रन्थ धर्म पर श्रद्धा व्यक्त करना। इस वर्णन के सामने बुद्ध के प्रति जो उसकी श्रद्धा है वह औपचारिक प्रतीत होती है।[१६]

अजातशत्रु कूणिक का बुद्ध से साक्षात्कार एक बार होता है। किन्तु महावीर से अनेक बार साक्षातकार होता है।[१७] भगवान् महावीर के परि-निर्वाण के पश्चात भी महावीर के उत्तराधिकारी सुधर्मा की धर्म-सभा मे भी वह उपस्थित होता है।[१८]

डॉ० स्मिथ का मन्तव्य है कि 'बौद्ध और जैन दोनो ही अजातशत्रु को अपना-अपना अनुयायी होने का दावा करते है, पर लगता है कि जैनो का दावा अधिक आधार-युक्त है।'[१९]

'हिन्दु सभ्यता' ग्रन्थ मे डॉ० राधाकुमुद मुखर्जी ने लिखा है, महावीर और बुद्ध की वर्तमानता मे तो अजातशत्रु महावीर का ही अनुयायी था।[२०] आगे चलकर उन्होने लिखा है 'जैसा प्राय देखा जाता है, जैन अजातशत्रु और उदायिभद्द दोनो को अच्छे चरित्र का बतलाते है, क्योकि दोनो जैनधर्म के मानने वाले थे। यही कारण है कि बौद्ध ग्रन्थो मे उनके चरित्र पर कालिख पोती गई है।[२१]

अजातशत्रु बुद्ध का अनुयायी नही था, इसके भी अनेक कारण है—

१ अजातशत्रु की देवदत्त के साथ मित्रता थी, जबकि देवदत्त बुद्ध का विरोधी शिष्य था।

---

१६ आगम और त्रिपिटक एक अनुशीलन, पृ० ३३३

१७ स्थानाङ्ग वृत्ति, स्था० ४, उ० ३

१८ (क) ज्ञाताधर्मकथाग सूत्र, सू० १-५

(ख) परिशिष्ट पर्व, सर्ग ४, श्लो० १५-५४

१९ Both Buddhists and Jains claimed him as one of Themselves the Jain claim appears to be well faunded—oxfard History of india By V A Smith, Secand Edition oxfard 1923 p 51

२० हिन्दू सभ्यता पृ० १९०-१

२१ हिन्दू सभ्यता पृ० २६४

अजातशत्रु की वज्जियो के साथ शत्रुता थी, वज्जी लोग बुद्ध के परम भक्तो मे थे।

३ अजातशत्रु ने प्रसेनजित के साथ युद्ध किया, जबकि प्रसेनजित् बुद्ध का परम भक्त और अनुयायी था।

तथागत बुद्ध की अजातशत्रु के प्रति अनादर भावना थी, उन्होने अजातशत्रु के सम्बन्ध मे भिक्षुओ को कहा—'इस राजा का सस्कार अच्छा नही रहा। यह राजा अभागा है। यदि यह राजा अपने धर्म-राज पिता की हत्या न करता, तो आज इसी आसन पर बैठे-बैठे विरज, निर्मल, धर्म-चक्षु उत्पन्न हो जाता।[२२] देवदत्त के प्रसग को लेकर बुद्ध ने कहा—भिक्षुओ मगधराज अजातशत्रु, जो भी पाप हे, उनके मित्र हे, उनसे प्रेम करते हैं और उनसे ससर्ग रखते है।[२३]

जातक अट्ठकथा के अनुसार बुद्ध एक बार बिम्बिसार को धर्मोपदेश कर रहे थे। बालक अजातशत्रु बिम्बिसार की गोद मे बैठा हुआ क्रीडा कर रहा था। बिम्बिसार का ध्यान बुद्ध के उपदेश मे न लग कर, अजातशत्रु की ओर लगा हुआ था, अत बुद्ध ने उसका ध्यान अपनी ओर आकर्षित करते हुए एक कथा सुनाई, जिसका रहस्य था कि तुम इसके मोह मे इतने बधे हो, किन्तु यही तुम्हारा घातक होगा।[२४]

अवदानशतक के अनुसार बिम्बिसार ने बुद्ध की वर्तमानता मे ही बुद्ध के नख और केशो पर एक स्तूप अपने राजमहलो मे बनवाया था। राज-रानियाँ धूप, दीप, और पुष्पो से उसकी अर्चना करती थी। जब अजातशत्रु राज्यसिहासन पर आसीन हुआ, उसने सारी अर्चना बन्द करवा दी। श्रीमती नामक एक महिला ने उसकी आज्ञा की अवहेलना कर पूजा की, जिस कारण उसे मृत्यु दण्ड दिया गया।[२५]

बौद्ध साहित्य के उद्भट विद्वान राइस डेविड्स लिखते है— 'बातचीत के अन्त मे अजातशत्रु ने बुद्ध को स्पष्ट रूप से मार्गदर्शक स्वीकार किया और पितृ-हत्या का पश्चात्ताप व्यक्त किया, पर यह असदिग्धतया व्यक्त

---

२२ दीघनिकाय, सामञ्जफलसुत्त, पृ० ३२

२३ विनयपिटक, चुल्लवग्ग, सघभेदक खदक ७

२४ जातक अट्ठकथा, थुस जातक, स० ३३८

२५ अवदानशतक, ५४

किया गया है कि उसका धर्म परिवर्तन नही किया गया। इस सम्बन्ध मे एक भी प्रमाण नही है उस हृदयस्पर्शी प्रसग के पश्चात् भी वह बुद्ध की मान्यताओ का अनुसरण करता रहा हो। जहाँ तक मैं जान पाया हू, उसके बाद उसने बुद्ध के अथवा बौद्ध सघ के अन्य किसी भिक्षु के न तो कभी दर्शन किये और न उनके साथ धर्म-चर्चा की, और न मेरे ध्यान मे यह भी आता हे कि उसने बुद्ध के जीवनकाल मे भिक्षुसघ को कभी आर्थिक सहयोग भी किया हो।

इतना तो अवश्य मिलता है कि बुद्ध निर्वाण के पश्चात् उसने बुद्ध की अस्थियो की माग की, पर वह भी यह कह कर कि 'मैं भी बुद्ध की तरह क्षत्रिय हूँ' और उन अस्थियो पर फिर उसने एक स्तूप बनाया। दूसरी बात —उत्तरवर्ती ग्रन्थ यह बताते है कि बुद्ध-निर्वाण के तत्काल बाद ही जब राजगृह मे प्रथम सगीति हुई, तब अजातशत्रु ने सप्तपर्णी गुफा के द्वार पर एक सभाभवन बनवाया था, जहा बौद्धपिटकों का सकलन हुआ। परन्तु इस बात का बौद्ध धर्म के प्राचीनतम और मौलिक शास्त्रो मे लेशमात्र भी उल्लेख नही है। इस प्रकार बहुत सभव है कि उसने बौद्धधर्म को बिना स्वीकार किये ही उसके प्रति सहानुभूति दिखाई हो। यह सब उसने केवल भारतीय राजाओ की उस प्राचीन परम्परा के अनुसार ही किया हो कि सब धर्मों का सरक्षण करना राजा का कर्तव्य होता है।[२६]

परवर्ती बौद्ध साहित्य मे अजातशत्रु के कुछ प्रसग दिए है, जिनमे उसकी बौद्धधर्म के प्रति दृढ श्रद्धा व्यक्त होती है।[२७] पर उसका महत्त्व विद्वानो की दृष्टि मे किवदन्ती से अधिक नही है।[२८]

साराश यह है कि अजातशत्रु कूणिक जैन था, और महावीर का परम भक्त था।

श्रेणिक के पौत्रो की दीक्षा

भगवान् के पावन प्रवचन चम्पा मे होते रहे, जिससे अनेक भव्यात्माओ को जिनधर्म पर श्रद्धा हुई। अनेको ने मुनिधर्म ग्रहण किया, उसमे श्रेणिक के १ पद्म, २ महापद्म, ३ भद्र, ४ सुभद्र, ५ महाभद्र, ६ पद्मसेन,

---

२६ Buddhist India, pp 15 16

२७ धम्मपद अट्टकथा, १०-७, खण्ड २, ६०५-६

२८ आगम और त्रिपिटक एक अनुशीलन, पृ० ३३४-३३५

७ पद्मगुल्म, ८ नलिनीगुल्म, ६ आनन्द, और १० नन्दन ये दस पौत्र प्रमुख थे।[२९] इनके अतिरिक्त जिनपालित[३०] आदि अनेक समृद्ध नागरिको ने श्रमण धर्म स्वीकार किया। पालित[३१] जैसे—बडे व्यापारी ने भी श्रावकधर्म स्वीकार किया।

चम्पा से भगवान् ने विदेहभूमि की ओर विहार किया। काकदी पधारे, वहाँ के गाथापति क्षेमक, धृतिधर, आदि ने सयम ग्रहण किया। इस वर्ष भगवान् ने वर्षावास मिथिला मे किया। क्षेमक और धृतिधर ने सोलह वर्षों तक सयम पालन कर अन्त मे विपुलपर्वत पर अनशन कर सिद्ध-पद प्राप्त किया।[३२]

गोशालक जिन नहीं

भगवान महावीर मिथिला का वर्षावास पूर्ण कर वैशाली के सन्निकट से होकर श्रावस्ती पधारे। वहा कोष्ठक चैत्य मे विराजमान हुए। मखलि-पुत्र गोशालक भी उन दिनो श्रावस्ती मे ही था। गोशालक के प्रारभिक जीवन का परिचय पूर्व पृष्ठो मे हम देख चुके है। भगवान् महावीर से पृथक् होने के पश्चात गोशालक श्रावस्ती और उसके आसपास के क्षेत्रो मे परिभ्रमण करता रहता था। श्रावस्ती मे हालाहला कुम्हारिन और अयपुल गाथापति उसके परम भक्त थे। जब कभी भी गोशालक श्रावस्ती मे आता तो हालाहला की भाडशाला मे ठहरता। वह अपने आपको तीर्थंकर, जिन, केवली, सर्वज्ञ कहता था। गणधर गौतम भिक्षा के लिए श्रावस्ती मे गये, उन्होने नगरी मे यह जन-प्रवाद सुना कि श्रावस्ती मे दो तीर्थंकर विचर रहे है, एक श्रमण भगवान महावीर और दूसरे गोशालक। गौतम भगवान् के चरणो मे पहुचे और इस विषय मे सत्य तथ्य जानना चाहा।

उत्तर मे भगवान् महावीर ने गोशालक का सम्पूर्ण पूर्व परिचय दिया ओर कहा—गौतम! गोशालक जिन नही, पर जिनप्रलापी है।

यह बात श्रावस्ती मे फैल गई। सर्वत्र एक ही चर्चा होने लगी—

---

२९ निरयावलिया (कप्पवर्डिसिया) पृ० २१ वैद्य स०

३० ज्ञाताधर्म कथा (एन० बी० वैद्य सम्पा० ११६)

३१ उत्तराध्ययन अ० २१

३२ अन्तगडदसाओ (एन० बी० वैद्य सम्पा०) सू० ५-६ पृ० ३४

गोशालक जिन नही, परन्तु जिनप्रलापी है, श्रमण भगवान् महावीर इस प्रकार कहते है [३३]

मखलिपुत्र गोशालक ने भी यह बात सुनी । उसे बहुत ही क्रोध आया । वह आतापना-भूमि से हालाहला की कुम्भकारापण मे आया और अपने आजीवक सघ के साथ अत्यन्त अमर्श के साथ बैठा ।

गोशालक और आनन्द

उस समय भगवान् महावीर के स्थविर शिष्य आनन्द भिक्षा के लिए श्रावस्ती मे गये हुए थे । वे स्वभाव से सरल और विनीत थे । वे हमेशा छठ तप किया करते थे । वे उच्च, नीच व मध्यम कुलो मे परिभ्रमण करते हुए हालाहला के कुम्भकारापण से कुछ दूर होकर जा रहे थे । गोशालक ने उनको अपने पास बुलाया और कहा—जरा मेरी बात सुनकर जाओ । उसने कहा—

पुराने समय की बात है । कुछ व्यापारी व्यवसाय के लिए अनेक प्रकार का किराना और सामान गाडियो मे भरकर और पाथेय का प्रबध कर रवाना हुए । मार्ग मे ग्रामरहित, निर्जल, दीर्घ अटवी मे प्रविष्ट हुए । जगल का कुछ भाग पार किया कि साथ मे लाया हुआ पानी समाप्त हो गया । प्यास से आकुल व्याकुल होकर व्यापारी परस्पर विचार-विमर्श करने लगे, इधर-उधर जल की अन्वेषणा करने लगे । जगल मे आगे पहुँचने पर उन्हे एक विशाल वल्मीक दिखलाई दिया । उसके ऊँचे-ऊँचे चार शिखर थे । उन्होने एक शिखर को तोडा । उन्हे स्वच्छ, उत्तम, पाचक, जल प्राप्त हुआ । सभी ने पानी पिया, बैल आदि पशुओ को पिलाया, और मार्ग के लिए पानी से बर्तन भर दिये । उन्होने लोभ से दूसरा शिखर भी फोडा, विराट् स्वर्णराशि मिली । उनकी लोभवृत्ति प्रबल हुई, तीसरा शिखर फोडा उसमे बहुमूल्य मणिरत्न प्राप्त हुए । बहुमूल्य श्रेष्ठ, महापुरुषो के योग्य अमूल्य वज्ररत्न की अभिलाषा से उन्होने चतुर्थ शिखर फोडने का विचार किया । उन व्यापारियो मे एक व्यापारी बहुत ही चतुर था, उसने कहा—चतुर्थ शिखर नही फोडना चाहिए, क्यो कि यह हमारे लिए सकट का कारण हो सकता है, पर अन्य व्यापारियो ने उसके कथन की उपेक्षा करके चतुर्थ शिखर फोडा । उसमे से एक महाभयकर अत्यन्त कृष्ण वर्ण वाला दृष्टिविष सर्प निकला, उसने ज्यो ही क्रोधपूर्ण दृष्टि से देखा सारे व्यापारी जलकर भस्म हो गए । केवल एक

---

३३ भगवती शतक १५

व्यापारी बचा, जिसने चौथा शिखर फोडने की मना की थी। उसको सामान सहित सर्प ने अगले घर पहुँचा दिया।

आनन्द! उसी प्रकार तेरे धर्माचाय ओर धर्मगुरु श्रमण ज्ञातपुत्र ने श्रेष्ठ अवस्था प्राप्त की है। देव और मनुष्यादि मे उनकी कीर्तिपताका फहरा रही है। परन्तु यदि वे मेरे सम्बन्ध मे कुछ भी कहेगे तो अपने तपस्तेज से उन व्यापारियो की तरह मैं उन्हे भस्म कर दूँगा। उस हितैषी व्यक्ति की तरह तुझे बचा लूँगा। तू अपने धर्माचार्य के पास जा और मेरी कही हुई बात उन्हे सुना दे।[३४]

गोशालक की बात सुनकर आनन्द अत्यधिक भयभीत हुए। शीघ्र ही जाकर भगवान महावीर को सारा वृत्त सुनाया। साथ ही उन्होने यह भी पूछा कि भगवन्! क्या गोशालक उन्हे भस्म कर सकता हे?

महावीर ने आनन्द को आश्वस्त करते हुए कहा—गोशालक अपने तप-तेज से किसी को भी एक प्रहार मे कूटाघात (घन के आघात) के समान भस्म कर सकता है, परन्तु अरिहत भगवान् को नही। उसमे जितना अधिक तप तेज है, उससे अनगार का तपतेज विशिष्ट है, किन्तु श्रमण अनगार क्षमा के द्वारा क्रोध का निग्रह करने मे समर्थ है। अनगार के तप-तेज से स्थविर का तप तेज विशिष्ट है, और उससे अनन्त गुना अधिक अरिहत का तप-तेज है, क्योकि उनमे क्षमा का विशिष्ट गुण होता है, उनको कोई भी जला नही सकता पर परिताप अवश्य दे सकता हे! इसलिए तुम जाओ और गौतम आदि श्रमण निर्ग्रन्थो को कह दो कि गोशालक इधर आ रहा है। वह इस समय द्वेष वश म्लेच्छ की तरह दुर्भाव मे है इसलिए उसकी बातो का कोई भी कुछ भी जवाब न दे, और न धार्मिक चर्चा ही करे और न धार्मिक प्रेरणा ही दे।

गोशालक का आगमन

आनन्द अनगार गौतम आदि मुनिवर्ग को उक्त सूचना दे ही रहे थे कि गोशालक अपने सघ के साथ कोष्ठक चैत्य मे आ पहुँचा। भगवान् महावीर से कुछ दूर खडे रहकर उसने कहा—'आयुष्मन् काश्यप! मखलिपुत्र गोशालक आपका धर्मसम्बन्धी शिष्य था, ऐसा जो आप कहते हे, वह ठीक है, पर आपको यह ज्ञात नही कि तुम्हारा शिष्य मरकर देवलोक मे देवरूप मे उत्पन्न

---

३४ भगवती शतक १५

हो चुका है। मैं मखलिपुत्र गोशालक से भिन्न कोण्डियायन गोत्रीय उदायी हूँ। गोशालक का शरीर मैंने इसलिए धारण किया है कि वह परीषह सहन करने मे सक्षम है। यह मेरा सातवा शरीरान्तर प्रवेश है।

हमारे सिद्धान्त के अनुसार जो आज दिन तक मोक्ष गये ह, जाते हे ओर जायेगे, वे सभी चौरासी लक्ष महाकल्प[३५] के उपरान्त सात देव भव, सात सयूथ निकाय, सात सन्निगभ और सात प्रवृत्त परिहार कर, पाँच लाख साठ हजार छ सौ तीन कर्म भेदो का अनुक्रम से क्षय कर मोक्ष गये हे और सिद्ध-बुद्ध मुक्त हुए है। इसी प्रकार करते आये हे और भविष्य मे भी करेंगे।

कुमारावस्था मे ही मेरे मन मे प्रव्रज्या व ब्रह्मचर्य व्रत ग्रहण करने की भावना हुई। प्रव्रज्या ग्रहण की। मैने निम्न प्रकार से सात प्रवृत्त परिहार किये। ऐणेयक, मल्लराम, मडिक, रोह, भारद्वाज, अर्जुन गौतमपुत्र, गोशालक मखलिपुत्र' मैंने प्रथम शरीरान्तर प्रवेश राजगृह के बाहर मडि-कुक्षि चैत्य मे उदायन कौण्डियायन गोत्रीय के शरीर का त्याग कर ऐणेयक के शरीर मे किया। बाईस वर्ष वहाँ पर रहा। द्वितीय शरीरान्तरप्रवेश उद्दडपुर के बाहर चन्द्रावतरण चैत्य मे ऐणेयक के शरीर का त्याग कर मल्लराम के शरीर मे किया। इक्कीस वर्ष तक उसमे रहकर चम्पानगरी के बाहर अग-मन्दिर चैत्य मे मल्लराम का शरीर त्याग कर मण्डिक के देह मे तीसरा शरीरान्तर प्रवेश किया, वहाँ बीस वर्ष तक रहा, फिर वाराणसी नगरी के बाहर काम महावन चैत्य मे मडिक के शरीर का त्याग कर रोहक के शरीर मे चतुर्थ शरीरान्तर प्रवेश किया। वहाँ पर उनीस वर्ष रहा। पाँचवा शरीरान्तर प्रवेश आलभिका नगरी के बाहर प्राप्तकाल चैत्य मे रोह के देह का परित्याग कर भारद्वाज के शरीर मे किया। इसमे अठारह वर्ष रहा। छठा शरीरान्तर प्रवेश वैशाली नगरी के बाहर कुडियायन चैत्य मे भारद्वाज का शरीर परित्याग कर गौतमपुत्र अर्जुन के शरीर मे किया। उसमे सतरह वर्ष रहा। सातवा शरीरान्तर प्रवेश इसी श्रावस्ती नगरी मे

---

३५ महाकल्प का कालमान समझाने के लिए जैन दृष्टि से पल्य और सागर की भाति ही आजीवक मत मे सर और महाकल्प का प्रमाण बताया है। एक लाख सत्तर हजार छ सौ उनपचास (१,७०६४९) गगाओ का एक सर मान कर सौ-सौ वर्ष मे एक एक बालुका निकालते हुए जितने समय मे सब खाली हो, वह एक सर है। वैसे तीन लाख सर खाली हो तब एक महाकल्प होता है

—भगवती १५।१।५५०

व्यापारी बचा, जिसने चौथा शिखर फोडने की मना की थी। उसको सामान सहित सर्प ने अगले घर पहुँचा दिया।

आनन्द! उसी प्रकार तेरे धर्माचार्य और धर्मगुरु श्रमण ज्ञातपुत्र ने श्रेष्ठ अवस्था प्राप्त की है। देव और मनुष्यादि मे उनकी कीर्तिपताका फहरा रही है। परन्तु यदि वे मेरे सम्बन्ध मे कुछ भी कहेगे तो अपने तपस्तेज से उन व्यापारियो की तरह मैं उन्हे भस्म कर दूँगा। उस हितैषी व्यक्ति की तरह तुझे बचा लूँगा। तू अपने धर्माचार्य के पास जा और मेरी कही हुई बात उन्हे सुना दे।[३४]

गोशालक की बात सुनकर आनन्द अत्यधिक भयभीत हुए। शीघ्र ही जाकर भगवान महावीर को सारा वृत्त सुनाया। साथ ही उन्होने यह भी पूछा कि भगवन्! क्या गोशालक उन्हे भस्म कर सकता है?

महावीर ने आनन्द को आश्वस्त करते हुए कहा—गोशालक अपने तप तेज से किसी को भी एक प्रहार मे कूटाघात (घन के आघात) के समान भस्म कर सकता है, परन्तु अरिहत भगवान् को नही। उसमे जितना अधिक तप तेज है, उससे अनगार का तपतेज विशिष्ट है, किन्तु श्रमण अनगार क्षमा के द्वारा क्रोध का निग्रह करने मे समर्थ है। अनगार के तप-तेज से स्थविर का तप तेज विशिष्ट है, और उससे अनन्त गुना अधिक अरिहत का तप-तेज है, क्योकि उनमे क्षमा का विशिष्ट गुण होता है, उनको कोई भी जला नही सकता पर परिताप अवश्य दे सकता है। इसलिए तुम जाओ और गौतम आदि श्रमण निर्ग्रन्थो को कह दो कि गोशालक इधर आ रहा है। वह इस समय द्वेष वश म्लेच्छ की तरह दुर्भाव मे है इसलिए उसकी बातो का कोई भी कुछ भी जवाब न दे, और न धार्मिक चर्चा ही करे और न धार्मिक प्रेरणा ही दे।

गोशालक का आगमन

आनन्द अनगार गौतम आदि मुनिवर्ग को उक्त सूचना दे ही रहे थे कि गोशालक अपने सघ के साथ कोष्ठक चैत्य मे आ पहुँचा। भगवान् महावीर से कुछ दूर खडे रहकर उसने कहा—'आयुष्मन् काश्यप! मखलिपुत्र गोशालक आपका धर्मसम्बन्धी शिष्य था, ऐसा जो आप कहते है, वह ठीक है, पर आपको यह ज्ञात नही कि तुम्हारा शिष्य मरकर देवलोक मे देवरूप मे उत्पन्न

---

३४ भगवती शतक १५

हो चुका है। मैं मखलिपुत्र गोशालक से भिन्न कौण्डियायन गोत्रीय उदायी हूँ। गोशालक का शरीर मैंने इसलिए धारण किया है कि वह परीषह सहन करने मे सक्षम है। यह मेरा सातवा शरीरान्तर प्रवेश है।

हमारे सिद्धान्त के अनुसार जो आज दिन तक मोक्ष गये है, जाते है और जायेंगे, वे सभी चौरासी लक्ष महाकल्प[35] के उपरान्त सात देव भव, सात सयूथ निकाय, सात सन्निगर्भ और सात प्रवृत्त परिहार कर, पाँच लाख साठ हजार छ सौ तीन कर्म भेदो का अनुक्रम से क्षय कर मोक्ष गये है और सिद्ध-बुद्ध मुक्त हुए है। इसी प्रकार करते आये है और भविष्य मे भी करेंगे।

कुमारावस्था मे ही मेरे मन मे प्रव्रज्या व ब्रह्मचर्य व्रत ग्रहण करने की भावना हुई। प्रव्रज्या ग्रहण की। मैंने निम्न प्रकार से सात प्रवृत्त परिहार किये। ऐणेयक, मल्लराम, मडिक, रोह, भारद्वाज, अर्जुन गौतमपुत्र, गोशालक मखलिपुत्र' मैंने प्रथम शरीरान्तर प्रवेश राजगृह के बाहर मडि-कुक्षि चैत्य मे उदायन कौण्डियायन गोत्रीय के शरीर का त्याग कर ऐणेयक के शरीर मे किया। बाईस वर्ष वहाँ पर रहा। द्वितीय शरीरान्तरप्रवेश उद्दडपुर के बाहर चन्द्रावतरण चैत्य मे ऐणेयक के शरीर का त्याग कर मल्लराम के शरीर मे किया। इक्कीस वर्ष तक उसमे रहकर चम्पानगरी के बाहर अग-मन्दिर चैत्य मे मल्लराम का शरीर त्याग कर मण्डिक के देह मे तीसरा शरीरान्तर प्रवेश किया, वहाँ बीस वर्ष तक रहा, फिर वाराणसी नगरी के बाहर काम महावन चैत्य मे मडिक के शरीर का त्याग कर रोहक के शरीर मे चतुर्थ शरीरान्तर प्रवेश किया। वहाँ पर उनीस वर्ष रहा। पाँचवा शरीरान्तर प्रवेश आलभिका नगरी के बाहर प्राप्तकाल चैत्य मे रोह के देह का परित्याग कर भारद्वाज के शरीर मे किया। इसमे अठारह वर्ष रहा। छठा शरीरान्तर प्रवेश वैशाली नगरी के बाहर कुडियायन चैत्य मे भारद्वाज का शरीर परित्याग कर गौतमपुत्र अर्जुन के शरीर मे किया। उसमे सतरह वर्ष रहा। सातवा शरीरान्तर-प्रवेश इसी श्रावस्ती नगरी मे

---

३५ महाकल्प का कालमान समझाने के लिए जैन दृष्टि से पल्य और सागर की भाति ही आजीवक मत मे सर और महाकल्प का प्रमाण बताया है। एक लाख सत्तर हजार छ सौ उनपचास (१,७०६४९) गगाओ का एक सर मान कर सौ-सौ वर्ष मे एक एक वालुका निकालते हुए जितने समय मे सत्र खाली हो, वह एक सर है। वैसे तीन लाख सर खाली हो तब एक महाकल्प होता है

—भगवती १५।१।५५०

हालाहला कुम्भारिन के कुम्भकारापण मे गौतम पुत्र अर्जुन का शरीर परित्याग कर मखलिपुत्र गोशालक के शरीर को समर्थ, स्थिर, ध्रुव, धारण योग्य शीतादि परीषहो को सहन करने योग्य तथा स्थिर सहननयुक्त समझ उसमे किया। इसलिए काश्यप ! मखलिपुत्र गोशालक को अपना शिष्य कहना इस दृष्टि से ठीक है।

गोशालक का यह प्रलाप सुनकर महावीर ने कहा—जैसे कोई चोर ग्रामवासियो से पराभूत होकर भागता हुआ किसी खड्डे, गुफा, दुर्ग, खाई या विषम स्थान के न मिलने पर ऊन, शण, कपास, या तृण के अग्रभाग से अपने आपको छुपाने का प्रयास करता है पर वह उससे छुप नही सकता तथापि वह अपने को छुपा हुआ मानता है, इसी प्रकार तुम भी अपने को प्रच्छन्न करने का प्रयत्न कर रहे हो। और अन्य न होते हुए भी अपने को अन्य बता रहे हो। इस प्रकार करना तुम्हारे लिये योग्य नही है।

भगवान की बात को सुनकर गोशालक अत्यन्त क्रुद्ध हुआ। अनुचित शब्दो के साथ प्रलाप करने लगा। वह उच्च स्वर मे चिल्लाते हुए तिरस्कार पूर्ण शब्दो मे बोला—काश्यप ! तू आज ही नष्ट, विनष्ट और भ्रष्ट होगा। तेरा जीवन नही रहेगा।

तेजोलेश्या का प्रयोग

गोशालक की तिरस्कार पूर्ण बात सुनकर के भी भगवान् वीतरागी थे इसलिए उन्हे किञ्चित् भी रोष पैदा होने का प्रश्न नही था। अन्य मुनि भी भगवान् के आदेश को शिरोधार्य कर चुप रहे। भगवान् के शिष्य सर्वानुभूति अनगार, जो पूर्वदेशीय थे। वे स्वभाव से भद्र, प्रकृति से विनीत व सरल थे। अपने धर्माचार्य के प्रति अत्यन्त अनुराग होने से, गोशालक की धमकी की विना चिन्ता किये वे अपने स्थान से उठे और उसके पास जाकर कहने लगे–गोशालक ! किसी श्रमण ब्राह्मण पास से यदि कोई एक भी आर्य वचन सुन लेता है तो भी वह उन्हे वन्दन-नमस्कार करता है। मगल व कल्याणरूप समझकर पर्युपासना करता है। आपका तो कहना ही क्या ? भगवान् ने आपको शिक्षा व दीक्षा दी है तथापि आप अपने धर्माचार्य के साथ इस प्रकार बात कर रहे हो, यह आपके लिए योग्य नही है।" यह सुनते ही गोशालक का चेहरा तमतमा उठा। उसने सर्वानुभूति अनगार को तेजोलेश्या के एक ही प्रहार से जलाकर भस्म कर दिया और पुन उसी प्रकार अपलाप करने लगा।

अयोध्या निवासी सुनक्षत्र अनगार से भी न रहा गया। वे भी सर्वानुभूति अनगार की तरह उठे, और गोशालक को समझाने का प्रयत्न करने लगे। रुष्ट होकर गोशालक ने सुनक्षत्र मुनि पर भी उसी प्रकार तेजोलेश्या का प्रहार किया। इस बार लेश्या का तेज मन्द हो गया था। वेदना की भयंकरता देखकर सुनक्षत्र मुनि उसी समय भगवान् के पास आये, वन्दन कर आलोचना की और पुन महाव्रतों का आरोपण किया, फिर श्रमण-श्रमणियो से क्षमा-याचना कर समाधिपूर्वक शरीरोत्सर्ग किया।

भगवान् ने भी गोशालक को समझाने का प्रयास किया। गोशालक का क्रोधित होना स्वाभाविक था। वह सात-आठ कदम पीछे हटा और भगवान् महावीर को भस्म करने लिए तेजोलेश्या का प्रहार किया, पर महावीर के अमित तेज के कारण गोशालक द्वारा प्रक्षिप्त तेजोलेश्या उन पर असर न कर सकी। वह भगवान् की प्रदक्षिणा करके एक बार ऊपर उछली और गोशालक के शरीर को जलाती हुई, उसी के शरीर मे प्रविष्ट हो गई।

गोशालक अपनी ही तेजोलेश्या से पीडित होकर भगवान् महावीर से बोला– 'काश्यप! मेरी इस तपोजन्य तेजोलेश्या से पराभूत व पीडित होकर तू छ मास की अवधि मे ही छद्मस्थ अवस्था मे ही मृत्यु प्राप्त करेगा।'

भगवान् ने कहा—गोशालक! मैं तो अभी सोलह वर्ष तक तीर्थंकर पर्याय से विचरण करूंगा पर तुम अपनी तेजोलेश्या से प्रभावित एवं पीडित होकर सात रात्रि के अन्दर ही छद्मस्थ भाव से काल प्राप्त करोगे।

तेजोलेश्या के पुन पुन प्रयोग से गोशालक निस्तेज हो गया, उसका तपस्तेज उसी के लिए घातक सिद्ध हुआ। भगवान महावीर ने निर्ग्रन्थो को बुलाया और कहा—जैसे तृण, काष्ठ पत्र आदि का ढेर अग्नि से जल जाने के पश्चात् नष्ट हो जाता है उसी प्रकार गोशालक भी मेरे वध के लिए तेजोलेश्या निकालकर नष्ट-तेज हो गया है। अब तुम उसके सामने सहर्ष उसके मत का खण्डन कर सकते हो, विस्तृत अर्थ पूछ सकते हो, धर्म सम्बन्धी विचार चर्चा कर सकते हो और उसे निरुत्तर कर सकते हो।

निर्ग्रन्थो ने उससे विविध प्रकार के प्रश्न किये और उसको निरुत्तर कर दिया। गोशालक को बहुत ही क्रोध आया किन्तु निर्ग्रन्थो को कुछ भी कष्ट नही दे सका। अनेक आजीवक स्थविर असन्तुष्ट होकर उसके संघ से अलग हो गये, और भगवान महावीर के संघ मे मिले और साधना मे तल्लीन हो गये।

कुछ ही क्षणो मे श्रावस्ती मे यह बात फैल गई। नगर के त्रिक मार्गों, चतुष्पथो और राजमार्गो मे सर्वत्र एक ही चर्चा होने लगी कि श्रावस्ती के बाहर कोष्ठक चैत्य मे दो जिन परस्पर आक्षेप-प्रक्षेप कर रहे है। एक कहता है तुम पहले काल प्राप्त करोगे तो दूसरा कहता है तुम्हारी मृत्यु पहले होगी इसमे कौन सच्चा और कौन झूठा है? विज्ञ ओर लब्धप्रतिष्ठित व्यक्ति कहते—श्रमण भगवान महावीर सत्यवादी है और मखलिपुत्र गोशालक मिथ्या वादी है।

गोशालक की अन्तिम अवस्था

मखलिपुत्र गोशालक अपने अभिलषित मे असफल होकर कोष्ठक चैत्य से बाहर निकला। उसके शरीर मे भयकर वेदना हो रही थी, जिससे वह विक्षिप्त-सा बना हुआ, चारो दिशाओ को देखता हुआ, दीर्घ नि श्वास छोडता हुआ, अपनी दाढी के बालो को नोचता हुआ, गर्दन को खुजलाता हुआ, दोनो हाथो को कभी फैलाता हुआ और कभी सिकोडता हुआ, पावो को जमीन पर पछाडता हुआ, हाय! मरा! हाय! मरा! चिल्लाता हुआ हालाहला कुम्हारिन के कुम्भकारापण मे पहुँचा। वहा अपने दाह की शान्ति हेतु, कच्चा आम चूसता, मद्यपान करता पुन पुन गीत गाता, नृत्य करता, पुन पुन हालाहला कुम्हारिन को हाथ जोडता, मिट्टी के बर्तन मे रखे हुए ठडे पानी से अपने शरीर का सिंचन करता।

श्रमण भगवान महावीर ने अपने निर्ग्रन्थो को बुलाकर कहा--आर्यो! मखलिपुत्र गोशालक ने जिस तेजोलेश्या का मेरे वध के लिए प्रहार किया था, वह १ अग, २ बग ३ मगध, ४ मलय, ५ मालव, ६ अच्छ, ७ वत्स, ८ कौत्स, ९ पाठ, १० लाट, ११ वज्र, १२ मौलि, १३ काशी, १४ कौशल, १५ अबाध, १६, सभुत्तर, इन सोलह महाजनपदो को जलाने व नष्ट करने मे समर्थ थी। अब वह कुम्भकारापण मे कच्चा आम चूसता हुआ, यावत् ठण्डे पानी से शरीर का सिचन कर रहा है। अपने दोपो को छुपाने के लिए उसने आठ चरम बतलाये है जैसे—१ चरम-पान, २ चरम-गान, ३ चरम नाट्य ४ चरम अजलिकर्म, ५ चरम पुष्कल सवर्त मेघ ६ चरम-सेचनक गधहस्ती ७ चरम-महा शिलाकटक सग्राम और ८ चरम तीर्थकर, अवसर्पिणी काल के अन्तिम तीर्थकर के रूप मे उसका सिद्ध होना।

शीतल पानी से शरीर सिंचित करने के दोष को छिपाने हेतु वह चार पानक-पेय और चार अपानक-अपेय पानी प्ररूपित कर रहा है। वे चार

पानक ये है—१ गाय के पृष्ठ भाग से गिरा हुआ २ हाथ से उलोचा हुआ ३ सूर्य ताप से तपा हुआ, ४ और शिलाओ से गिरा हुआ। चार अपानक ये है—ये पीने के लिए ग्राह्य तो नही है, परन्तु दाह आदि उपशमन के लिए व्यवहार योग्य है। जैसे—१ स्थाल पानी पानी से आर्द्र हुए ठडे छोटे बडे बर्तन। इन्हे हाथ से स्पर्श करे, किन्तु पानी न पीए। २ त्वचा पानी—आम, गुठली, और बैर आदि कच्चे फल मु ह मे चबाना परन्तु उसका रस नही पीना ३ फलो का पानी-उडद, मू ग, मटर, आदि की कच्ची फलिया मु ह मे लेकर चबाना, परन्तु उसका रस नही पीना ४ शुद्ध पानी। कोई व्यक्ति छह महीने तक शुद्ध मेवा मिष्टान्न खाए। उन छ महीनो मे दो महीने भूमि शयन, दो महीने पट्ट शयन, दो महीने तक दर्भ शयन करे तो छठे मास की अन्तिम रात मे महाऋद्धिसम्पन्न मणिभद्र और पूर्णभद्र नामक देव प्रकट होते है। वे अपने शीतल और आर्द्र हाथो से स्पर्श करते है, यदि व्यक्ति उस शीतल स्पर्श का अनुमोदन करता है तो आशीविष प्रकट होता है और अनु-मोदन नही करता है तो उसके शरीर से अग्नि उत्पन्न होती है और उत्पन्न ज्वालाओ से उसका शरीर भस्म हो जाता है। उसके पश्चात् वह व्यक्ति सिद्ध, बुद्ध, एव विमुक्त हो जाता है।

श्रावस्ती मे ही अयपुल आजीवकोपासक रहता था। रात्रि मे चिन्तन करते हुए उसके मन मे विचार उठा कि हल्ला वनस्पति का आकार कैसा होता है? वह अपने धर्माचार्य गोशालक से समाधान करने के लिए हालाहला कुम्भकारापण मे आया, पर गोशालक को हसते, गाते, नाचते और मद्यपान करते हुए देखकर वह लज्जित हुआ, और पुन लौटने लगा। अन्य आजीवक स्थविरो ने उसे लौटता हुआ देख लिया, उन्होने अपने पास बुलाकर आठ चरम वस्तुओ का परिचय देते हुए कहा—तुम जाकर अपने प्रश्न का समाधान करो।

स्थविरो के सकेत से गोशालक ने गुठली एक ओर रख दी, और कहा—तुम हल्ला की आकृति जानने के लिए मध्यरात्रि मे मेरे पास आये हो, पर मेरी यह स्थिति देखकर लज्जित होकर लौटना चाहते थे, पर यह तुम्हारी भूल है मेरे हाथ मे कच्चा आम नही, पर आम की छाल है, निर्वाण समय इसका पीना आवश्यक है। निर्वाण के समय नृत्य, गीत आदि भी आवश्यक है अत तू भी वीणा बजा। अयपुल, हल्ला का सस्थान बास के मूल के जैसा होता है। अपने प्रश्न का समाधान पाकर लौट गया।

गोशालक का पाश्चात्ताप

गोशालक ने अपना अन्तिम समय सन्निकट जानकर अपने स्थविरो को बुलाकर कहा—जब मेरी मृत्यु हो जाय तो मेरे शरीर को सुगन्धित पानी से नहलाना, सुगन्धित गेरुक वस्त्र से पोछना, गोशीर्ष चदन का लेप करना, बहुमूल्य श्वेत वस्त्र पहनाना, और सभी अलकारो से विभूषित करना। एक हजार व्यक्ति उठा सके, इस प्रकार विराट शिविका मे बैठाकर श्रावस्ती मे इस प्रकार उद्घोषणा करना कि चौबीसवे चरम तीर्थंकर मखलिपुत्र गोशालक जिन हुए, सिद्ध हुए, विमुक्त हुए और सभी दु खो से रहित हुए हैं। इस प्रकार महोत्सव करके मेरी अन्तिम क्रिया करना।

सातवी रात्रि व्यतीत होने पर गोशालक का मिथ्यात्व नष्ट हुआ। उसकी दृष्टि निर्मल और शुद्ध हुई। उसको अपने कृत्य पर पश्चाताप होने लगा। वह विचारने लगा—मैं जिन नही था, पर अपने को जिन घोषित किया। मैंने श्रमणो की घात की है और धर्माचार्य से द्वेष किया है। वस्तुत श्रमण भगवान् महावीर ही सच्चे जिन है, मैंने जीवन मे भयकर भूल की है।

इस प्रकार विचार कर उसने अपने स्थविरो को बुलाकर कहा—"स्थविरो! मैं जिन नही था तथापि मैं अपने आपको जिन घोषित करता रहा हू, मैं श्रमणघाती और आचार्य प्रद्वेषी हूँ। श्रमण भगवान् महावीर ही सच्चे जिन है! इसलिये मेरी मृत्यु के बाद मेरे बॉए पॉव मे रस्सी बाँध कर मेरे मुँह मे तीन बार थूकना तथा श्रावस्ती के राजमार्गों मे 'गोशालक' जिन नही, परन्तु महावीर ही जिन है। इस प्रकार उद्घोषणा करते हुए, मेरे शरीर को खीचकर ले जाना। अपनी अन्तिम भावना की पूर्ति के लिए उसने स्थविरो को शपथ दिलवाई, और उसी रात्रि को उसकी मृत्यु हो गई।

गोशालक के भक्त व स्थविरो ने सोचा—यदि हम अपने धर्माचार्य के अन्तिम आदेश के अनुसार यदि उन्हे पैर बाधकर श्रावस्ती मे से घसीटते हुए निकालेगे, तो हमारी इज्जत धूल मे मिल जायेगी और यदि हम इस प्रकार नही करते है तो गुरु आज्ञा भग होती है। ऐसी स्थिति मे हमे क्या करना चाहिए। चिन्तन के पश्चात् यही निष्कर्ष निकला कि कुम्भकारापण के द्वार बद कर दिये जाये और उन्होने वही आँगन मे श्रावस्ती का चित्र बनाया। और गोशालक के कथनानुसार सभी कार्य किये। स्थविरो ने अपनी

प्रतिज्ञा पूर्ण की और गोशालक के पहले के आदेशानुसार उसकी पूजा की और फिर नगर मे धूम-धाम से शव-यात्रा निकाली और उसका अन्तिम सस्कार सम्पन्न किया।

सर्वानुभूति और सुनक्षत्र अनगार की सुगति

गणधर गौतम ने भगवान् महावीर से प्रश्न किया—भगवन्! सर्वानुभूति अनगार, जिन्हे गोशालक ने भस्म किया था, वहा से काल-धर्म को प्राप्त कर कहाँ गए है? महावीर ने उत्तर दिया—गौतम! सर्वानुभूति अनगार सहस्रार कल्प मे अठारह सागरोपम की स्थिति मे देव-रूप मे उत्पन्न हुआ है। वहा से च्युत होने पर महाविदेह क्षेत्र मे जन्म लेकर सिद्ध-बुद्ध और मुक्त होगा। इसी तरह सुनक्षत्र अनगार भी अच्युतकल्प मे बाईस सागरोपम की स्थिति वाला देव हुआ है वहा से च्युत होने पर महाविदेह क्षेत्र मे उत्पन्न होकर सिद्ध बुद्ध और मुक्त होगा।[३६]

गोशालक कहा गया?

गौतम ने फिर जिज्ञासा प्रस्तुत की—भगवन्! आपका कुशिष्य गोशालक मृत्यु प्राप्त कर कहाँ उत्पन्न हुआ है?

महावीर ने कहा—वह अच्युतकल्प मे बाईस सागरोपम की स्थिति वाला देव हुआ है। वहा से च्युत होकर अनेक भवो मे परिभ्रमण करने के पश्चात् उसे सम्यक्त्व की उपलब्धि होगी। दृढप्रतिज्ञ मुनि के भव मे वह केवली बनेगा और सभी दु खो का अन्त करेगा।[३७]

भगवान् का विहार व अस्वस्थता

गोशालक के देहान्त के पश्चात् भगवान् महावीर श्रावस्ती के कोष्ठक चैत्य से विहार कर अनेक क्षेत्रो को पावन करते हुए मेढिय गॉव के बाहर सालकोष्ठक चैत्य मे पधारे।

भगवान् का आगमन श्रवण कर श्रद्धालुजन प्रवचन के लिए उपस्थित हुए। उपदेश श्रवण कर सभा विसर्जित हुई।

मखलिपुत्र गोशालक ने श्रावस्ती के उद्यान मे भगवान महावीर पर तेजोलेश्या प्रक्षिप्त की थी, उससे यद्यपि उस समय तात्कालिक क्षति नही

---

३६ भगवती शतक १५

३७ भगवती शतक १५

हुई थी तथापि उन प्रचण्ड ज्वालाओ ने महावीर के शरीर पर अपना किञ्चित् प्रभाव छोड दिया जिससे उन्हे रक्तातिसार और पित्तज्वर हो गया था, उस व्याधि से उनका शरीर अत्यधिक शिथिल और कृश हो गया था। भगवान् की इस प्रकार शारीरिक स्थिति को देखकर नागरिको मे यह चर्चा चलने लगी कि भगवान् का शरीर क्षीण हो रहा है, कही गोशालक की भविष्यवाणी सत्य सिद्ध न हो जाये ?

सिह अनगार का क्रन्दन

सालकोष्ठक चैत्य के सन्निकट मालुकाकच्छ मे ध्यान करते हुए भगवान् के शिष्य सिह अनगार ने उक्त लोक-चर्चा सुनी। छठ-छठ तप और भीष्म ग्रीष्म की चिलचिलाती हुई धूप मे आतापना लेने वाले महातपस्वी सिह अनगार का ध्यान भग हो गया। वे विचारने लगे- भगवान् को लगभग छह महीने पूर्ण होने जा रहे हे। पित्तज्वर और रक्तातिसार की व्याधि से वे सत्रस्त है, वे अत्यधिक कृश हो गये है, क्या गोशालक का कथन सत्य होने वाला है, यदि इस प्रकार हो गया तो अन्यतीर्थिक कहेगे कि भगवान् छद्मस्थ अवस्था मे ही काल कर गये, ऐसा सोचते-सोचते उनका दिल दहल उठा। उन्होने तपोभूमि से प्रस्थान किया और कच्छ के मध्य भाग मे आते-आते उनकी आखो से अश्रुओ की धाराए छूट पडी वे वही खडे-खडे फूट फूट कर रोने लगे।

भगवान् ने उसी समय अपने निर्ग्रन्थो को बुलाकर कहा- आर्यो ! मेरा अतेवासी सिहअनगार जो प्रकृति से भद्र और सरल है, मेरी रुग्णता की चिन्ता से वह मालुकाकच्छ मे तेज स्वर मे रुदन कर रहा है अत शीघ्र जाकर उसे यहा बुला लाओ।

भगवान् का आदेश पाते ही निर्ग्रन्थ सिह अनगार को भगवान के पास बुलाकर लाये। सिह अनगार ने भगवान् को आकर नमस्कार किया। सिह अनगार को सम्बोधित कर भगवान् ने कहा–सिह ! ध्यानान्तरिका मे तेरे मानस मे मेरे अनिष्ट की कल्पना हुई, जिससे तू रो पडा ?

सिह—भगवन् ! आप बहुत समय से अस्वस्थ है, इसलिए गौशालक की बात को स्मरण कर मेरा मन चिन्ता के सागर मे गोते लगाने लगा।

महावीर—वत्स ! तुम कुछ भी चिन्ता न करो, मैं अभी साढे पन्द्रह वर्ष तक आनन्द पूर्वक इस भूमण्डल पर विचरण करूँगा।

औषध ग्रहण

सिह—भगवन ! हमारी भी यही हार्दिक कामना है। आपका शरीर

प्रतिदिन क्षीण होता जा रहा है, क्या प्रस्तुत बीमारी को मिटाने का कोई उपाय नही है ?

महावीर—आर्य ! तुम्हारी यह इच्छा है तो मेढिय गाव मे रेवती गाथापत्नी के यहा जाओ, उसके घर पर कुम्हडे और बीजोरे से बनी हुई दो औषधिया है। इसमे प्रथम औषधि जो मेरे लिए बनाई हुई है, उसकी मुझे आवश्यकता नही है, और जो दूसरे के लिए बनाई हुई है, वह मेरे रोग निवारण के लिए उपयुक्त है, उसे जाकर ले आओ।

भगवान् की आज्ञा प्राप्त कर सिंह अनगार अत्यन्त आह्लादित हुए। वे रेवती के यहा पहुचे। मुनि को दूर से आते देखकर रेवती मुनि के सात-आठ कदम सामने गई और सविनय पूछा—पूज्यवर ! किस वस्तु की आवश्यकता है ?

सिंह तुम्हारे यहा पर दो औषधिया बनाई हुई है, एक भगवान महावीर के लिए और दूसरी अन्य उद्देश्य से। बीजोरे से जो औषधि तैयार की है उसकी मुझे आवश्यकता है, उसके लिए मैं आया हूँ।

रेवती को आश्चर्य हुआ कि इन्हे औषधि-निर्माण के गुप्त रहस्य का क्या पता है। किस महान ज्ञानी ने यह बात प्रकट की है ?

सिंह—श्रमण भगवान महावीर ने मुझे बताया है और उन्ही के आदेश से मैं आया है। रेवती ने भावविभोर होकर वह सभी बिजोरापाक बहरा दिया। उसके सेवन से भगवान रोगमुक्त हो गए। उनका चेहरा पूर्ववत् चमकने लगा, भगवान् को पूर्ण स्वस्थ देखकर सभी के मन मे अपूर्व प्रसन्नता जग उठी।[३७]

रेवती ने इस प्रकार उत्कृष्ट भावो से जो दान दिया, उससे स्वर्ग का आयुष्य बाधा और तीर्थकर नाम कर्म का अनुबधन किया।[३८]

---

३७ भगवती शतक १५

३८ (क) समवायाग सूत्र सटीक, सम० १५९, पत्र १४३

(ख) ठाणाग सूत्र सटीक, ९।३।६९१, पत्र ४५५-२

(ग) प्रवचनसारोद्धार गा० ४६६ पत्र १११-१२

(घ) विविध तीथकल्प (अपापाबृहत्कल्प) पृ० ४१

(ङ) सप्तति शतस्थान सटीक, गा० ३३७, पत्र ८०

(च) लोकप्रकाश, भा० ४, सर्ग० ३४, श्लो० ३७७-३८५ पत्र, ५५५-५५६

हुई थी तथापि उन प्रचण्ड ज्वालाओ ने महावीर के शरीर पर अपना किञ्चित् प्रभाव छोड दिया जिससे उन्हे रक्तातिसार और पित्तज्वर हो गया था, उस व्याधि से उनका शरीर अत्यधिक शिथिल और कृश हो गया था। भगवान् की इस प्रकार शारीरिक स्थिति को देखकर नागरिको मे यह चर्चा चलने लगी कि भगवान् का शरीर क्षीण हो रहा है, कही गोशालक को भविष्यवाणी सत्य सिद्ध न हो जाये ?

सिह अनगार का क्रन्दन

सालकोष्ठक चैत्य के सन्निकट मालुकाकच्छ मे ध्यान करते हुए भगवान के शिष्य सिह अनगार ने उक्त लोक-चर्चा सुनी। छठ-छठ तप और भीष्म ग्रीष्म की चिलचिलाती हुई धूप मे आतापना लेने वाले महातपस्वी सिह अनगार का ध्यान भग हो गया। वे विचारने लगे – भगवान् को लगभग छह महीने पूर्ण होने जा रहे ह। पित्तज्वर और रक्तातिसार की व्याधि से वे सत्रस्त है, वे अत्यधिक कृश हो गये है, क्या गोशालक का कथन सत्य होने वाला है, यदि इस प्रकार हो गया तो अन्यतीर्थिक कहेगे कि भगवान् छद्मस्थ अवस्था मे ही काल कर गये, ऐसा सोचते-सोचते उनका दिल दहल उठा। उन्होने तपोभूमि से प्रस्थान किया और कच्छ के मध्य भाग मे आते-आते उनकी आखो से अश्रुओ की धाराए छूट पडी वे वही खडे-खडे फूट फूट कर रोने लगे।

भगवान् ने उसी समय अपने निर्ग्रन्थो को बुलाकर कहा- आर्यो ! मेरा अन्तेवासी सिहअनगार जो प्रकृति से भद्र और सरल है, मेरी रुग्णता की चिन्ता से वह मालुकाकच्छ मे तेज स्वर मे रुदन कर रहा है अत शीघ्र जाकर उसे यहा बुला लाओ।

भगवान् का आदेश पाते ही निर्ग्रन्थ सिह अनगार को भगवान के पास बुलाकर लाये। सिह अनगार ने भगवान् को आकर नमस्कार किया। सिह अनगार को सम्बोधित कर भगवान् ने कहा–सिह ! ध्यानान्तरिका मे तेरे मानस मे मेरे अनिष्ट की कल्पना हुई, जिससे तू रो पडा ?

सिह—भगवन् ! आप बहुत समय से अस्वस्थ है, इसलिए गोशालक की बात को स्मरण कर मेरा मन चिन्ता के सागर मे गोते लगाने लगा।

महावीर—वत्स ! तुम कुछ भी चिन्ता न करो, मैं अभी साढे पन्द्रह वर्ष तक आनन्द पूर्वक इस भूमण्डल पर विचरण करूँगा।

औषध ग्रहण

सिह— भगवन ! हमारी भी यही हार्दिक कामना है। आपका शरीर

विहार कर चम्पा आये। महावीर भी उस समय चम्पा पधारे हुए थे। जमाली महावीर के पास आये और बोले 'आपके अनेक शिष्य छद्मस्थ है, केवलज्ञानी नही है, पर मैं तो पूर्ण ज्ञान-दर्शन से युक्त अर्हत जिन और केवली के रूप मे विचर रहा हूँ। इन्द्रभूति गौतम ने जमाली के कथन का प्रतिवाद करते हुए कहा—केवलज्ञानी का दर्शन पर्वत आदि से कभी आच्छन्न नही होता, यदि आप केवलज्ञानी है तो मेरे प्रश्नो का उत्तर दीजिए—लोक शाश्वत है या अशाश्वत है? जीव शाश्वत है या अशाश्वत है?

जमाली किसी भी प्रकार का प्रत्युत्तर न दे सके, वे मौन हो गए। भगवान् ने कहा—जमालि! मेरे अनेक शिष्य प्रस्तुत प्रश्नो का उत्तर दे सकते है, तथापि वे अपने को जिन या केवली नही कहते है। जमाली को महावीर का कथन पसन्द नही आया, वे उठकर अपने स्थान पर चले गये। अलग-थलग रहकर वर्षों तक असत्य का प्ररूपण करते रहे और मिथ्यात्व का प्रचार करते रहे। अन्त मे अनशन कर अपने पापस्थान की आलोचना और प्रतिक्रमण किये बिना ही काल धर्म को प्राप्त हुए और लान्तक देवलोक मे किल्विषिक रूप मे उत्पन्न हुए।[४०]

प्रियदर्शना पुन प्रतिबुद्ध हुई

जमाली की उपस्थिति मे ही प्रियदर्शना एक बार अपने साध्वी परिवार सहित श्रावस्ती गई और वहाँ पर वह ढक कुभकार की शाला मे रुकी। ढक महावीर का परम उपासक था। प्रियदर्शना को प्रतिबोध देने हेतु उसने उसकी सघाटी मे आग लगा दी। सघाटी जलने लगी। प्रियदर्शना सहज रूप मे बोल पडी—सघाटी जल गई! सघाटी जल गई! ढक ने धीरे से कहा—आर्ये! आप असत्य बोल रही है। सघाटी जली नही, अभी जल रही है। जलते हुए को 'जला' कहना यह तो महावीर का सिद्धान्त है पर आपका तो सिद्धान्त जले हुए को जला कहने का है, तथापि आपने जलती हुई सघाटी को जली कैसे कहा? प्रियदर्शना प्रतिबुद्ध हुई, और वह फिर से महावीर के सघ मे प्रविष्ट हुई।[४१]

---

४० भगवती सटीक शतक, ९, उद्दे० ६, सूत्र ३८६-३८७

४१ (क) पियदसणा वि पइणोऽणुरागओ तमाय चिय पवण्णा।
ढकोवहियागणिदड्ढवत्थ देसा तय भणइ॥

—विशेषावश्यक भाष्य २३२५

(ख) उत्तराध्ययन, नेमिचन्द्र की वृत्ति सहित पत्र ६९-१

जमालि निह्नव हुआ

पहले बताया जा चुका है कि जमालि भगवान की अनुमति लिए बिना ही पृथक् विहार करने लग गया। एक बार स्वतत्र विचरण करते हुए जमालि अनगार अपने शिष्यो सहित श्रावस्ती के कोष्ठक चैत्य मे ठहरे हुए थे।[३९] भोजन-पान की प्रतिकूलता के कारण उनके शरीर मे पित्तज्वर हो गया था। सारा शरीर दाह व वेदना से पीडित हो रहा था, उन्होने एक दिन सहवर्ती श्रमणो से शय्या सस्तारक करने को कहा। साधु उसी समय कार्य मे लग गये। जमाली पीडा के कारण अत्यत आकुल-व्याकुल हो रहे थे। देह की शक्ति इतनी क्षीण हो चुकी थी कि वे खडे और बैठ भी नही सकते थे। एक क्षण का विलम्ब भी उन्हे असह्य था। उन्होने पुन पूछा—मेरे लिए क्या शय्या सस्तारक कर दिया गया है ? श्रमणो ने विनम्र निवेदन किया, अभी तक किया नही है, कर रहे है। यह सुनते ही जमाली विचारने लगे—'भगवान् महावीर तो क्रियमान को कृत, चलमान को चलित कहा करते है, यह तो बिल्कुल ही मिथ्या है। जहाँ तक शय्या सस्तारक बिछ नही जाता वहा तक उसे बिछा हुआ कैसे माना जा सकता है ? उन्होने अपने पास श्रमण निर्ग्रन्थो को बुलाया और अपना मन्तव्य प्रकट किया। कुछ श्रमणो को जमाली का मन्तव्य अच्छा लगा। कितने ही स्थविरो ने उसका विरोध करते हुए कहा—"भगवान महावीर का 'करेमाणे कडे' का यह कथन निश्चयनय की अपेक्षा से सत्य है। निश्चयनय क्रिया काल और निष्ठाकाल को अभिन्न मानता है, इसका मन्तव्य है कोई भी क्रिया अपने समय मे कुछ भी कार्य करके ही निवृत्त होती है। साराश यह है कि यदि क्रिया काल मे कार्य न होगा तो उसकी निवृत्ति के पश्चात् वह किस प्रकार होगा, अत निश्चय नय का सिद्धान्त तर्कसगत है और इसी निश्चयात्मक नय को लक्ष्य मे रखकर भगवान का 'करेमाणे कडे' कथन हुआ है जो तार्किक दृष्टि से बिलकुल उचित है। अन्य भी अनेक युक्तियो से स्थविरो ने जमाली को समझाने का प्रयास किया, किन्तु जमाली समझा नही, अत अनेक स्थविर उसे छोडकर भगवान् महावीर के पास चले गये।

कुछ समय के पश्चात् जमाली अनगार स्वस्थ हुए। वे श्रावस्ती से

---

३९ स्थानाङ्ग मे ७।३ मे तेन्दुक चैत्य लिखा है किन्तु शान्त्याचार्य ने उत्तराध्ययन की टीका मे (पत्र १५३-२) व नेमिचन्द्र की टीका (पत्र ६९-१) मे और विशेपावश्यक भाष्य गाथा २३०७ की टीका मे तेदुक उद्यान और कोष्ठक चैत्य लिखा है।

विहार कर चम्पा आये। महावीर भी उस समय चम्पा पधारे हुए थे। जमाली महावीर के पास आये और बोले 'आपके अनेक शिष्य छद्मस्थ है, केवलज्ञानी नही है, पर मैं तो पूर्ण ज्ञान-दर्शन से युक्त अर्हत जिन और केवली के रूप मे विचर रहा हूँ। इन्द्रभूति गौतम ने जमाली के कथन का प्रतिवाद करते हुए कहा—केवलज्ञानी का दर्शन पर्वत आदि से कभी आच्छन्न नही होता, यदि आप केवलज्ञानी है तो मेरे प्रश्नो का उत्तर दीजिए—लोक शाश्वत है या अशाश्वत है ? जीव शाश्वत है या अशाश्वत है ?

जमाली किसी भी प्रकार का प्रत्युत्तर न दे सके, वे मौन हो गए। भगवान् ने कहा—जमालि ! मेरे अनेक शिष्य प्रस्तुत प्रश्नो का उत्तर दे सकते है, तथापि वे अपने को जिन या केवली नही कहते है। जमाली को महावीर का कथन पसन्द नही आया, वे उठकर अपने स्थान पर चले गये। अलग-थलग रहकर वर्षों तक असत्य का प्ररूपण करते रहे और मिथ्यात्व का प्रचार करते रहे। अन्त मे अनशन कर अपने पापस्थान की आलोचना और प्रतिक्रमण किये बिना ही काल धर्म को प्राप्त हुए और लान्तक देवलोक मे किल्विषिक रूप मे उत्पन्न हुए।[४०]

प्रियदर्शना पुन प्रतिबुद्ध हुई

जमाली की उपस्थिति मे ही प्रियदर्शना एक बार अपने साध्वी परिवार सहित श्रावस्ती गई और वहाँ पर वह ढक कुभकार की शाला मे रुकी। ढक महावीर का परम उपासक था। प्रियदर्शना को प्रतिबोध देने हेतु उसने उसकी सघाटी मे आग लगा दी। सघाटी जलने लगी। प्रियदर्शना सहज रूप से बोल पड़ी—सघाटी जल गई ! सघाटी जल गई ! ढक ने धीरे से कहा—आर्ये ! आप असत्य बोल रही है। सघाटी जली नही, अभी जल रही है। जलते हुए को 'जला' कहना यह तो महावीर का सिद्धान्त है पर आपका तो सिद्धान्त जले हुए को जला कहने का है, तथापि आपने जलती हुई सघाटी को जली कैसे कहा ? प्रियदर्शना प्रतिबुद्ध हुई, और वह फिर से महावीर के सघ मे प्रविष्ट हुई।[४१]

---

४० भगवती सटीक शतक, ९, उद्दे० ६, सूत्र ३८६-३८७

४१ (क) पियदसणा वि पइणोऽणुरागओ तमाय चिय पवण्णा।
ढकोवहियागणिदड्ढवत्थ देसा तय भणइ ॥

—विशेषावश्यक भाष्य २३२९

(ख) उत्तराध्ययन, नेमिचन्द्र की वृत्ति सहित पत्र ६९-१

महाशिलाकंटक युद्ध

भगवान महावीर ने मिथिला का वर्षावास पूर्ण कर अगदेश की ओर विहार किया। उन दिनो विदेह की राजधानी वैशाली मे भयकर युद्ध चल रहा था, बात यह थी कि चम्पानगरी मे आकर कूणिक ने १ कालकुमार २ सुकालकुमार ३ महाकालकुमार, ४ कण्हकुमार, ५- सुकण्हकुमार ६ महाकण्हकुमार, ७ वीरकण्हकुमार, ८ रायकण्हकुमार, ९ सेणकण्हकुमार, १० महासेणकण्हकुमार[१] आदि अपने दस भाइयो को बुलाया। राज्य, सेना, धन प्रभृति को ग्यारह भागो मे विभक्त किया, और सुखपूर्वक राज्य करने लगा। कूणिक के हल्ल और विहल्ल[२] ये दो सगे भाई (चेल्लणा के पुत्र) थे। राजा श्रेणिक ने अपनी जीवितावस्था मे ही सेचनक हस्ती और अठारहसरा देवप्रदत्त हार ये दो वस्तुए उन्हे दी थी।[3] जिनका मूल्य श्रेणिक के पूरे राज्य के बराबर था।[४]

विहल्लकुमार सेचनक हाथी पर आरूढ होकर अपने अन्त पुर के साथ गगा तट पर जल-क्रीडा के लिए जाता था।[५] नगर मे यह चर्चा तेजी से चल रही थी कि राज्यश्री का उपयोग तो विहल्लकुमार कर रहा है कूणिक नही। कूणिक की रानी पद्मावती ने सुना, उसे विचार आया 'यदि सेचनक हाथी तथा देवप्रदत्त हार मेरे पास नही, तो यह विराट् राज्य-वैभव भी मेरे क्या काम का ? रानी ने कूणिक से कहा। अनेक बार आग्रह करने पर कूणिक ने

---

१ निरियावलिका

२ निरियावलिका मे घटना-प्रसग को विहल्ल के साथ जोडा गया है। निरियावलिका वत्ति, भगवती वृत्ति, भरतेश्वर-बाहुवली वृत्ति आदि ग्रन्थो मे प्रस्तुत घटना प्रसग मे हल्ल और विहल्ल दो नाम प्रयुक्त हुए है, अनुत्तरोपातिक सूत्र मे विहल्ल ओर वेहायस को चेल्लणा का पुत्र लिखा है और हल्ल को धारणी का। निरयावलिका वृत्ति, और भगवती वृत्ति मे हल्ल और विहल्ल दोनो को चेल्लणा का पुत्र माना है।

३ हल्लस्स हत्थी दिन्नो सेयणगो, विहल्लस्स देवदिन्नो हारो।

—निरयावलिका वृत्ति पत्र ५—१

४ किरि जावतिय रज्जस्स मोल्ल तावतिय देवदिण्णस्स हारस्स सेतणगस्स।

—आवश्यक चूर्णि उत्तरार्द्ध, पत्र १६७

५ निरियावलिया, गोपाणी सम्पादित, पृ० १९

'हल्ल और विहल्लकुमार को बुलाकर कहा, तुम्हारे पास जो हार हाथी है वह मुझे सौप दो। उन्होने कहा, हमे पिता ने पृथक् रूप से दिये है, पिता की दी हुई वस्तु को हम आपको किस प्रकार दे दें। इस उत्तर से कूणिक के मन मे क्षोभ हुआ पर सोचा कुछ दिनो मे ले लूगा। हल्ल और विहल्लकुमार अवसर देखकर, हार और हाथी व अपने अन्तपुर को लेकर अपने नाना चेटक राजा के पास वैशाली पहुँच गये। जब कूणिक को यह ज्ञात हुआ तो उसने अपना दूत राजा चेटक के पास भेजा और हार, हाथी व हल्ल, विहल्ल को पुन चम्पा भेजने के लिए सूचित किया। चेटक ने दूत से कहला भेजा—हार और हाथी पर अधिकार हल्ल और विहल्ल का है वे मेरी शरण मे आये है, शरणागत की रक्षा करना मेरा कर्तव्य है, अत मैं उन्हे पुन नही लौटा सकता। यदि श्रेणिक राजा का पुत्र, चेल्लणा का आत्मज, मेरा नप्तृक (दोहिता) कूणिक हल्ल, विहल्ल को आधा राज्य दे दे तो मैं हार, हाथी उसे दिलवा दू। उसने फिर से दूत भेजा और कहलाया कि हल्ल और विहल्ल बिना मेरी आज्ञा के हार और हाथी ले गए है, ये दोनो अमूल्य वस्तुए मगध राज्य की हैं। चेटक ने पुन नकारात्मक उत्तर दिया। कूणिक क्रोध से काप उठा, उसकी आखे लाल हो गइ। भृकुटी तन गई। उसने तीसरी बार लिखित पत्र देकर दूत को प्रेषित किया, उसमे लिखा था, हार, हाथी को पुन लौटाइए या युद्ध के लिए तैयार हो जाइए। दूत ने चेटक की राजसभा मे आकर उसके सिंहासन पर लात मारी और भाले की अणी पर रखकर वह पत्र चेटक को दिया। पत्र को पढकर और दूत के अशिष्टता पूर्ण व्यवहार को देखकर राजा चेटक ने कहा—मै युद्ध के लिए तैयार हूँ कूणिक आये, मैं उसकी प्रतीक्षा करूगा। चेटक के आरक्षको ने दूत को गलहत्था देकर सभा से बाहर निकाल दिया।

कूणिक ने दूत से सारा वृत्तान्त सुना, और कालकुमार आदि दसो भाइयों को बुलाकर कहा—'शीघ्र ही अपनी समस्त सेना सजा कर आओ, मैं चेटक राजा से युद्ध करूगा। सभी भाई अपने-अपने राज्य मे गए और अपने तीन हजार हाथी, तीन हजार घोडे, तीन हजार रथ और तीन करोड पदातियो को साथ लेकर आये। इस प्रकार तेतीस हजार हाथी, तेतीस हजार अश्व, तेतीस हजार रथ और तेतीस करोड पदातियो की विराट् सेना लेकर कूणिक वैशाली की ओर बढा।

राजा चेटक ने अपने स्नेही नौ मल्लवी, नौ लिच्छिवी—इन अठारह [का]शी-कौशल के राजाओ को बुलाया, और उनसे विचार-विमर्श करते हुए

पूछा—मेरा दोहिता कूणिक हार, हाथी के लिए युद्ध करने के लिए आ रहा है, हमे उसके साथ युद्ध करना है, या उसके सामने अपने आपको समर्पित करना है ? सभी राजाओ ने उस अनीति का प्रतिकार करने के लिए कहा। और वे सभी अपने-अपने राज्य मे गये और अपने-अपने तीन हजार हाथी, तीन हजार अश्व, तीन हजार रथ, और तीन करोड पदातियो को लेकर आये। राजा चेटक भी इतनी ही सेना लेकर तैयार हुआ। ५७ हजार हाथी, ५७ हजार अश्व, ५७ हजार रथ, ५७ करोड पदातियो को लेकर चेटक सग्राम भूमि मे उपस्थित हुए।

राजा चेटक भगवान् महावीर का परम उपासक था। उसने श्रावक के द्वादश व्रत ग्रहण कर रखे थे। उसने एक विशेप नियम भी ले रखा था—'मैं एक दिन मे एक से अधिक बाण नही चलाऊँगा।' उसका बाण कभी भी निष्फल नही जाता था।[६] प्रथम दिन अजातशत्रु कूणिक की ओर से काल-कुमार सेनापति होकर सामने आया। उसने गरुड व्यूह की रचना की। राजा चेटक ने शकट व्यूह की रचना की। परस्पर भयकर युद्ध हुआ। राजा चेटक ने अमोघ बाण का प्रयोग किया। कालकुमार जमीन पर लुढक पडा। इसी तरह एक एक कर अन्य नौ भाई सेनापति के पद को अलकृत कर आये और राजा चेटक के अमोघ बाण से मारे गये।

काली आदि रानियो की दीक्षा

उस समय भगवान् महावीर चम्पानगरी मे पधारे। परिषद् पहुँची। भगवान् ने प्रवचन किया, राजपरिवार की महिलाए भी भगवान् के उपदेश को सुनने गई थी। राजा श्रेणिक की काली रानी ने भगवान् से पूछा—भगवन्! मेरा पुत्र कालकुमार वैशाली के युद्ध मे गया हुआ है उसका क्या हुआ, भगवान् ने उसकी मृत्यु की सूचना दी। इसी प्रकार - सुकाली, महाकाली, कृष्णा, सुकृष्णा, महाकृष्णा, वीरकृष्णा, रामकृष्णा, पितृसेनकृष्णा, और महासेनकृष्णा आदि रानियो ने भी अपने-अपने पुत्रो के समाचार पूछे। भगवान ने उनकी मृत्यु की घटना बताकर, ससार की असारता का उपदेश दिया। भगवान् के उपदेश को सुनकर दसो रानियो ने उसी समय दीक्षा ली, ग्यारह अगो का अध्ययन किया।[७]

---

६ चेटक राजस्य तु प्रतिपन्न व्रतत्वेन दिनमध्ये एकमेव शर मुञ्चति अमोघ बाणश्च।

—निरियावलिका सटीक, पत्र ६-१

७ अन्तकृतदशाग (एन० वी० वैद्य सम्पादित) पृ० ३८

एक दिन साध्वी काली ने आर्या चन्दना से निवेदन किया—यदि आप आज्ञा प्रदान करे तो मैं रत्नावली तप करू। आर्या चन्दना की अनुमति प्राप्त होने पर उसने रत्नावली तप किया। इस तप मे उसे कुल एक वर्ष, तीन महिना और बावीस अहोरात्र लगे। इस एक परिपाटी मे कुल ३८४ दिन तप के और ८८ दिन पारणा के हुए।

प्रथम लडी पूर्ण होने के पश्चात् उन्होने तीन लडिया और पूरी की और इन परिपाटियो मे उन्हे पाँच वर्ष, छ मास और अट्ठाइस दिन लगे। इन विकट तपस्याओ से उनका शरीर अत्यन्त कृश हो गया, उनकी हड्डिया से कडकड की आवाज आने लगी। अपना शरीर लम्बे समय तक साधना के लिए अनुपयुक्त समझकर मासिक सलेखना कर सिद्ध बनी।[8]

महासती सुकाली ने कनकावली तप किया। उसकी परिपाटी मे एक वर्ष, पाच मास और अठारह दिन लगे, सुकाली ने ९ वर्षों तक सयम-साधना कर मोक्ष प्राप्त किया।[9]

साध्वी महाकाली ने लघुसिहनिष्क्रीडित तप किया। इसके एक क्रम मे पाँच महिने और चार दिन तप के होते हे और तेतीस दिन पारणे के होते हे। इस प्रकार चार परिपाटी उसने दो वष मे पूर्ण की। इसके अतिरिक्त भी उसने अन्य अनेक तपस्याएं की। अन्त मे सथारा कर के, कर्म नष्ट कर मोक्ष गई।[10]

साध्वी कृष्णा ने भी आर्या चन्दना की अनुमति से महासिहनिष्क्रीडित तप किया। इसमे ४७६ दिन तप के थे और ६१ दिन पारणे के थे। इस प्रकार चार परिपाटी उसने ६ वर्ष, २ महिने और १२ दिन मे पूण की। अन्त मे सथारा कर मोक्ष गयी।[11]

साध्वी सुकृष्णा ने सप्तसप्तिका भिक्षु-प्रतिमा तप किया। उसकी समाप्ति पर उसने पुन अष्ट-अष्टमिका भिक्षु-प्रतिमा तप किया। उसे पूर्ण करने के पश्चात् नव नवमिका भिक्षु-प्रतिमा तप किया। सथारा कर मोक्ष गई।

---

८ अन्तकृत्दशाग वर्ग ८ अ० १

९ वही, वर्ग ८, अ० २

१० वही ८।३

११ वही ८।४

पूछा—मेरा दोहिता कूणिक हार, हाथी के लिए युद्ध करने के लिए आ रहा है, हमे उसके साथ युद्ध करना है, या उसके सामने अपने आपको समर्पित करना है ? सभी राजाओ ने उस अनीति का प्रतिकार करने के लिए कहा। और वे सभी अपने-अपने राज्य मे गये और अपने-अपने तीन हजार हाथी, तीन हजार अश्व, तीन हजार रथ, और तीन करोड पदातियो को लेकर आये। राजा चेटक भी इतनी ही सेना लेकर तैयार हुआ। ५७ हजार हाथी, ५७ हजार अश्व, ५७ हजार रथ, ५७ करोड पदातियो को लेकर चेटक सग्राम भूमि मे उपस्थित हुए।

राजा चेटक भगवान् महावीर का परम उपासक था। उसने श्रावक के द्वादश व्रत ग्रहण कर रखे थे। उसने एक विशेप नियम भी ले रखा था—'मैं एक दिन मे एक से अधिक बाण नही चलाऊँगा।' उसका बाण कभी भी निष्फल नही जाता था।[६] प्रथम दिन अजातशत्रु कूणिक की ओर से कालकुमार सेनापति होकर सामने आया। उसने गरुड व्यूह की रचना की। राजा चेटक ने शकट व्यूह को रचना की। परस्पर भयकर युद्ध हुआ। राजा चेटक ने अमोघ बाण का प्रयोग किया। कालकुमार जमीन पर लुढक पडा। इसी तरह एक एक कर अन्य नौ भाई सेनापति के पद को अलकृत कर आये और राजा चेटक के अमोघ बाण से मारे गये।

काली आदि रानियो की दीक्षा

उस समय भगवान् महावीर चम्पानगरी मे पधारे। परिषद् पहुँची। भगवान् ने प्रवचन किया, राजपरिवार की महिलाए भी भगवान् के उपदेश को सुनने गई थी। राजा श्रेणिक की काली रानी ने भगवान् से पूछा—भगवन्! मेरा पुत्र कालकुमार वैशाली के युद्ध मे गया हुआ है उसका क्या हुआ, भगवान् ने उसकी मृत्यु की सूचना दी। इसी प्रकार - सुकाली, महाकाली, कृष्णा, सुकृष्णा, महाकृष्णा, वीरकृष्णा, रामकृष्णा, पितृसेनकृष्णा, और महासेनकृष्णा आदि रानियो ने भी अपने-अपने पुत्रो के समाचार पूछे। भगवान ने उनकी मृत्यु की घटना बताकर, ससार की असारता का उपदेश दिया। भगवान् के उपदेश को सुनकर दसो रानियो ने उसी समय दीक्षा ली, ग्यारह अगो का अध्ययन किया।[७]

---

६ चेटक राजस्य तु प्रतिपन्न व्रतत्वेन दिनमध्ये एकमेव शर मुञ्चति अमोघ बाणश्च।

—निरियावलिका सटीक, पत्र ६-१

७ अन्तकृतदशाग (एन० वी० वैद्य सम्पादित) पृ० ३८

एक दिन साध्वी काली ने आर्या चन्दना से निवेदन किया—यदि आप आज्ञा प्रदान करें तो मैं रत्नावली तप करू। आर्या चन्दना की अनुमति प्राप्त होने पर उसने रत्नावली तप किया। इस तप मे उसे कुल एक वर्ष, तीन महिना और बावीस अहोरात्र लगे। इस एक परिपाटी मे कुल ३८४ दिन तप के और ८८ दिन पारणा के हुए।

प्रथम लडी पूर्ण होने के पश्चात् उन्होंने तीन लडिया और पूरी की और इन परिपाटियो मे उन्हे पाँच वर्ष, छ मास और अट्ठाइस दिन लगे। इन विकट तपस्याओ से उनका शरीर अत्यन्त कृश हो गया, उनकी हड्डिया स कडकड की आवाज आने लगी। अपना शरीर लम्बे समय तक साधना क लिए अनुपयुक्त समझकर मासिक सलेखना कर सिद्ध बनी।[8]

महासती सुकाली ने कनकावली तप किया। उसकी परिपाटी मे एक वर्ष, पाँच मास और अठारह दिन लगे, सुकाली ने ९ वर्षों तक सयम-साधना कर मोक्ष प्राप्त किया।[9]

साध्वी महाकाली ने लघुसिहनिष्क्रीडित तप किया। इसके एक क्रम मे पाँच महिने और चार दिन तप के होते है और तेतीस दिन पारणे के होते हे। इस प्रकार चार परिपाटी उसने दो वर्ष मे पूर्ण की। इसके अतिरिक्त भी उसने अन्य अनेक तपस्याएं की। अन्त मे सथारा कर के, कर्म नष्ट कर मोक्ष गई।[10]

साध्वी कृष्णा ने भी आर्या चन्दना की अनुमति से महासिहनिष्क्रीडित तप किया। इसमे ४७६ दिन तप के थे और ६१ दिन पारणे के थे। इस प्रकार चार परिपाटी उसने ६ वर्ष, २ महिने और १२ दिन मे पूर्ण की। अन्त मे सथारा कर मोक्ष गयी।[11]

साध्वी सुकृष्णा ने सप्तसप्तिका भिक्षु-प्रतिमा तप किया। उसकी समाप्ति पर उसने पुन अष्ट-अष्टमिका भिक्षु प्रतिमा तप किया। उसे पूर्ण करने के पश्चात् नव नवमिका भिक्षु-प्रतिमा तप किया। सथारा कर मोक्ष गई।

---

८ अन्तकृत्दशाग वर्ग ८ अ० १
९ वही, वर्ग ८, अ० २
१० वही ८।३
११ वही ८।४

महाकृष्णा ने लघुसर्वतोभद्र की चार परिपाटी पूर्ण की, इस तप की साधना मे उन्हे एक वर्ष, एक मास, दस दिन लगे। अन्त मे सथारा कर मोक्ष प्राप्त किया।

वीरकृष्णा ने महा सर्वतोभद्र तप किया और अन्त मे मुक्ति को वरण किया।

रामकृष्णा ने भद्रोत्तर नामक तप किया। उसकी चार परिपाटी मे उसे दो वर्ष, दो मास, बीस दिन लगे। कर्मों को क्षय कर वह भी सिद्ध बनी।

पितृसेणा भी कितने ही उपवास कर कर्मों को क्षय कर मोक्ष गई।

महासेनकृष्णा ने आयबिल वर्द्धमान तप किया। इसमे इसको चौदह वर्ष, तीन मास और बीस दिन लगे, सतरह वर्षों तक चारित्र पालन कर मोक्ष गई।[१२]

कुछ समय तक भगवान् चम्पा मे विराजे। अन्य अनेको को प्रतिबोध दिया। फिर वहाँ से मिथिला की ओर विहार किया और अपना वर्षावास मिथिला मे किया।

इन्द्र की सहायता

इधर राजा कूणिक ने युद्ध मे पराजय होती देखकर, तीन दिन का उपवास किया और शक्रेन्द्र और चमरेन्द्र की आराधना की। वे प्रकट हुए। उनके कारण से पहले दिन महाशिलाकटक सग्राम की योजना हुई। शक्रेन्द्र द्वारा निर्मित अभेद्य वज्रप्रतिरूप कवच को कूणिक ने धारण किया।[१३] युद्ध मे आया। राजा चेटक का अमोघ बाण उसे न मार सका। परस्पर घमासान युद्ध हुआ। कूणिक की सेना के द्वारा राजा चेटक पर ककड, तृण, पत्र आदि कुछ भी डाला जाता, वह महाशिला की तरह प्रहार करता।[१४] इस प्रथम

---

१२ अन्तकृद्दशाग ८।५ से क्रमश वर्ग ६, ७, ८, ९, १०
तप के सम्बन्ध मे विस्तृत वर्णन व तप चित्र परिशिष्ट मे देखे।

१३ निरयावलिका सटीक पत्र ६

१४ गोयमा! महासिलाकटए ण सगामे वट्टमाणे जे तत्थ आसे वा हत्थी वा जोहे वा सरही वा तणेण वा पत्तेण वा कट्ठेण वा सक्कराया वा अभिहम्मति सव्वे से जाणइ महासिलाए अह म० २, तेणट्ठेण गोयमा महासिलाकटए।
—भगवती सूत्र सटीक, सूत्र २९९ पत्र ५७८

दिन के युद्ध मे ही ८४ लाख मानव मारे गये। द्वितीय दिन रथ-मूसल सग्राम की विकुर्वणा हुई। देवनिर्मित रथ पर चमरेन्द्र स्वय आसीन हुआ, वह मूसल से चारो ओर प्रहार करने लगा।[१५] दूसरे एक दिन मे ९६ लाख मानवो का सहार हुआ। यो दो दिन के सग्राम मे १ करोड ८० लाख मनुष्यो का विनाश हुआ। चेटक और नौ मल्लवी, नौ लिच्छवी इन अठारह काशी कौशल के गणराजाओ की हार हुई और कूणिक ने विजय वैजयन्ती फहरा दी।[१६]

राजा चेटक पराजित होकर वैशाली मे चला गया। प्राकार के द्वार बद कर दिये। कूणिक ने बहुत ही प्रयास किया पर वह उसे तोड नही सका। उसने वैशाली के बाहर घेरा डाल दिया। एक दिन आकाश-वाणी सुनाई दी 'श्रमण कूलवालक'[१७] जब मागधिका वेश्या मे अनुरक्त होगा, तब राजा अशोक चन्द्र-कूणिक वैशाली नगरी का अधिग्रहण करेगा।[१८] कूणिक ने कूलवालक की अन्वेषणा की। मागधिका वेश्या को बुलाया। मागधिका ने कपट से श्राविका का वेश बनाया, कूलवालक को अपने मे अनुरक्त किया। कूलवालक नैमित्तिक के वेष को धारण कर किसी प्रकार से वैशाली मे पहुँचा। उसे ज्ञात था कि मुनिसुव्रत स्वामी के स्तूप के प्रभाव से ही यह नगरी बची हुई है। नागरिको ने शत्रु सकट का उपाय पूछा, तब उसने बताया यह स्तूप टूटेगा, तभी शत्रु यहा से हटेगा। लोगो ने स्तूप को तोडना प्रारभ किया। पूर्व सकेता

---

१५ गोयमा! रहमुसले ण सगामे वट्टमाणे एगे रहे अणासए असारहिए अणारोहए समुसले महया महया जणक्खय जणवह जणप्पमद्द जणसवट्टकप्प रुहिरकद्दम करेमाणे सव्वओ समता परिधाविन्था से तेणट्ठेण जाव रहमुसले सगामे।

—भगवती सूत्र सटीक, श० ७, उद्दे० ९, सू० ३००, प० ५८४

१६ भगवती सूत्र शतक ७, उद्दे० ९, सू० ३०१

१७ 'कूलवालक' तपस्वी नदी के कूल (तट) के समीप आतापना करता था। उसके तप के प्रभाव से नदी का प्रवाह कुछ मुड गया, उससे लोग उसे कूलवालक कह कर पुकारने लगे।

—उत्तराध्ययन, लक्ष्मीवल्लभ वृत्ति, (गुजराती अनुवाद सहित, प्रथम खण्ड, पत्र ८ अहमदाबाद १९३५)

१८ समणे जह कूलवालए, मागहिअ गणिअ रमिस्सए।
राया अ असोगचदए, वेसालि नगरी गहिस्सए।

—वही, पत्र १०

महाकृष्णा ने लघुसर्वतोभद्र की चार परिपाटी पूर्ण की, इस तप की साधना मे उन्हे एक वर्ष, एक मास, दस दिन लगे। अन्त मे सथारा कर मोक्ष प्राप्त किया।

वीरकृष्णा ने महा सर्वतोभद्र तप किया और अन्त मे मुक्ति को वरण किया।

रामकृष्णा ने भद्रोत्तर नामक तप किया। उसकी चार परिपाटी मे उसे दो वर्ष, दो मास, बीस दिन लगे। कर्मों को क्षय कर वह भी सिद्ध बनी।

पितृसेणा भी कितने ही उपवास कर कर्मों को क्षय कर मोक्ष गई।

महासेनकृष्णा ने आयबिल वर्द्धमान तप किया। इसमे इसको चौदह वर्ष, तीन मास और बीस दिन लगे, सतरह वर्षों तक चारित्र पालन कर मोक्ष गई।[12]

कुछ समय तक भगवान् चम्पा मे विराजे। अन्य अनेको को प्रतिबोध दिया। फिर वहाँ से मिथिला की ओर विहार किया और अपना वर्षावास मिथिला मे किया।

इन्द्र की सहायता

इधर राजा कूणिक ने युद्ध मे पराजय होती देखकर, तीन दिन का उपवास किया और शक्रेन्द्र और चमरेन्द्र की आराधना की। वे प्रकट हुए। उनके कारण से पहले दिन महाशिलाकटक सग्राम की योजना हुई। शक्रेन्द्र द्वारा निर्मित अभेद्य वज्रप्रतिरूप कवच को कूणिक ने धारण किया।[13] युद्ध मे आया। राजा चेटक का अमोघ बाण उसे न मार सका। परस्पर घमासान युद्ध हुआ। कूणिक की सेना के द्वारा राजा चेटक पर ककड, तृण, पत्र आदि कुछ भी डाला जाता, वह महाशिला की तरह प्रहार करता।[14] इस प्रथम

---

१२ अन्तकृद्दशाग ८।५ से क्रमश वर्ग ६, ७, ८, ६, १०
तप के सम्बन्ध मे विस्तृत वणन व तप चित्र परिशिष्ट मे देखे।

१३ निरयावलिका सटीक पत्र ६

१४ गोयमा ! महासिलाकटए ण सगामे वट्टमाणे जे तत्थ आसे वा हत्थी वा जोहे वा सरही वा तणेण वा पत्तेण वा कट्ठेण वा सक्कराया वा अभिहम्मति सव्वे से जाणइ महासिलाए अह म० २, तेणट्ठेण गोयमा महासिलाकटए।
—भगवती सूत्र सटीक, सूत्र २९९ पत्र ५७८

नुसार एक बार कूणिक की सेना पीछे हटी, जब पूर्ण स्तूप टूट गया, तब कूणिक ने कूलवालक के कथनानुसार एकाएक आक्रमण कर वैशाली के प्राकार को नष्ट कर दिया।[१९]

हार, हाथी को लेकर हल्ल और विहल्ल शत्रु से बचने के लिए वैशाली से भगे। प्राकार की खाई मे प्रच्छन्न रूप से आग थी। हाथी सेचनक को विभग ज्ञान हुआ था, जिससे वह जान चुका था। वह आगे नही बढ रहा था, जब उसे बलात् आगे बढने के लिए विवश किया गया तो उसने अपनी सूड से हल्ल, विहल्ल को नीचे उतार दिया और स्वय ने उस अग्नि मे प्रवेश कर दिया। शुभ अध्यवसाय से आयु पूर्ण कर वह प्रथम देवलोक मे उत्पन्न हुआ। देव-प्रदत्त हार को देवताओ ने उठा लिया। शासनदेवो ने हल्ल, विहल्ल को भगवान् महावीर के पास मिथिला मे पहुँचा दिया। भगवान् का उपदेश सुन कर वे दीक्षित हो गए।[२०]

श्रमण केशीकुमार और गौतम

मिथिला से ग्रामानुग्राम विहार करते हुए भगवान महावीर हस्तिनापुर की ओर पधारे। गणधर गौतम अपने शिष्य समुदाय के साथ भगवान से पहले श्रावस्ती मे पधारे। कोष्ठक उद्यान मे ठहरे।[१] उसी नगरी के बाहर एक ओर तिन्दुक उद्यान था, वहाँ पर पार्श्वसतानीय निर्ग्रन्थ केशीकुमार श्रमण अपने शिष्यो सहित ठहरे हुए थे। श्रमण केशीकुमार कुमारावस्था मे ही दीक्षित हो चुके थे। वे ज्ञान और चारित्र मे पारगामी थे। मति, श्रुत अवधि तीन ज्ञानो के धारक थे।

दोनो के शिष्य समुदाय के अन्तर्मानस मे एक दूसरे का भिन्नाचार देखकर कुछ शकाए उठी। हमारा धर्म कैसा है? और इनका धर्म कैसा है? आचार धर्म-प्रणधि हमारी कैसी है, इनकी कैसी है? पुरुषादानी पार्श्व ने चातुर्याम का उपदेश किया है और महामुनि वर्धमान ने पञ्च शिक्षा रूप धर्म

१९ उत्तराध्ययन सूत्र, लक्ष्मीवल्लभ कृत वृत्ति, पत्र ११

२० भरतेश्वर बाहुबली वृत्ति, पत्र १००, १०१

१ उत्तराध्ययन २३।६-७-८

का प्रतिपादन किया है। एक लक्ष्य वालो मे यह भेद कैसे? एक ने सचेलक धर्म का उपदेश किया, दूसरे ने अचेलक धर्म का।

अपने शिष्यो की आशकाओ से उत्प्रेरित होकर दोनो ही ने मिलने का निश्चय किया। गौतम अपने शिष्यवर्ग सहित तिन्दुक उद्यान मे आये, जहा पर केशी श्रमण ठहरे हुए थे।[४] गौतम को आते हुए देखकर श्रमण केशीकुमार ने उनका भक्ति बहुमान पूर्वक स्वागत किया। अपने द्वारा याचित पलाल, कुश, तृण आदि के आसन गौतम के सम्मुख प्रस्तुत किये[३] उस समय अनेक पाखण्डी और कुतूहलप्रेमी व्यक्ति भी वहा पर एकत्रित हो गये। केशीकुमार श्रमण एव गणधर गौतम का वह ऐतिहासिक सवाद उत्तराध्ययन सूत्र के तेबीसवे अध्ययन मे 'केसी गोयमोय' नाम से सकलित है। उसका महत्वपूर्ण अश इस प्रकार है।

गौतम से अनुमति प्राप्त कर केशीकुमार ने कहा —महाभाग! महामुनि वर्धमान ने पाच शिक्षा रूप धर्म का उपदेश किया है, जबकि महामुनि पार्श्व ने चातुर्याम धर्म का प्रतिपादन किया है। मेधाविन्! एक ही कर्म मे प्रवृत्त होने वाले साधको के धम मे विशेप भेद होने का क्या कारण है? इस प्रकार धर्म मे अन्तर हो जाने पर क्या आपको सशय नही होता?

गौतम – जिस धर्म मे जीवादि तत्त्वो का विनिश्चय किया जाता है, उसके तत्त्व को प्रज्ञा ही देख सकती है। काल स्वभाव से प्रथम तीर्थंकर के श्रमणऋजु जड, और अन्तिम तीर्थंकर के मुनि वक्रजड है किन्तु मध्यवर्ती तीर्थंकरो के मुनि ऋजुप्राज्ञ है यही कारण है कि धर्म के दो भेद है। प्रथम तीर्थंकर के मुनियो का कल्प दुर्विशोध्य और अन्तिम तीर्थंकर के मुनियो का कल्प दुरनुपालक होता है। परन्तु मध्यवर्ती तीर्थंकरो के मुनियो का कल्प सुविशोध्य तथा सुपाल्यरूप होता है।

केशीकुमार—गौतम! आपने मेरी जिज्ञासा का समाधान कर दिया, अब द्वितीय प्रश्न का उत्तर भी प्रदान करे। वर्धमान स्वामी ने अचेलक[४] धर्म

---

२ वही २३।१५

३ उत्तराध्ययन २३।१६-१७

४ अचेलकश्च उक्तन्यायेनाविद्यमानचेलक कुत्सितचेलको वा यो धर्मो वर्धमानेन देशित इत्यपेक्ष्यते तथा जो इमो त्ति पूववद् यश्चाय सान्तराणि-वर्धमान स्वामिसत्कयति वस्त्रापेक्षया कस्यचित्कदाचिन्मानवर्ण विशेषतो विशेपितानि उत्तराणि

का उपदेश दिया है और महामुनि पार्श्व ने सचेलक धर्म का प्रतिपादन किया है। एक ही कार्य मे प्रवृत्त होने वालो मे यह अन्तर क्यो ? इसमे विशेष हेतु क्या है ? हे यशस्विन ! इस प्रकार वेश मे अन्तर हो जाने पर क्या आपके अन्तर्मानस मे विप्रत्यय उत्पन्न नही होता ?

गौतम—लोक मे प्रत्यय के लिए, वर्षादि ऋतुओ मे सयम की रक्षा के लिए, सयम यात्रा के निर्वाह के लिए, ज्ञानादि ग्रहण करने के लिए, अथवा 'यह श्रमण है' इस पहचान के लिए वेश (लिग) का प्रयोजन है। भगवन् ! वस्तुत दोनो ही तीर्थंकरो की प्रतिज्ञा तो यही है कि निश्चय मे मोक्ष के सद्‌भूत साधन तो ज्ञान, दर्शन और चारित्र ही है।

केशीकुमार—महाभाग ! आप अनेक सहस्र शत्रुओ के बीच खडे है। वह शत्रु आपको जीतने के लिए आपके अभिमुख आ रहे ह आपने उन शत्रुओ को किस प्रकार जीता है ?

गौतम—जब मैंने एक शत्रु को जीत लिया तो पाच शत्रु जीते गये। पाच शत्रुओ के जीते जाने पर दस, और इसी तरह मैंने सहस्रो शत्रु ओ को जीत लिया।

केशीकुमार वे शत्रु कौन है ?

गौतम—महामुने ! बहिर्भूत आत्मा, चार कषाय व पाच इन्द्रिया शत्रु है, उन्हे जीतकर मैं निर्भय होकर विचरता हूँ।

केशीकुमार—मुने ! लोक मे अनेक जीव पाशबद्ध देखे जाते है किन्तु आप पाशमुक्त और लघुभूत होकर कैसे विचरते है ?

गौतम—मुने ! मैं उन पाशो को सभी तरह से छेदन कर तथा सोपाय विनष्ट कर मुक्तपाश और लघुभूत होकर विचरता हूँ।

केशीकुमार—भन्ते ! वे पाश कौन से है ?

गौतम—भगवन् ! राग, द्वेष और तीव्र स्नेहरूप पाश है, जो बडे भयकर है। इनका सम्यक् छेदन कर मैं यथाक्रम विचरण करता हूँ।

केशीकुमार—गौतम ! अन्त करण की गहराई से उद्‌भूत लता जिसका फल-परिणाम अत्यन्त विष-सन्निभ है, उसे आपने किस प्रकार उखाडा ?

च महाधनमूल्य तया प्रधानानि प्रक्रमाद्वस्त्राणि यस्मिन्नसौ सान्तरोत्तरो धम पार्श्वेन देशित इतीहापेक्ष्यते।

—उत्त[illegible] प ५००

गौतम—मैंने उस लता को सर्वतोभावेन छेदन कर दिया है तथा उसे खण्ड-खण्ड कर समूल उखाड कर फेंक दिया है, एतदर्थ मे विपसन्निभ फलो के भक्षण से सर्वथा मुक्त हो गया हूँ।

केशीकुमार—महाभाग ! वह लता कौन-सी है ?

गौतम—महामुने ! ससार मे तृष्णा रूपी लता बहुत भयकर है और दारुण फल देने वाली है। उसका विधिपूर्वक उच्छेद कर मैं विचरता हूँ।

केशीकुमार—मेधाविन् ! भीतर मे घोर और प्रचड अग्नि प्रज्वलित हो रही है। वह शरीर एव गुणो को भस्मसात् करने वाली है। आपने उसे कैसे शान्त किया, कैसे बुझाया ?

गौतम - तपस्विन् ! महामेघ से प्रसूत उत्तम और पवित्र जल को ग्रहण कर मैं उस अग्नि को सीचता रहा हूँ, अत सिंचित की गई अग्नि मुझे नही जलाती।

केशीकुमार—महाभाग ! वह अग्नि और जल कौनसा कहा गया है ?

गौतम—महामुने ! कषाय अग्नि है, श्रुत, शील और तप जल है। श्रुत जलधारा से अभिहत वह अग्नि मुझे नही जलाती।

केशीकुमार—मुनिपुगव ! यह साहसिक भीम, दुष्ट, अश्व चारो ओर भाग रहा है। उस पर चढे हुए भी आप उसके द्वारा उन्मार्ग कैसे नही ले जाये गए ?

गौतम—तपस्विन् ! भागते हुए अश्व को मैं श्रुत रूप रस्सी से बाँधे रखता हूँ, एतदर्थ वह उन्मार्ग मे गमन नही करता है, अपितु सन्मार्ग मे ही प्रवृत्त रहता है।

केशीकुमार—आप अश्व किसे कहते हे ?

गौतम—विज्ञवर ! मन ही दु साहसिक व भीम अश्व है। वही चारो ओर भागता है। मैं कन्थक अश्व की तरह धर्मशिक्षा रूप लगाम के द्वारा उसका निग्रह करता हूँ।

केशीकुमार—व्रतिवर ! ससार मे ऐसे बहुत से कुमार्ग है जिन पर चलने से जीव सन्मार्ग से च्युत हो जाता है, किन्तु आप सन्मार्ग पर चलने पर भी विचलित नही होते।

गौतम—मुनिपुङ्गव ! सन्मार्ग मे गमन करने वालो व उन्मार्ग मे

प्रस्थान करने वालो को मैं अच्छी तरह जानता हूँ, अत मैं सन्मार्ग से हटता नही।

केशीकुमार—मुनिवर! वह सन्मार्ग और उन्मार्ग कौनसा है?

गौतम—महर्षे! कु-प्रवचन को मानने वाले सभी पाखण्डी उन्मार्ग मे प्रस्थित है। सन्मार्ग तो जिन-भाषित है और निश्चय रूप से वही उत्तम मार्ग है।

केशीकुमार—यतिराज! महान् पानी के प्रवाह मे बहते हुए प्राणियो के लिए शरण और प्रतिष्ठा रूप द्वीप आप किसे कहते है?

गौतम—महाप्राज्ञ! एक महाद्वीप है, अत्यन्त विस्तृत है। पानी के प्रबल प्रवाह की भी वहाँ गति नही है।

केशीकुमार—वह महाद्वीप कौन-सा है?

गौतम—ऋषिवर! जरा-मरण के वेग मे डूबते हुए प्राणियो के लिए धर्म-द्वीप प्रतिष्ठा रूप है और उसमे जाना उत्तम शरण रूप है।

केशीकुमार—महाप्रवाह वाले समुद्र मे एक नौका विपरीत रूप से चारो ओर भाग रही है। आप उसमे आरूढ हो रहे है, फिर बताइए आप पार कैसे जा सकेंगे?

गौतम—छिद्रयुक्त नौका पारगामी नही होती किन्तु अच्छिद्र नौका ही पार पहुँचाने मे समर्थ होती है।

केशीकुमार—वह नौका कौन-सी है?

गौतम—ऋषिवर! शरीर नौका है, आत्मा नाविक है। ससार समुद्र है, जिसे महर्षिजन सहजतया ही तैरते है।

केशीकुमार—बहुत सारे प्राणी घोर अधकार मे है। इन प्राणियो के लिए लोक मे उद्योत कौन करता है?

गौतम—उदित हुआ सूर्य लोक मे सब प्राणियो के लिए उद्योत करता है।

केशीकुमार—वह सूर्य कौन सा है?

गौतम—जिनका ससार नष्ट हो चुका है, ऐसे सर्वज्ञ जिन-भास्कर का उदय हो चुका है, वे ही सारे विश्व मे उद्योत करते है।

केशीकुमार—शारीरिक और मानसिक दु खो से पीडित प्राणियो के लिए क्षेम और शिवरूप तथा बाधारहित आप कौनसा स्थान मानते है?

गौतम—लोक के अग्रभाग मे एक ध्रुव स्थान है, जहाँ जरा, मरण और व्याधि नही है, जहाँ पर आरोहण करना नितान्त दुष्कर है।

केशी - वह कौनसा स्थान है ?

गौतम—महर्षियो ने जिस स्थान को प्राप्त किया है, वह निर्वाण, सिद्धि, लोकाग्र, क्षेम, शिव, और अव्याबाध इन नामो से प्रसिद्ध है। वह स्थान शाश्वत वास का है, लोक के अग्रभाग मे स्थित है और दुरारोह है। उसे प्राप्त कर भव-परम्परा का अन्त करने वाले मुनिजन चिन्ता मुक्त हो जाते है।

चर्चा का उपसहार करते हुए केशीकुमार श्रमण ने कहा—हे महा मुने! आपकी प्रज्ञा श्रेष्ठ है। आपने मेरे सशयो को नष्ट कर दिया है। हे सशयातीत! हे सर्वसूत्र-महोदधि! मैं तुम्हे नमस्कार करता हूँ।

गणधर गौतम को नमस्कार करने के पश्चात् कुमारकेशी श्रमण ने अपने शिष्य समुदाय सहित पच महाव्रत रूप धर्म को भाव से ग्रहण किया और भगवान महावीर के भिक्षु सघ मे प्रविष्ट हुए।[५]

केशी और गौतम के प्रस्तुत सम्मेलन से अनेक महत्त्वपूर्ण तत्त्वो का स्पष्ट निर्णय हुआ। श्रमण केशीकुमार के सम्बन्ध मे विशेष जानकारी हेतु मेरा लिखा हुआ 'भगवान् पार्श्व एक समीक्षात्मक अध्ययन' देखें।

भगवान् महावीर श्रावस्ती पधारे। कुछ समय तक वहाँ पर ठहर कर फिर पाञ्चाल की ओर प्रस्थान किया और अहिच्छत्रा पधारे। जन-जन के मन मे धार्मिक ज्योति जागृत कर कुरु जनपद की ओर विहार कर हस्तिनापुर पधारे और नगर के बाहर सहस्राम्रवन मे विराजे।

तत्त्वचर्चाएँ

शिव राजर्षि

हस्तिनापुर का राजा शिव[१] परम सन्तोषी और धर्मनिष्ठ राजा था।[२] एक दिन अर्ध रात्रि मे उसकी नीद खुल गई। चिन्तन करने लगा—

---

५ उत्तराध्ययन २३।८७

१ शिव हस्तिनागपुर राजा। —स्थानाग सूत्र, सटीक उत्तरा, पत्र ४३१

२ भगवती सूत्र सटीक, श० ११, उद्दे० ९, पत्र ९४४-९५८

'मेरे पास विपुल वैभव है। पुत्र, पशु, राज्य, राष्ट्र, सेना, वाहन, कोष प्रभृति सभी बातो का आनन्द है। पूर्वकृत कर्मों का फल मुझे प्राप्त हुआ है, अब मुझे भविष्य के लिए भी कुछ करना चाहिए। कल प्रात काल ही लोहमय कडाह, कडुच्छुय और ताम्रीय भाजन बनवाऊँगा और कुमार शिवभद्र को राज्याभिषिक्त कर, लोही, लोहकडाह, कडुच्छुय और ताम्र-भाजन को लेकर गगातटवासी दिशाप्रोक्षक वानप्रस्थ तापसो के सन्निकट जाकर तापसी प्रव्रज्या स्वीकार कर और यह प्रतिज्ञा ग्रहण करूँगा कि 'आज से जीवन पर्यन्त मैं दिशा-चक्रवाल तप करूँगा।'

प्रात होने पर शिव ने अपने अनुचरो को बुलाकर सभी तैयारिया करवाई और युवराज शिवभद्र का राज्याभिषेक किया। अपने सभी स्वजनो को भोजनार्थ आमन्त्रित किया, उनका योग्य सत्कार कर, अनुमति लेकर, लोही, लोहकडाह, कडुच्छुय, ताम्रभाजनादि ग्रहण दिशा प्रोक्षक तापस हो गए।[3] और अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार छट्ठ-छट्ठ से दिशा चक्रवाल तप करने लगे।

प्रथम छट्ठ तप पूर्ण होने पर वल्कल धारण किये हुए शिवराजर्षि तपोभूमि से अपनी कुटिया मे आये और किढिण—साकायिका (तापसो के प्रयोग मे आने वाला बॉस का पात्र और कावड) को लेकर पूर्व दिशा का प्रोक्षण करते हुए बोले 'सोम दिशा के सोम महाराज, धर्म साधन मे प्रवृत्त शिव राजर्षि का रक्षण करो, और पूर्व दिशा मे स्थित कद, मूल, छाल, पत्र, पुष्प, फल और हरित वनस्पतियो को लेने की अनुमति दें। इस प्रकार कहकर शिव राजर्षि पूर्व दिशा की ओर चले, और किठिन साकायिका को लेकर पूर्व दिशा मे गये, कद-मूल-फल, पुष्प आदि भर कर, तथा दर्भ, कुश, समिध, पत्रामोट, आदि लेकर अपनी कुटिया मे आये, उसे एक ओर रखकर वेदिका को साफ की। फिर दर्भगर्भित कलश लिये, गगा मे गये। स्नान-मज्जन किया, और पितरो को जलादि अर्पण कर कलश भर कर कुटिया को लौटे। दर्भ कुश और बालुका की वेदी बनायी। अरणि को शर से रगड कर अग्नि उत्पन्न की, और समधि काष्ठो से उसे जलाया। अग्नि कुण्ड की दाहिनी

---

३ दिसापोक्खिणो 'त्ति उदकेन दिश प्रोक्ष्य ये फलपुष्पादि समुच्चिन्वति।

—भगवती सूत्र, सटीक पत्र ५५४

ओर १ सकह्[४], २ वक्कल, ३ ठाण, ४ सिज्जा[५], ५ कमडलु ६ दड ७ आत्मा (स्वय भी दाहिनी ओर बैठा) उसके पश्चात् मधु, घी, और चावल से आहुति दी और चरुबलि तैयार की। चरु से वैश्व-देव की पूजा की फिर अतिथि का सत्कार कर स्वय ने भोजन किया।

इस प्रकार दूसरे छट्ठ के पारणे मे दक्षिण दिशा और उसके लोकपाल यम की अनुमति लेकर पूर्ववत् सभी कार्य किया।

तीसरे पारणे मे पश्चिम दिशा के लोकपाल वरुण महाराज की अनुमति ग्रहण कर पूर्ववत् सभी कार्य सपन्न किये।

चौथे पारणे मे उत्तर दिशा के लोकपाल वैश्रमण महाराज की अनुमति लेकर पूर्ववत् सभी कार्य किये।

इस प्रकार दीर्घकाल तक दिक्चक्रवाल तप करने से, आतापना लेने से शिवराजर्षि को विभग ज्ञान हुआ, और सात समुद्रो तक स्थूल व सूक्ष्म रूपी पदार्थों को जानने व देखने लगे।

विभगज्ञान उत्पन्न होने के पश्चात शिवराजर्षि तपोभूमि से अपनी कुटिया मे गये और बल्कल पहन, लोही, लोहकडुच्छुय, दण्ड, कमण्डल, ताम्र भाजन और किठिन साकायिका लिये हस्तिनापुर के तापसाश्रम मे गये, और भाजनादि सामग्री वहा रखकर हस्तिनापुर मे गये और लोगो को अपने ज्ञान से जाने हुए सात द्वीप-समुद्रो की बात कही और कहा कि इससे अधिक द्वीप और समुद्र नही है।

उस समय भगवान् महावीर हस्तिनापुर पधारे। इन्द्रभूति गौतम भिक्षा के लिए नगर मे गये, वहाँ पर उन्होने शिवराजर्षि के मन्तव्य पर जनता मे चर्चा सुनी। गौतम ने पुन लौटकर भगवान् से पूछा—भगवन्! सात ही द्वीप समुद्र है, यह शिवराजर्षि का कथन क्या सत्य है?

भगवान् ने कहा - सात द्वीप-समुद्र सम्बन्धी शिवराजर्षि का कथन मिथ्या है, मेरा स्पष्ट मन्तव्य है कि जम्बूद्वीप आदि असख्य द्वीप है और

---

४ तत्समय प्रसिद्ध उपकरण विशेष।

—भगवती सटीक पत्र० ९५६

५ ज्योति स्थानम्। शय्योपकरण।

—वही ५६९

लवणसमुद्र आदि असख्य समुद्र हे । इन सभी का आकार एक समान है किंतु विस्तार भिन्न भिन्न रूप से है ।

समवसरण मे बैठे हुए नागरिको ने यह बात सुनी और नगर मे यह चर्चा फैल गई कि शिवराजर्षि का सात द्वीप-समुद्र सम्बन्धी कथन मिथ्या है । भगवान् महावीर ने असख्य द्वीप-समुद्र कहे ह ।

शिवराजर्षि ने जब महावीर का कथन सुना, वे मन ही-मन सोचने लगे—यह क्या बात हे ? महावीर असख्य द्वीप समुद्र कहते है और मैं सिर्फ सात ही देख रहा हूं, क्या मेरा ज्ञान अपूर्ण है, वे इस प्रकार विचार कर रहे थे कि उनका विभगज्ञान विनष्ट हो गया । उन्हे अनुभव हुआ कि भगवान् महावीर तीर्थंकर हे, वे सर्वज्ञ-सर्वदर्शी हे, अत मुझे सही निर्णय करने के लिए उनके पास जाना चाहिए ।

शिवराजर्षि तापसाश्रम मे जाकर लोही, लोहकडाह तथा किठिन-साकायिका को लेकर भगवान् महावीर के पास सहस्राम्रवन मे पहुँचे, भगवान् को वन्दन कर योग्य स्थान पर बैठ गये ।

भगवान् महावीर ने शिवराजर्षि को और उस विराट् परिषद् को धर्म-उपदेश दिया । शिवराजर्षि ने भगवान् को वन्दन कर निवेदन किया—भगवन् ! मैं निर्ग्रन्थ प्रवचन पर पूर्ण श्रद्धा करता हूँ, मुझे निर्ग्रन्थ मार्ग की दीक्षा प्रदान करे ।

भगवान ने राजर्षि को प्रव्रज्या प्रदान की, स्थविरो से एकादशाग का अध्ययन किया, उत्कृष्ट तप की साधना की । सभी कर्मो को नष्ट कर मुक्त हुए ।[६]

पोट्टिल की दीक्षा

हस्तिनापुर के पोट्टिल ने भी बत्तीस पत्नियो का त्याग कर दीक्षा ग्रहण की । उत्कृष्ट सयम की साधना कर अनुत्तर विमान मे देव हुए । अन्य अनेक व्यक्तियो ने भी दीक्षाए ली ।[७]

मोका-नगरी मे गणधरो के प्रश्न

भगवान हस्तिनापुर से विहार कर अनुक्रम से मोका-नगरी पधारे

---

६ भगवती शतक ११, उद्दे० ६, सूत्र ४१८

७ अणुत्तरोववाइय, (मोदी सम्पादित) पृ० ७०-८३

और वहा पर नन्दन चैत्य मे विराजे। गणधर अग्निभूति ने भगवान से पूछा—हे भगवन ! असुरराज चमर के पास कितनी ऋद्धि, कान्ति, वल कीर्ति, सुख, प्रभाव, तथा विकुर्वणा शक्ति है ?

भगवान् ने कहा—उसके पास ३४ लाख भवनवासी, ६४ हजार सामानिक देव, ३३ त्रायस्त्रिशक देव, ४ लोकपाल, ५ पटरानी, ७ सेना तथा दो लाख छप्पन हजार आत्मरक्षको और अन्य नगरवासी देवो की ऋद्धि है। वह उन पर शासन करता हुआ, तथा भोग भोगता हुआ रहता है। उसे वैक्रिय शरीर बनाने की विशेष अभिरुचि है।

वह सम्पूर्ण जम्बूद्वीप तो क्या तिर्यक्लोक के असख्य द्वीप व समुद्र असुरकुमार देव और देवियो से भर जाये, उतने रूप विकुर्वित कर सकता है।

गणधर वायुभूति ने असुरराज वलि के सम्बन्ध मे जिज्ञासा प्रस्तुत की।

भगवान् ने कहा—बलि को भवनवासी तीस लाख, सामानिक साठ हजार और शेष चमर के समान है।

अग्निभूति ने नागराज के सम्बन्ध मे पूछा, भगवान् ने कहा—उसके चम्मालीस लाख भवनवासी, छह हजार सामानिक, तेतीस त्रायस्त्रिशक, चार लोकपाल, छह पटरानी, चौबीस हजार आत्मरक्षक है, शेष पूर्ववत् है।

इसी तरह स्तनितकुमार, व्यन्तर देव, और ज्योतिष्को के सम्बन्ध मे प्रश्न पूछे गये। भगवान् ने कहा—व्यन्तरो तथा ज्योतिष्को के त्रायस्त्रिशक तथा लोकपाल नही होते। उन्हे चार हजार सामानिक तथा सोलह हजार आत्मरक्षक होते है, और चार पटरानिया होती है।[८]

भगवान वहा से वाणिज्यगाव पधारे और वही पर उन्होने वर्षावास किया।

सामायिक मे भाड-अभाड

वर्षावास पूर्ण होने पर भगवान् ने विदेह भूमि से मगध की ओर प्रस्थान किया और राजगृह के गुणशीलचैत्य मे पधारे। राजगृह जहा निर्ग्रन्थ सम्प्रदाय का केन्द्र था, वहाँ अन्य सम्प्रदायो का भी। बौद्ध, आजीवक और

---

८ भगवती सूत्र ३।१।२७०-२८३

अन्यान्य सम्प्रदायो के मानने वाले श्रमणो और उपासको की वहाँ विराट् सख्या थी। वे परस्पर एक दूसरे के मत का खण्डन व परिहास किया करते थे।

आजीवको ने निग्रन्थ स्थविरो से श्रमणसाधना-पद्धति का उपहास करते हुए कुछ प्रश्न पूछे थे। उनके द्वारा पूछे गये प्रश्नो को इन्द्रभूति गौतम ने भगवान् के सम्मुख प्रस्तुत करते हुए कहा—भगवन्! आजीवक लोग पूछते है कि श्रमणोपासक जब सामायिक मे रहा हुआ हो उस समय कोई पात्र आदि की चोरी हो जाय तो वह गृहस्थ सामायिक से निवृत्त होने पर उसकी अन्वेपणा करता है या नही, यदि करता है तो वह अपने पात्र की अन्वेषणा करता है या अन्य के पात्र की ?

महावीर—गौतम! वह अपने पात्र की अन्वेषणा करता है, पराये की नही।

गौतम – भगवन्! क्या शीलव्रत, गुणव्रत, आदि प्रत्याख्यान और पौषधोपवास मे श्रावक के भाण्ड (पात्र) अभाण्ड (स्वामित्वमुक्त) नही हो जाते ?

महावीर—हाँ, सामायिक, पौषधादि व्रत मे स्थित श्रमणोपासक का भाण्ड 'अभाण्ड' हो जाता है।

गौतम—भगवन्! व्रत अवस्था मे उसका भाण्ड, अभाण्ड हो गया। उस समय उस भाण्ड की चोरी हो गई। व्रत पूर्ण होने पर वह उसकी अन्वेषणा करता है तो वह अपने भाण्ड की अन्वेषणा करता है ? यह किस प्रकार कह सकते है ? जब उसका भाण्ड ही नही रहा तो उसके तलाश करने का उसे क्या अधिकार है ?

महावीर—व्रत अवस्था मे श्रावक के मन मे यह भावना होती है कि प्रस्तुत सुवर्ण, चाँदी, कास्य, मणिरत्नादि पदार्थ मेरे नही है। उस समय उसका उन पदार्थों से सम्बन्ध नही रहता है, अर्थात् ममत्व भाव नही रहता है, वह उनका उपयोग नही करता है किन्तु उन पदार्थो पर से उसका ममत्व भाव नही छूटता, ममत्व भाव नही छूटने से वह पदार्थ पराया नही होता, उसी का रहता है।[१०]

गौतम—सामायिक व्रत मे अवस्थित श्रमणोपासक की पत्नी से कोई

---

१० भगवती ८।५

आर्य पुरुष व्यभिचार सेवन करे तो क्या कहा जायेगा ? श्रमणोपासक की पत्नी से सगम किया या अपत्नी से सगम किया ?

महावीर—पत्नी से सगम किया कहा जायेगा, अपत्नी से नही।

गौतम—भगवन् ! शीलव्रत, गुणव्रत और पौषधोपवास से पत्नी, अपत्नी हो सकती है ?

महावीर–व्रत अवस्था मे श्रमणोपासक की यह भावना होती है कि माता, पिता, भाई, बहन, पत्नी, पुत्र, पुत्रवधू कोई भी मेरे नही हे। यह भावना होने पर भी, उनके प्रेम बन्धनो का विच्छेद नही होता, इसलिए पत्नी-सगम ही कहा जायेगा, अपत्नी-सगम नही।

आगे चलकर भगवान ने श्रावक के उन पचास भगो का परिचय देते हुए आजीवक और श्रमणोपासको का भेद बताया।

आजीवक अरिहत को देव मानते है। माता-पिता की शुश्रूषा करने वाले होते है। वे गूलर, बड, बोर, शहतूत, और पीपल इन पाँच फलो और प्याज, लहसुन आदि कद के त्यागी होते है। वे ऐसे बैलो से काम लेते हे जिन्हे बधिया नही किया जाता और न जिनका नाक ही बेधा जाता है। जब आजीवक उपासक भी इस तरह निर्दोष जीविका चलाते हे तो श्रमणोपासक का कहना ही क्या ? श्रमणोपासक पन्द्रह कर्मादानो के त्यागी होते हे। श्रावक के लिए पन्द्रह कर्मादान त्याज्य होते है।[११]

इस वर्ष अनेक श्रमणो ने राजगृह के विपुलाचल पर,अनशन कर निर्वाण प्राप्त किया। भगवान का यह वर्षावास राजगृह मे सम्पन्न हुआ।

शाल महाशाल की दीक्षा

राजगृह का वर्षावास पूर्ण कर भगवान् ने पृष्ठचम्पा की ओर विहार किया। भगवान के पावन प्रवचन को सुनकर पृष्ठचम्पा के राजा शाल और उसके लघुभ्राता के मन मे ससार से विरक्ति हुई। शाल ने भगवान् से नम्र निवेदन किया—भगवन् ! मैं अपने लघुभ्राता महाशाल को राज्य अर्पित कर आपके चरणो मे सयम स्वीकार करना चाहता हूँ।

भगवान् ने कहा—शुभ कार्य मे विलम्ब न करो।

---

११ भगवती ८।५

शाल ने अपने लघुभ्राता को राज्य ग्रहण करने के लिए कहा, पर महाशाल ने अस्वीकार करते हुए कहा—जैसा उपदेश आपने सुना है, वैसा ही मैंने भी सुना है, मुझे भी ससार से विरक्ति हुई है। मैं भी महावीर के पास सयम लेना चाहता हूँ।

महाशाल के अतिरिक्त अन्य राज्य का उत्तराधिकारी न होने से अपने भानजे गागली को बुलाकर उसे राज्य पर आसीन किया। तथा शाल और महाशाल ने भगवान् के चरणो मे दीक्षा ग्रहण की। स्थविरो के पास ग्यारह अगो का अध्ययन किया।[१२] उसके पश्चात् दोनो को केवलज्ञान हुआ।

राजा दशार्णभद्र की दीक्षा

भगवान महावीर चम्पा से दशार्णपुर पधारे। दशार्णपुर का राजा दशार्णभद्र था। उसके पाँचसौ रानियाँ थी और बहुत बडी सेना थी। भोजन से निवृत्त होकर राजा आमोद-प्रमोद मे तल्लीन था। सहसा उद्यानपाल ने आकर निवेदन किया—देव! उद्यान मे तीर्थंकर भगवान महावीर पधारे है। राजा ने यह सवाद सुना, बहुत प्रेमन्न हुआ। उसी क्षण सिहासन से नीचे उतरकर नतमस्तक हो नमस्कार किया। प्रीतिदान देकर उसे विसर्जित किया। राजा दशार्णभद्र के मन मे यह अध्यवसाय हुआ कि कल प्रात काल मैं भगवान को ऐसी अपूर्व समृद्धि के साथ वन्दना करूँ, जैसी वन्दना आज दिन तक किसीने न की। सेनाधिकारी को बुला कर उसने निर्देश दिया-कल प्रात काल के लिए सेना को अभूतपूर्व सुसज्जित करो, कौटुम्बिक पुरुष को निर्देश दिया—नगर की अच्छी तरह सफाई कराओ, चन्दन मिश्रित सुगन्धित जल से छिटकाव कराओ, सभी जगह पुष्प की वर्षा करो, वन्दनवार और रजतकलशो की श्रेणियो से मार्ग को सुसज्जित करो और सम्पूर्ण शहर को ध्वजाओ से छा दो। एक अन्य कौटुम्बिक पुरुष को निर्देश दिया—'तुम उद्घोषणा करो कि कल प्रात सभी सामन्त, मन्त्रीगण और नागरिक सुसज्जित होकर आये। सभी को सामूहिक रूप से भगवान् को नमस्कार करने के लिए जाना है।

राजा दशाणभद्र प्रात उठा। स्नान आदि से निवृत्त होकर बढिया बहुमूल्य वस्त्र और आभूषण धारण किये और प्रधान हाथी पर आसीन हुए, मस्तक पर छत्र और चारो ओर चामर डुलाए जा रहे थे। राजा के पीछे

---

१२ उत्तराध्ययन सटीक अ० १०

हजारो सामन्त, प्रमुख नागरिक, सुसज्जित हाथियो, घोडो और रथो पर आरूढ होकर चल रहे थे। पाँचसौ रानिया भी रथो पर बैठकर आगे बढ रही थी। हजारो पताकाए फहरा रही थी। वाद्यो के सुमधुर घोष से आकाशमडल मुखरित हो रहा था। मागलिक ध्वनियाँ गूँज रही थी। गायको की सुमधुर-स्वर लहरियाँ झनझना रही थी।

अद्भुत समृद्धि को देखकर दशार्णभद्र राजा के मन मे यह विचार उठा कि इस प्रकार की वन्दना तो सर्वप्रथम मैंने ही की है।

शक्रेन्द्र ने राजा दशार्णभद्र के गर्वयुक्त अभिप्राय को जाना। दशार्णभद्र की अनुपम भक्ति तो अच्छी है पर इसे गर्व नही करना चाहिए। राजा को प्रतिबोध देने के लिए शक्रेन्द्र ने ऐरावण नामक देव को आज्ञा दी और चौसठ हजार हाथियो की विकुर्वणा करवाई। प्रत्येक हाथी के बारह मुख, प्रत्येक मुख मे आठ-आठ दाँत, प्रत्येक दाँत पर आठ-आठ वापिकाए, प्रत्येक वापिका मे आठ-आठ कमल और प्रत्येक कमल पर एक-एक लाख पखुडियाँ थी। प्रत्येक पखुडी मे बत्तीस प्रकार के नाटक हो रहे थे। कमल की मध्यकर्णिका पर चतुर्मुखी प्रासाद थे। सभी प्रासादो मे इन्द्र अपनी आठ-आठ अग्रमहिषियो के साथ नाटक देख रहा था। इस प्रकार विराट् समृद्धि के साथ इन्द्र भगवान् को वन्दन करने के लिए आकाश से उतरा। राजा दशार्णभद्र ने जब इन्द्र का यह वैभव देखा तो वह विस्मित हो गया। उसका गर्व नष्ट हो गया। वह सोचने लगा—मैंने अपनी तुच्छ ऋद्धि का व्यर्थ ही घमण्ड किया। इन्द्र की अपार ऋद्धि के सामने मेरी ऋद्धि तो इसी प्रकार फीकी लग रही है जैसे दिन मे चन्द्र की। छिछला व्यक्ति ही अपनी तुच्छ ऋद्धि पर गर्व करता है, इन्द्र ने मुझे पराजित कर दिया है, पर मैं ऐसा कार्य कर के दिखा दूं जो इन्द्र न कर सके।

राजा दशार्णभद्र समवसरण मे पहुँचा, हाथी से उतर कर, छत्र चामर आदि राज्यचिह्नो को त्यागकर, तीन प्रदक्षिणापूर्वक पूछा—भगवन्! मैं प्रव्रजित होना चाहता हूँ, राजा ने अपने हाथो से लुंचन किया और दीक्षित हो गया।[13]

---

१३ दसण्णरज्ज मुइय, चइत्ताण मुणीचरे।
दसण्णभद्दो निक्खतो सक्ख सक्केण चोइओ॥

—उत्तरा० १८।४४

शाल ने अपने लघुभ्राता को राज्य ग्रहण करने के लिए कहा, पर महाशाल ने अस्वीकार करते हुए कहा—जैसा उपदेश आपने सुना है, वैसा ही मैंने भी सुना है, मुझे भी ससार से विरक्ति हुई है। मैं भी महावीर के पास सयम लेना चाहता हूँ।

महाशाल के अतिरिक्त अन्य राज्य का उत्तराधिकारी न होने से अपने भानजे गागली को बुलाकर उसे राज्य पर आसीन किया। तथा शाल और महाशाल ने भगवान् के चरणो मे दीक्षा ग्रहण की। स्थविरो के पास ग्यारह अगो का अध्ययन किया।[१२] उसके पश्चात् दोनो को केवलज्ञान हुआ।

राजा दशार्णभद्र की दीक्षा

भगवान महावीर चम्पा से दशार्णपुर पधारे। दशार्णपुर का राजा दशार्णभद्र था। उसके पाँचसौ रानियाँ थी और बहुत बडी सेना थी। भोजन से निवृत्त होकर राजा आमोद प्रमोद मे तल्लीन था। सहसा उद्यानपाल ने आकर निवेदन किया—देव ! उद्यान मे तीर्थंकर भगवान महावीर पधारे है। राजा ने यह सवाद सुना, बहुत प्रसन्न हुआ। उसी क्षण सिहासन से नीचे उतरकर नतमस्तक हो नमस्कार किया। प्रीतिदान देकर उसे विसर्जित किया। राजा दशार्णभद्र के मन मे यह अध्यवसाय हुआ कि कल प्रात काल मैं भगवान को ऐसी अपूर्व समृद्धि के साथ वन्दना करूँ, जैसी वन्दना आज दिन तक किसीने न की। सेनाधिकारी को बुला कर उसने निर्देश दिया-कल प्रात काल के लिए सेना को अभूतपूर्व सुसज्जित करो, कौटुम्बिक पुरुष को निर्देश दिया—नगर की अच्छी तरह सफाई कराओ, चन्दन मिश्रित सुगन्धित जल से छिटकाव कराओ, सभी जगह पुष्प की वर्षा करो, वन्दनवार और रजतकलशो की श्रेणियो से मार्ग को सुसज्जित करो और सम्पूर्ण शहर को ध्वजाओ से छा दो। एक अन्य कौटुम्बिक पुरुष को निर्देश दिया—'तुम उद्घोषणा करो कि कल प्रात सभी सामन्त, मन्त्रीगण और नागरिक सुसज्जित होकर आये। सभी को सामूहिक रूप से भगवान् को नमस्कार करने के लिए जाना है।

राजा दशाणभद्र प्रात उठा। स्नान आदि से निवृत्त होकर बढिया बहुमूल्य वस्त्र और आभूषण धारण किये और प्रधान हाथी पर आसीन हुए, मस्तक पर छत्र और चारो ओर चामर डुलाए जा रहे थे। राजा के पीछे

१२ उत्तराध्ययन सटीक अ० १०

हजारो सामन्त, प्रमुख नागरिक, सुसज्जित हाथियो, घोडो और रथो पर आरूढ होकर चल रहे थे। पाँचसौ रानिया भी रथो पर बैठकर आगे बढ रही थी। हजारो पताकाए फहरा रही थी। वाद्यो के सुमधुर घोप से आकाशमडल मुखरित हो रहा था। मागलिक ध्वनियाँ गूँज रही थी। गायको की सुमधुर-स्वर लहरियाँ झनझना रही थीं।

अद्भुत समृद्धि को देखकर दशार्णभद्र राजा के मन मे यह विचार उठा कि इस प्रकार की वन्दना तो सर्वप्रथम मैंने ही की है।

शक्रेन्द्र ने राजा दशार्णभद्र के गर्वयुक्त अभिप्राय को जाना। दशार्णभद्र की अनुपम भक्ति तो अच्छी है पर इसे गर्व नही करना चाहिए। राजा को प्रतिबोध देने के लिए शक्रेन्द्र ने ऐरावण नामक देव को आज्ञा दी और चौसठ हजार हाथियो की विकुर्वणा करवाई। प्रत्येक हाथी के बारह मुख, प्रत्येक मुख मे आठ-आठ दाँत, प्रत्येक दाँत पर आठ-आठ वापिकाए, प्रत्येक वापिका मे आठ-आठ कमल और प्रत्येक कमल पर एक-एक लाख पखुडियाँ थी। प्रत्येक पखुडी मे बत्तीस प्रकार के नाटक हो रहे थे। कमल की मध्यकणिका पर चतुर्मुखी प्रासाद थे। सभी प्रासादो मे इन्द्र अपनी आठ-आठ अग्रमहिषियो के साथ नाटक देख रहा था। इस प्रकार विराट् समृद्धि के साथ इन्द्र भगवान् को वन्दन करने के लिए आकाश से उतरा। राजा दशार्णभद्र ने जब इन्द्र का यह वैभव देखा तो वह विस्मित हो गया। उसका गर्व नष्ट हो गया। वह सोचने लगा—मैंने अपनी तुच्छ ऋद्धि का व्यर्थ ही घमण्ड किया। इन्द्र की अपार ऋद्धि के सामने मेरी ऋद्धि तो इसी प्रकार फीकी लग रही है जैसे दिन मे चन्द्र की। छिछला व्यक्ति ही अपनी तुच्छ ऋद्धि पर गर्व करता है, इन्द्र ने मुझे पराजित कर दिया है, पर मैं ऐसा कार्य कर के दिखा दूँ जो इन्द्र न कर सके।

राजा दशार्णभद्र समवसरण मे पहुँचा, हाथी से उतर कर, छत्र चामर आदि राज्यचिह्नो को त्यागकर, तीन प्रदक्षिणापूर्वक पूछा—भगवन्! मैं प्रव्रजित होना चाहता हूँ, राजा ने अपने हाथो से लुंचन किया और दीक्षित हो गया।[१३]

---

१३ दसण्णरज्ज मुइय, चइत्ताण मुणीचरे।
दसण्णभद्दो निक्खतो सक्ख सक्केण चोइओ॥

—उत्तरा० १८।४४

शक्रेन्द्र ने राजा को दीक्षित हुआ देखा। उसे अनुभव हुआ कि इस प्रतिस्पर्धा मे वह पराजित हो गया, वह मुनि दशार्णभद्र के पास गया और उनकी मुक्तकठ से प्रशसा की। इन्द्र स्वर्ग मे गया, दशार्णभद्र मुनि सयम-साधना, तप आराधना करते रहे ?[१४]

कामदेव की दृढता

पृष्ठचम्पा से भगवान् विहार कर चम्पा के पूर्णभद्रचैत्य मे पधारे। उस समय चम्पा का प्रसिद्ध श्रमणोपासक कामदेव गृह कार्यभार को अपने ज्येष्ठ पुत्र को सभला कर आध्यात्मिक साधना कर रहा था।

एक बार कामदेव रात्रि के समय धर्मजागरणा कर रहा था। रात्रि का गहन अधकार था। एक देव ने कामदेव की परीक्षा के लिए पिशाच का रूप बनाया, फिर हाथी, और सर्प के रूप बनाकर कामदेव को अनेक कष्ट दिये, पर कामदेव किञ्चित्मात्र भी विचलित नही हुआ। अन्त मे देव उसकी आध्यात्मिक शक्ति के सामने पराजित हुआ, और कामदेव की दृढता की प्रशसा करता हुआ चला गया।

प्रात कामदेव ने भगवान् महावीर के नगर के बाहर पधारने के समाचार सुने, वह भगवान को वन्दन के लिए गया। भगवान का उपदेश सुना।

प्रवचन के पश्चात भगवान ने कामदेव को कहा गत रात्रि मे एक देव ने विविध रूप बनाकर तुझे ध्यानभ्रष्ट करने का प्रयास किया था, पर वह अपने प्रयास मे सफल न हो सका था। क्या यह मेरा कथन सत्य है ?

कामदेव—हा भगवन् ! आपका कथन सत्य है !

भगवान महावीर ने अपने श्रमण और श्रमणियो को सम्बोधित कर कहा—आर्यो ! गृहस्थाश्रम मे रहने के बावजूद भी श्रमणोपासक देवसम्बन्धी, मनुष्यसम्बन्धी और तिर्यंच सम्बन्धी उपसर्ग सहन कर सकते है, तो फिर श्रमणो को तो पीछे नही हटना चाहिए।

---

१४ (क) त्रिषष्टि शलाकापुरुष चरित्र १०।१०
(ख) उत्तराध्ययन टीका, अ० १८
(ग) भरतेश्वर बाहुबली वृत्ति
(घ) ऋषिमण्डल वृत्ति

भगवान के प्रस्तुत उपदेश को सभी श्रमणो व श्रमणियो ने विनयपूर्वक स्वीकार किया।[१५]

सोमिल के प्रश्नोत्तर

दशार्णपुर से भगवान ने विदेह की ओर विहार किया और वाणिज्य-ग्राम मे पधारे। वहाँ पर वेदविज्ञ पण्डित, सोमिल ब्राह्मण रहता था। जिसके पास पाचसौ छात्र अध्ययन करते थे। उसने सुना, भगवान् महावीर 'दूति-पलाश' उद्यान मे पधारे है। सोचा, उनके पास जाकर कुछ प्रश्न करू। वह अपने सौ छात्रो के साथ भगवान् के पास पहुचा। और,उसने पूछा—भगवन्! आपके विचार से यात्रा, यापनीय, अव्याबाध और प्रासुक विहार का क्या स्वरूप है? आप कैसी यात्रा मानते है?

महावीर—सोमिल! मेरे मत मे यात्रा भी है, यापनीय, अव्याबाध और प्रासुक विहार भी है। हम तप, नियम, सयम, स्वाध्याय और आवश्यक आदि क्रियाओ मे यतनापूर्वक चलने को यात्रा कहते है। शुभ योग मे यतना ही हमारी यात्रा है।[१६]

सोमिल—यापनीय क्या है?

महावीर—सोमिल! यापनीय दो प्रकार का है। इन्द्रिययापनीय और नोइन्द्रिय यापनीय। श्रोत्र, चक्षु, घ्राण, जिह्वा और स्पर्शेन्द्रिय को वश मे रखना मेरा इन्द्रिययापनीय है और क्रोध, मान, माया, लोभ को जागृत नही होने देना एव उन पर नियत्रण रखना मेरा नोइन्द्रिययापनीय है।

सोमिल—भगवन्! आपका अव्याबाध क्या है?

महावीर—शरीरस्थ वात, पित्त, कफ और सन्निपात-जन्य विविध रोगान्तको को उपशान्त करना एव उनको प्रकट नही होने देना, मेरा अव्याबाध है।

सोमिल— आपका प्रासुक विहार क्या है?

महावीर—सोमिल! आराम, उद्यान, देवकुल, सभा, प्रपा आदि स्त्री, पशु-पण्डक रहित वस्तियो मे प्रासुक और कल्पनीय पीठ, फलक, शय्या, सस्तारक स्वीकार कर विचरना ही मेरा प्रासुक विहार है।"

---

१५ उपासकदशाग अध्ययन २ सू० १६-३१

१६ भगवती १८।१०।६४६

सोमिल सोच रहा था कि भगवान उत्तर न दे पायेगे और निरुत्तर हो जायेगे, पर भगवान् के उत्तरो को सुनकर विचारा कि कुछ ऐसे अटपटे प्रश्न पूछू, जिनका वे उत्तर न दे सके, इसलिए उसने भक्ष्याभक्ष्य सम्बन्धी श्लेषात्मक प्रश्न पूछा—भगवन् ! सरिसव भक्ष्य है या अभक्ष्य है ?

महावीर—सोमिल ! मैं सरिसव को भक्ष्य भी मानता हूँ और अभक्ष्य भी।

सोमिल—वह कैसे ?

महावीर—ब्राह्मण ग्रन्थो मे 'सरिसव' शब्द के दो अर्थ है–एक सदृशवय और दूसरा सर्षप याने सरसो। इनमे से समान वय वाले १ सहजात, २ सहवर्धित ३ सहप्राशु-क्रीडित, ये तीनो श्रमण निर्ग्रन्थो के लिए अभक्ष्य है और धान्यसरिसव जिसे सर्षप कहते है, उसके भी सचित्त और अचित्त, एषणीय, अनेपणीय, याचित-अयाचित, लब्ध-अलब्ध, ऐसे दो-दो भेद है। उनमे से हम अचित्त को ही निर्ग्रन्थो के लिए भक्ष्य मानते है, वह भी एषणीय याचित और लब्ध हो। इसके अतिरिक्त सचित्त, अनेपणीय, आदि सभी प्रकार के सरिसव श्रमणो के लिए अभक्ष्य है, एतदर्थ ही सरिसव को मैं भक्ष्य और अभक्ष्य दोनो मानता हू।

सोमिल—मास को आप भक्ष्य मानते है या अभक्ष्य ?

महावीर—वह भक्ष्य भी है और अभक्ष्य भी।

सोमिल—वह कैसे ?

महावीर—ब्राह्मण ग्रन्थो मे मास दो प्रकार का कहा गया है—द्रव्य-मास और कालमास। इनमे से कालमास श्रावण से लेकर आषाढमास पर्यन्त है जो बारह ही मास अभक्ष्य है। द्रव्यमास भी दो प्रकार का है १ अर्थमास, (माप) और २ धान्यमास (माप)। इनमे से अर्थमास भी दो प्रकार का है। सुवर्णमाप और रूप्यमाप। ये दोनो माप श्रमण निर्ग्रन्थो के लिए अभक्ष्य है। अब रहा धान्यमास, उसके भी शस्त्रपरिणत, अशस्त्रपरिणत, एपणीय अनेषणीय, याचित, अयाचित, लब्ध और अलब्ध अनेक प्रकार है। उनमे से शस्त्रपरिणत, एपणीय, याचित और लब्ध धान्य ही श्रमणो के लिए भक्ष्य है, शेष सचित्त आदि विशेपणयुक्त धान्यमास अभक्ष्य है।

सोमिल भगवन् ! कुलत्था आपके लिए भक्ष्य है या अभक्ष्य ?

महावीर—कुलत्था भक्ष्य भी है और अभक्ष्य भी।

सोमिल—यह कैसे ?

महावीर—ब्राह्मण-ग्रन्थो मे 'कुलत्था' शब्द के दो अर्थ होते हे—कुलथी धान्य और कुलीन स्त्री।

कुलीन स्त्री तीन प्रकार की होती है—कुलकन्या, कुलवधू और कुलमाता। ये कुलत्था श्रमण निर्ग्रन्थो के लिए अभक्ष्य हे।

'कुलत्था' धान्य भी सरिसवय की तरह अनेक प्रकार का होता है। उसमे शस्त्रपरिणत एषणीय, याचित और लब्ध 'कुलत्था' श्रमण निर्ग्रन्थो के लिए भक्ष्य है, शेष अभक्ष्य।

सोमिल - भगवन्! आप एक हे या दो है? अक्षय, अव्यय, और अवस्थित हे या भूत, भविष्यत्, वर्तमान के अनेक रूपधारी हे?

महावीर—मै एक भी हूँ और दो भी हूं। अक्षय हूँ, अव्यय हूं, और अवस्थित भी हूँ, फिर अपेक्षा से भूत, भविष्यत् और वर्तमान के नाना रूपधारी भी हूँ।

सोमिल—भगवन्! वह कैसे?

महावीर—सोमिल! मैं द्रव्य रूप से एक आत्म-द्रव्य हूं। उपयोग गुण की दृष्टि से ज्ञान उपयोग और दर्शन उपयोग रूप चेतना के भेद से दो हूं। आत्म-प्रदेशो मे कभी क्षय, व्यय, और न्यूनाधिकता नही होती, इसलिए अक्षय-अव्यय और अवस्थित हूं। परन्तु परिवर्तनशील उपयोग पर्यायो की अपेक्षा भूत, भविष्यत् एव वर्तमान के नाना रूपधारी भी हूं।[17]

सोमिल के अद्वैत, द्वैत, नित्यवाद और क्षणिकवाद जैसे गभीर प्रश्न जो लम्बे समय तक चर्चा करने पर भी नही सुलझ सकते थे, उन सभी प्रश्नो का भगवान् ने अनेकान्तदृष्टि से क्षणभर मे समाधान कर दिया। सोमिल भगवान् के तार्किक उत्तरो से अत्यधिक प्रसन्न हुआ। उसने श्रद्धा पूर्वक भगवान का उपदेश सुना और कहा—भगवन्! मैं श्रमण धर्म को स्वीकार करने मे असमर्थ हूं अत श्रावकधर्म ग्रहण करना चाहता हूँ।

भगवान—जैसा तुम्हे सुख हो वैसा करो।

सोमिल ने श्रावकधर्म को ग्रहण किया और समाधिपूर्वक आयु पूर्णकर स्वर्ग मे गया।

भगवान् ने वह तीसवा वर्षावास वाणिज्यग्राम मे ही किया।

---

१७ भगवती १८।१०।६४७

अम्बड परिव्राजक

वाणिज्यग्राम का वर्षावास पूर्ण कर भगवान् कोशल देश के साकेत, सावत्थी आदि नगरो को पावन करते हुए पाचाल की ओर पधारे, तथा कम्पिलपुर के बाहर सहस्राम्रवन उद्यान मे विराजे। कम्पिलपुर मे अम्बड नामक एक ब्राह्मण परिव्राजक अपने सातसौ शिष्यो के साथ रहता था। उसने भगवान् महावीर के त्याग वैराग्यमय जीवन को देखा, केवलज्ञान, केवलदर्शन से युक्त प्रवचन सुने तो वह अपने शिष्यो के साथ जैन-धर्म का उपासक हो गया। परिव्राजक सम्प्रदाय की वेप-भूषा रखने पर भी वह जैन श्रावको के पालन योग्य व्रत-नियमो का सम्यक् प्रकार से पालन करता था।

एक दिन भिक्षा के लिए परिभ्रमण करते हुए गणधर गौतम ने सुना कि अम्बड सन्यासी कम्पिलपुर मे एक साथ सौ घरो मे आहार ग्रहण करता है और वह सौ ही घरो मे दिखलाई देता है।

गौतम ने भगवान से पूछा—भगवन्! क्या यह सत्य है?

महावीर—गौतम! अम्बड परिव्राजक स्वभाव से विनीत और प्रकृति से भद्र है। निरन्तर बेले बेले की तपस्या के साथ आतापना लेने से और शुभ परिणामो से वीर्यलब्धि और वैक्रियलब्धि के साथ अवधिज्ञान भी प्राप्त हुआ है। जिसके कारण वह सौ रूप बनाकर सौ घरो मे दिखलाई देता है और सौ घरो मे आहार ग्रहण करता है, वह सत्य है।

गौतम—प्रभो! क्या अम्बड परिव्राजक आपके पास श्रमणधर्म ग्रहण करेगा?

महावीर—अम्बड जीवाजीव का ज्ञाता श्रमणोपासक है। वह उपासक जीवन मे ही आयु पूर्ण करेगा, किन्तु श्रमणधर्म स्वीकार नही करेगा। अम्बड स्थूल हिंसा, स्थूल मृषावाद, स्थूल अदत्तादान से विरत तथा सर्वथा ब्रह्मचारी और पूर्ण सन्तोषी है। वह यात्रा मे चलते हुए मार्ग मे आए पानी के अतिरिक्त किसी नदी, कूप या तालाब आदि मे नही उतरता है। रथ, गाडी, पालकी आदि यान अथवा हाथी, घोडा, आदि किसी भी वाहन पर नही बैठता है, केवल पैदल चलता है। खेल, तमाशे, नाटक आदि नही देखता है और न राजकथा, देशकथा, आदि ही करता है। वह हरी वनस्पति का छेदन-भेदन और स्पर्श भी नही करता। वह तुम्बा, काष्ठ-पात्र, और मृत्तिका-भाजन के

अतिरिक्त लोह त्रपु, ताम्र, जिस्त, सीसा, चाँदी, सोना आदि किसी प्रकार का धातुपात्र नही रखता है। एक ताम्रमय पवित्रक के अतिरिक्त किसी प्रकार का आभूषण धारण नही करता। गेरुआ चादर के अतिरिक्त किसी अन्य रग के वस्त्र धारण नही करता। शरीर पर गगा की मिट्टी के लेप के सिवाय, चन्दन केसर आदि का भी विलेपन नही करता। जो भोजन अपने लिए बनाया है, खरीदा है या अन्य के द्वारा लाया गया है, वह भोजन ग्रहण नही करता। उसने स्नान और पीने के लिए जल का भी प्रमाण कर रखा है, वह छाना हुआ और दिया हुआ जल ग्रहण करता है किन्तु अपने हाथ से जलाशय से ग्रहण नही करता।

गौतम अम्बड आयु पूर्ण कर किस गति मे जायेगा ?

महावीर—अनेक वर्षों तक साधना का जीवन व्यतीत कर अम्बड सन्यासी अन्त मे एक मास के अनशन की आराधना कर ब्रह्म देवलोक मे देव बनेगा और अन्त मे अम्बड का जीव महाविदेह मे मनुष्य जन्म पाकर निर्वाण प्राप्त करेगा।[1]

काम्पिल्यपुर से भगवान् ने पुन विदेहभूमि की ओर प्रस्थान किया और इकतीसवाँ वर्षावास वैशाली मे किया।

गांगेय अनगार

वैशाली का वर्षावास पूर्ण होने पर भगवान् ने काशी-कौशल के प्रदेशो मे परिभ्रमण किया और पुन ग्रीष्मकाल मे विदेह भूमि की ओर लौटे। भगवान् महावीर वाणिज्य ग्राम के बाहर पधारे, दूतिपलाश उद्यान मे विराजे। प्रवचन पूर्ण होने पर श्रोतागण अपने-अपने घरो की ओर प्रस्थान कर चुके थे। उस समय गांगेय नामक एक पार्श्वापत्य मुनि भगवान् के सन्निकट आये। भगवान् से कुछ दूर पर खडे रहकर उन्होने पूछा—

भगवन् ! नरकावास मे नारक सान्तर उत्पन्न होते है या निरन्तर ?[1]

महावीर—गांगेय ! नारक सान्तर भी उत्पन्न होते है और निरन्तर भी।

---

१ औपपातिक सूत्र अम्बडप्रकरण।

१ व्याख्या प्रज्ञप्ति ९।३२।३७१

गागेय—भगवन् ! असुरकुमारादि भवनपति देव सान्तर उत्पन्न होते है या निरन्तर ?

महावीर—असुरकुमारादि भवनपति देव सान्तर भी उत्पन्न होते है और निरन्तर भी ।

गागेय—भगवन् ! पृथ्वीकायिकादि एकेन्द्रिय जीव सान्तर उत्पन्न होते है या निरन्तर ?

महावीर—गागेय ! पृथ्वीकायादि जीव सान्तर उत्पन्न नही होते, वे अपने-अपने स्थानो मे निरन्तर उत्पन्न होते रहते है ।

गागेय—भगवन् ! द्वीन्द्रिय जीव सान्तर उत्पन्न होते है या निरन्तर ?

महावीर—गागेय ! द्वीन्द्रिय जीव सान्तर भी उत्पन्न होते है और निरन्तर भी ।

इसी प्रकार त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पचेन्द्रिय, तिर्यंच, मनुष्य और देव भी सान्तर और निरन्तर उत्पन्न होते है ।

गागेय—भगवन् ! नैरयिक सान्तर च्यवता है, या निरन्तर च्यवता है ?

महावीर—गागेय ! नैरयिक सान्तर भी च्यवता है और निरन्तर भी च्यवता है ।

इसी प्रकार द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पचेन्द्रिय, तिर्यंच, मनुष्य तथा देव भी कभी सान्तर और निरन्तर च्यवते है परन्तु पृथ्वीकायिक आदि निरन्तर उत्पन्न होने वाले एकेन्द्रिय जीव निरन्तर ही च्यवते है ।

गागेय—भगवन् ! 'प्रवेशन' कितने प्रकार के कहे है ?

महावीर—गागेय ! प्रवेशन चार प्रकार के कहे है । १ नैरयिक प्रवेशन २ तिर्यग्योनि प्रवेशन, ३ मनुष्य प्रवेशन, ४ देवप्रवेशन । उसके पश्चात् भगवान ने विभिन्न नैरयिको के प्रवेशन के सम्बन्ध मे विस्तृत सूचनाएँ दी ।

गागेय—भगवन् ! तिर्यंचयोनिक प्रवेशन कितने प्रकार का कहा है ?

महावीर—गागेय ! पॉच प्रकार का कहा है—एकेन्द्रिय योनिक प्रवेशनक यावत पचेन्द्रिय योनिक प्रवेशनक । उसके पश्चात् भगवान ने विस्तृत रूप से उसके सम्बन्ध मे वर्णन किया ।

गागेय—भगवन् ! मनुष्य प्रवेशन कितने प्रकार का कहा है ?

महावीर—वह दो प्रकार का है—१ समूर्च्छिम मनुष्य प्रवेशनक और गर्भज मनुष्य प्रवेशनक। उसके बाद भगवान् ने उसका विस्तार से विश्लेपण किया।

गागेय– भगवन्! देव प्रवेशनक कितने प्रकार का है?

महावीर—गागेय! देव प्रवेशनक चार प्रकार का है—१ भवनवासी देव प्रवेशनक २. वाणव्यन्तर, ३ ज्योतिष्क और ४ वैमानिक, उसके सम्बन्ध मे फिर भगवान् ने विस्तार से वर्णन किया।

गागेय—भगवन्! सत् नारक उत्पन्न होते है या असत्। इसी प्रकार सत् तिर्यंच, मनुष्य और देव उत्पन्न होते है या असत्?

महावीर—गागेय! सभी सत् उत्पन्न होते है, असत् कोई भी उत्पन्न नही होता।

गागेय– भगवन्! नारक, तिर्यंच, और मनुष्य सत् मरते है या असत्? इसी प्रकार देव भी सत् च्युत होते है या असत्?

महावीर– गागेय! सभी सत् मरते है असत् कोई नही मरता।

गागेय—भगवन्! सत् की उत्पत्ति कैसी? और मरे हुए की सत्ता किस प्रकार?

महावीर—गागेय! पुरुषादानीय पार्श्व अरिहन्त ने लोक को शाश्वत कहा है। उसमे सर्वथा असत् की उत्पत्ति नही होती और 'सत्' का सर्वथा नाश भी नही होता।[२]

गागेय—भगवन्! यह वस्तुतत्त्व आप स्वय आत्मप्रत्यक्ष से जानते है या किसी हेतु प्रयुक्त अनुमान से अथवा किसी आगम के आधार से?

महावीर– गागेय! यह सभी मैं स्वय जानता हूँ। किसी भी अनुमान अथवा आगम के आधार पर मैं नही कहता। आत्मप्रत्यक्ष से जानी हुई बात ही कहता हू।

गागेय—भगवन्! अनुमान और आगम के आधार के बिना इस विषय मे कैसे जाना जा सकता है?

महावीर– गागेय! केवली पूर्व से जानता है, पश्चिम से जानता है, उत्तर और दक्षिण से जानता है। केवली परिमित जानता है और अपरिमित

---

२ व्याख्याप्रज्ञप्ति ९।३२

भी जानता है। केवली का ज्ञान प्रत्यक्ष होने से उसमे सर्व वस्तुतत्त्व प्रतिभासित होते है।

गागेय– भगवन्! नरक मे नारक, तिर्यंच मे तिर्यंच, मनुष्य गति मे मनुष्य और देवगति मे देव स्वय उत्पन्न होते है? या किसी की प्रेरणा से? वह अपनी गतियो से स्वय निकलते है या उन्हे कोई निकालता है?

महावीर—आर्य गागेय! सभी जीव अपने शुभाशुभ कर्म के अनुसार शुभाशुभ गतियो मे उत्पन्न होते है और वहाँ से निकलते है। इसमे दूसरा कोई भी प्रेरक नही है।

इस प्रकार प्रश्नोत्तर के पश्चात् गागेय अनगार ने भगवान को यथार्थ रूप से पहचाना, उसे यह पूर्ण निष्ठा हो गई कि ये सर्वज्ञ सर्वदर्शी है। भगवान महावीर को त्रिप्रदक्षिणापूर्वक वन्दन और नमस्कार कर महावीर के पच महाव्रतरूप धर्म मे प्रविष्ट हुए।[3]

भगवान् अनेक क्षेत्रो मे धर्म की प्रभावना कर पुन वैशाली पधारे और यह बत्तीसवा वर्षावास भी वैशाली मे किया।

गौतम की जिज्ञासाएँ

शील और श्रुत

वर्षावास पूर्ण होने पर भगवान् ने वैशाली से मगध की ओर प्रस्थान किया। अनेकानेक क्षेत्रो को पावन करते हुए राजगृह पधारे और गुणशील उद्यान मे ठहरे। गुणशील न के आस-पास अन्य मतावलम्बी कई साधु व परिव्राजक रहते थे। समय-समय पर उनमे प्रश्नोत्तर होते थे। वे अपने मत का मण्डन और परमत का खण्डन किया करते थे। अन्य मतावलम्बियो की विचारधारा कहा तक सत्यलक्षी है, यह जानने के लिए, गौतम ने भगवान् से प्रश्न किया, भगवन्! कुछ अन्यतीर्थिक यह कहते है कि शील (सदाचार) श्रेष्ठ है। दूसरे कहते है श्रुत श्रेष्ठ है, तीसरे का अभिमत है कि शील और श्रुत दोनो श्रेष्ठ है। भगवन्! आपका इस सम्बन्ध मे क्या कथन है?

महावीर—गौतम! अन्यतीर्थिको का प्रस्तुत कथन सम्यक् नही है। मेरा स्पष्ट मन्तव्य है—पुरुष चार प्रकार के होते है। कितने ही शील-सम्पन्न

३ भगवती ६।५

होते है श्रुत-सम्पन्न नही। कितने ही श्रुत-सम्पन्न होते है शील-सम्पन्न नही। कितने ही शील-सम्पन्न भी होते है और श्रुत-सम्पन्न भी। और कितने ही शील-सम्पन्न भी नही होते और न श्रुत-सम्पन्न ही होते है।

इनमे जो शीलवान है परन्तु श्रुतवान नही, उसे मैं देश आराधक कहता हूँ। जो शीलवान नही पर श्रुतवान है उसको मै देश-विराधक कहता हू। जो शीलवान और श्रुतवान है उसे मैं सर्वाराधक कहता हूँ और जो न शीलवान है और न श्रुतवान है उसे मैं सर्वविराधक कहता हूँ।[1]

आराधना

भगवान् के समाधान से प्रसन्न होकर गोतम की जिज्ञासा और आगे बढी तथा उन्होने अन्य विविध प्रश्न पूछे—

गौतम—भगवन्! आराधना कितने प्रकार की है?

महावीर—आराधना के तीन प्रकार हैं—१ ज्ञानाराधना, २ दर्शनाराधना, ३ और चारित्राराधना।

गौतम—ज्ञानाराधना के कितने प्रकार है?

महावीर—वह तीन प्रकार की है—१ उत्कृष्ट, २ मध्यम और ३ जघन्य।

गौतम—दर्शनाराधना कितने प्रकार की है?

महावीर—वह भी ज्ञानाराधना की तरह तीन प्रकार की है।

गौतम भगवन्! जिस जीव को उत्कृष्ट ज्ञानाराधना होती है उसे क्या उत्कृष्ट दर्शनाराधना भी होती है? जिस जीव को उत्कृष्ट दर्शनाराधना होती है क्या उसे उत्कृष्ट ज्ञानाराधना भी होती है।

महावीर—जिस जीव को उत्कृष्ट ज्ञानाराधना होती है उसे उत्कृष्ट या मध्यम दर्शनाराधना होती है और जिसे उत्कृष्ट दर्शनाराधना होती है उसे उत्कृष्ट या जघन्य ज्ञानाराधना होती है।

गौतम—भगवन्! उत्कृष्ट ज्ञानाराधना का आराधक कितने भवो के पश्चात् सिद्ध होता है?

महावीर—कितने ही जीव उसी भव मे सिद्ध होते है, कितने ही दो

---

१ भगवती शतक ८, उद्दे० १०

भवो मे सिद्ध होते हे कितने ही, जीव कल्पोपपन्न (१२ देवलोक मे) और कितने ही कल्पातीत देव मे उत्पन्न होते है, इसी प्रकार दर्शनाराधना और चारित्राराधना के सम्बन्ध मे जानना चाहिए।

पुद्गल परिणाम

गौतम-- भगवन्! पुद्गल का परिणाम कितने प्रकार का है?

महावीर-- वह वर्णपरिणाम, गधपरिणाम, रसपरिणाम, स्पर्शपरिणाम और सस्थानपरिणाम रूप पाँच प्रकार का है।

गौतम—भगवन्! वर्णपरिणाम कितने प्रकार का है।

महावीर—कृष्ण वर्णपरिणाम, नील वर्णपरिणाम, लोहित वर्ण-परिणाम, हरिद्रा वर्णपरिणाम, शुक्ल वर्णपरिणाम,[२] इसी प्रकार गधपरिणाम सुरभिगध और दुरभिगध रूप दो प्रकार का है, रसपरिणाम, तिक्त रस-परिणाम, कटुकरस-परिणाम, कषाय रसपरिणाम, अम्ल रसपरिणाम, मधुर रसपरिणाम रूप पाच प्रकार है। और स्पर्श परिणाम, कर्कश, कोमल, गुरु, लघु, शीत, उष्ण, स्निग्ध और रुक्ष रूप आठ प्रकार का है।

गौतम--भगवन! सस्थानपरिणाम कितने प्रकार का है?

महावीर—परिमण्डल सस्थानपरिणाम, वर्तुल सस्थानपरिणाम, त्र्यस्र सस्थानपरिणाम, चतुरस्र सस्थान परिणाम, आयत सस्थानपरिणाम, इस प्रकार पाच प्रकार का है।

गौतम ने पुद्गलो के सम्बन्ध मे भी अनेक जिज्ञासाए प्रस्तुत की, भगवान ने सभी का सम्यक् प्रकार से समाधान दिया।[3]

जीव और जीवात्मा

गौतम—भगवन्! अन्यतीर्थिको का यह अभिमत है कि प्राणिहिसा, मृपावाद, चौर्य, मैथुन, सग्रहेच्छा क्रोध, मान, माया, लोभ राग, द्वेष, कलह, अभ्याख्यान, पैशुन्य, हर्ष, शोक, परनिन्दा, माया, मृषा, मिथ्यात्व आदि दुष्ट भावो मे प्रवृत्ति करने वाले प्राणी का जीव पृथक् है और उसका जीवात्मा पृथक् है। इसी तरह इन दुष्ट भावो का परित्याग करके धर्ममार्ग मे प्रवृत्ति करने वाले प्राणी का जीव भी अन्य है। जो औत्पत्तिकी, पारिणामिकी आदि बुद्धि युक्त हे उनका जीव पृथक है, और जीवात्मा पृथक् है। पदार्थ-ज्ञान

---

२ समवायाङ्ग २२।

३ भगवती सूत्र सटीक ८।१०। पत्र ७६४-७७८

तर्क, निश्चय और अवधारण करने वाले का जीव पृथक् है और जीवात्मा पृथक है, जो अज्ञान और पराक्रम करने वाला है उसका भी जीव अन्य है और जीवात्मा अन्य है। यहाँ तक कि नारक, देव और तिर्यग् जातीय पशु पक्षी आदि देहधारियो का भी जीव अन्य है और जीवात्मा अन्य है। ज्ञानावरणीयादि कर्मवान्, कृष्णलेश्यादि लेश्यवान, सम्यग्दृष्टि, मिथ्यादृष्टि, दर्शनवान और ज्ञानवान इन सभी का जीव अन्य है और जीवात्मा अन्य है।

अन्यतीर्थिको की प्रस्तुत मान्यता के सम्बन्ध मे आपश्री का क्या कथन है?

महावीर—अन्यतीर्थिको की यह मान्यता मिथ्या है। मेरा स्पष्ट मन्तव्य है कि 'जीव' और 'जीवात्मा' एक ही पदार्थ है। जो 'जीव' है वही जीवात्मा है।

केवली की भाषा

गौतम—भगवन! अन्यतीर्थिको का यह मन्तव्य है कि यक्षावेश से परवश होकर कभी केवली भी मृषा अथवा सत्यमृषा भाषा बोलते है, यह किस प्रकार? क्या केवली ये दो प्रकार की भाषा बोलते है?

महावीर—अन्यतीर्थिको का प्रस्तुत कथन मिथ्या है। मेरा स्पष्ट मन्तव्य है कि न कभी केवली को यक्षावेश होता है और न वे कभी भी मृषा या सत्यमृषा भाषा बोलते है। वे असावद्य, अपीडाकारक सत्य भाषा बोलते है।[४]

राजा गागलि की दीक्षा

राजगृह से भगवान् ने चम्पा की ओर विहार किया। उस समय साल-महासाल मुनियो ने भगवान को वन्दन कर कहा—भगवन्! यदि आपकी आज्ञा हो तो हम पृष्ठचम्पा से जो हमारा भानेज गागलि नामक राजा है उसे प्रतिबोध देवें। भगवान ने गणधर गौतम के साथ उन्हे वहाँ जाने की आज्ञा प्रदान की। गौतम वहाँ पहुँचे, गागलिराजा ने गौतम स्वामी के साथ अपने मामा के आगमन की बात सुनी तो वह वन्दन व उपदेश सुनने के लिए आया। उपदेश सुनते ही राजा गागलि को तथा उसके पिता पिठर और माता यशोमति को वैराग्य हुआ। पुत्र को राज्य देकर, सभी ने दीक्षा ली।[५]

---

४ भगवती १७।३

५ (क) उत्तराध्ययन सटीक, अ० १०, पत्र १५४

(ख) त्रिषष्टि० १०।९।१७४

उसके पश्चात् गौतम साल, महासाल, गागलि पिठर, और यशोमति के साथ पृष्ठचम्पा से चम्पा की ओर प्रस्थित हुए, क्योंकि भगवान चम्पा मे विराजमान थे। रास्ते मे साल, महासाल मुनि चिन्तन करने लगे—बहन, बहनोई, और भानजा सभी प्रव्रजित हो गए, बहुत ही सुन्दर हुआ। गागलि विचार रहे थे मेरे साल, महासाल मामा कितने उत्तम है, जिनकी अपार कृपा से मुझे राज्यलक्ष्मी भोगने का अवसर मिला और अब मोक्षलक्ष्मी। इस प्रकार चिन्तन करते-करते वे क्षपकश्रेणी पर आरूढ हुए और शुभध्यान से उन्हे केवलज्ञान हो गया।[६]

गौतम चम्पा आये, उन पाँचो ने भगवान् को प्रदक्षिणा की, और केवली-परिषद् की ओर बढे, गौतम ने कहा—श्रमणो! आपको यह ज्ञात नही है, आप किधर जा रहे है, इधर आकर भगवान् को वन्दन करो।

भगवान् ने कहा—गौतम! केवली की अशातना मत करो।

पन्द्रहसौ तापस

प्रस्तुत घटना के साथ सलग्न एक अन्य घटना भी प्रसिद्ध है, जिसकी चर्चा आचार्य अभयदेव ने भगवती सूत्र की टीका मे (१४।७) एव नेमिचन्द्र ने उत्तराध्ययन की टीका (१०।१) मे व कल्पसूत्र की टीकाओ मे की है। वह इस प्रकार है -

कोडिन्न, दिन्न, और सेवाल नाम के तीन तापसो के गुरु थे। प्रत्येक के पाच-पाँचसौ शिष्य थे, यो पन्द्रहसौ तीन तापस अष्टापद पर्वत पर आरोहण कर रहे थे। सभी तपस्या से अत्यन्त दुर्बल हो रहे थे। कोडिन्न तापस पाँचसौ शिष्यो के साथ पहली मेखला तक चढा था, दिन्न का परिवार दूसरी मेखला तक चढा था, और सेवाल का परिवार तीसरी मेखला तक आरोहण कर गया था। अष्टापद पर्वत पर एक-एक योजन की आठ मेखलाए थी। ऊपर चढने से तापस और खिन्न होकर बैठे थे। तभी गोतम स्वामी उधर से आए और देखते-ही देखते लब्धिबल से अष्टापद पर्वत के शिखर पर चढ गये। गौतम के प्रस्तुत तपोबल से सभी तापस बहुत प्रभावित हुए। उनके मन मे यह आश्चर्य हुआ कि हम तो एक एक मेखला पार करने मे ही थककर चूर

---

६ अनुगोतममायाता पचानामापि वर्त्मनि।
शुभभाववशात्तेषामुदपद्यत केवलम्॥

हो गये है और यह महान तपस्वी एकदम शिखर तक जा पहुचा। अवश्य ही यह महान् लब्धिधारी और तपोवली हे। जब यह तपस्वी अष्टापद से उतर कर आयेंगे तो हम इनके शिष्य बन जायेंगे।

इन्द्रभूति गौतम शिखर से पुन नीचे आए। तापसो ने विनयपूर्वक कहा—आप हमारे गुरु है और हम आपके शिष्य हैं। तापसो के आग्रह पर गौतम स्वामी ने उनको दीक्षा दी। अपने अक्षीण महानस लब्धिवल से खीर के एक ही भरे हुए पात्र से पन्द्रहसौ तापस श्रमणो को भरपेट भोजन कराया। अपने गुरु का यह अद्भुत लब्धिवल देखकर सभी तापस श्रमण वडे प्रसन्न हुए। उन सभी तापस श्रमणो को गौतमस्वामी महावीर के समवसरण मे लेकर आए। गौतम स्वामी एव भगवान् के गुण-चिन्तन से उत्कृष्ट परिणाम आने पर उन्हे भी कैवल्य प्राप्त हो गया, वे भी उसी प्रकार केवली परिषद मे जाने लगे तव भगवान ने स्थिति का स्पष्टीकरण किया।[७]

हा तो भगवान की बात सुनकर गौतम को बहुत आश्चर्य हुआ और साथ ही अपनी छद्मस्थता पर खेद भी हुआ कि मेरे शिष्य तो सर्वज्ञ हो गए और मैं अभी तक छद्मस्थ ही रहा। गुरुजी गुड ही रहे और चेले शक्कर हो गए—सचमुच यह कहावत चरितार्थ हो रही है।

गौतम को मुक्ति का वरदान

यह सत्य है कि अपने शिष्यो की प्रगति एव अभिवृद्धि से उनके मन मे किंचित् मात्र भी ईर्ष्या नही थी किन्तु स्वय इतनी तपस्या, साधना, ध्यान, स्वाध्याय करने के बावजूद भी और भगवान के प्रति अनन्य श्रद्धा होने पर भी वे अब तक छद्मस्थ ही बने रहे, इस बात से उनके मन मे बहुत ही चोट पहुँची। वे गहराई से आत्म-निरीक्षण करने लगे कि मेरी साधना मे कहा कमी है? ऐसी कौन सी रुकावट आ रही है, जिसे तोडने मे मैं असमर्थ रहा हूँ। सभव है कि कोई कारण उनके ध्यान से नही आया हो जिससे वे बहुत ही चिन्तित हो गए हो, तब श्रमण भगवान महावीर ने उनकी मनोव्यथा को दूर करने के लिए कहा - गौतम! तुम्हारे मन मे मेरे प्रति अत्यन्त अनुराग है, स्नेह है, उस स्नेहबधन के कारण ही तुम अपने मोह का क्षय नही कर पा रहे हो और वही मोह तुम्हारी सर्वज्ञता मे बाधक बन रहा है।

---

७ (क) कल्पसूत्रार्थ प्रबोधिनी, पृ० १६६ से १७१

(ख) कल्पसूत्र बालावबोधिनी, पृ० २६०

(ग) त्रिषष्टि० १०।६।२४१-२५७

भगवान की वह वाणी भगवती सूत्र मे इस प्रकार मुखरित हुई है[८] गौतम ! तुम अतीत काल से मेरे साथ स्नेहबधन मे बधे हो, तुम जन्म जन्म से मेरे प्रशसक रहे हो, मेरे चिर परिचित रहे हो, अनेक जन्मो मे मेरी सेवा करते रहे हो, मेरा अनुसरण करते रहे हो, और प्रेम के कारण मेरे पीछे-पीछे दौडते रहे हो। पिछले देवभव, एव मनुष्यभव मे भी तुम मेरे साथी रहे हो। इस प्रकार अपना स्नेह बधन सुदीर्घकालीन है, मैंने उसे तोड डाला है, तुम नही तोड पाए। विश्वास करो, तुम भी (बहुत शीघ्र बधन से मुक्त होकर) अब यहा से देहमुक्त होकर हम दोनो एक समान, एक लक्ष्य पर पहुँचकर भेदरहित तुल्य रूप प्राप्त कर लेगे।

भक्त के प्रति भगवान का यह आश्वासन वस्तुत एक बहुत बडा आश्वासन है, जिसे सुनकर गौतम के मन की समस्त खिन्नता नष्ट हो गई होगी। और अपूर्व प्रसन्नता से रोम-रोम पुलक उठा होगा।

वैदिक साहित्य का अवलोकन करने से सहज ही ज्ञात होता है कि जब भक्त की भक्ति से भगवान प्रसन्न होते हे और वे भक्त को पुन भक्त होने का वरदान देते हे जिससे भक्त बहुत ही प्रसन्नता का अनुभव करता है किन्तु जैन परम्परा भक्त को भक्त ही नही अपितु भगवान बनने का वरदान देती है। स्वय भगवान ने कहा—तुम भी मेरे समान सिद्ध, बुद्ध और मुक्त बनोगे। इस वरदान को पाकर किस भक्त को प्रसन्नता नही होगी।

---

८ (क) स्मरण रहे गागली की घटना चम्पानगरी मे हुई और भगवान महावीर का यह कथन राजगृह मे हुआ है। सभव हे इसी बीच अष्टापद की घटना हो गई हो, आर पुन-पुन इस प्रकार की घटना होने से उनके मन की खिन्नता बढी हो तब भगवान ने निम्न आश्वासन दिया हो—

चिर ससिट्ठिोऽसि मे गोयमा। चिर सथुओऽसि मे गोयमा। चिरपरिचिओऽसि मे गोयमा। चिरजुसिओऽसि मे गोयमा। चिराणुगओऽसि मे गोयमा। चिराणु वत्तीसि मे गोयमा। अणतर देवलोए, अणतर माणुस्सए भवे, किं पर मरणा-कायस्स भेदा। इओ चुआ दोवितुल्ला एगट्ठा अविसेस मणाणत्ता भविस्सामो।

— भगवती सूत्र १४।७

(ख) गौतम के स्नेहबधन को नष्ट करने के लिए भगवान महावीर ने अनेक बार उपदेश दिया, उन्हे वीतरागता की ओर मोडने का प्रयास किया, यह आगम साहित्य मे आये हुए उपदेश से ध्वनित होता है। उत्तराध्ययन १०।२८ मे भी गौतम को सम्बोधित करके कहा है—वोच्छिद सिणेहमप्पणो कुमुय सारयव पाणिना"

(ग) इन्द्रभूति गौतम . एक अनुशीलन पृ० ८२-८४

तत्त्वज्ञ मद्दुक

भगवान् चम्पा से पुन विहार करते हुए राजगृह पधारे। गुणशील-चैत्य मे विराजे। गुणशीलचैत्य के सन्निकट कालोदायी, शैलोदायी, शैवालोदायी उदक, नामोदक, अन्नपाल, शैवाल, शखपाल, सुहस्ती और गाथापति आदि अन्यतीर्थिक रहते थे।[1]

एक दिन अन्यतीर्थिको मे पचास्तिकाय को लेकर परस्पर चर्चा चल रही थी। वे उस पर तर्क-वितर्क कर रहे थे। भगवान् महावीर के आगमन के समाचार श्रवण कर राजगृह का श्रद्धालु-श्रावक 'मद्दुक' भगवान को वन्दन करने के लिए तापसाश्रमो के सन्निकट होकर जा रहा था। कालोदायी आदि ने उसे जाते हुए देखकर अपने साथियो से कहा देखिए वह 'मद्दुक' अरिहन्तो का उपासक जा रहा है, उसे महावीर के सिद्धान्तो का अच्छा परिज्ञान है, अत प्रस्तुत विषय पर उसका अभिमत भी जान ले।

वे सभी मद्दुक के सन्निकट आये, उन्होने मद्दुक को सम्बोधित कर कहा - तुम्हारे धर्माचार्य श्रमण भगवान महावीर पच अस्तिकायो का प्रतिपादन करते है, उनमे एक को जीव और चार को अजीव कहते है। एक को रूपी और पाँच को अरूपी बताते है। इस सम्बन्ध मे तुम्हारा क्या मत हे और अस्तिकायो के सम्बन्ध मे तुम्हारे पास क्या प्रमाण हे?

मद्दुक—इनके कार्यों से इनका अनुमान किया जा सकता है। ससार के कुछ पदार्थ दृश्य होते और कुछ अदृश्य होते हे जो अनुभव, अनुमान और कार्य से जाने जाते है।

अन्यतीर्थिक—मद्दुक! तू कैसा श्रमणोपासक है जो अपने धर्माचार्य के कहे हुए द्रव्यो को जानता और देखता नही तथापि उसे मानता कैसे है?

मद्दुक—आयुष्मन्! सन-सनाता हुआ पवन चल रहा है, क्या तुम उसका रग-रूप देखते हो?

अन्यतीर्थिक—सूक्ष्म होने से हवा का रूप देखा नही जाता।

मद्दुक—गध के परमाणु जो घ्राणेन्द्रिय के विषय होते है, क्या तुम उनका रग-रूप देखते हो?

---

[1] भगवती ७।१०

अन्यतीर्थिक—नही, गध के परमाणु भी सूक्ष्म होने से नही देखे जाते।

मद्दुक—अरणिकाष्ठ मे अग्नि रहती है, क्या तुम सब अरणि मे रही हुई आग के रग-रूप को देखते हो ? क्या देवलोक मे रहे हुँए रूपो को देख सकते हो, जिनको तुम नही देख सकते हो, क्या वह वस्तु नही है। दृष्टि मे नही आने वाली वस्तुओ को यदि अमान्य करोगे तो तुम्हे ऐसे अनेक इष्ट पदार्थों का भी निषेध करना होगा। इस प्रकार लोक के अधिकाश अस्तित्व को और भूतकाल की वशपरम्परा को भी अमान्य करना पडेगा।

मद्दुक की अकाट्य तर्कों से अन्यतैर्थिक अवाक रह गये, उन्हे मद्दुक की बात माननी पडी। अन्यतीर्थिको को परास्त कर मद्दुक महावीर के समवसरण मे पहुँचा और भगवान् महावीर ने कहा—मद्दुक ! तुमने अन्य तीर्थिको को बहुत ही अच्छा उत्तर दिया है, तूने जो कहा है वह उचित और यौक्तिक था। महावीर के मुँह से अपनी प्रशसा सुनकर मद्दुक बहुत ही प्रसन्न हुआ और ज्ञानचर्चा कर अपने स्थान की ओर लौट गया।

मद्दुक श्रावक की योग्यता देखकर गणधर गौतम ने जिज्ञासा प्रस्तुत की—भगवन् ! मद्दुक श्रावक आगारधर्म से अनगारधर्म ग्रहण करेगा ? क्या यह आपका श्रमण शिष्य होगा !

महावीर—गौतम ! मद्दुक प्रव्रज्या ग्रहण करने मे समर्थ नही है। वह गृहस्थ मे रहकर ही देशधर्म की आराधना करेगा। और अन्तिम समय मे समाधि पूवक आयु पूर्ण कर 'अरुणाभ'[२] विमान मे देव होगा। और फिर मनुष्य होकर सिद्ध-बुद्ध और मुक्त होगा।[3]

उसके पश्चात् विविध क्षेत्रो मे धर्मोपदेश देते हुए भगवान पुन राज-गृह पधारे, और वही पर अपना वर्षावास किया।

कालोदायी की दीक्षा

एक समय इन्द्रभूति गौतम राजगृह से भिक्षा लेकर गुणशील उद्यान की ओर आ रहे थे। मार्ग मे कालोदायी, शैलोदायी आदि अनेक अन्यतीर्थिक चर्चा कर रहे थे। गौतम को देखकर वे उनके सन्निकट आये, और बोले—तुम्हारे धर्माचार्य पचास्तिकाय का निरूपण करते है, इसका क्या रहस्य है ? इन रूपी और अरूपी कार्यों के सम्बन्ध मे किस प्रकार समझना चाहिए।

---

२ पाँचवें ब्रह्मलोक का एक विमान

३ भगवती १८।७

गौतम—देवानुप्रियो ! हम अस्तित्व मे नास्तित्व नही कहते और न ना स्तत्व मे अस्तित्व ही कहते है। हम अस्ति को अस्ति और नास्ति को नास्ति कहते है। इस सम्बन्ध मे आप स्वय चिन्तन करे, जिससे इसका रहस्य समझ सकेगे।

गौतम—इतना कहकर चल दिये। कालोदायी अन्यतीर्थिक उनके पीछे हो गए। भगवान् ने कालोदायी को सम्बोधित कर कहा— कालोदायी ! क्या तुम्हारे साथियो मे पचास्तिकाय के सम्बन्ध मे चर्चा चली ?

कालोदायी—हाँ, जब से हमने आपके पचास्तिकाय सम्बन्धी विचार सुने है, तब से हम उस पर परस्पर तर्क-वितर्क करते रहते है। हे भगवन् ! क्या अरूपी अजीवकाय, धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय और आकाशास्तिकाय पर कोई बैठने, लेटने, खडे रहने मे समर्थ है ?

महावीर— कालोदायी ! केवल एक रूपी अजीवकाय पुद्गलास्तिकाय पर ही बैठने आदि की क्रिया हो सकती है, अन्य पर नही।

कालोदायी पुद्गलास्तिकाय मे जीवो के दुष्ट-विपाक कर्म लगते है, या जीवास्तिकाय मे ?

महावीर—पुद्गलास्तिकाय मे जीवो के दुष्ट-विपाक रूप पाप नही किये जाते है किन्तु वे जीवास्तिकाय मे ही किये जाते है, पाप ही नही सभी प्रकार के कर्म जीवास्तिकाय मे ही होते है। जड होने से अन्य कायो मे कर्म नही किये जाते।

भगवान् के उत्तरो को सुनकर कालोदायी आदि की शका दूर हो गई। उसने भगवान् के चरणो मे निर्ग्रन्थ प्रवचन सुनने की भावना व्यक्त की, भगवान ने उपदेश दिया। उपदेश सुनकर वह भगवान् के चरणो मे दीक्षित हो गया, ग्यारह अगो का अध्ययन किया।[४]

पार्श्वापत्य उदकपेढाल

राजगृह नगर की ईशान दिशा मे गगनचुम्बी उच्च प्रासादो से सुशोभित नालन्दा एक उपनगर था। वहाँ 'लेव' नामक एक श्रीमन्त था, जिसकी

४ भगवती ७।१०।३०५

निग्रन्थ प्रवचन पर अपार आस्था थी। वह श्रमण परम्परा का परम उपासक था।[1] उसको 'शेषद्रविका' नामक एक उदकशाला थी।[2] भगवान् महावीर अपने शिष्य समुदाय सहित वहां ठहरे हुये थे। उस समय पार्श्वापत्यीय मेतार्य गोत्रीय, पेढालपुत्र उदक नामक निग्रन्थ भी वही निकट ठहरे हुए थे। वे गणधर गौतम से मिले, जिज्ञासाएँ प्रस्तुत की, गौतम की आज्ञा स उन्होने पूछा - आपके प्रवचन का उपदेश करने वाले कुमार पुत्रीय श्रमण अपने पास व्रतादि नियमो को लेने वाले श्रमणोपासको को इस प्रकार प्रत्याख्यान कराते है—राजाज्ञादि कारण से किसी गृहस्थ अथवा चोर के बांधने-छोडने के अतिरिक्त मैं त्रस जीवो की हिंसा नही करूँगा।[3] आर्य! इस तरह का प्रत्याख्यान दुष्प्रत्याख्यान है। जो इस प्रकार का प्रत्याख्यान कराते है, वे दुष्प्रत्याख्यान कराते है। इस प्रकार का प्रत्याख्यान करने और कराने वाले अपनी प्रतिज्ञा मे अतिचार लगाते है क्योकि स्थावर जीव मरकर त्रस रूप मे उत्पन्न होते है और त्रस जीव मरकर स्थावर रूप मे भी उत्पन्न हो जाते है। इस तरह जो जीव त्रस रूप मे अघात्य थे वे ही स्थावर रूप मे जन्म ग्रहण करने के पश्चात घात्य' हो जाते है। एतदर्थ प्रत्याख्यान सविशेष करना और कराना चाहिए। राजादि कारण से किसी गृहस्थ अथवा चोर के बाधने और छोडने के अतिरिक्त मैं 'त्रसभूत' जीवो की हिंसा नही करूँगा। इस प्रकार 'भूत' इस विशेषण के सामर्थ्य मे उक्त दोषापत्ति नही होती। जो क्रोध अथवा लोभ से दूसरो को निर्विशेषण प्रत्याख्यान कराते है, वह भी उचित नही है। कहिए—गौतम, मेरी बात आपको तर्क युक्त लगी न?

१ रायगिहे नाम नयरे होत्था   तत्थण नालदाए बाहिरियाए लेवे नाम गाहावई होत्था   से ण लेवे नाम गाहावई समणोवसाए यावि होत्था।

—सूत्रकृताग नालदीयाध्ययन

२ प्रो० जेकोबी ने सेक्रेड बुक्स आव दि ईस्ट, वाल्यूम ४५ मे तथा गोपालदास पटेल ने महावीरनो सयमधर्म' (गुजराती) पृ० १२७, मे उदगसाला का अथ स्नानगृह किया है। जब कि आचार्य हेमचन्द्र ने अभिधानचिन्तामणिभमिकाण्ड श्लोक ६७ मे 'प्रपा' (प्याऊ) अथ किया है। यही अर्थ मागधीकोषकार शतावधानी रत्नचन्द्र जी म० ने भी किया है। अर्धमागधी कोष भाग २, पृ० ११८।

३ सूत्रकृताग २।७।७२, नालदीयाध्ययन

गौतम -आयुष्मन् उदक ! तुम्हारा कथन युक्ति-युक्त नही है। मेरी दृष्टि से तो इस प्रकार कहने वाला श्रमण-ब्राह्मण यथार्थ भाषा नही बोलता, वह अनुतापिनी भाषा बोलता है और श्रमण-ब्राह्मणो पर मिथ्या आरोप लगाता है। यहाँ तक कि प्राणी-विशेष की हिंसा को त्यागने वाले को भी दोषी बतलाता है। क्योंकि ससारी जीव त्रसकाय से स्थावर मे उत्पन्न होते है और स्थावर से त्रस मे। जब वह त्रस मे उत्पन्न होते है तब त्रस कहलाते हैं। जिसने त्रस हिंसा का त्याग किया है, उसके लिए वह अघात्य होते है। एतदर्थ प्रत्याख्यान मे 'भूत' विशेषण लगाने की आवश्यकता नही।

उदक—आयुष्मन् गौतम ! आप त्रस का अर्थ क्या करते है। 'त्रस प्राण वह त्रस है' यह अर्थ करते है या अन्य ?

गौतम—आयुष्मन् उदक ! जिन जीवो को आप 'त्रस-भूतप्राण कहते है उन्ही को हम त्रसप्राण कहते है। जिन्हे हम त्रसप्राण कहते है उन्ही को आप त्रस-भूतप्राण कहते है। ये दोनो तुल्यार्थक है, किन्तु आर्य उदक ! आपके विचार मे इन दो मे से 'त्रस-भूतप्राण' यह व्युत्पत्ति निर्दोष है और 'त्रसप्राण त्रस' यह व्युत्पत्ति सदोष है, किन्तु इनमे वास्तविक भेद नही है। इस प्रकार दो वाक्यो मे से एक का खण्डन करना और दूसरे का मण्डन करना यह कैसा न्याय है ?

कितने ही व्यक्ति ऐसे है जो कहते है कि हम गृहस्थाश्रम का त्याग कर श्रामण्यधर्म ग्रहण करने मे समर्थ नही है, अभी हम श्रावकधर्म स्वीकार करते है, पश्चात् समय आने पर श्रमणधर्म स्वीकार करेंगे, वे अपनी अविरतिमय प्रवृत्तियो को मर्यादित करते हुए प्रतिज्ञा करते है, राजाज्ञादि कारण से गृहपति अथवा चोर के बाधने व छोडने के अतिरिक्त हम त्रस जीवो की हिंसा नही करेंगे। प्रस्तुत प्रतिज्ञा भी उनके जीवन की निर्मलता का कारण है।

आर्य उदक ! आपका यह अभिमत है कि त्रस मरकर स्थावर होते है अत त्रसहिंसा के प्रत्याख्यानी के हाथ से उन जीवो की हिंसा होने से उसके प्रत्याख्यान का भग हो जाता है, यह कथन उचित नही है, क्योंकि त्रस नामकर्म के उदय से ही जीव त्रस कहलाते है। जब त्रसगति का आयु क्षीण हो जाता है, तब वे त्रसकाय की स्थिति को छोडकर स्थावर मे जाकर उत्पन्न होते हैं, उस समय उनमे स्थावर नामकर्म का उदय होता है और वे जीव स्थावरकायिक कहलाते है, इसी तरह स्थावरकाय के जीव वहा का आयु

निग्रन्थ प्रवचन पर अपार आस्था थी। वह श्रमण परम्परा का परम उपासक था।[1] उसको 'शेषद्रविका' नामक एक उदकशाला थी।[2] भगवान् महावीर अपने शिष्य समुदाय सहित वहाँ ठहरे हुये थे। उस समय पार्श्वापत्यीय मेतार्य गोत्रीय, पेढालपुत्र उदक नामक निग्रन्थ भी वही निकट ठहरे हुए थे। वे गणधर गौतम से मिले, जिज्ञासाएँ प्रस्तुत की, गौतम की आज्ञा स उन्होने पूछा - आपके प्रवचन का उपदेश करने वाले कुमार पुत्रीय श्रमण अपने पास व्रतादि नियमो को लेने वाले श्रमणोपासको को इस प्रकार प्रत्याख्यान कराते है—राजाज्ञादि कारण से किसी गृहस्थ अथवा चोर के बाँधने-छोडने के अतिरिक्त मैं त्रस जीवो की हिंसा नही करूँगा।[3] आर्य! इस तरह का प्रत्याख्यान दुष्प्रत्याख्यान है। जो इस प्रकार का प्रत्याख्यान कराते है, वे दुष्प्रत्याख्यान कराते हे। इस प्रकार का प्रत्याख्यान करने और कराने वाले अपनी प्रतिज्ञा मे अतिचार लगाते हे क्योकि स्थावर जीव मरकर त्रस रूप मे उत्पन्न होते हे और त्रस जीव मरकर स्थावर रूप मे भी उत्पन्न हो जाते है। इस तरह जो जीव त्रस रूप मे अघात्य थे वे ही स्थावर रूप मे जन्म ग्रहण करने के पश्चात घात्य' हो जाते है। एतदर्थ प्रत्याख्यान मविशेष करना और कराना चाहिए। राजादि कारण से किसी गृहस्थ अथवा चोर के बाधने और छोडने के अतिरिक्त मैं 'त्रसभूत' जीवो की हिसा नही करूँगा। इस प्रकार 'भूत' इस विशेषण के सामर्थ्य मे उक्त दोषापत्ति नही होती। जो क्रोध अथवा लोभ से दूसरो को निर्विशेषण प्रत्याख्यान कराते हे, वह भी उचित नही है। कहिए—गौतम, मेरी बात आपको तर्क युक्त लगी न?

१ रायगिहे नाम नयरे होत्था तत्थण नालदाए बाहिरियाए लेवे नाम गाहावई होत्था से ण लेवे नाम गाहावई समणोवसाए यावि होत्था।

—सूत्रकृताग नालदीयाध्ययन

२ प्रो० जेकोबी ने सेक्रेड बुक्स आव दि ईस्ट, वाल्यूम ४५ मे तथा गोपालदास पटेल ने महावीरनो सयमधर्म' (गुजराती) पृ० १२७, मे उदगसाला का अर्थ स्नानगृह किया है। जब कि आचार्य हेमचन्द्र ने अभिधानचिन्तामणिभमिकाण्ड श्लोक ६७ मे 'प्रपा' (प्याऊ) अथ किया है। यही अर्थ मागधीकोपकार शतावधानी रत्नचन्द्र जी म० ने भी किया हे। अर्धमागधी कोप, भाग २, पृ० २१८।

३ सूत्रकृताग २।७।७२, नालदीयाध्ययन

गौतम -आयुष्मन् उदक ! तुम्हारा कथन युक्ति-युक्त नही है। मेरी दृष्टि से तो इस प्रकार कहने वाला श्रमण-ब्राह्मण यथार्थ भाषा नही बोलता, वह अनुतापिनी भाषा बोलता है और श्रमण-ब्राह्मणो पर मिथ्या आरोप लगाता है। यहाँ तक कि प्राणी-विशेष की हिंसा को त्यागने वाले को भी दोषी बतलाता है। क्योकि ससारी जीव त्रसकाय से स्थावर मे उत्पन्न होते है और स्थावर से त्रस मे। जब वह त्रस मे उत्पन्न होते है तब त्रस कहलाते है। जिसने त्रस हिंसा का त्याग किया है, उसके लिए वह अघात्य होते है। एतदर्थ प्रत्याख्यान मे भूत' विशेषण लगाने की आवश्यकता नही।

उदक—आयुष्मन् गौतम ! आप त्रस का अर्थ क्या करते है। 'त्रस प्राण वह त्रस है' यह अर्थ करते है या अन्य ?

गौतम—आयुष्मन् उदक ! जिन जीवो को आप 'त्रस-भूतप्राण कहते है उन्ही को हम त्रसप्राण कहते है। जिन्हे हम त्रसप्राण कहते है उन्ही को आप त्रस-भूतप्राण कहते है। ये दोनो तुल्यार्थक है, किन्तु आर्य उदक ! आपके विचार मे इन दो मे से 'त्रस-भूतप्राण' यह व्युत्पत्ति निर्दोष है और 'त्रसप्राण त्रस' यह व्युत्पत्ति सदोष है, किन्तु इनमे वास्तविक भेद नही है। इस प्रकार दो वाक्यो मे से एक का खण्डन करना और दूसरे का मण्डन करना यह कैसा न्याय है ?

कितने ही व्यक्ति ऐसे है जो कहते है कि हम गृहस्थाश्रम का त्याग कर श्रामण्यधर्म ग्रहण करने मे समर्थ नही है, अभी हम श्रावकधर्म स्वीकार करते है, पश्चात् समय आने पर श्रमणधर्म स्वीकार करेगे, वे अपनी अविरतिमय प्रवृत्तियो को मर्यादित करते हुए प्रतिज्ञा करते है, राजाज्ञादि कारण से गृहपति अथवा चोर के बाधने व छोडने के अतिरिक्त हम त्रस जीवो की हिंसा नही करेगे। प्रस्तुत प्रतिज्ञा भी उनके जीवन की निर्मलता का कारण है।

आर्य उदक ! आपका यह अभिमत है कि त्रस मरकर स्थावर होते है अत त्रसहिंसा के प्रत्याख्यानी के हाथ से उन जीवो की हिंसा होने से उसके प्रत्याख्यान का भग हो जाता है, यह कथन उचित नही है, क्योकि त्रस नामकर्म के उदय से ही जीव त्रस कहलाते है। जब त्रसगति का आयु क्षीण हो जाता है, तब वे त्रसकाय की स्थिति को छोडकर स्थावर मे जाकर उत्पन्न होते है, उस समय उनमे स्थावर नामकर्म का उदय होता है और वे जीव स्थावरकायिक कहलाते है, इसी तरह स्थावरकाय के जीव वहा का आ

पूर्ण कर जब त्रसकाय मे उत्पन्न होते है तब वे त्रस कहलाते है, प्राण भी कहलाते है, उनका शरीर बडा होता है और आयुष्य स्थिति भी लम्बी होती है।

उदक—आयुष्मन् गौतम ! ऐसा भी कभी समय आ सकता है जब सब-के-सब त्रस जीव स्थावर रूप मे उत्पन्न हो, तब त्रसजीव की हिंसा न करने वाले श्रमणोपासक का 'त्रसहिंसा-प्रत्याख्यान' किस प्रकार रह सकेगा ! क्योकि जिन जीवो की हिंसा का उसने प्रत्याख्यान किया है, वे सभी जीव तो स्थावर हो गये है, अत वह उनकी हिंसा टाल नही सकता।

गौतम—आयुष्मन उदक ! हमारे सिद्धान्तानुसार कभी ऐसा होता ही नही है कि सभी स्थावर त्रस बन जाये और सभी त्रस स्थावर हो जाये। कुछ समय के लिए आपका कथन प्रमाणरूप मान भी लिया जाय, तथापि श्रमणोपासक के त्रस-हिंसा-प्रत्याख्यान मे बाधा नही आती, क्योकि स्थावर पर्याय की हिंसा मे उसका व्रत खण्डित नही होता और त्रसपर्याय मे तो वह अधिक त्रस जीवो की हिंसा को टालता ही है।

आर्य उदक ! आपका यह कथन है कि अधिक त्रस जीवो की हिंसा से निवृत्त होने वाले श्रमणोपासक के लिए उसके किसी भी पर्याय की हिंसा का प्रत्याख्यान नही है, यह कथन न्याययुक्त नही है।

उदक पेढाल और गणधर गौतम का मधुर सवाद चल रहा था कि अन्य पार्श्वपित्य स्थविर भी वहा आ गये। उन्हे देखकर गौतम ने कहा—आर्य उदक ! प्रस्तुत सम्बन्ध मे आपके स्थविरो से भी तो विचार-चर्चा कर ले।

गौतम—आयुष्मन् निर्ग्रन्थो ! इस ससार मे कितने ही ऐसे मनुष्य होते है जिनकी यह प्रतिज्ञा होती है कि "जो यह अनगार साधु है उनको जीवन पर्यन्त नही मारू गा' उनमे से कोई श्रमण श्रामण्यपर्याय का परित्याग कर गृहवास मे चला जाय और श्रमण हिंसा का प्रत्याख्यानी गृहस्थ गृहवास मे रहते हुए उस पुरुष की हिंसा करता है तो क्या उसकी प्रतिज्ञा भग होती है ?

निर्ग्रन्थ स्थविर—प्रतिज्ञा भग नही होगी।

गौतम—निर्ग्रन्थो ! इसी तरह त्रसकाय की हिंसा का त्यागी श्रमणोपासक स्थावरकाय की हिंसा करता हुआ भी अपने प्रत्याख्यान का भग नही करता।

कोई गृहपति या उसका पुत्र धर्म श्रवण कर सर्व सावद्ययोगो का त्याग कर श्रमण बन जाये, उस समय वह सर्व प्रकार की हिंसा का त्यागी कहा जायेगा या नही ?

निर्ग्रन्थ—उस समय वह सर्वथा हिंसात्यागी ही कहा जायेगा ।

गौतम—वह श्रमण चार-पाच वर्षों तक या उससे अधिक समय तक श्रामण्य पर्याय पालकर पुन गृहस्थ हो जाय तो क्या वह सर्वथा हिंसात्यागी कहा जायेगा ?

निर्ग्रन्थ—गृहवासी होने के पश्चात् वह सर्व हिंसात्यागी श्रमण नही कहला सकता ।

गौतम—यह वही जीव है, जो पहले सभी जीवो की हिंसा नही करता किन्तु अब वह ऐसा नही रहा । पहले वह सयत था, अब असयत है । इसी प्रकार त्रसकाय मे से स्थावरकाय मे गया हुआ जीव 'स्थावर' है, त्रस नही ।

कल्पना कीजिए कोई परिव्राजक या परिव्राजिका अन्य मत से निकल कर निर्ग्रन्थ प्रवचन मे प्रवेश कर श्रमणधर्म को ग्रहण करे, उस निर्ग्रन्थ के साथ अन्य श्रमण आहार-पानी का व्यवहार कर सकते है या नही ?

निर्ग्रन्थ उनके साथ आहार-पानी का व्यवहार करने मे किसी भी प्रकार की कोई बाधा नही हो सकती ।

गौतम—श्रमण बना हुआ परिव्राजक पुन गृहस्थ हो जाय, उसके साथ क्या आहार आदि का व्यवहार किया जाएगा ?

निर्ग्रन्थ—उसके साथ ऐसा कोई भी व्यवहार नही किया जा सकता ।

गौतम—जिसके साथ पूर्व भोजन आदि का व्यवहार किया जा सकता था किन्तु अब नही किया जा सकता, क्योकि वह पूर्व श्रमण था, अब नही है । इसी तरह त्रस से स्थावर काय मे गया हुआ जीव, त्रसहिंसा प्रत्याख्यानी के प्रत्याख्यान का विषय नही है, वह स्पष्ट हैं ।

इस प्रकार अनेक दृष्टान्तो से गणधर गौतम ने उदक पेढाल की त्रस मर कर स्थावर हो और वहा पर उसकी हिंसा हो तो श्रमणोपासक के प्रत्याख्यान का भग होता है—इस मान्यता का खण्डन किया ।

सभी जीव स्थावर हो जायेगे तब त्रस प्रत्याख्यानी का व्रत निर्विषय होगा । इस प्रकार के उदक के तर्क का निरसन करते हुए गौतम ने कहा—"जो श्रमणोपासक श्रावक धर्म का पालन करके अन्त मे अनशन पूर्वक समाधि-मरण से मरते है या जो श्रमणोपासक जीवन के ऊषा काल मे व्रत-प्रत्याख्यान

का पालन नही कर सकते पर जीवन की साध्य वेला मे अनशन पूर्वक समाधि मरण प्राप्त होते है, आपकी दृष्टि से उसका मरण कैसा हे ?

निर्ग्रन्थ—इस प्रकार का मरण वस्तुत प्रशसनीय है।

गौतम—जो जीव इस प्रकार मृत्यु प्राप्त करते हे, वे त्रसप्राणी के रूप मे उत्पन्न होते हे और वे ही त्रस जीव श्रमणोपासक के व्रत के विषय हो सकते हें। वहुत से मानव महालोभी महारभी, परिग्रहधारी व अधार्मिक प्रकृति के होते हे जो अपने अशुभ कर्मों से पुन अशुभ गतियो मे उत्पन्न होते है। अनारम्भी श्रमण और अल्पारभी श्रावक आदि मरकर शुभ गतियो मे जाते हे। आरण्यक, आवसथिक, ग्रामनियन्त्रिक और राहसिक प्रभति तापस मरकर भवान्तर मे असुरो की गतियो मे उत्पन्न होते हे और वहा से निकल कर मनुष्य गति मे उत्पन्न होते हे। दीर्घायुष्क, समायुष्क एव अल्पायुष्क जीव मरकर पुन· त्रस रूप मे उत्पन्न होते हे। उक्त सभी प्रकार के जीव यहा पर त्रस है और मर कर फिर त्रस होते हे, ये सभी त्रसजीव श्रमणोपासक के व्रत के विषय नही है।

कितने ही श्रमणोपासक अधिक व्रत-नियम ग्रहण नही कर सकते, तथापि वे देशावकाशिक व्रत ग्रहण करते हे। मर्यादित सीमा से बाहर जाने का प्रत्याख्यान करते हे! उनके व्रत का विपय मर्यादित सीमा के बाहर के जीव तो हे ही, किन्तु सीमा के अन्दर भी जो त्रस जीव है, त्रस मरकर पुन त्रस होते है या स्थावर मरकर त्रस होते है। स्थावरजीव भी जिनकी निरर्थक हिंसा का श्रमणोपासक त्यागी होता है वे श्रमणोपासक के व्रत का विषय है।

निर्ग्रन्थो! यह कदापि सभव नही है कि सभी त्रसजीव स्थावर हो जाये और सभी स्थावरजीव त्रस हो जाये। जब ससार की ऐसी स्थिति है तो फिर कोई ऐसा पर्याय नही जो श्रमणोपासक के व्रत का विषय हो—यह कथन तर्कयुक्त नही है, निरर्थक ऐसी बातो को लेकर मतभेद करना सर्वथा अनुचित्त है।

आयुष्मन् उदक! मैत्री बुद्धि से भी जो श्रमण-ब्राह्मण की निन्दा करता है वह ज्ञान-दर्शन-चारित्र को प्राप्त कर के भी परलोक की आराधना मे विघ्न उपस्थित करता है। जो गुणी श्रमण-ब्राह्मण की निन्दा न करके उसको मित्र-भाव से देखता हे, वह ज्ञान दर्शन को प्राप्त कर परलोक को सुधारता है।[४]

---

४ सूत्रकृताग २।७।३६

सभव है कि गणधर गौतम की हित शिक्षा उदक पेढालपुत्र के मन मे चुभ गई हो, उसे अपनी वृत्ति पर कुछ झिझक आई हो और इसलिए तत्त्व-चर्चा करने के पश्चात् वह विना किसी प्रकार के अभिवादन एव कृतज्ञता-ज्ञापन के चल पडा तो गौतम को उसका यह अविनय पूर्ण व्यवहार अखरा। एक श्रमण, जिसके धर्म का मूल विनय है।[५] विनय, सभ्यता, शिष्टाचार की शिक्षाओ से जिनका आगम साहित्य भरा पडा है,[६] वह समाधानकर्ता के के प्रति इस प्रकार अविनयपूर्ण व्यवहार करे यह नितान्त अनुचित था। गौतम जैसे महान साधक इस प्रकार की उपेक्षा नही कर सकते थे। गौतम ने उदक पेढालपुत्र को उठते उठते कहा—आयुष्मन्! किसी श्रमण निर्ग्रन्थ के पास यदि धर्म का एक भी श्रेष्ठ पद, एक भी सुवचन 'एगमपि सुवयण' सुनने को मिला हो, तथा किसी ने अनुग्रह करके योग-क्षेम का उत्तम मार्ग दिखाया हो, तो क्या उसके प्रति कुछ भी सत्कार, सम्मान व आभार प्रदर्शित किये बिना चले जाना चाहिए?[७]

गौतम के कहने का तरीका इतना स्नेहपूर्ण व हृदयस्पर्शी था कि उदक पेढालपुत्र के पैर वही रुक गये, वह साश्चर्य गौतम स्वामी को देखने लगा, उसकी आखो मे कृतज्ञता के भाव आने लगे और वह सम्भ्रमित सा हो गया कि मुझे कैसा व्यवहार करना चाहिए?

गौतम ने कहा—आयुष्मन्! मेरे विचार से ऐसे श्रेष्ठ व्यक्ति को पूज्य बुद्धि से नमस्कार करना चाहिए, उसका सत्कार और सम्मान करना चाहिए। उन्हे कल्याणकारी मगलमय देवतास्वरूप मानकर, उनकी पर्युपासना करनी चाहिए।

गौतम के हिय मिय विणयमय हित-मित एव निर्भीक वचनो को सुन कर उदक पेढाल का हृदय गद्गद् हो गया। उसने क्षमा माँगते हुए विनय-पूर्वक अपनी भूल स्वीकार की और कहा—

आयुष्मन् गौतम! इसके पूर्व मैंने ऐसे वचन न तो सुने ही थे और न

---

५ धम्मस्स विणओ मूल। - दशवै० ९।२।२

६ (क) जस्सतिए धम्मपयाइ सिक्खे, तस्सतिए वेणाइय पउजे। —दशवै० ९।१।१२

(ख) उत्तराध्ययन १।१८-२३

७ सूत्रकृताङ्ग २।७।३७

का पालन नही कर सकते पर जीवन की साध्य वेला मे अनशन पूर्वक समाधि मरण प्राप्त होते है, आपकी दृष्टि से उसका मरण कैसा है ?

निग्रन्थ—इस प्रकार का मरण वस्तुत प्रशसनीय है।

गौतम—जो जीव इस प्रकार मृत्यु प्राप्त करते है, वे त्रसप्राणी के रूप मे उत्पन्न होते हे और वे ही त्रस जीव श्रमणोपासक के व्रत के विषय हो सकते हे। बहुत से मानव महालोभी महारभी, परिग्रहधारी व अधार्मिक प्रकृति के होते ह जो अपने अशुभ कर्मो से पुन अशुभ गतियो मे उत्पन्न होते हे। अनारम्भी श्रमण और अल्पारभी श्रावक आदि मरकर शुभ गतियो मे जाते है। आरण्यक, आवसथिक, ग्रामनियन्त्रिक और राहसिक प्रभृति तापस मरकर भवान्तर मे असुरो की गतियो मे उत्पन्न होते हे और वहा से निकल कर मनुष्य गति मे उत्पन्न होते हे। दीर्घायुष्क, समायुष्क एव अल्पायुष्क जीव मरकर पुन· त्रस रूप मे उत्पन्न होते हे। उक्त सभी प्रकार के जीव यहा पर त्रस ह और मर कर फिर त्रस होते है, ये सभी त्रसजीव श्रमणोपासक के व्रत के विषय नही है।

कितने ही श्रमणोपासक अधिक व्रत-नियम ग्रहण नही कर सकते, तथापि वे देशावकाशिक व्रत ग्रहण करते हे। मर्यादित सीमा से बाहर जाने का प्रत्याख्यान करते है। उनके व्रत का विषय मर्यादित सीमा के बाहर के जीव तो है ही, किन्तु सीमा के अन्दर भी जो त्रस जीव है, त्रस मरकर पुन त्रस होते है या स्थावर मरकर त्रस होते है। स्थावरजीव भी जिनकी निरर्थक हिसा का श्रमणोपासक त्यागी होता है, वे श्रमणोपासक के व्रत का विषय है।

निग्रन्थो ! यह कदापि सभव नही है कि सभी त्रसजीव स्थावर हो जाये और सभी स्थावरजीव त्रस हो जाये। जब ससार की ऐसी स्थिति है तो फिर कोई ऐसा पर्याय नही जो श्रमणोपासक के व्रत का विषय हो—यह कथन तर्कयुक्त नही है, निरर्थक ऐसी बातो को लेकर मतभेद करना सर्वथा अनुचित्त है।

आयुष्मन् उदक ! मैत्री बुद्धि से भी जो श्रमण-ब्राह्मण की निन्दा करता है वह ज्ञान-दर्शन चारित्र को प्राप्त कर के भी परलोक की आराधना मे विघ्न उपस्थित करता है। जो गुणी श्रमण-ब्राह्मण की निन्दा न करके उसको मित्र-भाव से देखता है, वह ज्ञान दर्शन को प्राप्त कर परलोक को सुधारता है।[४]

---

४ सूत्रकृताग २।७।३६

सभव है कि गणधर गौतम की हित शिक्षा उदक पेढालपुत्र के मन मे चुभ गई हो, उसे अपनी वृत्ति पर कुछ झिझक आई हो और इसलिए तत्त्व-चर्चा करने के पश्चात् वह बिना किसी प्रकार के अभिवादन एव कृतज्ञता-ज्ञापन के चल पडा तो गौतम को उसका यह अविनय पूर्ण व्यवहार अखरा। एक श्रमण, जिसके धर्म का मूल विनय है।[५] विनय, सभ्यता, शिष्टाचार की शिक्षाओ से जिनका आगम साहित्य भरा पडा है,[६] वह समाधानकर्ता के के प्रति इस प्रकार अविनयपूर्ण व्यवहार करे यह नितान्त अनुचित था। गौतम जैसे महान साधक इस प्रकार की उपेक्षा नही कर सकते थे। गौतम ने उदक पेढालपुत्र को उठते-उठते कहा—आयुष्मन्! किसी श्रमण निर्ग्रन्थ के पास यदि धर्म का एक भी श्रेष्ठ पद, एक भी सुवचन 'एगमपि सुवयण' सुनने को मिला हो, तथा किसी ने अनुग्रह करके योग-क्षेम का उत्तम मार्ग दिखाया हो, तो क्या उसके प्रति कुछ भी सत्कार, सम्मान व आभार प्रदर्शित किये बिना चले जाना चाहिए?[७]

गौतम के कहने का तरीका इतना स्नेहपूर्ण व हृदयस्पर्शी था कि उदक पेढालपुत्र के पैर वही रुक गये, वह साश्चर्य गौतम स्वामी को देखने लगा, उसकी आखो मे कृतज्ञता के भाव आने लगे और वह सभ्रमित सा हो गया कि मुझे कैसा व्यवहार करना चाहिए?

गौतम ने कहा—आयुष्मन्! मेरे विचार से ऐसे श्रेष्ठ व्यक्ति को पूज्य बुद्धि से नमस्कार करना चाहिए, उसका सत्कार और सम्मान करना चाहिए। उन्हे कल्याणकारी मगलमय देवतास्वरूप मानकर, उनकी पर्युपासना करनी चाहिए।

गौतम के **हिय मिय विणयमय** हित-मित एव निर्भीक वचनो को सुन कर उदक पेढाल का हृदय गद्गद् हो गया। उसने क्षमा माँगते हुए विनय-पूर्वक अपनी भूल स्वीकार की और कहा—

आयुष्मन् गौतम! इसके पूर्व मैंने ऐसे वचन न तो सुने ही थे और न

---

५ धम्मस्स विणओ मूल। — दशवै० ९।२।२

६ (क) जस्सतिए धम्मपयाइ सिक्खे, तस्सतिए वेणइय पउजे। —दशवै० ९।१।१२

(ख) उत्तराध्ययन १।१८–२३

७ सूत्रकृताङ्ग २।७।३७

जाते ही थे। इन वचनो को सुनकर मुझे विश्वास हो गया है। मैं स्वीकार करता हूँ कि आपका कथन यथार्थ है।[८]

निर्ग्रन्थ उदक पेढाल ने चातुर्याम परम्परा से निकलकर पचमहाव्रतात्मक धर्म को ग्रहण करने की अपनी इच्छा व्यक्त की। गौतम उनकी इच्छा का अनुमोदन करते हुए उनको अपने साथ भगवान महावीर पास ले गये। भगवान महावीर को वन्दन, नमस्कार कर पचमहाव्रतिक सप्रतिक्रमण धर्म को स्वीकार कर वे महावीर के श्रमणसघ मे सम्मिलित हुए।[९]

इस वर्ष जालि, मयालि, आदि अनेक श्रमणो ने विपुलाचल पर अनशन कर देह त्यागा।

इस वर्ष भगवान महावीर ने अपना वर्षावास नालन्दा मे सम्पन्न किया।

सुदर्शन श्रेष्ठी की दीक्षा

वर्षावास पूर्ण होने पर भगवान नालदा से विहार कर अनेक क्षेत्रो को पावन करते हुए वैशाली के सन्निकट अवस्थित वाणिज्यग्राम पधारे। उस समय वाणिज्यग्राम व्यापार का प्रमुख केन्द्र था। सुदर्शन सेठ वहा का एक मुख्य व्यापारी था। वह भगवान के आगमन के समाचार श्रवण कर दर्शनार्थ गया, उसने भगवान से जिज्ञासा प्रस्तुत की—भगवन्! काल कितने प्रकार का है?

महावीर—काल चार प्रकार का है—१ प्रमाणकाल[१], २ यथायुनिर्वृत्तिकाल, ३ मरणकाल, ४ अद्धाकाल।

सुदर्शन—भगवन्! प्रमाणकाल कितने प्रकार का है?

---

८ सूत्रकृताग २।७।३८

९ सूत्रकृताग २।७।८१, नालदीय

१ प्रमाणकाले' त्ति प्रमीयते—परिच्छिद्यते येन वर्षशतादि तत् प्रमाण स चासौ कालश्चेति प्रमाणकाल प्रमाण व परिच्छेदन वर्षादिस्तत्प्रधानस्तदर्थो वा काल प्रमाणकाल —अद्धा कालस्य विशेषो दिवसादि लक्षण।

—भगवती सूत्र ११।११।४२४ वृत्ति

महावीर—वह दिवस-प्रमाण काल और रात्रि-प्रमाणकाल के रूप मे दो प्रकार का है। चार-चार पोरसी का दिन व रात्रि होती है। अधिक-से-अधिक साढे चार मुहूर्त की पौरसी और न्यून से न्यून तीन मुहूर्त की पौरसी होती है।

सुदर्शन—भगवन ! किस दिन या रात मे साढे चार मुहूर्त की उत्कृष्ट पौरसी होती है और कब जघन्य पौरसी होती है ?

महावीर—आषाढ पूर्णिमा को अठारह मुहूर्त का दिन होता है और बारह मुहूर्त की रात होती है। पौष-पूर्णिमा को अठारह मुहूर्त की रात होती है और बारह मुहूर्त का दिन होता है।

सुदर्शन—भगवन् ! क्या दिन और रात कभी बराबर होते है ?

महावीर—चैत्री पूर्णिमा और आश्विन पूर्णिमा को दिन रात बराबर होते है। उस दिन पन्द्रह मुहूर्त का दिन और पन्द्रह मुहूर्त की रात होती है। उस समय चार मुहूर्त मे चौथाई मुहूर्त कम की एक पौरषी दिन और रात मे होती है।

सुदर्शन—यथायुर्निवृत्तिकाल कितने प्रकार का है ?

महावीर—जो कोई नैरयिक, तिर्यचयोनिक, मनुष्य व देव अपने समान आयुष्य बाधता है और तद्रूप उसका पालन करता है, वह यथायुर्नि-वृत्तिकाल है।

सुदर्शन—मरणकाल क्या है ?

महावीर—शरीर से जीव का या जीव से शरीर का वियोग मरण काल है।[3]

सुदर्शन—अद्धाकाल किसे कहते है ?

महावीर—अद्धाकाल समयरूप, आवलिका रूप, यावत् अवसर्पिणी-रूप अनेक प्रकार का है।[4]

सुदर्शन—पल्योपम और सागरोपम की क्या आवश्यकता है, क्या उनका क्षय होता है या नही ?

---

२ वही

३ मरणकाले त्ति मरणेन विशिष्ट काल मरणकाल अद्धाकाल एव, मरणमेव वा कालो मरणस्य कालपर्यायत्वान्मरण काल । —भगवती ११।११।४२४।१।६

४ अद्धाकाले त्ति अद्धा समयादयो विशेषास्तद्रूप कालोऽद्धाकाल चन्द्रसूर्यादि क्रिया-विशिष्टोऽर्द्धतृतीयद्वीप समुद्रान्तवर्ती समयादि । —वही

महावीर—नैरयिक, तिर्यंचयोनिक, मनुष्य और देवो के माप के लिए पल्योपम और सागरोपम की आवश्यकता है।

अन्त मे भगवान ने सुदर्शन के प्रश्न पर उसके पूर्वभवो का वर्णन करते हुए कहा पूर्वभव मे तू एक बार महाबल नामक राजकुमार था, तूने गृहस्थ आश्रम को त्याग कर श्रमण धर्म स्वीकार किया। दीर्घकाल तक सयम-साधना कर ब्रह्मदेवलोक मे दस सागर की स्थिति वाले देव बने और वहा से आयु पूर्ण कर सुदर्शन बने हो। पूर्व भव मे सयमधर्म स्वीकार करने के कारण तेरे मे अभी भी सस्कार है, जिसके कारण तुझे जिनधर्म प्रिय है और तू स्थविरो के मुखारविन्द से धर्म श्रवण करता रहा है।

अपने पूर्वभव श्रवण कर सुदर्शन को जातिस्मरण ज्ञान हुआ। उसने उसी क्षण भगवान को वन्दन कर कहा-भगवन्! आपका प्रस्तुत कथन यथार्थ है। उसने श्रमण-धर्म स्वीकार किया। चौदह पूर्वो का अध्ययन कर, बारह वर्षों तक श्रमणधर्म का पालन कर, कर्म क्षय कर निर्वाण प्राप्त किया।[५]

आनन्द को अवधिज्ञान

भगवान महावीर की आज्ञा लकर गणधर गौतम भिक्षा के लिए वाणिज्यग्राम मे पधारे। भिक्षा लेकर वे पुन 'दूतिपलाश' चैत्य की ओर लौट रहे थे। रास्ते मे कोल्लागसन्निवेश' के सन्निकट उन्होने आनन्द श्रावक के अनशन ग्रहण की वार्ता सुनी। गौतम के मन मे विचार उठा कि आनन्द श्रमणोपासक भगवान का परम उपासक है, उसने अनशन व्रत ग्रहण कर रखा है, तो मुझे जाकर आनन्द को देखना चाहिए। वे कोल्लागसन्निवेश से सीधे ही आनन्द की पौषधशाला मे पहुँचे।

गौतम को आये हुए देखकर आनन्द बहुँत ही प्रसन्न हुआ। उसने नमस्कार कर विनय पूर्वक निवेदन किया—भगवन्! मेरी शारीरिक शक्ति अत्यधिक क्षीण हो गई है, अत मैं उठने मे असमर्थ हू, कृपया आप इधर पधारिये। जिससे चरणो मे नतमस्तक होकर वन्दन कर सकूँ। गौतम आनन्द के निकट गये, आनन्द ने विधिपूर्वक वन्दन किया।

प्रासगिक वार्तालाप के पश्चात् आनन्द ने पूछा—क्या भगवन्! घर

---

५ भगवती शतक ११, उद्देशक ११, सूत्र ४३२

मे रहते हुए एव धर्म का पालन करते हुए श्रावक को अवधिज्ञान हो सकता है ?

गौतम—हाँ आनन्द ! श्रमणोपासक को अवधिज्ञान हो सकता है।

आनन्द—भगवन् ! मुझे भी अवधिज्ञान हुआ है, जिससे मैं पूर्व दक्षिण और पश्चिम मे लवणसमुद्र मे पाँचसौ योजन, उत्तर मे क्षुद्रहिम-वद्वर्षधर, ऊपर सौधर्मकल्प और नीचे लोलच्चुअ नामक नरकावास तक रूपी पदार्थों को जानता व देखता हूँ। गौतम ने आनन्द के विशाल अवधिज्ञान का वर्णन सुना तो आश्चर्य हुआ। वे बोले—आनन्द ! श्रमणोपासक को अवधिज्ञान तो होता है, पर इतनी विस्तृत सीमा वाला अवधिज्ञान नही हो सकता। तुम्हारा कथन भ्रान्ति युक्त है, वह सत्य प्रतीत नही होता, इसलिए तुम्हे अपनी इस भूल के लिए प्रायश्चित्त करना चाहिए।

विनय एव विस्मय के साथ आनन्द ने निवेदन किया—भगवन ! क्या जिनशासन मे ऐसा भी विधान है कि सत्य तथ्य एव सद्भूत कथन के लिए भी प्रायश्चित्त करना पडता है ?

गौतम—आनन्द ! नही।

आनन्द—भगवन् ! तो फिर आप मुझे सत्यकथन के लिए प्रायश्चित्त करने का कैसे कह रहे है ?

आनन्द की बात सुनकर गौतम असमजस मे पड गये, उन्हे अपनी बात पर शका हुई, वे वहाँ से सीधे ही भगवान् महावीर के पास पहुचे। भगवान को वन्दन कर गौतम ने अत्यन्त नम्रतापूर्वक आनन्द के वार्तालाप की चर्चा करते हुए पूछा–भगवन् ! क्या गहस्थ को इतना विस्तृत सीमा वाला अवधिज्ञान हो सकता है ? आनन्द कहता है कि मुझे ऐसा अवधिज्ञान हुआ है। मैंने उसके कथन का प्रतिवाद करते हुए कहा—"इतना बडा अवधिज्ञान गृहस्थ को नही हो सकता, इस असत्य कथन के लिए तुम्हे प्रायश्चित्त करना चाहिए। किन्तु भगवन ! उसने उलटा मुझे ही प्रायश्चित लेने का कहा। इसमे कौन सही है ?"

गौतम को सम्बोधित कर भगवान ने कहा—गौतम ! आनन्द ने जो कहा है वह सही है, तुम्हे अपनी बात का आग्रह नही होना चाहिए। प्रायश्चित्त तुम्हे करना होगा। तुमने सत्य वक्ता आनन्द की अवहेलना की है, इसलिए तुम लौटकर उसके घर जाओ और अपनी भूल के लिए उससे क्षमा माँगो।[1]

---

१ आणद च समणोवासय एयमट्ठ खामेहि। —उवासगदशा १।८६

गोतम को अपनी भूल का परिज्ञान होते ही वे उसी समय आनन्द गाथापति के पास पहुँचे, अपने कथन पर पश्चात्ताप करते हुए क्षमा माँगी।[२]

प्रस्तुत घटना मे गौतम के व्यक्तित्व का एक महान रूप उजागर हुआ है—विनम्रता। बौद्धिक अनाग्रह और निरहकारवृत्ति। मानव का स्वभाव है वह सामान्य रूप से अपनी भूल को नही जान पाता, जान लेने पर भी उसे स्वीकार नही करता और मन मे स्वीकार भी लेता है तो किसी के समक्ष क्षमा मागना तो मृत्यु से भी अधिक भयानक लगती है, और यदि किसी उच्च पद पर हो और अपनो से छोटे के साथ भूल स्वीकार करने का प्रसग आता है तो उसे अपार वेदना का अनुभव होता है, किन्तु गणधर गौतम को जब अपनी भूल स्वीकार करने का प्रसग आया तो वे बिना किसी ननु नच के उसी समय चल पडे। यह उनके मन की कितनी महानता है। यह विनम्रता उनके आन्तरिक जीवन की पवित्रता की सूचना देती है। तथागत बुद्ध ने भी एक बार कहा था कि निर्ग्रन्थ वह है, जिसके मन मे गाठ नही होती और गाठ उसे नही होती जिसका अहकार क्षीण हो गया है।[३] अपने दो दिन के पारणे की परवाह किये बिना ही गोतम चल पडे आनन्द से क्षमा-याचना करने के लिए।

किरातराज की दीक्षा

वर्षावास समाप्त होने पर भगवान ने वैशाली से कोशलभूमि की ओर विहार किया, अनेक क्षेत्रो मे धर्मोपदेश देते हुए साकेत पधारे। साकेत कोशल देश का प्रसिद्ध नगर था। वहा का रहने वाला जिनदेव श्रावक यात्रा करता हुआ कोटिवर्ष नगर मे पहुँचा। वहा पर म्लेच्छो का राज्य था। जिन देव ने 'किरातराज' को बहुमूल्य रत्न आदि भेट किये। उन बहुँमूल्य रत्नो की चमक-दमक को निहार कर विस्मित हो किरातराज ने पूछा—कहिए ये बहमूल्य रत्न कहाँ से लाये है, मैने तो इस प्रकार के रत्न प्रथमबार ही देखे है ?

---

२ उवासगदशा १, सूत्र ७० से ८५

३ पहीनमानस्स न सत्तिगन्था।

जिनदेव –इस प्रकार के और इससे भी बढिया रत्न हमारे देश मे होते है।

किरातराज—हार्दिक इच्छा तो इस प्रकार की होती हे कि ऐसे ये अनमोल रत्न मैं भी तुम्हारे देश मे चलकर देखूँ। परन्तु मुझे तुम्हारे राजा का भय लगता है।

जिनदेव - हमारे राजा से आपको भयभीत होने की आवश्यकता नही है, तथापि आपके विश्वास के लिए मैं अपने राजा से अनुमति मगवा लेता हू। जिनदेव ने पत्र लिखकर अनुमति प्राप्त कर ली।

जिनदेव के साथ किरातराज साकेत गया और जिनदेव का अतिथि बनकर रहा। उसी समय भगवान महावीर साकेत के उद्यान मे पधारे। भगवान के आगमन के समाचार सुनकर साकेत का राजा शत्रु जय भी भगवान को वन्दन के लिए पहुँचा, अन्य हजारो भी भगवान के दर्शन के लिए जा रहे थे। विचित्र चहल-पहल को देखकर किरातराज ने जिनदेव से पूछा—ये सभी लोग कहा जा रहे है?

जिनदेव—आज नगर के बाहर बहुत बडा रत्नो का व्यापारी आया है, वह सभी को अनमोल रत्न वितरण करता है, इसीलिए लोग उसके पास जा रहे है।

किरातराज—यह तो बहुत ही सुनहरा अवसर हमे मिला है, हम भी उनके पास जाये और उनके पास के रत्न देखे। किरातराज के साथ जिनदेव भगवान के समवसरण मे पहुँचा। वह भगवान के स्फटिक सिंहासनादि दिव्य प्रातिहार्यो को देखकर विस्मित था। उसने रत्नो के कितने प्रकार होते है और उनका क्या मूल्य है आदि जिज्ञासाए प्रस्तुत की।

भगवान महावीर ने कहा—रत्न दो प्रकार के होते है- एक द्रव्यरत्न है और दूसरा भावरत्न है। द्रव्यरत्न के अनेक प्रकार है और भावरत्न के तीन प्रकार हे - (१) दर्शनरत्न, (२) ज्ञानरत्न, और (३) चारित्ररत्न। भावरत्नो पर विस्तार से प्रकाश डालते हुए कहा—ये अत्यन्त प्रभावशाली और अनमोल रत्न है, जो इन रत्नो को धारण करता है, उनके सभी इहलोक और परलोक सम्बन्धी कष्ट मिट जाते हे। इन रत्नो का प्रभाव अपरिमित है। द्रव्यरत्न केवल वर्तमान भव मे ही सुख देते हे।

रत्नो का विश्लेषण सुनकर किरातराज अत्यन्त प्रसन्न हुआ, उसने कहा—भगवन! मुझे भावरत्न प्रदान करें, भगवान ने उसे रजोहरण, मुख-

वस्त्रिका आदि श्रमणोपकरण प्रदान किये । उसने उसी समय दीक्षा ग्रहण की ।[1]

भगवान ने साकेत से पाञ्चाल की ओर प्रस्थान किया, काम्पिल्य मे ठहर कर सूरसेन की ओर पधारे। मथुरा, शौर्यपुर, नन्दीपुत्र आदि मे धर्म-प्रचार कर पुन विदेह भूमि मे पधारे और मिथिला मे छत्तीसवा वर्षावास किया।

अन्यतीर्थिक और स्थविर

वर्षावास समाप्त होने पर भगवान् ने मिथिला से विहार किया और अनुक्रम से विहार करते हुए राजगृह के गुणशील उद्यान मे विराजे। गुण-शीलक के सन्निकट ही अन्यतीर्थिक रहते थे। भगवान् के पावन-प्रवचन को श्रवण कर सभा विसर्जित हुई। अन्यतीर्थिको ने आकर स्थविर मुनियो से कहा—आर्य ! आप त्रिविध त्रिविध से असयत, अविरत और अप्रतिहत पाप कर्म करने वाले है।

स्थविर आर्य ! आप हमे इस प्रकार किसलिए कहते है ?

अन्यतीर्थिक—आर्य ! आप लोग अदत्त ग्रहण करते है, अदत्त का आहार करते है, अदत्त वस्तु का स्वाद लेते है, इस कारण से आप असयत, अविरत और एकान्त बाल है।

स्थविर—आर्य ! किस कारण से आप कहते है कि हम अदत्त ग्रहण करते है, अदत्त का आहार करते है और अदत्त का स्वाद लेते है।

अन्यतीर्थिक—आर्य आपके मत से जो वस्तु दी जाती है वह दी हुई नही है, ग्रहण की जाती हुई वस्तु ग्रहण की हुई नही है, पात्र मे डाली हुई वस्तु डाली हुई नही है। आपके अभिमत से दीयमान पदार्थ दाता के हाथ से छूटने के पश्चात् आपके पात्र मे पडने से पूर्व, बीच मे से ही उसे कोई ले ले तो वह पदार्थ गृहस्थ का गया हुआ माना जाता है आपका नही। इससे

---

१ (क) आवश्यक चूर्णि उत्तरार्द्ध पत्र २०३, २०४

(ख) आवश्यक हारिभद्रीय वृत्ति ७१५-७१६

(ग) आवश्यक निर्युक्ति दीपिका द्वि० भाग, गाथा १३०५, पत्र ११

(घ) कोडिवरिस चिलाए, जिणदेवे रयणपुच्छा कहणाए।

—आव० निर्युक्ति, गा० १३०५

यह सिद्ध है कि आपके पात्र मे जो पदार्थ गिरता है वह अदत्त है। क्योकि जो पदार्थ दानकाल मे आपका नही हुआ वह बाद मे भी आपका नही हो सकता, इस प्रकार अदत्त को ग्रहण करते, आस्वादन लेते और उपभोग करते हुए आप असयत, अविरत और बाल ही सिद्ध होते है।

स्थविर—आर्य ! हम अदत्त ग्रहण नही करते, और न उसका आस्वादन ही करते है और न उपभोग ही, किन्तु दत्त का ही उपयोग करते है। अत हम सयत, विरत और पण्डित ही सिद्ध होते है।

अन्यतीर्थिक—आप किस कारण से दत्तग्राही है, कृपया हमे समझाइए।

स्थविर हमारे मतानुसार दीयमान दत्त, प्रतिगृह्यमाण प्रतिगृहीत और निसृज्यमान निसृष्ट है। गृहपति के हाथ से छूटने के पश्चात् यदि उसे कोई बीच मे से ही ग्रहण कर ले तो वह हमारा जाता है, गृहपति का नही। इससे स्पष्ट है कि हम किसी भी तर्क से अदत्तग्राही सिद्ध नही होते, किन्तु आप स्वय असयत, अविरत और बाल सिद्ध होते है।

अन्यतीर्थिक—हम असयत, अविरत और बाल किस प्रकार है ?

स्थविर—स्पष्ट है कि आप अदत्त ग्रहण करते है। आपके मतानुसार दीयमान अदत्त, प्रतिगृह्यमाण अप्रतिगृहीत और निसृज्यमान अनिसृष्ट है। अत आप अदत्त ग्रहण करने वाले है, त्रिविध असयत अविरत और बाल है।

अन्यतीर्थिक—आप भी असयत अविरत और बाल है। क्यो कि आप पृथ्वीकाय पर आक्रमण करते है, उसे घिसते है, हनते है, पदाभिघात करते है, और स्पर्शित करते है, परितापित करते है, क्लान्त करते है।

स्थविर—हम गमन करते हुये पृथ्वी के जीव दबाते नही है, नही हनन करते है और न मारते ही है। हम किसी आवश्यक कार्य से किसी एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाते है, विवेकपूर्वक चलते है, न हम पृथ्वीकाय पर आक्रमण करते है और न विनाश ही करते है परन्तु आप स्वय पृथ्वी का आक्रमण करते है, उनके जीवो का विनाश करते है अत आप असयत, अविरत और बाल है।

अन्यतीर्थिक—आपका मन्तव्य यह है कि गम्यमान अगत, व्यतिक्रम्यमान अव्यतिक्रान्त और राजगृह को सप्राप्त होने का इच्छुक असप्राप्त है।

स्थविर—हमारा मन्तव्य इस प्रकार का नही है। हमारे मत मे गम्य-

मान गत, व्यतिक्रम्यमाण व्यतिक्रान्त और सप्राप्यमाण सप्राप्त ही माना जाता है।

स्थविर भगवन्तो ने इस प्रकार विचार-चर्चा कर, अपने पैने तर्कों से अन्यतीर्थिको को निरुत्तर कर दिया और 'गति-प्रवाद' नामक अध्ययन की रचना की।[1]

कालोदायी अनगार के प्रश्न

कालोदायी श्रमण ने भगवान् महावीर से प्रश्न किया— भगवन् ! जीव अशुभ फल वाले कर्मों को स्वय किस प्रकार करता है ?

महावीर— जैसे कोई मनुष्य स्निग्ध और सुगन्धित विप मिश्रित मादक पदार्थ का भोजन करता है, तब वह भोजन उसे अत्यन्त प्रिय लगता है और उसे बडे चाव से खाता रहता है किन्तु उससे होने वाली हानि को वह विस्मृत हो जाता है। उस भोजन का खाने वाले पर बहुत ही बुरा प्रभाव पडता है। इसी प्रकार जब हिसा, असत्य, चोरी, कुशील, परिग्रह, क्रोध मान, माया, लोभ, और राग-द्वेप आदि पापो का सेवन करता है, तब वे कार्य उसे अत्यन्त मधुर लगते हे पर उससे जो पाप कर्म बधता है उनका फल बडा अनिष्ट होता है, जो पापकृत्य करने वाले को ही भोगना पडता है।

कालोदायी — भगवन् ! जीव शुभ कर्मों को किस प्रकार करता है ?

महावीर - जैसे कोई मानव औषधिमिश्रित भोजन खाता है, वह भोजन तीखा व कडुवा होने से रुचिकर न होने पर भी बल वीर्यवर्द्धक होने से उसे खाते है। उसी प्रकार अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, क्षमा, अलोभ आदि शुभ कर्मो की प्रवृत्तियाँ मन को मनोहर नही लगती है, प्रारभ मे वे दूसरो की प्रेरणा से और बिना प्रेरणा के भी की जाती है। पर उसका परिणाम अत्यन्त सुखकर होता है।[2]

कालोदायी—भगवन् ! दो व्यक्ति हे, दोनो के पास समान उपकरण है। उन दो व्यक्तियो मे से एक अग्नि को प्रज्वलित करता है और दूसरा उसे बुझाता हे, कृपया बताइए प्रज्वलित करने वाला अधिक आरभ और पाप का भागी होता है या बुझाने वाला ?

महावीर—उन दो व्यक्तियो मे जो अग्नि को प्रज्वलित करता है वह

१ भगवती ८।७। पत्र ३७९-३८०

२ भगवती सूत्र शतक ७, उद्दे० १०

अधिक आरभ और कर्म-बधन करता है, क्योकि जो व्यक्ति अग्नि को प्रज्व-
लित करता है वह पृथ्वी, जल, वायु वनस्पति, और त्रस की हिंसा अधिक
करता है और अग्नि की हिंसा कम करता है और जो अग्नि को बुझाता है वह
अग्नि का आरभ तो अधिक करता है परन्तु पृथ्वी, पानी, वायु, वनस्पति
और त्रस की हिंसा कम करता है और अग्नि से होने वाली हिंसा को घटाता
है। इसलिए आग जलाने वाला अधिक आरभ करता है और बुझाने वाला
कम।[3]

कालोदायी—भगवन्! क्या अचित्त पुद्गल प्रकाश या उद्योत करते
है? यदि करते है तो किस प्रकार प्रकाशित होते है?

महावीर— अचित्त पुद्गल भी प्रकाश करते है। जब कोई तेजोलेश्या-
धारी मुनि तेजोलेश्या छोडता है तब वे पुद्गल दूर दूर तक गिरते है वे दूर
और समीप प्रकाश फैलाते है। पुद्गलो के अचित्त होते हुए भी प्रयोक्ता हिंसा
करने वाला और प्रयोग हिंसाजनक होता है। पुद्गल मात्र रत्नादि की भाति
अचित्त होते है।[४]

भगवान के उत्तरो को सुनकर कालोदायी मुनि का समाधान हो गया,
उसने भगवान को नमस्कार किया। छट्ठ अट्ठम आदि तप की साधना जीवन
पर्यन्त करता रहा और जीवन की सान्ध्यवेला मे अनशन कर समाधिपूर्वक
आयु पूर्ण कर मोक्ष प्राप्त किया।[५]

गणधर प्रभास की मुक्ति

इसी वर्ष गणधर प्रभास ने भी गुणशील उद्यान मे ही एक मास का
अनशन कर निर्वाण प्राप्त किया और साथ ही अनेक दीक्षाए भी हुई।
भगवान् ने अपना सैतीसवा वर्षावास राजगृह मे किया।

पुद्गल परिणामो के सम्बन्ध मे चर्चा

वर्षावास पूर्ण होने के पश्चात् अनेक ग्रामो मे परिभ्रमण कर भगवान्
पुन: राजगृह के गुणशील उद्यान मे पधारे। गणधर गौतम ने भगवान
से प्रश्न किया कि भगवन्! अन्यतीर्थिक इस प्रकार कहते है— चलमान
चलित, उदीर्यमाण उदीरित, वेद्यमान वेदित, हीयमान हीन छिद्यमान छिन्न,

---

३ भगवती शतक ७, उद्दे० १०

४ भगवती शतक ७, उद्दे० १०

५ भगवती श० ७, उद्दे० १३

भिद्यमान भिन्न, दह्यमान दग्ध, म्रियमाण मृत और निर्जीर्यमाण निर्जीर्ण नही होता।[६]

साथ ही वे यह भी कहते हे—दो परमाणु पुदगल परस्पर एक रूप मे नही मिलते। क्योकि दो परमाणु पुद्गलो मे स्निग्धता का अभाव है। तीन परमाणु एक साथ मे मिल सकते हे, क्योकि उनमे स्निग्धता है। इन एकत्र मिले हुए तीन परमाणुओ को पृथक् करने पर दो या तीन विभाग होगे। दो विभाग होने पर डेढ-डेढ परमाणु का एक-एक विभाग होगा। और तीन विभाग होने पर एक-एक परमाणु का एक-एक विभाग होगा। इसी तरह चार या पाच आदि परमाणु पुद्गल परस्पर मिलते है और उन मिले हुए परमाणुओ का समूह हो दु ख को उत्पन्न करता है। वह दु ख शाश्वत है, उसमे न्यूनता और अधिकता होती रहती है।[७]

वे यह भी कहते हे जो भापा बोली जाने वाली है, या बोली गई, वह भाषा है, पर वर्तमान मे जो भापा बोली जा रही है वह भापा भापा नही हे। भापा 'भापक' की नही किन्तु अभाषक की कहलाती है।

अन्यतीर्थिको का यह भी कहना है कि प्रथम क्रिया दु ख रूप होती है और पश्चात् भी वह दु ख रूप होती है किन्तु क्रिया काल मे क्रिया दु खात्मक नही होती, चू कि 'करण' से नही, अपितु अकरण से ही क्रिया दु खात्मक होती हे।

वे यह भी मानते है कि दु ख को कोई निर्माण नही करता और न कोई स्पर्श भी करता है। प्राणिमात्र कुछ भी किये बिना ही दु खो का अनुभव करते हे।

क्या भगवन् ! अन्यतीर्थिको की ये सारी बाते सत्य, तथ्य से युक्त है या किस प्रकार हे ?[८]

महावीर—अन्यतीथिको का प्रस्तुत कथन चलमान वलित नही होता है, मिथ्या है। मेरा स्पष्ट मन्तव्य है चलेमाणे चलिए—जो चलने लगा

---

६ अन्नउत्थिया ण भते ! एव आइक्खति जाव एव परूवेति—एव खलु चलमाणे अचलिए, जाव-निज्जरिज्जमाणे अणिज्जिन्ने ।

—भगवती शतक १, उद्दे० १०।३०८

७ भगवती १।१०।

८ भगवती १।१०।३१२-३१६

ईर्यापथिकी और साम्परायिकी ये दो क्रियाए करता है। जिस समय ईर्या-पथिकी क्रिया करता है उस समय साम्परायिकी भी करता है, जिस समय साम्परायिकी करता है उस समय ईर्यापथिकी भी करता है। क्या यह सत्य है ?

महावीर—अन्यतीर्थिको का प्रस्तुत कथन सही नही है। मेरा स्पष्ट मन्तव्य है कि जीव एक समय मे एक ही क्रिया करता है। जिस समय ईर्या-पथिकी क्रिया करता है उस समय साम्परायिकी नही करता और साम्परा-यिकी के समय ईर्यापथिकी नही करता।[१०]

एक समय मे एक ही वेद

गौतम—अन्यतीर्थिक यह भी कहते है कि निर्ग्रन्थ आयु पूर्ण कर देव-लोक मे देव होता है, वहा पर वह अन्य देव व देवियो के साथ विषयो का उपभोग नही करता, अपितु वह अपनी ही आत्मा मे से अन्य वैक्रिय रूप बना-कर उसके साथ विषयसुख का सेवन करता है। क्या यह सत्य है ?

महावीर—अन्यतीर्थिको की यह बात भी सत्य नही है। सत्य यह है कि निर्ग्रन्थ महातेजस्वी देव बनता है, वहा वह अन्य देव व देवियो के साथ विषयेच्छा पूर्ण करता है। एक जीव एक समय मे एक ही वेद का अनुभव करता है। स्त्रीवेद के अनुभव के समय पुरुषवेद का अनुभव नही करता और न पुरुषवेद के अनुभव के समय स्त्रीवेद का।

पुरुष-वेद के उदयकाल मे पुरुष स्त्री की और स्त्री-वेद के उदयकाल मे स्त्री पुरुष की प्रार्थना करती है।[११]

गणधर अचलभ्राता और मेतार्य का निर्वाण

गणधर अचलभ्राता और मेतार्य ने गुणशील उद्यान मे मासिक अनशन कर निर्वाण प्राप्त किया।

इस वर्ष भगवान ने वर्षाकाल नालन्दा मे व्यतीत किया।

१० गोयमा ! ज ण ते अन्नउत्थिया एवमाइक्खति त चेव जाव, जे ते एव आहिसु, मिच्छा ते एव आहिसु। अह पुण गोयमा ! एव आइक्खामि एव खलु एगे जीवे एगसमए एक्क किरिय पकरेइ। पर उत्थियवत्तव्व णेयव्व। ससमय वत्तव्वयाए णेयव्व। जाव इरियावहिय, सम्पराइय वा।

—भगवती १।१०।३२५

११ भगवती

मिथिला मे

नालन्दा से विहार कर भगवान ने विदेह जनपद की ओर विहार किया। अनेक क्षेत्रो को पावन करते हुए मिथिला पधारे। वहा के राजा जितशत्रु ने मणिभद्र चैत्य[12] मे जाकर प्रभु को वन्दन किया और उपदेश को सुना।

इन्द्रभूति गौतम ने सूर्य, चन्द्र आदि के सम्बन्ध मे अनेक प्रश्न किये, भगवान ने उन प्रश्नो के उत्तर विस्तार से दिये।[13]

भगवान ने अपना उनचालीसवा वर्षावास मिथिला मे व्यतीत किया।

वर्षावास के पश्चात भगवान ने विदेह मे विचरण कर अनेक श्रद्धालुओ को श्रमण-धर्म मे दीक्षित किया और श्रावकधर्म पर आरूढ किया। सयोग वशात् यह चालीसवा चातुर्मास भी मिथिला मे ही किया।[14]

महाशतक को सन्देश

वर्षावास के समाप्त होने पर भगवान ने मिथिला से मगध की ओर विहार किया एव राजगृह पधारे। राजगृह मे महाशतक श्रावक धर्म जागरणा करता था। एक रात्रि मे पत्नी के दुर्व्यवहार से क्षुब्ध हो उसने कुछ कटु-वचन कहे थे, जिनका वर्णन पूर्व किया जा चुका है। उसी सदर्भ मे—भगवान महावीर ने गणधर गौतम को महाशतक श्रावक के पास भेजा और उसने अपनी पत्नी रेवती के सम्बन्ध मे जो भविष्य-वाणी की थी, उसके शुद्धिकरण की सूचना दी। भगवान को धर्म-सदेश प्राप्त कर अपने द्वारा कहे गये कटु वचनो की आलोचना की।[15]

उष्णपानी का ह्रद

गौतम की जिज्ञासा पर भगवान ने वैभारगिरि के 'महा-तपस्तीर

---

१२ तीसे ण मिहिलाए नयरीए बहिया उत्तरपुरच्छिमे दिसिभाए एत्थ ण मणिभद्द णाम चेइए।

— सूर्यप्रज्ञप्ति सटीक, पत्र १-२

१३ देखिए सूर्यप्रज्ञप्ति, चन्द्रप्रज्ञप्ति।

१४ (क) श्रमण भगवान महावीर—कल्याणविजयजी, पृ० १९५

(ख) तीर्थंकर महावीर—इन्द्रविजय जी, पृ० २८०-८१

१५ उपासक दशाग, अ० ८, सू० २५७-२६१

ईर्यापथिकी और साम्परायिकी ये दो क्रियाए करता है। जिस समय ईर्यापथिकी क्रिया करता है उस समय साम्परायिकी भी करता है, जिस समय साम्परायिकी करता है उस समय ईर्यापथिकी भी करता है। क्या यह सत्य है ?

महावीर—अन्यतीर्थिको का प्रस्तुत कथन सही नही है। मेरा स्पष्ट मन्तव्य है कि जीव एक समय मे एक ही क्रिया करता है। जिस समय ईर्यापथिको क्रिया करता है उस समय साम्परायिकी नही करता और साम्परायिकी के समय ईर्यापथिकी नही करता।[10]

एक समय मे एक ही वेद

गौतम—अन्यतीर्थिक यह भी कहते है कि निर्ग्रन्थ आयु पूर्ण कर देवलोक मे देव होता है, वहा पर वह अन्य देव व देवियो के साथ विषयो का उपभोग नही करता, अपितु वह अपनी ही आत्मा मे से अन्य वैक्रिय रूप बनाकर उसके साथ विषयसुख का सेवन करता है। क्या यह सत्य है ?

महावीर—अन्यतीर्थिको की यह बात भी सत्य नही है। सत्य यह है कि निर्ग्रन्थ महातेजस्वी देव बनता है, वहा वह अन्य देव व देवियो के साथ विषयेच्छा पूर्ण करता है। एक जीव एक समय मे एक ही वेद का अनुभव करता है। स्त्रीवेद के अनुभव के समय पुरुषवेद का अनुभव नही करता और न पुरुषवेद के अनुभव के समय स्त्रीवेद का।

पुरुष-वेद के उदयकाल मे पुरुष स्त्री की ओर स्त्री-वेद के उदयकाल मे स्त्री पुरुष की प्रार्थना करती है।[11]

गणधर अचलभ्राता और मेतार्य का निर्वाण

गणधर अचलभ्राता और मेतार्य ने गुणशील उद्यान मे मासिक अनशन कर निर्वाण प्राप्त किया।

इस वर्ष भगवान ने वर्षाकाल नालन्दा मे व्यतीत किया।

---

१० गोयमा ! ज ण ते अन्नउत्थिया एवमाइक्खति त चेव जाव, जे ते एव आहिसु, मिच्छा ते एव आहिसु। अह पुण गोयमा ! एव आइक्खामि एव खलु एगे जीवे एगसमए एक्क किरिय पकरेइ। पर उत्थियवत्तव्व णेयव्व। ससमय वत्तव्वयाए णेयव्व। जाव इरियावहिय, सम्पराइय वा।

—भगवती १।१०।३२५

११ भगवती

मिथिला मे

नालन्दा से विहार कर भगवान ने विदेह जनपद की ओर विहार किया। अनेक क्षेत्रो को पावन करते हुए मिथिला पधारे। वहा के राजा जितशत्रु ने मणिभद्र चैत्य[१२] मे जाकर प्रभु को वन्दन किया और उपदेश को सुना।

इन्द्रभूति गौतम ने सूर्य, चन्द्र आदि के सम्बन्ध मे अनेक प्रश्न किये, भगवान ने उन प्रश्नो के उत्तर विस्तार से दिये।[१३]

भगवान ने अपना उनचालीसवा वर्षावास मिथिला मे व्यतीत किया।

वर्षावास के पश्चात भगवान ने विदेह मे विचरण कर अनेक श्रद्धालुओ को श्रमण-धर्म मे दीक्षित किया और श्रावकधर्म पर आरूढ किया। सयोग वशात् यह चालीसवा चातुर्मास भी मिथिला मे ही किया।[१४]

महाशतक को सन्देश

वर्षावास के समाप्त होने पर भगवान ने मिथिला से मगध की ओर विहार किया एव राजगृह पधारे। राजगृह मे महाशतक श्रावक धर्म जागरणा करता था। एक रात्रि मे पत्नी के दुर्व्यवहार से क्षुब्ध हो उसने कुछ कटु-वचन कहे थे, जिनका वर्णन पूर्व किया जा चुका है। उसी सदर्भ मे—भगवान महावीर ने गणधर गौतम को महाशतक श्रावक के पास भेजा और उसने अपनी पत्नी रेवती के सम्बन्ध मे जो भविष्य-वाणी की थी, उसके शुद्धिकरण की सूचना दी। भगवान को धर्म-सदेश प्राप्त कर अपने द्वारा कहे गये कटु वचनो की आलोचना की।[१५]

उष्णपानी का ह्रद

गौतम की जिज्ञासा पर भगवान ने वैभारगिरि के 'महा तपस्तीर

---

१२ तीसे ण मिहिलाए नयरीए बहिया उत्तरपुरच्छिमे दिसिभाए एत्थ ण मणिभद्द णाम चेइए।

— सूर्यप्रज्ञप्ति सटीक, पत्र १-२

१३ देखिए सूर्यप्रज्ञप्ति, चन्द्रप्रज्ञप्ति।

१४ (क) श्रमण भगवान महावीर—कल्याणविजयजी, पृ० १६५

(ख) तीर्थंकर महावीर—इन्द्रविजय जी, पृ० २८०-८१

१५ उपासक दशाग, अ० ८, सू० २५७-२६१

प्रभव' जल कुण्डो की चर्चा की और कहा कि उसमे उष्णयोनि के जीव जन्मते और मरते रहते है और उष्ण स्वभाव के जल पुद्गल भी आते रहते है। यही जल की उष्णता का कारण है।[१६]

आयुकर्म के सम्बन्ध मे

एक समय गणधर गौतम ने यह जिज्ञासा प्रस्तुत की कि भगवन्! अन्यतीर्थिको का यह मन्तव्य है कि एक जाल है, उस जाल मे अनुक्रम से ग्रन्थिया लगी हुई हे, उसी तरह अनेक जीवो की अनेक भवसचित आयुष्य की रचना होती है। जैसे जाल मे सभी ग्रन्थियाँ नियत अन्तर पर होती है और वे एक दूसरे से सम्बन्धित होती ह वैसे ही आयुष्य भी एक दूसरे के नियत अन्तर पर होते है। इनमे से एक जीव एक समय मे दो आयुष्यो का अनुभव करता हे—इहभविक और पारभविक। जिस समय वह इस भव का आयुष्य का अनुभव करता है, उस समय पारभविक आयुष्य का भी अनुभव करता है।

महावीर–जो अन्यतीर्थिक कहते है वह असत्य है, जैसे कोई जाल अन्योन्य अन्योन्य समुदाय के रूप मे रहता है, इसी तरह क्रम से अनेक जन्मो के साथ सम्बन्ध धारण करने वाला जीव ऊपर की शृ खला की कडी के समान परस्पर क्रम से गू था हुआ होता है, ऐसा होने से एक जीव एक समय मे एक आयुष्य का अनुभव करता है। जैसे—एक जीव इस भव का आयुष्य का अनुभव करता है, या परभव के आयुष्य का अनुभव करता है जिस समय इस भव के आयुष्य का अनुभव करता है उस समय वह परभव के आयुष्य का अनुभव नही करता और जिस समय वह परभव के आयुष्य का अनुभव करता

---

१६ (क) भगवती २।५।११२

(ख) ह्यायानच्वाग ने भी वैभारगिरि के सन्निकट उष्णजल का उल्लेख किया है—टामस वार्टर्स लिखित 'आन युवान च्याग्स ट्रैवेल्स इन इ डिया' भाग २, पृ० १४७-१४८

(ग) बौद्ध साहित्य मे तपोदाराम का उल्लेख है। बुद्धघोष के अनुसार यह आराम गरम पानी के सन्निकट था।

—राजगृह इन ऐशेट लिटरेचर, ला० लिखित पृ० ५

(घ) डिक्शनरी आव पाली प्रापर नेम्स, भाग० १, पृ० ६६२-६३

(ड) ये उष्ण पानी के झरने अब भी है - बिहारदर्पण लेखक—गदाधरप्रसाद अम्बष्ट

है उस समय वह परभव के आयुष्य का अनुभव नही करता। हॉ, इहभविक और परभविक दोनो आयु सत्ता मे रह सकती हे।[१७]

एकान्त दु ख के सम्बन्ध मे

गौतम—भगवन! अन्यतीर्थिको का यह मन्तव्य है कि प्राण-भूत और सत्व नामधारी सभी जीव एकान्त दु ख को भोगते है क्या उनका यह मन्तव्य सत्य-तथ्य से युक्त है ?

महावीर—नही, बात यह है कि कितने ही जीव नित्य एकान्त दु ख को भोगते है, और कभी-कभी सुख को भी। कितने ही जीव नित्य एकान्त सुख का अनुभव करते है और कभी-कभी दु ख का भी। और कितने ही जीव अनियमित रूप से सुख और दु ख को भोगते रहते हे।

नारकीय जीव एकान्त दु ख का अनुभव करते हे, किसी विशेष समय वे सुख का भी अनुभव करते है। भवनपति, व्यन्तर ज्योतिपी और वैमानिक देव मुख्य रूप से सुख का ही अनुभव करते है, पर कभी दु ख का भी। तिर्यच और मनुष्यगति के जीव अनियमित रूप से सुख-दु ख को भोगते रहते हे।[१८]

इस वर्ष अग्निभूति और वायुभूति गणधरो ने मासिक अनशन पूर्वक राजगृह के गुणशील उद्यान मे निर्वाण को प्राप्त किया।

भगवान ने अपना इकतालीसवा चातुर्मास राजगृह मे किया।

अव्यक्त, मण्डित और अकम्पित का निर्वाण

वर्षावास की समाप्ति के पश्चात् भी भगवान् महावीर कुछ समय तक राजगृह मे ही विराजे। उस समय उनके गणधर अव्यक्त, मण्डित और अकम्पित एक मास का अनशन कर निर्वाण प्राप्त हुए।

राजगृह के उस गुणशील उद्यान मे गणधर गौतम ने भगवान महावीर से प्रश्न किया—भगवन! दुपमा-दुपम काल मे जम्बूद्वीप के प्रस्तुत भरत क्षेत्र की क्या स्थिति होगी ?

भगवान ने उस समय की अत्यन्त दयनीय स्थिति का शब्द चित्र प्रस्तुत किया। वह वर्णन हम अगले पृष्ठो मे कालचक्र के प्रसग पर दे रहे है।

---

१७ भगवती ५।३।

१८ भगवती ६।६।

पावा में अंतिम वर्षावास

भगवान् राजगृह से विहार कर वर्षावास करने हेतु पावा पधारे। पावा की अवस्थिति के सम्बन्ध मे इतिहासज्ञो मे कुछ मतभेद रहा है। भगवान् महावीर की निर्वाण भूमि की पावा कहाँ है ? इस पर परिशिष्ट विभाग मे 'पावा' शीर्षक निबन्ध मे सप्रमाण स्पष्टीकरण किया है। इसलिए उसकी पुनरावृत्ति न कर उस स्थल को ही देखने का सूचन करता हूँ।

राजा पुण्यपाल के स्वप्न और फल

हाँ, तो भगवान् पावा मे राजा हस्तिपाल की रज्जुकसभा मे विराजे। यह भगवान का अन्तिम वर्षावास था। समवशरण की रचना हुई। भगवान के प्रवचन होने लगे। एक दिन प्रवचन के पश्चात् राजा पुण्यपाल ने भगवान् को नम्र निवेदन करते हुए कहा—भगवन् ! आज रात को मैंने विचित्र प्रकार के हाथी, बन्दर, क्षीरतरु, कौआ, सिंह, पद्म, बीज, और कु भ ये आठ अशुभ स्वप्न देखे है, मुझे यह चिन्ता हो रही है कि कही ये स्वप्न किसी अशुभ अमगल के सूचक तो नही है ?

राजा पुण्यपाल को स्वप्नो का फल बताते हुए भगवान ने कहा—तुमने जो हाथी देखा है उसका तात्पर्य है भविष्य मे विवेकशील श्रमणोपासक भी क्षणिक समृद्धि सम्पन्न गृहस्थ जीवन मे हाथी की तरह मदोन्मत्त होकर रहेगे। कष्टो की विकट घडियो मे भी वे उसे छोडकर सयम ग्रहण करने का विचार नही करेंगे, यदि ग्रहण करेंगे भी तो सम्यक्प्रकार से सयम का पालन नही करेंगे, कुछ ही साधक दृढता के साथ पालन कर सकेंगे।[1]

द्वितीय स्वप्न मे जो तुमने बन्दर देखा है वह इस बात का प्रतीक है कि बडे-बडे आचार्य भी बन्दर की तरह चचल प्रकृति के, अल्प पराक्रमी और व्रत के आचरण मे प्रमादी होगे। बन्दर के समान अविचारकारी, विवेकशून्य, और अत्यन्त अस्थिर व चचल स्वभाव के होगे।

---

४ स्वामिन् स्वप्ना मयाद्याष्टौ दृष्टास्तत्र गज कपि ।
क्षीरद्रु काकसिंहाब्जबीजकु भा इमे क्रमात् ॥
तदाख्याहि फल तेषा भीतोऽस्मि भगवन्नहम् ।
इति पृष्टो जगन्नाथो व्याचकारेति तत्फलम् ॥
—त्रिषष्टि० १०।१३।३०-३१

तृतीय स्वप्न मे क्षीरतरु (अश्वत्थ) तुमने देखा है उसका रहस्य है कि भविष्य मे क्षुद्र भाव से दान देने वाले श्रावकों को पाखण्डी श्रमण चारो ओर से घेरे रहेगे। वे आचारनिष्ठ श्रमणो को शिथिलाचारी और शिथिलाचारी को आचारनिष्ठ समझेगे। कटकाकीर्ण बबूल की तरह पाखण्डियो का बाहुल्य होगा।

चतुर्थ स्वप्न मे तुमने कौवे को देखा। जिसका तात्पर्य है भविष्य मे अधिकाश श्रमण अनुशासन का उल्लघन करेंगे, श्रमण-मर्यादाओ को त्याग कर कौवे की भाति पाखण्डपूर्ण पथो का आश्रय लेंगे। वे कौवे के काव-काव शब्द की तरह वितण्डावाद फैलाते रहेगे।

पाँचवे स्वप्न मे तुमने जो सिंह को विपन्नावस्था मे देखा, उसका रहस्य है कि भविष्य मे सिंह के समान तेजस्वी, वीतराग-प्ररूपित जैनधर्म निर्बल होगा। धर्म से विमुख होकर लोग मिथ्यामतावलबियो की प्रतिष्ठा करेंगे। उनका प्रचार अधिक होगा।

छठवे स्वप्न मे कमल देखा, उसका तात्पर्य है कि समय के प्रबल प्रभाव से प्रभावित होकर कुलीन व्यक्ति भी बुरी सगति मे पडकर धर्ममार्ग से विमुख होकर पापाचार की प्रवृत्ति करेंगे।

सातवे स्वप्न मे जो बीज देखा है, इसका तात्पर्य यह है कि जिस प्रकार एक अविवेकी किसान बढिया बीज को तो ऊसर भूमि मे बोता है, और सडे-गले बीज को उपजाऊ भूमि मे बोता है, इसी प्रकार श्रमणोपासक भी विवेक को विस्मृत होकर सुपात्र को छोडकर कुपात्र को दान देगे।[२]

आठवे स्वप्न मे तुमने कुभ देखा, उसका तात्पर्य है कि भविष्य मे सद्गुण-सम्पन्न और आचारनिष्ठ श्रमण कम होगे।

स्वप्नो के माध्यम से भविष्यकालीन स्थिति का शब्दचित्र सुनकर राजा पुण्यपाल को वैराग्य हुआ। वे राज्य को त्यागकर भगवान् महावीर के पास आये और श्रमण-धर्म स्वीकार किया। तप-सयम की सम्यक् रूप से आराधना कर कर्मों को नष्ट कर मुक्त हुए।

---

२ (क) त्रिषष्टि० १०।१३।३२-७२

(ख) स्वप्न और उनके फलो का कथन श्री सौभाग्यपञ्चम्यादि पर्वकथा सग्रह के दीपमालिका व्याख्यान, पत्र ८१-८२ मे भी है।

इसके पश्चात् गणधर गौतम की जिज्ञासा के उत्तर मे भगवान् ने कहा—जब तीर्थंकर रहते है उस समय भारतवर्ष धन-धान्य से परिपूर्ण, गॉव-नगरो से युक्त स्वर्ग के समान होता है। उस समय गाव नगर के समान और नगर देवलोक के सदृश होते है। कौटुम्बिक राजा के समान और राजा कुबेर के समान समृद्ध होते हैं। उस समय आचार्य इन्द्र के समान तेजस्वी होते है और माता-पिता देव के समान होते हैं। सासु माता के समान स्नेह की वर्षा करती है और श्वसुर पिता के समान प्यार देता है। जनता विवेक-विनय से युक्त होती है। देव, गुरु और धर्म के प्रति समर्पित होती है। विद्वानो का आदर होता है। प्राय राजा जिनधर्मी होते हैं।

जब भविष्य मे तीर्थंकर, चक्रवर्ती, वासुदेव आदि नही होगे केवलज्ञान मन पर्यवज्ञान, परमावधि का विलोप हो जायेगा तब भारतवर्ष की स्थिति क्रमश प्रतिकूल होती जायेगी। मनुष्यो मे क्रोध, मान, लोभ आदि विकार बढेगे, अधर्म की वृद्धि होगी, विवेक की मात्रा घटेगी। मत्स्य-न्याय के समान सबल निर्बल को सतायेगे। बिना पतवार की नौका के समान भारत की स्थिति डावाडोल होगी। तस्कर-कृत्य बढेगा। राजा अधिक कर लेगा, न्यायाधीश अधिक रिश्वत लेगा। मानव भौतिक पदार्थों मे अधिक आसक्त होगा।

गुरुकुलवास की मर्यादा नष्ट हो जायेगी। गुरु अपने शिष्यो को शास्त्र के रहस्य नही बतायेगे और न शिष्य ही गुरुओ की सेवा-सुश्रूषा करेगे। क्षुद्र जीव-जन्तुओ की उत्पत्ति अधिक होगी। पुत्र माता-पिता की सेवा कम करेंगे। दान, शील, तप, और भावना की उत्तरोत्तर हानि होगी। कलह की भावना बढेगी, झूठे माप-तौल अधिक चलेंगे। उत्तम वर्ण, गध, रस आदि श्रेष्ठ वस्तुओ मे ह्रास होगा।

पचम आरे के अन्त मे दु प्रसह आचार्य होगे। फल्गुश्री साध्वी होगी। नागिल श्रावक होगा। सत्यश्री श्राविका होगी। इन चार मनुष्यो का ही चतुर्विध सघ होगा। विमलवाहन राजा होगा और सुमुख नामक मत्री होगा। मानव का शरीर दो हाथ परिमाण और आयुष्य बीस वर्ष का होगा। उस पचम आरे के अन्तिम दिन प्रात काल चारित्र धर्म, मध्याह्न मे राजधर्म और अपराह्न मे अग्नि का विच्छेद होगा।[3]

---

३ आचार्यो दु प्रसहाख्य फल्गुश्रीरिति साध्व्यपि।
श्रावको नागिलो नाम सत्यश्री श्राविका पुन ॥

इक्कीस हजार वर्ष का पचम आरा व्यतीत होने पर दु षम दुषमा नामक छठा आरा लगेगा। इसमे अत्यधिक हानि होगी। धर्म, समाज, और राज्य-व्यवस्था समाप्त हो जायेगी। पिता-पुत्र का व्यवहार लुप्त हो जायेगा। इस काल के प्रारभ मे ही प्रचण्ड पवन चलेगा और प्रलयकारी मेघ बरसेंगे।[४] इससे मानव और पशु बीज-मात्र ही रहेगे। वे गगा और सिन्धु के तट-विवरो मे निवास करेगे। मास और मछलियो के आधार से अपना जीवन-यापन करेगे।

छठे आरे के पश्चात् प्रथम आरा लगेगा उत्सर्पिणी काल का, वह भी छठा आरा के समान ही होगा। उसका दूसरा आरा पचम आरे के समान होगा। इसके प्रारभ मे पुष्कर सवर्तक-मेघ बरसेगा, जिससे भूमि की ऊष्मा न`ट होगी, फिर क्षीर-मेघ बरसेगा, जिससे धान्य पैदा होगा। तीसरा घृत-मेघ बरसेगा, जिससे पदार्थों मे स्निग्धता पैदा होगी। चौथा अमृत-मेघ बरसेगा, इससे विविध गुणोपेत औषधियाँ उत्पन्न होगी। पाँचवा रस-मेघ बरसेगा, जिससे पृथ्वी मे सरसता उत्पन्न होगी। ये पाँचो ही मेघ निरन्तर बरसने वाले होगे।

वातावरण पुन अनुकूल होगा। मानव तट-विवरो से निकल कर मैदानो मे आवेगे। समय के परिवर्तन से उनमे क्रमश बुद्धि परिष्कृत होगी। रूप निखरेगा और आयु की भी अभिवद्धि होगी। दु षम सुषमा नामक तृतीय आरे मे गाँव, नगर आदि बसाये जावेंगे। इस आरे मे एक-एक कर तीर्थंकर होगे। जो आध्यात्मिक-धार्मिक व सास्कृतिक जीवन का महत्व बतायेगे। उत्सर्पिणीकाल के चतुर्थ आरे मे यौगलिक धर्म का उदय होगा। मानव युगल रूप मे ही उत्पन्न होगे और युगल रूप मे ही काल करेगे। उनका शरीर विराट् होगा, और आयु भी उसी प्रकार बडी होगी। कल्पवृक्षो से उनकी इच्छाओ की पूर्ति होगी। निरन्तर प्रत्येक वस्तु मे उत्कर्ष होता रहेगा। पाँचवा और छठा आरा भी निरन्तर उत्कर्ष से ही सम्पन्न होगा। इस प्रकार यह उत्सर्पिणी काल पूर्ण होगा। इस अव-सर्पिणी और उत्सर्पिणी काल का एक चक्र होगा। ऐसे काल चक्र अतीत मे

विमलवाहन इति राज्यमत्री सुमुखाभिध।
अपश्चिमा भाविनोऽमी दु षमाया हि भारते॥

—त्रिषष्टि १०।१३।१४६-१४७

४ इन मेघो के अरसमेघ, विरसमेघ, क्षारमेघ, खट्टमेघ, अग्निमेघ, विज्जुमेघ, अशनिमेघ आदि नाम—भगवती ७।६ मे आये है।

वर्ष, बलमित्र और भानुमित्र का राज्यकाल ६० वर्ष, नरवाहन का ४० वर्ष, गर्दभिल्ल का १३ वर्ष, शक का राज्यकाल ४ वर्ष, और उसके पश्चात् अर्थात् मेरे निर्वाण के ४७० वर्ष के पश्चात् राजा विक्रमादित्य का शासन होगा। राजा विक्रमादित्य महान सम्राट् होगा, जिसका राज्य निष्कंटक होगा और अपना सम्वत् चलायेगा।

मेरे निर्वाण के ४५३ वर्ष के बाद गर्दभिल्ल के राज्य को नष्ट करने वाला कालकाचार्य होगा।[६]

श्रमण अपनी श्रमणाचार की विशुद्ध परम्परा को विस्मृत होकर अपनी मन कल्पित समाचारी का निर्माण कर भोले-भाले अज्ञजनो को मुग्ध करेंगे। स्वप्रशसा और परनिन्दा करेंगे।[७]

भगवान् से इस प्रकार ससार की भयकरता आदि के वर्णन को सुन कर हस्तिपाल आदि अनेक भव्य आत्माओ ने निर्ग्रन्थ धर्म की दीक्षा ली।

निर्ग्रन्थ धर्म का इस वर्ष अत्यधिक प्रचार और विस्तार हुआ।

इस प्रकार वर्षाकाल के तीन महीने पूर्ण हुए, कार्तिक मास का कृष्ण पक्ष चल रहा था। समवसरण की विशेष रचना हुई। भगवान के मुखारविन्द से अन्तिम उपदेश की अनवरत वृष्टि होने लगी। उस समय काशी, कोशल के नौ लिच्छवी, नौ मल्ल एव अठारह गणराजा उपस्थित थे।

शक्र द्वारा आयुवृद्धि की प्रार्थना

जब महावीर के परिनिर्वाण का अन्तिम समय सन्निकट आया तो शक्रेन्द्र का आसन प्रकम्पित हुआ। देवो के परिवार से वहा उपस्थित हुआ। उसने भाव-विह्वलता के साथ महावीर को नम्र निवेदन करते हुए कहा—भगवन्! आपके गर्भ, जन्म, दीक्षा और केवलज्ञान मे हस्तोत्तरा नक्षत्र था। इस समय उसमे भस्मग्रह सक्रान्त होने वाला है। वह ग्रह आपके जन्म नक्षत्र मे आकर दो सहस्र वर्षों तक आपके जिनशासन के प्रभाव के उत्तरोत्तर विकास मे अत्यधिक बाधक होगा। दो सहस्र वर्षों के पश्चात् जब वह आपके जन्मनक्षत्र से अलग होगा, तब श्रमणो का, निर्ग्रन्थो का उत्तरोत्तर पुन

---

६ तह गद्दभिल्लरज्जस्स ठायगो कालगारियो होहि।
तेवण चउसएहिं, गुणमयकलिओ सुअपउत्तो॥

७ (क) विविध तीर्थकल्प, २० कल्प
(ख) अभिधान राजेन्द्र कोष, भाग ४, पृ० २६०१

जितनी शैलेशी-अवस्था को प्राप्त कर चतुर्विध अघाती कर्मदल का क्षय कर भगवान् महावीर शुद्ध, बुद्ध और मुक्त अवस्था को प्राप्त हुए।

वह वर्षाऋतु का चौथा मास था, कृष्ण पक्ष था, पन्द्रहवा दिन था, पक्ष की चरम रात्रि अमावस्या थी। एक युग के पाँच सवत्सर होते है। उनमे यह चन्द्र नामक द्वितीय सवत्सर था। एक वर्ष के बारह महिने होते है, उनमे वह प्रीतिवर्द्धन नामक चतुर्थ मास था। एक मास मे दो पक्ष होते है, वह नन्दीवर्धन नाम का पक्ष था। एक पक्ष मे पन्द्रह दिन होते है। उनमे 'अग्निवेश्य' नामक पन्द्रहवा दिन था, जो उपशम नाम से भी कहा जाता है। पक्ष मे पन्द्रह रात होती है, वह 'देवानन्दा' नामक पन्द्रहवी रात थी, जो 'निरति' नाम से भी विश्रुत थी। उस समय अर्च नाम का लव था, मुहूर्त नाम का प्राण था, सिद्ध नाम का स्तोक था, नाग नाम का करण था। एक अहोरात्र मे तीस मुहूर्त होते है, उसमे सर्वार्थसिद्ध नामक मुहूर्त था। उस समय स्वाति नक्षत्र के साथ चन्द्र का योग था।

गौतम को केवलज्ञान

भगवान महावीर ने परिनिर्वाण के पूर्व ही अपने प्रथम शिष्य इन्द्रभूति गौतम को देवशर्मा ब्राह्मण को प्रतिबोध देने के लिए दूसरे स्थान पर भेज दिया। अपने प्रधान अन्तेवासी शिष्य को दूर भेजने का कारण यह था कि निर्वाण के समय अधिक स्नेहाकुल न हो।[१२] भगवान् के आदेशानुसार देवशर्मा को प्रतिबोध दिया। लौटना चाहते थे, पर रात्रि होने से लौट नही सके। जब गौतम को भगवान के परिनिर्वाण के समाचार सम्प्राप्त हुए तब उनके श्रद्धा-स्निग्ध हृदय पर वज्राघात-सा प्रहार लगा। उनके हृतन्त्री के सुकुमार तार झनझना उठे—भगवन्! आप सर्वज्ञ थे फिर यह क्या किया? अपने अन्तिम समय मे मुझे अपने से दूर क्यो किया! क्या मैं बालक की भाँति अचल पकड कर आपको रोकता था? क्या मेरा स्नेह सच्चा नही था?

---

१२ स्वामी तद्दिनयामिन्या विदित्वा मोक्षमात्मन
दध्यावहो गौतमस्य मयि स्नेहो निरत्यय ॥
स एव केवलज्ञानप्रत्यूहोऽस्य महात्मन ।
से छेद्य इति विज्ञाय निजगादेति गौतमम् ॥
देवशर्मा द्विजो ग्रामे परस्मिन्नस्ति स त्वया ।
बोध प्राप्स्यति तद्धेतोस्तत्र त्व गच्छ गौतम ।

—त्रिषष्टि० १०।१३।२१८-२२०

क्या मैं आपके साथ हो जाता तो वहा का स्थान रोकता ? अब मैं किसके चरणो मे नमस्कार करूगा और अपने मन की शकाओ का सही समाधान करूगा ? अब मुझे कौन गौतम-गौतम कहकर पुकारेगा।

भाव-विह्वलता मे बहते-बहते गौतम ने अपने आपको सभाला, चिन्तन बदला, यह मेरा कैसा मोह है। भगवान तो वीतराग है, उनमे कहा स्नेह है, यह मेरा एक पक्षीय मोह है, मैं स्वय उस पथ का पथिक क्यो न बनू। इस प्रकार चिन्तन करते हुए उसी रात्रि के अन्त मे स्थितप्रज्ञ हो गौतम ने क्षणमात्र मे मोह को क्षीण किया, केवलज्ञान के दिव्य आलोक से अन्तर-लोक आभासित हो उठा।

दीपमालोत्सव

जिस रात्रि को भगवान् का परिनिर्वाण हुआ, उस रात्रि को नौ मल्लकी, नौ लिच्छवी अठारह काशी-कौशल के राजा पौषध व्रत मे थे। उन्होने कहा—आज ससार से भाव-उद्योत उठ गया है, अत अब हम द्रव्य-उद्योत करेंगे।

जिस रात्रि को भगवान् का परिनिर्वाण हुआ, उस रात्रि को देव-देवेन्द्रो के गमनागमन से भूमण्डल आलोकित हुआ, अधकार मिटाने के लिए मानवो ने दीप सजोये। इस प्रकार दीपमाला का पुनीत पर्व प्रारम्भ हुआ।[१३]

निर्वाण-कल्याण

भगवान का निर्वाण हुआ जानकर सुर और असुरो के सभी इन्द्र अपने-अपने परिवार के साथ वहा पहुँचे। वे सभी अपने आपको अनाथ के

---

१३ ज रयणि च ण समणे जाव सव्वदुक्खप्पहीणे त रयणि च ण नव मल्लई नव लिच्छई कासी कोसलगा अट्ठारस वि गणरायाणो अमावसाए पाराभोय पोसहोवास पट्ठवइ सु, गते से भावुज्जोए दव्वुज्जोव करिस्सामो।

—कल्पसूत्र, १२७

(ख) निर्वाणे स्वामिनि ज्ञानदीपके द्रव्यदीपकान्।
तदानी रचयामासु सर्वेऽपि पृथिवीभुज ॥
तदाप्रभृति लोकेऽपि पर्व दीपोत्सवाभिधम्।
सवतो दीपकरणात्तस्या रात्रौ प्रवर्तते ॥

—त्रिपष्टि० १०।१३।२४७-२४८

(ग) चउप्पन्न महापुरिस चरिय, पृ० ३३४

समान अनुभव कर रहे थे। सभी का हृदय भाव-विह्वल हो रहा था। शक्र के आदेश से गोशीर्ष चन्दन और क्षीरोदक लाया गया। क्षीरोदक से भगवान के पार्थिव शरीर को स्नान कराया गया, गोशीर्ष चन्दन का लेप किया गया। दिव्य वस्त्र ओढाया गया। उसके पश्चात् भगवान् के पार्थिव शरीर को शिविका मे रखा गया।

देवो ने दिव्यध्वनि के साथ फूलो की वृष्टि की। इन्द्रो ने शिविका उठाई। शिविका यथास्थान पहुँची। भगवान के शरीर को गोशीर्ष चन्दन की चिता पर रखा गया। अग्निकुमार देवो ने अग्नि प्रज्वलित की और वायुकुमार देवो ने वायु प्रचालित की। अन्य देवो ने घृत और मधु चिता मे उँडेले। इस प्रकार प्रभु के शरीर की दाहक्रिया की गई। फिर मेघकुमार ने जल की वर्षा कर चिता को शान्त किया। शक्रेन्द्र ने ऊपर की दाई दाढो का और ईशानेन्द्र ने बाई दाढो का सग्रह किया। इसी प्रकार चमरेन्द्र और बलीन्द्र ने नीचे की दाढो को लिया। अन्य देवो ने दाँत और अस्थि खण्डो को लिया। मानवो ने भस्म ग्रहण कर सन्तोष का अनुभव किया।[१४]

उपसहार

कार्तिक अमावस्या का यह दिन ससार के लिए सचमुच महान खेद व शोक का दिन सिद्ध हुआ। एक महापुरुष, एक अखड ज्ञानसूर्य जो बहत्तर वर्ष पूर्व इस ससार मे अवतरित हुआ था। ३० वर्ष की आयु मे जिसने साधना के कटकाकीर्ण पथ पर चलने का वज्र सकल्प लिया। साढे बारह वर्ष तक कठोर तपश्चरण, ध्यान-योग-समाधि द्वारा अन्तर् जीवन का परिक्षालन करते रहे, विकारो का सपूर्ण क्षय कर निर्विकार निर्दोष परम शुद्ध आत्म-स्थिति को प्राप्त किया और लगभग तीस वर्ष तक विश्व के कल्याण के लिए अथक श्रम व कष्ट उठाकर प्रयत्न करते रहे। हजारो भव्यो को सयम मार्ग पर गतिशील बनाया, लाखो आत्माओ को त्याग की प्रेरणा दी और करोडो-करोड (कोटि कोटि) प्राणियो के कल्याण के लिए जिन्होने सतत प्रयत्न किया वे महातिमहान विश्वमगलमय प्रभुवर उस अमावस्या की रात्रि को इस ससार से विदा हो गये। पार्थिव देह का त्याग कर शाश्वत ज्ञान-दर्शन मय स्थिति मे लीन हो गए। ससार का एक आलोक लुप्त हो गया। मानवजाति का एक मगल कल्याणद्रष्टा चला गया।

---

१४ त्रिषष्टि० १०।१३।२४६-२२१

क्या मैं आपके साथ हो जाता तो वहा का स्थान रोकता ? अब मैं किसके चरणो मे नमस्कार करूगा और अपने मन की शकाओ का सही समाधान करूगा ? अब मुझे कौन गौतम-गौतम कहकर पुकारेगा।

भाव-विह्वलता मे बहते-बहते गौतम ने अपने आपको सभाला, चिन्तन बदला, यह मेरा कैसा मोह है। भगवान तो वीतराग ह, उनमे कहा स्नेह है, यह मेरा एक पक्षीय मोह है, मैं स्वय उस पथ का पथिक क्यो न बनू। इस प्रकार चिन्तन करते हुए उसी रात्रि के अन्त मे स्थितप्रज्ञ हो गौतम ने क्षणमात्र मे मोह को क्षीण किया, केवलज्ञान के दिव्य आलोक से अन्तर लोक आभासित हो उठा।

दीपमालोत्सव

जिस रात्रि को भगवान् का परिनिवाण हुआ, उस रात्रि को नौ मल्लकी, नौ लिच्छवी अठारह काशी-कौशल के राजा पौषध व्रत मे थे। उन्होने कहा—आज ससार से भाव-उद्योत उठ गया है, अत अब हम द्रव्य-उद्योत करेंगे।

जिस रात्रि को भगवान् का परिनिर्वाण हुआ, उस रात्रि को देव देवेन्द्रो के गमनागमन से भूमण्डल आलोकित हुआ, अधकार मिटाने के लिए मानवो ने दीप सजोये। इस प्रकार दीपमाला का पुनीत पर्व प्रारम्भ हुआ।[१३]

निर्वाण-कल्याण

भगवान का निर्वाण हुआ जानकर सुर और असुरो के सभी इन्द्र अपने-अपने परिवार के साथ वहा पहुँचे। वे सभी अपने आपको अनाथ के

---

१३ ज रयणि च ण समणे जाव सव्वदुक्खप्पहीणे त रयणि च ण नव मल्लई नव लिच्छई कासी कोसलगा अट्ठारस वि गणरायाणो अमावसाए पाराभोय पोसहोवास पट्ठवइ सु, गते से भावुज्जोए दव्वुज्जोव करिस्सामो।

—कल्पसूत्र, १२७

(ख) निर्वाणे स्वामिनि ज्ञानदीपके द्रव्यदीपकान्।
तदानी रचयामासु सर्वेऽपि पृथिवीभुज ॥
नदाप्रभृति लोकेऽपि पर्व दीपोत्सवाभिधम्।
सवतो दीपकरणात्तस्या रात्री प्रवर्तते ॥

—त्रिपष्टि० १०।१३।२४७-२४८

(ग) चउप्पन्न महापुरिस चरिय, पृ० ३३४

समान अनुभव कर रहे थे। सभी का हृदय भाव-विह्वल हो रहा था। शक्र के आदेश से गोशीर्ष चन्दन और क्षीरोदक लाया गया। क्षीरोदक से भगवान के पार्थिव शरीर को स्नान कराया गया, गोशीर्ष चन्दन का लेप किया गया। दिव्य वस्त्र ओढाया गया। उसके पश्चात् भगवान् के पार्थिव शरीर को शिविका मे रखा गया।

देवो न दिव्यध्वनि के साथ फूलो का वृष्टि की। इन्द्रो ने शिविका उठाई। शिविका यथास्थान पहुँची। भगवान के शरीर को गोशीर्ष चन्दन की चिता पर रखा गया। अग्निकुमार देवो ने अग्नि प्रज्वलित की और वायुकुमार देवो ने वायु प्रचालित की। अन्य देवो ने घृत और मधु चिता मे उँडेले। इस प्रकार प्रभु के शरीर की दाहक्रिया की गई। फिर मेघकुमार ने जल की वर्षा कर चिता को शान्त किया। शक्रेन्द्र ने ऊपर की दाई दाढो का और ईशानेन्द्र ने बाई दाढो का सग्रह किया। इसी प्रकार चमरेन्द्र और बलीन्द्र ने नीचे की दाढो को लिया। अन्य देवो ने दाँत और अस्थि खण्डो को लिया। मानवो ने भस्म ग्रहण कर सन्तोष का अनुभव किया।[१४]

उपसहार

कातिक अमावस्या का यह दिन ससार के लिए सचमुच महान खेद व शोक का दिन सिद्ध हुआ। एक महापुरुष, एक अखड ज्ञानसूर्य जो बहत्तर वर्ष पूर्व इस ससार मे अवतरित हुआ था। ३० वर्ष की आयु मे जिसने साधना के कटकाकीर्ण पथ पर चलने का वज्र सकल्प लिया। साढे बारह वर्ष तक कठोर तपश्चरण, ध्यान-योग-समाधि द्वारा अन्तर् जीवन का परिक्षालन करते रहे, विकारो का सपूर्ण क्षय कर निर्विकार निर्दोष परम शुद्ध आत्म-स्थिति को प्राप्त किया और लगभग तीस वर्ष तक विश्व के कल्याण के लिए अथक श्रम व कष्ट उठाकर प्रयत्न करते रहे। हजारो भव्यो को सयम मार्ग पर गतिशील बनाया, लाखो आत्माओ को त्याग की प्रेरणा दी और करोडो-करोड (कोटि कोटि) प्राणियो के कल्याण के लिए जिन्होने सतत प्रयत्न किया वे महातिमहान विश्वमगलमय प्रभुवर उस अमावस्या की रात्रि को इस ससार से विदा हो गये। पार्थिव देह का त्याग कर शाश्वत ज्ञान-दर्शन मय स्थिति मे लीन हो गए। ससार का एक आलोक लुप्त हो गया। मानवजाति का एक मगल कल्याणद्रष्टा चला गया।

---

१४ त्रिपष्टि० १०।१३।२४९-२२१

शिष्यपरिवार

कल्पसूत्र के अनुसार भगवान महावीर का सघ समुदाय इस प्रकार था –

श्रमण भगवान महावीर के इन्द्रभूति आदि चौदह हजार श्रमण थे। आर्या चन्दना आदि छत्तीस हजार श्रमणियाँ थो। शख-शतक आदि एक लाख उनसठ हजार श्रावक थे। सुलसा, रेवती आदि तीन लाख अठारह हजार श्राविकाए थी। जिन नही, किन्तु जिन के समान सत्य तथ्य का स्पष्टीकरण करने वाले तीनसौ चतुर्दश पूर्वधर थे। विशेप प्रकार की लब्धि वाले तेरहसौ अवधिज्ञानी थे। सातसौ केवलज्ञानी थे। सातसौ वैक्रिय लब्धि वाले श्रमण थे। पाचसौ विपुलमति मन पर्यवज्ञानी थे। चारसौ शास्त्रार्थ करने वाले वादी थे। सातसौ शिष्य सिद्ध हुए, चौदहसौ शिष्याए सिद्ध हुईं, आठसौ श्रमण अनुत्तर विमान मे उत्पन्न हुए।

अन्य श्वेताम्बर व दिगम्बर ग्रन्थो मे महावीर के शिष्यपरिवार का उल्लेख हुआ है, उसे हमने परिशिष्ट विभाग मे दिया। है अत पाठक वहाँ देखे।

श्रमणसघ

भगवान महावीर ने अपने सम्पूर्ण श्रमणो को नौ विभागो मे विभक्त किया। वे विभाग गण या श्रमणगण के नाम से जाने-पहचाने जाते थे। इन गणो के अध्यक्ष इन्द्रभूति आदि ग्यारह गणधर थे। श्रमण और श्रमणियो की कुल व्यवस्था इन गणधरो के अधीन थी।

गुण की दृष्टि से महावीर का श्रमण समुदाय सात विभागो मे विभक्त था। वे विभाग इस प्रकार थे—१ केवली, २ मन पयवज्ञानी, ३ अवधिज्ञानी, ४ वैक्रियर्द्धिक, ५ चतुर्दशपूर्वी, ६ वादी और ७ सामान्य साधु।

(१) केवल या पूर्णज्ञानी श्रमणो की सख्या ७०० थी, इनका स्थान स-ोत्कृष्ट था। वे भगवान महावीर के समान ज्ञानी थे। महावीर ने इनको पूर्ण स्वतन्त्रता दी थी। ये उपदेश आदि भी दिया करते थे।

(२) द्वितीय श्रेणी के श्रमण मन पर्यवज्ञानी थे, मानसिक विचारो के ज्ञाता होते थे।

(३) इन्द्रियो की बिना सहायता के भी जो रूपी पदार्थों के जानने वाले थे, अवधिज्ञानी कहलाते थे।

(४) चतुर्दशपूर्वी, जो सम्पूर्ण अक्षरज्ञान के पारगत होते थे। शिष्य वर्ग को शास्त्राध्ययन कराना उनका कार्य था।

(५) वैक्रियर्द्धिक जो योग सिद्धि प्राप्त श्रमण थे, जो निरन्तर तप-जप मे लीन रहा करते थे।

(६) वादी—जो जैन दार्शनिक साहित्य मे निष्णात होते थे। जो अन्य तीर्थिको के साथ शास्त्रार्थ कर विजय-वैजयन्ती फहराते थे। जब कभी भी कोई जैनदर्शन पर आक्रमण करता तो वे उनके तर्कों का सचोट उत्तर देते थे।

(७) इस विभाग मे सम्पूर्ण साधु समुदाय था, जो अध्ययन, तपस्या, ध्यान, सेवा आदि विशिष्ट साधुओ की सेवा किया करते थे।

भगवान महावीर के श्रमण व श्रमणी सघ की व्यवस्था-पद्धति बडी समीचीन थी। उनके जीवनकाल मे वह एकाज्ञाधीन था। चौदह हजार श्रमणो व छत्तीस हजार श्रमणियो के विशाल समुदाय मे से तीस वर्ष के अन्दर सिर्फ दो साधुओ मे महावीर के सिद्धान्त को लेकर मत-भेद हुआ। उनमे एक जमाली थे जो भगवान के कैवल्य के १४ वर्ष पश्चात् श्रावस्ती से बहुरतवाद के स्थापन करने से पृथक् किये थे। दूसरे तिष्यगुप्त थे, जो महावीर के कैवल्य के १६ वर्ष बाद राजगृह (ऋषभपुर) मे जीव-प्रादेशिकवाद के स्थापक होने से श्रमणसघ से पृथक् किये थे।[1] इस प्रकार भगवान का श्रमण-सघ बहुत ही व्यवस्थित था। इसीलिए जैनसाहित्य मे उन्हे धर्मचक्रवर्ती कहा है।

महावीर और बुद्ध के निर्वाण पर तुलनात्मक दृष्टि

भगवान् महावीर और तथागत बुद्ध के निर्वाण प्रसग पर हम तुलनात्मक दृष्टि से अध्ययन करे तो सहज ही ज्ञात होगा कि दोनो मे काफी समानता है। भगवान महावीर का निर्वाण पावा मे हुआ, तो तथागत बुद्ध का निर्वाण पावा से सिर्फ तीन कोस की दूरी पर अवस्थित कुसिनारा मे हुआ।[1] भगवान् महावीर के पावा और राजगृह के बीच का कोई घटनात्मक

१ स्थानाङ्ग, सूत्र ७।५८७ की टीका

१ पावानगर तो तीणि गावुतानि कुसिनारानगर।

— दीघ-निकाय-अट्ठकथा (सुमगल विलासनी)

विवरण उपलब्ध नही होता। भगवान कही रुग्ण हुए हो, ऐसा भी उल्लेख नही मिलता, किन्तु बुद्ध का राजगृह से कुसिनारा तक का विवरण विस्तृत रूप से उपलब्ध होता है। पावा मे चुन्द कर्मार-पुत्र के वहाँ 'सूकर मद्दव' का भोजन करते है, उससे उनके शरीर मे असीम वेदना होती है, अत्यधिक रक्तमय विरेचन होते है और उसी वेदना से उनके शरीर का अन्त भी होता है। मुख्य रूप से उनकी निर्वाण तिथि वैशाखी पूर्णिमा मानी है परन्तु सर्वास्तिवाद-परम्परा के अनुसार उनकी निर्वाण तिथि कार्तिक पूर्णिमा है।

निर्वाण से पूर्व महावीर और बुद्ध विशेष रूप से प्रवचन करते है। महावीर का प्रवचन लम्बे समय तक चलता है तो बुद्ध स्वल्प समय तक ही देते है। दोनो के शिष्य अपने-अपने आराध्यदेवो से विविध प्रश्न करते है और दोनो ही समुचित उत्तर देकर उनको सन्तुष्ट करते है। निर्वाण के पूर्व महावीर पावा नरेश हस्तिपाल को दीक्षा देते है[3] तो बुद्ध भी सुभद्र परिव्राजक को।[4]

आयुष्य-बल के सम्बन्ध मे महावीर शक्रेन्द्र से कहते है—आयुष्य-बल बढाया नही जा सकता। न कभी ऐसा हुआ है और न कभी ऐसा हो सकेगा।[5] किन्तु उसके विपरीत तथागत बुद्ध ने आनन्द से कहा—आनन्द! मैने चार ऋद्धिपाद साधे है, यदि मै चाहूँ तो कल्प भर जी सकता हूँ।[6]

महावीर के प्रधान शिष्य इन्द्रभूति गौतम महावीर के परिनिर्वाण के पश्चात् मोहग्रस्त होकर शोकसागर मे कुछ क्षणो तक डुबकी लगाते है।[7] मोह के नष्ट होते ही वे केवली हो जाते है। उनके मोह को नष्ट करने के

---

२ बुद्धघोष ने (उदान-अट्ठकथा ८।५) सूकरमद्दव शब्द की व्याख्या करते हुए कहा है—'नातितरुणस्स नातिजिण्णस्स एक जेट्ठकसूकरस्स पवत्तमस' अर्थात् न अति तरुण न अतिवृद्ध एक (वष) ज्येष्ठ सूअर का बना मास। सूकर-मद्दव के अन्य अमांसपरक अर्थ भी किए है, पर मासपरक अर्थ मे भी कोई विरोधाभास प्रतीत नही होता। अगुत्तर-निकाय (पञ्चक-निपात) मे बुद्ध ने अन्य किसी प्रसग पर उग्ग गृहपति के अनुरोध पर सूकर का मॉस ग्रहण किया है।

३ त्रिषष्टि० १०।१९३

४ दीघनिकाय महापरिनिब्बाणसुत्त २-३

५ महावीर चरिय ८। पृ० ३३८

६ दीघनिकाय महापरिनिब्बाण सुत्त

७ त्रिषष्टि० १०।१३।२७४-२८१

लिए किसी अन्य के प्रेरणा की आवश्यकता नही होती, वे स्वय ही प्रबुद्ध होते हे। बुद्ध का निर्वाण शीघ्र ही होने वाला हे, यह जानकर बुद्ध के प्रधान शिष्य आनन्द बुद्ध के निर्वाण के पहले ही विहार मे एक ओर जाकर कपिशीर्ष (खूटी) को पकड कर रोते है। तथागत को ज्ञात होने पर वे उन्हे अपने पास बुलाकर कहते हे—आनन्द! शोकमत करो, रोओ मत, मैंने कल ही कहा था कि सभी प्रियो का शोक अवश्यभावी है। आनन्द! तूने दीर्घ काल तक तथागत की सेवा की है। तू कृतपुण्य हे। निर्वाण साधन मे लग। शीघ्र ही अनास्रव हो।[८]

आनन्द! मैं जीर्ण, वृद्ध, महल्लक अध्वगत, वय प्राप्त हू। अस्सी वर्ष की मेरी अवस्था है। जैसे पुराने शकट को बाँध-बुध कर चलाना पडता है, वैसे ही मैं अपने आपको चला रहा हूँ। मैं अब अधिक दिन कैसे चलूगा? इसलिए आनन्द आत्मदीप, आत्मशरण, अनन्यशरण, धर्मदीप, धर्मशरण, अनन्यशरण होकर विहार करो।[९]

बुद्ध के निर्वाण के कुछ समय के पश्चात् आनन्द अर्हत् होते ह।

महावीर और वृद्ध दोनो ही निर्वाण के पूर्व ध्यान करते हे।

महावीर और बुद्ध दोनो की अत्येष्टिक्रिया मल्ल क्षत्रिय करते हे। हम पूर्व ही बता चुके ह, महावीर निर्वाण के समय नौ मल्लकी, नौ लिच्छवी अठारह काशी-कौशल के गणराजा पौषध-व्रत किय हुए थे, वे प्रात पोषध पालकर अत्येष्टि क्रिया मे लग जाते ह। बुद्ध के निर्वाण हो जाने पर आनन्द स्वय कुसिनारा मे जाकर सस्थागार मे इकट्ठे हुए मल्लो को बुद्ध के निर्वाण के समाचार देते ह। बुद्ध के निर्वाण के लिए आनन्द ने कुसिनारा को उपयुक्त नही समझा था। आनन्द ने बुद्ध को स्पष्ट कहा था 'भन्ते! मत इस क्षुद्र नगरक मे, शाखा नगरक मे, जगली नगरक मे आप परिनिर्वाण को प्राप्त हो। अनेक महानगर है—चम्पा, राजगृह, श्रावस्ती, साकेत, कौशाम्बी, वाराणसी, वहाँ आप परिनिर्वाण को प्राप्त करे। वहाँ बहुत से धनिक क्षत्रिय, धनिक ब्राह्मण, तथा अन्य बहुत से धनिक गृहपति भगवान के भक्त है। वे तथागत के शरीर की पूजा करेगे। इससे स्पष्ट है कि मल्ल बुद्ध की अपेक्षा महावीर के अधिक सन्निकट रहे है।

---

८ दीघनिकाय, महानिब्बाण सुत्त

९ अत्तदीपा विहरथ, अत्तसरणा, अनञ्ञसरणा, धम्मदीवा, धम्मसरणा, अनञ्ञसरणा।

महावीर और बुद्ध दोनो के निर्वाण के समय इन्द्र व देवगण प्रमुखता से भाग लेते हे। महावीर की अत्येष्टि क्रिया आदि सभी मे देवता का स्थान मुख्य रहा है और मानवो का स्थान उनसे गौण रहा है। इन्द्र ही भगवान् महावीर के शरीर को क्षीरोदक से स्नान कराते है, गोशीर्ष चन्दन आदि का विलेपन करते है, देवदूष्य वस्त्र ओढाते हे, उन्हे शिविका मे बिठाकर वे ही उसे उठाते है। अग्निकुमार देव ने अग्नि प्रज्वलित की, वायुकुमार वायु प्रचालित करता है और मेघकुमार उस अग्नि को शान्त करता है। महावीर की दाढे और दन्त भी इन्द्र और देवता-गण ही ले जाते हे।

बुद्ध की अन्त्येष्टि क्रिया बाह्यरूप से मानव ही करते है। देवता और इन्द्र अदृष्ट रहकर सारा कार्य करते हे। देवता क्या चाहते हे, कैसा चाहते है, यह बात आयुष्मान अनिरुद्ध उन्हे बताते रहते है। तथागत बुद्ध की चिता मे स्वय ही आग जलती है और मेघकुमार देव उनकी चिता को शान्त करते है। तथागत की एक दाढ स्वर्गलोक मे पूजित है और एक गाधारपुर मे। एक कलिग राजा के देश मे और एक को नागराज पूजते हे। चालीस केश, रोम आदि को एक-एक करके नाना चक्रवालो मे देवता ले गये।[10]

इस प्रकार उस युग के दो महापुरुषो के जीवन मे जहा अनेक प्रकार की विलक्षण समानताए परिलक्षित होती है, वहाँ निर्वाण-विधि भी काफी समान है। वास्तव मे अपनी परम्परा मे दोनो ही लोकोत्तर पुरुष माने गये है, अत उनके सभी सस्कार लोकोत्तर-विधि से सपन्न हो, यह सहज भी है।

ऐतिहासिक दृष्टि से निर्वाणकाल

प्राचीन और अर्वाचीन ग्रन्थो के आधार से आज यह अच्छी तरह प्रमाणित हो चुका है कि भगवान् महावीर का निर्वाण ई० पू० ५२७ मे हुआ था।

---

१० एका हि दाण तिदिवेहि पूजिता।
एका पन गन्धारपुरे महीयति॥
कालिङ्गरञ्ञो विजिते पुनेक।
एकपन नागराजा महेन्ति॥
चत्तालीस सभादन्ता, केसा लोमा च सब्बसो।
देवा हरिस एकेक, चक्कवालपरम्परा ति॥

आधुनिक ऐतिहासिक विद्वानो ने इस सम्बन्ध मे अनेक दृष्टियो से गभीर चिन्तन किया है। सर्वप्रथम इस सम्बन्ध मे डा० हर्मन जैकोबी ने आचाराग, व कल्पसूत्र की प्रस्तावना मे चर्चा की है।[1] उन्होने लिखा है 'जैनो की यह सर्वसम्मत मान्यता है कि जैन सूत्रो की वाचना वल्लभी मे देवर्धिगणी क्षमाश्रमण के तत्वावधान मे हुई। इस घटना का समय वीर निर्वाण से ९८० अथवा ९९३ वर्ष पश्चात का है। अर्थात् ई० सन् ४५४ (या ४६७) का है जैसा कि कल्पसूत्र[2] मे बताया गया है।[3]

प्रस्तुत उद्धरण से यह स्पष्ट है कि डा० जैकोबी ने वीर निर्वाण का समय ई० पू० ५२६ माना है। चू कि ५२६ मे ४५४ जोडने पर ९८० और ४६७ जोडने पर ९९३ वर्ष होते है।

इसके पश्चात् डा० जेकोबी ने दस वर्ष के पश्चात् उत्तराध्ययन और सूत्रकृताङ्ग की प्रस्तावना मे पुन महावीर और बुद्ध के उसी तथ्य को प्रसगोपात्त फिर दोहराया। उसके बाद उन्होने 'बुद्ध और महावीर का निर्वाण, नामक लेख जर्मनी की एक शोध-पत्रिका मे लिखा।[4] इस लेख मे अपनी पहली मान्यता के विपरीत दूसरा मत प्रकट किया कि बुद्ध का निर्वाण ई० पूर्व ४८४ मे हुआ और महावीर का निर्वाण ई० पू० ४७७ मे हुआ। साराश यह है महावीर बुद्ध से ७ वर्ष के पश्चात् निर्वाण को प्राप्त हुए और आयु मे उनसे १५ वर्ष छोटे थे।

डा० जैकोबी ने अपने परिवर्तित निर्णय के सम्बन्ध मे कोई भी प्रमाण प्रस्तुत नही किया। उन्होने अपने लेख मे बुद्ध को ज्येष्ठ और महावीर को छोटा माना है। उनका तर्क यह है कूणिक का चेटक के साथ युद्ध हुआ, उसका जितना विवरण बौद्ध साहित्य मे मिलता है, उससे अधिक विस्तार से

---

१ S B E Vol XLV Introduction to Jaina Sutras, VOL II, P 21, 1894

२ समणस्स ण भगवओ महावीरस्स जाव सव्वदुक्खप्पहीणस्स नव वाससयाइ विइक्कताइ, दसमस्स य वाससयस्स अय असीइमे सवच्छरकाले गच्छइ।

—कल्पसूत्र १४७, देवेन्द्रमुनि

३ एस० बी० ई० वोल्युम २२, इन्ट्रोडक्टरी पृ० ३७

४ शोध पत्रिका भाग २६, सन् १९३०, प्रस्तुत लेख का गुजराती अनुवाद 'भारतीय विद्या' शोध पत्रिका मे सन् १९४४ जुलाई वर्ष ३, अक १, मे हुआ, और हिन्दी अनुवाद सन् १९६२, श्रमण अक ६-७ मे प्रकाशित हुआ।

वर्णन जैन आगम साहित्य मे है। बौद्ध साहित्य मे अजातशत्रु के अमात्य वस्सकार द्वारा बुद्ध के समक्ष वज्जियो पर विजयप्राप्ति करने की योजना प्रस्तुत करने का उल्लेख है, वहाँ पर जैन आगम साहित्य मे कूणिक और चेटक के बीच हुए महाशिलाकटक सग्राम और रथमूसल सग्राम और वैशाली के प्राकार भग का स्पष्ट विवरण मिलता है। उनका यह स्पष्ट मन्तव्य है कि इससे यही प्रमाणित होता है कि महावीर बुद्ध के बाद कितने ही (सभवत ७ वर्ष) अधिक जीवित रहे थे।[५]

वस्तुत बौद्ध साहित्य के सम्यक् पर्यवेक्षण से यह स्पष्ट ज्ञात होता कि डा० जैकोबी का प्रस्तुत तर्क वजनदार नही है, चूकि वस्सकार की कूट-नीतिक चाल से वज्जियो पर कूणिक की विजय का जैन साहित्य मे दिये गये विवरण से भिन्न प्रकार का विवरण बौद्ध ग्रन्थो मे है।

दीघनिकाय की अट्टकहा के अनुसार वस्सकार छलछद्म से वज्जियो मे फूट के बीज बोता है और फिर कूणिक वैशाली पर आक्रमण करता है और वज्जियो पर विजय-वैजयन्ती फहराता है इस प्रकार पूरा विवरण है। केवल रथमूसल और महाशिलाकटक सग्राम का परिचय बौद्ध साहित्य मे नही है।

सत्य-तथ्य यह है कि राजा कूणिक भगवान महावीर का परम भक्त था, उसने भगवान महावीर की सूचना प्रतिदिन प्राप्त करने की व्यवस्था बना रखी थी। भगवान महावीर के परिनिर्वाण के पश्चात् वह भगवान सुधर्मा की परिषद् मे भी उपस्थित हुआ था,[६] अत जैनागमो मे उसका अधिक विवरण प्राप्त होना स्वाभाविक है।

डा० जैकोबी ने त्रिपिटक साहित्य मे आए हुए महावीर के पूर्व निर्वाण सम्बन्धी तीनो प्रकरणो को अयथार्थ प्रमाणित करने का प्रयास किया है, पर यह यथार्थ नही है। इन तीन प्रकरणो के अतिरिक्त कही भी ऐसा उल्लेख नही मिलता है जो महावीरनिर्वाण से पूर्व बुद्धनिर्वाण को प्रमाणित करता हो, पर ऐसे अनेक प्रसग-प्राप्त होते है जो महावीर को ज्येष्ठ और बुद्ध को (छोटेक-निष्ठ) प्रमाणित करते है।

डा० जैकोबी ने महावीर का निर्वाण ई० पूर्व ४७७ और बुद्ध का निर्वाण ई० पूर्व ४८४ माना है किन्तु उन्होने प्रारभ से अन्त तक अपने लेख मे यह

५ श्रमण, वष १३, अक ७, पृ० ३५

६ त्रिषष्टि० परिशिष्ट पर्व, सग ४, श्लो० १५-५४

बताने का प्रयास नही किया है कि ये तिथियाँ अनिवार्य क्यो मानी जाय ? उन्होने लिखा है कि जैनो की सर्वमान्य परम्परा के अनुसार चन्द्रगुप्त का राज्याभिषेक महावीर निर्वाण के २१५ वर्ष के पश्चात् हुआ था। परन्तु आचार्य हेमचन्द्र के परिशिष्ट पर्व के अनुसार यह राज्याभिषेक महावीर निर्वाण के १५५ वर्ष के पश्चात् हुआ।[७] ऐतिहासिक विद्वानो ने इसे आचार्य हेमचन्द्र की भूल माना है। इस विषय मे सर्वाधिक पुष्ट प्रमाण यह है कि जिस दिन महावीर निर्वाण को प्राप्त होते हैं उसी दिन उज्जैनी मे पालक का राज्याभिषेक होता है। उसका और उसके वश का राज्य ६० वर्ष तक चलता है। उसके पश्चात् १५५ वर्ष तक नन्दो का राज्य रहता है। उसके बाद मौर्य राज्य का प्रारभ होता है। दूसरे शब्दो मे कहा जाय तो महावीर निर्वाण के २१५ वर्ष पश्चात् चन्द्रगुप्त मौर्य गद्दी पर बैठता है।[८] यह प्रकरण 'तित्थोगाली पइन्नय' का है। जो आचार्य हेमचन्द्र के परिशिष्ट पर्व और भद्रेश्वर की कहावली से अत्यधिक प्राचीन है। सभव है, हेमचन्द्राचार्य की गणना मे पालक राज्य के ६० वर्ष असावधानी से छूट गये है। इसी बात को श्री पूर्णचन्द्र नाहर तथा श्री कृष्णचन्द्र घोष ने भी माना है।[९]

यह सभव लगता है कि परिशिष्ट पर्व के श्लोक (३३९) के आधार पर डॉ० जैकोबी ने महावीर निर्वाण के समय को निश्चित किया है उसमे भी असावधानी से वैसी ही भूल रही हुई है।

आचार्य हेमचन्द्र ने अपने समकालीन राजा कुमारपाल का काल बताते समय महावीर निर्वाण का समय ई० पूर्व ५२७ माना है किन्तु ई०

---

७ एव च श्रीमहावीरमुक्तेर्वर्षशते गते।
पच पचाशदधिके चन्द्रगुप्तो भवेन्नृप ॥

—परिशिष्ट पर्व, सर्ग ८, श्लोक ३३९

८ ज रयिण सिद्धिगओ अरहा तित्थकरो महावीरो।
त रयणिमवन्तिए, अभिषित्तो पालओ राया ॥
पालगरण्णो सट्ठी, पण पणसय वियाणि णदाणम्।
मुरियाण सट्ठिसय तीसा पुण पसमित्ताण ॥

—तित्थोगाली पइन्नय ६२०-२१

९ Hemachandra must have omitted by oversight to count the period of 60 years King Paluka after Mahavira
Epitome of Jainisum, Appendix A, P
३९

पूर्व ४७७ नही माना है। उन्होने त्रिपष्टिशलाका पुरुष चरित्र मे लिखा है— 'जब भगवान् महावीर के निर्वाण से सोलहसौ उनहत्तर वर्ष व्यतीत होगे, तब चौलुक्य कुल मे चन्द्रमा के समान राजा कुमारपाल होगा।[१०] अब यह असदिग्ध रूप मे माना जाता कि राजा कुमारपाल ई० सन् ११४३ मे हुआ।[११] आचार्य हेमचन्द्र के अभिमतानुसार यह काल महावीर निर्वाण के १६६९ वर्ष का है। इस प्रकार हेमचन्द्राचार्य ने महावीर का निर्वाण काल १६६९–११४२ ई० पू० ५२७ ही माना है।

पण्डित सुखलाल जी,[१२] प० गोपालदास पटेल[१३] और किस्तूरचन्द्र बाठिया[१४] ने डॉ० जैकोबी के मत को स्वीकार किया है, इसका एक मात्र कारण डा० जैकोबी के प्रमाणो का एक पक्षीय अध्ययन ही है।[१५]

डॉ० जैकोबी के पश्चात् ऐतिहासिक क्षेत्र मे पर्याप्त अन्वेषणा हुई है और अनेक नये तथ्य सामने आये है, अत डा० जैकोबी के निर्णय को अन्तिम निर्णय मानना उचित नही है।

सुप्रसिद्ध इतिहासवेत्ता डा० के० पी० जायसवाल ने भी महावीर निर्वाण को बुद्ध के निर्वाण से पहले माना। उनका मन्तव्य है कि बौद्धागमो मे वर्णित महावीर के निर्वाण प्रसग ऐतिहासिक तथ्यो के निर्धारण मे किसी भी दृष्टि से उपेक्षा योग्य नही है। सामगाम सुत्त मे बुद्ध महावीर के निर्वाण समाचार श्रवण करते है, और जो धारणाएँ प्रचलित है उसके अनुसार वे इसके दो वर्ष के पश्चात् निर्वाण प्राप्त करते है। बौद्धो की दक्षिणी परम्परा के अनुसार बुद्ध निर्वाण ई० पूर्व० ५४४ मे हुआ, इसलिए महावीर का निर्वाण ई० पूर्व० ५४६ मे होता है।[१६]

डॉ० जायसवाल ने महावीर निर्वाण सम्बन्धी बौद्ध उल्लेखो की

---

१० त्रिपष्टि० १०।१२।४५-४६

११ R C Majumdar, H C Raychoudhury, K. K Dutta, An advannced History of India P 202

१२ दर्शन और चिन्तन, द्वितीय खण्ड, पृ० ४७-४८

१३ भगवान महावीर नो सयम धर्म, पृ० २५७-२६२

१४ श्रमण वर्ष १३, अक ६, पृ० ९

१५ आगम और त्रिपिटक० पृ० ६१

१६ Jourual of Bihar and Orissa Research Socity 1, 103,

उपेक्षा न करने की बात कही है वह उचित है किन्तु सामगाम सुत्त के आधार से बुद्ध के दो वर्ष पूर्व महावीर का निर्वाण मानना और ४७० मे १८ वर्ष मिलाकर महावीर और विक्रम के बीच के काल की अवधि निश्चित करना प्रबल-प्रमाणो पर आधृत नही है। सरस्वती गच्छ की पट्टावली के अनुसार वीर निर्वाण और विक्रम-जन्म के बीच का अन्तर ४७० वर्ष है। विक्रम १८ वर्ष की उम्र मे राज्यासीन हुआ, और उस समय सवत् प्रचलित हुआ। ४७० वर्ष के पश्चात् विक्रम स० मानने की बात भूल भरी है। ऐतिहासिक विज्ञो का यह स्पष्ट मन्तव्य है कि प्रस्तुत मान्यता का प्रामाणिक आधार नही है।[१७] आचार्य मेरुतु ग ने अपने विचार-श्रेणी ग्रन्थ मे महावीर निर्वाण और विक्रमादित्य के मध्य ४७० वर्ष का अन्तर माना है।[१८] परन्तु यह अन्तर विक्रम के जन्म काल से नही, अपितु शक-राज्य की समाप्ति और विक्रम-विजय के काल से है।[१९]

हिन्दू-सभ्यता ग्रन्थ मे डा० राधाकुमुद मुकर्जी ने डा० जायसवाल की भाँति भगवान् महावीर की ज्येष्ठता और पहले निर्वाण प्राप्ति का युक्ति पुरस्सर समर्थन किया है[२०] पुरातत्ववेत्ता मुनि श्री जिनविजय जी ने 'जैन साहित्य सशोधक,' मे डा० जायसवाल के मत को स्वीकार करते हुए महावीर की ज्येष्ठता स्वीकार की है।[२१]

धर्मानन्द कौशाम्बी ने 'भगवान् बुद्ध' ग्रन्थ[२२] मे अपनी स्पष्ट मान्यता व्यक्त की है कि बुद्ध तात्कालीन सातो धर्माचार्यो मे सबसे छोटे थे। प्रारभ

---

१७ Journal of Bihar and Oerissa research society 1, 103

१८ विक्कमरज्जारभा परओ सिरि वीर निव्वुई भणिया।
सुन्न मुणि वेय जुत्तो विक्कम कालउ जिण कालो ॥

—विचार श्रेणी पृ० ३-४

१९ The suggestion can hardly be said to rest on any reliable tradition Merufunga places the eud of saka rule and the Victory and not birth of the traditional Vikramia

—R C, Majawdar, H C Raychouohary K K Dutta
umn Advanced History of India, p 85

२० हिन्दू सभ्यता पृ० २२३

२१ जैन साहित्य सशोधक, पूना १९२०, खण्ड १, अक ४ पृ० २०४ से २१०

२२ भगवान् बुद्ध पृ० ३३, १५५

मे उनका सघ भी छोटा था। कौशाम्बीजी ने कालक्रम के प्रश्न को उपेक्षित सा कर दिया। वे लिखते है 'बुद्ध की जन्म तिथि मे कुछ कम या अधिक अतर पड जाता है, तो भी उससे उनके जीवन चरित्र मे किसी प्रकार का गौणत्व नही आ सकता।[२३]

इसीतरह डा० हर्नले ने 'हेस्टिंग्गाना इन्साइक्लोपिडिया आफ रिलीजन एण्ड इथिक्स'' ग्रन्थ मे चर्चा की है। उनके मन्तव्यानुसार बुद्ध निर्वाण महावीर से पाँच वर्ष के बाद होता है और बुद्ध का जन्म महावीर से तीन वर्ष पूर्व होता है।

पुरातत्ववेत्ता मुनि श्री कल्याणविजयजी के अभिमतानुसार भगवान् महावीर से बुद्ध चौदह वर्ष, पाँच माह, और पन्द्रह दिन पूर्व निर्वाण प्राप्त कर चुके थे। अर्थात् भगवान् महावीर से बुद्ध आयु मे लगभग बावीस वर्ष बडे थे। बुद्ध का निर्वाण ई० पू० ५४२ (मई) और महावीर का निर्वाण ई० पू० ५२८ नवम्बर मे होता है। भगवान महावीर का निर्वाण उन्होने ई० पू० ५२७ माना है, जो परम्परा और प्रमाण-सम्मत है। [२४]

इतिहास महोदधि श्री इन्द्रविजय जी ने अनेक प्रमाण देकर यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि महावीर का निर्वाण ईस्वी पूर्व ५२७ मे हुआ है।[२५]

भगवान महावीर के निर्वाण काल पर चिन्तन जिन आधारो से किया गया है उसका मूल स्रोत त्रिपिटक साहित्य है। मज्झिम निकाय सामगामसुत्त, दीघनिकाय पासादिक सुत्त, और दीघ निकाय-सगीति पर्याय सुत्त आदि मे महावीर के निर्वाण की चर्चा है। बाह्य ढाचा पृथक् होने पर भी, तीनो प्रकरणो की आत्मा एक है। इनमे तथागत बुद्ध ने आनन्द और चुन्द से भगवान महावीर के निर्वाण की बात कही है। कितने ही लेखको का यह मन्तव्य है कि इन प्रकरणो मे विरोधाभास है। डा० जैकोबी ने उक्त प्रकरणो को इसलिए अप्रमाणिक माना है कि इनमे से कोई भी उल्लेख महापरिनिव्वाण सुत्त मे नही है जिसमे बुद्ध के अन्तिम जीवन प्रसगो का वर्णन है। जहाँ तक भगवान महावीर का बुद्ध से पूर्व निर्वाण का प्रश्न है वहाँ तक इन प्रकरणो की वास्तविकता के सम्बन्ध मे सन्देह करना उपयुक्त नही है चूकि इससे

---

२३ भगवान बुद्ध भूमिका १२

२४ वीर निर्वाण सम्वत और जैन काल गणना

२५ तीर्थंकर महावीर, भाग २, पृ० ३२३

विरोधी उल्लेख जैन आगम साहित्य मे कही भी नही है। यदि जैन आगम साहित्य मे महावीर और बुद्ध के निर्वाण की पहले या पीछे के सम्बन्ध मे कोई भी स्पष्ट उल्लेख होता तो इन प्रकरणो की वास्तविकता के सम्बन्ध मे चिन्तन के लिए अवकाश रहता। साथ ही बौद्ध साहित्य मे इन तीन प्रकरणो के अतिरिक्त कोई इस प्रकार का प्रकरण होता जिसमे महावीर निर्वाण से पूर्व बुद्ध निर्वाण की बात होती, तो भी इन प्रकरणो की वास्तविकता के सम्बन्ध मे सोचने को अवकाश रहता, पर इस प्रकार का कोई भी बाधक प्रमाण न जैनसाहित्य मे है और न बौद्ध साहित्य मे ही है। ऐसी स्थिति मे उसे अप्रमाण कैसे माना जा सकता है। अब रही बात कालावधि के भेद की, उसके सम्बन्ध मे हम अगली पक्तियो मे चिन्तन कर रहे है कि भगवान महावीर के निर्वाण से बावीस वर्ष के बाद बुद्ध का निर्वाण हुआ।

डा० मुनि श्री नगराज जी ने उक्त तीन प्रकरणो के अतिरिक्त और भी अनेक बौद्ध साहित्य के प्रसग बताए है, जिन प्रकरणो से यह स्पष्ट सिद्ध होता है कि बुद्ध छोटे थे और महावीर बडे थे। वे प्रकरण इस प्रकार है।

'तथागत बुद्ध एक बार श्रावस्ती मे अनाथ पिंडिक के जेतवन मे विहार कर रहे थे। उस समय कोशल नरेश राजा प्रसेनजित बुद्ध के पास गया और कुशल क्षेम पूछकर जिज्ञासा व्यक्त की—'गौतम! क्या आप भी यह अधिकार पूर्वक कहते है कि आपने अनुत्तर सम्यक् सबोधि को प्राप्त कर लिया है?

बुद्ध ने कहा—महाराज! यदि कोई किसी को सचमुच सम्यक् सम्बुद्ध कहे तो वह मुझे ही कह सकता है, मैंने ही अनुत्तर सम्यक् सबोधि का साक्षात् किया है।

प्रसेनजित—गौतम! दूसरे श्रमण ब्राह्मण जो सघ के अधिपति, गणाधिपति, गणाचार्य, प्रसिद्ध यशस्वी, तीर्थंकर और बहुजन सम्मत पूरण काश्यप, मक्खलि गोशाल, निगठ नायपुत्त, सजय बेलट्ठिपुत्र, प्रकुदध कात्यायन, अजितकेश कम्बली आदि से भी ऐसा प्रश्न करने पर वे अनुत्तर सम्यक् सम्बोधि प्राप्ति का अधिकार पूर्वक कथन नही करते। आप तो अल्प-वयस्क व सद्य प्रव्रजित ह, तथापि यह किस प्रकार कह सकते है?

---

२६ आगम और त्रिपिटक एक अनुशीलन पृ० ८२

वुद्ध—क्षत्रिय, सर्प, अग्नि व भिक्षु को अल्प-वयस्क समझकर कभी उनका पराभव या अपमान नही करना चाहिए।[२७]

दूसरा एक प्रसग [देखे सुत्तनिपात, समिय सुत्त सुत्त पृ० १०४] है जिसमे समिय परिव्राजक अजितकेश, सजय वेलट्ठिपुत्र निगण्ठपुत्र आदि से भी अपने प्रश्नो का समाधान नही पाता है, वह सोचता है, जब इन बडे अनुभवी धीर वृद्ध धर्मनायको से भी मेरे प्रश्न का समाधान नही मिला तो तथागत बुद्ध जो आयु व प्रव्रज्या मे कनिष्ठ है उनसे समाधान कैसे मिलेगा ?

तीसरे घटना प्रसग मे मगधराज अजात शत्रु अपने मन्त्रियो से पूछता है कि किसका सत्सग करे जिससे चित्त प्रसन्न हो ? तब कोई मत्री पूरण काश्यप, कोई गोशालक व कोई निगठनाथ पुत्र को वयोवृद्ध सघनेता बताकर सत्सग करने का कहते है।[२८]

इन तीनो प्रकरणो से भी महावीर का ज्येष्ठत्व प्रमाणित होता है। वह केवल वयोमान की दृष्टि से ही नही, अपितु ज्ञान, प्रभाव, और प्रव्रज्या की दृष्टि से भी महावीर ज्येष्ठ है और बुद्ध छोटे है। साथ ही इन उल्लेखो से यह स्पष्ट है कि जब बुद्ध ने अपना धर्मोपदेश प्रारभ किया था, तब तक महावीर का काफी प्रचार हो चुका था।

त्रिपिटक साहित्य मे महावीर के सम्बन्ध मे अनेक स्थलो पर प्रकाश डाला गया है किन्तु जैन-आगम साहित्य मे बुद्ध के सम्बन्ध मे कुछ भी वर्णन नही है। इसका मुख्य कारण यह हो सकता है कि जो नवोदित धर्म नायक होता है, वह अपने पूर्ववर्ती प्रतिस्पर्धी धर्म-नायक के सम्बन्ध मे विस्तार से प्रकाश डालता है, चू कि उसके अन्तर्मानस मे उसके समकक्ष होने की एक भावना होती है, स्वय को श्रेष्ठ और दूसरे को निकृष्ट बताने का विशेष प्रयत्न होता है। जैन आगमसाहित्य मे कही भी बौद्ध धर्म के प्रवर्तक के रूप मे बुद्ध का उल्लेख नही हुआ है। इसका कारण यही हो सकता है कि महावीर का इतना अधिक प्रभाव हो चुका था कि उन्होने नवोदित पथ को महत्त्व नही दिया। तथ्य यह है कि महावीर बुद्ध से वृद्ध और पूर्व निर्वाण प्राप्त थे।

भगवान महावीर का निर्वाण 'महामहोपाध्याय रायबहादुर गौरीशकर

---

२७ सयुक्त निकाय, दहरसुत्त १।३-१

२८ दीघनिकाय, सामञ्ञफल सुत्त १।२ पृ० १६-१८

ओझा,[२९] डा० बलदेव उपाध्याय[३०] डा० वासुदेवशरण अग्रवाल,[३१] डा० हीरालाल जैन,[३२] महामहोपाध्याय प० विश्वेश्वरनाथ रेउ,[३३] मुनि श्री कल्याण विजय जी,[३४] मुनि श्री इन्द्रविजय जी,[३५] डा० मुनि नगराज जी,[३६] आदि सभी इतिहासज्ञ विद्वानो ने असदिग्ध रूप से ईस्वी पूर्व, ५२७ माना है।

इस सम्बन्ध मे एक दूसरा प्रबल प्रमाण यह भी है कि इतिहास की दृष्टि से सम्राट् चन्द्रगुप्त का राज्यारोहण ई० पू० ३२२ माना गया है। इतिहासकारो का यह स्पष्ट मन्तव्य है इतिहास के प्रस्तुत अन्धकार पूर्ण वातवरण मे यह एक प्रकाश स्तम्भ के समान है।[३७] इस समय को सभी विज्ञो ने मान्य किया है। इसको केन्द्र बिन्दु मानकर इतिहास शताब्दियो पूर्व और शताब्दियो के बाद की घटनाओ का समय पकडता रहा है।

जैन साहित्य मे आचार्य मेरुतु ग की विचार-श्रेणि, तित्थोगाली पइन्नय, तथा तित्थोद्धारप्रकीर्ण, आदि प्राचीन ग्रन्थो मे चन्द्रगुप्त का राज्यारोहण महावीर निर्वाण के २१५ वर्ष के बाद माना है। यह राज्यारोहण उन्होने अवन्ती का माना है। यह एक सत्य तथ्य है कि चन्द्रगुप्त मौर्य ने पाटलिपुत्र मे (मगध) राज्यारोहण के १० वर्ष के बाद अवन्ती मे अपना राज्य स्थापित किया था।[३८] इस तरह जैन-काल-गणना और सामान्य रूप से ऐतिहासिक धारणा परस्पर सगत हो जाती है और महावीर का निर्वाण ई० पूर्व ३१२-२१५ = ई० पू० ५२७ मे होता है।

---

२९ श्री जैन सत्य प्रकाश वर्ष २, अक—४-५ पृ० २१७-८१

३० धम और दर्शन पृ० ८९

३१ तीर्थंकर महावीर, भाग २, भूमिका पृ० १९

३२ तत्त्व समुच्चय पृ० ६

३३ भारत का प्राचीन राजवश, खण्ड २, पृ० ४३६

३४ वीर निर्वाण सवत् और जैन काल गणना पृ० १२-१३

३५ तीर्थंकर महावीर भाग० २ पृ० ३१९-३२४

३६ आगम और त्रिपिटक एक अनुशीलन

३७ (क) Dr Radha Kumud Mukherjee, Chandragupta Mourya and his times, pp 44-6

(ख) भारत का वृहद् इतिहास, प्रथम भाग, प्राचीन भारत, चतुर्थ सस्करण, पृ० ३४२

३८ Radha Kumud Mukherjee, Chandragupta Mourya and his times, p 3

वुद्ध—क्षत्रिय, सर्प, अग्नि व भिक्षु को अल्प-वयस्क समझकर कभी उनका पराभव या अपमान नही करना चाहिए ।[२७]

दूसरा एक प्रसग [देखे सुत्तनिपात, समिय सुत्त सुत्त पृ० १०४] है जिसमे समिय परिव्राजक अजितकेश, सजय वेलट्ठिपुत्र निगण्ठपुत्र आदि से भी अपने प्रश्नो का समाधान नही पाता है, वह सोचता है, जब इन बडे अनुभवी धीर वृद्ध धर्मनायको से भी मेरे प्रश्न का समाधान नही मिला तो तथागत बुद्ध जो आयु व प्रव्रज्या मे कनिष्ठ है उनसे समाधान कैसे मिलेगा ?

तीसरे घटना प्रसग मे मगधराज अजात शत्रु अपने मत्रियो से पूछता है कि किसका सत्सग करे जिससे चित्त प्रसन्न हो ? तब कोई मत्री पूरण काश्यप, कोई गोशालक व कोई निगठनाथ पुत्र को वयोवृद्ध सघनेता बताकर सत्सग करने का कहते है ।[२८]

इन तीनो प्रकरणो से भी महावीर का ज्येष्ठत्व प्रमाणित होता है। वह केवल वयोमान की दृष्टि से ही नही, अपितु ज्ञान, प्रभाव, और प्रव्रज्या की दृष्टि से भी महावीर ज्येष्ठ है और बुद्ध छोटे हैं। साथ ही इन उल्लेखो से यह स्पष्ट है कि जब बुद्ध ने अपना धर्मोपदेश प्रारभ किया था, तब तक महावीर का काफी प्रचार हो चुका था।

त्रिपिटक साहित्य मे महावीर के सम्बन्ध मे अनेक स्थलो पर प्रकाश डाला गया है किन्तु जैन-आगम साहित्य मे बुद्ध के सम्बन्ध मे कुछ भी वर्णन नही है । इसका मुख्य कारण यह हो सकता है कि जो नवोदित धर्म नायक होता है, वह अपने पूर्ववर्ती प्रतिस्पर्धी धर्म-नायक के सम्बन्ध मे विस्तार से प्रकाश डालता है, चूकि उसके अन्तर्मानस मे उसके समकक्ष होने की एक भावना होती है, स्वय को श्रेष्ठ और दूसरे को निकृष्ट बताने का विशेष प्रयत्न होता है । जैन आगमसाहित्य मे कही भी बौद्ध धर्म के प्रवर्तक के रूप मे बुद्ध का उल्लेख नही हुआ है । इसका कारण यही हो सकता है कि महावीर का इतना अधिक प्रभाव हो चुका था कि उन्होने नवोदित पथ को महत्त्व नही दिया । तथ्य यह है कि महावीर बुद्ध से वृद्ध और पूर्व निर्वाण प्राप्त थे ।

भगवान महावीर का निर्वाण 'महामहोपाध्याय रायबहादुर गौरीशकर

---

२७ सयुक्त निकाय, दहरसुत्त १।३-१

२८ दीघनिकाय, सामञ्जफल सुत्त १।२ पृ० १६-१८

ओझा,[२९] डा० बलदेव उपाध्याय[३०] डा० वासुदेवशरण अग्रवाल,[३१] डा० हीरालाल जैन,[३२] महामहोपाध्याय प० विश्वेश्वरनाथ रेउ,[३३] मुनि श्री कल्याण विजय जी,[३४] मुनि श्री इन्द्रविजय जी,[३५] डा० मुनि नगराज जी,[३६] आदि सभी इतिहासज्ञ विद्वानो ने असदिग्ध रूप से ईस्वी पूर्व. ५२७ माना है।

इस सम्बन्ध मे एक दूसरा प्रवल प्रमाण यह भी है कि इतिहास की दृष्टि से सम्राट् चन्द्रगुप्त का राज्यारोहण ई० पू० ३२२ माना गया है। इतिहासकारो का यह स्पष्ट मन्तव्य है इतिहास के प्रस्तुत अन्धकार पूर्ण वातवरण मे यह एक प्रकाश स्तम्भ के समान है।[३७] इस समय को सभी विज्ञो ने मान्य किया है। इसको केन्द्र बिन्दु मानकर इतिहास शताब्दियो पूर्व और शताब्दियो के बाद की घटनाओ का समय पकडता रहा है।

जैन साहित्य मे आचार्य मेरुतु ग की विचार-श्रेणि, तित्योगाली पइन्नय, तथा तित्थोद्धारप्रकीर्ण, आदि प्राचीन ग्रन्थो मे चन्द्रगुप्त का राज्यारोहण महावीर निर्वाण के २१५ वर्ष के बाद माना है। यह राज्यारोहण उन्होने अवन्ती का माना है। यह एक सत्य तथ्य है कि चन्द्रगुप्त मौर्य ने पाटलिपुत्र मे (मगध) राज्यारोहण के १० वर्ष के बाद अवन्ती मे अपना राज्य स्थापित किया था।[३८] इस तरह जैन-कालगणना और सामान्य रूप से ऐतिहासिक धारणा परस्पर सगत हो जाती है और महावीर का निर्वाण ई० पूर्व ३१२-२१५=ई० पू० ५२७ मे होता है।

---

२९ श्री जैन सत्य प्रकाश वर्ष २, अक—४-५ पृ० २१७-८१

३० धर्म और दर्शन पृ० ८९

३१ तीर्थंकर महावीर, भाग २, भूमिका पृ० १९

३२ तत्त्व समुच्चय पृ० ६

३३ भारत का प्राचीन राजवश, खण्ड २, पृ० ४३६

३४ वीर निर्वाण सवत् और जैन काल गणना पृ० १२-१३

३५ तीर्थंकर महावीर भाग० २ पृ० ३१९-३२४

३६ आगम और त्रिपिटक एक अनुशीलन

३७ (क) Dr Radha Kumud Mukherjee, Chandragupta Mourya and his times, pp 44-6

(ख) भारत का वृहद् इतिहास, प्रथम भाग, प्राचीन भारत, चतुर्थ सस्करण, पृ० ३४२

३८ Radha Kumud Mukherjee, Chandragupta Mourya and his times, p 3

श्वेताम्बर और दिगम्बर दोनो परम्परा के प्राचीन साहित्य मे एक मत से महावीर निर्वाण के ६०५ वर्ष और पाच मास के पश्चात् शक सम्वत् प्रारभ होने का उल्लेख है।[४०] ऐतिहासिक दृष्टि से शक सवत् का प्रारम्भ ई० पूर्व ७८ से होता है।

इस प्रकार साहित्य एव इतिहास दोनो ही प्रमाणो से यह सिद्ध होता है कि भगवान महावीर बुद्ध से ज्येष्ठ थे तथा उनका निर्वाण काल ई० पू० ५२७ निश्चित है।

※ ※

---

३९ (क) The date 313 B C for Chandraguptas' accession if it is based on correct tradition, mayrefer to his acquisition of Avanti in Malwa, as the Chronological aatum is found in verse where the Naurya King funds mention in the list of seeccession of Palak, the Ring of Avanti

—H C Ray Choudhuri, Political History of Aneient India, p, 295

(ख) The Jain date 313 B C, if based, on correct tradition, may refer to acquisition of Avantis (Malwa)

—An Advanced History of India p 99

४० ज रयणि सिद्धिगओ, अरहा तित्थकरो महावीरो।
त रयणिमवन्तीए, अभिसित्तो पालओ राया॥
पालगरण्णो सट्ठी, पुण पण्णसय वियाणि णदाण।
मुरियाण सट्ठिसय पणतीसा पूसमित्ताण (त्तस्स)॥
बल मित्त-भाणुमित्ता, सट्ठी चत्ताय होन्ति नहसेणे।
गद्दभसयमेग पुण, पडिवन्नो तो सगो राया॥
पच य मासा पच य, वासा छच्चेव होति वाससया।
परिनिव्वुअस्सऽरिहतो, तो उप्पन्नो (पडिवन्नो) सगो राया॥

—तित्थोगाली पइन्नय, गा० ६२०-६२३

(ख) विचार-श्रेणी, मेरुतुगाचार्य रचित, जैन साहित्य सशोधक, खण्ड २, अक ३-४ पृ० ४

(ग) महावीर चरिय, गा, ३१६९, पत्र- ९४-१ आचार्य नेमिचन्द्र रचित

(घ) पणछस्सयवस्स पणमासजुद गमिय वीरणिव्वुइदो।
सगराजो तो कक्की चदुणवतियमहियसगयास॥

—त्रिलोक सार ८५०, नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती

(ङ) वर्षाणा षट्शतीं त्यक्त्वा पचाग्रा मास पचकम्।
मुक्ति गते महावीरे शकराज स्ततोऽभवत्॥—हरिवश पुराण, ६०।५४९

(च) पच य मासा पच य वासा छच्चेव होति वाससया।
सगकालेण य सहिया थावेयव्वो तदो रासी॥

—धवला, जैन सिद्धान्त भवन आरा पत्र ५३७
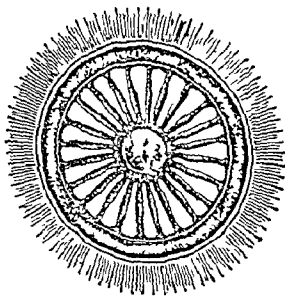
तीर्थंकर जीवन
[उपदेश]

धम
अहिंसा
सत्य
अस्तेय
ब्रह्मचय
अपरिग्रह
ज्ञान
श्रद्धा
तप
भाव
साधना
समभाव
सम्यग्दशन
वीतरागता
जीव आत्मा

मोक्ष
विनय
वैराग्य
सयम
श्रमण
गुरु-शिष्य
मनोनिग्रह
जीवनकला
क्रोध-क्षमा
मान
माया
लोभ
मोह
कम
बोध-सूत्र

भगवान महावीर के उपदेश

भगवान महावीर का साधक जीवन जहा आत्मलक्षी था, वहा तीर्थंकर जीवन जन-कल्याणलक्षी रहा। तीर्थंकर काल के लगभग ३० वर्ष के समय मे भगवान ने हजारो नर नारियो को श्रमणधर्म की दीक्षा दी, लाखो मनुष्यो को श्रावकधर्म का उपदेश दिया।

केवलज्ञान प्राप्त होने के पश्चात् भगवान् ने मध्यमपावा के महासेन उद्यान मे मनुष्यो एव देवताओ की विशाल परिषद मे प्रवचन किया। प्रवचन से पूर्व इन्द्र-भूति आदि विद्वानो की दीक्षा हुई। धमतीथ प्रवतन हुआ और उसके पश्चात् धम-उपदेश किया।

प्रथम उपदेश क्या था, इस सम्बन्ध मे दो प्रकार की मान्यताएँ है। आचार्य भद्रबाहु का कथन है भगवान ने सर्वप्रथम सामायिक आदि महाव्रतो का तथा षट्जीव-निकाय का प्रवचन किया। आचार्य हेमचन्द्र आदि की मान्यता के अनुसार प्रथम—'उप्पन्नेइ वा विगमेइ वा धुवेइ वा' इस त्रिपदी का व्याख्यान किया।

दोनो मान्यताओ का सार यही है कि भगवान् ने प्रथम प्रवचन मे ही तत्त्व-ज्ञान एव आचारधर्म दोनो का ही उपदेश दिया। महावीर के तत्त्वज्ञान का परिचय एक स्वतत्र ग्र थ का विषय है।[1] उपदेशो का सार यहा सक्षिप्त रूप मे दिया जा रहा है।

भगवान महावीर के प्रवचनो की भाषा उस समय की लोकभाषा 'अर्धमागधी' थी। उनके उपदेश अर्थरूप मे (भावरूप) मे होते थे। उपदेशो का आज जो रूप प्राप्त होता है, वह भगवान् महावीर के उपदेशो का आय सुधर्मा द्वारा सग्रथित रूप है। उत्तराध्ययन, दशवैकालिक, सूत्रकृताग, प्रश्नव्याकरण आदि मे भगवान् के उपदेश-वचनो का विशालतम सुन्दर स्वरूप मिलता है, यहा पर उन्ही उपदेशो मे से कुछ चयन कर प्रस्तुत किया जा रहा है।

---

१ देखे—लेखक की पुस्तक 'महावीर का तत्त्वदशन'।

भगवान् महावीर के उपदेशो का मुख्य आधार—अहिंसा रहा है। अहिंसा की दृढ भूमिका पर ही अनेकातवाद, अपरिग्रहवाद, कर्मवाद के महल खडे हुए हैं। जीवन मे आचारात्मक अहिंसा—प्राणवध-विरमण और अपरिग्रह है तथा विचारात्मक अहिंसा है अनेकातवाद । हिंसा, अहिंसा का फल बताने के लिए कर्म-सिद्धान्त है। इस प्रकार भगवान् के समस्त उपदेशो का विस्तार अहिंसा को मूल आधार मानकर ही किया गया है।

प्रस्तुत मे धर्म, अहिंसा, सत्य आदि से सम्बन्धित भगवान् महावीर के उपदेश पढिए।

धर्म

धम्मो मगलमुक्किट्ठ, अहिंसा सजमो तवो।
देवा वि त नमसति जस्स धम्मे सया मणो॥ —दश० १।१

धर्म उत्कृष्ट मगल है, वह अहिंसा-सयम-तप रूप है। जिस साधक का मन सदा उक्त धर्म मे रमण करता है, उसे देवता भी नमस्कार करते है।

एगा धम्मपडिमा, ज से आया पज्जवजाए। —स्था० १।१।४०

धर्म ही एक ऐसा पवित्र अनुष्ठान है, जिससे आत्मा का शुद्धिकरण होता है।

सयय मूढे धम्म नाभिजाणइ। —आचाराग ३।१

सदा विषय-वासना मे रचा-पचा रहने वाला (मूढ) मनुष्य धर्म के तत्त्व को नही पहचानता।

एक्को हु धम्मो नरदेव ! ताण, न विज्जई अन्नमिहेइ किंचि।
—उत्तराध्ययन १४।४०

राजन् ! एक धर्म ही रक्षा करने वाला है, उसके सिवाय ससार मे कोई भी मनुष्य का रक्षक नही है।

समियाए धम्मे आरिएहि पवेइए। —आचा० १।८।३

आर्य पुरुषो ने समभाव मे धर्म कहा है।

दुविहे धम्मे—सुयधम्मे चेव चरित्तधम्मे चेव। —स्थानाग २।१

धर्म के दो रूप है श्रुतधर्म और चारित्रधर्म।

दीवे व धम्म। —सूत्र० ६।४

धर्म दीपक की तरह अज्ञान-अधकार को नष्ट करने वाला है।

मेहावी जाणिज्ज धम्म। —आचा० ६।४

बुद्धिमान पुरुष को धर्म का परिज्ञान करना चाहिए।

सोही उज्जुअभूयस्स धम्मो सुद्धस्स चिट्ठई। —उत्तरा० ३।१२

सरल आत्मा की शुद्धि होती हे और शुद्धात्मा मे ही धर्म स्थिर रह सकता हे।

धम्मस्स विणओ मूल। —दशवै० ६।२।२

धम का मूल विनय है, मोक्ष उसका फल हे।

अहिसा

एव खु नाणिणो सार, ज न हिंसइ किंचण। —सूत्र० १।११।१०

किसी भी प्राणी की हिसा न करना ही ज्ञानी होने का सार।

आय तुले पयासु। —सून० १।११।३

प्राणियो के प्रति आत्मतुल्य-भाव रखो।

समया सव्वभूएसु, सत्तुमित्तेसु वा जगे। —उत्त० १६।२५

शत्रु अथवा मित्र सभी प्राणियो पर समभाव की दृष्टि रखना ही अहिसा है।

सव्वे जीवा वि इच्छति, जीविउ न मरिज्जिउ। —दशवै० ६।१६

सभी जीव जीना चाहते है, मरना कोई नही चाहता।

अहिसा तस-थावर-सव्वभूयखेमकरी। —प्रश्न० २।१

अहिसा त्रस और स्थावर सभी प्राणियो का कुशल-क्षेम, मगल करने वाली है।

भगवती अहिसा भीयाण वि व सरण। —प्रश्न० २।१

भयाकुल प्राणी के लिए शरण की प्राप्ति श्रेष्ठ होती है, वैसे ही प्राणियो के लिए भगवती अहिसा की शरण विशेष हितकर है।

मेत्ति भूएसु कप्पए। —उत्तरा० ६।२

समस्त जीवो पर मैत्रीभाव र—

सत्य

त सच्च खु भगव। —प्रश्न० २।२

वह सत्य ही भगवान है।

भासियव्व हिय सच्च। —उत्तरा० १६।२६

सदा हितकारी सत्य वचन बोलना चाहिए।

सच्च लोगम्मि सारभूय गम्भीरतर महासमुद्दाओ। —प्रश्न० २।२

इस लोक मे सत्य ही सार तत्त्व है। यह महासमुद्र से भी अधिक गभीर है।

लुद्धो लोलो भणेज्ज अलियं । —प्रश्न० २।२

मनुष्य लोभ से प्रेरित होकर झूठ बोलता है ।

पुरिसा ! सच्चमेव समभिजाणाहि । —आचा० १।३।३

हे पुरुष ! तू सत्य को पहचान ।

सच्चस्स आणाए उवट्ठिए मेहावी मारं तरइ ।

—आचाराग १।३।३

जो मतिमान् साधक सत्य की आज्ञा मे सदा तत्पर रहता है, वह मार अर्थात् मृत्यु के प्रवाह को पार कर जाता है ।

अप्पणा सच्चमेसिज्जा । —उत्तरा० ६।२

अपनी आत्मा के द्वारा सत्य की खोज करो ।

अस्तेय

दन्तसोहणमाइस्स अदत्तस्स विवज्जणं । —उत्तरा० १६।२८

अस्तेय व्रत मे निष्ठा रखने वाला व्यक्ति बिना किसी की अनुमति के—यहा तक कि दात कुरेदने के लिए एक तिनका भी नही लेता ।

अणुन्नविय गेण्हियव्वं । —प्रश्न २।३

किसी भी चीज को आज्ञा लेकर ग्रहण करनी चाहिए ।

असंविभागी न हु तस्स मोक्खो । —दशवै० ६।२।२२

जो सविभागी—प्राप्त सामग्री को साथियो मे बाटता नही है, उसकी मुक्ति नही होती ।

ब्रह्मचर्य

देव-दाणव-गंधव्वा जक्ख रक्खस्स किन्नरा ।
बंभयारिं नमंसन्ति, दुक्करं जे करंति तं ॥ —उत्तरा० १६।१६

जो व्यक्ति दुष्कर ब्रह्मचर्य का पालन करता है, उस ब्रह्मचारी के चरणो मे देव, दानव, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस और किन्नर ये सभी नमस्कार करते है ।

तवेसु वा उत्तमं बंभचेरं । —सूत्र० १।६।२३

तपो मे उत्कृष्ट तप ब्रह्मचर्य है ।

बंभचेरं उत्तमतव-नियम-णाण-दंसण-चरित्त-सम्मत्त-विणयमूलं ।

—प्रश्न० २।४

ब्रह्मचर्य—उत्तम तप, नियम, ज्ञान, दर्शन, चारित्र, सम्यक्त्व और विनय का मूल है ।

अणेगा गुणा अहीणा भवति एक्कमि बभचेरे। —प्रश्न० २।४

एक ब्रह्मचर्य की साधना करने से अनेक गुण स्वत प्राप्त हो जाते हैं।

उग्ग महव्वय, धारेयव्व सुदुक्कर। —उत्तरा० १६।२८

उग्र ब्रह्मचर्य व्रत को धारण करना अति कठिन कार्य है।

दुक्ख बभवय घोर। —उत्तरा० १६।३४

उग ब्रह्मचर्य व्रत का धारण करना अत्यन्त कठिन है।

अपरिग्रह

मुच्छा परिग्गहो वुत्तो। —दशवै० ६।२०

वस्तु के प्रति रहे हुए ममत्व-भाव को परिग्रह कहा है।

वित्तेण ताण न लभे पमत्ते, इमम्मि लोए अदुवा परत्था।
—प्रश्न० १।५

प्रमत्त पुरुष धन के द्वारा न तो इस लोक मे अपनी रक्षा कर सकता है और न परलोक मे ही।

नत्थि एरिसो पासो पडिबधो अत्थि,
सव्व जीवाण सव्वलोए॥ —प्रश्न० १।५

विश्व के सभी प्राणियो के लिए परिग्रह के समान दूसरा कोई जाल नही, बन्धन नही।

इच्छा हु आगास समा अणतिया। —उत्तरा० ६।४८

इच्छा आकाश के समान अनन्त है।

कामे कमाही कमिय खु दुक्ख। —दशवै० २।५

कामनाओ का अन्त करना ही दु ख का अन्त करना है।

ज्ञान

पढम नाण तओ दया। —दशवै० ४।१०

प्रथम ज्ञान होना चाहिए तत्पश्चात् दया—अर्थात् आचरण।

जहा सूई ससुत्ता, पडिआ वि न विणस्सइ।
तहा जीवे ससुत्ते, ससारे वि न विणस्सइ॥ —उत्तरा० २६।५६

जिस प्रकार धागे मे पिरोई हुई सुई गिर जाने पर भी गुम नही होती है, उसी प्रकार ज्ञानरूप धागे से युक्त आत्मा ससार मे कही भटकती नही है।

तम्हा पडिए नो हरिसे, नो कुप्पे। —आचाराग १।२।३

आत्मद्रष्टा साधक को ऊ ची या नीची कैसी भी स्थिति मे न हर्षित होना चाहिए और न कुपित ही।

नाणेण जाणई भावे । —उत्तरा० २८।३५

जीव ज्ञान से पदार्थो के स्वरूप को जानता है ।

नाणसपन्नयाए ण जीवे, सव्वभावाहिगम जणयइ ।— उत्तरा० २६।५६

ज्ञान की सम्पन्नता से जीव सभी पदाथ स्वरूप को जान सकता है ।

नाणेण विणा न हुंति चरणगुणा । —उत्तरा० २८।३०

ज्ञान के अभाव मे चारित्र—सयम नही होता ।

श्रद्धा

सद्धा परमदुल्लहा । —उत्तरा० ३।६

धम-तत्त्व मे श्रद्धा होना अत्यन्त दुलभ है ।

अदक्खु, व दक्खुवाहिय सद्दहसु । —सूत्र० २।३।११

नही देखने वाले ! तुम देखने वालो की बात पर विश्वास कर चलो ।

सद्धा खम णे विणइत्तु राग । —उत्तरा० १४।२८

धर्म-श्रद्धा हमे रागासक्ति से मुक्त कर सकती है ।

तप

एगमप्पाण सपेहाए धुणे सरीरग । —आचा० १।४।२

आत्मा को शरीर से विलग जानकर भोग-लिप्त शरीर को तपश्चर्या के द्वारा धुन डालना चाहिए ।

तवनारायजुत्तेण, भित्तूण कम्मकचुय । – उत्तरा० ६।२२

तप रूपी लोहबाण से युक्त धनुप के द्वारा कर्म रूपी कवच को भेद डाले ।

भवकोडिय सचिय कम्म, तवसा णिज्जरिज्जइ ।

—उत्तरा० ३०।६

करोडो भवो के सचित कर्म तपश्चर्या से निर्जीण—नष्ट हो जाते है ।

देहदुक्ख महाफल । —दशवै० ८।२७

देह का दमन एक तप है और वह महान् फल वाला है ।

छन्द निरोहेण उवेइ मोक्ख । —उत्तरा० ४।८

इच्छानिरोध—तप से मोक्ष की प्राप्ति होती है ।

सक्ख खु दीसइ तवो विसेसो ।
न दीसई जाइविसेस कोई ।। —उत्तरा० १२।३७

तप की महिमा प्रत्यक्ष मे दिखलाई देती है किन्तु जाति की महिमा तो कोई नजर नही आती है ।

कसेहि अप्पाण जरेहि अप्पाण । —आचारग १।४।३।५

तप के द्वारा अपने को कृश करो, अपने को जीण करो, भोग वृत्ति को जजर करो ।

तवेण परिसुज्झइ । —उत्तरा० २८।३५

तप से आत्मा का शुद्धिकरण होता है ।

भाव

भावसच्चेण भावविसोहि जणयई । —उत्तरा० २९।५०

भाव-सत्य से आत्मा भाव-विशुद्धि को प्राप्त करता है ।

भाव विसोहीए वट्टमाणे जीवे अरहन्त पन्नत्तस्स धम्मस्स आराहणयाए अब्भुट्ठेइ ॥ —उत्तरा० २९।

भाव-विशुद्धि मे वर्तमान जीव अर्हत्-प्ररूपित धम की आराधना के लिए समुद्यत होता है ।

साधना

जवा लोहमया चेव, चावेयव्वा सुदुक्कर । —सूत्र० १।८।२६

जैसे लोहे के चनो को चबाना कठिन है वैसे ही सयम-साधना का पालन भी कठिन है ।

झाणजोग समाहट्टु, काय विउसेज्ज सव्वसो ।

—सूत्र० १।८।२६

मेधावी पुरुष ध्यानयोग को स्वीकार करे और देहभावना का सवथा विसर्जन करे ।

समभाव

नो उच्चावय मण नियच्छिज्जा । —आचा० २।३।१

सकट की घडियो मे भी मन को ऊँचा-नीचा अर्थात् डाँवाडोल नही होने देना चाहिए ।

समय सया चरे । —सूत्र २।२।३

साधक को सदा समता का आचरण करना चाहिए ।

समता सव्वत्थ सुव्वए । —सूत्र० २।३।१३

सुव्रती को सर्वत्र समता-भाव रखना चाहिए ।

सव्व जग तु समयाणुपेही, पियमप्पिय कस्स वि नो करेज्जा ।

—सूत्र० १।१०।६

जो साधक सम्पूर्ण विश्व को समभाव से देखता है, वह न किसी का प्रिय करता है और न किसी का अप्रिय ही ।

सम्यग्दर्शन

सम्मत्तदंसी ण करेई पाव । —आचाराग ३।२

सम्यक्त्वधारी साधक पाप-कर्म नही करता है ।

नादसणिस्स नाण । —उत्तरा० २८।३०

सम्यग्दर्शन के बिना ज्ञान नही होता ।

नत्थि चरित्त सम्मत्तविहूण । —उत्तरा० २८।२९

सम्यक्त्व के अभाव मे चारित्र-गुण की प्राप्ति नही होती ।

वीतरागता

समो य जो तेसु स वीयरागो । —उत्तरा० ३२।६१

जो मनोज्ञ और अमनोज्ञ रसो मे समान रहता है, वह वीतराग होता है ।

विमुत्ता हु ते जणा, जे जणा पारगामिणो । —आचा० १।२।२

जो साधक कामनाओ पर विजय पा गये है, वे वस्तुत मुक्त पुरुष है ।

वीयरागभाव पडिवन्ने वि य ण
जीवे समसुहदुक्खे भवइ ॥ — उत्तरा० २९।३६

वीतराग-भाव को प्राप्त हुआ जीव सुख-दु ख मे सम हो जाता है ।

अणिहे से पुट्ठे अहियासए । —सूत्र० २।१।१३

आत्मविद् साधक को नि स्पृह होकर आने वाले कष्टो को सहन करना चाहिए ।

जीव-आत्मा

जीवो उवओग लक्खणो । —उत्तरा० २८।१०

उपयोग जीव का लक्षण है ।

नाण च दसण चेव, चरित्त च तवो तहा ।
वीरिय उवओगो य, एय जीवस्स लक्खण ॥ —उत्त० २८।११

ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप, वीर्य और उपयोग—ये सब जीव के लक्षण हैं ।

जीवाण चेयकडा कम्मा कज्जति,
नो अचेयकडा कम्मा कज्जति । —भगवती १६।२

आत्माओ के कर्म चेतना-कृत है, अचेतना-कृत नही ।

जीवा सिय सासया, सिय असासया ।
दव्वट्ठयाए सासया, भावट्ठयाए असासया । —भगवती ७।२

जीव शाश्वत भी है और अशाश्वत भी है । द्रव्यदृष्टि से शाश्वत है और भावदृष्टि से अशाश्वत ।

जीवे ताव नियमा जीवे, जीवे वि नियमा जीवे। —भगवती ६।१०

जो जीव है वह निश्चित ही चैतन्य है और जो चैतन्य है वह निश्चित ही जीव है।

जे एग जाणइ, से सव्व जाणइ।
जे सव्व जाणइ, से एग जाणइ॥ —आचाराग १।३।४

जो एक को जानता है वह सब को जानता है और जो सबको जानता है वह एक को जानता है।

पुरिसा! अत्ताणमेव अभिणिगिज्झ एव दुक्खा पमोक्खसि।
—आचा० ३।३।११६

हे पुरुष! तू अपने आपका निग्रह कर, स्वय के निग्रह से ही तू समस्त दुखो से मुक्त हो जायेगा।

अप्पा चेव दमेयव्वो, अप्पा हु खलु दुद्दमो।
अप्पा दन्तो सुही होइ, अस्सि लोए परत्थ य॥ —उत्तरा० १।१५

आत्मा का ही दमन करना चाहिए, क्योकि आत्मा दुर्दम्य है। उसका दमन करने वाला इहलोक और परलोक मे सुखी होता है।

वर मे अप्पा दन्तो सजमेण तवेण य।
माऽह परेहि दम्मन्तो, बधणेहि वहेहि य॥ —उत्त० १।१६

दूसरे लोग बन्धन और वध के द्वारा मेरा दमन करे, इसकी अपेक्षा यही अच्छा है कि मैं सयम और तप के द्वारा अपनी आत्मा का दमन करूं।

बन्धप्पमोक्खो अज्झत्थेव। —आचा० १।५।२

वस्तुत बन्धन और मोक्ष अपने भीतर ही है।

जे आया से विन्नाया, जे विन्नाया से आया।
जेण वियाणइ से आया, त पडुच्च पडिसखाए॥
—आचाराग १।५।५

जो आत्मा है वही विज्ञाता है, जो विज्ञाता है वह आत्मा है, जिससे जाना जाय वह आत्मा है जानने की शक्ति से ही आत्मा की प्रतीति है।

जो सहस्स सहस्साण, सगामे दुज्जए जिणे।
एग जिणेज्ज अप्पाण, एस से परमो जओ॥ —उत्तरा० २०।४८

जो पुरुष दुर्जय-सग्राम मे दस लाख योद्धाओ पर विजय प्राप्त करे, उसकी अपेक्षा वह अपने आपको जीतता है, यह उसकी परम विजय है।

अन्नो जीवो, अन्न सरीर । —सूत्र० २।१।९

आत्मा अन्य है और शरीर अन्य है ।

अन्ने खलु कामभोगा, अन्नो अहमसि । —सूत्र० २।१।१३

शब्द, रूप, गन्ध, आदि काम-भोग (जड पदार्थ) और है, मैं (आत्मा) और हू ।

पुरिसा ! तुममेव तुम मित्त , कि बहिया मित्तमिच्छसि ।

—आचाराग १।३।३

पुरुष ! तू स्वय ही अपना मित्र है, फिर बाहर मे क्यो किसी मित्र की खोज कर रहा है ?

एगे आया । —स्थानाग १।१

स्वरूप दृष्टि से सभी आत्माएँ एक समान है ।

सव्वे सरा नियट्टति, तक्का जत्थ न विज्जइ, मई तत्थ न गाहिया ।

—आचाराग १।५।६

आत्मा के वर्णन मे समस्त शब्द समाप्त हो जाते है । वहा तर्क का भी स्थान नही है और न बुद्धि ही उसे ठीक तरह से ग्रहण करने मे समर्थ होती है ।

अत्तकडे दुक्खे, नो परकडे । —भगवती ७।१

आत्मा का दु ख स्वकृत है अर्थात् अपना ही किया हुआ दु ख है, किसी अन्य का नही ।

अप्पा हु खलु सयय रक्खियव्वो । —दश० चूलिका २।१६

अपनी आत्मा को सदा पापकर्मो से बचाये रखना चाहिए ।

मोक्ष

आहसु विज्जाचरण पमोक्ख । —सूत्र० १।१२।११

ज्ञान और कर्म से ही मोक्ष प्राप्त होता है ।

कडाण कम्माण न मोक्ख अत्थि । —उत्तरा० ४।३

उपार्जित कर्मो का फल भोगे बिना मुक्ति नही है ।

नाणेण जाणई भावे, दसणेण य सद्दहे ।
चरित्तेण निगिण्हाई, तवेण परिसुज्झई ।। —उत्तरा० २८।३५

जीव ज्ञान से पदार्थो को जानता है, दर्शन से श्रद्धा करता है, चारित्र से आश्रव का निरोध करता है और तप से कर्मो को झाडकर दूर कर देता है ।

बधप्पमोक्खो तुज्झज्झत्थेव । —आचाराग ५।२।१५०

बधन से मुक्त होना तुम्हारे ही हाथ मे है ।

विनय

विणए ठविज्ज अप्पाण, इच्छतो हियमप्पणो । —उत्तरा० १।६

आत्म-हितैषी साधक अपने आपको विनय धर्म मे स्थिर करे ।

रायणिएसु विणय पउ जे । —दशवै० ८।४०

बडो के साथ सदा विनयपूर्वक व्यवहार करो ।

विणओ वि तवो, तवो पि धम्मो । —प्रश्न० २।३

विनय स्वय एक तप है और श्रेष्ठ धर्म है ।

तम्हा विणयमेसिज्जा, सील पडिलभेज्जओ । —उत्तरा० १।७

विनय से साधक को शील-सदाचार मिलता है, अत उसकी खोज करनी चाहिए ।

विणयमूले धम्मे पन्नत्ते । —ज्ञाता० १।५

धर्म का मूल विनय-आचार है ।

अणुसासिओ न कुप्पिज्जा ।

गुरुजनो के शिक्षा देने पर कुपित—क्षुब्ध नही होना चाहिए ।

वैराग्य

इहलोए ताव नट्ठा परलोए वि य नट्ठा । —प्रश्न० १।४

विषयासक्त जीव इस लोक मे भी विनाश को प्राप्त होते है और परलोक मे भी ।

अदक्खु कामाइ रोगव । —सूत्र० १।२।३।२

आत्म-निष्ठ साधक की दृष्टि मे काम-भोग रोग के समान है ।

जेण सिया तेण णो सिया । —आचा० १।२।४

तुम जिन वस्तुओ से सुख की अभिलाषा रखते हो, वस्तुत वे सुख के हेतु नही है ।

सयम

सजमेण तवसा अप्पाण भावेमाणे विहरइ । —उपा० १।७६

साधक सयम और तप से आत्मा को सतत भावित करता हुआ विचरण करे ।

असजमे नियत्ति च, सजमे य पवत्तण । —उत्तरा० ३१।२

असयम से निवृत्ति और सयम मे प्रवृत्ति करनी चाहिए ।

जो सहस्स सहस्साण मासे मासे गव दए ।
तस्सावि सजमो सेओ, अदिन्तस्स वि किंचण ॥ —उत्तरा० ६।४

जो मनुष्य प्रतिमास दस-दस लाख गायो का दान देता है, उसकी अपेक्षा कुछ नही देने वाले सयमी का सयम श्रेष्ठ हे ।

श्रमण

समे य जे सव्वपाणभूतेसु, से हु समणे । —प्रश्न० २।५

समस्त प्राणियो के प्रति जो समदृष्टि रखता हे, वस्तुत वही सच्चा श्रमण है ।

अवि अप्पणो वि देहमि, नायरति ममाइय । —दशवै० ६।२२

निर्ग्रन्थ मुनि और तो क्या, अपने शरीर पर भी ममत्व नही रखते ।

भुच्चा पिच्चा सुह सुवई, पावसमणे त्ति वुच्चई ।—उत्तरा० १७।३

जो श्रमण खा-पीकर आराम से सोता है, समय पर धम-साधना नही करता, वह पाप श्रमण कहलाता है ।

मण परिजाणइ से निग्गथे । —आचा० २।३।१५।१

जो अपनी मन स्थिति को पूणतया परखना जानता है, वही सच्चा निर्ग्रन्थ-साधक है ।

गिहि-जोग परिवज्जए जे स भिक्खू । —दश० १०।६

जो गृहस्थो से अति स्नेहसूत्र नही जोडता, वह भिक्षु है ।

धम्मज्झाणरए जे स भिक्खू । —दश० १०।१६

जो धर्म-ध्यान मे सतत रत रहता है, वह भिक्षु हे।

सम सुह-दुक्ख सहे य जे स भिक्खू । —दशवै० १०।११

जो सुख और दु ख को समभावपूर्वक सहन करता है, वह भिक्षु कहलाता है ।

महप्पसाया इसिणो हवति न हु मुणी कोवपरा हवति ।
—उत्तरा० १२।३१

ऋषि-मुनि सदा प्रसन्न-चित्त रहते हैं, कभी किसी पर कुपित नही होते ।

उवसते अविहेडए जे स भिक्खू । —दश० १०।१०

जो शान्त है तथा अपने कतव्य-पथ को अच्छी तरह से जानता है, वही श्रेष्ठ भिक्षु है ।

उवसमसार खु सामण्ण । —बृहत्कल्प १।३५

श्रमणत्व का सार है—उपशम ।

समयाए समणो होइ । —उत्तरा० २५।३२

समभाव की साधना करने से श्रमण होता है।

नाणेण उ मुणी होइ । —उत्तरा० २५।३२

ज्ञान की आराधना-मनन करने से मुनि होता है।

न पूयणं चेव सिलोयकामी । —सूत्र० १।१३।२२

सन्त पूजा, प्रतिष्ठा तथा कीर्ति की अभिलापा न करे।

अकसाइ भिक्खू । —सूत्र० १।१३।२२

श्रमण कपाय-भाव से रहित बने।

आहारमिच्छे मियमेसणिज्ज । —उत्त० ३२।४

आत्मार्थी साधक को परिमित और शुद्ध आहार ग्रहण करना चाहिए।

गिलाण वेयावच्च करेमाणे समणे निग्गथे
महाणिज्जरे महापज्जवसाणे भवति ।। —व्यवहार० १०

जो श्रमण रुग्ण मुनि की सेवा करता है, वह महान् निर्जरा तथा महान् पर्यवसान-परिनिर्वाण करता है।

गुरु-शिष्य

आयरियेहि वाहित्तो, तुसिणीओ न कयाइ वि । — उत्त० १।२०

आचार्यों के द्वारा बुलाए जाने पर भी शिष्य किसी भी अवस्था मे मौन—चुपचाप न रहे।

हिरिमं पडिसलीणे, सुविणीए । —उत्तरा० ११।१३

जो शिष्य लज्जाशील और इन्द्रिय-विजेता होता है, वह सुविनीत बनता है।

मा गलियस्सेव कस, वयणमिच्छे पुणो पुणो । —उत्तरा० १।१२

जैसे दुष्ट घोडा चाबुक की बार-बार अपेक्षा रखता है, वैसे विनीत शिष्य गुरु के वचन की बार-बार अपेक्षा न रखे।

चरेज्ज भिक्खू सुसमाहि इ दिए । —उत्त० २१।१३

भिक्षु सर्व इन्द्रियो को सुसमाहित करता हुआ विचरण करे।

मनोनिग्रह

मणो साहस्सिओ भीमो, दुट्ठस्सो परिधावई । —उत्तरा० २३।५८

मन एक साहसिक, भयकर और दुष्ट घोडे के समान है, जो चारो तरफ दौडता रहता है।

एगे जिए जिया पच, पच जिए जिया दस।
दसहा उ जिणित्ताण, सव्वसत्तू जिणामह ॥ —उत्तरा० २३।३६

एक को जीत लेने पर पाँच जीते गए, पाँचो को जीत लेने पर दस जीते गए, दसो को जीतकर मैंने सभी शत्रुओं को जीत लिया है।

मणगुत्तयाए ण जीवे एगग्ग जणयइ। —उत्तरा० २९।५३

मनोगुप्तता से जीव एकाग्रता को प्राप्त होता है।

जोग सच्चेण जोग विसोहेइ। —उत्तरा० २९।५२

योग सत्य से जीव मन, वचन, और काया की प्रवृत्ति को विशुद्ध करता है।

जीवन-कला

धम्मेण चेव वित्ति कप्पेमाणा विहरति। —सूत्र० २।२।३९

सद्‌गृहस्थ सदा धर्मानुकूल ही अपनी आजीविका करते हैं।

सामाइएण सावज्जजोगविरइ जणयइ।

सामायिक से जीव सावद्ययोग से विरति—निवृत्ति का उपार्जन करता है।

सज्झाए वा निउत्तेण, सव्वदुक्खविमोक्खणे। —उत्तरा० २६।१

स्वाध्याय करते रहने से समस्त दु खो से मुक्ति प्राप्त होती है।

जहा पोम्म जले जाय, नोवलिप्पइ वारिणा। —उत्त० २५।२६

जैसे जल मे उत्पन्न हुआ कमल जल से लिप्त नही होता, वैसे ही साधक भी काम-भोग मे लिप्त नही होता।

न सतसति मरणते, सीलवता बहुस्सुया। —उत्त० ५।२९

शीलवान और बहुश्रुत भिक्षु मृत्यु के क्षणो मे भी सत्रस्त नही होते।

काल अणवकखमाणे विहरइ। —उपा० १ ७३

आत्मार्थी साधक कष्टो से जूझता हुआ मृत्यु से अनपेक्ष वनकर रहे।

कसाया अग्गिणो वुत्ता, सुय सील तवो जल। —उत्त० २३।५३

कषाय—क्रोध, मान, माया, और लोभ को अग्नि कहा है, उसको वुझाने के लिए श्रुत, शील, और तप यह जल है।

कोह च माण च तहेव माय, लोभ चउत्थ अज्झत्थदोसा।
—सूत्र० १।६।२६

क्रोध, मान, माया और लोभ ये चारो अन्तरात्मा के भयकर दोप हैं।

कसायपच्चक्खाणेण वीयरागभाव जणयइ । —उत्तरा० २९।३६

कषाय का परित्याग करने से वीतराग भाव प्राप्त होता है ।

क्रोध–क्षमा

कोहो पीइ पणासेइ । —दश० ८।३८

क्रोध प्रीति का नाश करता है ।

उवसमेण हणे कोह । —दश० ८।३९

शान्ति से क्रोध को जीते ।

खामेमि सव्वे जीवा, सव्वे जीवा खमतु मे ।
मेत्ती मे सव्वभूएसु वेर मज्झ न केणइ ॥

मैं समस्त जीवो से क्षमा मागता हू और सब जीव मुझे भी क्षमा प्रदान करे । मेरी सर्व जीवो के साथ मैत्री है, किसी के साथ मेरा वैर-विरोध नही है ।

पुढविसमो मुणी हवेज्जा । —दश० १०।१३

मुनि को पृथ्वी के समान क्षमाशील होना चाहिए ।

खमावणयाए ण पल्हायणभाव जणयइ । — उत्त० २९।१७

क्षमापना से आत्मा मे अपूर्व हर्षानुभूति प्रगट होती है ।

खतिएण जीवे परिसहे जिणइ । —उत्तरा० २९।४६

क्षमा से जीव परीषहो पर विजय प्राप्त कर लेता है ।

खति सेविज्ज पडिए । —उत्तरा० १।९

पण्डित पुरुष को क्षमाधर्म की आराधना करनी चाहिए ।

मान

बालजणो पगब्भइ । —सूत्र० १।११।२

अहकार करना अज्ञान का द्योतक है ।

माणविजएण मद्दव जणयइ । — उत्त० २९।६८

मान को जीतने से जीव को नम्रता की प्राप्ति होती है ।

अन्न जण खिसइ बालपन्ने । —सूत्र० १।१३।१४

जो अपनी बुद्धि के अहकार मे दूसरो की उपेक्षा करता है, वह मन्दबुद्धि है ।

अन्न जण पस्सइ बिम्बभूय । —सूत्र० १।१३।८

गर्वशील आत्मा अपने गर्व मे चूर होकर दूसरो को सदा बिम्बभूत-परछाई के समान तुच्छ मानता है ।

माया

माई पमाई पुण एइ गब्भ । —आचा० १।३।१

मायावी और प्रमादी पुन-पुन गभ मे जन्म-मरण करता हे ।

माई मिच्छादिट्ठी, अमाई सम्मदिट्ठी ।

मायावी जीव मिथ्यादृष्टि होता है, अमायावी सम्यग्दृष्टि ।

माया मित्ताणि नासेइ । —दश० ८।३८

माया, मित्रता का नाश करती है ।

लोभ

लोभो सव्वविणासणो । —दश० ८।३८

लोभ सभी सद्गुणो का नाश कर देता हे ।

इच्छालोभिते मुत्तिमग्गस्स पलिमथू । – स्थाना० ६।३

लोभ मुक्ति-पथ का अवरोधक है ।

लोभपत्ते लोभी समावइज्जा मोस वयणाए ।—आचा० २।३।१५।२

लोभ का प्रसग उपस्थित होने पर व्यक्ति सत्य को झुठलाकर असत्य का आश्रय लेता है ।

सीह जहा व कुणिमेण, निब्भयमेग चरति पासेण ।

—सूत्र० १।४।१।८

निर्भीक-स्वतत्र विचरने वाला सिंह भी मास के लोभ से जाल मे फस जाता है ।

लोभ सतोसओ जिणे । – दश० ८।३९

लोभ को सन्तोष से जीतना चाहिए ।

मोह

एग विगिंचमाणे पुढो विगिंचइ । —आचा० १।३।४

जो मोह का नाश करता है, वह अन्य अनेक कर्म-विकल्पो का नाश करता है ।

मदा मोहेण पाउडा । —सूत्र० ३।१।११

अज्ञानी जीव मोह से आवृत होते है ।

मोहेण गब्भ मरणाई एइ । —आचा० ५।३

मोह से जीव बार-बार जन्म-मरण के आवर्त मे फसता है ।

रागो य दोसो वि य कम्मबीय । —उत्त० ३२।७

राग और द्वेष ये दोनो कर्म के बीज हैं ।

राग-दोसस्सिया बाला, पाव कुव्वति ते बहु । —सूत्र० ८।८

अज्ञानी जीव राग-द्वेष से आवृत्त होकर विविध पाप-कर्म किया करते हैं।

अकुव्वओ णव णत्थि । —सूत्र० १।१५।७

पाप नही करने वाले को नया कम नही बधता ।

कर्म

सुचिण्णा कम्मा सुचिण्णफला भवति ।
दुचिण्णा कम्मा दुचिण्णफला भवति ।। —सूत्र० १।१०।२०

अच्छे कर्म का फल अच्छा होता है । बुरे कर्म का फल बुरा होता है ।

जहा दड्ढाण बीयाण, ण जायति पुण अकुरा ।
कम्मबीएसु दडढेसु न जायति भवकुरा ।। —दशा० ५।१५

बीज के जल जाने पर उससे नवीन अकुर प्रस्फुटित नही हो सकता, वैसे ही कर्मरूपी बीजो के दग्ध हो जाने पर उसमे से जन्म-मरणरूप अकुर प्रस्फुटित नही हो सकता ।

सव्वे सयकम्मकप्पिया । —सूत्र० १।२।३।१८

प्राणी-मात्र अपने कृत-कर्मो के कारण ही विविध योनियो मे भ्रमण करते हैं।

कम्मुणा उवाही जायइ । —आचा० १।३।१

कर्म से ही समस्त उपाधियाँ उत्पन्न होती हे ।

बोध-सूत्र

न चित्ता तायए भासा कुओ विज्जाणुसासण । —उत्त० ६।११

विविध भाषाओ का ज्ञान मनुष्य को दुर्गति से बचा नही सकता, तो फिर विद्याओ का अनुशासन कैसे किसी को बचा सकेगा ?

जहा सुणी पूइकन्नी, निक्कसिज्जई सव्वसो ।
एव दुस्सील पडिणीए, मुहरी निक्कसिज्जई ।। —उत्त० १।४

जैसे सडे हुए कानो वाली कुतिया सभी स्थानो से निकाल दी जाती है, वैसे ही दु शील, उद्दण्ड और वाचाल मनुष्य को सर्वत्र तिरस्कार करके निकाल दिया जाता है ।

अप्पपिण्डासि पाणासि, अप्प भासेज्ज सुव्वए । —सूत्र० १।८।२५

सुव्रती साधक कम खाये, कम पीये तथा कम बोले ।

अणुमाय पि मेहावी, मायामोस विवज्जए । —दश० ५।२।४६

आत्मार्थी साधक अणुमात्र भी माया-मृषा का सेवन न करे ।

अह पचहि ठाणेहि जेहि सिक्खा न लब्भई ।
थम्भा कोहा पमाएण, रोगेणालस्सएण य ॥ —उत्तरा० ११।३

अहकार, क्रोध, प्रमाद, रोग और आलस्य इन पाच स्थानो-कारणो से शिक्षा प्राप्त नही होती ।

गिहिवासे वि सुव्वए । —उत्त० ५।२४

धर्मशिक्षा से समापन्न मनुष्य गृहवास मे भी सुव्रती है ।

पियकरे पियवाई, से सिक्ख लद्धुमरिहई । —उत्त० ११।१४

जो प्रिय करता है, जो प्रिय बोलता है—वह अपनी अभीष्ट शिक्षा प्राप्त कर सकता है ।

सकिलेसकर ठाण, दूरओ परिवज्जए । —दश० ५।१।१६

जिस जगह क्लेश-सघर्ष की सभावना हो, उस स्थान से सदा दूर रहना चाहिये ।

जय चरे, जय चिट्ठे, जयमासे जय सए ।
जय भुजन्तो भासन्तो, पाव-कम्म न बधइ ॥ —दश० ४।८

आयुष्मन् ! यतनापूर्वक चलने, यतनापूर्वक खडा होने, यतनापूर्वक बैठने, यतनापूर्वक सोने, यतनापूर्वक खाने और यतनापूर्वक बोलने वाला पाप कर्म का बधन नही करता ।

सड्ढी आणाए मेहावी । —आचा० ३।४

प्रभु की आज्ञा पालन करने मे जो व्यक्ति श्रद्धाशील होता है, वह मेधावी बुद्धिमान कहलाता है ।

इह आणाकखी पडिए अणिहे । —आचा० ४।३

जो प्रभु-आज्ञा की सम्यक् आराधना करता है, वह पण्डित है तथा पापकर्मों से अलिप्त रहता है ।

लज्जा-दया-सजम-बभचेर ।
कल्लाणभागिस्स विसोहिठाण ॥ —दशवै० ९।१।१३

कल्याणभागी के लिए लज्जा, दया, सयम और ब्रह्मचर्य—ये आत्मविशुद्धि के साधन हैं ।

ज छन्न त न वत्तव्व । —सूत्र० १।९।२६

किसी की कोई गोपनीय बात हो तो उसे प्रकट नही करनी चाहिए ।

दुल्लहे खलु माणुसे भवे । —उत्त० १०।४

मनुष्य जन्म मिलना अत्यन्त दुर्लभ है ।

अणुवीइभासी से निग्गथे। —आचा० २।३।१५।२

जो विचार-पुरस्सर बोलता है, वही सच्चा निर्ग्रन्थ है।

विभज्जवाय च वियागरेज्जा। —सूत्र० १।१४।२२

चिन्तनशील पुरुप सदा विभज्यवाद अर्थात् स्याद्वाद को सलक्षित कर वचन का प्रयोग करे।

नाइवेल वएज्जा। —सूत्र० १।१४।२५

साधक आवश्यकता से अधिक न बोले।

वइज्ज बुद्धे हियमाणुलोमिय। —दश० ७।५६

प्रबुद्ध भिक्षु ऐसी भाषा बोले जो सभी के लिए हितकर और प्रियकर हो।

न य वुग्गहिय कह कहिज्जा। —दश० १०।१०

कलह बढाने वाली बात नही कहनी चाहिए।

नाऽपुट्ठो वागरे किंचि। —उत्त० १।१४

बिना बुलाए बीच मे कुछ नही बोलना चाहिए।

बहुय मा य आलवे। —उत्त० १।१०

बहुत नही बोलना चाहिए।

नो वयण फरुस वइज्जा। —आचा० २।१।६

कभी कठोर वचन नही बोलना चाहिए।

अपुच्छिओ न भासेज्जा। —दश० ८।४७

विना पूछे नही बोलना चाहिए।

पिट्ठिमस न खाइज्जा। —दश० ८।४७

किसी की पीठ पीछे चुगली नही खाना चाहिए, क्योकि यह दोप पीठ का मास नोचने के समान है।

राईभोयणविरओ, जीवो भवइ अणासवो। —उत्त० ३०।२

रात्रि-भोजन के त्याग से जीव अनाश्रव होता है।

सव्वाहार न भुजति, निग्गथा राइभोयण। —दश० ६।२६

निर्ग्रन्थ मुनि, रात्रि के समय किसी भी प्रकार का आहार नही करते।

उवलेवो होइ भोगेसु, अभोगी नोवलिप्पई। —उत्त० २५।४१

जो भोगी है, वह कर्मो से लिप्त होता है। और जो अभोगी है, भोगासक्त नही है, वह कर्मों से लिप्त नही होता।

खणमित्तसुक्खा, बहुकाल दुक्खा। —उत्त० १४।१३

काम-भोग क्षण-मात्र सुख देने वाले है, और बदले मे चिरकाल तक दुख देने वाले है।

खाणी अणत्थाण उ कामभोगा। —उत्त० १४।१३

काम-भोग अनर्थों की खान है।

सव्व अप्पे जिए जियं। —उत्त० ६।३६

एक अपने (विकारो) को जीतने पर सबको जीत लिया जाता है।

सव्वे कामा दुहावहा। —उत्त० १३।१६

सभी काम-भोग अन्तत दुःख देने वाले है।

सल्लं कामा विसं कामा, कामा आसीविसोवमा। —उत्त० ९।५३

काम-भोग शल्य-रूप है, विषरूप है और विषधर सर्प के समान हैं।

अदक्खु कामाइ रोगवं। —सूत्र० २।३।२

आत्मविद् साधको ने काम-भोगो को रोग की भाति देखे है।

भोगी भमइ ससारे, अभोगी विप्पमुच्चई। —उत्त० २५।४१

भोगी ससार मे परिभ्रमण करता है, अभोगी ससार से मुक्त होता है।

थणंति लुप्पति तसति कम्मी। —सूत्र० ७।२०

जो आत्मा पापकर्म का उपार्जन करते है, उन्हे रोना पडता है, दुःख भोगना पडता है और भयभीत होना पडता है।

कडं कडेत्ति भासेज्जा, अकडं नो कडेत्ति य। —उत्त० १।११

पूछने पर किये हुए पाप कर्म को किया हुआ और नही किये हुए को नही किया कहे।

पावाउ अप्पाण निवट्टएज्जा। —सूत्र० १०।२१

साधक पापकर्मों से आत्मा को हटा ले।

आयकदंसी न करेइ पावं। —आचा० १।३।२

जिसने ससार के दुःखो का स्वरूप ठीक तरह से जान लिया है, वह कभी पाप-कर्म नही करता है।

सुत्ता अमुणी, मुणिणो सया जागरन्ति। —आचा० १।३।१

अज्ञानी सदा सोये रहते है और ज्ञानी सदा जागते रहते है।

लोयंसि जाण अहियाय दुक्खं। —आचा० १।३।१

यह समझ लीजिए कि अज्ञान तथा मोह ही ससार मे अहित और दुःख पैदा करने वाले है।

रागदोसस्सिया बाला, पावं कुव्वति ते बहु। —सूत्र० १।८।८

बाल—अज्ञानी जीव राग-द्वेष के अधीन होकर बहुत पाप-कर्म का उपार्जन करते है।

अल कुसलस्स पमाएण । —आचा० १।२।४

प्रज्ञाशील-साधक को अपनी साधना मे किञ्चित भी प्रमाद नही करना चाहिए ।

भारण्डपक्खी व चरमप्पमत्तो । —उत्त० ४।६

भारण्ड पक्षी की भाति साधक अप्रमत्त होकर विचरण करे ।

तम्हा मुणी खिप्पमुवेइ मोक्ख । —उत्त० ४।८

अप्रमत्त होकर विचरण करने वाला मुनि शीघ्र ही मोक्ष को प्राप्त होता है ।

अप्पाण-रक्खी चरप्पमत्तो । —उत्त० ४।१०

आत्मरक्षक अप्रमत्त होकर विचरण करे ।

सव्वओ पमत्तस्स भय, सव्वओ अपमत्तस्स नत्थि भय । —आचा० १।३।४

प्रमत्त आत्मा को सभी ओर से भय रहता है और अप्रमत्त को कही से भी भय नही ।

जे छेय से विप्पमाय न कुज्जा । —सूत्र० १।१४।१

चतुर नर वही है, जो कभी प्रमाद का सेवन न करे ।

धीरे मुहुत्तमवि णो पमायए । —आचा० १।२।१

धीर साधक मुहूर्तभर के लिए भी प्रमाद न करे ।

कामा दुरतिक्कम्मा । —आचा० १।२।५

कामनाओ का पार पाना अत्यन्त कठिन है ।

इह लोए निप्पिवासस्स, नत्थि किंचि वि दुक्कर । —उत्त० १६।४४

इस लोक मे जो तृष्णारहित है, उसके लिए कुछ भी कठिन नही है ।

कहं न कुज्जा सामण्ण, जो कामे न निवारए । —दश० २।१

जो अपनी कामनाओ-इच्छाओ को रोक नही पाता वह भला साधना कैसे कर पायेगा ?

विणीयतण्हो विहरे । —दश० ८।६०

मुमुक्षु आत्मा को तृष्णा रहित होकर विचरण करना चाहिए ।

मेहावी अप्पणो गिद्धिमुद्धरे । —सूत्र० ८।१३

बुद्धिमान पुरुष को अपना गृद्धिभाव दूर हटाना चाहिए ।

नेहपासा भयकरा । —उत्त० २३।४३

स्नेह के बधन भयकर है ।

सव्व सुचिण्ण सफल नराण । —उत्त० १३।१०

मनुष्यो का अच्छा किया हुआ सर्व कर्म सफल होता है ।

जाइमरण परिन्नाय, चरे सकमणे दढे ।

जन्म-मरण के स्वरूप का भली-भाँति परिज्ञान कर चारित्र मे सुदृढ होकर विचरे ।

पाव कम्म नेव कुज्जा, न कारवेज्जा । —आचा० १।२।६

पाप-कर्म साधक न स्वय करे, न दूसरो से करवाये ।

नो निन्हवेज्जवीरिय । —आचा० १।५।३

अपनी योग्य शक्ति को कभी भी छुपाना नही चाहिए ।

बन्धप्पमोक्खो अज्झत्थेव । —आचा० १।५।२

बधन और मोक्ष वस्तुत हमारे भीतर मे ही है ।

इणमेव खण वियाणिया । —सूत्र० १।२।३।१९

जो क्षण वर्तमान मे वरत रहा है, वही महत्त्वपूर्ण है । अत साधक को उसे सफल बनाना चाहिए ।

जीविय चेव रूव च, विज्जुसपाय चचल । —उत्त० १८।१३

जीवन और रूप बिजली की चमक की तरह चचल है ।

अत्तहिय खु दुहेण लब्भई । —सूत्र० १।२।२।३०

आत्म-हित का अवसर कठिनाई से मिलता है ।

काले काल समायरे । —उत्त० १।३१

समय पर समय का कार्य करना चाहिए ।

कलहकरो असमाहिकरे । —प्रश्न० २

कलह-झगडा करनेवाला असमाधि को उत्पन्न करने वाला है ।

सकम्मुणा किच्चइ पावकारी । —स्थाना० ४।४

पापात्मा स्वय के ही कर्मों से दु खी होता है ।

वओ अच्चेति जोव्वण च । —आचा० १।२।१

उम्र और यौवन प्रतिपल व्यतीत हो रहा है ।

वेयावच्चेण तित्थयर नामगोत्त कम्म निबन्धई । —उत्त० २९।४३

वैयावृत्य-सेवा से जीव तीर्थंकर नाम-गोत्र का उपार्जन करता है ।

सज्झाएण नाणावरणिज्ज कम्म खवेई । —उत्तरा० २९।१८

स्वाध्याय से जीव ज्ञानावरण कर्म का क्षय करता है ।

जलबुब्बुयसमाण कुसग्गजलबिंदु चचल जीविय । —औप० २३

जीवन जल के बुलबुले के समान तथा कुशा के अग्रभाग पर स्थित जलबिन्दु के समान चचल है ।

अल कुसलस्स पमाएण । —आचा० १।२।४

प्रज्ञाशील-साधक को अपनी साधना मे किञ्चित भी प्रमाद नही करना चाहिए ।

भारण्डपक्खी व चरमप्पमत्तो । —उत्त० ४।६

भारण्ड पक्षी की भाति साधक अप्रमत्त होकर विचरण करे ।

तम्हा मुणी खिप्पमुवेइ मोक्ख । —उत्त० ४।८

अप्रमत्त होकर विचरण करने वाला मुनि शीघ्र ही मोक्ष को प्राप्त होता है ।

अप्पाण-रक्खी चरप्पमत्तो । —उत्त० ४।१०

आत्मरक्षक अप्रमत्त होकर विचरण करे ।

सव्वओ पमत्तस्स भय, सव्वओ अपमत्तस्स नत्थि भय । —आचा० १।३।४

प्रमत्त आत्मा को सभी ओर से भय रहता है और अप्रमत्त को कही से भी भय नही ।

जे छेय से विप्पमाय न कुज्जा । —सूत्र० १।१४।२

चतुर नर वही है, जो कभी प्रमाद का सेवन न करे ।

धीरे मुहुत्तमवि णो पमायए । —आचा० १।२।१

धीर साधक मुहूर्तभर के लिए भी प्रमाद न करे ।

कामा दुरतिक्कम्मा । —आचा० १।२।५

कामनाओ का पार पाना अत्यन्त कठिन हे ।

इह लोए निप्पिवासस्स, नत्थि किंचि वि दुक्कर । —उत्त० १९।४४

इस लोक मे जो तृष्णारहित है, उसके लिए कुछ भी कठिन नही है ।

कह न कुज्जा सामण्ण, जो कामे न निवारए । —दश० २।१

जो अपनी कामनाओ-इच्छाओ को रोक नही पाता वह भला साधना कैसे कर पायेगा ?

विणीयतण्हो विहरे । —दश० ८।६०

मुमुक्षु आत्मा को तृष्णा रहित होकर विचरण करना चाहिए ।

मेहावी अप्पणो गिद्धिमुद्धरे । —सूत्र० ८।१३

बुद्धिमान पुरुष को अपना गृद्धिभाव दूर हटाना चाहिए ।

नेहपासा भयकरा । —उत्त० २३।४३

स्नेह के बधन भयकर है ।

सव्व सुचिण्ण सफल नराण । —उत्त० १३।१०

मनुष्यो का अच्छा किया हुआ सर्व कर्म सफल होता है ।

जाइमरण परिन्नाय, चरे संकमणे दढे ।

जन्म-मरण के स्वरूप का भली-भाँति परिज्ञान कर चारित्र में सुदृढ होकर विचरे ।

पाव कम्म नेव कुज्जा, न कारवेज्जा । —आचा० १।२।६

पाप-कर्म साधक न स्वयं करे, न दूसरों से करवाये ।

नो निन्हवेज्जवीरियं । —आचा० १।५।३

अपनी योग्य शक्ति को कभी भी छुपाना नहीं चाहिए ।

बन्धप्पमोक्खो अज्झत्थेव । —आचा० १।५।२

बंधन और मोक्ष वस्तुतः हमारे भीतर में ही है ।

इणमेव खण वियाणिया । —सूत्र० १।२।३।१९

जो क्षण वर्तमान में बरत रहा है, वही महत्त्वपूर्ण है । अतः साधक को उसे सफल बनाना चाहिए ।

जीवियं चेव रूवं च, विज्जुसपाय चचल । —उत्त० १८।१३

जीवन और रूप बिजली की चमक की तरह चंचल है ।

अत्तहियं खु दुहेण लब्भई । —सूत्र० १।२।२।३०

आत्म-हित का अवसर कठिनाई से मिलता है ।

काले काल समायरे । —उत्त० १।३१

समय पर समय का कार्य करना चाहिए ।

कलहकरो असमाहिकरे । —प्रश्न० २

कलह-झगडा करनेवाला असमाधि को उत्पन्न करने वाला है ।

सकम्मुणा किच्चइ पावकारी । —स्थाना० ४।४

पापात्मा स्वयं के ही कर्मों से दु खी होता है ।

वओ अच्चेति जोव्वण च । —आचा० १।२।१

उम्र और यौवन प्रतिपल व्यतीत हो रहा है ।

वेयावच्चेण तित्थयर नामगोत्त कम्म निबन्धई । —उत्त० २९।४३

वैयावृत्य-सेवा से जीव तीर्थंकर नाम-गोत्र का उपार्जन करता है ।

सज्झाएण नाणावरणिज्ज कम्म खवेई । —उत्तरा० २९।१८

स्वाध्याय से जीव ज्ञानावरण कर्म का क्षय करता है ।

जलबुब्बुयसमाण कुसग्गजलबिंदु चचल जीवियं । —औप० २३

जीवन जल के बुलबुले के समान तथा कुशा के अग्रभाग पर स्थित जलबिन्दु के समान चचल है ।

चइज्ज देह न हु धम्मसासण । —दश० चू० १।१७

देह को भले ही त्याग दे किन्तु अपने धर्मशासन को न त्यागे।

ममत्तबध च महब्भयावह । —उत्त० १६।६८

ममत्व का बधन महाभय को उत्पन्न करने वाला है।

ममाइ लुप्पइ वाले अन्नमन्ने हि मुच्छिए। —सूत्र० १।१।४

धन धान्यादि वस्तुओ मे आसक्त प्राणी ममत्व-भाव से ही दुखी होता है।

आणाए धम्म । —आचा० ६।२।५

जिनेश्वर देव की आज्ञा के पालन मे ही धर्म है।

जीविय दुप्पडिवूहग । —आचा० २।५

जीवन का एक क्षण भी बढ नही सकता।

सव्वत्थ भगवया अनियाणया पसत्था । —स्थाना० ६।१

प्रभु ने सर्वत्र निष्कामता को उत्तम बताया है।

सच्च मि धिइ कुव्वहा । —आचा० १।३।२

सत्य मे स्थिर होकर डटे रहो।

समय गोयम ! मा पमायए । —उत्त० १०।१

क्षणभर भी प्रमाद मत करो।

किरिय रोयए धीरो । —सूत्रकृताग

बुद्धिमान अपने कर्तव्य मे दिलचस्पी रखे।

उट्ठिए नो पमायए । —आचा० १।५।२

उठो, प्रमाद मत करो।

१ भगवान महावीर के विहार एव वर्षावास क्षेत्र

२ भगवान महावीर के कुछ महत्वपूर्ण सदर्भ

३ गणधर-परिचय

४. व्यक्ति परिचय

५ भौगोलिक परिचय

६ शब्द-कोष

७ पुस्तक में उद्धृत ग्रन्थ सूची

परिशिष्ट : १

भगवान महावीर के विहार और वर्षावास क्षेत्र

सन् ई० पूर्व	वर्ष	छद्मस्थावस्था—	वर्षावास
५६९	१	कुण्डग्राम, ज्ञातखण्डवन, कर्मारग्राम, कोल्लागसन्निवेश, मोराकसन्निवेश, दूइज्जतग-आश्रम, अस्थिकग्राम	अस्थिकग्राम
५६८	२	मोराकसन्निवेश, वाचाला, दक्षिणवाचाला, सुवर्णवालुका (नदी), रूप्यवालुका, कनखल आश्रम, उत्तर-वाचाला, श्वेताम्बी, सुरभिपुर, गगानदी, थूणाकसन्निवेश, राजगृह, नालन्दा सन्निवेश	नालन्दा सन्निवेश
५६७	३	कोल्लाग-सन्निवेश, सुवण खल, ब्राह्मणग्राम, चम्पानगरी	चम्पा नगरी
५६६	४	कालायसन्निवेश, पत्तकालय, कुमाराक सन्निवेश, चोराक सन्निवेश, पृष्ठचम्पा	पृष्ठचम्पा
५६५	५	कयगला सन्निवेश, श्रावस्ती, हलिद्दुय, जगला, आवत्ता, चोरायसन्निवेश, कलवुका-सन्निवेश, राढदेश (अनार्य भूमि), पूर्ण कलश (अनाय गाव), मलय प्रदेश, भद्दियानगरी	भद्दिया नगरी
५६४	६	कयली समागम, जम्बूसड, तवायसन्निवेश, वैशाली, ग्रामाक सन्निवेश, शालीशीर्ष, भद्दियानगरी	भद्दिया नगरी
५६३	७	मगधभूमि, आलभिया	आलभिया
५६२	८	कुण्डालसन्निवेश, मद्दनसन्निवेश, बहुसालग, शालवन, लोहागला, पुरिमताल, उन्नाग गोभूमि, राजगृह	राजगृह
५६१	९	लाढ, वज्रभूमि और सुम्हभूमि, अनाय देश	वज्रभूमि
५६०	१०	सिद्धार्थपुर, कूर्मग्राम, सिद्धार्थपुर, वैशाली, गडकी नदी (मडकी), वाणिज्यग्राम, श्रावस्ती	श्रावस्ती
५५९	११	सानुलट्ठिय, सन्निवेश, दृढभूमि, पोलास-चैत्य, वालुका, सुभोग, सुच्छेत्ता, मलय, हत्थिसीस, तोसलि, सिद्धार्थपुर, व्रजगांव, आलभिया, सेयविया, श्रावस्ती, कोशाम्बी, वाराणसी, राजगृह, मिथिला, वैशाली, काम महावन	वैशाली
५५८	१२	सुसुमारपुर, भोगपुर, नन्दिग्राम, मेढियग्राम, कोशाम्बी, सुमगल, सुच्छेत्ता, पालक, चम्पा	चम्पा
५५७	१३	जभियग्राम, मेढिय, छम्माणि, मध्यम अपापा, जभियग्राम, ऋजुवालुका (नदी) [कैवल्यप्राप्ति]	
		कैवल्यावस्था—	
५५७	१३	ऋजुवालुका, पावापुरी, राजगृह	राजगृह
५५६	१४	राजगृह, ब्राह्मणकुण्ड, वैशाली	वैशाली
५५५	१५	वैशाली, कौशाम्बी, श्रावस्ती, वाणिज्यग्राम	वाणिज्यग्राम
५५४	१६	वाणिज्यग्राम, राजगृह	राजगृह

५५३	१७	राजगृह, चम्पा, वीतभय, वाणिज्यग्राम	वाणिज्यग्राम
५५२	१८	वाणिज्यग्राम, वाराणसी, आलभिया, राजगृह	राजगृह
५५१	१९	राजगृह	राजगृह
५५०	२०	राजगृह, आलभिया, कौशाम्बी, वैशाली	वैशाली
५४९	२१	वैशाली, मिथिला, काकदी, कापिल्यपुर, पोलासपुर, वाणिज्यग्राम, वैशाली	वैशाली
५४८	२२	वैशाली, राजगृह	राजगृह
५४७	२३	राजगृह, कृतगला, श्रावस्ती, वाणिज्यग्राम	वाणिज्यग्राम
५४६	२४	वाणिज्यग्राम, ब्राह्मणकुण्ड, कौशाम्बी, राजगृह	राजगृह
५४५	२५	राजगृह, चम्पा, राजगृह	राजगृह
५४४	२६	राजगृह, काकन्दी, मिथिला, चम्पा	चम्पा
५४३	२७	चम्पा, श्रावस्ती, मेढियग्राम, चम्पा, मिथिला	मिथिला
५४२	२८	मिथिला, हस्तिनापुर, मोकानगरी, वाणिज्यग्राम	वाणिज्यग्राम
५४१	२९	वाणिज्यग्राम, राजगृह	राजगृह
५४०	३०	राजगृह, पृष्ठचम्पा, चम्पा, दशार्णपुर, वाणिज्यग्राम	वाणिज्यग्राम
५३९	३१	वाणिज्यग्राम, काम्पिल्यपुर, वैशाली	वैशाली
५३८	३२	वैशाली, वाणिज्यग्राम, वैशाली	वैशाली
५३७	३३	वैशाली, राजगृह, चम्पा, पृष्ठचम्पा, राजगृह	राजगृह
५३६	३४	राजगृह, नालन्दा	नालन्दा
५३५	३५	नालन्दा, वाणिज्यग्राम, वैशाली	वैशाली
५३४	३६	वैशाली, साकेत, वैशाली	वैशाली
५३३	३७	वैशाली, राजगृह	राजगृह
५३२	३८	राजगृह, नालन्दा	नालन्दा
५३१	३९	नालन्दा, मिथिला	मिथिला
५३०	४०	मिथिला	मिथिला
५२९	४१	मिथिला, राजगृह	राजगृह
५२८	४२	राजगृह, अपापापुरी (निर्वाण)	अपापापुरी (पावा)

भगवान महावीर के महत्त्वपूर्ण सन्दर्भ

[श्वेताम्बर सन्दभ ग्रन्थ] [दिगम्बर सन्दर्भ ग्रन्थ]

सन्दभ	समवायाग	सत्तरिसयद्दार	प्रवचनसारोद्धार	आवश्यक निर्युक्ति	हरिवशपुराण	उत्तर पुराण	तिलोयपण्णत्ति
पिता का नाम	सिद्धार्थ	सिद्धाथ	सिद्धार्थ	सिद्धाथ	सिद्धाथ	सिद्धार्थ	सिद्धाथ
माता का नाम	त्रिशला	त्रिशला	त्रिशला	त्रिशला	प्रियकारिणी	प्रियकारिणी	प्रियकारिणी
जन्मभूमि	—	कुडपुर	—	कुण्डलपुर	कुण्डपुर	कुण्टपुर	कुडलपुर
च्यवन-तिथि	—	आपाढ शुक्ला ६	—	—	—	आपाढ शुक्ला ६	
च्यवन-नक्षत्र	—	उत्तराफाल्गुनी	—	—	—		उत्तरापाढा
च्यवन-स्थल	—	प्राणत स्वग	—	—	—	पुष्पोत्तर विमान	पुष्पोत्तर विमान
जन्म-तिथि	—	चैत्र शुक्ला १३	—	—	चैत्र सुदी १३	चैत्र सुदी १३	चैत्र सुदी १३
जन्म-नक्षत्र	—	उत्तराफाल्गुनी		—	—	उत्तराफाल्गुनी	
वर्ण	—	तपे सोने की तरह गौर वर्ण	तपे सोने की तरह गौर वर्ण	—	स्वण के समान पीले	—	—
लक्षण	—	सिंह	सिंह	—	—	—	सिंह
शरीर-मान	७ हाथ	७ हाथ		७ हाथ	७ हाथ	७ हाथ	७ हाथ
कुमार जीवन	—	३० वप	—	३० वर्ष	३० वर्ष	३० वर्ष	३० वर्ष
राज्यकाल	—	नही किया	—	नही किया	नही किया	नही किया	नही किया

सन्दर्भ	समवायाग	सत्तरिसयद्वार	प्रवचनसारोद्धार	आवश्यकनिर्युक्ति	हरिवंशपुराण	उत्तरपुराण	तिलोयपण्णत्ति
दीक्षा-तिथि	—	चैत्र सुदी १०[1]	—	—	मार्गशीर्ष कृ० १०,	मार्गशीर्ष कृ० १०	मार्गशीर्ष कृ० १०
दीक्षा-नक्षत्र	—	उत्तराफाल्गुनी	—	—	—	उत्तरा	—
दीक्षा-साथी	एकाकी	एकाकी	एकाकी	—	एकाकी	एकाकी	एकाकी
प्रथम तप	बेला	बेला	—	बेला	बेला	तेला	तीन उपवास
प्रथम आहारदाता	बहुल	बहुल	—	बहुल	बकुल	कूल	—
प्रथम पारणा-स्थल	कोल्लाक ग्राम	कोल्लाक ग्राम	—	कोल्लाक ग्राम	कुडपुर	कूलग्राम	—
छद्मस्थ काल	—	साढे बारह वर्ष-१५ दिन	—	साढे बारह वर्ष	१२ वर्ष	१२ वर्ष	१२ वर्ष
केवलज्ञान तिथि	—	वैशाख सुदी १०	—	वैशाख सुदी १०	वैशाख सुदी १०	वैशाख सुदी १०	वैशाख सुदी १०
केवलज्ञान नक्षत्र	—	उत्तराफाल्गुनी	—	हस्तोत्तरा		मघा	
केवलज्ञान स्थल	—	जृम्भिका नगरी ऋजुबालिका नदी		—	—	ऋजुकूला नदी (मनोहर वन)	ऋजुकूला नदी
चैत्य वृक्ष	शाल	—	—		शाल	—	—
गणधर	११	११	११	११	११	११	११
प्रथम शिष्य	इन्द्रभूति	इन्द्रभूति	इन्द्रभूति		इन्द्रभूति		इन्द्रभूति
प्रथम शिष्या	चन्दना	चन्दनबाला	चन्दना		चन्दना	चन्दना	चन्दना
साधु-संख्या	—	१४०००	१४०००	१४०००	१८०००	१४०००	१४०००
साध्वी-संख्या	—	३६०००	३६०००	—	३५०००	३६०००	३६०००
श्रावक-संख्या	—	१५९०००	१५९०००	१५९०००	१०००००	१०००००	१०००००
श्राविका-संख्या	३१८०००	३१८०००	३१८०००		३०००००	३०००००	३०००००
केवली-ज्ञानी	—	७००[2]	७००	—	७००	७००	८००

१ आचारांग श्रु० २ अ० २४ मे मिगसर वदी १० है

२ कल्पसूत्र मे १४०० साध्वियो के मुक्त होने का उल्लेख है, अत यहाँ जो केवलियो की सख्या है वह पुरुषो की अपेक्षा से है।

सन्दर्भ	समवायाग	सत्तरिसयद्वार	प्रवचनसारोद्धार	आवश्यकनिर्युक्ति	हरिवशपुराण	उत्तरपुराण	तिलोयपण्णति
मन पर्यवज्ञानी	५००	५००	५००	—	५००	५००	५००
अवधिज्ञानी	१३००	१३००	१३००	—	१३००	१३००	१३००
वैक्रिय लब्धिधारी	—	७००	७००	—	९००	९००	९००
पूर्वधारी	३००	३००	३००	—	३००	३००	३००
वादी	४००	४००	४००	—	४००	४००	४००
श्रमण जीवन	—	४२ वर्ष	—	४२ वर्ष	४२ वर्ष	—	—
आयु प्रमाण		७२ वर्ष	७२ वर्ष	७२ वर्ष	७२ वप	७२ वर्ष	७२ वर्ष
माता-पिता की गति	आचाराग मे त्रिशला व सिद्धार्थ का १२वे स्वर्ग मे जाने का उल्लेख है[3]						
निर्वाण-तप		२ उपवास	२ उपवास	—	—	—	—
निर्वाण-तिथि		कार्तिक कृष्ण ३०	कार्तिक कृ० १४	—		कार्तिक कृष्ण १४	कार्तिक कृ० १४
निर्वाण-नक्षत्र	स्वाति	—	—	—	—	स्वाति	—
निर्वाण-स्थल		पावापुरी	पावापुरी	—			पावापुरी
निर्वाण-साथी		१	१	१	२६	१०००[4]	१
पूर्वभव नाम	नन्दन	नन्दन	—	—	नन्द	नन्द	

३ महावीर के प्रथम माता-पिता देवानन्दा और ऋषभदत्त के मुक्त होने का उल्लेख सत्तरिसयद्वार मे है।

४ गन्ता मुनिसहस्रे ण निर्वाण सववाछितम्—उत्तरपुराण पर्व ७६ श्लो० ५१२

परिशिष्ट · ३

गणधर-परिचय

मध्यम पावा के समवसरण मे ग्यारह विद्वानो ने भगवान के पास अपनी शका-समाधान करके दीक्षा ली थी। ये विद्वान भगवान महावीर के प्रथम शिष्य कहलाये। अपनी असाधारण विद्वत्ता, अनुशासन-कुशलता तथा आचारदक्षता के कारण ये भगवान के गणधर बने। गणधर भगवान के गण (सघ) के स्तम्भ होते है। तीर्थंकरो की अर्थरूप वाणी को सूत्ररूप मे ग्रथित करने वाले कुशल शब्दशिल्पी होते है। भगवान महावीर के ग्यारह गणधर थे। जिनका परिचय निम्न है।

१ इन्द्रभूति

इन्द्रभूति गौतम भगवान महावीर के प्रधान शिष्य थे। मगध की राजधानी राजगृह के पास गोबरगाव उनकी जन्मभूमि थी।[1] जो आज नालन्दा का ही एक विभाग माना जाता है। उनके पिता का नाम वसुभूति और माता का नाम पृथ्वी था। उनका गोत्र गौतम था।[2]

गौतम का व्युत्पत्तिजन्य अर्थ करते हुए जैनाचार्यो ने लिखा है—बुद्धि के द्वारा जिसका अधकार नष्ट हो गया है, वह गौतम।[3] यो तो गौतम शब्द कुल और वश का वाचक रहा है। स्थानाग मे सात प्रकार के गौतम बताए गये है—गौतम, गार्ग्य, भारद्वाज, आगिरस, शर्कराभ, मक्षकाभ, उदकात्माभ,।[4] वैदिक साहित्य मे गौतम नाम कुल से भी सम्बद्ध रहा है और ऋषियो से भी। ऋग्वेद मे गौतम के नाम से अनेक सूक्त

---

१ मगहा गुब्बरगामे जाया तिन्नेव गोयमसगुत्ता।

—आवश्यक निर्युक्ति, गा ६४३

२ (क) आवश्यक निर्युक्ति गा ६४७-४८

(ख) आद्याना त्रयाणा गणभृता पिता वसुभूति।
आद्याना त्रयाणा गणभृता माता पृथिवी। —आवश्यक मलय ३३८

३ गोभिस्तमो ध्वस्त यस्य। —अभिधान राजेन्द्र कोष, भा ३, गौतम शब्द

४ जे गोयमा ते सत्तविहा पण्णत्ता, त जहा ते गोयमा, ते गग्गा, ते भारद्दा, ते अगिरसा, ते सक्कराभा, ते भक्खराभा, ते उदगत्ताभा। —स्थानाङ्ग ।७।५५१

मिलते है, जिनका गौतम राहूगण नामक ऋषि से सम्बन्ध है।[५] वैसे गौतम नाम से अनेक ऋषि, धर्मसूत्रकार, न्यायशास्त्रकार, धर्मशास्त्रकार प्रभृति व्यक्ति हो चुके है। अरुणउद्दालक, आरुणि आदि ऋषियो का भी पैतृक नाम गौतम था।[६] यह कहना कठिन है कि इन्द्रभूति गौतम का गोत्र क्या था, वे किस ऋषि के वश से सम्बद्ध थे? किन्तु इतना तो स्पष्ट है कि गौतम गोत्र के महान गौरव के अनुरूप ही उनका व्यक्तित्व विराट् व प्रभावशाली था। दूर-दूर तक उनकी विद्वत्ता की धाक थी। पाँचसौ छात्र उनके पास अध्ययन के लिए रहते थे। उनके व्यापक प्रभाव से प्रभावित होकर ही सोमिलार्य ने महायज्ञ का नेतृत्व उनके हाथो मे सौपा था। पचास वर्ष की आयु मे आपने पाचसौ छात्रो के साथ प्रव्रज्या ग्रहण की, तीस वर्ष तक छद्मस्थ रहे और बारह वर्ष जीवन्मुक्त केवली। गुणशीलचैत्य मे मासिक अनशन करके बानवे (९२) वर्ष की उम्र मे निर्वाण को प्राप्त हुए।[७]

२ अग्निभूति

अग्निभूति, इन्द्रभूति गौतम के मझले भाई थे। छयालीस वर्ष की अवस्था मे दीक्षा ग्रहण की, बारह वर्ष तक छद्मस्थावस्था मे तप-जप कर केवल ज्ञान प्राप्त किया। सोलह वर्ष तक केवली अवस्था मे विचरण कर भगवान महावीर के निर्वाण से दो वर्ष पूर्व राजगृह के गुणशीलचैत्य मे मासिक अनशन कर चौहत्तर वर्ष की अवस्था मे निर्वाण को प्राप्त हुए।[८]

३ वायुभूति

ये इन्द्रभूति के लघु भ्राता थे। बयालीस वर्ष की अवस्था मे गृहवास को त्याग कर श्रमणधर्म स्वीकार किया था। दस वर्ष छद्मस्थावस्था मे रहे। अठारह वर्ष केवली अवस्था मे रहे। सत्तर वर्ष की अवस्था मे राजगृह के गुणशीलचैत्य मे मासिक अनशन के साथ निर्वाण प्राप्त किया।[९]

ये तीनो ही गणधर सहोदर थे और वेदो आदि के प्रकाण्ड पण्डित थे।

४ आर्य व्यक्त

ये कोल्लागसन्निवेश के निवासी थे, और भारद्वाज गोत्रीय ब्राह्मण थे। उनके पिता का नाम धनमित्र और माता का नाम वारुणी था। पचास वर्ष की अवस्था मे पाँचसौ छात्रो के साथ श्रमणधर्म स्वीकार किया। बारह वर्ष तक छद्मस्थावस्था मे

---

५ ऋग्वेद १।६२।१३, वैदिक कोश, पृ १३४

६ भारतीय प्राचीन चरित्र कोश, पृ १९३-१९५

७ (क) आवश्यक निर्युक्ति ६५५। (ख) आवश्यक मलय०, पृ ३३९

८ आवश्यक निर्युक्ति गा ६५०-६५५

९ आवश्यक निर्युक्ति गा ६५०-६५५

मिलते है, जिनका गौतम राहूगण नामक ऋषि से सम्बन्ध है।[५] वैसे गौतम नाम से अनेक ऋषि, धर्मसूत्रकार, न्यायशास्त्रकार, धर्मशास्त्रकार प्रभृति व्यक्ति हो चुके है। अरुणउद्दालक, आरुणि आदि ऋषियो का भी पैतृक नाम गोतम था।[६] यह कहना कठिन है कि इन्द्रभूति गोतम का गोत्र क्या था, वे किस ऋषि के वश से सम्बद्ध थे? किन्तु इतना तो स्पष्ट है कि गोतम गोत्र के महान गौरव के अनुरूप ही उनका व्यक्तित्व विराट् व प्रभावशाली था। दूर-दूर तक उनकी विद्वत्ता की धाक थी। पाँचसौ छात्र उनके पास अध्ययन के लिए रहते थे। उनके व्यापक प्रभाव से प्रभावित होकर ही सोमिलार्य ने महायज्ञ का नेतृत्व उनके हाथो मे सौपा था। पचास वर्ष की आयु मे आपने पाचसो छात्रो के साथ प्रव्रज्या ग्रहण की, तीस वर्ष तक छद्मस्थ रहे और बारह वर्ष जीवन्मुक्त केवली। गुणशीलचैत्य मे मासिक अनशन करके बानवे (९२) वर्ष की उम्र मे निर्वाण को प्राप्त हुए।[७]

२ अग्निभूति

अग्निभूति, इन्द्रभूति गोतम के मझले भाई थे। छयालीस वर्ष की अवस्था मे दीक्षा ग्रहण की, बारह वर्ष तक छद्मस्थावस्था मे तप-जप कर केवल ज्ञान प्राप्त किया। सोलह वर्ष तक केवली अवस्था मे विचरण कर भगवान महावीर के निर्वाण से दो वर्ष पूर्व राजगृह के गुणशीलचैत्य मे मासिक अनशन कर चौहत्तर वर्ष की अवस्था मे निर्वाण को प्राप्त हुए।[८]

३ वायुभूति

ये इन्द्रभूति के लघु भ्राता थे। बयालीस वर्ष की अवस्था मे गृहवास को त्याग कर श्रमणधर्म स्वीकार किया था। दस वर्ष छद्मस्थावस्था मे रहे। अठारह वर्ष केवली अवस्था मे रहे। सत्तर वर्ष की अवस्था मे राजगृह के गुणशीलचैत्य मे मासिक अनशन के साथ निर्वाण प्राप्त किया।[९]

ये तीनो ही गणधर सहोदर थे और वेदो आदि के प्रकाण्ड पण्डित थे।

४ आर्य व्यक्त

ये कोल्लागसन्निवेश के निवासी थे, और भारद्वाज गोत्रीय ब्राह्मण थे। उनके पिता का नाम धनमित्र और माता का नाम वारुणी था। पचास वर्ष की अवस्था मे पाँचसौ छात्रो के साथ श्रमणधर्म स्वीकार किया। बारह वर्ष तक छद्मस्थावस्था मे

---

५ ऋग्वेद १।६२।१३, वैदिक कोश, पृ १३४

६ भारतीय प्राचीन चरित्र कोश, पृ १९३-१९५

७ (क) आवश्यक निर्युक्ति ६५५। (ख) आवश्यक मलय०, पृ ३३९

८ आवश्यक निर्युक्ति गा ६५०-६५५

९ आवश्यक निर्युक्ति गा ६५०-६५५

रहे। और अठारह वर्ष तक केवली पर्याय पालकर अस्सी वर्ष की अवस्था में मासिक अनशन के साथ राजगृह के गुणशीलचैत्य में निर्वाण को प्राप्त हुए।[10]

५ सुधर्मा

ये कोल्लागसन्निवेश के निवासी अग्नि वैश्यायन गोत्रीय ब्राह्मण थे। उनके पिता धम्मिल थे और माता भद्दिला थी। पाचसौ छात्र इनके पास अध्ययन करते थे। पचास वर्ष की अवस्था में शिष्यों के साथ प्रव्रज्या ली। बयालीस वर्ष पर्यन्त छद्मस्थावस्था में रहे। महावीर के निर्वाण के बाद बारह वर्ष व्यतीत होने पर केवली हुए और आठ वर्ष तक केवली अवस्था में रहे।

श्रमण भगवान के सर्व गणधरों में सुधर्मा दीर्घजीवी थे, अतः अन्यान्य गणधरों ने अपने-अपने निर्वाण के समय अपने-अपने गण सुधर्मा को समर्पित कर दिये थे।[11]

महावीर-निर्वाण के १२ वर्ष बाद सुधर्मा को केवलज्ञान प्राप्त हुआ और बीस वर्ष के पश्चात् सौ वर्ष की अवस्था में मासिक अनशन पूर्वक राजगृह के गुणशीलचैत्य में निर्वाण प्राप्त किया।[12]

६ मण्डिक

मण्डिक मौर्यसन्निवेश के रहने वाले वसिष्ठ गोत्रीय ब्राह्मण थे। इनके पिता का नाम धनदेव और माता का नाम विजयादेवी था। इन्होंने तीनसौ पचास छात्रों के साथ त्रेपन वर्ष की अवस्था में प्रव्रज्या ली। सड़सठ (६७) वर्ष की अवस्था में केवलज्ञान प्राप्त किया और तिरासी वर्ष की अवस्था में गुणशीलचैत्य में निर्वाण को प्राप्त हुए।[13]

७ मौर्यपुत्र

ये काश्यपगोत्रीय ब्राह्मण थे। इनके पिता का नाम मौर्य और माता का नाम विजयादेवी था। मौर्यसन्निवेश के निवासी थे। तीनसौ पचास छात्रों के साथ त्रेपन वर्ष की अवस्था में दीक्षा ली। उनासी वर्ष की अवस्था में केवलज्ञान प्राप्त किया। और भगवान महावीर के अन्तिम वर्ष में तिरासी (८३) वर्ष की अवस्था में मासिक अनशन पूर्वक राजगृह के गुणशीलचैत्य में निर्वाण प्राप्त किया।[14]

---

१० आवश्यक निर्युक्ति गा ६४३–५५

११ (क) जीवंते चेव भट्टारए णवहिं जणेहिं अज्ज सुधम्मस्स गणो णिक्खित्तो दीहाउगोत्ति णातु।
—कल्पसूत्र चूर्णि २०१

(ख) परिनिव्वुया गणहरा जीवंते नायए नव जणा उ इदभूई सुहम्मो अ, रायगिहे निव्वुए वीरे।
—आवश्यक निर्युक्ति गा ६५८

१२ आवश्यक निर्युक्ति ६५५

१३ आवश्यक निर्युक्ति गा ६६४—५६०

१४ आवश्यक निर्युक्ति गा ६४४-५५

एक स्पष्टीकरण

भगवान् महावीर के छठवे गणधर मण्डिक और सातवे गणधर मौयपुत्र के सम्बन्ध मे आचाय जिनदासगणी महत्तर ने व आचार्य हेमचन्द्र ने लिखा है कि वे दोनों सहोदर थे। उन दोनों की माता विजयादेवी थी।[१५] आर्य मण्डिक के पिता का नाम धनदेव था और मौयपुत्र के पिता का नाम मौर्य था। आर्य मण्डिक के जन्म के बाद धनदेव का निधन हो गया, धनदेव के मासरे भाई मौर्य के साथ विजयादेवी ने विधवा विवाह किया। उसके पश्चात् उसके पुत्र हुआ, उसका नाम मौयपुत्र रखा गया। मुनि श्री रत्नप्रभविजय जी ने भी लिखा है—माता एक और पिता दो थे, चूंकि उस समय मोयसन्निवेश मे विधवाविवाह निषिद्ध नही था।[१६] पण्डितप्रवर दलसुख मालवणिया ने भी गणधरवाद की प्रस्तावना मे माता एक और पिता दो लिखा है,[१७] परन्तु वस्तुत यह भ्रम है, सत्य तथ्य नही है। दोनों की माता का एक नाम होने से ही यह भ्रम हुआ है।

समवायाङ्ग मे आय मण्डिक की सर्वायु तिरासी वर्ष लिखी है,[१८] साथ ही यह भी लिखा कि वे तीस वष तक श्रमण पर्याय पालकर सिद्ध हुए।[१९] इससे स्पष्ट है कि मण्डिक ने जब दीक्षा ली उस समय उनकी उम्र तिरेपन वष की थी।

---

१५ (क) तमि चेव मगहा जणवते मोरियसन्निवेसे मडिया मोरिया दो भायरो।
—आवश्यक चूर्णि उपोद्घात, पृ० ३३७

(ख) पत्न्या विजयदेवाया धनदेवस्य नन्दन।
मण्डकोऽभूत्तत्र जाते, धनदेवो व्यपद्यत॥
लोकाचारो ह्यसो तत्रेत्यभार्यो मौर्यकोऽकरोत्।
भार्या विजयदेवा ता देशाचारो हि न ह्रिये॥
क्रमाद् विजयदेवाया मौयस्य तनयोऽभवत्।
स च लोके मौर्यपुत्र इति नाम्नैव पप्रथे॥
—त्रिषष्टि १०।५।५३-५५

16 "Besides Sthavira Mandita and Sthavira Mauryaputra were brothers having one mother Vijayadevi, but have different gotras derived from the gotras of their different fathers, the father of Mandit was Dhanadeva of Vasistha-gotra and the father of Mauryaputra was Maurya of kasyapa-gotra, as it was not forbidden for a widowed female in that country, to have a re-marriage with another person, after the death of her farmer husband"

१७ गणधरवाद प्रस्तावना, पृ० ६३-टिप्पण और ६४

१८ थेरेण मडियपुत्ते तेसीइ वासाइ सव्वाउय पालइत्ता सिद्धे जावप्पहीणे।
—समवायाङ्ग, ८३ समवाय

१९ थेरेण मडियपुत्ते तीस वासाइ सामण्णपरियाय पाउणित्ता सिद्धे, बुद्धे जाव सव्वदुक्खप्पहीणे।
—समवायाङ्ग, ३० समवाय

समवायाङ्ग मे मोर्यपुत्र के सम्बन्ध मे लिखा है कि उन्होने पैसठ वर्ष की अवस्था मे दीक्षा ग्रहण की।[२०] दीक्षा लेने की समवायाग की बात अन्य ग्रन्थकारो ने भी स्वीकार की है।[२१] मुनि रत्नप्रभविजय जी ने भी यह बात मानी है।[२२]

साराश यह है कि ग्यारह ही गणधरो ने एक ही दिन दीक्षा ग्रहण की। ऐसी स्थिति मे यह किस प्रकार सम्भव हो सकता है कि एक ही दिन दीक्षा ग्रहण करते समय बडे भ्राता की उम्र तिरेपन वर्ष की हो और लघु भाई की उम्र पैसठ वर्ष की हो। दीक्षा लेते समय बडे भाई से छोटा भाई किस प्रकार वडा हो सकता है?

स्पष्ट है कि मण्डिक और मौर्यपुत्र ये दोनो सहोदर नही थे। दोनो की माता पृथक्-पृथक् थी। नाम भले ही एक रहा है, पर वे एक नही थी। विजयादेवी ने विधवा विवाह नही किया था। उनकी उम्र की ओर दृष्टि न जाने से ही आचार्य हेमचन्द्र जैसे महान् प्रतिभा के धनी ने सहोदर माना और आगे **लोकाचारोहि न ह्रिये** लिख कर अपनी मान्यता का औचित्य सिद्ध करने का प्रयास किया।

८ अकम्पित

ये मिथिला के रहने वाले गोतम गोत्रीय ब्राह्मण थे, इसके पिता देव और माता जयन्ती थी। तीन सौ छात्रो के साथ अडतालीस वर्ष की अवस्था मे दीक्षा ली। सत्तावन वर्ष की अवस्था मे केवलज्ञान प्राप्त किया और भगवान महावीर के अन्तिम वर्ष मे अठहत्तर वर्ष की अवस्था मे राजगृह के गुणशीलचैत्य मे निर्वाण प्राप्त किया।[२३]

९ अचलभ्राता

ये कोशला ग्राम के निवासी हारीत गोत्रीय ब्राह्मण थे। आपके पिता वसु और माता नन्दा थी। तीनसौ छात्रो के साथ छयालीस वर्ष की अवस्था मे श्रमणत्व

---

२० समवायाङ्ग, ६५ समवाय

२१ गणधरवाद, पृ० ६४ का चार्ट

22 Gandhara Maharaja Mandita was fifty three years old when he renouneed the world After a period of fourteen years of ascetic life, Mandit acquired Keval Gnana and he acquired Moksha pada when he was eighty three years old (p 122) Gandhra Maharaja Mauryaputra was sixty-five years old when he renounced the world

After a *period of* fourteen years of ascetic life Ganadhara Mauryaputra acquired Kevala Gnana at the age of seventy-nine

Ganadhara Maharaja Mauryaputra remained a Kevali for sixteen years and he acquired pada when he was ninety-five years old (p 124)

२३ आव निर्युक्ति गा ६४४-५६

परिशिष्ट : ४

व्यक्ति-परिचय

भगवान महावीर का शासन समता का आदर्श राज्य था। उसमे छोटे-बडे सभी को समान स्थान था। अगणित साधारण व अतिसाधारण व्यक्ति उनके सम्पर्क मे आकर अपना कल्याण करते रहे तो अनेक प्रसिद्ध राजन्य, महामात्य आदि भी उनके चरणो मे बैठकर धर्म-उपदेश सुनकर जीवन को कृतार्थ करते रहे। कुछ प्रमुख व्यक्ति ऐसे भी थे, जिनका प्रभाव अन्तर्राज्यीय और अन्तर्धर्मसंघीय कहा जा सकता है। भगवान महावीर के अनेक भक्त राजा, राजकुमार ऐसे भी थे, जिनकी चर्चा बौद्ध पिटकों मे भी आई और ऐसे लगता है कि दोनों परम्पराएँ उन्हे अपना अनुयायी मानती है। प्रस्तुत मे कुछ ऐसे ही प्रसिद्ध व्यक्तियो के सम्बन्ध मे एक ऐतिहासिक पर्यालोचन यहाँ किया है।

अभयकुमार

अभयकुमार प्रबल प्रतिभा-सम्पन्न व्यक्ति था। जैन और बौद्ध दोनो ही परम्परा मे उसका उल्लेख है। जैन परम्परा उसे अपना अनुयायी मानती है और बौद्ध परम्परा उसे अपना अनुयायी मानती है। आगम साहित्य के अनुसार वह श्रमण भगवान महावीर के पास दीक्षा लेता है तो त्रिपिटक साहित्य के अनुसार बुद्ध के पास प्रव्रज्या लेता है।

जैन साहित्य मे

जैन साहित्य के अनुसार वह राजा श्रेणिक की नन्दा नामक रानी का पुत्र था।[1] नन्दा वेन्नातटपुर[2] के श्रेष्ठी धनावह की पुत्री थी। कुमारावस्था मे श्रेणिक

---

१ (क) तस्स ण सेणियस्स पुत्ते नदाए देवीए अत्तए अभय नाम कुमारे होत्था।
—ज्ञातृधर्मकथा १।१

(ख) अनुत्तरोपपातिक १।१

(ग) निरयावलिया सूत्र २३

२ यह नगर दक्षिण की कृष्णा नदी जहाँ पूर्व के समुद्र मे मिलती है, वहाँ पर होना चाहिए, विशेष परिशिष्ट मे देखे।

गडी हुई मिली। वह उसे देखकर घबरा गया और बिना युद्ध किए ही उलटे पैरों उज्जैनी लौट गया। इस प्रकार एक विकट राजनैतिक सकट मे श्रेणिक को मुक्त किया।[८]

एक समय एक द्रुमक (लकडहारा) गणधर सुधर्मा के पास प्रव्रजित हुआ। जब वह राजगृह मे भिक्षा के लिए गया, तब लोगो ने परिहास करते हुए कहा—देखिए न! ये महान् त्यागी मुनि आये है, इन्होने कितना बड़ा वैभव का त्याग किया है, यह बात सुनकर द्रुमक मुनि के मन मे विचार आया कि लोग मेरा कैसा मजाक कर रहे है। उन्होने सुधर्मा स्वामी से आकर निवेदन किया कि भगवन्! इस प्रकार अपमान का घूंट कहाँ तक पीता रहूँगा। भगवान सुधर्मा स्वामी ने उसके मन की शान्ति के लिए राजगृह से प्रस्थान करने का विचार किया। इस बात का पता अभयकुमार को लगा, उसने निवेदन किया कि आप विहार न करे।

दूसरे ही दिन नगर के सार्वजनिक स्थान पर एक-एक करोड स्वर्णमुद्राओ के तीन ढेर लगाये। और राजगृह मे यह उद्घोषणा करवायी कि ये तीन कोटि स्वर्ण-मुद्राएँ वह व्यक्ति ले सकता है जो जीवन भर के लिए स्त्री, अग्नि, और पानी का परित्याग करे।

स्वर्णराशियाँ देखकर सभी का मन ललचाया किन्तु शर्तो को सुनकर किसी ने भी लेने के लिए कदम आगे न बढाया। तब अभयकुमार ने कहा—देखिए वह द्रुमक मुनि कितना महान हे जिसने जीवन भर के लिए स्त्री, अग्नि और सचित पानी का परित्याग किया हे। अभयकुमार की प्रस्तुत बुद्धिमत्ता से जो द्रुमक मुनि के प्रति व्यग कसने की प्रवृत्ति थी, वह बन्द हो गई, और जनता को श्रमणधर्म का महत्त्व ज्ञात हो गया।[९]

अभयकुमार ने आर्द्रककुमार को धर्मोपकरण उपहार मे भेजे थे, जिससे वह प्रतिबुद्ध होकर श्रमण बना था—जिसका वर्णन पूर्व किया जा चुका है। अभयकुमार के ससर्ग मे आकर राजगृह का महान कसाई कालशौरिक का पुत्र सुलसकुमार भगवान महावीर का परम उपासक बना था।[१०] इस प्रकार अभयकुमार के धार्मिक भावना के अनेक उदाहरण जैन साहित्य मे है।

---

८ चण्डप्रद्योत जब उज्जैनी पहुँचा तब उसे अभयकुमार के षड्यन्त्र का पता लगा, उसने फिर षड्यन्त्र से अभयकुमार को बन्दी बनाया। अभयकुमार ने मुक्त होकर उसका बदला लिया, उस रुचिकर वर्णन के लिए देखे—

(क) आवश्यक चूर्णि उत्तरार्ध पत्र १५९—१६३

(ख) त्रिषष्टि० १०।११।१२४-२६३

९ धर्मरत्न प्रकरण—अभयकुमार कथा, १-३०

१० योगशास्त्र, स्वोपज्ञवृत्ति, अ १, श्लोक ३०, पृ० ९१-९५ आचार्य हेमचन्द्र

वहाँ पहुँचे थे और वहाँ पर उन्होंने नन्दा के साथ पाणिग्रहण किया था। अभय-कुमार आठ वर्ष तक अपनी माता के साथ ननिहाल रहे थे उसके बाद वे दोनो राजगृह आ गये।[3]

अभयकुमार का रूप बहुत ही सुन्दर था। वह साम, दाम, दण्ड, भेद, उपप्रदान-नीति तथा व्यापारनीति का ज्ञाता था। ईहा, अपोह, मार्गणा, गवेषणा तथा अर्थ-शास्त्र मे निष्णात था। औत्पातिकी, वैनयिकी, कार्मिकी तथा पारिणामिकी इन चार प्रकार की बुद्धियो से युक्त था। राजा श्रेणिक के बहुत से कार्यो मे—जैसे कौटम्बिक कार्यो मे, मत्रणा मे, गुह्य कार्यो मे, रहस्यमय कार्यो मे, निश्चय करने मे अनेक बार परामर्श करने योग्य था। सभी के लिए मेढीभूत था, प्रमाण था, आधार था, आलम्बन था, चक्षुभूत था, सभी कार्यो मे व सभी स्थानो मे प्रतिष्ठा प्राप्त करने वाला था। सभी को विचार प्रदान करने वाला था। राज्य की धुरा को धारण करने वाला था। वह राज्य (शासन), राष्ट्र (देश) कोष, कोठार (अन्नभाण्डार), सेना, वाहन, नगर और अन्त पुर की सम्यक् प्रकार से देख-भाल करता था।[४]

अभयकुमार राजा श्रेणिक का मनोनीत मत्री था।[५] जटिल-से-जटिल समस्याओ को वह अपने बुद्धिबल से एक क्षण मे सुलझा देता था। उसने मेघकुमार की माता धारिणी[६] का व कूणिक की माता चेलना[७] का दोहद अपनी कुशाग्रबुद्धि से पूर्ण किया था। उसकी लघु माता चेलना और श्रेणिक का विवाह-सम्बन्ध भी अभयकुमार की बुद्धि से ही सम्पन्न हो सका था। अभयकुमार की बुद्धि के चमत्कार की अनेक घटनाएँ जैन साहित्य मे अकित ह।

एक समय उज्जैनी के राजा चण्डप्रद्योत ने चौदह राजाओ की विराट सेना को लेकर राजगृह पर आक्रमण किया। अभयकुमार को ज्यो ज्ञात हुआ त्यो ही उसने जहा पर शत्रुओ का शिविर लगने वाला था, वहा पहले से ही गुप्त रूप मे स्वर्णमुद्राएँ गडवा दी। जब चण्डप्रद्योत की विशाल सेना ने राजगृह को चारो ओर से घेर लिया, तब अभयकुमार ने उसे एक पत्र लिखा कि मै आपका पूर्ण हितैषी हूँ, आपके साथी राजा लोग महाराजा श्रेणिक से मिल चुके ह। वे आपको पकडकर राजा श्रेणिक को सम्भलाने वाले ह। श्रेणिक ने उनको बहुत-सा धन दिया है। यदि आपको मेरे कथन पर विश्वास न हो तो जहाँ पर आपका शिविर है, वहाँ की भूमि खुदवाकर देख लेवे।

चण्डप्रद्योत ने जब अनुचरो से भूमि खुदवाई तो प्रत्येक स्थान पर स्वर्णमुद्राएँ

---

३ भरतेश्वर बाहुबली वृत्ति पत्र ३६
४ ज्ञातृधर्म कथा १।१
५ भरतेश्वर बाहुबली वृत्ति, पत्र ३८
६ ज्ञातृधर्म कथा १।१
७ निरयावलिया

गडी हुई मिली। वह उसे देखकर घबरा गया और बिना युद्ध किये ही उलटे पैरों उज्जैनी लौट गया। इस प्रकार एक विकट राजनैतिक सकट मे श्रेणिक को मुक्त किया।[८]

एक समय एक द्रुमक (लकडहारा) गणधर सुधर्मा के पास प्रव्रजित हुआ। जब वह राजगृह मे भिक्षा के लिए गया, तब लोगो ने परिहास करते हुए कहा—देखिए न! ये महान् त्यागी मुनि आये है, इन्होंने कितना बडा वैभव का त्याग किया है, यह बात सुनकर द्रुमक मुनि के मन मे विचार आया कि लोग मेरा कैसा मजाक कर रहे है। उन्होंने सुधर्मा स्वामी से आकर निवेदन किया कि भगवन्! इस प्रकार अपमान का घूँट कहाँ तक पीता रहूँगा। भगवान सुधर्मा स्वामी ने उसके मन की शान्ति के लिए राजगृह से प्रस्थान करने का विचार किया। इस बात का पता अभयकुमार को लगा, उसने निवेदन किया कि आप विहार न करे।

दूसरे ही दिन नगर के सार्वजनिक स्थान पर एक-एक करोड स्वर्णमुद्राओ के तीन ढेर लगाये। और राजगृह मे यह उद्घोषणा करवायी कि ये तीन कोटि स्वर्ण-मुद्राएँ वह व्यक्ति ले सकता है जो जीवन भर के लिए स्त्री, अग्नि, और पानी का परित्याग करे।

स्वर्णराशियाँ देखकर सभी का मन ललचाया किन्तु शर्तो को सुनकर किसी ने भी लेने के लिए कदम आगे न बढाया। तब अभयकुमार ने कहा—देखिए वह द्रुमक मुनि कितना महान है जिसने जीवन भर के लिए स्त्री, अग्नि और सचित पानी का परित्याग किया है। अभयकुमार की प्रस्तुत बुद्धिमत्ता से जो द्रुमक मुनि के प्रति व्यग कसने की प्रवृत्ति थी, वह बन्द हो गई, और जनता को श्रमणधर्म का महत्त्व ज्ञात हो गया।[९]

अभयकुमार ने आर्द्रककुमार को धर्मोपकरण उपहार मे भेजे थे, जिससे वह प्रतिबुद्ध होकर श्रमण बना था—जिसका वर्णन पूर्व किया जा चुका है। अभयकुमार के ससर्ग मे आकर राजगृह का महान कसाई कालशौरिक का पुत्र सुलसकुमार भगवान महावीर का परम उपासक बना था।[१०] इस प्रकार अभयकुमार के धार्मिक भावना के अनेक उदाहरण जैन साहित्य मे है।

---

८ चण्डप्रद्योत जब उज्जैनी पहुँचा तब उसे अभयकुमार के षड्यन्त्र का पता लगा, उसने फिर षड्यन्त्र से अभयकुमार को बन्दी बनाया। अभयकुमार ने मुक्त होकर उसका बदला लिया, उस रुचिकर वर्णन के लिए देखे—
(क) आवश्यक चूर्णि उत्तरार्ध पत्र १५९—१६३
(ख) त्रिषष्टि० १०।११।१२४-२६३

९ धर्मरत्न प्रकरण—अभयकुमार कथा, १-३०

१० योगशास्त्र, स्वोपज्ञवृत्ति, अ १, श्लोक ३०, पृ० ९१-९५ आचार्य हेमचन्द्र

अभयकुमार की दीक्षा

एक बार भगवान महावीर राजगृह पधारे। अभयकुमार वदन के लिए पहुँचा। प्रवचन पूण होने पर उसने भगवान के सामने जिज्ञासा प्रस्तुत की, भगवन् ! अन्तिम मोक्षगामी राजा कौन होगा ? समाधान करते हुए भगवान ने कहा—वीतभय का राजा उदायन जिसने मेरे पास सयम धर्म स्वीकार किया है, वही अन्तिम मोक्षगामी राजा ह।

अभयकुमार के मन मे विचार आया कि यदि मै राजा वनकर साधु वनूगा तो मोक्ष नही जा सकूगा, इसलिए मेरे लिए यही श्रेयस्कर ह कि मै कुमारावस्था मे ही दीक्षा लूँ।

अभयकुमार ने राजा श्रेणिक से दीक्षा लेने की वात कही। राजा श्रेणिक ने कहा—वत्स ! दीक्षा लेने की उम्र मेरी है, तुम तो राजा वनकर आनन्द करो। जव अभयकुमार ने वहुत आग्रह किया तव राजा श्रेणिक ने कहा—जिस दिन रुष्ट होकर मै तुम्हे कह दू 'दूर जा मुझे अपना मुँह न दिखाना।' उस दिन तुम साधु बन जाना।

कुछ समय के वाद पुन भगवान महावीर राजगृह पधारे। कडकडाती हुई सर्दी पड रही थी। सनसनाती हुई हवा चल रही थी। भगवान के दर्शन कर पुन लौटते समय राजा श्रेणिक व चेलना ने सरिता के किनारे एक मुनि को ध्यानमुद्रा मे देखा। महारानी चेलना राजप्रासाद मे आनन्द से सो रही थी। उसका हाथ नीद मे ओढने के वस्त्र से बाहर रह गया था, जिससे वह ठिठुर गया था। ज्यो ही उसकी नीद जगी, त्यो ही उसे स्मरण आया मुनि का। उसके मुह से सहसा शब्द निकल पडे अहा ! वे क्या करते होगे ? रानी के इन शब्दो ने राजा के मन मे अविश्वास उत्पन्न कर दिया। वह रात भर विचार करते हुए करवटे वदलता रहा। प्रात काल भगवान को वन्दन के लिए प्रस्थित हुआ, उसी समय जाते-जाते अभयकुमार को आदेश दिया—चेलना के महल को जला दो, यहा दुराचार पलता है।

अभयकुमार ने राजमहल मे से रानियो को तथा वहुमूल्य वस्तुओ को निकालकर उसमे आग लगा दी।

राजा श्रेणिक ने भगवान महावीर से प्रश्न किया। भगवान ने कहा—तुम्हारी चेलना आदि सभी रानिया निष्पाप हे, पूर्ण पतिव्रता ह तथा शीलवती है।

भगवान की वात सुनकर राजा श्रेणिक मन-ही-मन पश्चात्ताप करने लगा। कही कुछ हानि न हो जाय, इसलिए वह शीघ्र ही पुन वहाँ से राजभवन की ओर चला।

मार्ग मे अभयकुमार मिला, राजा ने पूछा—बताओ ! महल का क्या किया ?

अभयकुमार—आपके आदेशानुसार उसे जला दिया हे।

मेरा आदेश होने पर भी तुमने अपनी बुद्धि से काम नही लिया—राजा ने उदास होकर उधर देखा।

राजन् ! राजाज्ञा भग करने का परिणाम प्राणदण्ड होता है यह मैं अच्छी तरह् जानता था।

राजा—तथापि कुछ समय तो प्रतीक्षा करनी थी ?

अभय—आपको पूर्व ही गहराई से सोचकर आदेश देना चाहिए था। मैंने तो आपकी आज्ञा का पालन किया है ?

राजा को अपने अविवेक पर क्रोध आ रहा था। उसने क्रोध मे कहा—यहा से चला जा, और मुझे भूलकर के भी अपना मुँह न दिखाना।

अभयकुमार तो इन शब्दो की प्रतीक्षा मे ही था। वह राजा को नमस्कार कर चल पडा, और उसी समय भगवान के चरणो मे पहुचकर दीक्षा ग्रहण की।

राजा श्रेणिक ने महलों मे पहुँचकर देखा कि सभी रानिया और बहुमूल्य वस्तुएँ सुरक्षित है, तो अभयकुमार को कहे हुए वचनों पर बहुत ही दु ख हुआ। उसे यह समझते हुए किंचित् भी देर न लगी कि आज उसने अपने अविवेक से अपने चतुर व बुद्धिमान पुत्र एव मत्री को खो दिया है। वह इसी आशका मे कि कही अभयकुमार दीक्षा न ले ले, शीघ्र ही भगवान के पास पहुँचा, पर वहा पर अभयकुमार को नहीं किन्तु अभयमुनि को देखा। राजा के पहुँचने के पूर्व ही वह दीक्षित हो चुका था।[११] अन्तकृत्दशाग सूत्र मे अभय की माता नन्दा के भी दीक्षित होकर मोक्ष जाने का उल्लेख है।[१२]

दीक्षा लेने के पश्चात् अभयकुमार मुनि ने ग्यारह अगो का अध्ययन किया। 'गुणरत्न' तप किया। अत्यन्त कृशकाय हो गया।[१३] आयु पूर्ण कर विजय नामक अनुत्तर विमान मे देवरूप मे उत्पन्न हुआ। वहाँ से वह महाविदेह क्षेत्र मे उत्पन्न होकर मोक्ष जायेगा।[१४]

बौद्ध साहित्य मे

बौद्ध साहित्य मे अभयकुमार का नाम 'अभय राजकुमार' है। उसकी माता उज्जैनी की गणिका पद्मावती थी।[१५] जब श्रेणिक बिम्बिसार ने उसके अद्भुत रूप की बात सुनी तो वह उसके प्रति आकृष्ट हो गया। उसने राजपुरोहित से अपने मन की बात कही। उसने कुम्पिर नामक यक्ष की आराधना की और वह यक्ष श्रेणिक

---

११ भरतेश्वर बाहुबली वृत्ति, पत्र ३८-४०

१२ अन्तकृतदशाग

१३ अनुत्तरोपपातिक १।१०

१४ अनुत्तरोपपातिक १।१०

१५ गिल्गिट मास्क्रुप्ट के अभिमतानुसार वह वैशाली की गणिका आम्रपाली से उत्पन्न बिम्बिसार का पुत्र था (खड ३, २ पृ २२)। थेरगाथा—अट्ठकथा ६४ मे—श्रेणिक से उत्पन्न आम्बपाली के पुत्र का नाम मूल पाली साहित्य मे 'विमल कोडञ्ज' आता है, जो कि आगे चलकर बौद्ध भिक्षु बना।

बिम्बिसार को लेकर उज्जैनी गया। वहा पद्मावती वेश्या के साथ बिम्बिसार का ससर्ग हुआ। राजकुमार अभय अपनी माता के पास सात वर्ष तक रहा, उसके पश्चात् वह राजगृह अपने पिता के पास आ गया।[१६]

अभय राजकुमार होने के साथ ही रथविद्या-विशारद भी था।[१७] उसने एक बार सीमा-विवाद को अपनी बुद्धि से कुशलतापूर्वक निपटाया था, जिससे प्रसन्न होकर बिम्बिसार ने एक सुन्दर नर्तकी उसे उपहार मे दी।[१८]

एक समय तथागत बुद्ध राजगृह मे वेणुवन कलन्दक निवाप मे विहार कर रहे थे। तब अभय राजकुमार निगण्ठ नायपुत्त के पास गया। निगण्ठ नायपुत्त ने अभय-कुमार से कहा—'राजकुमार ! श्रमण गौतम के साथ शास्त्राथ कर, जिससे तेरा सुयश फैलेगा। जनता मे यह चर्चा होगी, अभय राजकुमार ने इतने महर्द्धिक श्रमण गौतम के साथ शास्त्रार्थ किया है।

अभयराजकुमार ने जिज्ञासा प्रस्तुत की—भते ! मैं शास्त्राथ का प्रारम्भ किस प्रकार करूँ?

निगण्ठ नातपुत्त ने कहा----तुम गौतम बुद्ध से पूछना, क्या तथागत ऐसा वचन बोल सकते ह जो दूसरों को अप्रिय हो ? यदि वे स्वीकृति दे तो पूछना फिर पृथग्जन (अज्ञ ससारी जीव) मे व तथागत मे क्या अन्तर है ? पृथग् जन भी इस प्रकार के वचन बोल सकता ह। यदि वे नकारात्मक उत्तर दे तो पूछना आपने देवदत्त के लिए दुर्गतिगामी, नैरयिक, कल्पभर नरकवासी और अचिकित्स आदि भविष्यवाणी क्यो की। वह आपके इस प्रकार की भविष्यवाणी से कुपित हुआ है। इस तरह दोनो ओर से प्रश्न पूछने पर श्रमण गौतम न उगल सकेगा, न निगल सकेगा। जैसे किसी पुरुष के गले मे लोहे की बशी फस जाय तो वह न उगल सकता है न निगल सकता है, यही स्थिति बुद्ध की होगी।

अभयराजकुमार निगण्ठ नातपुत्त को अभिवादन कर बुद्ध के पास पहुँचा, और बुद्ध को अभिवादन कर एक ओर बैठ गया। किन्तु वह शास्त्रार्थ का समय नही था अत अभय ने सोचा कल अपने घर पर ही शास्त्रार्थ करूगा। उसने चार आदमियो के साथ बुद्ध को दूसरे दिन का भोजन का निमत्रण दिया। बुद्ध ने मौन स्वीकृति दी, वह अपने राजप्रासाद मे चला गया।

दूसरे दिन पूर्वाह्न मे चीवर पहनकर पात्र आदि लेकर बुद्ध राजकुमार अभय के यहाँ गये। पूर्व बिछे आसन पर बैठ गये। बुद्ध को अपने हाथो से श्रेष्ठ भोजन समर्पित किया। जब बुद्ध पूण रूप से तृप्त हो गये तो अभयराजकुमार एक नीचा

---

१६ थेरीगाथा-अट्ठकथा—३१-३२

१७ मज्झिमनिकाय, अभयराजकुमार सुत्त

१८ धम्मपद-अट्ठकथा १३-४

आसन लेकर एक ओर बैठ गया और शास्त्रार्थ प्रारम्भ किया। भंते ! क्या तथागत ऐसा वचन बोल सकते है, जो दूसरो को अप्रिय हो ?

बुद्ध---राजकुमार यह एकान्तरूप से नही कहा जा सकता।

यह सुनते ही अभयराजकुमार बोल पडा--भन्ते ! निगण्ठ नष्ट हो गये।

साश्चर्य बुद्ध ने पूछा---क्या तू ऐसे बोल रहा है---भन्ते ! निगण्ठ नष्ट हो गये ?

अभयराजकुमार ने स्पष्टीकरण करते हुए कहा---हा भन्ते ! बात ऐसी ही है। मै निगण्ठ नातपुत्त के पास गया था। उन्होने ही मुझे आपसे यह दुबारा प्रश्न पूछने के लिए प्रेरित किया था। उनका यह मन्तव्य था कि इस प्रकार प्रश्न पूछने पर श्रमण गौतम न उगल सकेगा और न निगल सकेगा।

अभयराजकुमार का गोद मे एक नन्हा मुन्ना बैठा हुआ था, उसको लक्ष्य कर बुद्ध ने कहा---राजकुमार ! तुम्हारे या धाय के प्रमाद से यह शिशु कदाचित् मुह मे काठ या ढेला डाल ले तो उस समय तू इसका क्या करेगा ?

राजकुमार---भते ! मै उसे निकाल लूगा। यदि मैं उसे सीधे नही निकाल सका तो बाये हाथ से इसका सिर पकडकर, दाहिने हाथ से अगुली टेढी कर रक्त सहित भी निकाल लूगा, चूकि कुमार पर मेरी दया है।

बुद्ध---राजकुमार ! तथागत अतथ्य, अनर्थयुक्त, और अप्रिय वचन नही बोलते। तथ्यसहित होने पर भी यदि अनर्थ करने वाला वचन हो तो उसे भी नही बोलते। जो वचन तथ्ययुक्त और सार्थक होता है, फिर चाहे वह प्रिय हो, या अप्रिय हो, कालज्ञ तथागत उसे बोलते है, चूकि उनकी प्राणियो पर दया है।

अभयराजकुमार---भन्ते ! क्षत्रिय-पडित, ब्राह्मण-पडित, गृहपति-पडित, श्रमण-पण्डित, प्रश्न तैयार कर तथागत के पास आते है, और प्रश्न पूछते है। क्या आप पहले से ही मन मे यह विचार कर रखते है, इस प्रकार पूछेगे तो इस प्रकार उत्तर दूंगा।

बुद्ध---मै तुम्हारे से ही प्रश्न करता हू। क्या तू रथ के अग-प्रत्यग मे चतुर है?

अभय---हाँ, भगवन !

बुद्ध---रथ की ओर सकेत कर तुम्हारे से कोई प्रश्न करे कि यह रथ का कौन-सा अग-प्रत्यग है ? क्या तुम पहले से ही सोचे रहते हो कि ऐसा प्रश्न करने पर ऐसा उत्तर दूंगा, या समय पर ही तुम्हे भासित होता है ?

भन्ते ! मै रथ का विशेषज्ञ हूँ, मुझे उसी क्षण ज्ञात हो जाता है।

राजकुमार ! ठीक इसी तरह तथागत को भी उसी क्षण उत्तर भासित हो जाता है। चूकि उनके मन का विषय अच्छी तरह सधा हुआ है।

अभयराजकुमार ने निवेदन किया---आश्चय भन्ते ! अद्भुत भन्ते ! आपने अनेक पर्याय से धर्म को प्रकाशित किया है। मै भगवान् की शरण मे जाता हूँ, धर्म व भिक्षु-सघ की भी। आज से मुझे अञ्जलिबद्ध शरणागत स्वीकार करे।[१९]

---

१९ मज्झिम निकाय, अभयकुमार सुत्त प्रकरण ७६

संयुक्तनिकाय में भी अभयकुमार का बुद्ध से साक्षात् होने का प्रसग है। उसमे वह तथागत बुद्ध से पूरण काश्यप की मान्यता से सम्बन्धित एक प्रश्न करता है।[२०]

धम्मपद अट्ठकथा के अनुसार अभयकुमार को श्रोतापत्ति-फल[२१] उस समय प्राप्त होता है जब वह नर्तकी की मृत्यु से खिन्न होकर बुद्ध के पास गया और बुद्ध ने उसे धर्मोपदेश किया।[२२] थेरगाथा-अट्ठकथा के अनुसार अभय को श्रोतापत्ति-फल उस समय प्राप्त हुआ जब तथागत बुद्ध ने 'तालच्छिग्गुलुपमसुत्त' का उपदेश दिया था।[२३]

श्रेणिक बिम्बिसार की मृत्यु से खिन्न होकर अभयकुमार ने बुद्ध के पास प्रव्रज्या ग्रहण की, और अर्हत् पद प्राप्त किया।[२४] भिक्षु बनने के पश्चात् उसने अपनी माता पद्मावती गणिका को भी उद्बोधन दिया, और उसने भिक्षुणी बनकर अर्हत् पद प्राप्त किया।[२५]

समीक्षा

अभयकुमार के सम्बन्ध मे जैन और बौद्ध के प्राचीन साक्ष्यो के आधार से ऐसा सहज ज्ञात होता है कि अभयकुमार और अभयराजकुमार ये दोनो अलग-अलग व्यक्ति रहे हो। चूंकि जैन दृष्टि से उसकी माता वणिक् कन्या है, वह प्रधानमन्त्री है और भगवान महावीर के पास दीक्षा लेता है। जबकि बौद्ध दृष्टि से वह एक गणिका का पुत्र है, एक कुशल रथिक है, निगण्ठ धर्म को छोडकर बौद्ध धर्म मे प्रवेश करता है और अन्त मे बुद्ध के पास भिक्षु बनता है। यदि अभय एक ही व्यक्ति होता तो महावीर और बुद्ध इन दोनो के पास वह कैसे दीक्षा ले सकता था। यह सभव लगता है कि राजा श्रेणिक के अनेक पुत्र थे, उसमे एक का नाम अभय रहा हो और दूसरे का नाम अभयराजकुमार रहा हो।[२६]

जैन दीक्षा का उल्लेख अनुत्तरोपपातिक है।[२७] जिसकी रचना पण्डित दलसुख मालवणिया आदि विद्वानो ने विक्रम पूर्व दूसरी शताब्दी माना है।[२८] बौद्ध दीक्षा का उल्लेख थेराअपदान[२९] व अट्ठकथा मे है। थेराअपदान की रचना पिटक साहित्य मे सबसे बाद की मानी जाती है और अट्ठकथा तो उससे भी बाद की रचना है।[३०]

---

२० सयुक्त निकाय, अभय सुत्त ४४।६।६

२१ स्रोतापत्ति—धारा मे आ जाना। निर्वाण के मार्ग मे आरूढ हो जाना, जहाँ से गिरने की कोई सभावना न हो। योग-साधना करने वाला भिक्षु जब सत्काय-दृष्टि, विचिकित्सा और शीलव्रत परामर्शक, इन तीन बधनो को तोड देता है, तब वह स्रोतापन्न कहा जाता है। स्रोतापन्न व्यक्ति अधिक से-अधिक सात बार जन्म लेकर निर्वाण प्राप्त कर लेता है।

२२ धम्मपद—अट्ठकथा १३-४

२३ थेरगाथा—अट्ठकथा १-५८

२४ (क) थेरगाथा २६

(ख) थेरगाथा—अट्ठकथा, खण्ड १,पृ० ८३-४

२५ थेरगाथा—अट्ठकथा-३१-३२

महाराजा चेटक

राजा चेटक जैनधर्म का परम उपासक था। आवश्यक चूर्णि,[1] त्रिषष्टिशलाका-पुरुष चरित्र,[2] उपदेशमाला,[3] उत्तरपुराण[4] आदि ग्रन्थों में उसके श्रमणोपासक होने का स्पष्ट उल्लेख है।

हरिषेणाचार्य रचित बृहत् कथाकोष में राजा चेटक के पिता का नाम केक और माता का नाम यशोमती दिया है।[5] आचार्य हेमचन्द्र ने चेटक नाम के सम्बन्ध में लिखा है कि शत्रु राजा को चेरी—सेवक बनाने से उनका नाम चेटक हुआ।[6]

आचार्य हेमचन्द्र ने चेटक की पत्नी का नाम पृथा बताया है।[7] बृहत् कथा-कोष[8] में तथा सेक्रेड बुक्स आव द ईस्ट[9] में सुभद्रा नाम आया है।

भगवान महावीर की माता त्रिशाला राजा चेटक की सगी बहिन थी।[10] उनकी कन्याएं भी उस युग के प्रसिद्ध राजाओं को ब्याही गई थीं। प्रभावती वीतभय के राजा उदायन को, पद्मावती अंगदेश के राजा दधिवाहन को, मृगावती वत्सदेश के राजा शतानीक को, शिवा उज्जैनी के राजा चण्डप्रद्योत को, ज्येष्ठा महावीर के भ्राता

---

२६ आगम और त्रिपिटक एक अनुशीलन, पृ० ३५९

२७ अनुत्तरोपपातिक १।१०

२८ आगमयुग का जैन-दर्शन, पृ० २८

२९ थेरापदान, भद्दियवग्गो, अभयत्थेरअपदान।

३० खुद्दकनिकाय खण्ड ७, नालन्दा, भिक्षु जगदीशकाश्यप, देखिए—आगम और त्रिपिटक एक अनुशीलन।

१ सो चेडवो सावओ। —आव० चूर्णि उत्तरार्द्ध, पत्र १६४

२ चेटकस्तु श्रावको। —त्रिषष्टि० १०।६।१८८

३ वेसालीए पुरीए सिरिपास जिणेण सासण सणाहो हेहयकुल संभूओ चेडग नामा निवो असि। —उपदेशमाला सटीक ९२, पत्र २३८

४ चेटकाख्यातोऽस्ति विख्यातो विनीत परमार्हत। —उत्तरपुराण पृ० ४८३

५ अथ वज्रविषये देशे विशाली नगरी नृप।
अस्या केकोऽस्य भार्याऽऽसीत् यशोमतिरिनप्रभा। —बृहत्कथाकोश १६५ पृ० ८३

६ चेटीकृतारि भूपालस्तत्र चेटक इत्यभूत्। —त्रिषष्टि० १०।६।१८५

७ पृथाराज्ञीभवस्तस्य बभूव सप्त कन्यका। —त्रिषष्टि० १०।६।१८६

८ (क) भद्राभावा सुभद्राऽस्य बभूव वनितोत्तमा॥ —बृहद्० १८३
(ख) सुभद्राख्या महादेवी भद्रभावा प्रियवदा। —वही पृ० २३३

९ सेक्रेड बुक्स आव द ईस्ट, वाल्यूम २२, पृ० XV

१० भगवतो माया चेडगस्स भगिणी। —आवश्यक चूर्णि, भाग १, पत्र २४५

नन्दीवर्धन को[११] और चेलणा मगध के राजा बिम्बिसार श्रेणिक को ब्याही थी। एक कन्या सुज्येष्ठा भगवान महावीर के पास प्रव्रजित हुई थी।

भगवान महावीर के समय वज्जियो का एक शक्तिशाली गणतन्त्र था। उसकी राजधानी वैशाली थी, इसलिए वह गणतन्त्र वैशाली गणतन्त्र के नाम से प्रसिद्ध था। उस समय छोटे और बडे अनेक गणतन्त्र राज्य थे।[१२] वे सघराज्य या 'सघ' के नाम से भी विश्रुत थे। जातक अट्ठकथा[१३] के उल्लेखानुसार वैशाली-गणतन्त्र के ७७०७ सदस्य थे। उन सभी को राजा कहा जाता था। भगवान महावीर के पिता सिद्धार्थ भी उनमे से एक राजा थे। आचार्य पाणिनी[१४] के मन्तव्यानुसार इन सभी राजाओं का अभिषेक होता था। जितना उनका क्षेत्र था, उसके वे अधिपति होते थे। अभिषेक होने के बाद वे 'सज्ञाराजन्य' कहलाते थे। ललित विस्तर[१५] मे स्पष्ट रूप से उल्लेख है कि लिच्छवी परस्पर एक दूसरे को छोटा या बडा नही मानते थे किन्तु सभी यही कहते थे कि हम राजा है हम राजा है। हरएक राजा अपने-अपने उपराजा, सेनापति, भाण्डारिक होते थे। उन सभी के अलग-अलग ठहरने के मकान वैशाली मे थे। ७७०७ राजाओं की शासन-सभा 'सघ-सभा' के नाम से प्रसिद्ध थी। और इनका गणतन्त्र वज्जी-सघ या लिच्छवी-सघ कहलाता था।[१६]

प्रस्तुत गणतन्त्र मे नौ-नौ लिच्छवियो की दो उपसमितियाँ थी। एक का कार्य न्यायविभाग को सभालना था तो दूसरे का कार्य परराष्ट्र-कार्य। दूसरी समिति ने ही मल्लकी, लिच्छवी और काशी-कोशल के गणराजाओ का सगठन बनाया था। जिस सगठन के अध्यक्ष महाराजा चेटक थे।

कितने ही लेखको ने बोद्ध साहित्य के विनयपिटक,[१७] अगुत्तरनिकाय,[१८]

---

११ (क) सत्त धूताओ—पभावती, पद्मावती, मिगावती सिवा, जेट्ठा, सुजेट्ठा, चेल्लाणात्ति पभावती वीतिभए उदायणस्स दिण्णा, पउमावती चपाए दहिवाहणस्स, मिगावती कोसबीए सताणियस्स, सिवा उज्जेणीए पज्जोतस्स, जेट्ठा कुण्डग्गामे वद्धमाण सामिणो जेट्ठस्स नन्दिवद्धणस्स दिण्णा।

—आवश्यक चूर्णि भाग २, प० १६४

(ख) आवश्यक हारिभद्रीय ६७६ (ग) त्रिषष्टि० १०।६।१८७

१२ हिन्दु सभ्यता पृ० ५६३

१३ जातक अट्ठकथा भाग १ पृ० ३३६ भारतीय ज्ञानपीठ काशी

१४ पाणिनी व्याकरण ६।२।३४

१५ ललित-विस्तर ३।२३

१६ आगम और त्रिपिटक एक अनुशीलन पृ० ३७१

१७ विनयपिटक महावग्ग, भैषज्य खन्धक ६।४।८

१८ (क) अगुत्तरनिकाय

(ख) The Book of Gradal, Val III, P 38, Vol IV p 19

तथा थेरी गाथा[१९] में आए हुए सिंह सेनापति और जैन साहित्य में आये हुए राजा चेटक को एक ही व्यक्ति माना है।[२०] पर यह एक भ्रान्ति है। चूंकि बौद्ध साहित्य में सिंह को सर्वत्र सेनापति ही कहा है,[२१] जबकि चेटक वैशाली गणराज्य के राजा थे।[२२] तत्कालीन व्यवस्था-पद्धति का अवलोकन करने से सहज ही ज्ञात होता है कि राजा और सेनापति का स्थान सर्वथा अलग-अलग रहा है। राजा सेनापति नहीं था। 'भारतीय इतिहास एक दृष्टि' ग्रन्थ में डा० ज्योतिप्रसाद का मन्तव्य है कि 'महाराजा चेटक के दस पुत्र थे, जिनमें से ज्येष्ठ पुत्र सिंह या सिंहभद्र वज्जिगण के प्रसिद्ध सेनापति थे।[२३]

उपासकदशाङ्ग के अनुवाद में डा० हर्नले ने वाणिज्यग्राम के राजा जितशत्रु और चेटक को एक ही व्यक्ति बताया है, परन्तु उनका यह कथन यथार्थ नहीं लगता, चूँकि हम पहले ही बता चुके हैं कि वैशाली-गणतन्त्र में ७७०७ अलग राजा थे, तब उन दोनों को एक मानने का कोई कारण नहीं। डा० ओटोस्टीन ने भी इस सम्बन्ध में अनेक दृष्टियों से प्रकाश डाला है।[२४]

चेटक भगवान पार्श्वनाथ की परम्परा का श्रावक था।[२५] उसका महावीर के वंश के साथ दो प्रकार का सम्बन्ध था। एक महावीर की माता त्रिशला उसकी बहन होती थी; और दूसरा महावीर के ज्येष्ठ भ्राता नन्दिवर्धन की पत्नी, जिसका नाम ज्येष्ठा था, इसकी पुत्री थी। इस प्रकार महावीर के साथ उसका कौटुम्बिक सम्बन्ध था।

श्रावक होने के नाते से उसने यह प्रतिज्ञा भी कर रखी थी कि युद्ध में काम पड़ने पर दिन में एक बाण से अधिक बाण न चलाएगा।[२६] शरणागत की रक्षा के लिए उसने राजा कूणिक के साथ युद्ध किया था, उसके अमोघ बाण से राजा कूणिक

---

१९ थेरी गाथा M ७७-८१

२० नरकेसरी, ले० जयभिक्खु, पृ० २३४ टिप्पणी

२१ विनयपिटक महावग्ग ६।४।८

२२ (क) वेसालीए नयरीए चेडगस्स रन्ना—निरयावलिका, पत्र १६२

(ख) एतो य वेसालीए नगरीए चेडओ राया। आवश्यक चूर्णि, भाग २, पत्र १६४

२३ भारतीय इतिहास एक दृष्टि, पृ० ५६

24 Jinist Studies Ed by Muni Jaina Vijai aylipuri Jain sahitya Sansicod take studes Ahemdabad 1948

२५ उपदेशमाला सटीक, पत्र ३३८

२६ (क) चेटक प्रतिपन्न प्रतिज्ञतया दिनमध्ये एकमेव शर मुच्यते

—भगवती ७।८, पत्र १११ (दानशेखर वृत्ति)

(ख) प्रतिपन्न व्रतत्वेन दिन मध्ये एकमेव शर मुंचति। भगवती अन्य टीका, पत्र ५७९

नन्दीवर्धन को[११] और चेलणा मगध के राजा बिम्बिसार श्रेणिक को ब्याही थी। एक कन्या सुज्येष्ठा भगवान महावीर के पास प्रव्रजित हुई थी।

भगवान महावीर के समय वज्जियों का एक शक्तिशाली गणतन्त्र था। उसकी राजधानी वैशाली थी, इसलिए वह गणतन्त्र वैशाली गणतन्त्र के नाम से प्रसिद्ध था। उस समय छोटे और बडे अनेक गणतन्त्र राज्य थे।[१२] वे सघराज्य या 'सघ' के नाम से भी विश्रुत थे। जातक अट्ठकथा[१३] के उल्लेखानुसार वैशाली-गणतन्त्र के ७७०७ सदस्य थे। उन सभी को राजा कहा जाता था। भगवान महावीर के पिता सिद्धार्थ भी उनमें से एक राजा थे। आचार्य पाणिनी[१४] के मन्तव्यानुसार इन सभी राजाओं का अभिषेक होता था। जितना उनका क्षेत्र था, उसके वे अधिपति होते थे। अभिषेक होने के बाद वे 'सज्ञाराजन्य' कहलाते थे। ललित विस्तर[१५] मे स्पष्ट रूप से उल्लेख है कि लिच्छवी परस्पर एक दूसरे को छोटा या बडा नहीं मानते थे किन्तु सभी यही कहते थे कि हम राजा है हम राजा है। हरएक राजा अपने-अपने उपराजा, सेनापति, भाण्डारिक होते थे। उन सभी के अलग-अलग ठहरने के मकान वैशाली मे थे। ७७०७ राजाओं की शासन-सभा 'सघ-सभा' के नाम से प्रसिद्ध थी। और इनका गणतन्त्र वज्जी-सघ या लिच्छवी-सघ कहलाता था।[१६]

प्रस्तुत गणतन्त्र मे नौ-नौ लिच्छवियो की दो उपसमितियाँ थी। एक का कार्य न्यायविभाग को सभालना था तो दूसरे का कार्य परराष्ट्र-कार्य। दूसरी समिति ने ही मल्लकी, लिच्छवी और काशी-कोशल के गणराजाओं का सगठन बनाया था। जिस सगठन के अध्यक्ष महाराजा चेटक थे।

कितने ही लेखकों ने बौद्ध साहित्य के विनयपिटक,[१७] अगुत्तरनिकाय,[१८]

---

११ (क) सत्त धूताओ—पभावती, पउमावती, मिगावती सिवा, जेट्ठा, सुजेट्ठा, चेल्लणात्ति पभावती वीतिभए उदायणस्स दिण्णा, पउमावती चपाए दहिवाहणस्स, मिगावती कोसबीए सताणियस्स, सिवा उज्जेणीए पज्जोतस्स, जेट्ठा कुण्डग्गामे वद्धमाण सामिणो जेट्ठस्स नन्दिवद्धणस्स दिण्णा।

—आवश्यक चूर्णि भाग २, पृ० १६४

(ख) आवश्यक हारिभद्रीय ६७६ (ग) त्रिषष्टि० १०।६।१८७

१२ हिन्दु सभ्यता पृ० ५६३

१३ जातक अट्ठकथा भाग १ पृ० ३३६ भारतीय ज्ञानपीठ काशी

१४ पाणिनी व्याकरण ६।२।३४

१५ ललित-विस्तर ३।२३

१६ आगम और त्रिपिटक एक अनुशीलन पृ० ३७१

१७ विनयपिटक महावग्ग, भैषज्य खन्धक ६।४।८

१८ (क) अगुत्तरनिकाय

(ख) The Book of Gradal, Val III, P 38, Vol IV p 19

तथा थेरी गाथा[१९] मे आए हुए सिंह सेनापति और जैन साहित्य मे आये हुए राजा चेटक को एक ही व्यक्ति माना है।[२०] पर यह एक भ्रान्ति है। चूंकि बौद्ध साहित्य मे सिंह को सर्वत्र सेनापति ही कहा है,[२१] जबकि चेटक वैशाली गणराज्य के राजा थे।[२२] तत्कालीन व्यवस्था-पद्धति का अवलोकन करने से सहज ही ज्ञात होता है कि राजा और सेनापति का स्थान सर्वथा अलग-अलग रहा है। राजा सेनापति नहीं था। 'भारतीय इतिहास एक दृष्टि' ग्रन्थ मे डा० ज्योतिप्रसाद का मन्तव्य है कि 'महाराजा चेटक के दस पुत्र थे, जिनमे से ज्येष्ठ पुत्र सिंह या सिंहभद्र वज्जिगण के प्रसिद्ध सेनापति थे।[२३]

उपासकदशाङ्ग के अनुवाद मे डॉ० हूर्नले ने वाणिज्यग्राम के राजा जितशत्रु और चेटक को एक ही व्यक्ति बताया है, परन्तु उनका यह कथन यथार्थ नहीं लगता, चूंकि हम पहले ही बता चुके है कि वैशाली-गणतन्त्र मे ७७०७ अलग राजा थे, तब उन दोनो को एक मानने का कोई कारण नहीं। डॉ० ओटोस्टीन ने भी इस सम्बन्ध मे अनेक दृष्टियो से प्रकाश डाला है।[२४]

चेटक भगवान पार्श्वनाथ की परम्परा का श्रावक था।[२५] उसका महावीर के वंश के साथ दो प्रकार का सम्बन्ध था। एक महावीर की माता त्रिशला उसकी बहन होती थी, और दूसरा महावीर के ज्येष्ठ भ्राता नन्दिवर्धन की पत्नी, जिसका नाम ज्येष्ठा था, इसकी पुत्री थी। इस प्रकार महावीर के साथ उसका कौटुम्बिक सम्बन्ध था।

श्रावक होने के नाते से उसने यह प्रतिज्ञा भी कर रखी थी कि युद्ध मे काम पडने पर दिन मे एक बाण से अधिक बाण न चलाएगा।[२६] शरणागत की रक्षा के लिए उसने राजा कूणिक के साथ युद्ध किया था, उसके अमोघ बाण से राजा कूणिक

---

१९ थेरी गाथा M ७७-८१

२० नरकेसरी, ले० जयभिक्खु, पृ० २३४ टिप्पणी

२१ विनयपिटक महावग्ग ६।४।८

२२ (क) वेसालीए नयरीए चेडगस्स रन्नो—निरयावलिका, पत्र १६२
(ख) एतो य वेसालीए नगरीए चेडओ राया। आवश्यक चूर्णि, भाग २, पत्र १६४

२३ भारतीय इतिहास एक दृष्टि, पृ० ५६

24 Jinist Studies Ed by Muni Jaina Vijai aylipuri Jain sahitya Sansicod take studes Ahemdabad 1948

२५ उपदेशमाला सटीक, पत्र ३३८

२६ (क) चेटक प्रतिपन्न प्रतिज्ञतया दिनमध्ये एकमेव शर मुच्यते
—भगवती ७।८, पत्र १११ (दानशेखर वृत्ति)
(ख) प्रतिपन्न व्रतत्वेन दिन मध्ये एकमेव शर मुचति। भगवती अन्य टीका, पत्र ५७६

उसको अजेय खड्ग और नाम प्राप्त हुआ था। इस कारण वह 'महाचण्ड' के नाम से भी प्रसिद्ध था।[२]

जब उसने जन्म लिया था तब ससार मे दीपक के समान प्रकाश हो गया था। इसलिए उसका नाम प्रद्योत रखा गया।[३] उदेनवत्थु मे लिखा है कि वह सूर्य की किरणो के समान शक्तिशाली था।[४]

तिब्बती बौद्ध अनुश्रुति के अनुसार जिस दिन प्रद्योत का जन्म हुआ, उसी दिन बुद्ध का भी जन्म हुआ था। और जिस दिन प्रद्योत राजसिंहासन पर बैठा, उसी दिन गौतम बुद्ध ने बुद्धत्व प्राप्त किया।[५]

आवश्यक चूर्णि,[६] आवश्यक हारिभद्रीयवृत्ति[७] और त्रिषष्टि शलाकापुरुष चरित्र[८] मे आता है कि चण्डप्रद्योत के पास (१) लोहजघ नामक लेखवाहक, (२) अग्निभीरु नामक रथ, (३) अनलगिरि नामक हस्ति, (४) और शिवा नामक देवी, ये चार रत्न थे।

उदेनवत्थु मे प्रद्योत के एक द्रुतगामी रथ का वर्णन है। भद्रावती नाम की हथिनी, कक्का (पाली मे काका) नामक दास, दो घोडिया—चेलकठी, और मजुकेशी, एव नालागिरी नामक हाथी ये पाचो मिलकर उस रथ को खीचते थे।[९]

धम्मपद के टीकाकार ने लिखा है कि प्रद्योत किसी भी सिद्धान्त को मानने वाला नही था,[१०] उसका कर्मफल पर विश्वास नही था। आचार्य हेमचन्द्र ने लिखा है कि वह स्त्री-लोलुपी और प्रचण्ड था।[११] पुराणकार ने उसके लिए नयवर्जित शब्द का प्रयोग किया है।[१२]

---

२ (क) राकहिल लिखित लाइफ आव बुद्ध, पृष्ठ ३२
(ख) उज्जयिनी इन ऐंशेन्ट इडिया, पृ १३, विमलचरण
३ लाइफ आव बुद्ध, पृ १७, राकहिल
४ उज्जयिनी इन ऐशेट इण्डिया, पृ १३
५ लाइफ आव बुद्ध, पृ ३२ की टिप्पणी १
६ आव चूर्णि भाग २, पत्र १६०
७ आवश्यक हारि० वृत्ति ६७३-१
८ त्रिषष्टि० १०।११।१७३
९ (क) धम्मपद टीका, उज्जयिनी दर्शन पृ १२
(ख) उज्जयिनी इन ऐंशेट इण्डिया पृ १५
१० (क) उज्जैनी इन ऐशेट इडिया, पृ १३, विमलचरण ला
(ख) मध्यभारत का इतिहास, प्र भाग पृ १७५-१७६
११ त्रिषष्टि० १०।८।१५० व १६८
१२ कथासरित्सागर

जैन कथासाहित्य मे स्पष्ट वणन ह कि चण्डप्रद्योत ने स्वर्णगुलिका दासी के लिए सिन्धु-सौवीर के राजा उदायन के साथ,[१३] महारानी मृगावती के लिए वत्स नरेश शतानीक के साथ,[१४] 'द्विमुख-अवभासक' मुकुट के लिए पाचाल नरेश राजा दुम्मह के साथ,[१५] राजा श्रेणिक के वढते हुए प्रभाव को न सह सकने के कारण मगधराज श्रेणिक[१६] के साथ उसने युद्ध किया। ये सारे घटना प्रसग वहुत ही आकर्षक ह। विस्तारभय से हमने उनको यहाँ उट्ट कित नही किया है, जिज्ञासुओ को मूल ग्रन्थ देखने चाहिए।

वत्स देश के राजा शतानीक और चण्डप्रद्योत का युद्ध हुआ, वह जैन[१७] और वौद्ध[१८] कथानको मे प्राय समान रूप से मिलता ह। प्रस्तुत युद्ध का कथासरित्सागर आदि मे भी उल्लेख हुआ है। स्वप्नवासवदत्ता नाटक मे महाकवि भास ने उसी कथा-प्रसग को मूल आधार बनाया ह।

मज्झिमनिकाय के अनुसार अजातशत्रु ने चण्डप्रद्योत के भय से भयभीत वनकर राजगृह मे किलावन्दी की थी।[१९] वौद्ध साहित्य मे उसके दूसरे युद्धो का उल्लेख नही है।

जैन साहित्य मे चण्डप्रद्योत के आठ रानियो का उल्लेख आया ह। जो कौशाम्वी की रानी मृगावती के साथ भगवान महावीर के पास दीक्षा लेती है।[२०] उसमे एक रानी का नाम शिवादेवी है, जो चेटक की पुत्री थी।[२१] एक का नाम अगारवती था।[२२] जो सुसुमारपुर[२३] के राजा धुधमार की पुत्री थी। इस अगारवती को प्राप्त करने के लिए प्रद्योत ने सुसुमारपुर पर घेरा डाला था। वह अगारवती पक्की

---

१३ (क) त्रिषष्टि० १०।११-४४५-५६७
(ख) उत्तराध्ययन अ १८, नेमिचन्द्र कृत वृत्ति
(ग) भरतेश्वर-वाहुवली वृत्ति, भाग १, पत्र १७७-१

१४ त्रिषष्टि० १०।११।१८४-२६५

१५ त्रिषष्टि० १०।११।१७२-२६३

१६ उत्तराध्ययन सूत्र, अ ६, नेमिचन्द्रकृत वृत्ति

१७ त्रिषष्टि० १०।११।१८४-२६५

१८ धम्मपद अट्ठकथा, २।१

१९ मज्झिमनिकाय ३।१।८, गोपक मोग्गलान सुत्त

२० आवश्यक चूर्णि

२१ आवश्यक चूर्णि उत्तराद्ध, पत्र १६४

२२ आवश्यक चूर्णि भाग १, पत्र ६१

२३ मुनि श्री इन्द्राविजय जी का मन्तव्य हे कि सुसुमारपुर का वर्तमान नाम 'चुनार' है, जो जिला मिरजापुर मे है।

श्राविका थी।[२४] कथासरित्सागर मे अगारवती को अगारक नामक दैत्य की पुत्री कहा है।[२५] उसके एक रानी का नाम मदनमजरी था, जो दुम्मुह प्रत्येकबुद्ध की लडकी थी।[२६]

आवश्यकनिर्युक्ति दीपिका मे प्रद्योत के गोपालक और पालक इन दो पुत्रो का उल्लेख है।[२७] स्वप्नवासवदत्ता मे भी इन दो पुत्रो के साथ एक पुत्री का भी उल्लेख हुआ है उसका नाम वासुदत्ता दिया है,[२८] आवश्यकचूर्णि मे वासवदत्ता नाम आया है। उसे प्रद्योत की पत्नी अगारवती की पुत्री कहा है।[२९] बौद्ध साहित्य मे गोपालक की मा को वणिक्पुत्री वताया है, उसके भव्य रूप पर मुग्ध होकर प्रद्योत ने उसके साथ विवाह किया था।[३०] हर्षचरित्र मे उसके एक पुत्र का नाम कुमारसेन दिया है।[३१]

कुछ ग्रथो मे खडकम्म को प्रद्योत का एक मत्री बताया है[३२] तो कुछ ग्रन्थो मे मत्री का नाम भरत दिया है।[३३]

जैन साहित्य के पर्यवेक्षण से ज्ञात होता है कि चण्डप्रद्योत प्रारम्भ मे जैन धर्मावलम्बी नही था। राजा उदायन उसे बन्दी बनाकर ले जाते है। मार्ग मे पर्युषण पर्व आ जाता है। राजा उदायन के उस दिन पौषधोपवास था, अत उनका भोजन करने वाला रसोइया चण्डप्रद्योत से पूछता है कि क्या आप भोजन करेगे ? तब चण्डप्रद्योत को बहुत आश्चर्य हुआ, रसोइए ने पर्युषण महापर्व की बात कही, और कहा इसी कारण महाराज उदायन के पौषधोपवास है। तब चण्डप्रद्योत ने कहा कि मेरे माता-पिता भी श्रावक थे, इसलिए मेरे भी उपवास है।[३४] जब उदायन ने उसे

---

२४ आवश्यक चूर्णि भाग २, पत्र १६६

२५ मध्यभारत का इतिहास प्रथम खण्ड, पृ १७५
लें० हरिहर निवास द्विवेदी

२६ उत्तराध्ययन ६ अ नेमिचन्द्र वृत्ति १३५-२-१३६२

२७ आवश्यक निर्युक्ति दीपिका, भाग २, पत्र ११०-१ गा १२८२

२८ स्वप्नवासवदत्ता, महाकवि भास

२९ आवश्यक चूर्णि उत्तरार्द्ध, पत्र १६१

३० (क) अगुत्तर निकाय अट्ठकथा १।१।१०
(ख) उज्जयिनी इन ऐंशेंट इण्डिया, पृ० १४
(ग) मध्यभारत का इतिहास भाग १, पृ० १७५, द्विवेदी लिखित

३१ तीर्थंकर महावीर भाग २, पृ० ५८७

३२ लाइफ इन ऐंशेंट इण्डिया, पृ० ३६४

३३ उज्जयिनी-दर्शन पृ० १२, मध्यभारत सरकार

३४ (क) तन्ममाप्युपवासोऽद्य पितरौ श्रावकौ हि मे।—उत्तरा० भावविजय की टीका, उत्तरा० १ श्लो १८२ पत्र ३८६-२
(ख) श्रावको पितरो मम'।—त्रिषष्टि० १०।११।५९७

मुक्त किया तब वह जैनधर्मावलम्बी वना। महावीर के समवसरण मे शतानीक राजा की पत्नी मृगावती तथा चण्डप्रद्योत की शिवा आदि आठ पत्नियाँ दीक्षित हुई, उस समय चण्डप्रद्योत भी वहाँ पर उपस्थित था।[३५] भगवान महावीर से उसका प्रथम साक्षात्कार वही हुआ था और वही पर उसने विधिवत् जैनधर्म स्वीकार किया था।[३६]

अगुत्तरनिकाय अट्ठकथा के अनुसार चण्डप्रद्योत को धर्म का उपदेश भिक्षु महाकात्यायन के द्वारा मिला था। जो साधु वनने के पूर्व चण्डप्रद्योत के राज-पुरोहित थे। चण्डप्रद्योत के आग्रह से वे तथागत बुद्ध को बुलाने गये थे किन्तु बुद्ध के उपदेश को सुनकर साधु बन गये। बुद्ध उज्जैनी नहीं आये किन्तु उन्होंने महा-कात्यायन भिक्षु को उज्जैनी भेजा। चण्डप्रद्योत उसके उपदेश से बुद्ध का अनुयायी बना।[३७] किन्तु उसका बुद्ध के साथ कभी साक्षात्कार हुआ हो ऐसा घटना-प्रसग बौद्ध साहित्य मे नहीं है।

यह स्पष्ट है कि मूल आगम और त्रिपिटक मे चण्डप्रद्योत के धर्मानुयायी होने का उल्लेख नही है। बाद के कथा-साहित्य मे ही उसका सारा वर्णन मिलता है। वह भगवान महावीर या तथागत बुद्ध इन दोनो मे से किसका अनुयायी था? यह भी सभव है कि वह प्रारम्भ मे एक धर्म का अनुयायी रहा हो, बाद मे दूसरे धर्म का अनुयायी बना हो। यह भी सभव है कि उसका जैन और बौद्ध दोनो ही परम्पराओ के साथ सम्बन्ध रहा हो, जिससे बाद के कथाकारो ने अपना-अपना अनुयायी सिद्ध करने का प्रयास किया हो।

हमारी दृष्टि से उसकी आठो रानिया जैनधर्म मे दीक्षित हुई, और वे विवाह के पूर्व भी जैन थी, अत चण्डप्रद्योत का बाद मे जैन होना अधिक तर्कसगत लगता है।

□

---

३५ भरतेश्वर बाहुबली वृत्ति, द्वितीय विभाग, प ३२३

३६ ततश्चण्डप्रद्योतो धर्ममङ्गीकृत्य स्वपुरम् ययौ।

—भरतेश्वर बाहुबली वृत्ति २।३२३

३७ (क) अगुत्तर निकाय अट्ठकथा १।१।१०

(ख) थेरगाथा अट्ठकथा, भाग १ पृ० ४८३

परिशिष्ट · ५

भौगोलिक-परिचय

श्रमण भगवान महावीर पक्के घुमक्कड थे। भारत के विविध अचलो मे परिभ्रमण कर जन-जन के मन मे त्याग-निष्ठा और सयम-प्रतिष्ठा पैदा की। आगम निर्युक्ति, चूर्णि, भाष्य, व प्राचीन चरित्र ग्रन्थो मे भगवान महावीर के विहार के कुछ सकेत उपलब्ध होते है। उन्ही के आधार से प्रस्तुत ग्रन्थ मे उनके विहार और वर्षावासो के सम्बन्ध मे प्रकाश डाला गया है। यह सत्य है कि भगवान महावीर के समय के जिन नगरो, गाँवो और देशो के नाम उपलब्ध होते है, आज उनके नामो मे बहुत परिवतन हो चुका है। जिन नगरो मे उस समय वैभव अठखेलियाँ कर रहा था, आज वहाँ पर दरिद्रता का साम्राज्य है। उस समय जहाँ नव्य-भव्य प्रासाद चमक रहे थे, आज वहाँ खण्डहर आसू बहा रहे है। कितने ही स्थलो पर ध्वसावशेष भी उपलब्ध नही है। कितने ही नगर आज भी पुराने नामो से विश्रुत है। कितने ही नगरो की अवस्थिति कहाँ थी, इसका भी सही पता नही है। कितने ही स्थलो के सम्बन्ध मे पुरातत्ववेत्ताओ ने काफी अन्वेषणा की है। उन्हीकी शोध के आधार से भगवान महावीर के भौगोलिक क्षेत्रो का हम परिचय दे रहे है, जिससे पाठको को सही स्थिति का परिज्ञान हो सके।

अग	आलभिका	कनखल आश्रमपद
अच्छ (उत्स्य)	उज्जयिनी	कनकपुर
अनार्यदेश	उत्तरकोसल	कयलि समागम
अपापा	उत्तरवाचाला	कयगला
अयोध्या	उत्तरविदेह	कर्णसुवर्ण कोटिवर्ष
अवन्ती	उन्नाण (उन्नाक)	कर्मार ग्राम
अस्थिकग्राम	उपनन्दपाटक	कलबुका
अहिच्छत्रा	उल्लुकातीर	कलिग
आमलकप्पा	ऋजुवालुका	काकन्दी
आलभिका	ऋषभपुर	काम्पिल्य

कालायसनिवेश
काशी
कुण्डपुर
कुडाकसन्निवेश
कुमाराकसन्निवेश
कुरु
कुरुजागल
कूपियसन्निवेश
कूर्मग्राम
केकय
कोटिवर्ष
कोल्लाकसन्निवेश
कोसला
कौशाम्बी
क्षितिप्रतिष्ठित
गगा
गडकी
गुणशील
गोकुल
गोव्वरगाव
ग्रामाकसन्निवेश
चन्दनपादप उद्यान
चन्द्रावतरण चैत्य
चम्पा
चेदि
चोराकसनिवेश
छम्माणि
जम्बूसड
जभियगाव
ज्ञातखण्डवन
तबायसन्निवेश
ताम्रलिप्ति
तिन्दुकोद्यान
तुगिकसनिवेश
तुगिया नगरी
तोसलिगाव
थूणाकसन्निवेश
दक्षिणवाचाला
दशार्णपुर
दूतिपलाश चैत्य
दृढभूमि
नगलागाव
नन्दिग्राम
नालन्दा
पत्तपालक
पाञ्चाल
पावा
पालकग्राम
पुरिमताल
पूर्णकलश
पूर्णभद्र चैत्य
पृष्ठचम्पा
पेढालउद्यान
पोतनपुर
पोलासपुर
प्रतिष्ठानपुर
बग
बनारस
ब्राह्मणग्राम
भगि
भद्दिया
भद्दिलनगरी
भोगपुर
मगध
मथुरा
मर्द्दनासन्निवेश
मलयगाव
मलयदेश
मल्लदेश
महापुर
महासेन उद्यान
माणिभद्र चैत्य
मालव
मिथिला
मिढिया
मृगग्राम
मेढियगाव
मोकानगरी
मोराकसन्निवेश
मौर्यसन्निवेश
राजगृह
लोहार्गला
वत्स
वर्धमानपुर
वाणिज्यग्राम
वालुकाग्राम
विजयपुर
विशाखा
वीतभय
वीरपुर
वैशाली
शालिशीर्ष
श्रावस्ती
श्वेताम्बिका
सानुलट्ठियग्राम
सिधुदेश
सुरभिपुर
सुवणखल
सुवर्णवालुका
सुसुमारपुर
सुह्म
हस्तिशीर्ष
हस्तिशीर्षनगर

अंग

अंग एक प्राचीन जनपद था, भागलपुर से मुंगेर तक फैले हुए भू-भाग का नाम अंग देश था।[1] प्रस्तुत देश की राजधानी चम्पापुरी थी जो भागलपुर से पश्चिम में दो मील पर अवस्थित थी। कनिंघम ने भागलपुर से २४ मील दूर पर पत्थर घाटा पहाड़ी के सन्निकट चम्पानगर या चम्पापुरी की अवस्थिति मानी है। यह गंगातट पर स्थित है। प्राचीनयुग में चम्पा अत्यधिक सुन्दर व समृद्ध नगर था। वह व्यापार का केन्द्र था और दूर-दूर के व्यापारी व्यापारार्थ वहाँ आया करते थे।[2] जातकों से ज्ञात होता है कि बुद्ध के पूर्व राज्यसत्ता के लिए मगध और अंग में संघर्ष होता था।[3] बुद्ध के समय अंग मगध का ही एक हिस्सा था। राजा श्रेणिक अंग और मगध दोनों का ही स्वामी था। त्रिपिटक साहित्य में अंग और मगध को साथ में रखकर 'अंगमगधा' द्वन्द्व समास के रूप में प्रयुक्त हुआ है।[4] चम्पेय जातक के अभिमतानुसार चम्पानदी अंग और मगध दोनों का विभाजन करती थी, जिसके पूर्व और पश्चिम में दोनों जनपद बसे हुए थे। अंग जनपद की पूर्वी सीमा राजप्रासादों की पहाड़ियाँ, उत्तरी सीमा कोसी नदी, और दक्षिण में उसका समुद्र तक विस्तार था। पार्जिटर ने पूर्णिया जिले के पश्चिमी भाग को भी अंग जनपद के अन्तर्गत माना है।[5]

सुमंगला विलासिनी में बताया है कि अंग जनपद में अंग (अंगा) नामक लोग रहा करते थे, अतः उनके नाम पर प्रस्तुत जनपद का नाम अंग हुआ। अंग लोगों ने अपने शारीरिक सौन्दर्य के कारण यह नाम पाया था। फिर यह नाम प्रदेश-विशेष के लिए रूढ़ हो गया।[6]

---

१ (क) एन्शियट ज्योग्रेफी आव इण्डिया, पृ० ५४६
(ख) नन्दलाल दे—ज्योग्रेफीकल डिक्शनरी ऑव एन्शियन्ट एण्ड मेडीवल इण्डिया, पृ० ७
(ग) स्मिथ-अर्ली—हिस्ट्री ऑव इण्डिया, चतुर्थ संस्करण, पृ० ३०

२ (क) औपपातिकसूत्र १
(ख) ज्ञातधर्मकथा ८
(ग) उत्तराध्ययन २१।२

३ जातक, पालिटैक्स-सोसायटी, जिल्द ४, पृ० ४५४, जिल्द ५वीं, पृ० ३१६, जिल्द छठीं, पृ० २७१

४ (क) दीघनिकाय ३।५
(ख) मज्झिम निकाय २।३।७
(ग) थेरीगाथा—बम्बई विश्वविद्यालय संस्करण, गाथा ११०

५ जर्नल आव एशियाटिक सोसायटी ऑव बंगाल, सन् १८६७, पृ० ९५

६ सुमंगलविलासिनी प्रथम जिल्द, पृ० ७२९

महाभारत के अनुसार अग नामक राजा के नाम पर जनपद का नाम अग पडा।[७]

रामायण के मन्तव्यानुसार महादेव के क्रोध से भयभीत होकर मदन वहाँ पर भागकर आया और वह अपने अग को छोडकर वहाँ अनग हुआ था। मदन के अग का त्याग होने से यह प्रदेश अग कहलाया।[८]

जैन साहित्य मे अगलोक का उल्लेख सिहल (श्रीलका) बब्बर, किरात, यवनद्वीप, आरवक, रोमक अलसन्द, (एलेक्जेण्ड्रिया) और कच्छ के साथ आता है।[९] जैन ग्रन्थो मे अग और चम्पा के साथ अनेक कथाओ का सम्बन्ध आता है। भगवान महावीर का यह मुख्य विहारस्थल था। भगवान के अनेक बार समवसरण चम्पा के ईशान दिशा भाग मे पूर्णभद्र चैत्य मे हुए थे और जहाँ पर सैकडो व्यक्तियो ने दीक्षाएँ ग्रहण कर जैनधर्म की विजय-वैजयन्ती फहराई थी।

अच्छ (अत्स्य)

अच्छ की परिगणना साढे पच्चीस आर्य जनपदो मे की गई है। यह देश मथुरा से ऊपर की ओर था। कितने ही विद्वानो का मन्तव्य है कि उसकी कही भी राजधानी प्राप्त नही है।[१०]

उसकी राजधानी प्राचीन युग मे वरण थी। वरण का आधुनिक नाम बुलन्द-शहर है। एक जैन शिलालेख मे वरण का नाम 'अच्छनगर' मिलता है।[११] अच्छ नाम देश का है। यह सभव है कि उसकी राजधानी वरण अच्छनगर रहा हो।

कल्पसूत्र मे वारणगण और उच्चानागरी शाखा का उल्लेख है।[१२] इससे ज्ञात होता है कि यह प्रदेश जैन श्रमणो का केन्द्र था। महाभारत मे भी इसका उल्लेख है।

चीनी साधु फाच्युआग (४२४-४५३ ई०) नगरहार से विदेश जाते समय वरुण होकर गया था।[१३]

अनार्य देश

आवश्यकचूर्णि मे आर्य और अनार्य जनपदो की व्यवस्था इस प्रकार की गई

---

७ महाभारत-गीताप्रेस सस्करण, १।१०४।५३।५४

८ रामायण-गीताप्रेस सस्करण, १।२३।१४

९ (क) जम्बूद्वीप-प्रज्ञप्ति ५२, पृ० २१६
(ख) आवश्यक चूर्णि, पृ० १९१

१० अतीत का अनावरण, पृ० १६४

११ एपिग्राफिका इण्डिया जिल्द १, १८९२ पृ० ३७५

१२ कल्पसूत्र सूत्र २१६, पृ० ३२७, गुजराती सस्करण। सम्पादक—देवेन्द्र मुनि

१३ द ज्योग्रेफिकल कण्टेण्ट्स ऑव महामायूरी, जर्नल यू० पी० हिस्टोरिकल सोसायटी, जिल्द १५, भाग २

है—'जिन प्रदेशो मे यौगलिक रहते थे जहाँ 'हाकार' आदि नीतियो का प्रवर्तन हुआ था, वे प्रदेश आर्य और शेप अनार्य है।[1] इस दृष्टि से आर्य जनपदो की सीमा अत्यधिक वढ जाती है। तत्त्वार्थभाष्य-अभिमतानुसार चक्रवर्ती की विजयो मे उत्पन्न होने वाले मनुष्य भी आर्य होते है।[2] तत्त्वार्थवार्तिककार ने काशी कौशल आदि जनपदो मे उत्पन्न मनुष्यो को क्षेत्रार्य कहा है।[3] जैन साहित्य मे साढे पच्चीस देशो मे रहने वाले को क्षेत्राय कहा है।[4] चूंकि साढे पच्चीस देशो मे तीर्थकर, चक्रवर्ती, राम (वलदेव) और कृष्ण (वासुदेव) की उत्पत्ति हुई, इसलिए इन्हे आर्य जनपद कहा गया है।[5] जिन देशो मे तीर्थंकर प्रादि उत्पन्न हुए, उन्हे आर्य कहा गया है।[6] उस समय लाढ या राढ की परिगणना अनार्य देशो मे की जाती थी। यह देश वज्जभूमि (वज्रभूमि) और सुब्भभूमि (सुह्म) नामक दो भागो विभक्त था। इसकी राजधानी कोटिवर्प थी। आधुनिक वानगढ ही प्राचीन कोटिवर्प है। वह उत्तर राढ और दक्षिण राढ के रूप मे दो भागो मे विभक्त था। इसके बीच मे अजय नदी वहती थी। कितने ही व्यक्ति भ्रम से लाढ को गुजरात का लाट मानते है, किन्तु यह उचित नही है। सत्य तथ्य यह है कि लाढ प्रदेश वगाल मे गगा के पश्चिम मे था। आजकल के तामलुक, मिदनापुर हुगली और वर्दमान जिले इम प्रदेश के अन्तर्गत थे। मुर्शिदाबाद जिले का कुछ भाग इसकी उत्तरी सीमा के अन्तगत था। भगवान महावीर ने यहाँ पर विहार किया था, उन्हे अनेक कष्ट सहने पडे थे। भगवान महावीर को यहाँ पर वसति मिलना भी दुर्लभ हो गया था।[7] वे महावीर को कुत्तो से कटवाते थे।[8] लाढ को सुह्म भी कहा गया है।

बौद्ध साहित्य मे इसका नाम 'लाल' और वैदिक साहित्य मे 'राढ' मिलता है। इसका प्राचीन नाम सुन्द भी है।

भगवती सूत्र मे सोलह जनपदो मे सभुत्तर (सुह्मोत्तर—सुह्म के उत्तर मे) की गणना की गई है।

---

१ जेसु केसुवि पएसेसु मिहुणगादि पइट्ठिएसु हक्काराइया नीई परूढा ते आरिया, सेसा अणारिया। —आवश्यक चूर्णि

२ भरतेष्वर्धषड्विंशतिजनपदेषु जाता, शेषेषु च चक्रवर्ती विजयेषु। —तत्त्वार्थभाष्य ३।१५

३ क्षेत्रार्या काशी-कौशलादिषु जाता। —तत्त्वार्थराजवार्तिक ३।३६, पृ० २००

४ प्रज्ञापना १

५ इत्थुप्पत्ति जिणाण, चक्कीण रामकण्हाण। —प्रज्ञापना १

६ यत्र तीर्थंकरादीनामुत्पत्तिस्तदार्यं शेषमनार्यम्। —प्रवचनसारोद्धार, पृ० ४४६

७ (क) आवश्यक निर्युक्ति, ४८३,
(ख) आचाराग ९।३

८ (क) आचाराग ९।१, वही ९।३
(ख) आवश्यक निर्युक्ति ४८२

महाभारत के अनुसार अग नामक राजा के नाम पर जनपद का नाम अग पडा।[७]

रामायण के मन्तव्यानुसार महादेव के क्रोध से भयभीत होकर मदन वहाँ पर भागकर आया और वह अपने अग को छोडकर वहाँ अनग हुआ था। मदन के अग का त्याग होने से यह प्रदेश अग कहलाया।[८]

जैन साहित्य मे अगलोक का उल्लेख सिंहल (श्रीलका) वब्बर, किरात, यवनद्वीप, आरवक, रोमक अलसन्द, (एलेक्जेण्ड्रिया) और कच्छ के साथ आता है।[९] जैन ग्रन्थो मे अग और चम्पा के साथ अनेक कथाओ का सम्बन्ध आता है। भगवान महावीर का यह मुख्य विहारस्थल था। भगवान के अनेक बार समवसरण चम्पा के ईशान दिशा भाग मे पूर्णभद्र चैत्य मे हुए थे और जहाँ पर सैकडो व्यक्तियो ने दीक्षाएँ ग्रहण कर जैनधम की विजय-वैजयन्ती फहराई थी।

अच्छ (अत्स्य)

अच्छ की परिगणना साढे पच्चीस आर्य जनपदो मे की गई है। यह देश मथुरा से ऊपर की ओर था। कितने ही विद्वानो का मन्तव्य है कि उसकी कही भी राजधानी प्राप्त नही है।[१०]

उसकी राजधानी प्राचीन युग मे वरण थी। वरण का आधुनिक नाम बुलन्दशहर है। एक जैन शिलालेख मे वरण का नाम 'अच्छनगर' मिलता है।[११] अच्छ नाम देश का है। यह सभव है कि उसकी राजधानी वरण अच्छनगर रहा हो।

कल्पसूत्र मे वारणगण और उच्चानागरी शाखा का उल्लेख है।[१२] इससे ज्ञात होता है कि यह प्रदेश जैन श्रमणो का केन्द्र था। महाभारत मे भी इसका उल्लेख है।

चीनी साधु फाच्युआग (४२४-४५३ ई०) नगरहार से विदेश जाते समय वरुण होकर गया था।[१३]

अनार्य देश

आवश्यकचूर्णि मे आर्य और अनार्य जनपदो की व्यवस्था इस प्रकार की गई

---

७ महाभारत-गीताप्रेस सस्करण, १।१०४।५३।५४

८ रामायण-गीताप्रेस सस्करण, १।२३।१४

९ (क) जम्बूद्वीप-प्रज्ञप्ति ५२, पृ० २१६
(ख) आवश्यक चूर्णि, पृ० १६१

१० अतीत का अनावरण, पृ० १६४

११ एपिग्राफिका इण्डिया जिल्द १, १८९२ पृ० ३७५

१२ कल्पसूत्र सूत्र २१६, पृ० ३२७, गुजराती सस्करण। सम्पादक—देवेन्द्र मुनि

१३ द ज्योग्रेफिकल कण्टेण्ट्स ऑव महामायूरी, जर्नल यू० पी० हिस्टौरिकल सोसायटी, जिल्द १५, भाग २

हैं—'जिन प्रदेशों मे यौगलिक रहते थे जहाँ 'हाकार' आदि नीतियो का प्रवर्तन हुआ था, वे प्रदेश आर्य और शेष अनार्य है।'[1] इस दृष्टि से आर्य जनपदो की सीमा अत्यधिक बढ जाती है। तत्त्वार्थभाष्य-अभिमतानुसार चक्रवर्ती की विजयो मे उत्पन्न होने वाले मनुष्य भी आर्य होते है।[2] तत्त्वार्थवार्तिककार ने काशी कौशल आदि जनपदो मे उत्पन्न मनुष्यो को क्षेत्रार्य कहा है।[3] जैन साहित्य मे साढे पच्चीस देशो मे रहने वाले को क्षेत्रार्य कहा है।[4] चूकि साढे पच्चीस देशो मे तीर्थकर, चक्रवर्ती, राम (बलदेव) और कृष्ण (वासुदेव) की उत्पत्ति हुई, इसलिए इन्हे आर्य जनपद कहा गया है।[5] जिन देशो मे तीर्थंकर आदि उत्पन्न हुए, उन्हे आर्य कहा गया है।[6] उस समय लाढ या राढ की परिगणना अनार्य देशो मे की जाती थी। यह देश वज्जभूमि (वज्रभूमि) और सुब्भभूमि (सुह्म) नामक दो भागो विभक्त था। इसकी राजधानी कोटिवर्ष थी। आधुनिक बानगढ ही प्राचीन कोटिवर्ष है। वह उत्तर राढ और दक्षिण राढ के रूप मे दो भागो मे विभक्त था। इसके बीच मे अजय नदी बहती थी। कितने ही व्यक्ति भ्रम से लाढ को गुजरात का लाट मानते है, किन्तु यह उचित नही है। सत्य तथ्य यह है कि लाढ प्रदेश बगाल मे गगा के पश्चिम मे था। आजकल के तामलुक, मिदनापुर हुगली और बर्दमान जिले इस प्रदेश के अन्तर्गत थे। मुर्शिदाबाद जिले का कुछ भाग इसकी उत्तरी सीमा के अन्तर्गत था। भगवान महावीर ने यहाँ पर विहार किया था, उन्हे अनेक कष्ट सहने पडे थे। भगवान महावीर को यहाँ पर वसति मिलना भी दुर्लभ हो गया था।[7] वे महावीर को कुत्तो से कटवाते थे।[8] लाढ को सुह्म भी कहा गया है।

बौद्ध साहित्य मे इसका नाम 'लाल' और वैदिक साहित्य मे 'राढ' मिलता है। इसका प्राचीन नाम सुन्द भी है।

भगवती सूत्र मे सोलह जनपदो मे सभुत्तर (सुह्मोत्तर—सुह्म के उत्तर मे) की गणना की गई है।

---

१ जेसु केसुवि पएसेसु मिहुणगादि पइट्ठिएसु हक्काराइया नीई परूढा ते आरिया, सेसा अणारिया। —आवश्यक चूर्णि

२ भरतेष्वर्धषड्विंशतिजनपदेषु जाता, शेषेषु च चक्रवर्ती विजयेषु। —तत्त्वार्थभाष्य ३।१५

३ क्षेत्रार्या काशी-कौशलादिषु जाता। —तत्त्वार्थराजवार्तिक ३।३६, पृ० २००

४ प्रज्ञापना १

५ इत्थुप्पत्ति जिणाण, चक्कीण रामकण्हाण। —प्रज्ञापना १

६ यत्र तीर्थंकरादीनामुत्पत्तिस्तदार्यं शेषमनार्यम्। —प्रवचनसारोद्धार, पृ० ४४६

७ (क) आवश्यक निर्युक्ति, ४८३,
(ख) आचाराग ९।३

८ (क) आचाराग १।१।, वही ९।३
(ख) आवश्यक निर्युक्ति ४८२

कोटिवर्ष लाढ जनपद की राजधानी थी। कोडिवरिसिया नामक जैन श्रमणो की शाखा का उल्लेख प्राप्त होता है।[1] गुप्तकालीन शिलालेखो मे प्रस्तुत नगर का उल्लेख है। कोटिवष की वर्तमान मे पहचान दीनाजपुर जिले के वानगढ नामक स्थान से विद्वानो ने की है। सभव है इन्ही कारणो से इसे आर्य देश मे भी गिना है।

प्रबोध चन्द्रोदय नाटक अक दो (११वी शती) मे इसके दो भागो का उल्लेख मिलता है—दक्षिण-राढ, उत्तर-राढ। अजय नदी के दक्षिणी भाग को दक्षिण-राढ और उत्तरी भाग को उत्तर-राध कहा जाता है।

अपापा

पावा का नाम अपापा भी था। जब भगवान महावीर का वहाँ पर परिनिर्वाण हुआ तब अपापा पापा के नाम से विश्रुत हुई। विशेष विवरण हेतु 'पावा' देखिए।

अयोध्या

जैन साहित्य की दृष्टि से अयोध्या सबसे पहला नगर है। अयोध्या के निवासी विनीत स्वभाव के थे, इसलिए भगवान ऋषभ के समय इसका नाम विनीता पडा।[2] यहाँ के लोग स्वभाव से सरल थे। अचल गणधर[3] की और मर्यादा पुरुषोत्तम[4] राम की यह जन्मभूमि थी। अयोध्या का वर्णन करते हुए रामायणकार ने लिखा है—'सरयू नदी के किनारे पर अवस्थित यह नगरी धन-धान्य से परिपूर्ण थी। सुन्दर वहाँ के मार्ग थे। अनेक शिल्पी और देश-विदेश के व्यापारी वहाँ बसते थे। यहाँ के लोग समृद्धिशाली, धर्मात्मा, पराक्रमी और दीर्घायु थे।। अयोध्या के निवासियो ने विविध कलाओ मे कुशलता प्राप्त की थी, इसलिए अयोध्या को कुशला-कोशला भी कहते थे।[5]

वैशाली मे जन्म लेने से जैसे भगवान महावीर का नाम वैशालीय है। वैसे ही भगवान ऋषभदेव ने कोशल मे जन्म लिया, इसलिए कोशलीय कहलाये। कोशल के राजा प्रसेनजित का उल्लेख बौद्ध साहित्य मे अनेक स्थलो पर हुआ है।

बृहत्कल्प के अनुसार भगवान महावीर एक बार जब अयोध्या (साकेत) के सुभूमिभाग उद्यान मे विहार कर रहे थे तब भगवान ने जैन श्रमणो के विहार की सीमा इस प्रकार नियत की थी—'निर्ग्रन्थ और निर्ग्रन्थनी साकेत के पूर्व मे अग, मगध तक, दक्षिण मे कौशाम्बी तक, पश्चिम मे स्थूणा (स्थानेश्वर) तक और उत्तर मे

---

१ कल्पसूत्र २०७
२ आवश्यक मलयगिरीय वृत्ति,
३ बृहत्कल्पभाष्य, ५।५८२४
४ (क) रामायण
  (ख) त्रिषष्टि शलाकापुरुष चरित्र
५ आवश्यक मलयगिरीय वृत्ति, पृ० २१४

कुणाला (श्रावस्ती जनपद) तक विहार कर सकते है। इतने ही क्षेत्र आर्य क्षेत्र है, इनके आगे नही। चूंकि इतने ही क्षेत्रो मे साधुओ के ज्ञान, दर्शन और चारित्र अक्षुण्ण रह सकते है।[1]

महावीर और बुद्ध के समय अयोध्या का नाम साकेत अधिक प्रसिद्ध था। समय-समय पर उसके नाम परिवर्तित होते रहे है। कोशला, विनीता, इक्ष्वाकुभूमि, रामपुरी साकेत, विशाखा आदि।

प्राचीन काल मे कौशल देश उत्तर और दक्षिण—इन दो भागो मे विभक्त था। इनका विभाजन सरयू नदी से हुआ था। दक्षिण कौशल की राजधानी साकेत थी। वह सरयू के तट पर बसी हुई थी।

भगवान महावीर के समय साकेत के बाहर उत्तरकुरु नामक उद्यान था और पाशामृग नामक यक्ष का मन्दिर था। राजा का नाम मित्रनदी और रानी का नाम श्रीकान्ता था। भगवान महावीर यहाँ पर अनेक बार पधारे थे।

विद्वानो का मत है कि फैजाबाद से पूर्वोत्तर छः मील पर सरयू नदी के दक्षिण तट पर अवस्थित वर्तमान अयोध्या के समीप प्राचीन साकेत नगर था।

अवन्ती

अवन्ती मालवा की राजधानी थी। दक्षिण पथ की यह मुख्य नगरी मानी जाती थी। भगवान महावीर के समय यहाँ का राजा चण्डप्रद्योत था।[2] चण्डप्रद्योत की पट्टरानी शिवादेवी[3] और अगारवती[4] आदि रानियाँ भगवान महावीर की परम उपासिका थी।

जब सम्राट् अशोक का पुत्र कुणाल यहाँ का सूबेदार हुआ तब अवन्ती जो उज्जैनी के नाम से प्रसिद्ध थी, उसका नाम कुणाल नगर रखा गया।[5] कुणाल के पश्चात् राजा सम्प्रति का राज्य हुआ। राजा सम्प्रति ने जैनधर्म के प्रचार करने के लिए अपने अनुचरो को दूर-दूर तक भेजा था। आर्य सुहस्ति अवन्ती पधारे थे।[6] आचार्य चण्डरुद्र[7]

---

१ बृहत्कल्पसूत्र १।५०

२ आवश्यकचूर्णि, भाग २,

३ (क) आवश्यकचूर्णि उत्तरार्द्ध, पत्र १६४
 (ख) त्रिषष्टि० १०।११

४ (क) आवश्यकचूर्णि, भाग १, पत्र ९१
 (ख) आवश्यकचूर्णि, भाग २, पत्र १९९

५ सस्तर ८२, पृ० ५८

६ बृहत्कल्प भाष्य १।३२७७

७ बृहत्कल्प भाष्य ६।६१०३

संस्कृत का अस्थि प्राकृत भाषा मे अट्ठी होता है और आगे चलकर हड्डी हो गया है। हत्थिगाम और अस्थिकग्राम मे किंचित् उच्चारण भेद है। पर दोनों ही साहित्य मे उसे विदेह के अन्तर्गत वैशाली के सन्निकट माना है।

सोमवंशी भवगुप्त प्रथम के ताम्रपत्र मे जिस हस्तिपद नामक स्थान का वर्णन है, वह संभवत हत्थिग्राम है।[1]

ईस्वी सन् तीसरी शताब्दी तक हस्तिपद या हस्तिग्राम का अस्तित्व मिलता है। शैलेन्द्रवंशीय जावा, सुमात्रा, और मलयदेश के राजा बालपुत्रदेव जो नालंदा मे महाविहार बनाना चाहते थे, उन्होने पाल-वंश के राजा देवपाल के पास दूत प्रेषित किया और पाच गावो की याचना की। देवपाल बौद्धधर्म का संरक्षक था, उसने बालपुत्र की प्रार्थना स्वीकार की और पाँच गाव उन्हे सहर्ष समर्पित किये, उन गावो की सूची मे नातिका और हस्ति (हस्तिग्राम) का स्पष्ट उल्लेख है।[2]

वैशाली से भोगनगर जाते हुए मार्ग मे हस्तिग्राम आता था और वह वज्जि प्रदेश मे अवस्थित था।[3]

अस्थिक गाव का पहले नाम वर्धमान था।[4] शूलपाणि यक्ष ने बहुत से मानवो को वहा पर मारा था। मानवो की बहुत हड्डिया वहाँ पर एकत्रित हो गई। अत उसका नाम अस्थिक ग्राम पडा। अस्थि यानि हड्डी और ग्राम यानि समूह, इस प्रकार अस्थिक ग्राम का अर्थ हड्डियो का समूह है।

वर्धमान नाम के अनेक नगर थे, एक वर्द्धमान नगर प्रयाग और वाराणसी के मध्य मे था।[5]

शाहजहाँपुर से २५ मील पर बासखेडा मे एक ताम्र-पत्र प्राप्त हुआ है जिसमे वर्द्धमान कोटि का वर्णन है।[6] ई पूर्व ६३८ मे हर्षवर्द्धन ने यहा पर पडाव डाला था। यह वर्धमान कोटि आज दिनाजपुर जिले मे बधमान कोटि के नाम से विश्रुत है। देवीपुराण[7] मे वर्धमान का उल्लेख बग से अलग स्वतन्त्र देश के रूप मे हुआ है।

---

१ वीर-विहार मीमासा, पृ ३, इन्द्रविजयजी

२ (क) हिस्ट्री आव बेगाल, वाल्यूम १, पृ १२८-६७१
—सम्पादक आर० सी० मजूमदार

(ख) नालदा ऐंड इट्स एपीग्राफिक मिटीरियल, पृ ६७-१००

३ डिक्शनरी आव पाली प्रापर नेम्स, भाग २, पृ १३१८

४ अट्ठिगाम्मस्स पढम वद्धमाणय णाम होत्था। —आवश्यकचूर्णि, पृ २७२

५ (क) कथासरित्सागर अध्याय २८, २५

(ख) मारकण्डेय पुराण

(ग) वेताल-पचविंशति

मारकण्डेय पुराण, अध्याय ५८

देवीपुराण, अध्याय ४६

दाता के निकट वर्द्धमान का भी वणन आता ह।[८]

एक वद्धमान मालवे मे भी था। एक वर्द्धमानपुर सोराष्ट्र मे भी था। जहाँ पर १४२३ ई० मे मेरुतुग नाम के प्रसिद्ध जैन विद्वान ने प्रवन्धचिन्तामणि की रचना की थी, जिसका वतमान मे वढवाण नाम हे।

दीपवश मे एक वर्धमानपुर का उल्लेख ह, जिसे बाद मे वर्धमानभुक्ति या वर्धमान नाम से भी लिखा है, यह कलकत्ता से ६७ मील पर अवस्थित वर्दवान नगर था।

यह स्मरण रखना चाहिए कि जिसका पूर्व नाम वधमान था। वे इन सभी से पृथक् थे। वे विदेह देश से वाहर थे ओर भगवान महावीर ने जिस अस्थिक ग्राम मे वर्षावास किया था, वह विदेह देश मे था। उसका अपर नाम हस्तिग्राम भी था।

अहिच्छत्रा

अहिच्छत्रा को जैन-साहित्य मे जागल अथवा कुरुजागल की राजधानी कहा है। यह नगरी शसवती[१] प्रत्यगुरथ[२] और शिवपुर[३] के नाम से भी प्रसिद्ध थी। इसकी परिगणना अष्टापद, ऊर्जयन्त (गिरनार), गजाग्रपदगिरि, धमचक्र (तक्षशिला) और रथावत नामक तीर्थो के साथ की गई है।[४] कहा जाता हे कि धरणेन्द्र ने यहीं पर अपने फण से भगवान पार्श्व की रक्षा की थी। अहिच्छत्रा के निवासियो का चम्पा के साथ व्यापार भी होता था।[५] हुएनसाग के समय यहाँ पर नागह्रद था, जहाँ पर तथागत बुद्ध ने नागराज को उपदेश दिया ा।

वर्तमान मे अहिच्छत्रा वरेली जिले मे बरेली से वीस मील पश्चिम की ओर है। आजकल के रामनगर के सन्निकट पूर्वकाल मे अहिच्छत्रा थी।[६]

आमलकप्पा (आमलकल्पा)

आमलकप्पा यह पश्चिम विदेह मे श्वेताम्वी के समीप थी। वाद्ध साहित्य मे वुल्लिय राज्य की राजधानी 'अलकप्प' ही आमलकप्पा (आमलकल्पा) होनी चाहिए। आमलकप्पा के वाहर अम्वसाल चैत्य था, जहाँ पर भगवान महावीर का समवसरण लगा था और भगवान महावीर ने सूर्याभदेव के पूव भव का विस्तार से वर्णन किया था।[१]

---

८ मैनुअल आव बुद्धिजम, पृ ४८०, स्पेसहार्डी लिखित

१ विविध तीर्थकल्प, पृ १४

२ अभिधान चिन्तामणि ४।२६

३ कल्पसूत्र टीका ६, पृ १६७

४ आचारागनिर्युक्ति ३३५

५ ज्ञातृधमकथा, पृ १५८

६ श्रमण भगवान महावीर, पृ ३५४

१ राजप्रश्नीय

आलभिका (आलभिया)

आधुनिक विद्वान 'एरवा' जो इटावा स वीस मील उत्तर-पूव की ओर अव-स्थित एक प्राचीन शहर ह, उसे आलभिया मानते ह, पर आलभिका वतमान का एरवा नहीं है चूँकि वह राजगृह से वाराणसी जाते हुए माग मे आता था। भगवान महावीर जब राजगृह से वाराणसी आर वाराणसी से राजगृह पधार तब आलभिका उनके माग मे आई थी।

भगवान महावीर के दस प्रमुख श्रावकों मे से पाचवाँ चुल्लशतक प्रस्तुत नगर का रहने वाला था। ऋषिभद्र आदि अनेक भगवान के उपासक यहाँ पर रहते थे।[2] पोग्गल परिव्राजक को यहीं पर अपना श्रमण शिष्य बनाया था।[3]

आलभिका (आलभिया)

मुनि श्री कल्याणविजयजी के अभिमतानुसार आलभिया और आलभिया ये दोनों एक थे ओर उसके दो नाम थे।[1]

उवासगदशाओ के परिशिष्ट[2] मे हार्नेल ने आलभिया की अवस्थिति पर विचार करते हुए अनेक मत दिए ह—

(१) कर्नल यूल ने इसकी पहचान रीवा से की ह।

(२) फाह्यान की यात्रा के वील कृत अनुवाद मे (बुद्धिस्ट रेकार्ड आव द' वेस्टर्न वल्ड, पृष्ठ XIIII) उल्लेख है कि कन्नोज से अयोध्या जाते समय गगा के पूर्वी तट पर फाह्यान को एक जगल मिला था। फाह्यान ने लिखा है कि बुद्ध ने यहाँ उप-देश दिया था आर वहाँ पर स्तूप बना हुआ है।

हार्नेल का मन्तव्य है कि पालि शब्द अलवी और सस्कृत अटवी का अर्थ भी जगल होता ह।

कनिघम का मत ह कि नवदेवकुल ही अलवी हो सकती है, जिसका उल्लेख ह्वेनच्याग ने किया है। कन्नाज से १६ मील दक्षिण-पूर्व मे अवस्थित नेवल मे अब भी इसके अवशेष ह।[3] फाह्यान और ह्वेनच्याग के सूचित किए हुए वर्णन से इसकी दूरी का मेल बैठ जाता है।

मुनि श्री इन्द्रविजय जी का मत ह कि जैन ग्रन्थो मे आया आलभिया बौद्ध ग्रन्थो मे आया आलवी दोनों एक ही स्थान के नाम है।[4]

---

२ उपासकदशाङ्ग ५ (२) भगवती ११।११।

३ व्याख्याप्रज्ञप्ति ११।१२

१ श्रमण भगवान महावीर, पृ० ३५५

२ पृष्ठ ५१-५३

३ आर्क्योलाजिकल सर्वे रिपोर्ट, खण्ड १ पृ० २९३

४ तीर्थंकर महावीर, भाग १, पृ० २०७

महापण्डित राहुल साकृत्यायन न आलवी की पहचान अवल—जिला-कानपुर से की हे ।[५]

भिक्षु जगदीश और वर्मरक्षित न आलवी की पहचान उन्नाव जिले के नेवल से की हे ।[६]

हमारी दृष्टि से भगवान महावीर के विहार क्रम मे आई हुई आलभिया न तो उन्नाव मे हे और न कानपुर मे ही ह । यह स्थान प्रयाग आर मगध के वीच मे होना चाहिए । डाक्टर हार्नेल ने भगवान महावीर के विहार क्रम को विना मिलाये ही प्रयाग से पश्चिम मे उसे पहचानने का प्रयास किया ह । जो उचित नहीं हे ।

भगवान महावीर ने अपना छद्मस्थ अवस्था मे सातवॉ वर्पावास आलभिया मे किया था ।

उज्जयिनी

इसकी अवस्थिति के सम्बन्ध मे देखे 'अवन्ती' ।

उत्तर कोसल

फैजाबाद, गोडा, वहराइच, बाराबकी के जिले आर उसके सन्निकट के कुछ भाग, अवध, वस्ती, गोरखपुर, आजमगढ और जोनपुर जिलो का कुछ भाग उत्तर कोसल या कोसल जनपद कहलाता था ।

उत्तर वाचाला

कनकखल आश्रम मे चण्डकौशिक को प्रतिवोध देने के पश्चात् पन्द्रह दिन तक ध्यान की साधना कर महावीर उत्तरवाचाला गये थे । नागसेन ने भक्ति-भावना से विभोर होकर महावीर को क्षीर का दान दिया था । यहॉ आते समय भगवान का देवदूष्य वस्त्र सुवर्णवालुका नदी के किनारे कॉटो से उलझ कर गिर गया था । यह नगर श्वेताम्बिका के सन्निकट था ।

उत्तर विदेह

नेपाल का दक्षिण प्रदेश पहले उत्तर विदेह के नाम से विश्रुत था ।

उन्नाग (उन्नाक)

भगवान महावीर पुरिमताल से उन्नाग होते हुए गोभूमि की तरफ पधारे थे । गोशालक के अनुचित कृत्य से क्रुद्ध होकर लोगो ने उसे पीटा था । सम्भव है वर्तमान का उन्नावा ही महावीर के युग का उन्नाव हो ।

उपनन्दपाटक

यह ब्राह्मण गॉव का एक विभाग था, जहॉ का जागीरदार उपनन्द था ।

उल्लुकातीर

उल्लुका नदी के किनारे यह नगर वसा हुआ था । इसके सन्निकट का प्रदेश

---

५ बुद्धचर्या, पृ० २४२

६ सयुक्तनिकाय की भूमिका, पृ० ६

नदीखेड के नाम मे पहचाना जाता था। उल्लुकातीर के बाहर जम्बूचैत्य उद्यान नामक था, जहा पर श्रमण भगवान महावीर विराजते थे और उपदेश प्रदान करते थे। आगम साहित्य मे जहाँ पर इस नगर का उल्लेख हुआ है, वहा पर उसके आगे-पीछे राजगृह के समवसरण की भी चर्चा है। जिससे सहज ही यह अनुमान होता है कि प्रस्तुत नगर मगध मे ही होना चाहिए। वर्तमान मे इस नगर का क्या नाम है, यह अभी तक विज्ञो को ज्ञात नही हो सका है।

ऋजुवालिका

भगवान महावीर को ऋजुवालिका नदी के उत्तर-तट पर केवलज्ञान हुआ था। कितने ही विज्ञो का यह मत है हजारीबाग जिले मे गिरिडीह के सन्निकट बहने वाली बाराकड नदी ही ऋजुवालिका है। कितने ही विज्ञ भगवान महावीर की केवल-भूमि सम्मेतशिखर के समीप बताते है, पर मुनि श्री कल्याणविजय जी का अभिमत है कि वह स्थान नही हो सकता, चूकि उसके पास कोई भी नदी नही है, और न जभियगाव नाम के सदृश कोई गाव ही है। यह सत्य है कि सम्मेतशिखर से पूर्व दक्षिण दिशा मे दामोदर नदी आज भी बह रही है। पर ऋजुवालिका नदी का कही भी नाम नही है। आजी नाम की एक नदी उक्त दिशा मे बहती है, किन्तु स्मरण रहे कि वह ऋजुवालिका नदी नही हो सकती। कारण कि आजी नाम की एक बडी और प्रसिद्ध नगरी प्राचीन युग मे भी थी। स्थानाङ्ग मे गगा की पाँच सहायक नदियो मे 'आजी' का भी एक नाम आया है। अत 'आजी' को ऋजुपालिया का अपभ्र श मानना युक्ति-युक्त नही है। ऋजुपालिया नदी से भगवान का द्वितीय समवसरण जहा मध्यमा पावा मे हुआ था, वह स्थान वहा से बारह योजन दूर था, जबकि वह स्थान 'आजी' व दामोदर नदी से काफी दूर है।

जभियगाव और ऋजुवालिका नदी मध्यम पावा के सन्निकट ही होनी चाहिए।

ऋषभपुर

ऋषभपुर के बाहर थूमकरण्डक उद्यान था और धन यक्ष का चैत्य था। रानी का नाम सरस्वती और राजा का नाम धनावह था एव राजकुमार का नाम भद्रनन्दी था। भद्रनदी ने भगवान के पास श्रमणधर्म स्वीकार किया था।

द्वितीय निह्नव तिष्यगुप्त ऋषभपुर के निवासी थे। उत्तराध्ययन सूत्र के टीकाकार ने ऋषभपुर को राजगृह का पर्यायवाची माना है। ऋषभपुर का इतिहास देते हुए आवश्यकचूर्णिकार ने लिखा है—पूर्व वह क्षितिप्रतिष्ठित नगर था। उसका वास्तु विच्छिन्न हो जाने से चनक नगर बसाया गया। चनक नगर जब जीर्ण-शीर्ण हो गया तब ऋषभपुर बसाया गया। उसके पश्चात् कुशाग्रपुर और फिर राजगृह। इससे स्पष्ट है कि राजगृह ऋषभपुर नही है, अपितु मगध का स्वतत्र नगर है। उसके उद्यान आदि के नाम पृथक् आये है।

भगवान महावीर का समवसरण जिस ऋषभपुर मे हुआ था वह ऋषभपुर

मुनि श्री कल्याणविजयजी के अभिमतानुसार पाचाल की ओर उत्तर भारत मे होना चाहिए।[1]

कनखल आश्रमपद

चण्डकौशिक सर्प ने जहा पर भगवान महावीर को डसा था। भगवान ने दृष्टि-विष सर्प को प्रतिबोध देने के पश्चात् पन्द्रह दिन तक वहा पर ध्यान किया था। प्रस्तुत आश्रमपद श्वेताम्बिका नगरी के समीप था।

कनकपुर

भगवान महावीर इस नगर के बाहर श्वेताशोक उद्यान म विराजे थे, उस समय वहा का राजा प्रियचन्द्र था और महारानी का नाम सुभद्रा देवी था। राजकुमार का नाम वैश्रमण था, और उसके पुत्र का नाम धनपति था। भगवान ने प्रथम बार धनपति को पूर्वभव सुनाकर श्रावक के व्रत दिये थे और दूसरी बार पुन जब वहाँ पर पधारे तब धनपति को श्रमणधर्म की दीक्षा प्रदान की थी। वर्तमान मे प्रस्तुत नगर का क्या नाम है, यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता।

कयलि समागम

कयलि समागम यह मगध के दक्षिण प्रदेश मलयभूमि मे होना चाहिए, चूँकि भगवान महावीर मलय की राजधानी भद्दिल नगरी से वहा पर पधारे थे और वहा से वे वैशाली गये थे।

कयगला

भगवान महावीर ने अपना चतुर्थ वर्षावास पृष्ठचम्पा मे किया था और वहा से वे कयगला पधारे थे ओर दरिद्रथेर पापटस्थो के देवल मे ध्यानमुद्रा मे अवस्थित हुए थे। यह स्थान कहा था? इस पर विद्वानो मे एकमत नहीं है।

यदि वह स्थान अगदेश मे चम्पा के पूर्व की ओर था तो सभव है कि वर्तमान मे जो ककजोल है, वही प्राचीन युग की कयगला हो सकती है।

बौद्ध साहित्य के आधार मे कितने ही विज्ञ सथाल जिले मे अवस्थित ककजोल को ही प्राचीन कचकला (कयगला) मानते है।

भगवान महावीर के समय एक कयगला श्रावस्ती के सन्निकट भी थी। कात्यायनगोत्रीय स्कधक परिव्राजक वहा पर रहता था और वह महावीर का शिष्य बना था।[1]

मुनि श्री इन्द्रविजय जी का अभिमत है कि कयगला मध्यदेश के पूर्वी सीमा पर थी, जिसका उल्लेख रायपाल चरित्र मे भी है। यह स्थान राजमहल जिले मे है। यह कयगला श्रावस्ती की कयगला से पृथक् है।[2]

---

१ श्रमण भगवान महावीर, पृ ३५८

१ भगवतीसूत्र

२ तीर्थंकर महावीर, भाग १, पृ० १६८

कर्णसुवर्ण कोटिवष

मुर्शिदाबाद जिले मे भागीरथी के दक्षिण किनारे पर जहा पर वतमान मे रागामाती शहर ह, उसका अपभ्रश नाम 'कानसोना' ह, वही पौराणिक युग मे पश्चिम बगाल की राजधानी कर्णसुवणनगर था। भगवान महावीर के समय कणसुवण कोटि-वर्ष के नाम से प्रसिद्ध था।

कर्मारग्राम

दीक्षा लेकर भगवान महावीर प्रथम रात्रि वहा पर रहे थ और गोप ने सव प्रथम उनको उपसर्ग दिया था।

कर्मारग्राम का अर्थ कर्मकारग्राम ह। दूसरे शब्दो मे कहा जाय तो वह मजदूरो का गाव था। कर्मार का शाब्दिक अर्थ लुहार भी होता ह। सभव है वह लुहारो का गाव था। यह गाव क्षत्रियकुण्ड के सन्निकट था। लिछुआर के पास जो कर्मार ग्राम है, वह इस कर्मारग्राम से विलकुल अलग ह।

कलबुका

यह अगदेश के पूर्व प्रदेश मे था। जहाँ कालहस्ती ने भगवान महावीर का पकडा था और उसके भाई मेघ ने उनको मुक्त कर दिये थे। कलबुका से भगवान राढ देश मे पधारे थे।

कलिग

साढे पच्चीस आय देशो मे कलिग की भी गणना की गई है। कलिग जनपद उत्तर मे उडीसा से लेकर दक्षिण मे आन्ध्र या गोदावरी के मुहाने तक विस्तृत था। काव्यमीमासा मे राजशेखर ने दक्षिण आर पूव के सम्मिलित भू-प्रदेश को कलिग कहा हे।[1] अष्टाध्यायी मे पाणिनी ने भी कलिग जनपद का उल्लेख किया हे।[2] बौद्ध साहित्य मे कलिग की राजधानी दन्तपुर बताई ह तो महाभारतकार ने राजपुर लिखी हे और महावस्तु के अनुसार सिहपुर हे। वसुदेव हिण्डी के अभिमतानुसार काचनपुर हे।[3] सातवी ईस्वी मे कलिग नगर भुवनेश्वर के नाम से विश्रुत हुआ।

कुम्भकार जातक मे कलिग देश के राजा का नाम करण्ड आया है और उसे विदेह राज नमि के समकालीन कहा है। कलिगबोधि जातक के अनुसार कलिग देश के राजकुमार ने भद्रदेश के राजा की लडकी से विवाह किया था। कलिग और वग देश के राजाओ के साथ वैवाहिक सम्बन्ध होते थे।[4] ओघनिर्युक्ति के अनुसार यह जनपद एक व्यापारी केन्द्र था और यहाँ के व्यापारी व्यापारार्थ लका आदि तक जाया करते थे।[5]

---

१ काव्यमीमासा, अध्याय १७, देश विभाग, पृ० २२६ तथा परिशिष्ट २, पृ० २८२
२ अष्टाध्यायी ४।१।१७०
३ वसुदेव हिण्डी, पृ० १११
४ बुद्धकालीन भारतीय भूगोल, पृ० ४६४-४६५
५ ओघनिर्युक्ति टीका ११६

यह जैन श्रमणों का विहारस्थल भी रहा है।[६] खारवेल के समय कलिंग जनपद अत्यन्त समृद्ध था। खारवेल ने एक वृहत् जैन सम्मेलन भी बुलाया था, जिसमे भारतवर्ष मे विचरण करते हुए जैन यति, तपस्वी, ऋषि और विद्वान एकत्रित हुए थे।[७] नावीं-दशमी शताब्दी मे कलिंग मे बौद्ध और वैदिक प्रभाव व्याप्त हो गया था।

युआनचुआंग ने कलिंग जनपद का विस्तार पाच हजार 'ली' और राजधानी का विस्तार बीस 'ली' माना है।[८]

काकन्दी

भगवान महावीर के समय यह उत्तर भारत की बहुत ही प्रसिद्ध नगरी थी। उस समय वहाँ का अधिपति जितशत्रु था। नगर के बाहर सहस्राम्रवन था, भगवान जब कभी वहाँ पर पधारते तब वहाँ पर विराजते थे। भद्रा सार्थवाही के पुत्र धन्य, सुनक्षत्र तथा क्षेमक और धृतिधर आदि अनेक साधकों ने भगवान महावीर के पास दीक्षा ग्रहण की थी।

पण्डित मुनि श्री कल्याणविजयजी के अभिमतानुसार वर्तमान मे लछुआड से पूर्व मे काकन्दी तीर्थ है, वह प्राचीन काकन्दी का स्थान नही है। काकन्दी उत्तरभारत मे थी। नूनखार स्टेशन से दो मील और गोरखपुर से दक्षिण पूर्व तीस मील पर दिगम्बर जैन जिस स्थल को किष्किधा अथवा खुखुदोजी नामक तीर्थ मानते है वही प्राचीन काकन्दी होनी चाहिए।

काम्पिल्य

काम्पिल्य को कपिला भी कहते है। यहा पर तेरहवे तीर्थंकर विमलनाथ का जन्म, राज्याभिषेक, दीक्षा आदि अनेक प्रसग हुए थे। कपिलपुर कल्प मे जिनप्रभसूरि ने लिखा है—जम्बूद्वीप से दक्षिण भरतखण्ड मे पूर्व दिशा मे पाचाल नामक देश मे कपिल नामक नगर गगा के किनारे अवस्थित है। अठारहवी शताब्दी के जैन यात्रियों ने कपिला की यात्रा करते हुए लिखा है—

जी हो अयोध्या थी पश्चिम दिशे
जी हो कपिलपुर छे दाय।
जी हो, विमल जन्मभूमि जाण जो
जी हो पिटियारी वहि जाय॥

---

६ ओघनिर्युक्ति भाष्य ३०

७ (सु) कति समणासुविहितान (नु १) च सतदिसान (नु) जातिन तपसि इसिन सघियन (नु १) अरहतनिसीदिया समीपे पभारे वराकर समुथपिताहि अनेक योजनाहि ताहि प० सि० ओ सिलाहि सिह पथरानिसि फुडाय निसयानि।
—खारवेल शिलालेख पं० १५

८ युआन चुआंगस् ट्रैवेल्स इन इण्डिया—भाग २, पृ० १९८

इसमें कपिलपुर नगरी का अयोध्या से पश्चिम दिशा में होने का उल्लेख है। पं० बेचरदास जी का मन्तव्य है—फर्रुखाबाद जिले में आये हुए कायमगंज से उत्तर-पश्चिम में छह मील के ऊपर कपिला हो, ऐसा लगता है।[1]

कनिंघम ने काम्पिल्य की पहचान उत्तर प्रदेश के फर्रुखाबाद जिले में फतेहगढ से २८ मील दूर उत्तर-पूर्व गंगा के समीप में स्थित काम्पिल से की है।[2] कायमगंज रेलवे स्टेशन से यह केवल पाँच मील दूर है। महाराजा द्विमुख इसी नगर में शोभाहीन ध्वजा को देखकर प्रतिबुद्ध हुए।[3]

आजकल काम्पिल्य, कपिला के नाम से प्रसिद्ध है। यह फर्रुखाबाद से पच्चीस और कायमगंज से छह मील उत्तर-पश्चिम की ओर बूढी गंगा के किनारे अवस्थित है।

कालायसन्निवेश

कालायसन्निवेश यह चम्पा के सन्निकट था। भगवान महावीर चम्पा के बाहर पारणा कर यहाँ पर पहुँचे थे और उन्होंने शून्य घर में ध्यान किया था। ग्रामकूट सिंह ने गोशालक की पूजा की थी।

काशी

काशी जनपद पूर्व में मगध, पश्चिम में वत्स (वंस), उत्तर में कोशल और दक्षिण में 'सोन' नदी तक विस्तृत था।

काशी जनपद की सीमाएं सदा एक समान नहीं रही है। काशी और कौशल में परस्पर संघर्ष भी चलता रहा है। कभी काशी निवासियों ने कौशल पर अधिकार किया तो कभी कोशल निवासियों ने काशी पर। उत्तराध्ययन की टीका में लिखा है कि हरिकेशबल वाराणसी के तिन्दुक उद्यान में ठहरे हुए थे। वहाँ पर कौशलराज की पुत्री भद्रा यक्षपूजन के लिए उपस्थित हुई।[1] प्रस्तुत प्रसंग से यह सिद्ध होता है कि उस समय काशी पर कौशल का आधिपत्य था।

आगमों में गिनाए गये—साढे पच्चीस आर्य देशों एवं सोलह महा जनपदों में काशी का भी उल्लेख प्राप्त होता है।[2] भारत की दस प्रमुख राजधानियों में वाराणसी का भी नाम मिलता है।[3] यूआन चुआङ्ग ने वाराणसी को देश और नगर दोनों माना

---

१ भगवान महावीरनी धर्मकथाओ टिप्पण, पृ० २३६

२ दी एन्शियन्ट ज्योग्राफी ऑफ इण्डिया, पृ० ४१३

३ उत्तराध्ययन सुखबोधा, पत्र १३५-१३६

१ उत्तराध्ययन सुखबोधा, पत्र १७४

२ व्याख्या प्रज्ञप्ति १५, पृ० ३८७

तुलना करें अंगुत्तरनिकाय १।३, पृ० २१७

३ (क) स्थानाङ्ग सूत्र १०

(ख) निशीथ सूत्र ६।१९

(ग) दीघनिकाय, महापरिनिब्बाण सुत्त

यह जैन श्रमणो का विहारस्थल भी रहा है।[६] खारवेल के समय कलिंग जनपद अत्यन्त समृद्ध था। खारवेल ने एक वृहत् जैन सम्मेलन भी बुलाया था, जिसमे भारतवर्ष मे विचरण करते हुए जैन यति, तपस्वी, ऋषि और विद्वान एकत्रित हुए थे।[७] नावी-दशमी शताब्दी मे कलिंग मे बौद्ध और वैदिक प्रभाव व्याप्त हो गया था।

युआनचुआग ने कलिंग जनपद का विस्तार पाच हजार 'ली' और राजधानी का विस्तार बीस 'ली' माना है।[८]

काकन्दी

भगवान महावीर के समय यह उत्तर भारत की बहुत ही प्रसिद्ध नगरी थी। उस समय वहाँ का अधिपति जितशत्रु था। नगर के बाहर सहस्राम्रवन था, भगवान जब कभी वहाँ पर पधारते तब वहाँ पर विराजते थे। भद्रा सार्थवाही के पुत्र धन्य, सुनक्षत्र तथा क्षेमक और धृतिधर आदि अनेक साधको ने भगवान महावीर के पास दीक्षा ग्रहण की थी।

पण्डित मुनि श्री कल्याणविजयजी के अभिमतानुसार वर्तमान मे लछुआड से पूर्व मे काकन्दी तीर्थ है, वह प्राचीन काकन्दी का स्थान नही है। काकन्दी उत्तरभारत मे थी। नूनखार स्टेशन से दो मील और गोरखपुर से दक्षिण पूर्व तीस मील पर दिगम्बर जैन जिस स्थल को किष्किधा अथवा खुखुदोजी नामक तीर्थ मानते है वही प्राचीन काकन्दी होनी चाहिए।

काम्पिल्य

काम्पिल्य को कपिला भी कहते है। यहाँ पर तेरहवे तीर्थकर विमलनाथ का जन्म, राज्याभिषेक, दीक्षा आदि अनेक प्रसग हुए थे। कपिलपुर कल्प मे जिनप्रभसूरि ने लिखा है—जम्बूद्वीप से दक्षिण भरतखण्ड मे पूर्व दिशा मे पाचाल नामक देश मे कपिल नामक नगर गगा के किनारे अवस्थित है। अठारहवी शताब्दी के जैन यात्रियो ने कपिला की यात्रा करते हुए लिखा है—

> जी हो अयोध्या थी पश्चिम दिशे
> जी हो कपिलपुर छे दाय।
> जी हो, विमल जन्मभूमि जाण जो
> जी हो पिटियारी बहि जाय ॥

---

६ ओघनिर्युक्ति भाष्य ३०

७ (सु) कति समणासुविहितान (नु १) च सतदिसान (नु) जातिन तपसि इसिन सघियन (नु १) अरहतनिसीदिया समीपे पभारे वराकर समुथपिताहि अनेक योजनाहि ताहि प० सि० ओ मिलाहि सिह पथरानिसि फुडाय निसयानि।

—खारवेल शिलालेख पृ० १५

८ युआन चुआगस् ट्रैवेल्स इन इण्डिया—भाग २, पृ० १६८

इसमें कपिलपुर नगरी का अयोध्या से पश्चिम दिशा में होने का उल्लेख है। प० बेचरदास जी का मन्तव्य है—फर्रुखाबाद जिले में आये हुए कायमगंज से उत्तर-पश्चिम में छह मील के ऊपर कपिला हो, ऐसा लगता है।[1]

कनिंघम ने काम्पिल्य की पहचान उत्तर प्रदेश के फर्रुखाबाद जिले में फतेहगढ से २८ मील दूर उत्तर-पूर्व गंगा के समीप में स्थित कांपिल से की है।[2] कायमगंज रेलवे स्टेशन से यह केवल पाँच मील दूर है। महाराजा द्विमुख इसी नगर में शोभाहीन ध्वजा को देखकर प्रतिबुद्ध हुए।[3]

आजकल काम्पिल्य, कपिला के नाम से प्रसिद्ध है। वह फर्रुखाबाद से पच्चीस और कायमगंज से छह मील उत्तर-पश्चिम की ओर बूढ़ी गंगा के किनारे अवस्थित है।

कालायसन्निवेश

कालायसनिवेश यह चम्पा के सन्निकट था। भगवान महावीर चम्पा के बाहर पारणा कर यहाँ पर पहुँचे थे और उन्होंने शून्य घर में ध्यान किया था। ग्रामकूट सिंह ने गोशालक की पूजा की थी।

काशी

काशी जनपद पूर्व में मगध, पश्चिम में वत्स (वंस), उत्तर में कौशल और दक्षिण में 'सोन' नदी तक विस्तृत था।

काशी जनपद की सीमाएं सदा एक समान नहीं रही है। काशी और कौशल में परस्पर संघर्ष भी चलता रहा है। कभी काशी निवासियों ने कौशल पर अधिकार किया तो कभी कोशल निवासियों ने काशी पर। उत्तराध्ययन की टीका में लिखा है कि हरिकेशबल वाराणसी के तिन्दुक उद्यान में ठहरे हुए थे। वहाँ पर कौशलराज की पुत्री भद्रा यक्षपूजन के लिए उपस्थित हुई।[1] प्रस्तुत प्रसंग से यह सिद्ध होता है कि उस समय काशी पर कौशल का आधिपत्य था।

आगमों में गिनाए गये—साढे पच्चीस आर्य देशों एवं सोलह महा जनपदों में काशी का भी उल्लेख प्राप्त होता है।[2] भारत की दस प्रमुख राजधानियों में वाराणसी का भी नाम मिलता है।[3] यूआन चुआङ्ग ने वाराणसी को देश और नगर दोनों माना

---

१ भगवान महावीरनी धर्मकथाओ टिप्पण, पृ० २३९
२ दी एन्शियन्ट ज्योग्राफी ऑफ इण्डिया, पृ० ४१३
३ उत्तराध्ययन सुखबोधा, पत्र १३५-१३६
१ उत्तराध्ययन सुखबोधा, पत्र १७४
२ व्याख्या प्रज्ञप्ति १५, पृ० ३८७
तुलना करें अंगुत्तरनिकाय १।३, पृ० १९७
३ (क) स्थानाङ्ग सूत्र १०
(ख) निशीथ सूत्र ९।१९
(ग) दीघनिकाय, महापरिनिब्बाण सुत्त

है। उसने वाराणसी देश का विस्तार चार हजार 'ली' और नगर का विस्तार लम्बाई मे अठारह 'ली' और चौडाई मे छह 'ली' बताया है।[४]

जातक के अनुसार काशी राज्य का विस्तार ३०० योजना था।[५]

वाराणसी काशी जनपद की राजधानी थी। यह नगर 'वरना' (वरुणा) और असी इन दो नगरियो के बीच स्थित था[६] अत इसका नाम वाराणसी पडा, यह नैरुक्त नाम है।[७] आधुनिक वाराणसी गगा नदी के उत्तरी किनारे पर गगा और वरुणा के सगमस्थल पर है।

काशी, कौशल आदि १८ गणराज्यो ने वैशाली के अधिपति चेटक की ओर से राजा कूणिक से युद्ध किया था।[८] काशी और कोशल के अठारह गणराजा भगवान महावीर के परिनिर्वाण के समय वहाँ पर उपस्थित थे।[९] काशी नरेश शख ने भगवान महावीर के पास दीक्षा ली थी।[१०]

काशी भगवान पार्श्व की जन्मस्थली है।[११]

कुण्डपुर

बसाढ के निकट जो वासुकुण्ड स्थान है, वही प्राचीन युग मे कुण्डपुर था। उसके दो विभाग थे। एक ब्राह्मण कुण्डग्राम और दूसरा क्षत्रिय कुण्डग्राम। ब्राह्मण-कुण्ड ग्राम मे ब्राह्मणो का प्राधान्य था और क्षत्रिय कुण्डग्राम मे क्षत्रियो का। भगवान महावीर एक बार जब ब्राह्मण कुण्डग्राम मे पधारे तब दोनो ही कुण्डग्रामो के भावुक-भक्त उन्हे वन्दन के लिए पहुँचे थे। इससे यह सिद्ध होता है कि वे दोनो कुण्डग्राम आस-पास मे थे। दोनो के बीच मे बहुसाल नामक चैत्य था।

कुण्डपुर की अवस्थिति वैशाली के सन्निकट थी। आजकल परम्परा के अनुसार भगवान महावीर की जन्मस्थली क्यूल स्टेशन से पश्चिम की ओर आठ कोस पर अवस्थित लच्छु आडगॉव मानते है, वह ठीक नही है। लच्छु-आड कुण्डपुर नही है। कुण्डपुर वैशाली के सन्निकट ही था। इस सम्बन्ध मे प्रस्तुत ग्रन्थ मे जन्मस्थली प्रकरण मे हमने विस्तार से लिखा है। अत स्पष्टीकरण के लिए उस स्थल को देखे।

---

४ युआन् चुआङ्गस ट्रेवेल्स इन, इडिया भाग २, पृ० ४६ से ४८
५ वजविहेट्ठ जातक (स० ३९१) जातक—भाग ३, पृ० ४५४
६ दी एन्शिएण्ट ज्योग्राफी आफ इडिया, पृ० ४९९
७ विविध तीर्थकल्प, पृ० ७२
८ निरयावलिका सूत्र १
९ कल्पसूत्र
१० स्थानाङ्ग ८।६२१
११ (क) कल्पसूत्र १४९, पृ० २१३
(ख) समवायाग २५०।२४

कुडाकसन्निवेश

आलभिया के बाहर भगवान महावीर ने पारणा किया। वहाँ से वे कुण्डाक-सन्निवेश पधारे थे और वासुदेव के आलय मे ध्यान-मुद्रा मे अवस्थित हुए। प्रस्तुत सन्निवेश काशी राष्ट्र के पूर्वप्रदेश मे आलभिया के सन्निकट था।

कुमाराकसन्निवेश

यह सनिवेश अगदेश की पृष्ठचम्पा के सन्निकट था। भगवान ने इसके बाहर चम्परमणीयोद्यान मे ध्यान किया था और गोशालक ने यहाँ पर पार्श्वापित्य श्रमणो से असभ्यतापूर्ण वार्तालाप किया था।

कुरु

प्रस्तुत देश पाञ्चाल के पश्चिम मे और मत्स्य के उत्तर मे था। उसकी पहले राजधानी हस्तिनापुर मे थी, जहा पर भगवान शान्तिनाथ आदि अनेक तीर्थंकरो ने जन्म ग्रहण किया था। पाण्डवो ने इन्द्रप्रस्थ को फिर इस देश की राजधानी बनाई।

कुरु (थानेश्वर) का उल्लेख महाभारत मे भी आता है। यहा के लोग पूर्ण स्वस्थ और प्रतिभासम्पन्न थे।

वसुदेव हिण्डी मे इसको ब्रह्मस्थल कहा है।[1] श्रावस्ती के समान हस्तिनापुर भी उजाड पडा है।

कुरुजागल

कुरुजागल का ही अपर नाम श्रीकण्ठ देश था। यह देश हस्तिनापुर से उत्तर-पश्चिम मे था। सहारनपुर से तेतीस मील उत्तर-पश्चिम की ओर बिलासपुर इसकी राजधानी थी। जैन साहित्य मे जगल की राजधानी अहिच्छत्रा लिखा है, इससे यह प्रतीत होता है कि उत्तर-पाचाल और कुरु-देश का सयुक्तराष्ट्र कुरुजागल होगा।

कूपियसन्निवेश

छद्मस्थ अवस्था मे भगवान महावीर वहाँ पर पधारे थे, और गुप्तचर समझकर उन्हे वहाँ पर पकड लिया गया था। विजया और प्रगल्भा परिव्राजिकाओ ने भगवान का परिचय देकर मुक्त करवाया था। यह सन्निवेश वैशाली से पूर्व मे विदेह भूमि मे था।

कूर्मग्राम

यह ग्राम पूर्वीय बिहार मे होना चाहिए। चूकि भगवान महावीर वीरभोम से सिद्धार्थपुर होते हुए यहाँ पर आये थे।

केकय

साढे पच्चीस आर्य देशो मे केकय की भी गणना की गई है।[1] केकय का आधा

---

१ वसुदेव हिण्डी, पृ० १६५

१ (क) बृहत्कल्प सूत्र सभाष्य और सटीक, ३, पृ० ९१३

(ख) प्रज्ञापनासूत्र मलयगिरिवृत्ति, पत्र ५५-२

भाग आर्य देश में था और आधा भाग अनार्य-देश में था। संभव है कि आधे भाग में जैन धर्म का प्रचार हो और आधे भाग में आदिवासियों की आबादी हो।

केकय नाम के दो प्रदेश थे। एक था खिवाड़ा नमक की पहाड़ी अथवा शाहपुर-झेलम-गुजरात। पाणिनी ने केकय-जनपद में झेलम, शाहपुर और गुजरात का नाम दिया है।[२] दूसरा केकय श्रावस्ती के उत्तर पूर्व में नेपाल की तराई में अवस्थित था। इसकी राजधानी श्वेताम्बिका थी। वह संभवतः श्रावस्ती और कपिलवस्तु के मध्य में नेपालगंज के पास थी।

श्वेताम्बिका श्रावस्ती से राजगृह जाने वाले मार्ग पर थी। राजप्रश्नीय में उसे श्रावस्ती के सन्निकट बताया है। फाहियान और बौद्ध ग्रन्थों में भी उसे श्रावस्ती से निकट कहा है।[3] कितने ही आधुनिक विद्वान सीतामढी को श्वेताम्बी मानते है, किन्तु वह अनुचित है, चूंकि सीतामढी श्रावस्ती से २०० मील दूर है। मि० बोस्ट ने बलेदिला को प्राचीन श्वेताम्बी माना है, जो सहेत-महेत से ३७ मील दूर और बलरामपुर से ६ मील है।

जैन ग्रन्थों में श्वेताम्बिका (सेयविया) को केकय की राजधानी कहा है। बौद्ध साहित्य में उसे 'सेतव्या' कहा है और उसे कौशल देश की नगरी बतलाई है।[४] श्वेताम्बिका से गंगा नदी पार कर महावीर के सुरभिपुर पहुँचने का उल्लेख मिलता है।[५] श्वेताम्बिका का राजा प्रदेशी निर्ग्रन्थ धर्म का उपासक था। भगवान महावीर ने अनेक बार इस प्रदेश को पावन किया था।

कोटिवर्ष

राढदेश की कोटिवर्ष राजधानी थी। यहाँ के राजा किरातराज ने भगवान महावीर के पास दीक्षा ली थी, साकेत नगर में आकर के।

कोटिवर्ष में किरातजाति का राज्य था। छद्मस्थ अवस्था में जब महावीर इधर विचरे थे तब यह प्रदेश अनार्य था, पर किरातराज के दीक्षा लेने के पश्चात् जैन श्रमणों का इधर विहार होने से और जैनधर्म का प्रचार होने से बाद में आचार्यों ने इसकी गणना आर्यदेश में की। पच्चीस आर्य-देशों में राढ का भी नाम है।

पौराणिक साहित्य में कोटिवर्ष का नाम कर्णसुवर्ण मिलता है। यह देश वर्तमान में पश्चिम बंगाल में मुर्शिदाबाद के आसपास था, ऐसा विज्ञों का मत है।

(ग) सूत्रकृतांग सटीक प्रथम भाग, पत्र १२२
(घ) प्रवचनसारोद्धार, पत्र ४४६
२ पाणिनी कालीन भारतवर्ष, पृ० ५१-६७
३ डिक्शनरी आव पाली प्रापर नेम्स, भाग २, पृ० १८७
४ दीघ निकाय २, पायासिसुत्त, पृ० २३६
५ (क) आवश्यक निर्युक्ति ४६९-७०
(ख) महावीर चरिय, पत्र १७७-२, गुणचन्द्र

कोल्लाक सन्निवेश

कोल्लाक नाम के दो सन्निवेश थे। एक वैशाली के सन्निकट और दूसरा राजगृह के सन्निकट। वैशाली के सन्निकट जो कोल्लाक सन्निवेश था, वहा पर भगवान दीक्षा लेने के पश्चात् प्रथम पारणा करते है।

दूसरा कोल्लाक सन्निवेश राजगृह के पास था। जहा पर भगवान महावीर ने छद्मस्थकाल मे नालन्दा का वर्षावास पूर्ण कर मासिकोपवास का पारणा किया था। यही पर गोशालक को शिष्य के रूप मे रहने की स्वीकृति दी थी। ५० मुनि श्री कल्याणविजय जी का अभिमत है चौथे और पाँचवे गणधर की जन्मस्थली भी यही कोल्लाक सन्निवेश होना चाहिए।

जो लोग लछवाड़ के पास तीसरे कोल्लाक की कल्पना करते है, वह ऐतिहासिक दृष्टि से ठीक नही है। चूकि दो ही कोल्लाक सन्निवेश थे, तीसरा नहीं था।

वैशाली के सन्निकट जो कोल्लाक सन्निवेश था वह वर्तमान मे वसाढ से उत्तर-पश्चिम मे दो मील पर जो कोल्हुआ है, वही प्राचीन कोल्लाक सन्निवेश होना चाहिए।

कोसला

अयोध्या का अपर नाम कोसला था। भगवान महावीर के नौवे गणधर अचलभ्राता की यह जन्मभूमि थी।

कौशाम्बी

कौशाम्बी (कोसम, जिला-इलाहबाद) वत्स की राजधानी थी। इस नगरी का वर्णन रामायण और महाभारत मे भी आता है। कहा जाता है कि गगा की बाढ से हस्तिनापुर के नष्ट-भ्रष्ट हो जाने पर राजा परीक्षित के उत्तराधिकारियो ने कौशाम्बी को राजधानी बनाया। यहा के कुक्कुटाराम, घोषिताराम, और अम्बवन आदि का उल्लेख जैन और बौद्ध वाङ्मय मे अनेक स्थलो पर आया है।

कनिंघम के अभिमतानुसार यमुना नदी के बाये तट पर इलाहाबाद से सीधे रास्ते से लगभग ३० मील दक्षिण-पश्चिम मे अवस्थित 'कोसम' गाव ही प्राचीन कौशाम्बी है।[1]

उत्तराध्ययन बृहद्वृत्ति के अनुसार कोशाम्बी और राजगृह के बीच अठारह योजन का एक महा-अरण्य था। वहा पर बलभद्र आदि कक्कडदास जाति के पाँच सौ तस्कर रहते थे, जिन्हे कपिल मुनि ने प्रतिबोध दिया था।[2]

बृहत्कल्प मे श्रमण और श्रमणियो के विहार की जो सीमा निर्धारित की है, उसमे कौशाम्बी दक्षिण दिशा की सीमा निर्धारण नगरी थी।[3]

---

१ दी एन्शियण्ट ज्योग्राफी ऑफ इण्डिया, पृ० ४५४

२ उत्तराध्ययन बृहद्वृत्ति, पत्र २८८-२८९

३ बृहत्कल्पसूत्र भाग ३, पृ० ९१२

कोशाम्बी के आसपास की जो खुदाई हुई है और जो भग्नावशेष निकले है उसके सम्बन्ध मे विन्सेट स्मिथ ने लिखा है—मेरा यह दृढ निश्चय है कि इलाहाबाद जिले के अन्तर्गत कोसम गाव से प्राप्त अवशेषो मे अधिकतर जैनो के ह। कनिघम ने जो इन्हे बौद्ध अवशेषो के रूप मे स्वीकार किया है, वह ठीक नही है। नि सन्देह यह स्थान जैनो की प्राचीन नगरी कौशाम्बी का ही प्रतिनिधित्व करता है।[४]

भगवान महावीर भी अनेक बार कौशाम्बी पधारे। चन्दनबाला और मृगावती ने यही पर दीक्षा ली थी। राजा शतानीक भी कोशाम्बी का ही शासक था। कौसाविया जैन श्रमणो की शाखा मानी गई है।[५]

क्षितिप्रतिष्ठित

भगवान महावीर के विहार वर्णन मे क्षितिप्रतिष्ठित नगर का भी उल्लेख हुआ है। क्षितिप्रतिष्ठित नगर की अवस्थिति कहाँ थी? यह निश्चित रूप से कहना कठिन ह। गगा के बाये तट पर जहाँ इस समय झूसी है, वही पर पहले प्रतिष्ठानपुर नगर था। सभव है प्रतिष्ठानपुर का ही अपरनाम क्षितिप्रतिष्ठित रहा हो।

गगा

भारतवर्ष की सबसे बडी नदी गगा है। गगा को देवताओ की नदी माना है।[१] जैन साहित्य मे गगा को देवाधिष्ठित नदी कहा है।[२] गगा का विराट् रूप ही उसकी देवत्व की प्रसिद्धि का कारण रहा ह।

गगा महानदी है।[३] स्थानाङ्ग मे गगा को महार्णव कहा है।[४] आचार्य अभयदेव ने 'महार्णव' शब्द को उपमावाचक मानकर उसका अर्थ किया है कि विशाल जल-

---

४ आवश्यक टीका मलयागिरि, पृ १०२

५ कल्पसूत्र ८, पृ २२६

१ (क) स्कन्दपुराण, काशी खण्ड, गगा सहस्रनाम २६ अध्याय
(ख) अमरकोष १।१०।३१

२ जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति ४ वक्षस्कार

३ (क) स्थानाङ्ग ५।३
(ख) समवायाग २४वा समवाय
(ग) जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति ४ वक्षस्कार
(घ) निशीथ सूत्र १२।४२
(ड) बृहत्कल्पसूत्र ४।३२

४ (क) स्थानाङ्ग ५।२।१
(ख) निशीथ १२।४२
(ग) बृहत्कल्प ४।३२

राशि के कारण वह विराट् समुद्र के समान थी।[५] पुराणकार ने भी गगा को समुद्र-रूपिणी कहा है।[६]

वैदिक दृष्टि से गगा मे नौसौ नदियाँ मिलती ह।[७] जैन दृष्टि मे चौदह हजार नदियाँ गगा मे मिलती है।[८] जिनमे यमुना, सरयू, कोशी मही आदि बडी नदियाँ भी मिलती है।

प्राचीन काल मे गगा नदी का प्रवाह बहुत विशाल था। समुद्र मे प्रवेश करते समय गगा का पाट साढे बासठ योजन चौडा था।[९] और पाच कोस गहरी थी[१०]।

आज गगा इतनी विशाल और गहरी नही ह। गगा नदी मे से और उसकी सहायक नदियो मे से अनेकानेक विराटकाय नहरे निकल चुकी ह। तथापि गगा अपनी विराट्ता के लिए विश्रुत ह। वैज्ञानिक सर्वेक्षण के अनुसार गगा १,५५७ मील के लम्बे मार्ग को तय कर बगसागर मे गिरती ह। यमुना, गोमती, सरयू, रामगगा, गडकी, कोशी और ब्रह्मपुत्र आदि अनेक नदियो को अपने मे मिलाकर वर्षाकालीन बाढ से गा महानदी १८००,००० घनफुट पानी का प्रस्राव प्रति सैकण्ड करती है।[११]

भगवान महावीर के विहार प्रसग मे गगा का उल्लेख अनेक बार आया है। ाचीन ग्रन्थो मे भगवान ने छद्मस्थकाल मे दो बार नाव द्वारा गगा पार की, ऐसा ल्लेख आया है।[१२]

उपाध्याय श्री अमरमुनि जी महाराज ने 'भगवान महावीर ने गगा महानदी त्यो पार की।'[१३] शीर्षक लेख मे भगवान महावीर ने केवलज्ञान के पश्चात् अठाईस बार गगा महानदी नौका से पार की, ऐसा उल्लेख किया है। प्राचीन ग्रन्थो मे कही पर भी केवलज्ञान के पश्चात् नौका से गगा पार की, ऐसा वर्णन नही आया है।

गडकी

प्रस्तुत नदी हिमालय के सप्तगडकी और धवलगिरि से निकलती है। इस नदी

---

५ (क) स्थानाङ्ग वृत्ति ५।२।१
(ख) बहुदकतत्वा महार्णवकल्पा —बृहत्कल्पभाष्य टीका ५६१६

६ समुद्ररूपिणी स्वार्ग्या। —स्कन्दपुराण, काशीखण्ड, २९ अ०

७ आसा नवशतैर्युक्ता गगा पूर्वसमुद्रगा। —हारीत १।७

८ चोद्दसहि सलिलासहस्सेहि समाणा। —जम्बूद्वीप० ४ वक्षस्कार

९ मुहे वा सट्ठि जोयणाइ अद्ध जोयण च विक्खभेण। —जम्बू० ४ वक्षस्कार

१० सकोस जोयण उव्वेहेण। —जम्बू० ४ वक्षस्कार

११ हिन्दी विश्वकोष, नागरी प्रचारिणी सभा

१२ (क) वीरवरस्स भगवओ, नावारूढस्स कासि उवसग्ग। —आव० निर्युक्ति ४७१
(ख) तओ सामी सुरभिपुर गओ, तत्थ गगा उत्तरीयव्वा भयव नावाए ठिओ। —आवश्यक चूर्णि ४७१

१३ उपाध्यायश्री अमरमुनिजी का लेख।

के गडक, नारायणी आदि अनेक नाम है। महावीर के समय इसका नाम गडकिका (गडइआ) मिलता है।

गटकी के किनारे ही वैशाली और वाणिज्यग्राम बसे हुए थे।

गुणशील

राजगृह के बाहर गुणशील नामक एक प्रसिद्ध बगीचा था। भगवान महावीर के शताधिक बार यहाँ समवसरण लगे थे। शताधिक व्यक्तियों ने यहाँ पर श्रमणधर्म व चारित्रधर्म ग्रहण किया था। भगवान महावीर के प्रमुख शिष्य गणधरों ने यहीं पर अनशन कर निर्वाण प्राप्त किया था। वर्तमान का गुणावा, जो नवादा स्टेशन से लगभग तीन मील पर है, वही महावीर के समय का गुणशील है।

गोकुल

गोकुल का दूसरा नाम व्रजगाव भी मिलता है। भगवान महावीर जब यहा पर भिक्षा के लिए पधारे तो सगमक ने सभी स्थानों पर आहार मे अनेषणा कर दी थी, यहीं से सगमक ६ महीने के पश्चात् लौटा था। मुनि श्री कल्याणविजय जी के अभिमतानुसार यह गोकुल उडीसा मे या दक्षिण कोसल मे कहीं पर होना चाहिए।

गोव्बरगाव

गोव्वरगाव राजगृह से पृष्ठचम्पा जाने वाले रास्ते मे आता था। गोतम-रासा म इसे मगधदेश मे होने का उल्लेख किया है। कितने ही उल्लेखों से यह ज्ञात होता है कि यह पृष्ठचम्पा के सनिकट था, अत यह अगभूमि मे रहा होगा ऐसा प्रतीत होता है। महावीर के प्रमुख शिष्य इन्द्रभूति, अग्निभूति और वायुभूति की यह जन्मस्थली थी।

ग्रामक सनिवेश

प्रस्तुत सनिवेश वैशाली और शालिशीष नगर के मध्य मे था। इस सनिवेश के बाहर विभेलक उद्यान था। जहाँ पर महावीर ध्यानमुद्रा मे खडे हुए थे, और विभेलक यक्ष ने भगवान की अर्चना की थी।

चन्दनपादप उद्यान

मृगगाव के सनिकट ही यह उद्यान था। भगवान महावीर ने इसी उद्यान मे मृगापुत्र के पूर्वभव का निरूपण किया था।

चन्द्रावतरण चैत्य

चन्द्रावतरण नाम के दो चैत्य थे, एक उद्दण्डपुर के निकट तो दूसरा कौशाम्बी के बाहर। भगवान महावीर दूसरे चन्द्रावतरण चैत्य मे अनेक बार पधारे थे और जयन्ती, मृगावती, अगारवती आदि अनेक राज-महिलाओं को श्रमणधर्म मे दीक्षित किया था।

चम्पा

इसके पास ही पश्चिम की ओर एक बडा गाव ह, जिसे चम्पानगर कहते ह और एक छोटा-सा गाव है जिसे चम्पापुर कहते ह। सभव हे, ये दोनो प्राचीन राजधानी चम्पा की सही स्थिति के द्योतक हो।[1]

फाहियान ने चम्पा को पाटिलपुत्र से १८ योजन पूव दिशा मे गगा के दक्षिण तट पर स्थित माना हे।[2]

महाभारत की दृष्टि मे चम्पा का प्राचीन नाम 'मालिनी' था। महाराजा चम्प ने उसका नाम चम्पा रखा।[3]

स्थानाङ्ग[4] मे जिन दस राजधानियो का उल्लेख हुआ हे और दीघनिकाय मे जिन छह महानगरियो का वणन किया गया हे, उनमे एक चम्पा भी हे। ओपपातिक सूत्र मे इसका विस्तार से निरूपण ह।[5]

दशवैकालिक सूत्र की रचना आचार्य शय्यभव न यही पर की थी।[6]

सम्राट् श्रेणिक के निधन के पश्चात् कूणिक (अजातशत्रु) को राजगृह मे रहना अच्छा न लगा ओर एक स्थान पर चम्पा के सुन्दर उद्यान को देखकर चम्पा नगर बसाया।[7] गणि कल्याणविजय जी के अभिमतानुसार चम्पा पटना से पूर्व (कुछ दक्षिण मे) लगभग सौ कोस पर थी। आजकल इसे चम्पानाला कहते ह। यह स्थान भागल-पुर से तीन मील दूर पश्चिम मे ह।[8]

चम्पा के उत्तर-पूर्व मे पूर्णभद्र नाम का रमणीय चैत्य था, जहाँ पर भगवान महावीर ठहरते थे।

चम्पा उस युग मे व्यापार का प्रमुख केन्द्र था, जहाँ पर माल लेने के लिए दूर-दूर से व्यापारी आते थे और चम्पा के व्यापारी भी माल लेकर मिथिला, अहिच्छत्रा ओर पिहुँड (चिकाकोट आर कलिगपट्टम का एक प्रदेश) आदि मे व्यापारार्थ जाते थे।[9] चम्पा और मिथिला मे साठ योजना का अन्तर था।

चेदि

चेदि जनपद वत्स जनपद के दक्षिण मे, यमुना नदी के सन्निकट अवस्थित था।

---

१ दी एन्शियण्ट ज्योग्राफी ऑफ इण्डिया, पृ० ५४६-५४७

२ ट्रैवेल्स ऑफ फाहियान, पृ० ६५

३ महाभारत १२।५।१३४

४ स्थानाङ्ग १०।७१७

५ औपपातिक, चम्पा वणन

६ जैन आगम साहित्य मे भारतीय समाज, पृ० ४६४

७ विविध तीर्थकल्प, पृ० ६५

८ श्रमण भगवान महावीर, पृ० ३६६

९ (क) ज्ञातृधर्मकथा ८, पृ० ९७,९, पृ० १२१-१५, पृ० १५९
(ख) उत्तराध्ययन २१।२

इसके पूर्व मे काशी, दक्षिण मे विन्ध्य पर्वत, पश्चिम मे अवन्ती और उत्तर-पश्चिम मे मत्स्य व सुरसेन जनपद थे। मध्यप्रदेश का कुछ भाग और बुन्देलखण्ड का कुछ हिस्सा इस जनपद के अन्तर्गत आता था। विभिन्न कालो मे इसकी सीमा परिवर्तित होती रही है। चेतीय जातक के अनुसार इस जनपद की राजधानी सोत्थिवती नगरी थी। नन्दलाल दे का कथन है सोत्थिवती नगरी ही महाभारत की शुक्तिमती नगरी थी।[1] पार्जिटर इस जनपद को बादा के समीप बतलाते है।[2] डा० रायचौधरी का भी यही मत है।[3] बौद्ध साहित्य मे चेदि राष्ट्र का विस्तार से निरूपण है और इसके प्रसिद्ध नगरो का भी कथन है। चेदि जनपद से काशी जनपद जाने का एक मार्ग था। वह भयकर अरण्य मे से होकर जाता था और मार्ग मे तस्करो का भी भय रहता था।[4] महाभारत-युग मे शिशुपाल 'चेदि' जनपद का सम्राट था।[5] आचार्य जिनसेन ने चेदि राज्य की समृद्धि का वर्णन किया है।[6] चदेरी नगरी का समीपस्थ प्रदेश 'चेदि' जनपद कहलाता था। शुक्तिमतीया जैन श्रमणो की एक शाखा भी रही है।[7]

बादा जिले से आस-पास के प्रदेश को शुक्तिमती कहा जाता है।

चोराक सनिवेश

चोराक सनिवेश यह प्राचीन अग जनपद और आधुनिक पूर्व विहार मे होना चाहिए। यहाँ पर भगवान महावीर को गुप्तचर समझकर पकडा था और बाद मे सोमा और जयन्ती परिव्राजिकाओ के परिचय देने पर भगवान को मुक्त किया था।

छम्माणि

छम्माणि मध्यमपावा के सन्निकट चम्पा के रास्ते पर था। यही पर ग्वाले ने भगवान के कानो मे काष्ठ शलाकाए डाली थी।

जम्बूसड

भगवान महावीर भद्दिल नगरी से कदलिसमागम होकर यहा पर पधारे थे और यहा से उन्होने वैशाली की ओर प्रस्थान किया था। जिससे सभव है कि प्रस्तुत गाव मलयदेश मे या दक्षिण मगध मे कही पर रहना चाहिए।

---

१ ज्योग्रेफीकल डिक्शनरी ऑव एन्शियन्ट एण्ड मेडिवल इण्डिया, पृ० १९६

२ (क) पोलिटिकल हिस्ट्री ऑव एन्शियण्ट इण्डिया, पृ० १२९
   (ख) स्टडीज इन इण्डियन एण्टिक्विटीज, पृ० ११४

३ पोलिटिकल हिस्ट्री ऑव एन्शियन्ट इण्डिया, पृ० १२९

४ (क) बुद्धकालीन भारतीय भूगोल, पृ० ४२७
   (ख) अंगुत्तर निकाय ३, जिल्द ३५५

५ शिशुपाल वध महाकाव्य, सर्ग २।१५-१६-१७

६ आदिपुराण २९।५५

७ कल्पसूत्र, सूत्र २०९, पृ० २९२ देवेन्द्रमुनि सम्पादित

जभियगाव

जभियगाव की अवस्थिति पर विज्ञो का एक मत नहीं है। कवियो की कल्पना के अनुसार समेदशिखर से दक्षिण मे वारह कोस पर दामोदर नदी के सन्निकट जो जभी गाव है वही प्राचीन जभियगाव है। कितने ही विज्ञ समेदशिखर से दक्षिण पूर्व मे लगभग पचास मील पर आजी नदी के पास वाले जमगाव का प्राचीन जभीयगाव मानते है। मुनि श्री कल्याणविजय जी के अभिमतानुसार जभियगाव चम्पा के निकट होना चाहिए।

प्रस्तुत जभियगाव मे शक्रेन्द्र ने आकर प्रभु का नमस्कार कर शीघ्र ही केवलज्ञान होने वाला है, यह सूचना दी थी। इसी जभियगॉव के बाहर व्यावृत्य चैत्य के सन्निकट ऋजुवालिका नदी के उत्तरतट पर श्यामाक गृहस्थ के खेत मे सालवृक्ष के नीचे भगवान को केवलज्ञान हुआ था। देखिए—ऋजुपालिका का वर्णन भी।

ज्ञातखण्ड वन

यह क्षत्रिय कुडपुर के बाहर था, भगवान ने इसी उद्यान मे दीक्षा सग्रहण की थी।

तवाय सनिवेश (ताम्राक सनिवेश)

यह सनिवेश मगध मे होना चाहिए। यहीं पर पार्श्वापत्यीय स्थविर नन्दिषेण के साधुओ के साथ गोशालक का विवाद हुआ था।

ताम्रलिप्ति

पूर्वीय बगाल की परिगणना सोलह जनपदो मे की गई है। महाभारत मे भी अग-बग का उल्लेख आता है। प्राचीन काल मे वर्तमान बगाल अलग-अलग नामो से पुकारा जाता था। पूर्वीय बगाल को समतट, पश्चिमी बगाल को लाढ, उत्तरी बगाल को पुण्ड्र और आसाम को कामरूप कहा जाता था। बगाल को गौड भी कहते थे।

जैन साहित्य की दृष्टि से ताम्रलिप्ति बगाल की राजधानी थी। ताम्रलिप्ति के पास ही समुद्र था इसलिए उसे समतट भी कहते थे। ताम्रलिप्ति बगदेश का प्रसिद्ध वदरगाह था। यहाँ पर जल और स्थल दोनो मार्गो से माल आता-जाता था। आजकल मिदनापुर जिला मे जहाँ पर तामलुक नगर है, वहीं पर ताम्रलिप्ति नगरी थी। चीन के प्रसिद्ध यात्री ह्वेनसॉग ने (ईस्वी सन् ६३० के पश्चात्) ताम्रलिप्ति बन्दरगाह का उल्लेख किया है, किन्तु इस समय, तामलुक से लगभग ६० मील दूर समुद्र चला गया है।

कल्पसूत्र मे तामलित्तिया नामक जैन श्रमणो की शाखा का उल्लेख है। इससे यह ज्ञात होता है कि यह जैन श्रमणो का एक प्रसिद्ध केन्द्र था। मोरियपुत्र तामलि का उल्लेख है जिसने मुडित होकर पाणामा प्रव्रज्या स्वीकार की थी। यहाँ पर मच्छरो का अत्यधिक प्रकोप था। ह्वेनसॉग के समय इस नगर मे बौद्धो के अनेक विहार थे। भगवान महावीर ताम्रलिप्ति पधारे थे।

तिन्दुकोद्यान

यह श्रावस्ती के बाहर था। पार्श्वापत्य केशी श्रमण यहाँ पर ठहरे हुए थे तब इन्द्रभूति गोतम उनके पास गये थे और उनसे धार्मिक चर्चाए की थी।

तुँगिक सनिवेश

दसवे गणधर मेताय की यह जन्मभूमि थी। यह सनिवेश वत्स देश मे था, इसलिए मागीतु गी गॉव ही प्राचीन तु गिक सनिवेश होना चाहिए।

तुगिया नगरी

तुगिया नगरी राजगृह के सन्निकट थी। भगवती सूत्र से भी यही ज्ञात होता है।[१] प्राचीन तीर्थमाला मे इसकी पहचान विहार शरीफ से की गई है।[२] विहार शरीफ से चार मील दूर तुगी नायक गॉव है, वही प्राचीन तुगिया का अवशेष होना चाहिए।[3]

तुगिक सन्निवेश को वही पर तुगीया नगरी भी लिखा है, वह वत्स देश मे थी, जहाँ के गणधर मेतार्य थे।[४]

तोसलिगाव

तोसलिगाव भगवान महावीर दो बार पधारे। पहली बार सगमक देव ने महावीर पर तस्कर वृत्ति का आरोप लगाया और पकडे जाने पर भूतिल इन्द्रजालिक ने महावीर को मुक्त करवाया।

दूसरी बार भी चोर समझकर महावीर को पकडा ओर तोसलीपति ने फासी की सजा दी, सातवार फासी का फदा टूट जाने से आपको निर्दोष समझ कर मुक्त कर दिया।

मुनि श्री कल्याणविजय जी के अभिमतानुसार तोसलिगाव गोडवाना प्रदेश मे था। मोयकाल मे गगुआ ओर दया नदी सगम के बीच मे तोसली नाम का एक सुन्दर शहर था। यह तोसली ही सभव है महावीर के समय तोसलिगाव रहा हो।

थूणाक सनिवेश

गगा के दक्षिण तट पर यह सन्निवेश था। महावीर राजगृह जाते समय गगा उतर कर यहा पर आये थे और उन्होने यहा पर ध्यान की साधना की थी।

दक्षिण वाचाला

महावीर दक्षिण वाचाला से कनखल आश्रम होकर उत्तर वाचाला गये थे।

---

१ भगवती शतक २, उद्दे० ५, पत्र १३८-१४०

२ प्राचीन तीथमाला भाग १, पृ० १६ भूमिका

३ सर्वे ऑफ इडिया का नक्शा स ७२, ८, १ इच-४ मील

४ आवश्यक निर्युक्ति, दीपिका, भाग १, गा० ६४६, पृ० १२२

दशार्ण

दशार्ण, यह भिलसा के आस-पास का प्रदेश था। मत्तिकावती यह दशार्ण की राजधानी थी। मालव प्रान्त मे बनास नदी के पास जो भोजो का देश है, वहा पर मृत्तिकावती नगरी थी। हरिवश पुराण मे इस नगरी की अवस्थिति नर्मदा के तट पर बताई है।[1] कालीदास ने दशार्ण जनपद का उल्लेख करते हुए 'विदिशा' (आधुनिक भिलसा) का उसकी राजधानी के रूप मे उल्लेख किया है।[2] सूत्रकृताङ्ग-चूर्णि मे सिधु देश के साथ विदिशा का वर्णन किया है, जहा पर प्रज्ञप्ति का पढ़ना निषिद्ध माना है।[3] वह नगरी वेत्र नदी के किनारे थी।

कितने ही विज्ञ मानते है कि बुन्देलखण्ड मे बसान नदी बहती है उनके आसपास के प्रदेश का नाम दसण्ण-दशार्ण है।[4]

जैन-आगमो मे उल्लिखित साढे पच्चीस आर्य देशो मे दशार्ण जनपद का उल्लेख है।[5]

दशार्ण नाम के दो देश मिलते है—एक पूर्व मे और दूसरा पश्चिम मे। पूर्व-दशार्ण मध्यप्रदेश के छत्तीसगढ जिले मे माना जाता है। पश्चिम-दशार्ण मे भोपाल राज्य और पूर्व-मालव का समावेश होता है।

दशार्ण जनपद का दूसरा नाम दशार्णपुर था। आवश्यकचूर्णि मे उसका दूसरा नाम एडकाक्षपुर बताया है।[6] बौद्ध ग्रन्थ पेतवत्थु मे एरकच्छ लिखा है।[7] इस नगर की अवस्थिति वेतवा नदी के किनारे बताई है।[8] डाक्टर जगदीशचन्द्र जी जैन ने इसकी पहचान झासी जिले मे एरछ नामक स्थान से की है।[9]

आवश्यकनिर्युक्ति, चूर्णि और टीकाओ के अनुसार दशार्णपुर के उत्तर-पूर्व मे दशार्ण कूट नामक पर्वत था।[10] आर्य महागिरि ने इसी पर्वत पर अनशन कर आयु पूर्ण किया था।[11] दशार्ण कूट को गजाग्रपदगिरि, और इन्द्रपद भी कहते थे।

---

१ हरिवशपुराण ११३६।१५, वैदिक
२ मेघदूत, पूर्वमेघ, श्लोक २३-२४
३ सूत्रकृताङ्ग चूर्णि, पृ० २०
४ उत्तराध्ययन एक समीक्षात्मक अध्ययन, पृ० ३७६
५ बृहत्कल्प भाष्य भाग ३, पृ० ९१३
६ आवश्यक चूर्णि २, पृ० १५६
७ पेतवत्थु २।७, पृ० १६
८ (क) आचाराग चूर्णि, पृ० २२६
(ख) गच्छाचार, पृ० ८१
९ जैन आगम साहित्य मे भारतीय समाज, पृ० ४७९
१० (क) आवश्यक चूर्णि, पृ० ४७६, (ख) आवश्यक वृत्ति, पृ० ४६८
११ आवश्यक चूर्णि, उत्तरभाग, पृ० १५६-१५७

दशार्ण

दशार्ण, यह भिलसा के आस-पास का प्रदेश था। मृत्तिकावती यह दशार्ण की राजधानी थी। मालव प्रान्त में बनास नदी के पास जो भोरों का देश है, वहां पर मृत्तिकावती नगरी थी। हरिवंशपुराण में उस नगरी की अवस्थिति नर्मदा के तट पर बताई है।[1] कालीदास ने दशार्ण जनपद का उल्लेख करते हुए 'विदिशा' (आधुनिक भिलसा) का उसकी राजधानी के रूप में उल्लेख किया है।[2] सूत्रकृताङ्ग-चूर्णि में सिन्धु देश के साथ विदिशा का वर्णन किया है, जहां पर प्रव्रज्या या पढ़ना निषिद्ध माना है।[3] यह नगरी वेत्र नदी के किनारे थी।

कितने ही विज्ञ मानते हैं कि बुन्देलखण्ड में धसान नदी बहती है उसके आसपास के प्रदेश का नाम दसण्ण-दशार्ण है।[4]

जैन-आगमों में उल्लिखित साढ़े पच्चीस आर्य देशों में दशार्ण जनपद का उल्लेख है।[5]

दशार्ण नाम के दो देश मिलते हैं—एक पूर्व में और दूसरा पश्चिम में। पूर्व-दशार्ण मध्यप्रदेश के छत्तीसगढ़ जिले में माना जाता है। पश्चिम-दशार्ण में भोपाल राज्य और पूर्व-मालव का समावेश होता है।

दशार्ण जनपद का दूसरा नाम दशार्णपुर था। आवश्यकचूर्णि में उसका दूसरा नाम एडकाक्षपुर बताया है।[6] बौद्ध ग्रन्थ पेतवत्थु में एरकच्छ लिखा है।[7] इस नगर की अवस्थिति बेतवा नदी के किनारे बताई है।[8] डाक्टर जगदीशचन्द्र जी जैन ने इसकी पहचान झांसी जिले में एरछ नामक स्थान से की है।[9]

आवश्यकनिर्युक्ति, चूर्णि और टीकाओं के अनुसार दशार्णपुर के उत्तर-पूर्व में दशार्णकूट नामक पर्वत था।[10] आर्य महागिरि ने इसी पर्वत पर अनशन कर आयु पूर्ण किया था।[11] दशार्णकूट को गजाग्रपदगिरि, और इन्द्रपद भी कहते थे।

---

१ हरिवंशपुराण ११३६।१५, वैदिक
२ मेघदूत, पूर्वमेघ, श्लोक २३-२४
३ सूत्रकृताङ्ग चूर्णि, पृ० २०
४ उत्तराध्ययन एक समीक्षात्मक अध्ययन, पृ० ३७६
५ बृहत्कल्प भाष्य भाग ३, पृ० ९१३
६ आवश्यक चूर्णि २, पृ० १५६
७ पेतवत्थु २।७, पृ० १६
८ (क) आचारांग चूर्णि, पृ० २२६
(ख) गच्छाचार, पृ० ८१
९ जैन आगम साहित्य में भारतीय समाज, पृ० ४७२
१० (क) आवश्यक चूर्णि, पृ० ४७६, (ख) आवश्यक वृत्ति, पृ० ४६८
११ आवश्यक चूर्णि, उत्तरभाग, पृ० १५६-१५७

इस पवत के चारो ओर गाव थे। दशाणभद्र इस जनपद का राजा था, जिसे भगवान महावीर ने दीक्षा प्रदान की थी।

दशार्ण जनपद का एक महत्त्वपूण नगर दशपुर भी माना है[12] जिसका आधुनिक नाम मन्दसौर है। वह आर्यरक्षित की जन्मभूमि थी। वहा से वे अध्ययन करने हतु पाटलीपुत्र गये थे।

दशाण यह जैनधर्म का प्रमुख केन्द्र था।

दूतिपलाश चैत्य

दूतिपलाश नामक उद्यान वाणिज्यग्राम के बाहर था। जहाँ पर भगवान महावीर ने आनन्द गाथापति, सुदर्शन श्रेष्ठी आदि को श्रावक धर्म मे दीक्षित किया था।

दृढभूमि

शक्रेन्द्र-कृत महावीर की प्रशसा को सहन न करने से सगमक जहा दृढभूमि मे महावीर ध्यानमुद्रा मे खडे थे वहाँ आया और एक रात मे महावीर को बीस उपसर्ग दिये। दृढभूमि मे अनार्य लोगो की आबादी अधिक थी। पेढालगाँव इसी भूमि मे था। इसकी अवस्थिति आधुनिक गोडवाना प्रदेश मे होनी चाहिए।

नगला गाँव

नगला गाँव के वासुदेव मन्दिर मे महावीर ने ध्यान किया था। नगला श्रावस्ती से राढ की ओर जाने वाले मार्ग मे पडता था। महावीर श्रावस्ती से हरिद्रुक और वहाँ से नगला पधारे थे। यह गाँव कोशलभूमि के पूर्व प्रदेश मे होना चाहिए। यह गाँव बौद्ध साहित्य मे इच्छानगल के नाम से प्रसिद्ध है, यहाँ पर वेदशास्त्रो के महान् पडित रहते थे।

नन्दिग्राम

नन्दिग्राम वैशाली और कौशाम्बी के मध्य मे था। वैशाली से सुसुमार भोगपुर होकर महावीर नन्दिग्राम पधारे थे और वहाँ से मिढियग्राम होकर कोशाम्बी पधारे थे। वतमान मे अयोध्या व फैजाबाद से दक्षिण की ओर नो मील पर स्थित भरतकुड के समीप जो नन्दगाँव है, यही प्राचीन नन्दिग्राम होना चाहिए।

नालन्दा

पटना से दक्षिण-पूर्व मे राजगृह से ७ मील और बख्तियार-लाइट रेल्वे के नालदा स्टेशन से दो मील पर अवस्थित बडगाँव प्राचीन युग का नालदा है। बिहार शरीफ से यह लगभग पाच मील दूर है। बिहार शरीफ से राजगीर जाते समय नालन्दा नामक स्टेशन बीच मे आता है। यहाँ पर प्राचीन युग मे विश्वविद्यालय था। जिसके खण्डहर आज भी उपलब्ध होते है। विक्रम की सातवी और आठवी शताब्दी मे वह पूर्ण उन्नत अवस्था मे था।

---

१२ आवश्यक चूर्णि, पृ० ४०१

भगवान महावीर ने अनेक वर्षावास यहां पर व्यतीत किये। गणधर गौतम और उदक पेढालपुत्र का संवाद भी यहीं पर हुआ था।[1] टीकाकार ने नालंदा का अर्थ इस प्रकार किया है कि जो अर्थियों को यथोचित प्रदान करता है वह नालंदा है।[2] ह्वेनसांग ने लिखा कि इसका नाम आम्रवन के मध्य में स्थित तालाब में रहने वाले नाग के नाम पर नालंदा हुआ।[3]

पत्तकालक

यहां पर महावीर रात्रि में एक शून्य गृह में ध्यानस्थ खड़े हुए थे। गोशालक को स्कन्दक नामक युवक ने उसके अनुचित कृत्य से पीटा था। यह गांव चम्पा के पास था।

पाञ्चाल

(पंचाल) पांचाल प्राचीनकाल में एक समृद्धिशाली जनपद था। यह इन्द्रप्रस्थ से तीस योजना दूर कुरुक्षेत्र के पश्चिम और उत्तर में अवस्थित था। पांचाल जनपद दो भागों में विभक्त था १ उत्तर पांचाल और २ दक्षिण पांचाल। पाणिनि के अनुसार-पांचाल जनपद तीन भागों में विभक्त था—(१) पूर्व पांचाल (२) अपर पांचाल (३) और दक्षिण पांचाल[1] महाभारत के अनुसार गंगानदी पांचाल को दक्षिण और उत्तर में विभक्त करती थी। एटा और फर्रुखाबाद के जिले दक्षिण पांचाल के अन्तर्गत आते थे। यह भी ज्ञात होता है कि उत्तर पांचाल के भी पूर्व और अपर ये दो विभाग थे। दोनों को रामगंगा विभक्त करती थी। अहिच्छत्रा उत्तरी पांचाल तथा काम्पिल्य दक्षिणी पांचाल की राजधानी थी।[2]

कांपिल्यपुर गंगा के किनारे पर अवस्थित था।[3] यहीं पर द्रौपदी का स्वयंवर रचा गया था। इन्द्र-महोत्सव भी यहाँ उल्लास के साथ मनाया जाता था।

माकंदी दक्षिण पांचाल की दूसरी राजधानी थी। यह व्यापार का मुख्य केन्द्र था। समराइच्च कहा में हरिभद्रसूरि ने इस नगरी का वर्णन किया है।[4]

कान्यकुब्ज (कन्नौज) दक्षिण पांचाल में पूर्व की ओर अवस्थित था। इसे इन्द्रपुर। गाधिपुर, महोदय और कुशस्थल[5] आदि नामों से भी पहचाना जाता था।

---

१ (क) सूत्रकृताङ्ग २।७।७०
(ख) स्थानाङ्ग टीका २।३। पृ० ४३३
२ सदा आर्थिभ्यो यथामित्यनित ददातीति-नालन्दा। —सूत्रकृताङ्ग २।७।७०
३ डिक्शनरी ऑफ पाली प्रापर नेम्स, खण्ड २, पृ० ५७

१ पाणिनी व्याकरण ७।३।१३
२ स्टडीज इन दि ज्योग्रेफी ऑव एन्शियन्ट एण्ड मेडिवल इण्डिया, पृ० ९२
३ औपपातिक, सूत्र ३९
४ समराइच्च कहा, अध्याय ६
५ अभिधानचिन्तामणि ४। ३९-४०

सातवी शताब्दी से लेकर दसवी शताब्दी तक कान्यकुब्ज उत्तर भारत के साम्राज्य का केन्द्र था। चीनी यात्री हुएनसाग के समय सम्राट् हर्षवर्धन वहा के राजा थे। उस समय वह शूरसेन के अन्तगत था।

द्विमुख, जो प्रत्येक बुद्ध था, पाचाल का प्रभावशाली राजा था।[६] प्रभावक चरित्र के अनुसार पाञ्चाल और लाट देश कभी एक शासन के अधीन भी रहे है।[७]

वाद्ध साहित्य मे पाञ्चाल का उल्लेख सोलह महाजन पदो मे किया गया है, किन्तु जैन साहित्य मे वर्णित सोलह जनपदो मे पाञ्चाल का उल्लेख नही है।

कनिघम के अभिमतानुसार आधुनिक एटा, मैनपुरी, फर्रुखाबाद और आस-पास के जिले पाञ्चाल राज्य की सीमा के अन्तर्गत आते है।[९]

पावा

प्राचीन समय मे पावा नाम के तीन नगर थे। भगवान महावीर का निर्वाण पावा मे हुआ था।[१] बौद्ध ग्रन्थो मे भी उनका निर्वाणस्थल पावा बताया गया है।[२] इस प्रकार जैन और बौद्ध परम्पराएँ इस सबध मे एकमत है कि भगवान महावीर का निर्वाण 'पावा' नामक स्थान पर हुआ था। जिनप्रभसूरि ने पावा के पावा, पापा और अपापा यह तीन नाम दिये है।[३] सभव है भगवान के परिनिर्वाण से यह भूमि पवित्र हो गई, अत अपापा नाम से विश्रुत हुई और **'पावात् पाति इति पापा'** पापो को छुडाने वाली होने से इसका नाम पापा हुआ हो।

भगवान के निर्वाणस्थान के नाम के बारे मे तो किसी प्रकार का विवाद नही है, किन्तु परवर्ती साहित्य मे पावा नामक तीन नगरो का उल्लेख प्राप्त होता है इससे यह सदेह पैदा होता है कि वास्तव मे भगवान के निर्वाण स्थान वाला नगर'पावा' कौन-सा होना चाहिए। इस सम्बन्धी दृष्टिकोण निम्नप्रकार है—

कुछ साहित्यकारो की दृष्टि से प्रथम पावा भगीदेश की राजधानी थी और यह प्रदेश पारसनाथ पहाड (सम्मेदशिखर) के सन्निकट के भूमिभाग मे फैल हुआ था, जिसमे आज के हजारीबाग और मानभूम जिलो के क्षेत्र समिलित थे। कितने ही विज्ञो ने इस पावा को मलयदेश की राजधानी माना है, किन्तु मुनि श्री

---

६ उत्तराध्ययन सुखबोधा पत्र, ३५-१३६

७ प्रभावक चरित्र, पृ० २४

८ अगुत्तरनिकाय भाग १, पृ० २१३

९ दी एन्शियन्ट ज्योग्राफी ऑफ इण्डिया, पृ० ४१२-७०५

१ कल्पसूत्र, सेक्रेड बुक्स आफ दी इस्ट, खड २, जिल्द १, पृ० २६४-६५

२ दीघनिकाय ३ (नालन्दा), पृ० ९१, पासादिक सुत्त मज्झिमनिकाय ३ (नालन्दा), पृ ३७, सामगाम सुत्त

३ तीर्थकल्प, पृ० ४१, २८२ और २८७

सातवी शताब्दी से लेकर दसवीं शताब्दी तक कान्यकुब्ज उत्तर भारत के साम्राज्य का केन्द्र था। चीनी यात्री हुएनसाग के समय सम्राट् हर्षवर्धन वहा के राजा थे। उस समय वह शूरसेन के अन्तर्गत था।

द्विमुख, जो प्रत्येक बुद्ध था, पाचाल का प्रभावशाली राजा था।[६] प्रभावक चरित्र के अनुसार पाञ्चाल और लाट देश कभी एक शासन के अधीन भी रहे है।[७]

बौद्ध साहित्य मे पाञ्चाल का उल्लेख सोलह महाजनपदो मे किया गया है, किन्तु जैन साहित्य मे वर्णित सोलह जनपदो मे पाञ्चाल का उल्लेख नही है।

कनिंघम के अभिमतानुसार आधुनिक एटा, मैनपुरी, फर्रुखाबाद और आस-पास के जिले पाञ्चाल राज्य की सीमा के अन्तर्गत आते है।[९]

पावा

प्राचीन समय मे पावा नाम के तीन नगर थे। भगवान महावीर का निर्वाण पावा मे हुआ था।[१] बौद्ध ग्रन्थों मे भी उनका निर्वाणस्थल पावा बताया गया है।[२] इस प्रकार जैन और बौद्ध परम्पराएँ इस सबध मे एकमत है कि भगवान महावीर का निर्वाण 'पावा' नामक स्थान पर हुआ था। जिनप्रभसूरि ने पावा के पावा, पापा और अपापा यह तीन नाम दिये है।[३] सभव है भगवान के परिनिर्वाण से यह भूमि पवित्र हो गई, अत अपापा नाम से विश्रुत हुई और **'पापात् पाति इति पापा'** पापो को छुडाने वाली होने से इसका नाम पापा हुआ हो।

भगवान के निर्वाणस्थान के नाम के बारे मे तो किसी प्रकार का विवाद नही है, किन्तु परवर्ती साहित्य मे पावा नामक तीन नगरो का उल्लेख प्राप्त होता है इससे यह सदेह पैदा होता है कि वास्तव मे भगवान के निर्वाण स्थान वाला नगर'पावा' कौन-सा होना चाहिए। इस सम्बन्धी दृष्टिकोण निम्नप्रकार है--

कुछ साहित्यकारो की दृष्टि से प्रथम पावा भगीदेश की राजधानी थी और यह प्रदेश पारसनाथ पहाड (सम्मेदशिखर) के सन्निकट के भूमिभाग मे फैला हुआ था, जिसमे आज के हजारीबाग ओर मानभूम जिलो के क्षेत्र समिलित थे। कितने ही विज्ञो ने इस पावा को मलयदेश की राजधानी माना है, किन्तु मुनि श्री

---

६ उत्तराध्ययन सुखबोधा पत्र, ३५-१३६

७ प्रभावक चरित्र, पृ० २४

८ अगुत्तरनिकाय भाग १, पृ० २१३

९ दी एन्शियन्ट ज्योग्राफी ऑफ इण्डिया, पृ० ४१२-७०५

१ कल्पसूत्र, सेक्रेड बुक्स आफ दी इस्ट, खड २, जिल्द १, पृ० २६४-६५

२ दीघनिकाय ३ (नालन्दा), पृ० ९१, पासादिक सुत्त मज्झिमनिकाय ३ (नालन्दा), पृ ३७, सामगाम सुत्त

३ तीर्थकल्प, पृ० ४१, २८२ और २८७

कल्याणविजय जी के अभिमतानुसार यह मलय की नहीं अपितु भगी देश की राजधानी थी।[४] जैन साहित्य मे जिन साढे पच्चीस आर्य देशो की परिगणना की गई है, उनमे भगी देश भी है और उसकी राजधानी पावा है।[५] प० मुनि श्री नथमल जी ने भी तत्कालीन भगी देश की पहिचान आज के हजारीबाग और मानभूम जिले के क्षेत्र मे मानी है।[६]

दूसरी पावा मगध जनपद मे थी। यह राजगृह के निकट बिहार शरीफ से दक्षिण पूर्व मे लगभग सात मील पर अवस्थित है। इसी पावा को मुनि श्री कल्याण-विजय जी आदि ने भगवान महावीर की निर्वाणभूमि माना है।[७] और यहाँ पर जैन मन्दिर आदि है तथा जैनतीर्थ के नाम से विश्रुत है।

तीसरी पावा कुशीनारा से १२ मील दक्षिण पूर्व मे है। यह पावा भगवान महावीर के युग मे मल्लो की राजधानी थी। इस पावा के सम्बन्ध मे बौद्ध साहित्य मे भी विस्तार से निरूपण किया गया है और इसी पावा मे भगवान महावीर का निर्वाण होना माना है।[८]

इस प्रकार से तीन पावा नगरियो का उल्लेख तत्कालीन साहित्य मे पाया जाता है। इनमे से कौन से स्थान पर भगवान महावीर का निर्वाण हुआ, इसके लिए कल्पसूत्र मे 'पावाए मज्झिमाए' शब्द आया है—अर्थात् मध्यमा पावा। मुनि श्री कल्याणविजय जी का मतव्य है कि यह दो पावाओ के मध्य मे थी। भगी देश की पावा इसके अग्रिम दिशा मे थी और कुशीनारा के पास वाली पावा इसके वायव्य-कोण के सम अन्तर थी। इसीलिए राजगृह के पास स्थित यह पावा-मध्यमा के नाम से प्रसिद्ध थी[९] और अनेक सघो के यात्रा विवरणो आदि से वतमान मे बिहार प्रान्त मे स्थित पावापुरी को भगवान महावीर की निर्वाण स्थली के रूप मे जाना जाता है और सिद्धक्षेत्र के रूप मे श्रद्धा का केन्द्र बनी हुई है।

लेकिन वर्तमान की अन्वेषणा से यह प्रतीत हो रहा है कि भगवान महावीर का निर्वाणस्थान आजकल राजगृह के निकट जिस पावापुरी को माना जाता है, वह न होकर कुशीनारा से १२ मील दक्षिण-पूर्व मे स्थित सठियावा डीह (जिला देवरिया, उत्तर-प्रदेश) नामक ग्राम है। इस सम्बन्धी किये गये अन्वेषणो के साराश को यहा प्रस्तुत करते है।

कल्पसूत्र के अनुसार भगवान के परिनिर्वाण के अवसर पर मल्लो और लिच्छ-

---

४ श्रमण भगवान महावीर पृ०, ३७५

५ प्रज्ञापना

६ अतीत का अनावरण, पृ० १६४, भारतीय ज्ञानपीठ

७ श्रमण भगवान महावीर पृ० ३७५, प्रस्तावना पृ० ३१-३२

८ अगुत्तरनिकाय खड १, पृ० २१३ और खड ४, पृ० ७५६ और २६०

९ श्रमण भगवान महावीर, पृ० ३७५

सातवी शताब्दी से लेकर दसवी शताब्दी तक कान्यकुब्ज उत्तर भारत के साम्राज्य का केन्द्र था। चीनी यात्री हुएनसाग के समय सम्राट् हर्षवर्धन वहा के राजा थे। उस समय वह शूरसेन के अन्तर्गत था।

द्विमुख, जो प्रत्येक बुद्ध था, पाचाल का प्रभावशाली राजा था।[६] प्रभावक चरित्र के अनुसार पाञ्चाल और लाट देश कभी एक शासन के अधीन भी रहे है।[७]

बौद्ध साहित्य मे पाञ्चाल का उल्लेख सोलह महाजनपदो मे किया गया है, किन्तु जैन साहित्य मे वर्णित सोलह जनपदो मे पाञ्चाल का उल्लेख नहीं है।

कनिंघम के अभिमतानुसार आधुनिक एटा, मैनपुरी, फर्रुखाबाद और आस-पास के जिले पाञ्चाल राज्य की सीमा के अन्तर्गत आते है।[८]

पावा

प्राचीन समय मे पावा नाम के तीन नगर थे। भगवान महावीर का निर्वाण पावा मे हुआ था।[१] बौद्ध ग्रन्थो मे भी उनका निर्वाणस्थल पावा बताया गया है।[२] इस प्रकार जैन और बौद्ध परम्पराएँ इस सबध मे एकमत है कि भगवान महावीर का निर्वाण 'पावा' नामक स्थान पर हुआ था। जिनप्रभसूरि ने पावा के पावा, पापा और अपापा यह तीन नाम दिये है।[३] सभव है भगवान के परिनिर्वाण से यह भूमि पवित्र हो गई, अत अपापा नाम से विश्रुत हुई और **'पापात् पाति इति पापा'** पापो को छुडाने वाली होने से इसका नाम पापा हुआ हो।

भगवान के निर्वाणस्थान के नाम के बारे मे तो किसी प्रकार का विवाद नहीं है, किन्तु परवर्ती साहित्य मे पावा नामक तीन नगरो का उल्लेख प्राप्त होता है इससे यह सदेह पैदा होता है कि वास्तव मे भगवान के निर्वाण स्थान वाला नगर'पावा' कौन-सा होना चाहिए। इस सम्बन्धी दृष्टिकोण निम्नप्रकार है—

कुछ साहित्यकारो की दृष्टि से प्रथम पावा भगीदेश की राजधानी थी और यह प्रदेश पारसनाथ पहाड (सम्मेदशिखर) के सन्निकट के भूमिभाग मे फैला हुआ था, जिसमे आज के हजारीबाग और मानभूम जिलो के क्षेत्र समिलित थे। कितने ही विज्ञो ने इस पावा को मलयदेश की राजधानी माना है, किन्तु मुनि श्री

---

६ उत्तराध्ययन सुखबोधा पत्र, ३५-१३६

७ प्रभावक चरित्र, पृ० २४

८ अगुत्तरनिकाय भाग १, पृ० २१३

९ दी एन्शियन्ट ज्योग्राफी ऑफ इण्डिया, पृ० ४१२-७०५

१ कल्पसूत्र, सेक्रेड बुक्स आफ दी इस्ट, खड २, जिल्द १, पृ० २६४-६५

२ दीघनिकाय ३ (नालन्दा), पृ० ९१, पासादिक सुत्त मज्झिमनिकाय ३ (नालन्दा), पृ ३७, सामगाम सुत्त

३ तीर्थकल्प, पृ० ४१, २८२ और २८७

कल्याणविजय जी के अभिमतानुसार यह मलय की नहीं अपितु भगी देश की राजधानी थी।[४] जैन साहित्य मे जिन साढे पच्चीस आर्य देशो की परिगणना की गई है, उनमे भगी देश भी है और उसकी राजधानी पावा है।[५] प० मुनि श्री नथमल जी ने भी तत्कालीन भगी देश की पहिचान आज के हजारीबाग और मानभूम जिले के क्षेत्र मे मानी है।[६]

दूसरी पावा मगध जनपद मे थी। यह राजगृह के निकट विहार शरीफ से दक्षिण पूर्व मे लगभग सात मील पर अवस्थित है। इसी पावा को मुनि श्री कल्याण-विजय जी आदि ने भगवान महावीर की निर्वाणभूमि माना है।[७] और यहाँ पर जैन मन्दिर आदि है तथा जैनतीर्थ के नाम से विश्रुत है।

तीसरी पावा कुशीनारा से १२ मील दक्षिण पूर्व मे है। यह पावा भगवान महावीर के युग मे मल्लो की राजधानी थी। इस पावा के सम्बन्ध मे बौद्ध साहित्य मे भी विस्तार से निरूपण किया गया है और इसी पावा मे भगवान महावीर का निर्वाण होना माना है।[८]

इस प्रकार से तीन पावा नगरियो का उल्लेख तत्कालीन साहित्य मे पाया जाता है। इनमे से कौन से स्थान पर भगवान महावीर का निर्वाण हुआ, इसके लिए कल्पसूत्र मे 'पावाए मज्झिमाए' शब्द आया है—अर्थात् मध्यमा पावा। मुनि श्री कल्याणविजय जी का मतव्य है कि यह दो पावाओ के मध्य मे थी। भगी देश की पावा इसके अग्रिम दिशा मे थी और कुशीनारा के पास वाली पावा इसके वायव्य-कोण के सम अन्तर थी। इसीलिए राजगृह के पास स्थित यह पावा-मध्यमा के नाम से प्रसिद्ध थी[९] और अनेक सघो के यात्रा विवरणो आदि से वर्तमान मे विहार प्रान्त मे स्थित पावापुरी को भगवान महावीर की निर्वाण स्थली के रूप मे जाना जाता है और सिद्धक्षेत्र के रूप मे श्रद्धा का केन्द्र बनी हुई है।

लेकिन वर्तमान की अन्वेषणा से यह प्रतीत हो रहा है कि भगवान महावीर का निर्वाणस्थान आजकल राजगृह के निकट जिस पावापुरी को माना जाता है, वह न होकर कुशीनारा से १२ मील दक्षिण-पूर्व मे स्थित सठियावा डीह (जिला देवरिया, उत्तर-प्रदेश) नामक ग्राम है। इस सम्बन्धी किये गये अन्वेषणो के साराश को यहा प्रस्तुत करते है।

कल्पसूत्र के अनुसार भगवान के परिनिर्वाण के अवसर पर मल्लो और लिच्छ-

---

४ श्रमण भगवान महावीर पृ०, ३७५
५ प्रज्ञापना
६ अतीत का अनावरण, पृ० १६४, भारतीय ज्ञानपीठ
७ श्रमण भगवान महावीर पृ० ३७५, प्रस्तावना पृ० ३१-३२
८ अगुत्तरनिकाय खड १, पृ० २१३ और खड ४, पृ० २५६ और २६०
९ श्रमण भगवान महावीर, पृ० ३७५

वियो के अठारह गणराजा उपस्थित थे।[1] यहाँ यह स्मरण रखने योग्य है कि मल्लो और लिच्छवियो की शासन व्यवस्था गणतन्त्रीय थी और उनकी मगध सम्राट से शत्रुता थी। अत उनकी अपने शत्रु के प्रदेश मे उपस्थित होने की कल्पना नही की जा सकती है। दूसरी बात यह है कि यदि मगध देश की पावा होती तो मगधराज जो भगवान महावीर के परमभक्तो मे से थे, परिनिर्वाण के समय अवश्य उपस्थित होते।[2] उनके राज्य मे भगवान का परिनिर्वाण हो और वे उपस्थित न हो, यह कदापि सभव नही है। तीसरी बात यह भी विचारणीय है कि राजा हस्तिपाल के राज्य मे भगवान के परिनिर्वाण होने का उल्लेख है, जो उस समय मल्ल गणतत्र का राजा था। मगध मे हस्तिपाल के राज्य होने की सम्भावना नही है, क्योकि मगध एकछत्र शासक का राज्य था। इसलिए उसकी अपनी राजधानी के निकट दूसरे राजा और गणराज्य की स्थिति होना नही माना जा सकता है।

बौद्ध साहित्य मे जिस पावा को भगवान महावीर का परिनिर्वाण स्थान माना है, उसे मल्लो की राजधानी कहा है। इतिहास की दृष्टि से महावीर और बुद्ध के पूर्व गणतन्त्र की स्थापना हो चुकी थी और दोनो ने अपने प्रारभिक जीवन का अधिक भाग गणराज्य के सस्कारो मे विताया था और उसे शासन के लिए योग्य व्यवस्था मानते थे। यह सत्य है कि पृथक्-पृथक् प्रत्येक गणराज्यो की कार्यपद्धति मे यत्किंचित् अतर था, लेकिन मूलभूत सिद्धान्त और कार्यप्रणालियाँ परस्पर सापेक्ष थी। उदाहरणार्थ-वैशाली मे गणतत्र होते हुए भी एक प्रमुख राजा होता था और इस गणतत्र का नाम वज्जिय गणतत्र था। इस गणतन्त्र मे निकटवर्ती गणतत्रो के प्रतिनिधि रहते थे और उन्हे मत देने का अधिकार था। प्रत्येक निणय सर्वानुमति से किया जाता था।

दूसरा मल्लो का गणतत्र था। यह दो भागो मे विभक्त था। उत्तर-पश्चिम भाग की राजधानी कुशीनारा और दक्षिण-पूर्व भाग की राजधानी पावा थी। इस मल्ल गणतत्र का विस्तार पूर्व मे गडकनदी, पश्चिम मे गोरखपुर से कुछ पूर्व तक, उत्तर मे नेपाल तथा दक्षिण मे गगा नदी तक था। यहा पर स्थायीरूप से कोई भी प्रमुख राजा नही होता था, किन्तु सभी गणराजा क्रमश राज्य करते थे। जिसका राज्य होता वह राजधानी मे रहकर राज्य-व्यवस्था करता और शेष वाणिज्य-व्यवसाय आदि कार्यो मे लग जाते थे। मल्ल व्यापारी होने के साथ-साथ अत्यन्त साहसी, बलवान और युद्धकला मे निष्णात थे। इनकी सभ्यता, रहन-सहन अपने समय मे बहुत ही उन्नत माना जाता था

मल्लो की पावा और कुशीनारा इन दोनो राजधानियो मे से कुशीनारा के मल्ल बौद्ध धर्मावलम्वी थे और पावा के मल्ल भगवान महावीर के अनुयायी थे। दोनो मे पारस्परिक स्नेह था और एक दूसरे को सम्मान देते थे। पावा मे बौद्धधर्म को

---

१ कल्पसूत्र १२७

२ श्री विजयेन्द्रसूरि, वैशाली, पृ० ८७-८८

प्रभावशाली बनाने के लिए तथागत बुद्ध और सारिपुत्र का पुन -पुन आगमन होता रहता था। सारिपुत्र ने बौद्धधर्म के विशिष्ट सूत्र सगीत पर्याय का उपदेश पावा मे ही दिया था।[1] पावा जैनो के लिए ही नही, बौद्धो के लिए भी पवित्र और आकर्षण केन्द्र है। लुम्बनीवन, बोध गया, वैशाली, पावा और कुशीनारा बौद्धो के पवित्र स्थल माने जाते है।

अधिकाश विद्वानो का यह मतव्य है कि पावा वस्तुत गगा नदी के उत्तर मे थी किन्तु उसके निश्चित स्थान के सम्बन्ध मे मतभिन्नता है। फिर भी वे उसे देवरिया के आसपास मानते है।

महापडित राहुल साकृत्यायन ने रामकोला के पास पपउर गाव को पावा माना है।[2] जनरल कनिघम ने पडरोना को पावा कहा है। उनका मतव्य है कि पावा कसिया से १२ मील उत्तर गडक की ओर थी। इसके भग्नावशेष पडरौना मे मिले है। पडराना पावा का ही परिवर्तित रूप है जो पावा, पावान पाडरवान मे पडरौना हो गया है।[3]

भिक्षु धमरक्षित ने सठियावा टीह को पावा नगर माना है।[4] इसी प्रकार इतिहासमहोदधि इन्द्रविजय जी[5] व डा० राजबली पाडे[6] ने भी सठियावा टीह को पावा माना है। डा० हीरालाल जैन के अभितानुसार गोरखपुर जिले का पवैया नामक ग्राम पावा है।[7] श्री गोराग गोपाल सेनगुप्त ने देवरिया जिले के पडरौना तहसील मे पपउर नामक स्थान को पावा कहा है।[8]

जनरल कनिघम के सहयोगी श्री कार्लायल ने पडरौना को पावा न मानते हुए सठियावा को प्राचीन पावा स्वीकार करते हुए लिखा है कि कुशीनारा से वैशाली या वेसढ दक्षिण-पूर्व दिशा मे है अत उस मार्ग पर स्थित होने के कारण पावा [को] कुशीनारा से दक्षिण-पूर्व की ओर होना चाहिये। बौद्ध ग्रन्थो के अनुसार कुशीनारा [से] पावा का यात्री-मार्ग बारह मील था, अत दोनो स्थानो की सीधी दूरी लगभग [द]स मील होनी चाहिए। पावा से कुशीनारा के बीच बुद्ध ने एक नदी के किनारे [वि]श्राम कर जल पिया और स्नान किया था अत पावा और कुशीनारा के बीच

---

१ दीघनिकाय ३।१०

२ पुरातत्त्व निबन्धावली तथा बुद्धचर्या, पृ० ४८७

३ एन्सीएन्ट ज्योग्रॉफी आफ इण्डिया, पृ० ४९४

४ कुशीनगर का इतिहास, पृ० १७-२४

५ वैशाली पृ० ८५, ८८ द्वितीय सस्करण

६ गोरखपुर जनपद और उसकी क्षत्रिय जातियो का इतिहास, पृ० ७५-७८, १०६-११०

७ पावा समीक्षा, पृ० १५

८ सचलाईट पत्र मे प्रकाशित लेख, दि० ४-८-६८

एक नदी होना चाहिए। पावा मे एक स्तूप था, जिसमे मल्लो ने बुद्ध के अवशेषो का आठवा भाग प्रतिष्ठित किया था।[1]

श्री कार्लायिल ने अपने उक्त निष्कर्षो को प्राप्त करने के लिये कुशीनारा से पावा की खोज करते हुए पूर्व, दक्षिण-पूर्व तथा दक्षिण-पूर्व मे प्राय एक दर्जन स्थानो की यात्रा की। ये स्थान है—सरेय कुक्करपट्टी, नदवा, वनहा चेतियाव (सठियावा) फाजिल या फाजिल नगर, असमानपुर-डीह, वनवेरा, मीर विहार, पथरवा, झारमठिया, करमौनी तथा गगी। ये सभी स्थान कसया से पूर्व बहने वाली घाघी नदी के पूव है और कसया से इनकी दूरी आठ से तेरह मील है। इनमे चेतयाव ही ऐसा स्थान है जो कसया मे दूरी, भौगोलिक स्थिति एव प्राचीन स्तूपावशेष के कारण पावा के नाम से पहचाना जा सकता है।

डा० मोतीचद एव मुनि श्री महेन्द्रकुमार जी 'प्रथम' ने उत्तर प्रदेश के देवरिया जिले मे पपहुर' गाव को ही महावीर की निर्वाणस्थली सिद्ध करने का प्रयत्न किया है। जब कि प्रसिद्ध इतिहासज्ञ श्री अगरचद जी नाहटा एव भवरलाल जी नाहटा ने मगध स्थित पावा जहा वर्तमान मे जल मदिर आदि भी है, को ही भगवान की निर्वाणस्थली मानी है। हमारे विचार मे दोनो ही धारणाएँ सदिग्ध है।

कल्पसूत्र मे भगवान महावीर की निर्वाणभूमि के लिये आगत शब्द 'पावाए-मज्झिमाए' का अर्थ हुआ मध्यमा पावा। इसके लिये मुनि श्री कल्याणविजय जी के मतव्य का पूर्व मे सकेत कर चुके है, कि भगी देश और कुशीनारा की निकटवर्ती दोनो पावाओ के बीच मे जो पावा है वही भगवान की निर्वाणभूमि है। लेकिन इसके बारे मे विद्वानो का कथन है कि पावाए के पश्चात 'मज्झिमाए शब्द आया है, उसका दो प्रकार से अर्थ किया जा सकता है। इसका सीधा अर्थ होगा पावा का मध्य भाग। जैसे कि हम मध्य पटना नामक स्थान का जिक्र करे तो उसका अर्थ होगा पटना शहर का मध्य (केन्द्रीय) भाग। जैन साहित्य मे इसी प्रकार के और भी प्रयोग उपलब्ध होते है। उदाहरणार्थ भगवान महावीर की जन्मभूमि कुण्डपुर के सम्बन्ध मे ब्राह्मण और क्षत्रिय विशेषणो का प्रयोग हुआ है। ऐसी हालत मे राजा हस्तिपाल की रज्जुगशाला का नगर के मध्य मे होने के कारण उस स्थानविशेष को जहाँ भगवान का निर्वाण हुआ, मध्यमा पावा कहा गया है। निर्वाण का ठीक स्थान बतलाने के लिये यह प्रयोग हुआ है।

पावा मध्यमा का दूसरा अर्थ मध्यदेश स्थित पावा भी सभव है, जिस प्रकार उत्तर काशी का अर्थ उत्तरस्थित (या उत्तराखड स्थित) काशी होता है। मध्यदेश उत्तर मे हिमालय से लेकर दक्षिण मे विन्ध्याचल तक फैला हुआ था। इसकी पूर्वी सीमा धीरे-धीरे प्रयाग से राजमहल तक बढती रही और पश्चिम मे विनशन तक इसकी सीमा थी। मुख्यत इसमे गगा के ऊपरी एव बीच के भाग सम्मिलित है और

---

१ आर्कियोलौजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया, खड ९, पृ० १०२-९

निचला भाग (बगाल) इससे हटा हुआ ह । गगा के उत्तर वाले क्षेत्र के बारे मे दो बात विशेष रूप से उल्लेखनीय है। पहली यह कि नेपाल वाले अपने से दक्षिण के लोगो को मदेशिया (मध्यदेशीय) कहते ह, दूसरी यह कि चम्पारण (बिहार का बिलकुल उत्तर-पश्चिमी जिला जो नेपाल राज्य और उत्तर प्रदेश के देवरिया जिले को छूता है) मे धान की अत्यधिक उपज बताने के लिये एक कहावत प्रचलित ह— 'गजब देश मझौआ, जहाँ भात न पूछै कौआ' अर्थात् मध्यदेश (या मझौआ परगना) अपूर्व है जहाँ कोआ भी भात नही पूछता । अत गगा के उत्तर नेपाल एव चम्पारण के समीप देवरिया जिला स्थित पावा को मध्यदेशीय पावा कहना उचित ह ।[1]

इस प्रकार परम्परा से बिहार मे स्थित पावापुरी भगवान महावीर की निर्वाण भूमि निश्चित होने पर भी इतिहास व भौगोलिक स्थिति आदि के बीच 'पावा' स्थान की निश्चितता अनिर्णयात्मक बन गई है । परम्पराओ का भी पूर्वाधार होता है आर ऐतिहासिक तथ्यो की भी उपेक्षा नही की जा सकती है । अतएव इतिहास, पुरातत्त्व एव परम्पराओ के आधार-भूत कारणो का एक दूसरे के साथ सम्बन्ध नही बनता और अपने अपने तथ्यो को प्रमाणित मानते रहेगे तब तक पावा के निश्चित स्थान के बारे मे निर्णय एकपक्षीय रहेगा । इसीलिये हमने अपना मतव्य प्रगट करने की अपेक्षा दोनो प्रकार के विचारो-परम्परा, भूगोल और इतिहास सम्बन्धी विवेचन का साराश प्रस्तुत किया है । जब तक किसी भी प्रकार निर्णय की स्थिति नही बनती तब तक इतना ही कहा जायगा कि भगवान महावीर का परिनिर्वाण कार्तिक कृष्णा अमावस्या को पावा मे हुआ था । और यह पावा मल्ल राजाओ की राजधानी थी । वहा का राजा हस्तिपाल था जो मल्ल गणतत्र का एक शासक था।

पालकग्राम

पालकग्राम चम्पा के पास मे और कोशाम्बी के रास्ते मे था, चूकि महावीर कौशाम्बी से पालक होकर चम्पा पधारे थे और वहा पर वाइल ने अपशकुन समझकर महावीर को कष्ट दिया था ।

पुरिमताल

इसकी अवस्थिति के विषय मे अनेक मत है । कितने ही विद्वान इसकी पहचान मानभूम के पास 'पुरुलिया' नामक स्थान से करते हैं ।[1] आचार्य हेमचन्द्र ने पुरिमताल को अयोध्या का शाखा नगर कहा है ।[2] आवश्यक निर्युक्ति आदि ग्रन्थो मे विनीता के

---

१ 'श्रमण भगवान महावीर की वास्तविक निर्वाण भूमि पावा', लेखक डा० योगेन्द्र मिश्र एम ए पी-एच , डी अध्यक्ष इतिहास विभाग, पटना कालेज, पटना विश्व-विद्यालय के आधार से ।

१ भारत के प्राचीन जैन तीर्थ, पृ० ३३

२ अयोध्याया महापुर्या शाखानगरमुत्तमम् ।
यर्यो पुरिमतालाख्य भगवानृषभध्वज ॥—त्रिषष्टि शलाकापुरुष चरित्र १।३।३८६

बाहर 'पुरिमताल' नामक उद्यान का उल्लेख किया है। पुरिमताल उद्यान मे ही भगवान ऋषभदेव को केवलज्ञान हुआ था और उसी दिन चक्रवर्ती भरत की आयुधशाला में चक्ररत्न की उत्पत्ति हुई थी।[3] सम्राट् भरत का लघुभ्राता ऋषभसेन पुरिमताल का अधिपति था, जब भगवान ऋषभ वहा पर पधारे तब उसने भगवान के पास दीक्षा ग्रहण की। कितने ही विद्वानो का अभिमत है, प्रयाग का प्राचीन नाम पुरिमताल था।[4]

भगवान महावीर सातवा वर्षावास पूर्ण कर कुडाक सन्निवेश से 'लोहार्गला' पधारे और वहा से उन्होंने पुरिमताल की ओर प्रस्थान किया। नगर के बाहर शकटमुख उद्यान था, भगवान वहा पर ध्यानस्थ खडे थे तब वग्गुर श्रावक ने भगवान की उपासना की। पुरिमताल से विहार कर भगवान उन्नाग और गोभूमि होते हुए राजगृह पहुँचे।

एक बार भगवान महावीर पुरिमताल के अमोघदर्शी उद्यान मे विराजे उस समय विजयचोर सेनापति के पुत्र अभगसेन के पूर्वभवो का वर्णन किया। भगवान महावीर के समय पुरिमताल मे महाबल राजा था।[5]

चित्र का जीव सौधर्म देवलोक से च्युत होकर पुरिमताल नगर मे एक श्रेष्ठी के वहा पर पुत्र रूप मे उत्पन्न हुआ,[6] और वही आगे चलकर महान ऋषि हुआ।

जार्ज सरपेन्टियर का मन्तव्य है कि 'पुरिमताल' का वर्णन दूसरे स्थान पर देखने मे नही आया, यह 'लिपि-कर्त्ता' का दोष लगता है। इसके स्थान पर कुरु या ऐसा ही कुछ होना चाहिए।[7] उनका यह अनुमान यथार्थ नही है। चूकि अनेक स्थलो पर उसका उल्लेख हुआ है।

पूर्णकलश

यह अनार्य क्षेत्र राढ में गाव था। जहा पर तस्करो ने महावीर को कष्ट दिया था। जहा से भगवान भद्दिल नगरी मे पधारे थे।

पूर्णभद्रचैत्य

चम्पा का यह प्रसिद्ध उद्यान था। जहा पर भगवान महावीर ने शताधिक व्यक्तियो को श्रमण व श्रावक धर्म मे दीक्षित किया था। राजा कूणिक भगवान को बडे ठाट-बाट से वन्दन के लिये गया था।

---

३ (क) जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति सटीक वक्षस्कार २, सूत्र ३१, पत्र १४३
(ख) उज्जाणपुरिमताले पुरी विणीआइ तत्थ नाणवरे।
चक्कुप्पया य भरहे निवेअण चेव दुण्हपि॥—आवश्यक निर्युक्ति गाथा ३४२

४ (क) श्रमण भगवान महावीर, पृ० ३७६
(ख) तीर्थंकर महावीर भाग १, पृ० २०६

५ विपाक सूत्र ३।५७, पृ० २६

६ उत्तराध्ययन सुखबोधा, पत्र १८७

७ दी उत्तराध्ययन, पृ० ३२८

पृष्ठचम्पा

भगवान महावीर ने यहा पर चतुर्थ वर्षावास किया था। यहा के राजा और युवराज शाल, महाशाल, और पिठर एव गागलि आदि को इन्द्रभूति गौतम ने जैन दीक्षा प्रदान की थी।

पृष्ठचम्पा, चम्पा से पश्चिम मे थी। राजगृह से चम्पा जाते समय पृष्ठचम्पा मध्य मे पडती थी।

पेढाल उद्यान

पेढाल गाव के बाहर पेढाल उद्यान था, उस उद्यान के पोलास चैत्य मे भगवान महावीर ने ध्यान किया था, जिस ध्यान की एकाग्रता की प्रशसा स्वय इन्द्र ने की थी। और सगमक देव ने भगवान को विचलित करने के लिए अनेक उपाय किये थे। यह पेढाल गाव और उद्यान गोडवाना मे कही पर होना चाहिए। यह मुनि श्री कल्याणविजय जी का अभिमत है।

पोतनपुर

पोतनपुर का अधिपति राजा प्रसन्नचन्द्र था। उसने भगवान महावीर के पास दीक्षा ली थी। महावीर चरित्रग्रन्थो के अनुसार पोतनपुर पधारे थे। बौद्ध साहित्य मे पोतनपुर का नाम पोतली मिलता है। उसकी राजधानी अस्सक थी। जातको से ज्ञात होता है कि पहले अस्सक और दन्तपुर के राजाओ मे परस्पर युद्ध होता रहता था। यह पोतन किसी समय काशी राज्य का भी अग था। यह स्थान गोदावरी के उत्तर तट पर अवस्थित था। सातवाहन की राजधानी प्रतिष्ठान और आजकल का पैठन ये पोतनपुर के बाद के नाम है।[1]

पोलासपुर

आगम साहित्य मे पोलासपुर का उल्लेख दो स्थानो पर हुआ है। उपासकदशाग के अनुसार पोलासपुर के बाहर सहस्राम्रवन नामक उद्यान था। जितशत्रु वहा का राजा था। सद्दालपुत्र वहा का रहने वाला था जो पहले गोशालक का अनुयायी था, बाद मे महावीर का अनुयायी बना था।

अन्तकृद्दशाग मे पोलासपुर का उल्लेख आया है। उस समय वहा का राजा विजय था और रानी का नाम श्रीदेवी था। उद्यान का नाम श्रीवन था। राजकुमार अतिमुक्तक ने अत्यन्त लघुवय मे महावीर के पास दीक्षा ग्रहण की थी।

पोलासपुर नाम के दो पृथक्-पृथक् नगर थे यह निश्चित रूप से नही कह सकते। यह सत्य है कि राजा और उद्यान के नाम दोनो मे पृथक्-पृथक् थे। पर एक नगर के बाहर अनेक उद्यान हो सकते है। पहले राजा का नाम जितशत्रु और बाद

---

१ (क) ज्यॉग्राफी आव अर्ली बुद्धिज्म, पृ० २१
(ख) सयुक्तनिकाय, हिन्दी अनुवाद, भूमिका, पृ० ७

के राजा का नाम विजय हो सकता है, या पहले के राजा का नाम विजय और दूसरे के राजा का जितशत्रु हो सकता ह। इस रूप मे यह एक ही नगर हो सकता हे।

प्रतिष्ठानपुर

प्रतिष्ठानपुर नाम के दो नगर थे। एक प्रतिष्ठानपुर गगा के बाये तट पर' जहा इस समय झूसी नगर ह, पहले यहा पर चन्द्रवशी राजाओ की राजधानी थी।

दूसरा प्रतिष्ठानपुर ओरगाबाद जिले मे ओरगाबाद से दक्षिण मे अट्ठाइस मील पर गोदावरी नदी के उत्तर किनारे पर था। यहा पर सातवाहन राजा की राजधानी थी। यह नगर एक समय अस्मक देश की राजधानी पोतनपुर के नाम से विख्यात था। इसका वर्तमान मे नाम पैठन ह। आचार्य कालक ने इसी प्रतिष्ठानपुर मे सावत्सरिक महापर्व पचमी से चतुर्थी मनाया था।[1]

बनारस

वाराणसी का अपभ्रश नाम बनारस ह। यह नगरी वरणा और असि नदी के सगम पर बसी हुई है। इस नगर के बाहर कोष्ठक नामक चैत्य था। जहाँ पर भगवान महावीर विराजा करते थे। भगवान महावीर के परम भक्त चुलनीपिता और सुरादेव यही के निवासी थे।[2] यहा के राजा शख ने महावीर के पास दीक्षा ली थी। भगवान महावीर का यह मुख्य विहार क्षेत्र था। इसके विशेष परिचय के लिए काशी देखिए।

ब्राह्मणग्राम

ब्राह्मण गाव के दो पाटक थे। एक नन्दपाटक और दूसरा उपनन्दपाटक। भगवान महावीर ने नन्दपाटक मे नन्द के वहा पर पारणा किया था। यह ब्राह्मणग्राम, सुवर्णखल ओर चम्पा के बीच मे था।

भगि

साढे पच्चीस आर्य देशो मे भगि का भी नाम हे। इसकी राजधानी 'पावा' थी। समेतशिखर (पारसनाथ पहाड) का सन्निकटवर्ती प्रदेश जिसमे हजारीबाग ओर मानभूम जिलो के भाग सम्मिलित ह, पहले भगि जनपद के नाम से विश्रुत था।

भद्दिया

अग देश का यह एक प्रसिद्ध नगर था। बौद्ध साहित्य मे अनेक स्थलो पर इसका उल्लेख हुआ है। कल्पसूत्र के अनुसार भगवान ने दो चातुर्मास भद्दिया मे किये थे ओर आवश्यकनिर्युक्ति वृत्ति के अनुसार एक चातुर्मास किया था।

भागलपुर से दक्षिण मे आठ मील पर स्थित भद्दरिया गाव ही प्राचीन भद्दिया है। कितने ही विद्वान मुगेर को भद्दिया का स्थानापन्न मानते ह।

---

१ कल्पसूत्र चूर्णि

२ उपासक दशाग

भद्दिलनगरी

भद्दिलनगरी उस समय मलय देश की राजधानी थी। आवश्यक निर्युक्ति वृत्ति के अनुसार भगवान महावीर ने छद्मस्थ अवस्था मे यहा पर एक चातुर्मास किया था।

पटना से दक्षिण मे १०० मील और नैऋत्य दक्षिण म अट्ठाइस मील की दूरी पर गया जिले मे आये हुए हटवरिया आर दन्तारा गावो के पास उस समय भद्दिल-नगरी थी।

भोगपुर

यहाँ पर महिन्द्र क्षत्रिय ने भगवान महावीर पर आक्रमण किया था। यह गाव सुसमार और नन्दीगाव के बीच मे था। यह अधिक सभव लगता ह कि यह स्थान कोशल भूमि मे था।

मगध

जेन वाङ्मय मे मगध का वणन अनेक स्थलो पर हुआ ह। प्रस्तुत जनपद की सीमा उत्तर मे गगा दक्षिण मे शोण नदी, पूव मे अग आर पश्चिम मे गहन जगलो तक फैली हुई थी। इस प्रकार दक्षिण विहार-मगध जनपद नाम से विश्रुत था। इस की राजधानी गिरिव्रज या राजगृह थी। महाभारत मे इसका नाम कीटक भी आया है। वायुपुराण के अनुसार राजगृह कीटक था। शक्ति सगमतत्र मे कालेश्वर-कालभैरव वाराणसी से तप्तकुण्ड-सीताकुण्ड मुगेर तक मगध देश माना ह[1] इस तन्त्र के अभिमता-नुसार मगध का दक्षिणी भाग कीटक[2] आर उत्तरी भाग मगध है। प्राचीन मगध का विस्तार पश्चिम मे कमनाशा नदी आर दक्षिण मे दमूद नदी के मूल स्रोत तक है। हुयान्त्सग के अनुसार मगध जनपद की परिधि मण्डलाकाररूप मे ८३३ मील थी। इसके उत्तर मे गगा, पश्चिम मे वाराणसी, पूव मे हिरण्यपर्वत आर दक्षिण मे सिंहभूमि थी। आचार्य बुद्धघोष ने मगध जनपद का नामकरण वतलाते हुए लिखा—

"वहुधा पपचानी"—अनेक प्रकार की किवदन्तिया प्रचलित ह। एक किंवदन्ती मे वताया गया हे कि जब राजा चेतिय असत्य-भाषण के कारण पृथ्वी मे प्रविष्ट होने लगा, तब उसके सन्निकट जो व्यक्ति खडे थे, उन्होने कहा—"मा गध पविस" पृथ्वी मे प्रवेश न करो, दूसरी किंवदन्ती के अनुसार राजा चेतिय धरती मे प्रविष्ट कर गया तो जो लोग पृथ्वी खोद रहे थे, उन्होने देखा। तव वह बोला—'मा गध करोथ'। इन अनुश्रुतियो का तथ्य यही ह कि मगधा नामक क्षत्रियो की यह निवास भूमि थी, अत यह मगध के नाम से विश्रुत थी।[3]

---

१ कालेश्वर समारभ्य तप्तकुण्डान्तक शिवे।
मगधाख्यो महादेशो यात्राया नहि दुष्यते॥ —शक्तितत्र ३।७।१०।

२ दक्षिणोत्तरक्रमेणैव क्रमात्कीटक मागधौ। —वही ३।७।११

३ बुद्धकालीन भारतीय भूगोल, साहित्य-सम्मेलन प्रयाग, सस्करण, पृ० ३६१

महाकवि अर्हद्दास ने मगध का सजीव चित्र उपस्थित किया है। उसने मगध को जम्बूद्वीप का भूषण माना है। यहाँ के पर्वत वृक्षावलियों से सुशोभित थे। कल-कल छल-छल नदियों की मधुर झंकार सुनाई देती थी। सघन वृक्षावली होने से धूप सताती नहीं थी। सदा धान्य की खेती होती थी। इक्षु, तिल, तीसी, गुड, कोदो, मूंग, गेहूँ एवं उडद आदि अनेक प्रकार के अन्न उत्पन्न होते थे। मगध धार्मिक-आर्थिक और राजनैतिक आदि सभी दृष्टियों से सम्पन्न था। वहाँ के निवासी तत्त्वचर्चा, स्वाध्याय आदि में तल्लीन रहते थे।[४]

मगध ईसा के पूर्व छठी शताब्दी में जैन और बौद्ध श्रमणों की प्रवृत्तियों का मुख्य केन्द्र था। ईस्वी पूर्व चतुर्थ शताब्दी से पाँचवी शताब्दी तक यह कला-कौशल आदि की दृष्टि से अत्यधिक समृद्ध था। नीतिनिपुण चाणक्य ने अर्थशास्त्र की रचना व वात्स्यायन ने कामसूत्र का निर्माण भी मगध में ही किया था। वहाँ के कुशल शासकों ने स्थान-स्थान पर मार्ग निर्माण कराया था। और जावा बालि प्रभृति द्वीपों में जहाजों के बेडे भेजकर इन द्वीपों को बसाया था।[५]

जैन और बौद्ध ग्रन्थों में मगध की परिगणना सोलह जनपदों में की गई है।[६] मगध, प्रभास और वरदाम ये भारत के प्रमुख स्थल थे जो पूर्व पश्चिम और दक्षिण में अवस्थित थे। भरत चक्रवर्ती का राज्याभिषेक वहाँ के जल से किया था।[७] अन्य देशवासियों की अपेक्षा मगधवासियों को अधिक बुद्धिमान् माना गया था। वे संकेत-मात्र से समझ लेते थे। जबकि कोशलवासी उसे देखकर, पाचालवासी उसे आधा सुनकर और दक्षिणवासी पूरा सुनकर ही उसे समझ पाते थे।[८]

---

४ मुनिसुव्रत काव्य अर्हद्दास रचित १।२२, २३ व २३

५ देखिये जैन आगम साहित्य में भारतीय समाज, पृ० ४६०

६ (क) अंग, बंग, मलय, मालवय, अच्छ, वच्छ, कोच्छ, पाढ, लाढ, वाज्जि, मोलि (मल्ल), कासी कोसल, अवाह सभुत्तर।—व्याख्याप्रज्ञप्ति-१५
(ख) तुलना कीजिये—अंग, मगध, कासी, कोसल, वज्जि, मल्ल, चेति, वंश, कुरु, पंचाल, मच्छ, सूरसेन, अस्सक, अवंति, गंधार और कंबोज।
—अंगुत्तर निकाय १।३, पृ० १९७।

७ (क) स्थानांग ३।१४२
(ख) आवश्यक चूर्णि, पृ० १८६
(ग) आवश्यक निर्युक्ति भाष्य दीपिका ११०, पृ० ९३ अ

८ व्यवहारभाष्य १०।१९२
तुलना करो—
बुद्धिर्वसति पूर्वेण दाक्षिण्यं दक्षिणापथे।
पैशुन्यं पश्चिमे देशे, पौरुष्यं चोत्तरापथे॥
—गिलगित मैनुस्क्रिप्ट ऑव द विनयपिटक, इण्डियन हिस्टोरिकल क्वाटर्ली १९३८, पृ० ४१६

साम्प्रदायिक विद्वेष से प्रेरित होकर ब्राह्मणो ने मगध को 'पापभूमि' कहा है। वहा जाने का भी उन्होने निषेध किया है। प्राचीन तीर्थमाला मे अठारहवी सदी के किसी जैनयात्री ने प्रस्तुत मान्यता पर व्यग करते हुए लिखा—अत्यन्त आश्चर्य है कि काशी मे कौआ भी मर जाय तो वह सीधा मोक्ष जाता है किन्तु यदि कोई मानव मगध मे मृत्यु को प्राप्त हो तो उसे गधे की योनि मे जन्म लेना पडेगा।[९]

मगध देश का प्रमुख नगर होने से राजगृह को मगधपुर भी कहा जाता था।[१०] भगवान् मुनिसुव्रत का जन्म भी मगध मे ही हुआ था।[११] महाभारत के युग मे मगध के सम्राट् प्रतिवासुदेव जरासन्ध थे।

बुद्धिस्ट इण्डिया के अनुसार मगध-जनपद वर्तमान गया और पटना जिले के अन्तर्गत फैला हुआ था। उसके उत्तर मे गगा नदी, पश्चिम मे सोन नदी, दक्षिण मे विन्ध्याचल पर्वत का भाग और पूर्व मे चम्पा नदी थी।[१२]

इसका विस्तार तीन सो योजन (२३००) मील था और उसमे अस्सी हजार गाव थे।[१३]

वसुदेवहिण्डी के अनुसार मगध देश और कलिग नरेश के बीच मनमुटाव चलता रहता था।[१४]

मथुरा

जिनसेनाचार्य कृत महापुराण मे लिखा है कि भगवान ऋषभदेव के आदेश से इन्द्र ने इस भूतल पर जिन ५२ देशो का निर्माण किया था उसमे शूरसेन भी था। जिसकी राजधानी मथुरा थी।[१]

सातवे तीर्थंकर सुपार्श्वनाथ और तेईसवे तीर्थंकर श्री पार्श्वनाथ का विहार भी मथुरा मे हुआ था।[२] तीर्थंकर महावीर मथुरा पधारे थे। अन्तिम केवली जम्बूस्वामी के तप और निर्वाण की भूमि होने से भी मथुरा का महत्त्व रहा है। मथुरा कई तीर्थंकरो की विहारभूमि, अनेक मुनियो की तपोभूमि और अनेक महापुरुषो की निर्वाणभूमि है।

---

९ कासी वासी काग मुउइ मुगति लहइ।
मगध मुओ नर खर हुई हे॥ —प्राचीन तीर्थमाला सग्रह, भाग १, पृ० ४

१० जैन आगम साहित्य मे भारतीय समाज, पृ० ४६१

११ मुनिसुव्रतकाव्य-अर्हद्दास रचित, श्री जैन सिद्धान्त भवन आरा सन् १९३६ ई०, १।२२, २३ व ३३।

१२ बुद्धिस्ट इण्डिया, पृ० २४।

१३ वही, पृ० २८।

१४ वसुदेव हिण्डी, पृ० ६१-६४।

१ महापुराण पर्व १६, श्लोक १५५

२ विविध तीर्थकल्प मे मथुरापुरी कल्प—जिनप्रभ सूरि

जैनागमो की प्रसिद्ध तीन वाचनाओ मे से एक वाचना मथुरा मे ही सम्पन्न हुई थी जो माथुरीवाचना कहलाती है। मथुरा के ककाली टीला की खुदाई मे जैन परम्परा से सम्बन्धित अनेक प्रकार की महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक सामग्री उपलब्ध हुई है। जिससे यह सिद्ध होता है कि मथुरा के साथ जैन इतिहास का गहरा सम्बन्ध रहा है।

बौद्ध धर्म के सर्वास्तिवादी सम्प्रदाय की मान्यता है कि इस भूतल के मानव-समाज ने सर्वसम्मति से अपना जो राजा निर्वाचित किया था, वह महासम्मत कहलाता था। उसने मथुरा के निकटवर्ती भू-भाग मे अपना प्रथम राज्य स्थापित किया था। इसलिए 'विनयपिटक' मे मथुरा को इस भूतल का आदि राज्य कहा गया है।[3]

अगुत्तरनिकाय मे १६ महाजन पदो का नामोल्लेख है, उनमे पहला नाम शूरसेन जनपद का है।

ह्वेनसाग ने तत्कालीन मथुरा राज्य का क्षेत्रफल ५००० ली (८३३ मील के लगभग) बताया है। उसकी सीमाओ के सम्बन्ध मे श्री कनिघम काअनुमान है कि वह पश्चिम मे भरतपुर और धौलपुर तक, पूर्व मे जिझोती (प्राचीन बुन्देलखण्ड राज्य)तक तथा दक्षिण मे ग्वालियर तक होगी। इस प्रकार उस समय भी मथुरा एक बडा राज्य रहा होगा।[४]

वैदिक परम्परा मे सास्कृतिक और आध्यात्मिक गौरव की आधारशिलाएँ सात महापुरिया मानी गई है—१ अयोध्या, २ मथुरा, ३ माया, ४ काशी, ५ काची, ६ अवतिका, ७ द्वारिका।[५] पद्मपुराण मे मथुरा का महत्त्व सर्वोपरि मानते हुए कहा गया है कि यद्यपि काशी आदि सभी पुरिया मोक्षदायिनी है तथापि मथुरापुरी धन्य है। यह पुरी देवताओ के लिए भी दुर्लभ है।[६] इसी का समर्थन 'गर्गसहिता' मे करते हुए बताया है कि पुरियो मे रानी कृष्णपुरी मथुरा ब्रजेश्वरी है, तीर्थेश्वरी है, यज्ञ तपोनिधियो की ईश्वरी है, यह मोक्षप्रदायिनी धर्मपुरी मथुरा नमस्कार योग्य है।[७]

मर्द्दना सन्निवेश

मर्द्दना सनिवेश की अवस्थिति कहा पर थी, यह निश्चित रूप मे नही कह

३ उत्तरप्रदेश मे बौद्ध धर्म का विकास, पृ० ३०

४ ऐंश्येट ज्योग्रॉफी आफ इण्डिया, पृ० ४२७-२८

५ अयोध्या मथुरा माया काशी काञ्ची अवतिका। पुरी द्वारवती चैव, सप्तता मोक्षदायिका॥ —गरुड पुराण

६ काश्यत्यो यद्यपि सन्ति पुर्यस्तासा हु मध्ये मथुरैव धन्या।
ता पुरी प्राप्य मथुरा मदीया सुरदुर्लभाम्॥
—पद्मपुराण ७३-४४-४५

७ गर्गसहिता ३३-३४

सकते। भगवान महावीर आलभिया, कुडाग आदि होते हुए यहा पर पधारे थे और यहा से वहुसालक होते हुए लोहागला पधारे थे। मर्द्दना सनिवेश मे वलदव के आलय मे भगवान ध्यानस्थ मुद्रा मे खडे हुए थे।

मलय गॉव

मलयगाव उडीसा के उत्तर-पश्चिमी भाग मे या गोंडवाना मे होना चाहिए ऐसा मुनि श्री कल्याणविजय जी का अभिमत है। सगमक ने भगवान को यहा पर कष्ट दिये थे।

मलयदेश

उस समय मलयदेश नाम के दो देश थे। भगवान महावीर ने जिस मलय मे विचरण किया था वह मलय पटना से दक्षिण मे और गया से नैऋत्य मे था। इसकी राजधानी भद्दिल थी। जहा पर भगवान ने वर्पावास व्यतीत किया था।

मलय सुन्दर वस्त्रों के लिए प्रसिद्ध था।[१] भद्दिल की पहचान हजारीवाग जिले के भद्दिया नामक गाव से की जाती है। यह स्थान हटरगज से छह मील की दूरी पर कुलुहा पहाडी के पास है, जहा पर अनेक जैन ध्वसावशेप मिले है।[२]

इस प्रदेश का द्वितीय महत्त्वपूण स्थान सम्मेदशिखर (पारसनाथ हिल) है। इसे समाधिगिरि, समिदगिरि, मल्ल पर्वत, और शिखर भी कहा गया है। इसकी परिगणना शत्रुजय, गिरनार, आवू ओर अष्टापद के साथ की गई है। यहाँ पर अनेक तीर्थंकरो ने निर्वाण प्राप्त किया था।[3]

मल्लदेश

इस नाम के दो देश थे, जो एक पश्चिम मल्ल ओर दूसरा पूर्व मल्ल के नाम से विश्रुत था। मुलतान के आसपास का प्रदेश पश्चिम मल्ल और पावा कुशीनारा के पास की भूमि पूर्व मल्ल कहलाती थी। यह निश्चित रूप से नही कह सकते कि भगवान महावीर पश्चिम मल्ल मे पधारे थे या नही। पर यह निश्चित है कि वे पूर्व मल्ल मे अवश्य पधारे थे।

मल्ल राज्य वैशाली के पश्चिम और कोशल के पूर्व मे था। गोरखपुर, सारन जिलो के अधिकाश भाग मल्लराज्य मे थे। मगध से कौशल जाते समय मल्लदेश मार्ग मे आता था।

---

१ (क) अनुयोगद्वार सूत्र ३७, पृ० ३०
(ख) निशीथसूत्र, चूर्णि ७।८२
२ डिस्ट्रिक्ट गजेटियर हजारीवाग, पृ० २०२
३ (क) आवश्यकनिर्युक्ति ३०७
(ख) ज्ञातृधर्मकथा ८, पृ० १२०
(ग) आचारागचूर्णि, पृ० २५७

जैनागमो की प्रसिद्ध तीन वाचनाओ मे से एक वाचना मथुरा मे ही सम्पन्न हुई थी जो माथुरीवाचना कहलाती है। मथुरा के ककाली टीला की खुदाई मे जैन परम्परा से सम्बन्धित अनेक प्रकार की महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक सामग्री उपलब्ध हुई है। जिससे यह सिद्ध होता है कि मथुरा के साथ जैन इतिहास का गहरा सम्बन्ध रहा है।

बौद्ध धर्म के सर्वास्तिवादी सम्प्रदाय की मान्यता है कि इस भूतल के मानव-समाज ने सर्वसम्मति से अपना जो राजा निर्वाचित किया था, वह महासम्मत कहलाता था। उसने मथुरा के निकटवर्ती भू-भाग मे अपना प्रथम राज्य स्थापित किया था। इसलिए 'विनयपिटक' मे मथुरा को इस भूतल का आदि राज्य कहा गया है।[3]

अगुत्तरनिकाय मे १६ महाजन पदो का नामोल्लेख है, उनमे पहला नाम शूर-सेन जनपद का है।

ह्वेनसाग ने तत्कालीन मथुरा राज्य का क्षेत्रफल ५००० ली (८३३ मील के लगभग) बताया है। उसकी सीमाओ के सम्बन्ध मे श्री कनिघम का अनुमान है कि वह पश्चिम मे भरतपुर और धोलपुर तक, पूर्व मे जिझोती (प्राचीन बुन्देलखण्ड राज्य) तक तथा दक्षिण मे ग्वालियर तक होगी। इस प्रकार उस समय भी मथुरा एक बडा राज्य रहा होगा।[४]

वैदिक परम्परा मे सास्कृतिक और आध्यात्मिक गौरव की आधारशिलाएँ सात महापुरिया मानी गई है—१ अयोध्या, २ मथुरा, ३ माया, ४ काशी, ५ काची, ६ अवतिका, ७ द्वारिका।[५] पद्मपुराण मे मथुरा का महत्त्व सर्वोपरि मानते हुए कहा गया है कि यद्यपि काशी आदि सभी पुरिया मोक्षदायिनी है तथापि मथुरापुरी धन्य है। यह पुरी देवताओ के लिए भी दुर्लभ है।[६] इसी का समर्थन 'गर्गसहिता' मे करते हुए बताया है कि पुरियो मे रानी कृष्णपुरी मथुरा ब्रजेश्वरी है, तीर्थेश्वरी है, यज्ञ तपोनिधियो की ईश्वरी है, यह मोक्षप्रदायिनी धर्मपुरी मथुरा नमस्कार योग्य है।[७]

मर्दना सन्निवेश

मर्दना सनिवेश की अवस्थिति कहा पर थी, यह निश्चित रूप मे नही कह

---

३ उत्तरप्रदेश मे बौद्ध धर्म का विकास, पृ० ३०

४ ऐश्येट ज्योग्रॉफी आफ इण्डिया, पृ० ४२७-२८

५ अयोध्या मथुरा माया काशी काञ्ची अवतिका। पुरी द्वारवती चैव, सप्तता मोक्ष-दायिका ॥ —गरुड पुराण

६ काश्यत्यो यद्यपि सन्ति पुर्यस्तासा तु मध्ये मथुरैव धन्या।
ता पुरी प्राप्य मथुरा मदीया सुरदुर्लभाम् ॥
—पद्मपुराण ७३-४४-४५

७ गर्गसहिता ३३-३४

सकते। भगवान महावीर आलभिया, कुडाग आदि होते हुए यहा पर पधारे थे और यहा से वहुसालक होते हुए लोहाग्गला पधारे थे। मर्द्दना सनिवेश मे वलदव के आलय मे भगवान ध्यानस्थ मुद्रा मे खडे हुए थे।

मलय गाँव

मलयगाव उडीसा के उत्तर-पश्चिमी भाग मे या गोडवाना म होना चाहिए ऐसा मुनि श्री कल्याणविजय जी का अभिमत ह। सगमक ने भगवान को यहा पर कष्ट दिये थे।

मलयदेश

उस समय मलयदेश नाम के दो देश थे। भगवान महावीर ने जिस मलय मे विचरण किया था वह मलय पटना से दक्षिण मे और गया से नैर्ऋत्य मे था। इसकी राजधानी भद्दिल थी। जहा पर भगवान ने वर्षावास व्यतीत किया था।

मलय सुन्दर वस्त्रो के लिए प्रसिद्ध था।[1] भद्दिल की पहचान हजारीवाग जिले के भद्दिया नामक गाव से की जाती है। यह स्थान हटरगज से छह मील की दूरी पर कुलुहा पहाडी के पास ह, जहा पर अनेक जैन ध्वसावशेष मिले ह।[2]

इस प्रदेश का द्वितीय महत्त्वपूण स्थान सम्मेदशिखर (पारसनाथ हिल) है। इसे समाधिगिरि, समिदगिरि, मल्ल पर्वत, आर शिखर भी कहा गया ह। इसकी परिगणना शत्रुजय, गिरनार, आबू आर अष्टापद के साथ की गई है। यहाँ पर अनेक तीर्थकरो ने निर्वाण प्राप्त किया था।[3]

मल्लदेश

इस नाम के दो देश थे, जो एक पश्चिम मल्ल आर दूसरा पूर्व मल्ल के नाम से विश्रुत था। मुलतान के आसपास का प्रदेश पश्चिम मल्ल और पावा कुशीनारा के पास की भूमि पूर्व मल्ल कहलाती थी। यह निश्चित रूप से नही कह सकते कि भगवान महावीर पश्चिम मल्ल मे पधारे थे या नही। पर यह निश्चित ह कि वे पूर्व मल्ल मे अवश्य पधारे थे।

मल्ल राज्य वैशाली के पश्चिम और कोशल के पूर्व मे था। गोरखपुर, सारन जिलो के अधिकाश भाग मल्लराज्य मे थे। मगध से कोशल जाते समय मल्लदेश मार्ग मे आता था।

---

१ (क) अनुयोगद्वार सूत्र ३७, पृ० ३०
 (ख) निशीथसूत्र, चूर्णि ७।१२

२ डिस्ट्रिक्ट गजेटियर हजारीवाग, पृ० २०२

३ (क) आवश्यकनिर्युक्ति ३०७
 (ख) ज्ञातृधर्मकथा ८, पृ० १२०
 (ग) आचारागचूर्णि, पृ० २५७

जैनागमो की प्रसिद्ध तीन वाचनाओ मे से एक वाचना मथुरा मे ही सम्पन्न हुई थी जो माथुरीवाचना कहलाती है। मथुरा के ककाली टीला की खुदाई मे जैन परम्परा से सम्बन्धित अनेक प्रकार की महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक सामग्री उपलब्ध हुई है। जिससे यह सिद्ध होता है कि मथुरा के साथ जैन इतिहास का गहरा सम्बन्ध रहा है।

बौद्ध धर्म के सर्वास्तिवादी सम्प्रदाय की मान्यता है कि इस भूतल के मानव-समाज ने सर्वसम्मति से अपना जो राजा निर्वाचित किया था, वह महासम्मत कहलाता था। उसने मथुरा के निकटवर्ती भू-भाग मे अपना प्रथम राज्य स्थापित किया था। इसलिए 'विनयपिटक' मे मथुरा को इस भूतल का आदि राज्य कहा गया है।[3]

अगुत्तरनिकाय मे १६ महाजन पदो का नामोल्लेख है, उनमे पहला नाम शूरसेन जनपद का है।

ह्वेनसाग ने तत्कालीन मथुरा राज्य का क्षेत्रफल ५००० ली (८३३ मील के लगभग) बताया है। उसकी सीमाओ के सम्बन्ध मे श्री कनिंघम का अनुमान है कि वह पश्चिम मे भरतपुर और धोलपुर तक, पूर्व मे जिझोती (प्राचीन बुन्देलखण्ड राज्य) तक तथा दक्षिण मे ग्वालियर तक होगी। इस प्रकार उस समय भी मथुरा एक बडा राज्य रहा होगा।[४]

वैदिक परम्परा मे सास्कृतिक और आध्यात्मिक गौरव की आधारशिलाएँ सात महापुरिया मानी गई है—१ अयोध्या, २ मथुरा, ३ माया, ४ काशी, ५ काची, ६ अवतिका, ७ द्वारिका।[५] पद्मपुराण मे मथुरा का महत्त्व सर्वोपरि मानते हुए कहा गया है कि यद्यपि काशी आदि सभी पुरिया मोक्षदायिनी है तथापि मथुरापुरी धन्य है। यह पुरी देवताओ के लिए भी दुर्लभ है।[६] इसी का समर्थन 'गर्गसहिता' मे करते हुए बताया है कि पुरियो मे रानी कृष्णपुरी मथुरा ब्रजेश्वरी है, तीर्थेश्वरी है, यज्ञ तपोनिधियो की ईश्वरी है, यह मोक्षप्रदायिनी धर्मपुरी मथुरा नमस्कार योग्य है।[७]

मर्दना सन्निवेश

मर्दना सन्निवेश की अवस्थिति कहा पर थी, यह निश्चित रूप मे नही कह

---

३ उत्तरप्रदेश मे बौद्ध धर्म का विकास, पृ० ३०

४ ऐश्येंट ज्योग्रॉफी आफ इण्डिया, पृ० ४२७-२८

५ अयोध्या मथुरा माया काशी काञ्ची अवतिका। पुरी द्वारवती चैव, सप्तैता मोक्ष-दायिका॥ —गरुड पुराण

६ काश्यत्यो यद्यपि सन्ति पुर्यस्तासा तु मध्ये मथुरैव धन्या।
ता पुरी प्राप्य मथुरा मदीया सुरदुर्लभाम्॥
—पद्मपुराण ७३-६४-६५

७ गर्गसहिता ३३-३४

सकते । भगवान महावीर आलभिया, कुडाग आदि होते हुए यहा पर पधारे थे और यहा से वहुसालक होते हुए लोहारगला पधारे थे । मद्दना सनिवेश मे वलदव के आलय मे भगवान ध्यानस्थ मुद्रा मे खडे हुए थे ।

मलय गांव

मलयगाव उडीसा के उत्तर-पश्चिमी भाग मे या गोडवाना म होना चाहिए ऐसा मुनि श्री कल्याणविजय जी का अभिमत ह् । सगमक ने भगवान को यहा पर कष्ट दिये थे ।

मलयदेश

उस समय मलयदेश नाम के दो देश थे । भगवान महावीर ने जिस मलय मे विचरण किया था वह मलय पटना से दक्षिण मे और गया से नैऋत्य मे था । इसकी राजधानी भद्दिल थी । जहा पर भगवान ने वर्षावास व्यतीत किया था ।

मलय सुन्दर वस्त्रों के लिए प्रसिद्ध था ।[1] भद्दिल की पहचान हजारीवाग जिले के भद्दिया नामक गाव से की जाती हे । यह स्थान हटरगज से छह मील की दूरी पर कुलुहा पहाडी के पास ह, जहा पर अनेक जैन ध्वसावशेप मिले ह् ।[2]

इस प्रदेश का द्वितीय महत्त्वपूण स्थान सम्मेदशिखर (पारसनाथ हिल) ह् । इसे समाधिगिरि, समिदगिरि, मल्ल पर्वत, आर शिखर भी कहा गया ह । इसकी परिगणना शत्रुजय, गिरनार, आबू आर अष्टापद के साथ की गई ह् । यहाँ पर अनेक तीर्थकरो ने निर्वाण प्राप्त किया था ।[3]

मल्लदेश

इस नाम के दो देश थे, जो एक पश्चिम मल्ल आर दूसरा पूव मल्ल के नाम से विश्रुत था । मुलतान के आसपास का प्रदेश पश्चिम मल्ल और पावा कुशीनारा के पास की भूमि पूव मल्ल कहलाती थी । यह निश्चित रूप से नही कह सकते कि भगवान महावीर पश्चिम मल्ल मे पधारे थे या नही । पर यह निश्चित ह कि वे पूर्व मल्ल मे अवश्य पधारे थे ।

मल्ल राज्य वैशाली के पश्चिम और कोशल के पूर्व मे था । गोरखपुर, सारन जिलो के अधिकाश भाग मल्लराज्य मे थे । मगध से कौशल जाते समय मल्लदेश मार्ग मे आता था ।

---

१ (क) अनुयोगद्वार सूत्र ३७, पृ० ३०
(ख) निशीथसूत्र, चूर्णि ७।१२

२ डिस्ट्रिक्ट गजेटियर हजारीवाग, पृ० २०२

३ (क) आवश्यकनिर्युक्ति ३०७
(ख) ज्ञातृधर्मकथा ८, पृ० १२०
(ग) आचारागचूर्णि, पृ० २५७

महापुर

महापुर यह उत्तर भारत मे था । महावीर के समय यहा का राजा वल था और रानी सुभद्रा थी । राजकुमार महावल ने भगवान के उपदेश को सुनकर पहले श्रावक धर्म ग्रहण किया था और बाद मे श्रमण धर्म ।

महासेन उद्यान

यह उद्यान मध्यम पावा के बाहर था । इसी उद्यान मे भगवान महावीर ने इन्द्रभूति आदि को दीक्षा प्रदान कर चतुर्विध तीर्थ की सस्थापना की थी ।

माणिभद्र चैत्य

यह चैत्य मिथिला के बाहर था, जहा पर भगवान महावीर ने जैन ज्योतिष पर प्रकाश डाला था । जब भी भगवान मिथिला पधारते थे, तब वे माणिभद्र चैत्य मे विराजते थे ।

मालव

प्राचीनकाल मे मालव नाम के दो देश विख्यात थे । प्रथम मुलतान के आस-पास का देश । जैनागमो मे जिस मालव को अनार्य देश माना है वह यही मालव है । दूसरा मालव आज का मालवा है । पूर्व वह अवन्ती जनपद कहलाता था । आज वह मालव और मध्यभारत के नाम से प्रसिद्ध है ।

मिथिला

विदेह राज्य की सीमा उत्तर मे हिमालय, दक्षिण मे गगा, पश्चिम मे गडकी और पूर्व मे मही नदी तक थी ।

जातक की दृष्टि से इस राष्ट्र का विस्तार तीन सौ योजन था ।[१] उसमे सोलह सहस्र गाव थे ।[२]

सुरुचि जातक से मिथिला के विस्तार का पता लगता है । वाराणसी के राजा ने यह निर्णय लिया कि वह अपनी पुत्री का विवाह ऐसे राजपुत्र से करेगा जो एक-पत्नीव्रत का पालन करेगा । मिथिला के राजकुमार सुरुचि के साथ विवाह की वार्ता चल रही थी । एकपत्नीव्रत की बात को सुनकर वहा के मन्त्रियो ने कहा—मिथिला का विस्तार सात योजन है । समूचे राष्ट्र का विस्तार तीन सौ योजन है । हमारा राज्य बहुत बडा है । ऐसे राज्य मे राजा के अन्त पुर मे सोलह हजार रानिया अवश्य होनी चाहिए ।[3]

रामायण मे मिथिला को जनकपुरी कहा है । विविध तीर्थकल्प मे इस देश को तिरहुत्ति कहा है ।[४] और मिथिला को जगती (प्राकृत-जगई) कहा है ।[५] इसके

१ सुरुचि जातक (स ४८९) भाग ४, पृ० ५२१-५२२

२ जातक (स ४०६) भाग ४, पृ० २७

३ जातक स ४८९ भाग ४, पृ० ५२१-५२२

४ सपइकाले तिरहुत्ति देसोत्ति भण्णई ।—विविधि तीर्थकल्प, पृ० ३२

५ विविध तीर्थकल्प, पृ० ३२

सन्निकट ही महाराजा जनक के भ्राता कनक थे। उनके नाम से कनकपुर बसा हुआ है।[६] मिथिला से जैन श्रमणों की शाखा मैथिलिया निकली।[७]

भगवान महावीर ने यहा पर छह चातुर्मास बिताए।[८] आठवे गणधर अकंपित की यह जन्मभूमि थी।[९] प्रत्येकबुद्ध नमि को कङ्कण की ध्वनि सुनकर यही पर वैराग्य उद्बुद्ध हुआ था।[१०] चतुर्थ निह्नव अश्वमित्र ने वीर निर्वाण के २२० वर्ष पश्चात् 'सामुच्छेदिक वाद' का यहीं से प्रवर्तन किया था।[११] दश पूर्वधारी आर्य महागिरि का यह मुख्य रूप से विहार क्षेत्र रहा है।[१२] बाणगंगा और गंडक ये दो नदियां इस नगर को परिवेष्ठित कर बहती थीं।[१३] जैन आगमों में उल्लिखित दस राजधानियों में मिथिला का भी नाम है।[१४]

मिथिला एक समृद्ध राष्ट्र था। जिनप्रभसूरि के समय वहां का प्रत्येक घर कदली-वन से सुशोभित था। खीर यहाँ का प्रिय भोजन माना जाता था। स्थान-स्थान पर वापी, कूप और तालाब मिलते थे। यहाँ की सामान्य जनता भी संस्कृत भाषा की ज्ञाता थी। यहाँ के लोग धर्मशास्त्रों में निपुण थे।[१५]

ईस्वी सन् की ९ वीं सदी में यहा पर प्रकाण्ड पंडित मंडनमिश्र निवास करते थे, जिनकी पत्नी ने शंकराचार्य को शास्त्रार्थ कर पराजित किया था। महान नैयायिक वाचस्पति मिश्र की यह जन्मभूमि थी और मैथिल कवि विद्यापति यहा के राजदरबार में रहते थे।

वर्तमान में नेपाल की सीमा के अन्तर्गत (जहा पर मुजफ्फरपुर और दरभंगा जिले मिलते हैं) छोटे नगर 'जनकपुर' को प्राचीन मिथिला कहा जाता है। कितने ही विद्वान सीतामढी के पास मुहिला नामक स्थान को प्राचीन मिथिला का अपभ्रंश मानते हैं।[१६]

---

६ विविध तीर्थकल्प, पृ० ३२
७ कल्पसूत्र २१३, पृ० २९८, देवेन्द्रमुनि सम्पादित
८ कल्पसूत्र १२२, पृ० १९८
९ आवश्यकनिर्युक्ति, गा ६४४
१० उत्तराध्ययन सुखबोधा, पत्र १३६-१४३
११ आवश्यक भाष्य, गा १३१
१२ आवश्यक निर्युक्ति, गा ७८२
१३ विविध तीर्थकल्प, पृ० ३२
१४ स्थानाङ्ग १०।७१७
१५ विविध तीर्थकल्प, पृ० ३२
१६ दी एन्शियन्ट ज्यौग्राफी ऑफ इण्डिया, पृ० ७१८

मिढिया

मिढिया चम्पा से मध्यम पावा जाते हुए मार्ग मे आता था। यहा पर चमरेन्द्र नामक असुरेन्द्र भगवान को वन्दन करने के लिए उपस्थित हुआ था।

मृगग्राम

मृगग्राम उत्तर भारत मे कही पर होना चाहिए। उसका निश्चित अता-पता बताना कठिन ह। यहा पर भगवान महावीर ने मृगापुत्र के पूव भवो के दुष्कृत कृत्यो का वर्णन किया था।

मेढियगाव

यह श्रावस्ती के सनिकट काशाम्वी से जाते हुए रास्ते मे आता था। गोशालक ने महावीर पर जो तेजोलेश्या प्रक्षिप्त की थी उसके छह माह के पश्चात् भगवान वहा पर पधारे थे। सिंह अनगार मेढियगॉव मे जाकर रेवती के यहा से औषध लाये थे और भगवान रोगमुक्त हुए थे।

मोकानगरी

मोका नगरी की अवस्थिति के सम्बन्ध मे मुनि श्री कल्याणविजय जी का अभिमत है कि पजाब प्रदेश मे अवस्थित वतमान मे जो मोगामण्डी है, वही प्राचीन मोकानगरी होनी चाहिए।

भगवान महावीर यहा पर पधारे थे और नन्दनचैत्य मे विराजे थे।

मोराक सन्निवेश

मोराक सनिवेश यह वैशाली के सन्निकट था। भगवान महावीर कोल्लाक सनिवेश से यहा पर पधारे थे। दूइज्जत नामक तापसो के आश्रम मे विराजे थे।

मौय सन्निवेश

मौर्य सनिवेश काशी देश के अन्तगत होना चाहिए। मडिक और मौर्यपुत्र गण-धरो की यह जन्मस्थली थी।

राजगृह

मगध की राजधानी राजगृह थी, जिसे मगधपुर, क्षितिप्रतिष्ठित, चणकपुर, ऋषभपुर, और कुशाग्रपुर आदि अनेक नामो से पुकारा जाता रहा ह।

आवश्यक चूर्णि के अनुसार कुशाग्रपुर मे प्राय आग लग जाती थी। अत राजा श्रेणिक ने राजगृह बसाया।[1] महाभारत युग मे राजगृह मे जरासध राज्य करता था।[2] रामायण काल मे बीसवे तीर्थकर मुनिसुव्रत का जन्म राजगृह मे हुआ था[3], दिगम्बर जैन ग्रन्थो के अनुसार भगवान महावीर का प्रथम उपदेश और सघ की सस्थापना

---

१ आवश्यक चूर्णि २, पृ० १५८

२ भगवान अरिष्टनेमि और कर्मयोगी श्री कृष्ण एक अनुशीलन,

३ (क) राजगिहे मुणिसुव्वयदेवा पउमा सुमित्त राएहि।—तिलोय पण्णत्ति
(ख) हरिवशपुराण सर्ग ६० (ग) उत्तरपुराण पर्व ६७

राजगृह मे हुई थी।[४] अन्तिम केवली जम्बू की जन्मस्थली, निर्वाणस्थली भी राजगृह रही है।[५] धन्ना और शालीभद्र जैसे धन कुबेरराजगृह के निवासी थे।[६] परम साहसी महान भक्त सेठ सुदर्शन भी राजगृह का रहने वाला था।[७] प्रतिभामूर्ति अभयकुमार आदि अनेक महान् आत्माओ को जन्म देने का श्रेय राजगृह को था।[८]

पाच पहाडियो से घिरे होने के कारण उसे गिरिव्रज भी कहते थे। उन पहाडियो के नाम जैन, बौद्ध, और वैदिक इन तीनो ही परम्पराओ मे पृथक्-पृथक रहे है। ये पहाडिया आज भी राजगृह मे है। वैभार और विपुल पहाडियो का वर्णन जैन ग्रन्थो मे विशेष रूप से आया है। वृक्षादि से वे खूब हरी-भरी थी। वहा अनेक जैन-श्रमणो ने निर्वाण प्राप्त किया था। वैभार पहाडी के नीचे ही तपोदा, और महातपोपतीरप्रभ नामक उष्ण पानी का एक विशाल कुण्ड था।[१०] वर्तमान मे भी वह राजगिर मे तपोवन नाम से प्रसिद्ध है।

भगवान महावीर ने अनेक चातुर्मास वहा व्यतीत किये।[११] दो सौ से भी अधिक बार उनके समवसरण होने के उल्लेख आगम साहित्य मे मिलते है। वहा पर गुणसिल[१२]

---

४ (क) हरिवशपुराण सर्ग २, श्लोक ६१-६७
(ख) पद्मपुराण पर्व २, श्लोक ११३
(ग) महापुराण पर्व १, श्लोक १९६

५ उत्तरपुराण पर्व ७६
जम्बूसामी चरिय पर्व ५-१३

६ त्रिषष्टि० १०।१०।१३६-१४८

७ अन्तकृतदशाग

८ त्रिषष्टि०

९ जैन—विपुल, रत्न, उदय, स्वर्ण और वैभार
वैदिक—वैहार, वाराह, वृषभ, ऋषिगिरि, और चैत्यक
बौद्ध—चन्दन, गिज्झकूट, वेभार, इसगिलि और वेपुल्ल।
—सुत्तनिपात की अट्ठकथा २, पृ० ३८२

१० (क) व्याख्याप्रज्ञप्ति २।५, पृ० १४१
(ख) बृहत्कल्पभाष्य वृत्ति २।३४२९
(ग) वायुपुराण १।४।५

११ (क) कल्पसूत्र ५।१२३
(ख) व्याख्याप्रज्ञप्ति ७।४, ५।९, २।५
(ग) आवश्यकनिर्युक्ति ४७३। ४९२।५१८

१२ (क) ज्ञातृधर्मकथा, पृ० ४७
(ख) दशाश्रुतस्कध १०९। पृ० ३६४
(ग) उपासकदशा ८, पृ० ५१

मडिकुच्छ[13] और मोगारिपाणि[14] आदि उद्यान थे। भगवान महावीर प्राय गुणसिल (वर्तमान मे जिसे गुणावा कहते ह उद्यान मे ठहरा करते थे।

राजगृह व्यापार का प्रमुख केन्द्र था। वहा पर दूर-दूर मे व्यापारी आया करते थे। वहा से तक्षशिला, प्रतिष्ठान, कपिलवस्तु, कुशीनारा, प्रभृति भारत के प्रसिद्ध नगरो मे जाने के माग थे।[15] बौद्ध ग्रन्थो मे वहा के सुन्दर धान के खेतो का वर्णन है।

आगम साहित्य मे राजगृह को प्रत्यक्ष देवलोकभूत एव अलकापुरी सदृश कहा हे।[16] महाकवि पुष्पदन्त ने लिखा है सोने, चादी से निर्मित राजगृह ऐसी प्रतिभासित होती थी कि स्वर्ग से अलकापुरी ही पृथ्वी पर आ गई है।[17] रविषेणाचार्य ने राजगृह को धरती का यौवन कहा ह।[18] अन्य अनेक कवियो ने राजगृह के महत्त्व पर विस्तार से प्रकाश डाला हे।

जैनियो का ही नही अपितु बौद्धो का भी राजगृह के साथ मधुर सबध रहा हे। विनयपिटक से स्पष्ट हे कि बुद्ध गृहत्याग कर राजगृह आए। तब राजा श्रेणिक ने उनको अपने साथ राजगृह मे रहने की प्रेरणा दी थी। पर बुद्ध ने वह बात नही मानी। बुद्ध अपने मत का प्रचार करने के लिए कई बार राजगृह आये थे। वे प्राय गृद्धकूट पर्वत, कलन्दक-निवाप और वेणुवन मे ठहरते थे।[19] एक बार बुद्ध जीवक कोमारभृत्य के आम्रवन मे थे तब जीवक ने उनसे हिंसा-अहिंसा के सम्बन्ध मे चर्चा की थी। जब वे वेणुवन मे थे तब अभयकुमार ने उनसे विचार-चर्चा की थी।[20] साधु सकलोदायि ने भी बुद्ध से यहाँ पर वार्तालाप किया।[21] एक बार बुद्ध ने तपोदाराम जहाँ गर्म पानी के कुँड थे वहाँ पर विहार किया था। बुद्ध के निर्वाण के पश्चात् राजगृह की अवनति होने लगी। जब चीनी यात्री ह्वेनसाग यहाँ पर आया था तब राजगृह पूर्व जैसा नही था। आज वहाँ के निवासी दरिद्र और अभावग्रस्त हैं। आजकल राजगृह 'राजगिर' के नाम से विश्रुत हे। राजगिर बिहार प्रान्त मे पटना से पूव और गया से पूर्वोत्तर मे अवस्थित है।

---

१३ व्याख्याप्रज्ञप्ति १५

१४ अन्तकृद्दशाग ६, पृ० ३१

१५ जैन आगमसाहित्य मे भारतीय समाज, पृ० ४६२

१६ पच्चक्ख देवलोग भूया एव अलकापुरी सकासा।

१७ तहि पुरवरु णामे रायगिहु कणयरयण कोडिहिं घडिउ।
वलिवड घर तहो सुखइहिं सुरणयरु गयणपडिउ॥ —णायकुमार चरिउ ६।

१८ तत्रास्ति सर्वत कात नाम्ना राजगृह पुरम्।
कुसुमामोद सुभग भुवनस्येव यौवन। —पद्मपुराण ३३।२

१९ मज्झिमनिकाय (सारनाथ १९३३)

२० मज्झिमनिकाय, अभयराजकुमार सुतन्त, पृ० २३४

२१ मज्झिम निकाय, चलसकलोदायी सुतन्त, पृ० ३०५

लोहार्गला

लोहार्गला मे भगवान महावीर को गुप्तचर समझकर बन्दी बना दिए थे। उस समय वहा का राजा जितशत्रु था। लोहार्गला की अवस्थिति कहा थी, यह निश्चित रूप मे कहना कठिन है।

मुनि श्री कल्याणविजय जी ने लोहार्गला से मिलते-जुलते तीन स्थान बताये है। वे ये है—

(१) वराहपुराण के अनुसार हिमालय के अचल मे लोहार्गल नामक एक स्थल था।

(२) पुष्कर-सामोद के पास लोहार्गल नामक वैष्णवो का प्राचीन तीर्थ है।

(३) शाहाबाद जिले की दक्षिणी हद मे 'लोहारडगा' नामक प्राचीन शहर है। इन तीन मे से किस लोहागला मे भगवान महावीर पधारे थे। भगवान महावीर का विहारक्रम इस प्रकार था—वे आलभिया मे कुडाक, मद्दना, बहुमाल होकर लोहागला पधारे थे ओर वहा से पुरिमताल पधारे थे। इस क्रम पर चिन्तन करने से यह स्पष्ट होता है कि पुष्कर के समीप जो लोहार्गला है वह, शाहबाद जिले का लोहरडगा है, ये दोनो तो महावीर के विहार क्षेत्र मे नही आते है, चूकि पुरिमताल से वे दोनो बहुत दूर है। अब रहा हिमालय के अचल मे रहा हुआ लोहार्गल। सभव है इसकी अवस्थिति हिमालय की दक्षिणी तलहट्टी मे कही पर रही होगी, और वहा पर महावीर का पदार्पण हुआ होगा। यह भी सभव है कि अयोध्या प्रान्त मे ही लोहार्गला नामक कोई स्थान रहा हो।

बग

बग की गणना प्राचीन जनपदो मे की गई है। वह व्यापार का मुख्य केन्द्र था। जल और स्थल दोनो ही मार्गों से वहा माल आता-जाता था। यह जनपद अग के पूर्व और सुह्म के उत्तर-पूर्व मे स्थित था। बौद्ध ग्रन्थ महावश मे बग जनपद के अधिपति सिंहबाहु राजा का वर्णन है। जिसके पुत्र विजय ने लका मे जाकर प्रथम राज्य स्थापित किया था।[1] मिलिन्दपण्हो मे बग का उल्लेख है। वहा नाविको का नावे लेकर व्यापारार्थ जाना दिखाया गया है।[2] दीपवश[3] और महावस[4] मे वर्द्धमान नगर का वर्णन है। डा० नेमिचन्द्र शास्त्री का मन्तव्य है कि वह आधुनिक बगाल के वर्द्धमान नगर से मिलाया जा सकता है।[5] बग को पूर्वी बगाल माना जा सकता है। आदिपुराण के अनुसार भरत चक्रवर्ती ने बग जनपद को अपने अधीन किया

---

१ महावस, हिन्दी अनुवाद ६।१, १६, २०, ३१

२ मिलिन्दपण्हो (बम्बई वि० वि० सस्करण) जि १, पृ० १५४

३ दीपवस, पृ० ८२

४ महावस (हिन्दी अनुवाद) १५।९२

५ आदिपुराण मे प्रतिपादित भारत, पृ० ६५

था।[६] प्राचीन युग मे बग विभिन्न नामो से पुकारा जाता था। पूर्वीय बगाल को समतट, पश्चिम बगाल को लाट, उत्तरी बगाल को पुण्ड्र और आसाम को कामरूप कहते थे। उसका एक नाम गौड भी था।

वत्स

वत्स काशी से लगा हुआ एक जनपद था। बौद्ध ग्रन्थो मे इसे वश लिखा है। जैन, बौद्ध और वैदिक वाड्मय मे जिस उदयन का उल्लेख है वह वत्साधिपति था। आचार्य आषाढ अपने शिष्यो सहित यहाँ पर रहे थे। वत्स की राजधानी कौशाम्बी थी। विशेष परिचय के लिए कोशाम्बी देखे।

वर्द्धमानपुर

वद्धमानपुर के विजयवर्द्धन उद्यान मे भगवान महावीर पधारे थे। राजा विजयमित्र और रानी अजू भगवान के दर्शनार्थ उपस्थित हुए। भगवान ने अजू के पूर्वभवो का कथन किया।

मुनि श्री कल्याणविजय जी के अभिमतानुसार सूबे बगाल का आधुनिक वर्दवान नगर, जो कलकत्ते मे मडमठ मील पश्चिम-दक्षिण मे अवस्थित है, वह प्राचीन वर्धमानपुर हो सकता है।

वाणिज्यग्राम

वाणिज्यग्राम वैशाली के सन्निकट गडकी नदी के दक्षिण तट पर था। उस युग मे वह व्यापार के प्रमुख केन्द्रो से था। महावीर के परम उपासक आनन्द गाथापति यही के निवासी थे। आधुनिक बसाडपट्टी के पास जो बजिया नामक गाव है वही प्राचीन वाजिज्य गाव है।

वालुकाग्राम

वालुकाग्राम प्राचीन कलिग और आधुनिक उडीसा के उत्तर पश्चिम मे था। सगमक देव ने यहाँ पर भगवान महावीर को अनेक प्रकार के कष्ट दिये थे।

विजयपुर

विजयपुर के बाहर नन्दनवन नामक उद्यान था। भगवान महावीर यहाँ पर पधारे। प्रथम यात्रा मे भगवान महावीर से राजकुमार सुवासव ने श्रावकव्रत ग्रहण किये और द्वितीय बार भगवान के पधारने पर वह श्रमण बना।

विजयपुर उत्तर बगाल मे गगा के किनारे पर था, जो आजकल विजयनगर के नाम से प्रसिद्ध है। प्रस्तुत प्रदेश पहले पुण्ड्रदेश के नाम विश्रुत था।

विशाखा

विशाखा की अवस्थिति के सम्बन्ध मे विद्वानो मे एकमत नही है। कितने ही विज्ञो का अभिमत है कि अयोध्या का अपर नाम विशाखा था। कितने ही विद्वानो का कथन है कि वतमान मे जो लखनऊ है, वही प्राचीन विशाखा है। चीनी यात्री ह्वेनसाग

---

६ आदिपुराण २६।४७, १६।१५२

का मत है कि कौशाम्बी से विशाखा पाँचसौ मील पर थी। मुनि श्री कल्याण-विजय जी का मत है कि विशाखा नगरी कौशल देश मे अयोध्या के पास एक स्वतंत्र नगरी थी। भगवान महावीर का वहा पर पदार्पण हुआ।

वीतभय

वीतभय नगर सिन्धु-सौवीर देश की राजधानी थी। भगवान महावीर वहाँ पर पधारे थे और उसके मृगवन उद्यान मे विराजे थे। वीतभय के अधिपति राजा उद्रायन को दीक्षा प्रदान की थी। विशो का मत है कि पजाब मे जो इस समय भेरा गाँव है, वही प्राचीन वीतभय था। विशेष सिन्धु-सौवीर देखे।

वीरपुर

भगवान महावीर एकबार वीरपुर पधारे थे और राजकुमार सुजात को उन्होने श्रावक धर्म मे दीक्षित किया था और जब कुछ समय के पश्चात् वहाँ पर पधारे तो उसे आर्हती दीक्षा प्रदान की।

तहसील मुहमदाबाद मे गाजीपुर से बाईस मील पर जो बारा गाँव है, वही प्राचीन वीरपुर होना चाहिए। चूकि वहाँ पर प्राचीन सिक्के आदि वस्तुए उपलब्ध हुई है।

वैशाली

वैशाली भारत की एक प्राचीन नगरी थी। जिसका उल्लेख जैन, बौद्ध और वैदिक वाङ्मय मे हुआ है। श्री जयचन्द विद्यालकार के अनुसार वैशाली न केवल लिच्छवियो की राजधानी थी किन्तु सम्पूर्ण वज्जी-सघ की राजधानी थी।[1] राकहिल ने लिखा है कि बौद्ध परम्परा से ज्ञात होता है कि वैशाली नगर मे तीन जिले थे और ये विभाग सभवत किन्ही तीन वशो की राजधानियाँ थी।[2] पण्ण जातक के उल्लेखानुसार वैशाली नगर मे दो-दो मील पर एक-एक परकोटा बना हुआ था, और उसमे तीन स्थानो पर अट्टालिकाओ सहित प्रवेश द्वार बने हुए थे।[3] लोमहस जातक मे भी इसका उल्लेख है।[4]

---

१ भारतीय इतिहास की रूपरेखा, भाग १, पृ० ३१३

२ (क) ज्योग्राफी आव अर्ली बुद्धिज्म, पृ० १२

(ख) पोलिटिकल हिस्ट्री आव इण्डिया, ५ वाँ सस्करण, पृ० १२०

३ वेसालिनगर गावुतगावुतन्तरे तीहि पकारेहि परिक्खित्त, तीसु ठानेसु गोपुरट्टाल-कोट्ठकयुत्त।

—जातकट्ठकथा, पृ० ३६६

४ वेसालिय तिण्ण पाकारान अन्तरे

—जातकट्ठकथा, पृ० २८३

भगवान महावीर के समय वैशाली भारत की एक प्रमुख नगरी थी। वर्तमान मे मुजफ्फरपुर जिले मे वह वसाढ के नाम मे विश्रुत है। बसाढ ही प्राचीन वैशाली है, इधर सर्वप्रथम ध्यान कनिंघम का केन्द्रित हुआ।[१४] 'वीवियन द' सेंट मार्टिन ने उस विचार का समर्थन किया।[१५] उसके पश्चात् कुछ पाश्चात्य विचारकों ने अन्य स्थापनाएँ की किन्तु विसेंट स्मिथ ने उन्हे अप्रमाणिक सिद्ध करते हुए बसाढ को ही वैशाली प्रमाणित किया।[१६] उसके लिए उन्होने निम्न तर्क प्रस्तुत किये—

१ किंचित् परिवर्तन से प्राचीन नाम आज भी प्रचलित है।

२ पटना व अन्य स्थानो से भौगोलिक सम्बन्धो पर विचार करने से भी वसाढ ही वैशाली ठहरता है।

३ चीनी यात्री युआन च्वाङ्ग ने जो वर्णन प्रस्तुत किया है, उससे भी हम इसी परिणाम पर पहुँचते है।

४ वसाढ की खुदाई मे मुद्राएँ (मुहरे) प्राप्त हुई है, जिस पर 'वैशाली' नाम उट्टङ्कित है।

कितने ही इतिहास से अनभिज्ञ व्यक्ति लछुआर (जिला मुगेर मोदागिरि) को लिच्छिवियो की राजधानी मानते है पर यह अनुचित है, चूंकि वैशाली लिच्छिवियो की राजधानी थी।[१७] लिच्छिवियो की राजधानी होने से वह मगध या अग देश मे कदापि नही हो सकती, वहाँ पर लिच्छिवियो का राज्य कदापि नही रहा है। उनका राज्य गगा के उत्तर विदेह मे था। दोनो जनपदो के बीच गगा नदी की सीमा थी।[१८] मगध के उत्तर और गगा के उस पार वज्जियो का राज्य था अर्थात् वैशाली नगर था और उससे भी उत्तर की ओर मल्ल रहते थे।[१९] बिम्बिसार ने राजगृह से लेकर गगा तक सम्पूर्ण मार्ग वन्दनवारो से सजाया था, उसी प्रकार लिच्छिवियो ने वैशाली मे लेकर गगा तक का मार्ग तोरण आदि से सजाया था।[२०] लिच्छिवि-वश की शक्तिशाली राजधानी वैशाली नगर प्रारम्भिक दिनो मे बौद्ध धर्म का दुर्ग था।[२१]

तथागत बुद्ध के समय मे वैशाली गगा से तीन योजन की दूरी पर थी, बुद्ध

---

१४ (क) आर्क्यलाजिकल-सर्वे-रिपोर्ट, प्रथम भाग, पृ० ५५-५६, भाग १६, पृ० ६
(ख) इडालाजिकल-स्टडीज भाग ३, पृ० १०७

१५ इडालाजिकल-स्टडीज भाग ३, पृ० १०७

१६ जर्नल आव रायल एशियाटिक-सोसाइटी १९०२, पृ० २६७

१७ डिक्शनरी ऑव पाली प्रापर नेम्स, भाग २, पृ० ९४०

१८ सयुक्तनिकाय, प्रथम भाग, पृ० ३

१९ लाइफ ऑव बुद्ध, ई० जे० टामस, रचित, पृ० १३

२० ज्योग्राफी ऑव अर्ली बुद्धिज्म, पृ० १०

२१ पच्चीसौ इयर्स ऑव बुद्धिज्म, पृ० ३२०

तीन दिनो मे गगा तट से वैशाली पहुँचे थे।[२२] युआन च्याङ्ग ने गगा से वैशाली की दूरी १३५ ली (२७ मील) लिखी हे।[२३] वर्तमान मे मुजफ्फरपुर जिले मे स्थित वसाढ गाव पटना से २७ मील और हाजीपुर से २० मील उत्तर मे हे। वसाढ से दो मील पर वरवरा है, उसके पास अशोक स्तम्भ है। सर्वप्रथम अनुसधान की दृष्टि से सेट मार्टिन और जनरल कनिघम ने प्रस्तुत स्तभ का निरीक्षण किया था और उन्होने वसाढ के ध्वसावशेषो की ओर ध्यान केन्द्रित किया था।

सन् १९०३-४ मे डा० ब्लाख के निरीक्षण मे खुदाई का कार्य हुआ और उसके पश्चात् सन् १९१३-१४ मे डाक्टर स्पूनर ने कार्य किया। विशाल दुर्ग की खुदाई मे अनेक मुहरे व ऐसे ध्वसावशेष प्राप्त हुए जिससे वैशाली की अवस्थिति के सम्बन्ध मे किसी को शका का अवकाश नही रहा। यहाँ पर बुद्ध की अस्थियाँ भी प्राप्त हुई। जिस अस्थि की चर्चा चीनी यात्री युवान च्याङ् ने की थी।

यह स्थान विशाल के गढ के नाम से विश्रुत है, यह आयताकार और ईटो से भरा हुआ हे। इसकी परिधि एक मील के लगभग हे। डाक्टर ब्लाख के अभिमतानुसार प्रस्तुत गढ उत्तर की ओर ७५७ फुट, दक्षिण की ओर ७८० फुट, पूव की ओर १६५५ फुट और पश्चिम की ओर १६५० फुट लम्बा हे। सन्निकट के खेतो की अपेक्षा खडहरो की ऊँचाई लगभग ८ फुट हे। दक्षिण के अतिरिक्त उसके तीन ओर खाई है। वर्तमान मे वह खाई १२५ फुट चोडी हे किन्तु कनिघम ने इसकी चौडाई २०० फुट लिखी हे, जिससे सहज ही ज्ञात हो सकता हे कि किले के तीन ओर खाई थी।

गढ के सन्निकट लगभग ३०० गज दक्षिण-पश्चिम मे एक स्तूप है जो ईटो का बना हुआ है, जो पास वाले खेतो से २३ फुट और ८ इच ऊँचा है। धरती पर उसका व्यास १४० फुट है। इसकी चर्चा चीनी यात्रियो ने नही की। स्तूप के किनारे खोदने पर मध्य युग के उत्कीर्ण किये हुए दो प्रस्तर स्तभ मिले हे, साथ ही उत्खनन मे ऐसी सैकडो मुद्राएँ मिली हे जिन पर अनेको राजा रानियो के नाम उट्टङ्कित ह।

जनश्रुति हे कि वैशाली मे बावन पुष्करिणिया थी किन्तु कनिघम को उसमे से १६ का ही पता लग सका था।

चीन यात्री फाहियान आर युआन च्वाङ्ग दोनो ने अपने यात्रा-ग्रन्थो मे वैशाली का वर्णन किया है।

फाहियान लिखते ह—वैशाली नगर के उत्तर स्थित महावन मे कूटागार-विहार (बुद्धदेव का निवास-स्थान) हे। आनन्द का अर्द्धाङ्ग स्तूप है। इस नगर मे अम्बपाली वेश्या रहती थी, उसने बुद्ध का स्तूप बनवाया है। वह अभी तक उसी प्रकार हे। नगर के दक्षिण तीन 'ली' पर अम्बपाली वेश्या का बगीचा है जो उसने बुद्ध को दान दिया था और बुद्ध उसमे रहे थे। जब बुद्ध परिनिर्वाण के लिए शिष्यो

---

२२ डिक्शनरी ऑव पाली प्रापर नेम्स, भाग २, पृ० ९४१

२३ ऐशेण्ट ज्यौग्राफी ऑव इडिया—कनिघम, पृ० ६५४

सहित वैशाली नगर से पश्चिम द्वार से निकले तो दाहिनी ओर घूमकर नगर को देखकर शिष्यों से कहा—यह मेरी अन्तिम विदा है।

युआन च्वाङ्ग ने लिखा—इस राज्य का क्षेत्रफल लगभग ५ हजार 'ली' है। भूमि उत्तम और उपजाऊ है। फल-फूल बहुत अधिक होते हैं। विशेषकर आम और मोच (केला) अधिकता से होते हैं और महंगे बिकते हैं। जलवायु सहज और मध्यम प्रकार की है तथा मनुष्यों का आचरण शुद्ध और सच्चा है। बौद्ध और बौद्धेतर दोनों ही मिलकर रहते हैं। यहाँ कई सौ संघाराम हैं पर सभी खंडहर हो गये हैं। तीन या पाँच ऐसे हैं जिनमें बहुत ही कम संख्या में साधु रहते हैं जैनधर्मानुयायी काफी संख्या में हैं।[२४]

वैशाली की राजधानी बहुत-कुछ खंडहर है। पुराने नगर का घेरा ६० से ७० 'ली' तक है और राजमहल का विस्तार ४-५ 'ली' के घेरे में है। बहुत थोड़े-से लोग इसमें निवास करते हैं। राजधानी से पश्चिमोत्तर ५-६ 'ली' की दूरी पर एक संघाराम है। इसमें कुछ साधु रहते हैं। ये लोग सम्मतीय संस्था के अनुसार हीनयान-सम्प्रदाय के अनुयायी हैं। विशेष परिचय के लिए जन्मभूमि शीर्षक लेख में देखें।

शालिशीर्ष

शालिशीर्ष की अवस्थिति वैशाली और भद्रिका के मध्य में थी। सम्भव है वह अंग देश की वायव्य सीमा पर रहा होगा। चूंकि महावीर वहाँ से भद्रिका पधारे थे। शालिशीर्ष के उद्यान में कटपूतना देवी ने भगवान को शीत उपसर्ग दिया था, समभाव से सहन करने से लोकावधिज्ञान की उपलब्धि हुई थी।

श्रावस्ती

यह कौशल राज्य की राजधानी थी। आधुनिक विद्वानों ने इसकी पहचान सहेट-महेट से की है। सहेट गोंडा जिले में है और महेट बहराईच जिले में। महेट उत्तर में है और सहेट दक्षिण में।[१] यह स्थान उत्तर-पूर्वीय रेलवे के बलरामपुर स्टेशन से जो सड़क जाती है, उससे दस मील दूर है। बहराईच से वह २९ मील पर अवस्थित है।

विद्वान वी स्मिथ के अभिमतानुसार श्रावस्ती नेपाल देश के खजूरा प्रान्त में है और वह बालपुर की उत्तर दिशा में तथा नेपालगंज के सन्निकट उत्तर पूर्वीय दिशा में है।[२] युआन चुआङ्ग ने श्रावस्ती को जनपद माना है और उसका विस्तार छह हजार ली, उसकी राजधानी को 'प्रासाद नगर' कहा है, जिसका विस्तार बीस ली माना है।[3]

---

२४ बुद्धिस्ट रेकार्ड ऑव वेस्टर्न वर्ल्ड, द्वितीय खण्ड, पृ० ६६-६७

१ दी एन्शियण्ट ज्योग्राफी ऑफ इंडिया, पृ० ४६९-४७४

२ जर्नल ऑफ रॉयल एशियाटिक सोसायटी, भाग १, जन १९००

३ युआन चुआङ्गस् ट्रैवेल्स इन इंडिया, भाग १ पृ० ३७७

जैन दृष्टि से यह नगरी अचिरावती (राप्ती) नदी के किनारे बसी थी। जिसमे बहुत कम पानी रहता था, जिसे पार कर जैन श्रमण भिक्षा के लिए जाते थे।[४] कभी-कभी उसमे बहुत तेज बाढ भी आ जाती थी।[५]

श्रावस्ती बौद्ध और जैन सस्कृति का केन्द्रस्थान रहा है। केशी और गौतम का ऐतिहासिक सवाद वही हुआ।[६] अनेक ऐतिहासिक प्रसग उस भूमि से जुडे हुए है।[७] भगवान् महावीर ने छद्मस्थावस्था मे दसवाँ चातुर्मास वहा पर किया था। केवलज्ञान होने पर भी वे अनेक बार वहा पर पधारे थे और सैकडो व्यक्तियो को प्रव्रज्या प्रदान की थी और हजारो को उपासक बनाया था। श्रावस्ती के कोष्ठकोद्यान मे गोशालक ने तेजोलेश्या से सुनक्षत्र और सर्वानुभूति मुनियो को मारा था और भगवान महावीर पर भी तेजोलेश्या प्रक्षिप्त की थी। गोशालक का परम उपासक अयपुल व हालाहला कुमारिन यही के रहने वाले थे।

श्वेताम्बिका

यह जैनागमो मे वर्णित साढे पच्चीस आर्यदेशो मे से 'केकय' देश की राजधानी थी। वहाँ के राजा प्रदेशी को केशीकुमार श्रमण ने आस्तिक बनाया था। बौद्ध ग्रन्थो मे 'सेयविया' को सेतव्वा कहा है और उसे कोशल देश की नगरी बताया है।[१] बौद्ध ग्रन्थो की दृष्टि से श्रावस्ती से कपिलवस्तु जाते समय श्वेताम्बिका बीच मे आती थी। जैन वर्णना से श्वेताम्बिका श्रावस्ती से पूर्वोत्तर मे अवस्थित थी। मुनि श्री कल्याणविजय जी के अभिमतानुसार उत्तर-पश्चिम बिहार के मोतीहारी शहर से पूर्व लगभग पैंतीस मील पर अवस्थित सीमामढी यह श्वेताम्बिका का अपभ्र श है।[२]

सानुलट्ठियगाम

सानुलट्ठियगाम या सानुयष्टिक गाव कहा पर था? यह निश्चित रूप से नही कहा जा सकता। सभव यही है कि यह स्थान दृढभूमि मे कही पर था जो प्राचीन कलिग के पश्चिमीय अचल मे थी।

---

४ (क) कल्पसूत्र
(ख) बृहत्कल्प सूत्र ४।३३
(ग) बृहत्कल्प भाष्य ४।५६३९, ५६५३

५ (क) आवश्यक चूर्णि, पृ० ६०१
(ख) आवश्यक हारिभद्रीया वृत्ति, पृ० ४६५
(ग) आवश्यक मलयगिरि वृत्ति, पृ० ५६७
(घ) टानी का कथाकोश, पृ० ६

६ उत्तराध्ययन

७ देखिए—प्रस्तुत ग्रन्थ

१ दीघनिकाय २, पायासि सुत्त, पृ० २३६

२ श्रमण भगवान महावीर, पृ० ३९१

इसी गाव के बाहर भगवान महावीर ने भद्र, महाभद्र और सर्वतोभद्र प्रतिमा पूर्वक ध्यान किया था।

सिधु देश

सिन्धु-सावीर जनपद मे सिन्धु और सावीर दोनो सम्मिलित थे। अभयदेव के अभिमतानुसार सौवीर (सिन्ध) सिधु नदी के सन्निकट होने के कारण सिंधु-सौवीर कहा जाता था।[1] किन्तु बौद्ध वाड्मय मे सिधु और सावीर को पृथक्-पृथक् न मानकर, रोरुक को सौवीर की राजधानी कहा है।

वैदिक ग्रन्थ बाधायन मे सिधु-सौवीर अस्पृश्य देश कहा है और वहा पर जाने वाले ब्राह्मण को पुन सस्कार के योग्य कहा है। बौद्ध साहित्य मे गाधार और काम्बोज राज्यो के उल्लेख किये है किन्तु सिन्धु-सावीर की इस प्रकार चर्चा नही की है। सिधु देश मे बाढ का प्रकोप यदा-कदा होता रहता था, तथा देश मे चारिका, परिव्राजिका, कार्पाटिका, तच्चन्निका (बौद्ध भिक्षुणी) और भागवी आदि अनेक पाखण्डी श्रमणियो का वह स्थान था, अत जैन श्रमणो को उस देश मे गमन करने का निषेध था। यदि अपरिहाय कारण से जाना हो तो शीघ्र पुन लौट आने का विधान किया।[2] भोजन-पानी आदि भी उस देश मे शुद्धता से उपलब्ध नहीं होता था। मास-भक्षण का वहा पर अधिक प्रचलन था। वहाँ के निवासी मदिरापान करते थे और मदिरापान के पात्र से ही पानी पी लिया करते थे।[3] ज्ञात होता है कि भगवान महावीर ने सिन्ध मे सर्व प्रथम धर्म प्रचार किया था और वहाँ पर पधार कर राजा उद्रायण को आर्हती दीक्षा प्रदान की थी। उसके पश्चात् उस देश मे जैन श्रमणो के विहार होते रहे। दिगम्बर परम्परा के अनुसार राभिल्ल, स्थूलभद्र और भद्राचार्य ने उज्जयिनी मे दुष्काल पडने पर सिन्धु देश मे विहार किया था। भिक्षा प्राप्त करने के लिए वहा पर जैन साधुओ को भी स्वच्छ वस्त्र की आवश्यकता होती थी।[4]

महावीर के समय सिन्धु और सौवीर एक सयुक्त राज्य था। उसके पश्चात् सावीर पृथक् हुआ और आधुनिक पजाब का दक्षिणी भाग सिन्धु मे सम्मिलित हो गया। आज कल सिधु 'सिन्ध' के नाम से प्रसिद्ध है और कच्छ (जो पूर्वकाल मे सौवीर कहलाता था) व पजाब के बीच मे फैला हुआ है।

वीतभयपट्टन सिधु-सावीर की राजधानी थी। इसका अपर नाम कुम्भार प्रक्षेप (कुम्भार पक्खेव) बताया गया है।[5] यह नगर सिणवल्लि मे अवस्थित था। सिणवल्लि एक निर्जन रेगिस्तान था, जहा पर व्यापारियो को क्षुधा और पिपासा से

---

१ व्याख्याप्रज्ञप्ति १३।६, पृ० ६२०

२ बृहत्कल्प भाष्य १।२८८१, ४, ५४४१

३ बृहत्कल्प भाष्य १।१२३९

४ निशीथ चूर्णि १५।५०९४ की चूर्णि

५ आवश्यक चूर्णि २, पृ० ३७

जैन दृष्टि से यह नगरी अचिरावती (राप्ती) नदी के किनारे बसी थी। जिसमे बहुत कम पानी रहता था, जिसे पार कर जैन श्रमण भिक्षा के लिए जाते थे।[४] कभी-कभी उसमे बहुत तेज बाढ भी आ जाती थी।[५]

श्रावस्ती बौद्ध और जैन सस्कृति का केन्द्रस्थान रहा है। केशी और गौतम का ऐतिहासिक सवाद वहीं हुआ।[६] अनेक एतिहासिक प्रसग उस भूमि से जुडे हुए है।[७] भगवान् महावीर ने छद्मस्थावस्था मे दसवाँ चातुर्मास वहा पर किया था। केवलज्ञान होने पर भी वे अनेक बार वहा पर पधारे थे और सैकडो व्यक्तियो को प्रव्रज्या प्रदान की थी और हजारो को उपासक बनाया था। श्रावस्ती के कोष्ठकोद्यान मे गोशालक ने तेजोलेश्या से सुनक्षत्र और सर्वानुभूति मुनियो को मारा था और भगवान महावीर पर भी तेजोलेश्या प्रक्षिप्त की थी। गोशालक का परम उपासक अयपुल व हालाहला कुमारिन यहीं के रहने वाले थे।

श्वेताम्बिका

यह जैनागमो मे वर्णित साढे पच्चीस आर्यदेशो मे से 'केकय' देश की राजधानी थी। वहाँ के राजा प्रदेशी को केशीकुमार श्रमण ने आस्तिक बनाया था। बौद्ध ग्रन्थो मे 'सेयविया' को सेतव्वा कहा है और उसे कोशल देश की नगरी बताया है।[१] बौद्ध ग्रन्थों की दृष्टि से श्रावस्ती से कपिलवस्तु जाते समय श्वेताम्बिका बीच मे आती थी। जैन वर्णनो से श्वेताम्बिका श्रावस्ती से पूर्वोत्तर मे अवस्थित थी। मुनि श्री कल्याणविजय जी के अभिमतानुसार उत्तर-पश्चिम बिहार के मोतीहारी शहर से पूर्व लगभग पैंतीस मील पर अवस्थित सीमामढी यह श्वेताम्बिका का अपभ्रंश है।[२]

सानुलट्ठियगाम

सानुलट्ठियगाम या सानुयष्टिक गाव कहा पर था ? यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। सभव यही है कि यह स्थान दृढभूमि मे कहीं पर था जो प्राचीन कलिग के पश्चिमीय अचल मे थी।

---

४ (क) कल्पसूत्र
(ख) बृहत्कल्प सूत्र ४।३३
(ग) बृहत्कल्प भाष्य ४।५६३९, ५६५३

५ (क) आवश्यक चूर्णि, पृ० ६०१
(ख) आवश्यक हारिभद्रीया वृत्ति, पृ० ४६५
(ग) आवश्यक मलयगिरि वृत्ति, पृ० ५६७
(घ) टानी का कथाकोश, पृ० ६

६ उत्तराध्ययन

७ देखिए—प्रस्तुत ग्रन्थ

१ दीघनिकाय २, पायासि सुत्त, पृ० २३६

२ श्रमण भगवान महावीर, पृ० ३९१

इसी गाव के बाहर भगवान महावीर ने भद्र, महाभद्र और सर्वताभद्र प्रतिमा पूर्वक ध्यान किया था ।

सिधु देश

सिन्धु-सावीर जनपद मे सिन्धु ओर सावीर दोनो सम्मिलित थे। अभयदेव के अभिमतानुसार सौवीर (सिन्ध) सिंधु नदी के सन्निकट होने के कारण सिंधु-सौवीर कहा जाता था।[1] किन्तु बौद्ध वाङ्मय मे सिंधु और सावीर को पृथक्-पृथक् न मानकर, रोरुक को सौवीर की राजधानी कहा है।

वैदिक ग्रन्थ बाधायन मे सिंधु-सौवीर अस्पृश्य देश कहा है और वहा पर जाने वाले ब्राह्मण को पुन संस्कार के योग्य कहा है। बौद्ध साहित्य मे गाधार और काम्बोज राज्यो के उल्लेख किये है किन्तु सिन्धु-सौवीर की इस प्रकार चर्चा नही की है। सिंधु देश मे बाढ का प्रकोप यदा-कदा होता रहता था, तथा देश मे चारिका, परिव्राजिका, कार्पाटिका, तच्चत्रिका (बौद्ध भिक्षुणी) और भागवी आदि अनेक पाखण्डी श्रमणियो का वह स्थान था, अत जैन श्रमणो को उस देश मे गमन करने का निषेध था। यदि अपरिहार्य कारण मे जाना हो तो शीघ्र पुन लौट आने का विधान किया।[2] भोजन-पानी आदि भी उस देश मे शुद्धता मे उपलब्ध नही होता था। मास-भक्षण का वहा पर अधिक प्रचलन था। वहाँ के निवासी मदिरापान करते थे और मदिरापान के पात्र से ही पानी पी लिया करते थे।[3] ज्ञात होता है कि भगवान महावीर ने सिन्ध मे सर्व प्रथम धर्म प्रचार किया था और वहाँ पर पधार कर राजा उद्रायण को आर्हती दीक्षा प्रदान की थी। उसके पश्चात् उस देश मे जैन श्रमणो के विहार होते रहे। दिगम्बर परम्परा के अनुसार राभिल्ल, स्थूलभद्र और भद्राचार्य ने उज्जयिनी मे दुष्काल पडने पर सिन्धु देश मे विहार किया था। भिक्षा प्राप्त करने के लिए वहा पर जैन साधुओं को भी स्वच्छ वस्त्र की आवश्यकता होती थी।[4]

महावीर के समय सिन्धु और सौवीर एक संयुक्त राज्य था। उसके पश्चात् सोवीर पृथक् हुआ और आधुनिक पजाब का दक्षिणी भाग सिन्धु मे सम्मिलित हो गया। आज कल सिंधु 'सिन्ध' के नाम से प्रसिद्ध है ओर कच्छ (जो पूर्वकाल मे सौवीर कहलाता था) व पजाब के बीच मे फैला हुआ है।

वीतभयपट्टन सिंधु-सोवीर की राजधानी थी। इसका अपर नाम कुम्भार प्रक्षेप (कुम्भार पक्खेव) बताया गया है।[5] यह नगर सिणवल्लि मे अवस्थित था। सिणवल्लि एक निर्जन रेगिस्तान था, जहा पर व्यापारियो को क्षुधा ओर पिपासा से

---

१ व्याख्याप्रज्ञप्ति १३।६, पृ० ६२०

२ बृहत्कल्प भाष्य १।२८८१, ४, ५४८१

३ बृहत्कल्प भाष्य १।१२३९

४ निशीथ चूर्णि १५।५०९४ की चूर्णि

५ आवश्यक चूर्णि २, पृ० ३७

पीडित होकर अपने अमूल्य जीवन से भी हाथ धोने पडते थे।[६] जैन साहित्य की दृष्टि से सिनपल्ली के दीर्घ मार्ग निर्जल और छाया रहित थे। केवल उसमे एक ही वृक्ष था। देवप्रभसूरि ने पाण्डव चरित्र मे लिखा—जरासध के साथ यादवो ने सिनपल्ली के पास सरस्वती नदी के तट पर युद्ध किया था और जीत होने पर आनन्दवश वे नाचे थे, जिससे सिनपल्ली आनन्दपुर के नाम से प्रसिद्ध हुई। मुनि श्री कल्याणविजय जी के अनुसार बीकानेर राज्य के उत्तर प्रदेश मे अवस्थित आदनपुर ही आनन्दपुर होना चाहिए। विज्ञो की धारणा है कि पाकिस्तान मे मुजफ्फरगढ जिले के अन्तर्गत सनावन या सिनावन जो स्थान है वही सिणवल्ली है। वीतभय की पहचान पाकिस्तान मे शाहपुर जिले के अन्तर्गत भेरा नामक स्थान से करते है। इसका प्राचीन नाम भद्रवती था, पर प्रश्न यह है कि निशीथ चूर्णि मे वीतिभय और उज्जैनी के मध्य ८० योजन का अन्तर बताया है, वह किस प्रकार बैठ सकेगा ?

सुरभिपुर

सुरभिपुर विदेह से मगध जाते हुए मार्ग मे आता था और गगा के उत्तर तट पर था। सभव है यह विदेह भूमि की दक्षिण सीमा का अन्तिम स्थान रहा हो। भगवान श्वेताम्बी से विहार कर अनुक्रम से यहाँ पधारे थे। और नौका से गगा को पार कर थूणाक सनिवेश पधारे थे।

सुवर्णखल

कोल्लाक सनिवेश से चम्पा की ओर जाते समय सुवर्णखल बीच मे आता था। सुवर्णखल राजगृह से पूर्व दिशा मे था और वाचला के पास जो कनकखल आश्रम था, उससे भिन्न था।

सुवर्णबालुका

यह नदी उत्तर और दक्षिण वाचाला के बीच मे थी, जहाँ पर भगवान महावीर का अर्धवस्त्र कधे से नीचे गिर पडा था।

सुसुमार

भगवान महावीर की शरण ग्रहण कर चमरेन्द्र प्रथम देवलोक मे गया था।

सुसमार मिर्जापुर जिला मे वर्तमान चुनार के पास एक पहाडी नगर था। कितने ही विद्वान सुसुमार को भर्ग देश की राजधानी बताते है।

सुह्म

कितने ही विद्वानो का मन्तव्य है कि हुगली और मिदनापुर के मध्य का प्रदेश सुह्म है जो उडीसा की सीमा पर फैला हुआ दक्षिण वग का प्रदेश है। इसकी राजधानी ताम्रलिप्ति थी।

---

६ आवश्यक चूर्णि, पृ ३४, ५५३

कितने ही अन्य विद्वान हजारीबाग, सथाल परगना जिलों के कुछ भाग को सुह्म मानते है।

वैजयन्ती कोशकार ने सुह्म को ही राढ का नामान्तर माना है।

मुनि कल्याणविजय जी ने हजारीबाग से पूर्व मे जहाँ पहले भगी देश था, उसका पूर्व प्रदेश राढ का दक्षिणी-पश्चिमी कुछ भाग और दक्षिणी बग का थोडा पश्चिमी भाग सुह्म माना है। भगवान महावीर सुह्म मे पधारे थे।

हस्तिशीर्ष

इस गाँव के बाहर श्मशान भूमि मे भगवान ने ध्यान किया था और सगमक ने महावीर को कष्ट दिया था।

हस्तिशीर्षनगर

हस्तिशीर्षनगर के बाहर पुष्पकरडक नामक उद्यान था। भगवान महावीर जब भी वहाँ पर पधारते तब उस उद्यान मे ठहरते थे। उस समय राजा अदीनशत्रु और रानी धारणी भगवान को वन्दन के लिए पहुँचती। भगवान ने राजकुमार सुबाहु को पहले श्रावकधर्म मे दीक्षित किया ओर उसके पश्चात् श्रमणधर्म मे।

हस्तिशीर्षनगर की अवस्थिति कुरुदेश के पास मे थी, चूँकि कुरुदेश की सीमा उससे मिलती थी।

□

परिशिष्ट . ६

शब्द-कोष

अकर्मभूमि—असि, मषि, आदि कमा से रहित भूमि अर्थात् भोगभूमि ।

अकल्प्य—अग्राह्य ।

अकुशल—दुःख देने वाले पाप कम ।

अक्रियावादी—जो अवस्थान का प्रसग प्राप्त होने पर भी सभावना से अव-स्थान से रहित किसी भी अनवस्थित पदार्थ की क्रिया को स्वीकार नही करते, वे अक्रियावादी कहे जाते ह ।

अगुरुलघु—गुरु या लघुता के न होने का नाम अगुरुलघु है ।

अगप्रविष्ट—भगवान के द्वारा कथित अर्थ की गणधरो के द्वारा जो आचारादि रूप से अगरचना की जाती हे ।

अगबाह्य—गणधरो के शिष्य-प्रशिष्यादि उत्तरवर्ती आचार्यो के द्वारा अल्प-बुद्धि शिष्यो के अनुग्रहार्थ की गई सक्षिप्त अगार्थ ग्रन्थ रचना ।

अचक्षुदर्शन—चक्षुरिन्द्रिय के सिवाय शेष चार इन्द्रियो और मन से होने वाला सामान्य प्रतिभास या अवलोकन।

अचौर्यमहाव्रत—ग्राम, नगर या अरण्य आदि किसी भी स्थान पर किसी के रखे, भूले या गिरे हुए द्रव्य के ग्रहण की इच्छा भी नही करना ।

अजीव—जिसमे चेतना का अभाव हो।

अज्ञान—मिथ्यात्व के उदय के साथ विद्यमान ज्ञान को भी अज्ञान कहा जाता है, वह मति, श्रुत और विभग रूप से तीन प्रकार का हे । ज्ञानावरण कर्म के उदय से वस्तु के स्वरूप का ज्ञान न होने को भी अज्ञान कहा हे ।

अतिक्रम—मानसिक शुद्धि के अभाव को अतिक्रम कहते ह । अथवा दिग्व्रत मे जो दिशाओ का प्रमाण स्वीकार किया गया है, उसका उल्लघन करना, यह दिग्व्रत का अतिक्रम है ।

अतिचार—व्रत के देशत भग होने का नाम अतिचार ह ।

अधर्मास्तिकाय—जो स्वय ठहरते हुए जीव और पुद्गल द्रव्यो के ठहरने मे सहायक होता है ।

अनन्तवीर्य—वीर्यान्तराय कर्म का सर्वथा क्षय हो जाने पर जो अप्रतिहत सामर्थ्य उत्पन्न होता है।

अनन्तानुबन्धी—जिसका उदय होने पर सम्यग्दर्शन उत्पन्न नही होता और यदि उत्पन्न हो चुका है तो नष्ट हो जाता है। अथवा अनन्त भवो की परम्परा को चालू रखने वाली कषायो को अनन्तानुबन्धी कषाय कहा जाता है।

अनार्य—जिनका आचरण विपरीत है—निन्द्य है—वे अनार्य कहलाते है।

अनेकान्त—एक वस्तु मे मुख्यता और गौणता की अपेक्षा अस्तित्व—नास्तित्व आदि परस्पर विरोधी धर्मो का प्रतिपादन।

अन्तरायकर्म—जो कर्म दाता और देय आदि के बीच मे आता है—दान देने मे रुकावट डालता है।

अपरविदेह—मेरु पर्वत से पश्चिम की ओर जो विदेह क्षेत्र का आधा भाग अवस्थित है वह अपरविदेह है।

अपरिग्रह महाव्रत—धन-धान्यादि सब प्रकार के परिग्रह का यावज्जीवन मन-वचन-काय से त्याग करना।

अपवर्ग—जहा जन्म, जरा और मरणादि दोषो का अत्यन्त विनाश हो जाता है, वह मोक्ष।

अभव्य—भविष्य मे जो सम्यग्दर्शनादि पर्याय से कभी भी परिणत नही हो सकते है, वे अभव्य है।

अमात्य—जो व्यवहारचतुर व नीतिकुशल हो तथा जनपदो सहित श्रेष्ठ नगर एव राजा की भी चिन्ता करता हो।

अमूर्त—जीव जिन विषयो को इन्द्रियो से ग्रहण कर सकते है, वे मूर्त होते है। उनसे भिन्न शेष सभी अमूर्त है।

अयोगिकेवली—जो शुक्लध्यान रूप अग्नि से घातिया कर्मो को नष्ट करके योगो से रहित हो जाता, उसे अयोग या अयोगिकेवली कहते है।

अक्षीणमहानस लब्धि—इस लब्धि के प्रभाव से तपस्वी भिक्षा मे लाये हुए थोडे से आहार से लाखो व्यक्तियो को भरपेट भोजन करा सकता है, फिर भी उसका भिक्षापात्र अखूट रहता है, शर्त यही कि लब्धिधारी स्वय भोजन न करे, उसके भोजन करने पर समाप्त हो जाता है।

अरण्य—मानवो के आवागमन से शून्य और वृक्ष, बेलि, लता एव गुल्मादि से परिपूर्ण स्थान को अरण्य कहते है।

अरूपी—जो शब्द, रूप, रस, गध, और स्पर्श से रहित है, वे अरूपी है।

अर्हन्—देखे 'जिन' शब्द।

असज्ञी—जो जीव मन के न होने से शिक्षा, उपदेश और आलाप आदि ग्रहण न कर सके, वे असज्ञी है।

असातावेदनीय—असाता का अर्थ दु ख होता है, उस दु ख का जो वेदन कराता है, वह असातावेदनीय कर्म है ।

असुर—जिनका स्वभाव अहिंसा आदि के अनुष्ठान मे अनुराग रखने वाले सुरों से विपरीत होता है, वे असुर है ।

अहिंसा अणुव्रत—मन, वचन और काय से तथा कृत, कारित और अनुमोदना से त्रस जीवो की साकल्पिकहिंसा का परित्याग करना अहिंसा अणुव्रत है ।

अहोरात्र—तीस मुहूर्त प्रमाण काल को अहोरात्र कहते है ।

आयुकर्म—नारक आदि भव को प्राप्त कराने वाला कर्म आयुकर्म है ।

आर्य—जो गुणो मे युक्त हो, अथवा गुणीजन जिनकी सेवा-शुश्रूषा करते है, वे आर्य है ।

आलोचना—गुरु के सम्मुख दस दोषो से रहित अपने प्रमादजनित दोषो को निवेदन करना ।

इत्वर-परिगृहीतागमन—द्रव्य देकर कुछ काल के लिए अपने अधीन करके व्यभिचारिणी (वेश्या) स्त्री के साथ विषयसेवन करने को इत्वरपरिगृहीता-गमन कहते है । यह ब्रह्मचर्याणुव्रत का अतिचार है ।

इन्द्र—अन्य देवो मे नही पायी जाने वाली असाधारण अणिमा महिमादि ऋद्धियो के धारक ऐसे देवाधिपति को इन्द्र कहते है ।

इन्द्रिय—परम ऐश्वर्य को प्राप्त करने वाले आत्मा को इन्द्र और उस इन्द्र के लिग या चिह्न को इन्द्रिय कहते है अथवा जो जीव को अर्थ-उपलब्धि मे निमित्त होती है, उसे इन्द्रिय कहते है ।

उदीरणा—अधिक स्थिति व अनुभाग को लिए हुए जो कर्म स्थित है उनकी उस स्थिति, अनुभाग को हीन करके फल देने के उन्मुख करना, वह उदीरणा है ।

उपभोग-परिभोग व्रत—अन्न, पान, खाद्य, स्वाद्य, व गध माला आदि (उपभोग) तथा वस्त्र, अलकार, शयन, आसन, गृह, यान और वाहन आदि (परिभोग) इनमे बहुत पापजनक वस्तुओ का सर्वथा परित्याग करना तथा अल्प सावद्य वस्तुओ का प्रमाण करना ।

उपवास—अशन, पान, खादिम और स्वादिम वस्तुओ का त्याग करना ।

एषणासमिति—कृत, कारित व अनुमोदना दोषो से रहित दूसरे के द्वारा दिये गये प्रासुक आहार को ग्रहण करना ।

एकरात्रिप्रतिमा—मुनि द्वारा एक चोविहार अष्टम भक्त मे जिनमुद्रा-(दोनो पैरो के बीच चार अगुल का अन्तर रखते हुए सम अवस्था मे खडे रहना) प्रलम्ब बाहु, अनिमिष नयन, एक पुद्गल-निरुद्ध दृष्टि, और झुके हुए वदन से एक रात तक गाँव आदि के बाहर कायोत्सर्ग करना । विशिष्ट सहनन, धृति, महासत्व से युक्त भावितात्मा गुरु द्वारा अनुज्ञात होकर इस प्रतिमा को अगीकार कर सकता है ।

एकादशागी—दृष्टिवाद को छोडकर ग्यारह अग ।

एकावलीतप—विशेष आकार की कल्पना से किया जाने वाला एक प्रकार का तप। इसका क्रम यंत्र के अनुसार चलता है। एक परिपाटी (क्रम) में १ वर्ष २ महीने और २ दिन का समय लगता है। ४ परिपाटी होती है। कुल समय ४ वर्ष ८ महीने और ८ दिन का लगता है। पहली परिपाटी के पारणे में विकृति का वर्जन आवश्यक नहीं होता। दूसरी में विकृति-वर्जन, तीसरी में लेप-त्याग और चौथी में आयबिल आवश्यक होता है। (चित्र देखें)

औद्देशिक—परिव्राजक, श्रमण, निर्ग्रन्थ आदि सभी को दान देने के उद्देश्य से बनाया गया भोजन, वस्त्र, मकान आदि।

कनकावलीतप—स्वर्णमणियों के भूषण विशेष के आकार की कल्पना से किया जाने वाला तप। इसका क्रम यन्त्र के अनुसार चलता है। एक परिपाटी (क्रम) में १ वर्ष पाँच महीने और १२ दिन लगते हैं। पहली परिपाटी में पारणे में विकृति-वर्जन आवश्यक नहीं है, दूसरी में विकृति का त्याग, तीसरी में लेप का त्याग, और चौथी में आयबिल किया जाता है। (चित्र देखें)

कर्म—आत्मा की सत् और असत् प्रवृत्तियों के द्वारा आकृष्ट एवं कर्म रूप में परिणत होने वाले पुद्गल विशेष।

कुत्रिकापण—जिस दुकान पर तीनों लोकों में मिलने वाले सचित्त-अचित्त सभी पदार्थ जहाँ पर प्राप्त होते हों वह कुत्रिकापण है। इस दुकान की यह महत्त्वपूर्ण विशेषता थी कि साधारण व्यक्ति से जिस वस्तु का मूल्य ५ रुपये लिए जाते थे उसी का मूल्य इभ्य श्रेष्ठी से एक हजार रुपये लिए जाते, और चक्रवर्ती से एक लाख रुपये उसी के लिए जाते। दुकान का मालिक किसी व्यंतर देव को सिद्ध कर लेता था, वही व्यंतर वस्तुओं की व्यवस्था करता था। कितने ही विज्ञों का यह मन्तव्य है कि ये दुकानें वणिक रहित होती थीं, व्यन्तर ही उन्हें चलाते थे।

क्षीरसमुद्र—जम्बूद्वीप को आवेष्टित करने वाला पाँचवाँ समुद्र, दीक्षा लेने के पश्चात् तीर्थंकरों के लोच किए हुए केश इन्द्र वहाँ पर विसर्जित करता है।

खादिम—मेवा आदि खाद्य पदार्थ।

गच्छ—श्रमणों का समूह।

गण—दो आचार्यों का शिष्य समूह।

गणधर—ज्ञान, दर्शन आदि विशिष्ट गुणों को धारण करने वाले, तीर्थंकरों के प्रधान शिष्य, जो उनकी महत्त्वपूर्ण वाणी को सूत्र रूप में संकलित करते हैं।

गाथापति—विराट् ऋद्धि युक्त परिवार का स्वामी, जिसके वहाँ पर कृषि और व्यवसाय आदि दोनों कार्य होते हैं।

गुणरत्न-संवत्सर तप—जिस तप में विशेष निर्जरा होती है अथवा जिस तप से निर्जरा रूप विशिष्ट रत्नों से वार्षिक समय व्यतीत होता है। एक वर्ष से तप के दिन कुछ अधिक होते हैं, इसलिए सम्वत्सर कहलाता है। इसके क्रम में प्रथम मास में एकान्तर उपवास, द्वितीय मास में षष्ट भक्त, इस तरह क्रमशः बढ़ते-बढ़ते सोलहवें

असातावेदनीय—असाता का अर्थ दु ख होता है, उस दु ख का जो वेदन कराता है, वह असातावेदनीय कर्म है।

असुर—जिनका स्वभाव अहिंसा आदि के अनुष्ठान मे अनुराग रखने वाले सुरो से विपरीत होता है, वे असुर है।

अहिंसा अणुव्रत—मन, वचन और काय से तथा कृत, कारित और अनुमोदना से त्रस जीवो की साकल्पिकहिंसा का परित्याग करना अहिंसा अणुव्रत है।

अहोरात्र—तीस मुहूर्त प्रमाण काल को अहोरात्र कहते है।

आयुकर्म—नारक आदि भव को प्राप्त कराने वाला कर्म आयुकर्म है।

आर्य—जो गुणो मे युक्त हो, अथवा गुणीजन जिनकी सेवा-शुश्रूषा करते है, वे आर्य है।

आलोचना—गुरु के सम्मुख दस दोषो से रहित अपने प्रमादजनित दोषो को निवेदन करना।

इत्वर-परिगृहीतागमन—द्रव्य देकर कुछ काल के लिए अपने अधीन करके व्यभिचारिणी (वेश्या) स्त्री के साथ विषयसेवन करने को इत्वरपरिगृहीता-गमन कहते है। यह ब्रह्मचर्याणुव्रत का अतिचार है।

इन्द्र—अन्य देवो मे नही पायी जाने वाली असाधारण अणिमा महिमादि ऋद्धियो के धारक ऐसे देवाधिपति को इन्द्र कहते है।

इन्द्रिय—परम ऐश्वर्य को प्राप्त करने वाले आत्मा को इन्द्र और उस इन्द्र के लिंग या चिह्न को इन्द्रिय कहते है अथवा जो जीव को अर्थ-उपलब्धि मे निमित्त होती है, उसे इन्द्रिय कहते है।

उदीरणा—अधिक स्थिति व अनुभाग को लिए हुए जो कर्म स्थित है उनकी उस स्थिति, अनुभाग को हीन करके फल देने के उन्मुख करना, वह उदीरणा है।

उपभोग-परिभोग व्रत—अन्न, पान, खाद्य, स्वाद्य, व गध माला आदि (उपभोग) तथा वस्त्र, अलकार, शयन, आसन, गृह, यान और वाहन आदि (परिभोग) इनमे बहुत पापजनक वस्तुओ का सर्वथा परित्याग करना तथा अल्प सावद्य वस्तुओ का प्रमाण करना।

उपवास—अशन, पान, खादिम और स्वादिम वस्तुओ का त्याग करना।

एषणासमिति—कृत, कारित व अनुमोदना दोषो से रहित दूसरे के द्वारा दिये गये प्रासुक आहार को ग्रहण करना।

एकरात्रिप्रतिमा—मुनि द्वारा एक चौविहार अष्टम भक्त मे जिनमुद्रा-(दोनो पैरो के बीच चार अगुल का अन्तर रखते हुए सम अवस्था मे खडे रहना) प्रलम्ब बाहु, अनिमिष नयन, एक पुद्गल-निरुद्ध दृष्टि, और झुके हुए बदन से एक रात तक गाँव आदि के बाहर कायोत्सर्ग करना। विशिष्ट सहनन, धृति, महासत्व से युक्त भावितात्मा गुरु द्वारा अनुज्ञात होकर इस प्रतिमा को अगीकार कर सकता है।

एकादशागी—दृष्टिवाद को छोडकर ग्यारह अग।

एकावलीतप—विशेष आकार की कल्पना से किया जाने वाला एक प्रकार का तप। इसका क्रम यन्त्र के अनुसार चलता है। एक परिपाटी (क्रम) मे १ वर्ष २ महीने और २ दिन का समय लगता है। ४ परिपाटी होती है। कुल समय ४ वर्ष ८ महीने और ८ दिन का लगता है। पहली परिपाटी के पारणे मे विकृति का वर्जन आवश्यक नही होता। दूसरी मे विकृति-वर्जन, तीसरी मे लेप-त्याग और चौथी मे आयबिल आवश्यक होता है। (चित्र देखे)

औद्देशिक—परिव्राजक, श्रमण, निर्ग्रन्थ आदि सभी को दान देने के उद्देश्य से बनाया गया भोजन, वस्त्र, मकान आदि।

कनकावलीतप—स्वर्णमणियो के भूषण विशेष के आकार की कल्पना से किया जाने वाला तप। इसका क्रम यन्त्र के अनुसार चलता है। एक परिपाटी (क्रम) मे १ वर्ष पाँच महीने और १२ दिन लगते है। पहली परिपाटी मे पारणे मे विकृति-वर्जन आवश्यक नही है, दूसरी मे विकृति का त्याग, तीसरी मे लेप का त्याग, और चौथी मे आयबिल किया जाता है। (चित्र देखें)

कर्म—आत्मा की सत् और असत् प्रवृत्तियो के द्वारा आकृष्ट एव कर्म रूप मे परिणत होने वाले पुद्गल विशेष।

कुत्रिकापण—जिस दुकान पर तीनो लोको मे मिलने वाले सचित्त-अचित्त सभी पदार्थ जहाँ पर प्राप्त होते हो वह कुत्रिकापण है। इस दुकान की यह महत्त्वपूर्ण विशेषता थी कि साधारण व्यक्ति से जिस वस्तु का मूल्य ५ रुपये लिए जाते थे उसी का मूल्य इभ्य श्रेष्ठी से एक हजार रुपये लिए जाते, और चक्रवर्ती से एक लाख रुपये उसी के लिए जाते। दुकान का मालिक किसी व्यतर देव को सिद्ध कर लेता था, वही व्यतर वस्तुओ की व्यवस्था करता था। कितने ही विज्ञो का यह मन्तव्य है कि ये दुकाने वणिक रहित होती थी, व्यन्तर ही उन्हे चलाते थे।

क्षीरसमुद्र—जम्बूद्वीप को आवेष्टित करने वाला पाँचवाँ समुद्र, दीक्षा लेने के पश्चात् तीर्थकरो के लोच किए हुए केश इन्द्र वहाँ पर विसर्जित करता है।

खादिम—मेवा आदि खाद्य पदार्थ।

गच्छ—श्रमणो का समूह।

गण—दो आचार्यो का शिष्य समूह।

गणधर—ज्ञान, दर्शन आदि विशिष्ट गुणो को धारण करने वाले, तीर्थकरो के प्रधान शिष्य, जो उनकी महत्त्वपूर्ण वाणी को सूत्र रूप मे सकलित करते है।

गाथापति—विराट् ऋद्धि युक्त परिवार का स्वामी, जिसके वहाँ पर कृषि और व्यवसाय आदि दोनो कार्य होते है।

गुणरत्न-सवत्सर तप—जिस तप मे विशेष निर्जरा होती है अथवा जिस तप से निर्जरा रूप विशिष्ट रत्नो से वार्षिक समय व्यतीत होता है। एक वर्ष से तप के दिन कुछ अधिक होते है, इसलिए सम्वत्सर कहलाता है। इसके क्रम मे प्रथम मास मे एकान्तर उपवास, द्वितीय मास मे षष्ट भक्त, इस तरह क्रमश बढते-बढते सोलहवे

महीने मे सोलह-सोलह का तप किया जाता है। तप के समय दिन मे उत्कुटुकासन से सूर्याभिमुख होकर आतापना ली जाती है और रात्रि मे वीरासन से वस्त्र रहित रहा जाता है। तप मे तेरह मास ७ दिन लगते ह और इस अवधि मे ७३ दिन पारणे के होते ह। (चित्र देखे अन्त मे)

गुणव्रत—श्रावक के द्वादश व्रतो मे छठा, सातवा और आठवाँ गुणव्रत कहलाता है। बारह व्रत देखे।

गोचरी—जैन श्रमणो की विविक्त आहार की याचना करनी। दूसरे शब्दो मे उसे माधुकरी भी कह सकते ह।

गोत्रकर्म—जिस कर्म के उदय से जीव उच्च-नीच शब्दो से पुकारा जाये। जाति, कुल, बल, रूप, तपस्या, श्रुत, लाभ ऐश्वर्य आदि का अह न करने से उच्च गोत्र-कर्म बध का निमित्त होता है और उनका अह नीच गोत्रकर्म बध का निमित्त बनता है।

घाती कर्म—आत्मा के ज्ञान आदि स्वाभाविक गुणो का घात करने वाले कर्म घाती कहलाते है। वे चार ह—ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय और अन्तराय रूप चार प्रकार के ह।

चक्ररत्न—चक्रवर्ती के चोदह रत्न ह, उसम यह सर्वप्रथम रत्न है। इसकी धार स्वर्णमय होती है। आरे लोहिताक्ष रत्न के होते है और नाभि वज्र-रत्नमय होती है। सर्वाकार परिपूर्ण और भव्य होता ह। जिस दिशा मे वह चल पडता है, चक्रवर्ती की सेना उसी का अनुसरण करती हे, वह जहा पर जाकर एक दिन मे रुकता है वही योजन का मान होता है। चक्र के प्रभाव से अनेक राजा बिना युद्ध किये ही उनके अधीन हो जाते ह और जो नही होते ह वे युद्ध कर उनकी शरण मे आ जाते है।

चक्रवर्ती—चक्ररत्न को धारण करने वाला अपने युग का सर्वोत्तम श्लाघनीय पुरुष होता हे। यह नियम है कि प्रत्येक अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी काल मे तिरसठ श्लाघनीय पुरुष होते हे—चौबीस तीर्थंकर, बारह चक्रवर्ती, नौ वासुदेव, नौ बलदेव ओर प्रतिवासुदेव। चक्रवर्ती भरत क्षेत्र के छह खण्ड का एक मात्र प्रशासक होता है। चक्रवर्ती के चौदह रत्न होते हे १ चक्र, २ छत्र, ३ दण्ड, ४ असि, ५ मणि, ६ काकिणी, ७ चर्म, ८ सेनापति, ९ गाथापति, १० वर्द्धकी, ११ पुरोहित, १२ स्त्री, १३ अश्व, १४ गज और नौ निधियाँ भी होती है—

(१) नैसर्प निधि—नूतन ग्रामो को बसाना और पुराने गावो को व्यवस्थित करना।
(२) पाण्डुक निधि—स्वर्ण व चाँदी आदि के सिक्के बनाना आदि।
(३) पिङ्गल निधि—स्त्री, पुरुष, हस्ती, घोडे आदि सभी के आभूषणो का प्रबन्ध करना।
(४) सर्वरत्न निधि—चौदह रत्न आदि।
(५) महापद्म निधि—श्वेत व रगीन सभी प्रकार के वस्त्र।

(६) कालनिधि—भूत व भविष्य के तीन वर्ष, और वर्तमान काल का ज्ञान, सौ प्रकार का शिल्प, कृषि, वाणिज्य आदि कालनिधि मे होते है।
(७) महाकाल निधि—स्वर्ण, चादी, लोहा आदि धातुओं की खाने, चन्द्रकान्त आदि मणियाँ, मुक्ताएँ, स्फटिक मणि आदि को एकत्रित करना।
(८) माणवक निधि—शूरवीर योद्धाओं के लिए शस्त्रास्त्र आदि व चारो दण्ड नीतियाँ।
(९) शख निधि—नृत्य, गीत, वाद्य, आदि। इन निधियों का आकार मञ्जूषा के समान होता है। देवाधिष्ठित होती है।

चच्चर—चार से अधिक मार्ग जहाँ मिलते है।

चतुर्गति—नरक, तिर्यच, मनुष्य ओर देव आदि भवो मे आत्मा की ससृति।

चतुर्दशपूर्व—उत्पाद, अग्रायणीय, वीर्यप्रवाद, अस्तिनास्तिप्रवाद, ज्ञानप्रवाद, सत्यप्रवाद, आत्मप्रवाद, कर्मप्रवाद, प्रत्याख्यानप्रवाद, विद्याप्रवाद, कल्याण, प्राणावाय, क्रियाविशाल, लोकबिन्दुसार। ये चोदह पूर्व दृष्टिवाद नामक बारहवे अग के अन्तर्गत है।

विश्व विद्या का ऐसा कोई भी विषय नही है, जिसका वर्णन पूर्व मे नही किया गया हो। यन्त्र, मन्त्र, तन्त्र, शब्द-शास्त्र, ज्योतिष, भूगोल, रसायन, रिद्धि-सिद्धि आदि समस्त विषयों की चर्चा पूर्वो मे होती है।

चारणलब्धि—जिस लब्धि से आकाश मे जाने की विशिष्ट शक्ति प्राप्त होती है वह चारणलब्धि है। चारणलब्धि के दो भाग है—जघाचारण और विद्याचारण। जघाचारण लब्धि का धारक पद्मासन लगाकर जघा पर हाथ लगाता है और तीव्रगति से आकाश मे उड जाता है। वह एक ही उडान मे (उत्पात मे) तेरहवे रुचकवर द्वीप तक जा सकता है। यह द्वीप भरत क्षेत्र से असख्यात योजन दूर है। प्रथम उडान शक्तिशाली होती है, पुन लौटते समय रास्ते मे नन्दीश्वर द्वीप मे एक बार विश्राम लेना पडता है। ऊर्ध्वलोक मे यदि उडान भरता है, मेरु पर्वत के पाण्डुकवन मे पहुँच जाता है।

विद्याचारण तिरछे लोक मे आठवे नदीश्वर द्वीप तक उड सकता है, इसकी शक्ति प्रारम्भ मे कम, बाद मे अधिक होती है। नन्दीश्वर द्वीप जाते समय उसे बीच मे मानुषोत्तर पर्वत पर विश्राम लेना पडता है और दूसरी उडान मे नन्दीश्वर द्वीप पहुँचता है, परन्तु लौटते समय उसे विश्राम की आवश्यकता नही होती। ऊँची उडान भरते समय पहले नन्दन वन मे विश्राम लेकर दूसरी उडान मे पाण्डुक वन पहुँच जाता है, पर लौटते समय विश्राम की आवश्यकता नही।

जघाचारण लब्धि वाला तीन बार आख की पलक झपकते जितने समय मे एक लाख योजन वाले जम्बूद्वीप मे २१ बार चक्कर लगा सकता है और विद्याचारण तीन बार।

चारित्र—आत्मविशुद्धि के लिए किया जाने वाला प्रकृष्ट उपष्टम्भ।

चोदह विद्या—१ शिक्षा, २ कल्प, ३ व्याकरण, ४ छन्द, ५ ज्योतिष, ६ निरुक्त-ये षडग कहलाते है, ७ ऋग्वेद, ८ यजुर्वेद, ९ सामवेद, १० अथर्ववेद, ११ मीमासा १२ आन्वीक्षिकी, (१३) धर्मशास्त्र, (१४) पुराण।

छट्ठ तप—दो दिन का उपवास, वेला।

छद्मस्थ—ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय और अन्तराय को छद्म कहते है। जिसमे वे रहते है वह छद्मस्थ कहलाता है। जब तक आत्मा को केवलज्ञान की उपलब्धि नही होती, वहाँ तक वह छद्मस्थ कहलाती है।

जम्बूद्वीप—इस विराट् विश्व मे असंख्य द्वीप और असख्य समुद्र है। प्रत्येक द्वीप को समुद्र और समुद्र को द्वीप घेरे हुए है। जम्बूद्वीप उन सभी के बीच मे है। यह पूर्व से पश्चिम और उत्तर से दक्षिण एक-एक लाख योजन है। इसमे सात वर्ष क्षेत्र है—१ भरत, २ हेमवत, ३ हरि, ४ विदेह, ५ रम्यक्, ६ हेरण्यवत और ७ ऐरावत। भरत दक्षिण मे, ऐरावत उत्तर मे ओर विदेह (महाविदेह) पूर्व व पश्चिम मे है।

जातिस्मरण ज्ञान—पूर्व जन्म की स्मृति कराने वाला ज्ञान। यह मतिज्ञान का ही एक भेद है। जिसके द्वारा प्राणी को अपने एक से लेकर नौ पूर्वभवो का ज्ञान हो जाता है।

एक मान्यता यह भी है कि जातिस्मरण ज्ञान से प्राणी को अपने ९०० पूर्वभवो का स्मरण हो सकता है।

जिन—राग-द्वेष पर पूर्णरूप से विजय प्राप्त करने वाली आत्मा।

जिनकल्प—गच्छ से असवद्ध होकर उत्कृष्ट चारित्रसाधना के लिए प्रयत्नशील होना। यह आचार जिन-तीर्थंकरो के आचार के समान कठोर होता है। इसमे साधक जगल आदि एकान्त शान्त स्थान मे एकाकी रहता है। रोग आदि के उपशमन के लिए प्रयास नही करता। सर्दी, गर्मी प्रभृति प्राकृतिक कष्टो से विचलित नही होता। देव, मानव, तिर्यच आदि के उपसर्गों से भयभीत होकर अपना मार्ग नही वदलता। अभिग्रह पूर्वक भिक्षा ग्रहण करता है। व रात-दिन ध्यान तथा कायोत्सर्ग मे लीन रहता है। यह साधना विशेष सहननयुक्त साधक के द्वारा विशिष्ट ज्ञान सम्पन्न होने के पश्चात् ही की जा सकती है।

ज्ञान—सामान्य-विशेषात्मक पदार्थ के सामान्य धर्मो को गौण कर केवल विशेष धर्मो को ग्रहण करना।

ज्ञानावरणीय कर्म—आत्मा के ज्ञान गुण को आच्छादित करने वाला कर्म।

तत्त्व—प्रयोजनभूत वस्तु के स्वभाव को तत्त्व कहते है।

तत्त्वार्थ—जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश, काल, ये तत्त्वार्थ कहे है, जो कि विविध गुण-पर्यायो से सयुक्त है।

तालपुट विष—ताली वजाने मे जितना समय लगता है, उतने ही समय मे प्राणनाश करने वाला विष।

तीर्थंकर—ससार सागर को स्वय पार करने तथा दूसरो को पार कराने वाले महापुरुष तीर्थंकर कहलाते है। दूसरे शब्दो मे—जो तीर्थ का प्रवर्तन करते है।

तीर्थंकर नाम गोत्र—जिस नाम कम के उदय मे जीव तीर्थंकर रूप मे उत्पन्न होता है।

तीर्थ—जिससे ससार समुद्र तिरा जा सके। तीर्थंकरो के उपदेश, उसको धारण करने वाले गणधर, व ज्ञान, दर्शन, चारित्र को धारण करने वाले साधु, साध्वी, श्रावक व श्राविका रूप चतुर्विध सघ को भी तीर्थ कहा जाता है। तीर्थंकर केवलज्ञान प्राप्त करने के अनन्तर ही उपदेश करते हैं और उससे प्रेरित होकर भव्य जन साधु-साध्वी श्रावक श्राविका बनते है।

तृतीय सप्त अहोरात्र प्रतिमा—साधु द्वारा सात दिन तक चाविहार एकान्तर उपवास, गोदुहासन, वीरासन, या आम्र कुब्जासन (आम के फल के समान वक्राकार स्थिति मे बैठना) गाँव के बाहर कायोत्सर्ग करना।

तेजोलब्धि—यह आत्मा की एक प्रकार की तेजसशक्ति है। इस लब्धि के प्रभाव से योगियो को ऐसी शक्ति प्राप्त हो जाती है कि कभी क्रोध आगया तो वे बाये पैर के अगूठे को घिसकर एक तेज निकालते है, जो अग्नि के समान प्रचण्ड होता है, विरोधी को वही जलाकर भस्म कर देते है। इसमे कई योजनो तक मे रही हुई वस्तु को भस्म कर सकते है। उत्कृष्ट शक्ति-प्रयोग मे १६।। महाजनपदो को एक साथ भस्म करने की शक्ति भी इस लब्धिधारक मे होती है।

तेजोलब्धि की शक्ति अणुबम से भी अधिक विस्फोटक है।

त्रायस्त्रिश—गुरु स्थानीय देव।

त्रिदण्डी तापस—मन, वचन और कायरूप तीनो दण्डो से दण्डित होने वाला तापस।

दर्शन—सामान्य-विशेपात्मक पदार्थ के सामान्य धर्मो को ग्रहण करना।

दिक्कुमारिया—तीर्थङ्करो का प्रसूति-कम करने वाली देविया। ये ५६ होती है इनके आवास पृथक्-पृथक् होते है। आठ अधोलोक मे, आठ ऊर्ध्वलोक मेरु पर्वत, आठ पूर्व रुचिकाद्रि पर, आठ दक्षिण रुचिकाद्रि पर, आठ पश्चिम रुचिकाद्रि पर, आठ उत्तर रुचिकाद्रि पर, चार विदिशा के रुचक पर्वत पर और चार रुचक द्वीप पर रहती है।

दिग् विरतिव्रत—यह जैन श्रावक का छट्ठा व्रत है। इसमे श्रावक दस दिशाओ मे मर्यादा से अधिक गमनागमन का त्याग करता है।

दु षम सुषम—अवसर्पिणी काल का चतुर्थ आरा, जिसमे दु ख की अधिकता और सुख की अल्पता होती है।

देव—औपपातिक प्राणी। ये चार प्रकार के होते है। १ भवनपति, २ व्यतर, ३ ज्योतिष्क ४, वैमानिक।

देवाधिदेव—अरिहत भगवान।

देशव्रती—व्रतो का आशिक रूप से पालन करना।

द्वादशागी—तीर्थंकरो की वाणी का गणधरो के द्वारा ग्रन्थ रूप मे सकलन अग है। वे बारह ह। अत उसे द्वादशागी कहते ह। पुरुष के शरीर मे मुख्य रूप से जैसे दो पर, दो जघाये, दो उरु, दो गात्रार्द्ध, (पार्श्व) दो बाहु, एक गर्दन और एक मस्तक होता है। उसी तरह श्रुत-रूप पुरुष के भी बारह अग ह। उनका नाम है—१ आचाराग, २ सूत्रकृताग, ३ स्थानाग, ४ समवायाग, ५ विवाह प्रज्ञप्ति (भगवती), ६ ज्ञाताधर्मकथाग, ७ उपासकदशाग, ८ अन्तकृद्दशाग, ९ अनुत्तरोपपातिक, १० प्रश्न व्याकरण, ११ विपाकश्रुत, १२ दृष्टिवाद।

नन्दीश्वर द्वीप—जम्बूद्वीप से आठवा द्वीप।

नमोत्थुण—अरिहत और सिद्ध की स्तुति।

नरक—अधोलोक के वे स्थान, जहाँ घोर पापाचरण करने वाले जीव अपने पापो का फल भोगने के लिए उत्पन्न होते ह। वे सात है—

(१) रत्नप्रभा—कृष्णवर्ण भयकर रत्नो से पूर्ण

(२) शर्कराप्रभा—भाले, बरछी आदि से भी तीक्ष्ण ककरो से परिपूर्ण

(३) बालुकाप्रभा—भडभूजे की भाड की उष्ण बालू से भी अधिक उष्ण बालू।

(४) पक-प्रभा—रक्त, मास, और पीव जैसे कीचड से व्याप्त।

(५) धूम्रप्रभा—राई, मिर्च के धुए से भी अधिक खारे धुए से परिपूर्ण।

(६) तम प्रभा—घोर अन्धकार से परिपूर्ण।

(७) महातम प्रभा—घोरातिघोर अन्धकार से परिपूर्ण।

निकाचित—बध के अनुसार जिन कार्यो का फल निश्चित रूप से भोगा जाता ह।

नित्यपिण्ड—प्रतिदिन एक घर से आहार ग्रहण करना।

निदान—भोगाभिलाषा मे फसकर तपस्या को बेच देने की क्रिया निदान है। किसी देवता अथवा राजा आदि मनुष्य की ऋद्धि व सुखो को देखकर, या सुनकर उसकी प्राप्ति के लिए अभिलाषा करना कि मेरे ब्रह्मचर्य व तप आदि के फलस्वरूप मुझे भी ऐसी ऋद्धि व वैभव प्राप्त हो और अपने तप अनुष्ठान को उसके लिए बद्ध कर देना निदान ह। निदान शब्द का अर्थ ह—निश्चित अथवा बाध देना। उच्च तप को, निम्न फल की अभिलाषा के साथ बाध लेना, महान् ध्येय को तुच्छ सकल्प विकल्प रूप भोग प्रार्थना के लिए जोड देना।

निर्ग्रन्थ प्रवचन—तीर्थंकर द्वारा कथित जैन आगम साहित्य।

निर्जरा—तपस्या आदि से कर्म फल का एक देश से क्षय करना।

निह्नव—किञ्चित् मत-भेद को लेकर जो जैन शासन से अलग हुए वे निह्नव माने गये ह।

पच मुष्ठिक लुंचन—मस्तक को पाँच भागो मे विभक्त कर हाथो से बालो को उखाडना।

पाच दिव्य—तीर्थंकर या विशिष्ट महापुरुषो द्वारा आहार ग्रहण करने के समय प्रकट होने वाली पाच विभूतियाँ—

१ विविध रत्न, २ वस्त्र, ३ फूलो की वर्षा, ४ गधोदक, ५ देवताओ के द्वारा दिव्य घोष।

पदानुसारणी लब्धि—इस लब्धि के प्रभाव से सूत्र के एक पद को सुनकर आगे के बहुत से पदो का बिना सुने ही अपनी बुद्धि से ज्ञान कर लेता है। जैसे, एक चावल के दाने से पूरे चावलो के पकने का पता चलता है, एक बात सुनते ही पूरी बात का ज्ञान हो जाता है। इसी तरह एक पद से अनेक पदो का ज्ञान प्राप्त करने की क्षमता इस लब्धिधारी मे होती है।

परीषह—श्रमण-जीवन मे नाना प्रकार के होने वाले शारीरिक कष्ट।

पल्योपम—एक दिन से सात दिन की आयु वाले उत्तर कुरु मे उत्पन्न हुए योगलिको के केशो के असख्य खण्ड कर एक योजन प्रमाण गहरा लम्बा व चौडा कुआ ठसाठस भरा जाय। वह इतना दबादबाकर भरा जाय कि जिससे उसे अग्नि जला न सके। पानी अन्दर प्रवेश न कर सके और चक्रवर्ती की सम्पूर्ण सेना भी उस पर से गुजर जाय तो भी अश मात्र भी लचक न जाय। सौ सौ वर्ष के पश्चात् उस कुए मे से एक-एक केश-खण्ड निकाला जाय। जितने समय मे वह कुआ खाली होता है उतने समय को पल्योपम कहते है।

पाप—अशुभ कर्म। उपचार से जिस निमित्त से पाप बन्ध होता है वह भी पाप है।

पुण्य—शुभ कर्म। उपचार से जिस निमित्त से पुण्य बध होता है वह भी पुण्य है।

पौषध—एक अहोरात्र के लिए चारो प्रकारो के आहार और पाप पूर्ण प्रवृत्तियो का परित्याग करना।

प्रत्याख्यान—त्याग करना।

प्रवचन-प्रभावना—विविध प्रयत्नो से धर्म-शासन की प्रभावना।

प्रायश्चित्त—पाप व दोष की विशुद्धि के लिए जो क्रिया की जाती है वह प्रायश्चित है। वह दस प्रकार से किया जाता है।

(१) आलोचना—लगे दोष को गुरु या रत्नाधिक के समक्ष यथावत् निवेदन करना।

(२) प्रतिक्रमण—सहसा लगे दोषो के लिए साधक द्वारा स्वत प्रायश्चित करते हुए कहना कि मेरा पाप मिथ्या हो।

(३) तदुभय—आलोचना और प्रतिक्रमण।

(४) विवेक—अनजान मे आधाकर्म दोष से युक्त आहार आदि आ जाये तो ज्ञात होते ही उसे उपयोग मे न लेकर उसका त्याग कर देना।
(५) कायोत्सर्ग—एकाग्र होकर शरीर की ममता का त्याग करना।
(६) तप—अनशन आदि बाह्य तप।
(७) छेद—दीक्षा-पर्याय को कम करना। इस प्रायश्चित के अनुसार जितना पर्याय कम किया जाता है उस अवधि मे दीक्षित लघु-साधु दीक्षा पर्याय मे उस दोषी से बडे हो जाते है।
(८) मूल—पुन दीक्षा देना
(९) अनवस्थाप्य—तप विशेष के पश्चात् फिर से दीक्षा देना।
(१०) पाराञ्चिक—सघ बहिष्कृत श्रमण द्वारा एक अवधि विशेष तक साधु-वेष परिवर्तित कर जन-जन के बीच अपनी आत्म-निन्दा करना।

प्रीतिदान—भगवान आदि के पधारने पर शुभ सम्वाद देने वाले अनुचर को दिया जाने वाला दान।

बध—आत्मा के साथ कर्म-पुद्गलो का घनिष्ठ सम्बन्ध होना।

बादर काय-योग—स्थूल कायिक प्रवृत्ति।

बादर मन-योग—स्थूल मानसिक प्रवृत्ति।

बादर वचन योग—स्थूल वाचिक प्रवृत्ति।

बाल तपस्वी—अज्ञान पूर्वक तप का अनुष्ठान करने वाला।

बाल-मरण—अज्ञान दशा मे मरण।

भक्तप्रत्याख्यान—सकट उपस्थित होने पर या न होने पर जीवन पर्यन्त तीन या चार प्रकार के आहार का त्याग करना।

भद्रप्रतिमा—ध्यान के साथ तप करने का एक प्रकार। पूर्व, दक्षिण, पश्चिम और उत्तर दिशा की ओर मुँह करके क्रमश प्रत्येक दिशा मे चार-चार प्रहर तक ध्यान करना। यह प्रतिमा दो दिन की होती है।

भव्य—जिसमे मोक्ष प्राप्त करने की योग्यता है।

मख—चित्र-फलक हाथ मे रखकर आजीविका चलाने वाले भिक्षाचर।

मतिज्ञान—इन्द्रिय और मन की सहायता से होने वाला ज्ञान।

मन पर्यव—मनोवर्गणा के अनुसार मानसिक अवस्थाओ का ज्ञान।

महाभद्र प्रतिमा—ध्यान युक्त तप करने का प्रकार। चारो ही दिशाओ मे क्रमश एक-एक अहोरात्र तक कायोत्सर्ग करना।

महाव्रत—हिंसा, असत्य, स्तेय, अब्रह्मचर्य और परिग्रह का मन, वचन और काया से जीवन पर्यन्त परित्याग करना। पूर्ण त्याग करने से ये महाव्रत कहलाते है।

महासिंह निष्क्रीडित तप—तप करने का एक प्रकार विशेष है। सिंह गमन करता हुआ जिस प्रकार पीछे मुडकर देखता है, उसी प्रकार तप करते हुए आगे बढना और साथ ही पीछे किया हुआ तप भी करना। यह महा और लघु दो प्रकार का होता

है। इस क्रम मे अधिकाधिक सोलह दिन का तप होता है और फिर उसी क्रम मे उतार होता है। इस सम्पूर्ण तप मे १ वर्ष, ६ महीने और १८ दिन लगते हैं। इस तप की की भी चार परिपाटी होती है, इसका क्रम यन्त्र के अनुसार चलता है। (चित्र देखे)

माण्डलिक राजा—एक मण्डल का अधिपति राजा।

मिथ्यात्व—तत्त्व के प्रति विपरीत श्रद्धा।

मेरुपर्वत की चूलिका—जम्बूद्वीप के मध्य मे एक लाख योजन समुन्नत सुवर्ण कांति वाला पर्वत है। इस पर्वत पर चालीस योजन की चूलिका-चोटी है। इसी पर्वत पर भद्रशाल, नन्दन, सौमनस और पाण्डुक नामक चार वन हैं। भद्रशाल वन धरती के बराबर पर्वत को घेरे हुए है। पाच सौ योजन ऊपर नन्दन वन है। बासठ हजार पाच सौ योजन ऊपर सौमनस वन है। चूलिका के चारो ओर फैला हुआ पाण्डुक वन है। उसी वन मे स्वर्णमय चार शिलाएँ हैं, जिन पर तीर्थंकरो के जन्म-महोत्सव होते हैं।

मोक्ष—सम्पूर्ण कर्म-क्षय के अनन्तर आत्मा का अपने स्वरूप मे अधिष्ठान।

यौगलिक—मानव सभ्यता के पूर्व की सभ्यता जिसमे मानव युगल रूप मे जन्म लेता है। वे यौगलिक कहलाते हैं। अनेक आवश्यक सामग्री की पूर्ति कल्पवृक्षो से होती है।

रजोहरण—जैन श्रमणो का एक उपकरण, जो कि भूमि प्रमार्जन आदि के कार्य मे आता है।

लघुसिंह निष्क्रीडित तप—तप का एक प्रकार है। सिंह चलता हुआ जैसे पीछे मुडकर देखता है वैसे ही तप करते हुए आगे बढना और साथ ही पीछे किया हुआ तप भी करना। यह दो प्रकार का होता है। लघुसिंह निष्क्रीडित तप मे अधिकाधिक नौ दिन की तपस्या होती है। फिर उसी क्रम से तप का उतार होता है। सम्पूर्ण तप मे ६ महीने और ७ दिन का समय लगता है। इस तप की चार परिपाटी है। इसका क्रम यन्त्र के अनुसार चलता है।

लब्धि—लब्धि का अर्थ लाभ है। तपस्या आदि के द्वारा जब कर्मो का क्षय होता है तो आत्मा को उतने रूप मे विशुद्धि व उज्ज्वलता प्राप्त होती है। आत्मा के गुण व शक्तियाँ जो कर्मों के कारण ढकी हुई थी, वे कर्मावरणो के हटते ही प्रकट हो जाती है। उसके २८ भेद है।

लेश्या—एक प्रकार का पौद्गलिक पर्यावरण है। जीव से पुद्गल और पुद्गल से जीव प्रभावित होते हैं। जीव को प्रभावित करने वाले पुद्गलो के अनेक वर्ग है, उनमे एक वर्ग का नाम लेश्या है। लेश्या शब्द का अर्थ आणविक-आभा, कान्ति, प्रभा, छाया है। छाया पुद्गलो से प्रभावित होने वाले जीव परिणामो को भी लेश्या कहा है। शरीर के वर्ण और आणविक-आभा को द्रव्य लेश्या और विचार को भाव-लेश्या कहा है।

(४) विवेक—अनजान मे आधाकर्म दोप मे युक्त आहार आदि आ जाये तो ज्ञात होते ही उसे उपयोग म न लेकर उसका त्याग कर देना ।

(५) कायोत्सर्ग—एकाग्र होकर शरीर की ममता का त्याग करना ।

(६) तप—अनशन आदि बाह्य तप ।

(७) छेद—दीक्षा-पर्याय को कम करना । इस प्रायश्चित के अनुसार जितना पर्याय कम किया जाता है उस अवधि म दीक्षित लघु-साधु दीक्षा पर्याय मे उस दोपी से वडे हो जाते ह ।

(८) मूल—पुन दीक्षा देना

(९) अनवस्थाप्य—तप विशेप के पश्चात् फिर से दीक्षा देना ।

(१०) पारञ्चिक—सघ बहिष्कृत श्रमण द्वारा एक अवधि विशेप तक साधु-वेप परिवर्तित कर जन-जन के बीच अपनी आत्म-निन्दा करना ।

प्रीतिदान—भगवान आदि के पधारने पर शुभ सम्वाद देने वाले अनुचर को दिया जाने वाला दान ।

बध—आत्मा के साथ कर्म-पुद्गलो का अनिष्ठ सम्बन्ध होना ।

बादर काय-योग—स्थूल कायिक प्रवृत्ति ।

बादर मन-योग—स्थूल मानसिक प्रवृत्ति ।

बादर वचन योग—स्थूल वाचिक प्रवृत्ति ।

बाल तपस्वी—अज्ञान पूर्वक तप का अनुष्ठान करने वाला ।

बाल-मरण—अज्ञान दशा मे मरण ।

भक्तप्रत्याख्यान—सकट उपस्थित होने पर या न होने पर जीवन पर्यन्त तीन या चार प्रकार के आहार का त्याग करना ।

भद्रप्रतिमा—ध्यान के साथ तप करने का एक प्रकार । पूर्व, दक्षिण, पश्चिम और उत्तर दिशा की ओर मुँह करके क्रमश प्रत्येक दिशा मे चार-चार प्रहर तक ध्यान करना । यह प्रतिमा दो दिन की होती है ।

भव्य—जिसमे मोक्ष प्राप्त करने की योग्यता है ।

मख—चित्र-फलक हाथ मे रखकर आजीविका चलाने वाले भिक्षाचर ।

मतिज्ञान—इन्द्रिय और मन की सहायता से होने वाला ज्ञान ।

मन पर्यव—मनोवर्गणा के अनुसार मानसिक अवस्थाओ का ज्ञान ।

महाभद्र प्रतिमा—ध्यान युक्त तप करने का प्रकार । चारो ही दिशाओ मे क्रमश एक-एक अहोरात्र तक कायोत्सर्ग करना ।

महाव्रत—हिंसा, असत्य, स्तेय, अब्रह्मचर्य और परिग्रह का मन, वचन और काया से जीवन पर्यन्त परित्याग करना । पूर्ण त्याग करने से ये महाव्रत कहलाते ह ।

महासिंह निष्क्रीडित तप—तप करने का एक प्रकार विशेप ह । सिंह गमन करता हुआ जिस प्रकार पीछे मुडकर देखता है, उसी प्रकार तप करते हुए आगे बढना और साथ ही पीछे किया हुआ तप भी करना । यह महा और लघु दो प्रकार का होता

है। इस क्रम मे अधिकाधिक सोलह दिन का तप होना है और फिर उसी क्रम से उतार होता है। इस सम्पूर्ण तप मे १ वर्ष, ६ महीने और १८ दिन लगते है। इस तप की की भी चार परिपाटी होती है, इसका क्रम यत्र के अनुसार चलता है। (चित्र देखे)

माण्डलिक राजा—एक मण्डल का अधिपति राजा।

मिथ्यात्व—तत्त्व के प्रति विपरीत श्रद्धा।

मेरुपर्वत की चूलिका—जम्बूद्वीप के मध्य मे एक लाख योजन समुन्नत सुवर्ण कांति वाला पर्वत है। इस पर्वत पर चालीस योजन की चूलिका-चोटी है। इसी पर्वत पर भद्रशाल, नन्दन, सौमनस और पाण्डुक नामक चार वन है। भद्रशाल वन धरती के बराबर पर्वत को घेरे हुए है। पाच सौ योजन ऊपर नन्दन वन है। बासठ हजार पाच सौ योजन ऊपर सौमनस वन है। चूलिका के चारो ओर फैला हुआ पाण्डुक वन है। उसी वन मे स्वर्णमय चार शिलाएँ है, जिन पर तीर्थंकरो के जन्म-महोत्सव होते है।

मोक्ष—सम्पूर्ण कर्म-क्षय के अनन्तर आत्मा का अपने स्वरूप मे अधिष्ठान।

यौगलिक—मानव सभ्यता के पूर्व की सभ्यता जिसमे मानव युगल रूप मे जन्म लेता है। वे यौगलिक कहलाते हैं। अनेक आवश्यक सामग्री की पूर्ति कल्पवृक्षो से होती है।

रजोहरण—जैन श्रमणो का एक उपकरण, जो कि भूमि प्रमार्जन आदि के कार्य मे आता है।

लघुसिंह निष्क्रीडित तप—तप का एक प्रकार है। सिंह चलता हुआ जैसे पीछे मुडकर देखता है वैसे ही तप करते हुए आगे बढना और साथ ही पीछे किया हुआ तप भी करना। यह दो प्रकार का होता है। लघुसिंह निष्क्रीडित तप मे अधिकाधिक नौ दिन की तपस्या होती है। फिर उसी क्रम से तप का उतार होता है। सम्पूर्ण तप मे ६ महीने और ७ दिन का समय लगता है। इस तप की चार परिपाटी है। इसका क्रम यन्त्र के अनुसार चलता है।

लब्धि—लब्धि का अर्थ लाभ है। तपस्या आदि के द्वारा जब कर्मों का क्षय होता है तो आत्मा को उतने रूप मे विशुद्धि व उज्ज्वलता प्राप्त होती है। आत्मा के गुण व शक्तियाँ जो कर्मो के कारण ढकी हुई थी, वे कर्मावरणो के हटते ही प्रकट हो जाती है। उसके २८ भेद है।

लेश्या—एक प्रकार का पौद्गलिक पर्यावरण है। जीव से पुद्गल और पुद्गल से जीव प्रभावित होते है। जीव को प्रभावित करने वाले पुद्गलो के अनेक वर्ग है, उनमे एक वर्ग का नाम लेश्या है। लेश्या शब्द का अर्थ आणविक-आभा, कान्ति, प्रभा, छाया है। छाया पुद्गलो से प्रभावित होने वाले जीव परिणामो को भी लेश्या कहा है। शरीर के वर्ण और आणविक-आभा को द्रव्य लेश्या और विचार को भाव-लेश्या कहा है।

लोक—धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, काल, पुद्गल और जीव की अवस्थिति।

लोकान्तिक—पाचवे ब्रह्मदेव लोक मे छह प्रतर ह। मकानो मे जिस प्रकार मजिल होती हे वैसे ही स्वर्ग मे प्रतर होते ह। तृतीय अरिष्ट प्रतर के पास दक्षिण दिशा मे त्रसनाडी के अन्दर चार दिशाओ मे और चार विदिशाओ मे आठ कृष्ण राजियाँ हे। लोकान्तिक देवो के यही पर नौ विमान हे। आठ विमान आठ कृष्ण राजियाँ मे हे और एक उनके मध्य भाग मे ह। उनके नाम ह १ अर्ची, २ अर्चिमाली ३ वैरोचन, ४ प्रभकर, ५ चन्द्राभ, ६ सूर्याभ, ७ शुक्राभ, ८ सुप्रतिष्ठित, ९ रिष्टाभ (मध्यवर्ती) लोक के अन्त मे रहने के कारण ये लोकान्तिक कहलाते ह। ये विषय-वासना मे प्राय मुक्त रहते ह। एतदर्थ इन्हे देवर्षि भी कहा जाता हे। तीर्थङ्करो को दीक्षा के अवसर पर ये उद्बोधन देते ह।

वर्षीदान—तीर्थकरो द्वारा एक वर्ष तक प्रतिदिन दिया जाने वाला दान।

विभग ज्ञान—इन्द्रिय और मन की सहायता के अभाव मे केवल आत्मा से रूपी द्रव्यो को जानना अवधिज्ञान हे। सम्यग्दर्शन के अभाव मे वह ज्ञान विभग कहलाता ह।

विराधक—जो व्रत ग्रहण किये ह उनका सम्यक् रूप मे पालन नही करना। अपने दुष्कृत्यो की आलोचना कर प्रायश्चित्त लेने मे पूर्व ही मृत्यु को प्राप्त हो जाना।

वैयावृत्य—आचार्य, उपाध्याय, शैक्ष, ग्लान, तपस्वी स्थविर, सार्धमिक, कुल, गण, और सघ की आहार आदि से सेवा करना।

शिक्षाव्रत—पुन पुन सेवन करने योग्य अभ्यास प्रधान व्रतो को शिक्षा व्रत कहते ह। वे चार ह—(१) सामायिक व्रत, (२) देशावकाशिक व्रत, (३) पौषधोपवास व्रत, (४) अतिथिसविभाग व्रत।

शुक्ल ध्यान—ध्यान की परम उज्ज्वल निर्मल दशा। जिस ध्यान मे बाह्य विषयो का सम्बन्ध होने पर भी मन उनकी ओर नही जाता हे एव पूर्ण वैराग्य दशा मे रमता ह। इस ध्यान की स्थिति मे यदि कोई साधक के शरीर पर प्रहार करे, छेदन-भेदन करे तब भी उसके मन मे सक्लेश पैदा नही होता, शरीर को पीडा होने पर भी उस पीडा की अनुभूति नही होती। देह होने पर भी विदेह मुक्त-सा अनुभव करे। स्वरूप की दृष्टि से उसके चार भेद ह—१ पृथक्त्ववितर्क सविचार, २ एकत्व वितर्क सविचार, ३ सूक्ष्म क्रियाऽप्रतिपाति, ४ समुच्छिन्नक्रियाऽनिवृत्ति

शेषकाल—वर्षावास के अतिरिक्त का समय।

शैलेशी अवस्था—चौदहवे गुणस्थान मे जब मन, वचन और काय योग का निरोध हो जाता ह तब वह शैलेशी अवस्था कहलाती ह। इसमे ध्यान की पूर्णता होने से मेरु सदृश निष्प्रकम्पता व निश्चलता आती हे।

श्रुत ज्ञान—वह ज्ञान जो श्रुत अर्थात् शास्त्र निबद्ध ह। आप्त पुरुष द्वारा प्रणीत

आगम या अन्य शास्त्रों से जो ज्ञान होता है वह श्रुत ज्ञान है। श्रुतज्ञान मति पूर्वक होता है।

श्रुत-भक्ति—अत्यन्त श्रद्धा से श्रुत ज्ञान का अनवद्य प्रसार व उसके प्रति होने वाली जन-अरुचि को मिटाना।

संघ—गण का समुदाय—दो से अधिक आचार्यों का शिष्य-समूह।

संथारा—अन्तिम समय में आहार आदि का परित्याग करना।

संलेखना—शारीरिक व मानसिक एकाग्रता से कषाय आदि का शमन करते हुए तप करना।

संवर—आश्रवों को रोकना।

संस्थान—शरीर की आकृति विशेष।

संहनन—शरीर की अस्थियों का बंधन।

समचतुरस्र—जब पुरुष सुखासन (पालथी लगाकर) में बैठता है तो उसके दोनों घुटनों का और दोनों बाहुमूल-स्कंधों का अन्तर (दायां घुटना बायां स्कंध, बायां घुटना दायां स्कंध) इन चारों का बराबर अन्तर रहे वह समचतुरस्र संस्थान कहलाता है। भगवती सूत्र की टीका में अभयदेव ने लिखा है, जो आकार सामुद्रिक आदि लक्षण शास्त्रों के अनुसार सर्वथा योग्य हो वह समचतुरस्र कहलाता है। तीर्थंकर, चक्रवर्ती, वासुदेव आदि के यही संस्थान होता है।

सचेलक—बहुमूल्य वस्त्र सहित।

सन्निवेश—उपनगर।

सप्रतिकर्म—अनशन की अवस्था में उठना, बैठना, सोना, चलना, आदि शारीरिक क्रिया करना। ये क्रियाएँ भक्त-प्रत्याख्यान अनशन की अवस्था में ही होती हैं शेष में नहीं।

समय—काल का वह अविभाज्य अंश, जिसका कभी भी विभाग न किया जा सके।

समवसरण—तीर्थंकर प्रभु की धर्म-परिषद्। जहाँ पर तीर्थंकरों का उपदेश होता है।

समाचारी—श्रमणों के लिए अवश्य करणीय क्रियाएँ व व्यवहार।

समाधि मरण—मृत्यु के सन्निकट आ जाने पर चारों प्रकार के आहार का त्याग करके आत्मध्यान करते हुए प्रसन्नता पूर्वक प्राणों का त्याग करना। यह पण्डित मरण और सकाम मरण भी कहा जाता है। इसकी प्राप्ति विषयादि से विरक्त समाधिस्थ विज्ञों को इच्छा पूर्वक होती है तथा मृत्यु समय में भी अन्य समयों की तरह प्रसन्न ही रहते हैं।

समिति—संयम के अनुकूल प्रवृत्ति को समिति कहा है। वे पाँच हैं—१ ईर्या २ भाषा, ३ एषणा, ४ आदान-निक्षेप, और ५ उत्सर्ग।

(१) ईर्या—ज्ञान, दर्शन व चारित्र की अभिवृद्धि के निमित्त युग परिमाण भूमि को देखते हुए एवं स्वाध्याय व इन्द्रियों के विषयों का वर्जन करते हुए चलना।

(२) भाषा—भाषा दोषों का परिहार करते हुए पाप-रहित एवं सत्य, हित, मित, और असंदिग्ध बोलना।

(३) एषणा—गवेषणा, ग्रहण और ग्रास सम्बन्धी एषणा के दोषों का वर्जन करते हुए आहार-पानी आदि औधिक, उपधि और शय्या पाट, आदि औपग्रहिक उपधि का अन्वेषण।

(४) आदान-निक्षेप—वस्त्र, पात्र आदि उपकरणों का सावधानी पूर्वक लेना व रखना।

(५) उत्सर्ग—मल, मूत्र, खेल, थूक, कफ आदि का विधि पूर्वक पूर्वदृष्ट व प्रमार्जित निर्जीव भूमि पर विसर्जन करना।

समुच्छिन्न क्रियाऽनिवृत्ति—शुक्ल ध्यान का चतुर्थ चरण जिसमें सम्पूर्ण क्रियाओं का निरोध होता है।

सम्यक्त्व—तत्वों पर यथार्थ श्रद्धा।

सम्यक्त्वी—यथार्थ तत्त्व श्रद्धा से सम्पन्न व्यक्ति।

सम्यग्दर्शन—तत्त्वों का सही श्रद्धान

सर्वतोभद्र प्रतिमा—सर्वतोभद्र प्रतिमा की दो विधियों का वर्णन उपलब्ध होता है। एक विधि के अनुसार क्रमशः दशों दिशाओं की ओर अभिमुख होकर एक-एक अहोरात्र का कायोत्सर्ग किया जाता है। भगवान महावीर ने इसे किया था। दूसरी विधि के अनुसार उसके लघु और महान ये दो भेद हैं।

लघु सर्वतोभद्र प्रतिमा

१	२	३	४	५
३	४	५	१	२
५	१	२	३	४
२	३	४	५	१
४	५	१	२	३

(१) **लघु सर्वतोभद्र प्रतिमा**—अंकों की स्थापना का वह प्रकार जिसमें सब ओर से समान योग आता है, वह सर्वतोभद्र है। इस तप का उपवास से प्रारम्भ होता है और अनुक्रम से बढ़ते हुए द्वादश भक्त तक पहुँच जाता है। दूसरे क्रम में मध्य

अंक को आदि अंक मानकर चला जाता है और पांच खण्डों में उसे पूर्ण किया जाता है। आगे यही क्रम चलता है। एक परिपाटी का काल मान ३ महीने १० दिन है। चार परिपाटियाँ होती हैं। यन्त्र के अनुसार इसका क्रम चलता है।

(२) **महा सर्वतोभद्र प्रतिमा**—इस तप का प्रारम्भ उपवास से किया। जाकर सात (षोडश भक्त) उपवास तक पहुँच जाता है। बढ़ने का क्रम लघु की भांति ही है अन्तर केवल इतना ही है कि लघु में उत्कृष्ट तप पचोला है, महा में ७ उपवास है। एक परिपाटी का कालमान १ वर्ष १ महीना और १० दिन है। इसकी भी चार परिपाटी हैं। चारों का सम्पूर्ण कालमान ४ वर्ष ४ मास १० दिन का है। इसकी आराधना वीर कृष्णा ने की थी। इसका क्रम निम्न यन्त्र के अनुसार है—

महा सर्वतो भद्र प्रतिमा

१	२	३	४	५	६	७
४	५	६	७	१	२	३
७	१	२	३	४	५	६
३	४	५	६	७	१	२
६	७	१	२	३	४	५
२	३	४	५	६	७	१
५	६	७	१	२	३	४

सर्वौषधि—सर्वौषधि लब्धि के धारक तपस्वी के शरीर के समस्त अवयव मल, मूत्र, केश, नख, थूक आदि में से सुगन्ध आती है तथा उसके स्पर्श से रोग शान्ति हो जाते हैं। इस लब्धिधारी का समूचा शरीर ही जैसे पारस होता है, अमृतमय होता है। जहाँ से भी, जो भी वस्तु छू लो तुरन्त वह चमत्कार दिखाती है।

सागरोपम—पल्योपम की दस कोटा-कोटी से एक सागरोपम होता है।

साधर्मिक—समान धर्मवाला।

सामानिक—सामानिक देव, आयु, द्युति आदि में इन्द्र के समान होते हैं। केवल उनमें इन्द्रत्व नहीं होता। इन्द्र के लिए सामानिक देव अमात्य व गुरु आदि के समान पूज्य हैं।

सावद्य—पाप सहित।

सिद्ध—कर्मों को सर्वथा क्षय कर जन्म-मरण से मुक्त होने वाला आत्मा।

सिद्धि—सम्पूर्ण कर्मों की क्षय से प्राप्त होने वाली अवस्था।

सुषम-दुषम—अवसर्पिणी काल का तृतीय आरा, जिसमें सुख की मात्रा अधिक होती है और दुःख की मात्रा कम होती है।

सुषम—अवसर्पिणी काल का द्वितीय आरा, जिसमें केवल सुख ही होता है, दुःख की मात्रा किंचित् भी नहीं होती।

सुषम-सुषम—अवसर्पिणी काल का प्रथम आरा जिसमें अत्यधिक सुख होता है।

सूक्ष्म क्रियाऽप्रतिपाति—शुक्ल ध्यान का तृतीय चरण, जिसमें सूक्ष्म शरीर योग का आश्रय देकर दूसरे शेष योगों का निरोध होता है।

सूत्र—महावीर द्वारा कथित आगम साहित्य।

सौधर्म—प्रथम स्वर्ग।

स्थविर—साधना में स्खलित होते हुए साधकों को पुनः उसमें स्थिर करने वाले। स्थविर तीन प्रकार के होते हैं—

(१) प्रव्रज्यास्थविर—जिन्हें प्रव्रजित हुए २० वर्ष हो गये हों।

(२) वय स्थविर—जिनका वय साठ वर्ष का हो गया हो।

(३) श्रुतस्थविर—जिन्होंने स्थानांग समवायांग आदि आगम साहित्य का विधिवत् ज्ञान प्राप्त किया हो—

स्थविरकल्पिक—गच्छ में रहकर साधना करना। प्रवचन की प्रभावना करना। शिष्यों में ज्ञान, दर्शन और चारित्र आदि सद्गुणों की अभिवृद्धि करना। वृद्धावस्था में शारीरिक शक्ति क्षीण होने पर आहार और उपधि से दोषों का परिहार करते हुए एक ही स्थान में रहना।

□

एकावली तप
एक परिपाटी में १ वर्ष, २ मास और २ दिन।
सम्पूर्ण तप (चारों परिपाटी) में ४ वर्ष, ८ मास
और ८ दिन का समय लगता है।

चित्र १

कनकावली तप
एक परिपाटी मे १ वर्ष, ५ मास और
१२ दिन। सम्पूर्ण तप (चारो परिपाटी) मे
५ वर्ष, ६ मास और १८ दिन का समय लगता है।

चित्र २

गुणरत्न संवत्सर तप
सम्पूर्ण तप में १३ मास १७ दिन लगते हैं।
लघुसिंह निष्क्रीड़ित तप
एक परिपाटी में ६ मास ७ दिन।
सम्पूर्ण तप (चारों परिपाटी) में २ वर्ष, २८ दिन का समय लगता है।

चित्र ५ एवं ३

महासिंहनिष्क्रीडित तप
एक परिपाटी मे १ वर्ष, ६ मास और १८ दिन। सम्पूर्ण तप (चारों परिपाटी) मे ६ वर्ष, २ मास और १२ दिन का समय लगता है।
१५

चित्र ४

परिशिष्ट · ७
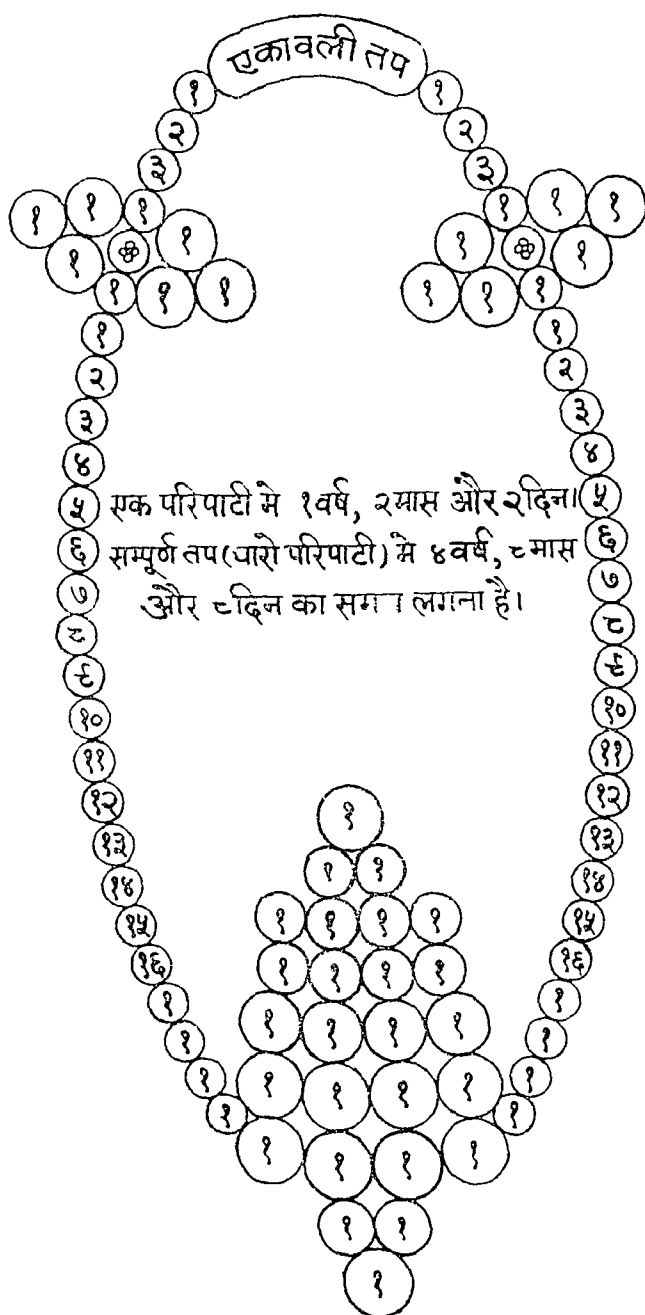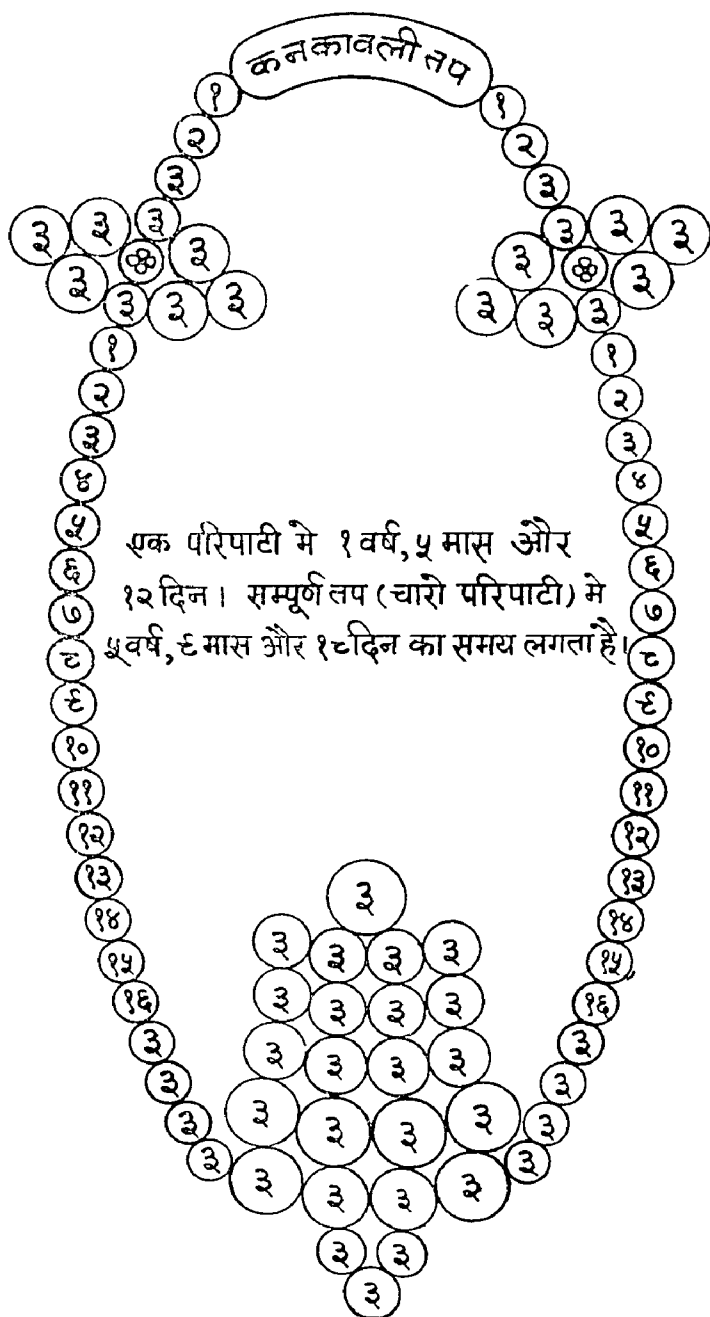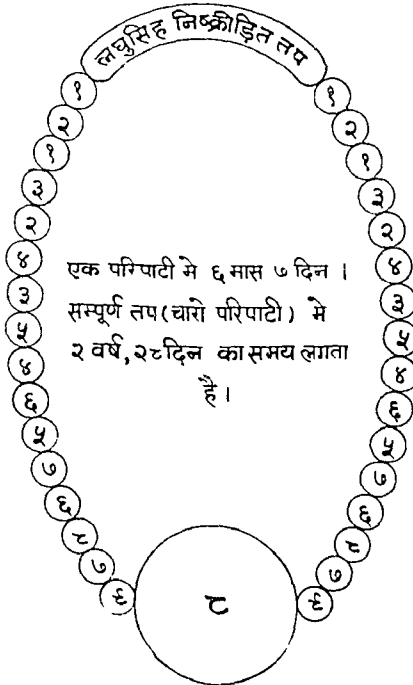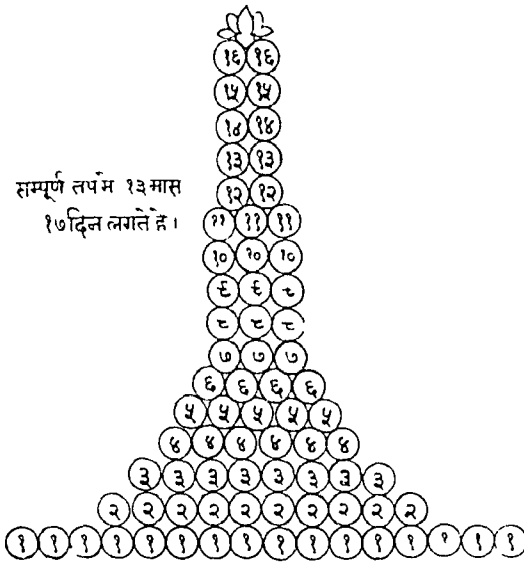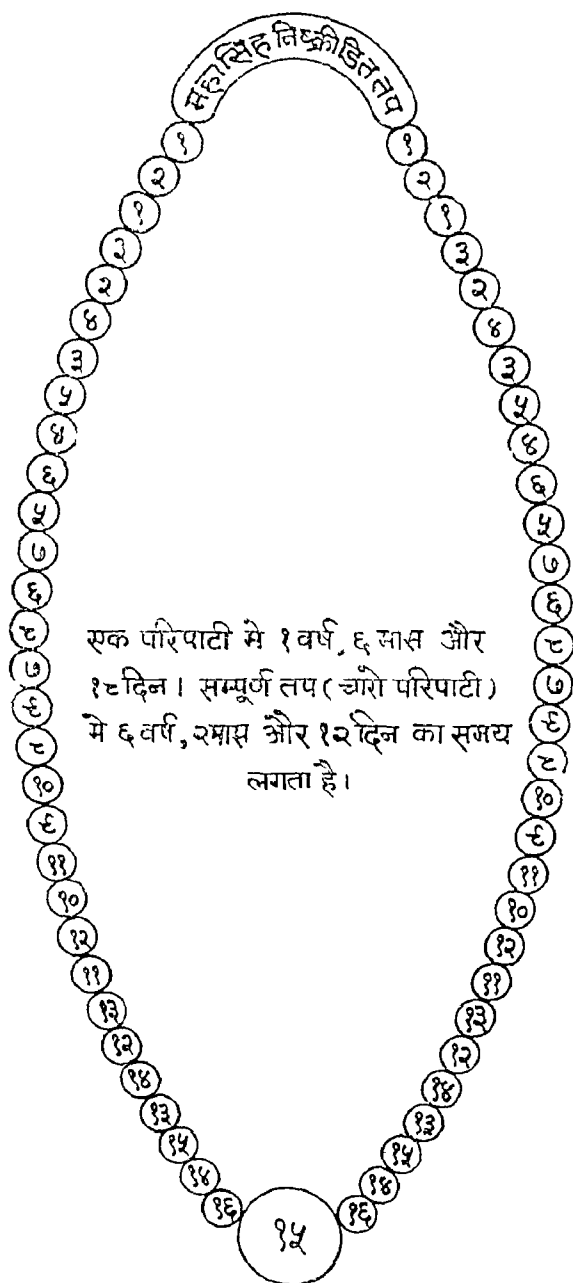
पुस्तक में उद्धृत ग्रन्थ सूची

अतीत का अनावरण
अवतार चरित्र (नागरी प्रचारणी सभा)
अवतार लीला
अथर्ववेद
अगुत्तर निकाय
अनुयोगद्वार
अलकार तिलक
अपण्णक जातक
अवदान जातक
अभिधान चिन्तामणि कोप
अयोधर जातक
अनुयोगद्वार टीका
अन्तकृद्दशा सूत्र
अनुत्तरोपपातिक
अमरकोप
अन्ययोगव्यवच्छेदद्वात्रिंशिक
अनिस्मृति
आचाराग
आवश्यक निर्युक्ति
आवश्यक मलयगिरि वृत्ति
आवश्यक हारिभद्रीया वृत्ति
आवश्यक चूर्णि
आगम और त्रिपिटक एक अनुशीलन
आचार्य भिक्षु स्मृति ग्रन्थ
आर्य मजुश्री मूलकल्प
आचाराग निर्युक्ति
आचाराग चूर्णि
आउट लाइन्स आव पौलिओग्राफी जनरल
—आव युनिवर्सिटी वाम्बे
आवश्यक निर्युक्ति दीपिका
—(माणिक्य शेखर)
आदि पुराण (जिनसेन)
आयारो आयार चूला
आप्टे सस्कृत इग्लिश डिक्शनरी
आर्क्योलोजिकल सर्वे रिपोर्ट
इसिभासिय
इण्डियन हिस्टरिक क्वार्टरली
इण्डो इरेनियन
इण्डियन कल्चर
इन्द्रभूति गौतम एक अनुशीलन
—(गणेश मुनि)
उपदेशमाला-सटीक
उत्तर हिन्दुस्तान माँ जैनधर्म
उत्तराध्ययन सूत्र एक परिशीलन
उत्तराध्ययन-सुखवोधा वृत्ति
उत्तराध्ययन
उत्तरपुराण
उत्तराध्ययन बृहद्वृत्ति
उपासकदशाग
उज्जैन इनएशेंट इण्डिया
उज्जयिनी दर्शन
ऋग्वेद

ऋग्वेद सहिता
ऋषभदेव एक परिशीलन (देवेन्द्र मुनि)
ऋषिमडल वृत्ति
ए हिस्ट्री आव कैनानिकल लिटरेचर आव द-जैन्स (एच० आर० कापडिया)
एजन
एपिग्राफिका इण्डिया
ऐशेण्ट ज्याग्रेफी आव इण्डिया
एन्सियेन्ट जोग्राफी आफ इण्डिया
ऐशेट इण्डिया हिस्टारिकल ट्रैडीशन
कल्पसूत्र (देवेन्द्र मुनि)
कलेक्टेड वर्क्स आफ आर० जी० भण्डारकर
कल्पसूत्र की भूमिका (डा० स्टीवेन्सन)
कल्चर हेरिटेज ऑव इन्डिया
कल्पसूत्र (लक्ष्मीवल्लभ टीका)
कल्पसूत्र सुबोधिका टीका
कुरुधम्म जातक
कल्पावतसिका
काल्पनिक अध्यात्म महावीर (बुद्धिसागर)
कुण्डलपुर के राजकुमार भ० महावीर (जयप्रकाश शर्मा)
कल्पसूत्र—कल्पलता
कल्पसूत्र कल्पद्रुम कलिका
कल्पसूत्र (आ० घासीलालजी)
कम्परेटिव स्टडीज इन द परिनिव्वानसुत्त एण्ड चाईनीज वर्जन फाच-लिखित
काल लोक प्रकाश
कल्पसूत्र सन्देह विषौषधिवृत्ति —(जिनप्रभ)
काव्यमीमासा
खारवेल शिलालेख
गौतम धर्म सूत्र
गोम्मट सार
चउप्पन्न महापुरिस चरिय
चार तीर्थंकर—प० सुखलाल जी
चरक सहिता
चतुर्विशति जिनस्तवन
चुलवग्ग—
छान्दोग्योपनिषद्
जाबालोपनिषद्
जातक अट्ठकथा—दूरेनिदान
जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति
जिनेन्द्रमत दर्पण
जैन साहित्य का बृहद् इतिहास
जैन साहित्य का इतिहास
जैनधर्म का मौलिक इतिहास
जैन आगम साहित्य मे भारतीय समाज —(डॉ० जगदीशचन्द्र)
जैनकल्पद्रुम—मुनि पुण्यविजयजी म०
जीवाभिगम सूत्र
जगदुद्धारक भ० महावीर (अम्बेलाल नारायण जोशी)
जातक कथा—(भारतीय ज्ञानपीठ काशी)
ज्योग्राफी आव अर्ली बुद्धिज्म
जैन साहित्य सशोधक
जैन भारती (पत्रिका)
जयधवला
जैनागम शब्द सग्रह
जर्नल आव एशियाटिक सोसायटी आव —बगाल
ट्राइब्स इन ऐशेन्ट इण्डिया
डिक्शनरी आव पाली प्रोपर नेम्स —मलालसेकर
तीर्थंकर महावीर—(विजयेन्द्र सूरि)
तीर्थंकर वर्द्धमान (श्रीचन्द रामपुरिया)
तीर्थंकर—मासिक पत्रिका, इदौर
तिसट्ठिमहान्तपुरिस गुणालकारु महापुराण—(पुष्पदन्त)

तैत्तिरीय आरण्यक
तत्वत्रय
तिलोयपण्णत्ती
तिलक मजरी
तन्दुल वैयालिय टीका
तत्त्वार्थ राजवार्तिक
तवत्त्वार्थ भाष्य
थेरगाथा
थेरीगाथा
दीघनिकाय
द एज आव इम्पीरियल कन्नौज
दशवैकालिक
दैवी भागवत
देवी पुराण
दी बौद्धिक इकानोग्राफी (विजयघोप भट्टाचार्य)
दी प्रिंसिपल उपनिषदाज
दशवैकालिक-जिनदास चूर्णि
दशवैदालिक हारिभद्रीया वृत्ति
द डान्स आव-शिवकुमार स्वामी
दशवैकालिक-अगस्त्यसिंह चूर्णि
दशकुमारचरित्र-(निर्णयसागर प्रेस)
द आर्ट आव वार इन एशियेंट इण्डिया—(दाते जी० टी०)
दशाश्रुत स्कंध
दशभक्ति
द हिस्ट्री आव नेपाल
दर्शन-रत्न-रत्नाकर
दिव्यावदान (सम्पादक- पी० एल० वैद्य)
द ज्योग्रेफिकल कण्टैण्टस आव महामायूरी
दि ऐंशियट ज्योग्राफी इन इडिया
धनञ्जयनाममाला
धम्मपद
धम्मपद अट्ठकथा
धज विहेट्ठ जातक
नरकेसरी (जयभिक्खु)
निशीथ भाष्य
नन्दी सूत्र
नाथ सम्प्रदाय (डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी)
निशीथ चूर्णि—उपाध्याय अमरमुनि —सम्पादित
नारद स्मृति
नीतिवाक्यामृत (सोमदेव सूरि)
निरयावलिया
निर्ग्रन्थ भगवान महावीर—(जयभिक्खु)
नालदा ऐंड इटस् एपीग्राफिक मिटिरियल
पद्मपुराण
प्राचीन भारतीय अभिलेखो का सग्रह
पट्टावली समुचय
पूज्य गुरु देव रत्नमुनि स्मृति ग्रन्थ
पार्श्वनाथ का चातुर्याम धर्म
पोलिटिकल हिस्ट्री ऑव एन्शियण्ट इडिया
प्राचीन भारतीय साहित्य
प्रज्ञापना (पुण्यविजय जी)
पिण्ड निर्युक्ति
प्रवचन सारोद्धार सटीक
प्राकृत साहित्य का इतिहास —डा० जगदीश चन्द्र
प्राकृत भाषाओ का व्याकरण
पाणिनी अष्टाध्यायी
पाणिनी कालीन भारतवर्ष (वासुदेव शरण अग्रवाल
पातजली जातक
पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन इन ऐंशियेंट इण्डिया (बनर्जी पी० एन)
प्री बुद्धिस्ट इण्डिया—(रतिलाल मेहता)
पुराणसार सग्रह
प्रभुमहावीर नु जीवन चरित्र (अम्बाजी स्वामी)
पाइयसद्दमहण्णवो

ऋग्वेद सहिता
ऋषभदेव एक परिशीलन (देवेन्द्र मुनि)
ऋषिमडल वृत्ति
ए हिस्ट्री आव कनानिकल लिटरेचर आन
द-जैन्स (एच० आर० कापडिया)
एजन
एपिग्राफिका इण्डिया
ऐशेण्ट ज्याग्रेफी आव इण्डिया
एन्सियेन्ट जोग्राफी आफ इण्डिया
ऐशेट इण्डिया हिस्टारिकल ट्रैडीशन
कल्पसूत्र (देवेन्द्र मुनि)
कलेक्टेड वर्क्स आफ आर० जी०
भण्डारकर
कल्पसूत्र की भूमिका (डा० स्टीवेन्सन)
कल्चर हेरिटेज ऑव इन्डिया
कल्पसूत्र (लक्ष्मीवल्लभ टीका)
कल्पसूत्र सुबोधिका टीका
कुरुधम्म जातक
कल्पावतसिका
काल्पनिक अध्यात्म महावीर
(बुद्धिसागर)
कुण्डलपुर के राजकुमार भ० महावीर
(जयप्रकाश शर्मा)
कल्पसूत्र—कल्पलता
कल्पसूत्र कल्पद्रुम कलिका
कल्पसूत्र (आ० घासीलालजी)
कम्परेटिव स्टडीज इन द परिनिव्वानसुत्त
एण्ड चाईनीज वर्जन फाच-लिखित
काल लोक प्रकाश
कल्पसूत्र सन्देह विषौषधिवृत्ति
—(जिनप्रभ)
काव्यमीमासा
खारवेल शिलालेख
गौतम धर्म सूत्र
गोम्मट सार
चउप्पन्न महापुरिस चरिय
चार तीर्थंकर—प० सुखलाल जी
चरक सहिता
चतुर्विशति जिनस्तवन
चुलवग्ग—
छान्दोग्योपनिषद्
जाबालोपनिषद्
जातक अट्ठकथा—दूरेनिदान
जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति
जिनेन्द्रमत दर्पण
जैन साहित्य का बृहद् इतिहास
जैन साहित्य का इतिहास
जैन धर्म का मौलिक इतिहास
जैन आगम साहित्य मे भारतीय समाज
—(डॉ० जगदीशचन्द्र)
जैनकल्पद्रुम—मुनि पुण्यविजयजी म०
जीवाभिगम सूत्र
जगदुद्धारक भ० महावीर
(अम्बेलाल नारायण जोशी)
जातक कथा—(भारतीय ज्ञानपीठ काशी)
ज्योग्राफी आव अर्ली बुद्धिज्म
जैन साहित्य सशोधक
जैन भारती (पत्रिका)
जयधवला
जैनागम शब्द सग्रह
जर्नल आव एशियाटिक सोसायटी आव
—बगाल
ट्राइब्स इन ऐशेन्ट इण्डिया
डिक्शनरी आव पाली प्रोपर नेम्स
—मलालसेकर
तीर्थंकर महावीर—(विजयेन्द्र सूरि)
तीर्थंकर वर्द्धमान (श्रीचन्द रामपुरिया)
तीर्थंकर—मासिक पत्रिका, इदौर
तिसट्ठिमहापुरिस गुणालकारु
महापुराण—(पुष्पदन्त)

तैतिरीय आरण्यक
तत्वत्रय
तिलोयपण्णत्ती
तिलक मजरी
तन्दुल वैयालिय टीका
तत्त्वार्थ राजवार्तिक
तवत्त्वाय भाष्य
थेरगाथा
थेरीगाथा
दीघनिकाय
द एज आव इम्पीरियल कन्नौज
दशवैकालिक
दैवी भागवत
देवी पुराण
दी वौद्धिक इकानोग्राफी
(विजयघोप भट्टाचार्य)
दी प्रिंसिपल उपनिपदाज
दशवैकालिक-जिनदास चूर्णि
दशवैदालिक हारिभद्रीया वृत्ति
द डान्स आव-शिवकुमार स्वामी
दशवैकालिक-अगस्त्यसिंह चूर्णि
दशकुमारचरित्र-(निर्णयसागर प्रेस)
द आर्ट आव वार इन एशियेट इण्डिया-
(दाते जी० टी०)
दशाश्रुत स्कध
दशभक्ति
द हिस्ट्री आव नेपाल
दर्शन-रत्न-रत्नाकर
दिव्यावदान (सम्पादक- पी० एल० वैद्य)
द ज्योग्रेफिकल कण्टैण्टस आव महामायूरी
दि ऐंशियट ज्योग्राफी इन इडिया
धनञ्जयनाममाला
धम्मपद
धम्मपद अट्ठकथा
धज विहेट्ठ जातक

नरकेसरी (जयभिक्खु)
निशीथ भाष्य
नन्दी सूत्र
नाथ सम्प्रदाय (डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी)
निशीथ चूर्णि—उपाध्याय अमरमुनि
—सम्पादित
नारद स्मृति
नीतिवाक्यामृत (सोमदेव सूरि)
निरयावलिया
निर्ग्रन्थ भगवान महावीर—(जयभिक्खु)
नालदा ऐंड इटस् एपीग्राफिक मिटिरियल
पद्मपुराण
प्राचीन भारतीय अभिलेखो का सग्रह
पट्टावली समुचय
पूज्य गुरु देव रत्नमुनि स्मृति ग्रन्थ
पार्श्वनाथ का चातुर्याम धर्म
पोलिटिकल हिस्ट्री ऑव एन्शियण्ट इडिया
प्राचीन भारतीय साहित्य
प्रज्ञापना (पुण्यविजय जी)
पिण्ड निर्युक्ति
प्रवचन सारोद्धार सटीक
प्राकृत साहित्य का इतिहास
—डा० जगदीश चन्द्र
प्राकृत भाषाओ का व्याकरण
पाणिनी अष्टाध्यायी
पाणिनी कालीन भारतवर्ष (वासुदेव
शरण अग्रवाल
पातजली जातक
पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन इन ऐंशियेट
इण्डिया (बनर्जी पी० एन)
प्री बुद्धिस्ट इण्डिया—(रतिलाल मेहता)
पुराणसार सग्रह
प्रभुमहावीर नु जीवन चरित्र
(अम्बाजी स्वामी)
पाइयसद्दमहण्णवो

ऋग्वेद सहिता
ऋषभदेव एक परिशीलन (देवेन्द्र मुनि)
ऋषिमडल वृत्ति
ए हिस्ट्री आव कैनानिकल लिटरेचर आन द-जैन्म (एच० आर० कापड़िया)
एजन
एपिग्राफिका इण्डिया
ऐशेण्ट ज्याग्रेफी आव इण्डिया
एन्सियेन्ट जोग्राफी आफ इण्डिया
ऐंशेट इण्डिया हिस्टारिकल ट्रडीशन
कल्पसूत्र (देवेन्द्र मुनि)
कलेक्टेड वर्क्स आफ आर० जी० भण्डारकर
कल्पसूत्र की भूमिका (डा० स्टीवेन्सन)
कल्चर हरिटेज ऑव इन्डिया
कल्पसूत्र (लक्ष्मीवल्लभ टीका)
कल्पसूत्र सुबोधिका टीका
कुरुधम्म जातक
कल्पावतसिका
काल्पनिक अध्यात्म महावीर (बुद्धिसागर)
कुण्डलपुर के राजकुमार भ० महावीर (जयप्रकाश शर्मा)
कल्पसूत्र—कल्पलता
कल्पसूत्र कल्पद्रुम कलिका
कल्पसूत्र (आ० घासीलालजी)
कम्परेटिव स्टडीज इन द परिनिव्वानसुत्त एण्ड चाईनीज वर्जन फाच-लिखित
काल लोक प्रकाश
कल्पसूत्र सन्देह विषौषधिवृत्ति —(जिनप्रभ)
काव्यमीमासा
खारवेल शिलालेख
गौतम धर्म सूत्र
गोम्मट सार
चउप्पन्न महापुरिस चरिय
चार तीर्थंकर—प० सुखलाल जी
चरक सहिता
चतुर्विंशति जिनस्तवन
चुलवग्ग—
छान्दोग्योपनिषद्
जाबालोपनिषद्
जातक अट्ठकथा—दूरेनिदान
जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति
जिनेन्द्रमत दर्पण
जैन साहित्य का वृहद् इतिहास
जैन साहित्य का इतिहास
जैनधर्म का मौलिक इतिहास
जैन आगम साहित्य मे भारतीय समाज —(डॉ० जगदीशचन्द्र)
जैनकल्पद्रुम—मुनि पुण्यविजयजी म०
जीवाभिगम सूत्र
जगदुद्धारक भ० महावीर (अम्बेलाल नारायण जोशी)
जातक कथा—(भारतीय ज्ञानपीठ काशी)
ज्योग्राफी आव अर्ली बुद्धिज्म
जैन साहित्य सशोधक
जैन भारती (पत्रिका)
जयधवला
जैनागम शब्द सग्रह
जर्नल आव एशियाटिक सोसायटी आव —बगाल
ट्राइब्स इन ऐशेन्ट इण्डिया
डिक्शनरी आव पाली प्रोपर नेम्स —मलालसेकर
तीर्थंकर महावीर—(विजयेन्द्र सूरि)
तीर्थंकर वर्द्धमान (श्रीचन्द रामपुरिया)
तीर्थंकर—मासिक पत्रिका, इदौर
तिसट्ठिमहान्तपुरिस गुणालकारु महापुराण—(पुष्पदन्त)

तैतिरीय आरण्यक
तत्वनय
तिलोयपण्णत्ती
तिलक मजरी
तन्दुल वैयालिय टीका
तत्त्वार्थ राजवार्तिक
तवत्त्वाथ भाष्य
थेरगाथा
थेरीगाथा
दीघनिकाय
द एज आव इम्पीरियल कन्नौज
दशवैकालिक
दैवी भागवत
देवी पुराण
दी वौद्धिक इकानोग्राफी
(विजयघोप भट्टाचार्य)
दी प्रिंसिपल उपनिपदाज
दशवैकालिक-जिनदास चूर्णि
दशवैदालिक हारिभद्रीया वृत्ति
द डान्स आव-शिवकुमार स्वामी
दशवैकालिक-अगस्त्यसिह चूर्णि
दशकुमारचरित्र-(निर्णयसागर प्रेस)
द आर्ट आव वार इन एशियेट इण्डिया-
(दाते जी० टी०)
दशाश्रुत स्कध
दश भक्ति
द हिस्ट्री आव नेपाल
दर्शन-रत्न-रत्नाकर
दिव्यावदान (सम्पादक- पी० एल० वैद्य)
द ज्योग्रेफिकल कण्टैण्टस आव महामायूरी
दि ऐशियट ज्योग्राफी इन इडिया
धनञ्जयनाममाला
धम्मपद
धम्मपद अट्ठकथा
धज विहेट्ठ जातक
नरकेसरी (जयभिक्खु)
निशीथ भाष्य
नन्दी सूत्र
नाथ सम्प्रदाय (डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी)
निशीथ चूर्णि—उपाध्याय अमरमुनि
—सम्पादित
नारद स्मृति
नीतिवाक्यामृत (सोमदेव सूरि)
निरयावलिया
निर्ग्रन्थ भगवान महावीर—(जयभिक्खु)
नालदा ऐंड इटस् एपीग्राफिक मिटिरियल
पद्मपुराण
प्राचीन भारतीय अभिलेखो का सग्रह
पट्टावली समुचय
पूज्य गुरु देव रत्नमुनि स्मृति ग्रन्थ
पार्श्वनाथ का चातुर्याम धम
पोलिटिकल हिस्ट्री ऑव एन्शियण्ट इडिया
प्राचीन भारतीय साहित्य
प्रज्ञापना (पुण्यविजय जी)
पिण्ड निर्युक्ति
प्रवचन सारोद्धार सटीक
प्राकृत साहित्य का इतिहास
—डा० जगदीश चन्द्र
प्राकृत भापाओ का व्याकरण
पाणिनी अष्टाध्यायी
पाणिनी कालीन भारतवर्ष (वासुदेव
शरण अग्रवाल
पातजली जातक
पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन इन ऐशियेट
इण्डिया (बनर्जी पी० एन)
प्री बुद्धिस्ट इण्डिया—(रतिलाल मेहता)
पुराणसार सग्रह
प्रभुमहावीर नु जीवन चरित्र
(अम्बाजी स्वामी)
पाइयसद्दमहण्णवो

पाराशरस्मृति
पच्चीसो इयर्स आव बुद्धिज्म
पद्मचरित्रम्
पुरातत्त्व निवन्धावली
पातञ्जल महाभाष्य
पाणिनी व्याकरण
पर्युपण अष्टाह्निका व्यारयान
फलजातक
वाबू छोटेलाल स्मृतिग्रन्थ
वौद्ध धर्म और दर्शन (आचार्य नरेन्द्र देव)
ब्रह्माण्ड पुराण
वौद्धदर्शन तथा अन्य भारतीय दर्शन
(भरतसिंह उपाध्याय)
बुद्धिस्ट स्टडीज (डा० राधा कुमुद मुकर्जी)
वौद्ध पर्व (मराठो)
वोधायन स्मृति
विहार दर्पण (म० प्र० अम्वाह)
बुद्धिस्ट रेकार्ड आव वेस्टन इण्डिया
बुद्ध कालीन भारतीय भूगोल
भगवान बुद्ध—(धर्मानन्द कौशाम्बी)
भारतीय विद्या—(डा० मोतीचन्द)
भारतीय लिपिमाला—(ओझाजी)
भारतीय जैन श्रमण सस्कृति अने लेखन कला—(पुण्यविजय जी)
भास ए स्टडी अ० १६ पुसालकर ए० डी०
भगवती सूत्र—(प० वेचरदास जी)
भारतीय सस्कृति और अहिंसा
भगवान महावीर—(चन्द्रराज भण्डारी)
भगवान महावीर का आदर्श जीवन
(मुनि चोथमलजी)
भारतवर्षीय प्राचीन चरित्र कोष
भगवान पार्श्वनाथ
भारतवर्ष मे जाति भेद
भारतीय सस्कृति और इतिहास
भारतीय इतिहास एक दृष्टि
(डा० ज्योतिप्रसाद जैन)
भरतेश्वर वाहुवली वृत्ति
भगवान महावीरनी धर्म कथाओ
भारतीय इतिहास की रूपरेखा
भगवान पार्श्व एक समीक्षात्मक अध्ययन
(देवेन्द्र मुनि)
भागवत पुराण
भागवत सम्प्रदाय—
(डा० वलदेव उपाध्याय)
भारतीय दर्शन का इतिहास
मत्स्य पुराण
महापुराण—जिनसेन
मध्यकालीन भारतीय सस्कृति
मध्यकालीन साहित्य मे अवतारवाद
महायान—भदन्त शान्तिभिक्षुकी प्रस्तावना
मज्झिम निकाय
मुनि हजारीमल स्मृति ग्रन्थ
मुण्डकोपनिषद्
मिलिन्द प्रश्न
महावग्ग
मनुस्मृति
महावीर स्वामी नोधर्म
—(गोपालदास पटेल)
महावीर और महात्मा बुद्ध
महावीर चरिय—(नेमिचन्द्र)
महावीर चरिय (गुणचन्द्र)
महापुराण—(मेरुतुग)
महावीर रास—(कुमुदचन्द)
महावीर नो रास—(महाकवि पद्म)
महावीर पुराण (मनसुख सागर)
महावीर नी विनती—(भट्टारक शुभचन्द्र)

महावीर छन्द
महावीर स्वामी चरित्र—
(वकील नन्दलाल लल्लू)
महावीर कथा—
(गोपालदास जीवाभाई पटेल)
महावीर चरित्र—(मुनि हर्षचन्द्रजी)
महावीर सिद्धान्त और उपदेश
(अमर मुनि)
महावीरवाणी—(पं० बेचरदास जी)
महावीरवाणी—(आचार्य रजनीश)
महावीर मेरी दृष्टि मे—
(आचार्य रजनीश)
महावीर-वर्धमान—
(डा० जगदीशचन्द्र जैन)
महावीर (पाण्डु लिपि)
(पं० दलसुख मालवणिया)
मनुस्मृति
महासच्चक सुत्त
मध्यभारत का इतिहास (हरिहर निवास)
महाभारत
मार्कण्डेय पुराण
मैन्युअल आफ बुद्धिजम
याज्ञवल्क्य स्मृति
युगपुरुष महावीर—
(शरद्कुमार 'साधक')
यजुर्वेद
युआन चुआगस् ट्रेवल्स इन इण्डिया
राजपूताने का इतिहास
रायमल्लाभ्युदय—(पद्मसुन्दर जी)
रज्जब की बानी
रागकल्पद्रुम
रामायण
राजप्रश्नीय
राइस डेविडस बुद्धिस्ट इण्डिया
राजगृह इन एशेंट लिटरेचर
लकावतार सूत्र
लघुभागवत
ललित विस्तर
लघु त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरित्र
लोक प्रकाश
लाइफ आव बुद्ध
लाइफ इन ऐशेंट इण्डिया
वैदिक सस्कृति का इतिहास
वैदिक माइथोलॉजी
विष्णुपुराण
विनयपिटक
विशेषावश्यक भाष्य
बृहदारण्यक
वसुदेव हिण्डी
विल डयूरेण्ट दी स्टोरी आव सिविलि-
जेशन
विपाक सूत्र
वाजसनेय सहिता
बृहत्कल्प भाष्य
बृहत्कल्प भाष्य पीठिका
व्यवहार भाष्य
विभगअट्ठ कथा
वासवदत्ता—सुबन्ध
विशेषावश्यक भाष्य—कोट्याचार्य कृत
विवरण
वीरोदय काव्य—मुनि ज्ञानसागर जी
वर्धमान चरित्रम्—महाकवि असग
वीर वर्धमान चरित्रम्—भट्टारक
सकल कीर्ति
वड्ढमाण कव्वु—जयमित्त हल्ल
वड्ढमाण कहा—कविनरसेन
वड्ढमाण चरिउ—श्रीधर
वर्धमान काव्य—जयमित्त हल्ल
वर्धमान पुराण—कवि नवलशाह
वर्धमान रास (वर्द्धमान कवि)

वर्धमान चरित—केशरीसिंह जी
वर्धमान सूचनिका—बुधजन
विश्वज्योति महावीर
वैशाली के राजकुमार तीर्थंकर वर्धमान महावीर—डा० नेमिचन्द्र जैन
वर्धमान महाकाव्य—अनूपकवि
वीरायण महाकाव्य
वशिष्ठ स्मृति
वासु पूज्य चरित्र—श्री वर्धमान सूरि
वीर विहार मीमासा
वशिष्ठ धर्म सूत्र
विविध तीर्थकल्प
वेताल पचविंशति
शतपथ ब्राह्मण
शिवपुराण
श्वेताश्वतरोपनिषद्
सुमगल विलासिनी
सेनप्रश्न
साइनो-इण्डियन-स्टडीज वाल्यूम
सर्वदर्शन सग्रह
सन्मति महावीर—सुरेश मुनि
सुत्तागमे
सयुक्त निकाय
सुत्तनिपात
स्थानाङ्ग
साहित्य और सस्कृति
सूत्रकृताङ्ग
समवायाङ्ग
सूत्रालकार
सद्धर्म पुण्डरीक
सूर सागर
सूरसारावली
सूर्यप्रज्ञप्ति (सटीक)
सायण भाष्य
सस्कृति के अचल मे
सोशल लाइफ इन ऐशियन्ट इण्डिया
सुश्रुत सहिता
सरभग जातक
सी० सिवराय मूर्ति का आर्ट नोट्स फ्राम धनपाल
सप्ततिशतस्थान वृत्ति
हिन्दी विश्वकोष
हिन्दू सभ्यता—ले० राधाकुमुद मुकर्जी
हिस्ट्री आफ इण्डियन फिलोसफी
हिस्ट्री आव बगाल
हिन्दी की निर्गुण काव्यधारा और उसकी दार्शनिक पृष्ठभूमि
हिन्दू एडमिनिस्ट्रेटिक इन्स्टियूशन्स—वी० आर०—रमेशचन्द्र दीक्षित
स्मृतिचन्द्रिका व्यवहार
सन्तरिय समठाणा वृत्ति
सङ्गामावतार जातक
सस्तर
हापकिन्स, जर्नल आव अमेरिकन ऑरिंटियल सोसायटी
हमारी परम्परा
हीर प्रश्न प्रकाश
हर्ष चरित्र—डा० वासुदेवशरण अग्रवाल
श्रीमद् भागवद्
श्रीमद् भगवत गीता
श्री वर्द्धमान चरित्र—उपाध्याय आत्माराम जी
श्रमण भगवान महावीर—मुनिकल्पनाविजय
श्रमण भगवान महावीर नुं जीवन—भद्रकर विजय जी
श्रमण सस्कृति सिद्धान्त और साधना
श्रेणिक चरित्र
त्रिषष्टि शलाकापुरुष चरित्र
त्रिषष्टि स्मृतिशास्त्र

त्रिशलानन्दन महावीर—
—रतिलाल मफालाल
ज्ञानार्णव
अभिधान राजेन्द्र कोप
आगम युग का जैनदर्शन
ज्योग्रेफीकल डिक्शनरी आव एन्शियन्ट मेडीवल इण्डिया
थेरा अपदान
बुद्धचर्या
ट्रेवल्स ऑफ फाहियान
शिशुपाल-वध महाकाव्य
प्राचीन तीर्थमाला
मेघदूत
गच्छाचार
समराइच्च कहा
प्रभावक चरित्र
वैशाली
गोरखपुर जनपद और उसकी क्षत्रिय जातियो का—इतिहास
ज्ञाताधम कथा
ज्ञातपुत्र श्रमण भगवान महावीर—
प० हीरालाल रसिकदास कापडिया
पावा समीक्षा
भारत के प्राचीन जैनतीर्थ
शक्तितत्र
गिलगित मैनुस्क्रिप्ट आव दि विनयपिटक
मुनि सुव्रतकाव्य (अहद्दास)
उत्तर-प्रदेश मे बौद्ध धर्म का विकास
गर्ग सहिता
गर्ग पुराण
भगवान अरिष्टनेमि और कर्मयोगी श्रीकृष्ण
(देवेन्द्र मुनि)
जम्बू सामी चरिय
मिलिन्द पण्हो
दीपवस
महावस
वैशाली अभिनन्दन ग्रन्थ

शुद्धि-पत्र

पृ०	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
३०	६	अपभ्रंश	अपभ्रंश
३२	१३	हिरण्यभ	हिरण्यगर्भ
५१	२७	परिशीन	परिशीलन
५६	८	जिमे	जिसे
५८	१६	औषधिया	औषधियाँ
६०	७	स्थादत्यकला	स्थापत्यकला
६१	११	सत	सप्त
६२	५	कोटो	काँटो
६५	६	विद्यभ्यास	विद्याभ्यास
६६	२३	श्रीवस्ती	श्रावस्ती
८२	१५	चारो	चोरो
८८	६	न धव	वन एव
१२३	११	नियुक्ति	निर्युक्ति
१२४	१२	नियुक्तियो	निर्युक्तियाँ
१३५	१६	जम्मूद्वीप	जम्बूद्वीप
१४३	१२	पुरास्त्ववेत्ता	पुरातत्त्ववेत्ता
१५६	८	आध्यात्यिक	आध्यात्मिक
१५८	७	जाव	जीव
१७२	१२	ब्रह्मस्वग	ब्रह्मस्वर्ग से
१७४	१०	उक्तधारण	उक्तधारणा
१९१	३	धातका	धातकी
१९२	१५	दोनो	दिनो
१९३	१३	नाम होने	नाम एक होने
१९५	१७	भव के मे	भव मे
१९८	२४	अन्यत	अत्यन्त
२०३	२६	सपक्ष	समक्ष
२१०	३	अछतो	अछूतो
२५५	२	प्रमित्त	प्रसिद्ध
२७२	९	मायध्म	माध्यम
४५९	२	शद्धि	शुद्धि
४६१	२	वनभिखारी	भिखारी बन

ले क की महत्व पूर्ण कृतियां

- ☐ ऋषभदेव एक परिशीलन
- ☐ भगवान् अरिष्टनेमि और कर्मयोगी श्रीकृष्ण – एक अनुशीलन
- ☐ भगवान् पार्श्व एक अनुशीलन
- ☐ सस्कृति और साहित्य
- ☐ चितन की चादनी
- ☐ विचार रश्मिया
- ☐ अनुभूति के आलोक मे
- ☐ बोलते चित्र
- ☐ महकते फूल
- ☐ मुस्कराते फूल खिलती कलिया
- ☐ अतीत के बोलते चित्र

सम्पर्क करें

श्री तारक गुरु जैन ग्रन्थालय
शास्त्री सर्कल, उदयपुर [राजस्थान]

शुद्धि-पत्र

पृ०	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
३०	६	अपभ श	अपभ्र श
३२	१३	हिरण्यभ	हिरण्यगर्भ
५१	२७	परिशीन	परिशीलन
५६	८	ाजसे	जिसे
५८	१६	अपौधिया	औषधियाँ
६०	७	म्यादत्यकला	स्थापत्यकला
६१	११	सत	सप्त
६२	५	कोटो	कॉटो
६५	६	विद्यभ्यास	विद्याभ्यास
६६	२३	श्रीवस्ती	श्रावस्ती
८२	१५	चारो	चोरो
८८	६	न वव	धन एव
१२३	११	नियुक्ति	निर्युक्ति
१२४	१२	नियुक्तियो	निर्युक्तियाँ
१३५	१६	जम्मूद्वीप	जम्बूद्वीप
१४३	१२	पुरात्त्ववेत्ता	पुरातत्त्ववेत्ता
१५६	८	आध्यात्यिक	आध्यात्मिक
१५८	७	जाव	जीव
१७२	१२	ब्रह्मस्वग	ब्रह्मस्वर्ग से
१७४	१०	उक्तधारण	उक्तधारणा
१९१	३	धातका	धातकी
१९२	१५	दोनो	दिनो
१९३	१३	नाम होने	नाम एक होने
१९५	१७	मव के मे	भव मे
१९८	२४	अन्यत	अत्यन्त
२०३	२६	सपक्ष	समक्ष
२१०	३	अछतो	अछूतो
२५५	२	प्रसित्त	प्रसिद्ध
२७२	९	मायल्म	माध्यम
४५९	२	शद्धि	शुद्धि
४६१	२	वनभिखारी	भिखारी वन